एक नन्हीं किन्दील : विभाजन-पूर्व हिन्दुस्तान के महानगर, लाहौर में मध्यवर्ग के संघर्षरत नायक चेतन की कशमकश तथा उसके गार्हस्थ्य जीवन के छोटे-छोटे ब्योरों की विशाल गाथा है। ये ब्योरे इस कलाकारिता के साथ प्रस्तुत हुए हैं कि चेतन के संघर्ष आपके अपने संघर्ष हो जाते हैं, उसकी उलझनें और ग्रन्थियाँ आपकी उलझनें और ग्रन्थियाँ बन जाती हैं और उसका जीवन आपको अपना जीवन मालूम होता है।

एक नन्हीं किन्दील : का नायक चेतन एक भावप्रवण निम्नमध्यवर्गीय युवक है, जिसके संघर्षों और सपनों, इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं, अन्तर्द्वन्द्वों और उलझनों के गिर्द, यथार्थ-वादी परम्परा का यह सर्व

एक नन्हीं किन्दील : में

तीन प्रमुख पंचालक-सू

अधिक महत्वपूर्ण

किया है, जिस पर

को मोड़ देती है।

एक नन्हीं किन्दील

तथा साहित्यिक जं

अपने [illegible]

उसकी पत्नी चन्दा

आकार को पाती

प्रकट ही ऐसा

[illegible] को छोड़न

सार उन्होंने रूपाव

और 'शहर में घूम

एक नया शिल्प हि

'एक नन्हीं किन्दी

एक नवीनता लिये

'शहर में घूम

[illegible] खण्ड होते

ख[illegible]ों की तरह अ
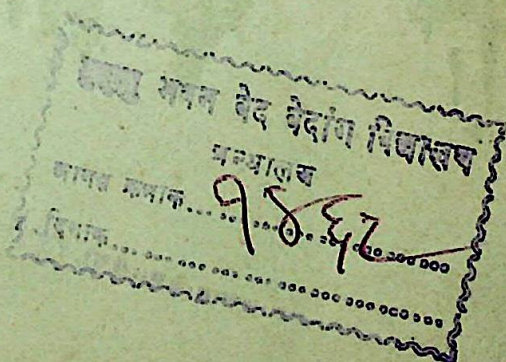
एक नन्हीं किन्दील

अपने आप में सम्पूर्ण होते हुए भी यह उपन्यास 'शहर में घूमता आईना' के बाद मध्यवर्गीय जीवन के महाकाव्य, 'गिरती दीवारें' की कथा को आगे बढ़ाता है और अपने जीवन तथा परिवेश के निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क से विकसित होते हुए नायक चेतन और उसकी सरला पत्नी चन्दा के चरित्रों का अभूतपूर्व खाका खींचता है। कैसे चन्दा अपनी सरलता और सहृदयता के पूरे आकार को पाती है और चेतन पेट और सेक्स के जज़्बे से ऊपर उठ कर अहं के जज़्बे से जूझने लगता है—यही इस उपन्यास की विशाल पृष्ठभूमि है।

नीलाभ प्रकाशन
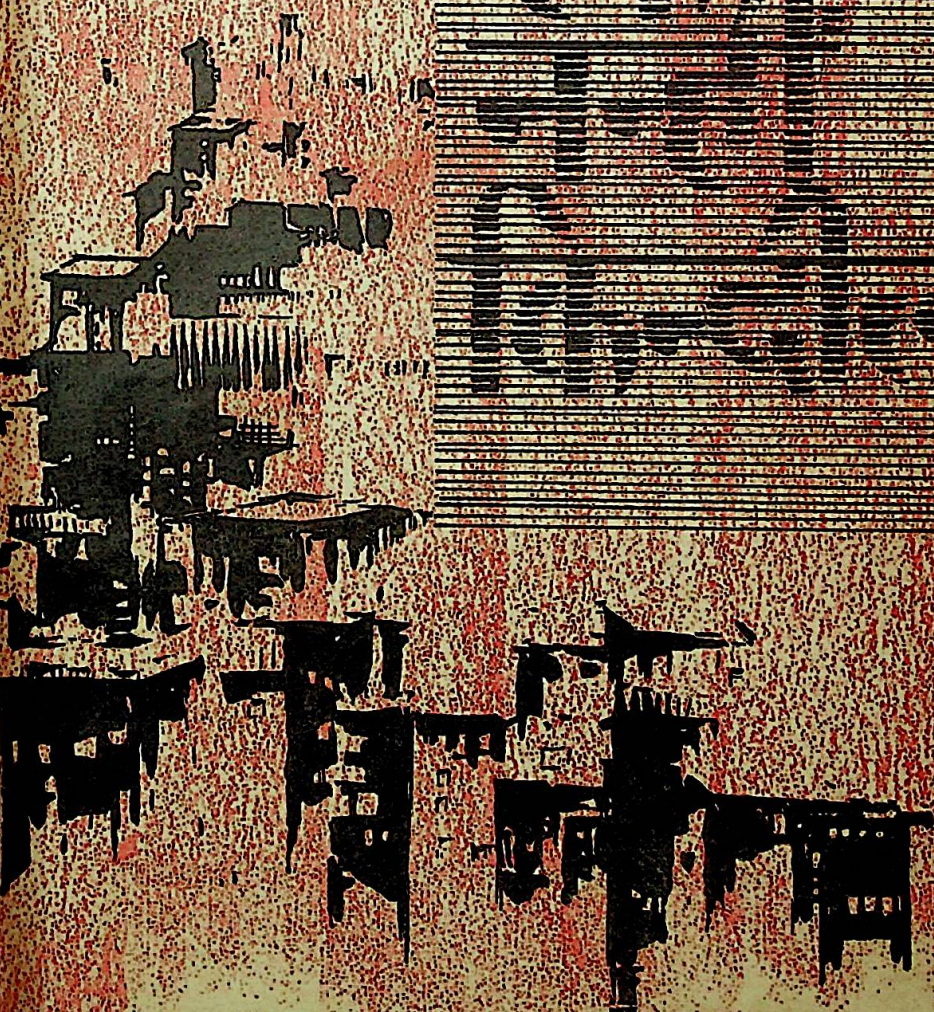
उपेन्द्रनाथ अश्क

Ek Nanhi Kindeel | Novel | Sh. Upendranath Ashk

Price 45-00

आवरण तथा कलापक्ष :
शिवगोविन्द पाण्डेय

प्रथम संस्करण : दिसम्बर १९६९
मूल्य : ४५-००

मुद्रक :
कैक्सटन प्रेस
१-ए/१, बाई का बाग़, इलाहाबाद

प्रकाशक :
नीलाभ प्रकाशन
५, खुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद

शिवदान और उनकी संगिनी विजय
के लिए
जिन्होंने क्रमशः इस उपन्यास के
पहले दो खण्डों की तरफ़ सबसे पहले
पाठकों का ध्यान आकर्षित किया
सस्नेह, साभार

अश्क
के
अन्य उपन्यास

गिरती दीवारें
शहर में घूमता आईना
गर्म राख
एक रात का नरक
पत्थर अलपत्थर
बड़ी बड़ी आँखें
सितारों के खेल

आमुख

'गिरती दीवारें' मैंने पूरे तीस वर्ष पहले अक्तूबर, १९३९ में शुरू किया था और अब अक्तूबर, १९६९ में इसका तीसरा खण्ड 'एक नन्हीं किन्दील' मैं खत्म कर पाया हूँ।

यहाँ तक पहुँचने में मुझे तीन दशकों का लम्बा अर्सा न लगता, यदि 'गिरती दीवारें' खत्म करने के दूसरे वर्ष ही मुझे दिक की तकलीफ़ न हो जाती और १९४८ में इलाहाबाद आने के बाद पुनर्वास के भयंकर संघर्ष का सामना न करना पड़ता।

लेकिन उस बीमारी और संघर्ष के अलावा भी एक बात थी, जो मैं 'गिरती दीवारें' के बाद दस वर्ष तक इसे हाथ नहीं लगा सका। जब मैंने तीस वर्ष पहले उपन्यास की योजना बनायी थी, तो इसमें क्या लिखना है, यह मेरे सामने स्पष्ट था; कैसे लिखना है, यह स्पष्ट नहीं था। और लाख सोचने और सिर पटकने पर भी मैं दूसरे खण्ड (शहर में घूमता आईना) में जो लिखना चाहता था, उसके लिए उपयुक्त पैटर्न नहीं ढूंढ पाया। चूँकि उस जिन्दगी और परिवेश का चेतन के संघर्ष और विकास से गहरा सम्बन्ध है, इसलिए बिना उसे लेखनी-बद्ध किये, मैं आगे नहीं बढ़ सका। एक बार जब उसका पैटर्न मिल गया तो फिर लगातार हर वर्ष मैं इसके थोड़े-बहुत परिच्छेद लिखता आ रहा हूँ।

०

'गिरती दीवारें' पर लिखते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने अपने लेख का शीर्षक

दिया था—'अश्क आधी मंज़िल पर'—तब तो नहीं, पर इस खण्ड को ख़त्म करने के बाद मैं कह सकता हूँ कि मैंने उपन्यास को आधी, कहूँ कि दो-तिहाई मंज़िल पर पहुँचा दिया है। अब मुझे इसके केवल दो खण्ड और लिखने हैं। चौथा—'बाँधो न नाव इस ठाँव'—तो आधा लिखा पड़ा है। दो वर्ष उसे चाहिएँ और पाँचवें और अन्तिम खण्ड के लिए पाँच-सात वर्ष और! यदि उमर ने साथ दिया तो अगले दस वर्ष में मैं अपने इस वृहद उपन्यास को ख़त्म कर ले जाऊँगा।

०

जैसा कि मैं लिखने का आदी हूँ, यह खण्ड कम-से-कम अभी दो वर्ष और ले जाता और मैं इसे मज़े-मज़े लिखता। 'एक नन्हीं किन्दील' मैंने १९६५ में शुरू किया था। चार वर्ष बाद मैंने इसे समाप्त कर दिया है। इसके लेखन-काल के दौरान मैंने एक बड़ा नाटक, तीन कहानियाँ और दो बड़ी आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं।. . .मैं क्यों उपन्यास लिखते-लिखते दूसरी वैसी चीज़ें लिखने लगता हूँ, इसके उत्तर में कोई एक कारण बता सकना मेरे लिए कठिन है। मैं चंचल तबियत का आदमी हूँ और साठ को पहुँच कर भी मेरे स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया। किसी रचना पर बहुत लम्बी बैठक देना मेरे लिए कठिन है। फिर मैं कई बार बीमार हो जाता हूँ और कुछ ऐसी रचना करने लगता हूँ, जो बीमारी के दौरान या उसके बाद सम्भव हो सके। लेकिन सबसे बड़ा कारण यह है कि मैं कभी किसी चीज़ को बरबस नहीं लिखता। जब जैसी तबियत होती है, लिखता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि यदि किसी भी कारण लिखते-लिखते हाथ रुक जाय, दिमाग़ थक जाय, आगे कुछ न सूझे, चीज मन-मुताबिक न बने अथवा वैसी एकाग्रता मयस्सर न हो, जिसकी माँग उपन्यास जैसी लम्बी और गम्भीर रचना करती है, तो उसे कुछ समय के लिए छोड़ देना चाहिए। चूँकि मैं निश्चल नहीं बैठ सकता, इसलिए कोई ऐसी चीज़ लिखने लगता हूँ, जो मन में पक चुकी होती है। उसे लिखने के बाद मेरा थका मन फिर ताज़ा-दम हो कर उपन्यास में लग जाता है। मैंने यह देखा है कि विधा बदल लेने से लिखने का अभ्यास भी बना रहता है; थका हुआ मन

स्वस्थ भी हो जाता है और उपचेतन मन लगातार रुकी हुई रचना पर सोचते रहने से रास्ता भी पा जाता है।

मेरा यह अनुभव है कि लम्बे उपन्यासों के पहले बारह-पन्द्रह परिच्छेद लिखने में मुझे सदैव कठिनाई होती है। १९६७ के शुरू तक मैंने प्रस्तुत उपन्यास के आठ-नौ परिच्छेद लिख लिये थे। तब हाथ रुकने पर, उसे एक तरफ़ कर, मैं बीच ही में 'हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय' लिखने लगा। बड़ी पुस्तक है। खत्म करके मैं सितम्बर-अक्तूबर में दिल्ली चला गया। वहाँ कुछ ऐसी बात हुई कि मैं अजाने नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के निदेशक, इब्राहीम अलकाज़ी के चक्कर में पड़ गया। जब मैं उस चक्कर से निकला और वापस इलाहाबाद आया तो मेरा मन ऐसा खिन्न था कि उसे भुलाने के प्रयास में मुझे वह अपार एकाग्रता मिल गयी, जिससे मैं एक ही वर्ष में उपन्यास खत्म कर ले गया। वह घटना यद्यपि दुखद है, पर दिलचस्प है, इसलिए मैं उसका संक्षेप में उल्लेख करता हूँ :

०

उस वर्ष हमारे मैनेजर ने मुझसे कहा, 'आपके नाटक 'कैद और उड़ान' का नया संस्करण होना है, आप जो परिवर्तन उसमें करना चाहते हैं, कर दें ताकि पुस्तक प्रेस में दी जा सके।'

'कैद' मेरा प्रिय नाटक है और मेरे एक अन्य नाटक, 'उड़ान' के साथ पुस्तक-रूप में छपा है। कुछ वर्ष पहले यह 'प्रयाग रंगमंच' के स्टेज पर हुआ था तो नाटक की प्रस्तुति, सफलता और सम्भावनाएँ देखने पर मुझे लगा कि भाषा में (जो अभी तक अनुवाद की भाषा लगती है) तथा दृश्य-विधान में कुछ परिवर्तन किये जायें तो वह और भी अच्छा बन सकता है। माथुर साहब (श्री जगदीशचन्द्र माथुर) उसे मेरा सबसे अच्छा नाटक मानते हैं। यह पहला आधुनिक हिन्दी नाटक है, जो उहोंने आकाशवाणी के नैशनल प्रोग्राम में लिया और सभी भाषाओं में प्रसारित किया था। मैं दिल्ली गया तो मैंने उनसे इस सन्दर्भ में राय माँगी। उन्होंने मुझे सलाह दी कि मैं अलकाज़ी से परामर्श लूँ। वे प्रतिभाशाली निर्देशक हैं, और एक्सपर्ट राय दे सकते हैं। मैं अलकाज़ी से

कभी मिला नहीं था। माथुर साहब शायद उसी शाम उनसे कहीं मिलने वाले थे। उन्होंने कहा कि मैं अलकाज़ी साहब से इसका ज़िक्र करूँगा।

बहरहाल, कुछ दिन बाद मैं बलराज पण्डित से मिलने नैशनल स्कूल ग्राफ़ ड्रामा गया तो मैंने सोचा कि अलकाज़ी से भी मिलता चलूँ। मैं अभी उनके सचिव के कमरे में बात ही कर रहा था कि गैलरी की दूसरी ओर, अपने कमरे से अलकाज़ी आये। अपना परिचय देते हुए उन्होंने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और बड़े आदर और स्नेह से मुझे अपने कमरे में ले गये। मुझे सुखद आश्चर्य हुआ, क्योंकि मैं कभी उनसे मिला नहीं था। लेकिन कुछ ही वर्ष पहले मुझे संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार मिला था, मैंने सोचा कि उन्होंने उस फ़ंक्शन में मुझे देखा होगा और पहचान लिया होगा।. . .उस दिन उन्होंने बड़ी देर तक नाटक और रंगमंच पर बातें कीं और मुझे साथ ले जा कर नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा का निरीक्षण कराया और अपनी कार्य-पद्धति के बारे में बताते रहे। चलते वक्त मैंने उनसे अपने मन की बात कही। उन्होंने सहमति प्रकट की और मैं बड़ा ख़ुश-ख़ुश लौटा। इलाहाबाद आ कर मैंने उन्हें उर्दू-हिन्दी दोनों पुस्तकें भेज दीं कि यदि हिन्दी पढ़ने में उन्हें कठिनाई हो तो उर्दू वर्शन पढ़ लें और मुझे राय दे दें।

डेढ़-दो महीने बाद दिसम्बर में मुझे फिर दिल्ली जाना पड़ा। मेरा छोटा भाई 'मुक्तधारा' निकाल रहा था और मुझे शुरू के चार अंकों में उसकी सहायता करनी थी। चलने से पहले मैंने अलकाज़ी को अपने दिल्ली पहुँचने की सूचना दे दी और अनुरोध किया कि वे वक्त निकाल कर मेरा नाटक पढ़ रखें।

दिल्ली पहुँच कर मैं पहले की तरह बिना अपॉयण्टमेण्ट लिये चला गया। मुझे वहाँ के नौकरशाही सेट-अप और स्नॉबरी का ज़रा भी गुमान नहीं था। नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा और उसके निदेशक का वही पहला सुखद अनुभव मेरे मन में सुरक्षित था। लेकिन वहाँ पहुँच कर मालूम हुआ कि बिना वक्त लिये, उनसे मिलना मुश्किल है। मुझे याद नहीं, पर दूसरी या तीसरी कोशिश में मैं अलकाज़ी से मिला। मेरी किताबें उनकी मेज़ पर रखी थीं। अलकाज़ी ने कहा

कि उन्होंने 'उड़ान' पढ़ा है। 'कैद' अभी नहीं पढ़ा। वे पढ़ कर बतायेंगे।. . .वे अभिनय-कुशल आदमी हैं, तो भी उनके व्यवहार में मुझे हलकी-सी खीझ और रुखाई लगी। बहरहाल, उस नाटक में मुझे जो दोष लगते थे, (जिनके बारे में मैं उनकी राय जानना चाहता था) उनका ज़िक्र कर मैं चला आया। चलते वक्त उन्होंने मुझे फ़ोन नम्बर दिया और कहा, 'आप बारह से एक के बीच फ़ोन करके टाइम ले लीजिएगा, तभी आइएगा।'

इसके बाद मैं दो-तीन हफ़्ते तक कोशिश करता रहा, पर टाइम नहीं मिला। स्कूल में गया। टाइम नहीं मिला। तब मैंने पत्र लिखा। उत्तर नहीं मिला। इस बीच महीना-सवा महीना बीत गया। मैंने दूसरा पत्र लिखा, तब उनका उत्तर आया कि मैं बुरा न मानूँ, पर वे नाटककारों को राय देने में विश्वास नहीं रखते और यदि मैं चाहूँ तो वे अपने स्कूल में तीन दिन उस नाटक पर डिस्कशन रख सकते हैं। वहाँ स्कूल के छात्र सभी कोणों से उस नाटक पर बहस करेंगे। मुझे झल्लाहट हुई कि यह बात थी तो उन्हें पहले ही हामी न भरनी चाहिए थी। तो भी मैंने लिखा कि यद्यपि मैं उनकी राय चाहता था, पुराना लेखक हूँ, विरोधी आलोचना से नहीं डरता, पर स्कूल में नाटक पर बहस हो तो और भी अच्छा है। मेरा उद्देश्य पूरा हो जायगा। वे बतायें कि कब बहस रखेंगे ?

एक महीना और बीत गया। जब फ़ोन पर कोई सुन-गुन न मिली तो मैं फिर एक दिन स्कूल गया। मालूम हुआ कि वे बर्लिन चले गये हैं। मुझे बहुत बुरा लगा कि एक पंक्ति में सूचित कर जाते। मेरा दिल्ली का काम लगभग खत्म हो गया था और सिर्फ़ यही काम रह गया था। जब उन्हें बर्लिन से आये एक-डेढ़ हफ़्ता हो गया और कोई खबर न मिली तो मैंने उन्हें एक सख्त पत्र लिखा। मेरी पत्नी भी दिल्ली आ गयी थी, उसने कहा कि आप वेकार वक्त बरबाद कर रहे हैं। वापस चलिए। मैं सीट बुक करा रही हूँ।

इसके कुछ ही दिन बाद की बात है, एक शाम मुझे एक मित्र साहित्य अकादेमी के एक नाट्य-सम्बन्धी सेमिनार में पकड़ ले गये, जो अकादेमी के पुरस्कार-विजेताओं के सम्मान में किया जा रहा था और अलकाज़ी जिसका विषय-प्रवर्तन

कर रहे थे। राजधानी के ही नहीं, देश के गण्यमान्य साहित्यकार और बौद्धिक वहाँ मौजूद थे। अलकाज़ी ने अपने प्रवर्तन-भाषण में और अमृतलाल नागर ने उनके समर्थन में कुछ ऐसी बातें कह दीं जो मुझे निहायत ग़लत लगीं। अलकाज़ी ने दूसरी बातों के अलावा यह कहा कि मंच पर नाटककार का योग ज़्यादा महत्व नहीं रखता, वहाँ अभिनेता, निर्देशक, प्रकाश-योजना और सेटिंग का प्रबन्ध करने वाले दसियों कार्यकर्ता महत्व रखते हैं और अमृतलाल नागर ने कहा कि हिन्दी में नाटकों का इसलिए अभाव है कि हमारे दर्शक मुफ़्तल्लू हैं और टिकट ले कर नाटक देखना नहीं जानते।

मैं जब वहाँ गया था तो मेरा बोलने का कोई इरादा नहीं था, पर एक तो अलकाज़ी की स्नॉबरी और नाटककार के लिए उनकी प्रकट उपेक्षा और दूसरे नागर जी की सरासर ग़लत बातें. . .जब मुझसे किसी ने बोलने को कहा तो मैं मंच पर चला गया और जैसे कि लाग-लपेट न रख कर मन की बात कह देने की मेरी आदत है, मैंने अलकाज़ी, उनकी स्नॉबरी, नौकरशाही और उनके विचारों की निहायत कड़ी आलोचना की और अपनी मिसाल देते हुए कहा कि मैं संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार-विजेता हूँ; चालीस वर्षों से नाटक के क्षेत्र में काम कर रहा हूँ; अलकाज़ी साहब से नाटक के सिलसिले में ज़रा-सी राय चाहता था, इसी में ढाई महीने लग गये और उन्होंने वक्त नहीं दिया। जब मेरे जैसे व्यक्ति से वे ऐसा सलूक कर सकते हैं तो आम लेखकों से उनका कैसा व्यवहार होगा ? ऐसे में अच्छे नाटककार कहाँ से आयेंगे ? और अच्छे नाटकों की ग़ैर-मौजूदगी में यह उनका कुशल निर्देशन और साज़-सामान और प्रकाश-योजना क्या करेगी ? जब नाटककारों के लिए उनके मन में उपेक्षा के ऐसे भाव हैं तो वे किनसे नाटक लिखायेंगे और क्या निर्देशन करेंगे ! क्या पश्चिमी नाटककारों के अनुवाद मंच पर खेल कर ही देश के रंगमंच का उत्थान करेंगे ?. . .

नागरजी की बात का विरोध करते हुए मैंने कहा कि मेरे अनुभव उनसे भिन्न हैं। हिन्दी में, न नाटकों का वैसा अभाव है, न हिन्दी-भाषी मुफ़्तल्लू हैं।. . .

मैंने उन्हीं दिनों नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा में चैखव का नाटक 'तीन बहनें' देखा था। निर्देशन बहुत अच्छा था, लेकिन मुश्किल से दो सौ दर्शक होंगे, जिन्हें

निमन्त्रण भेज कर बुलाया गया था—उसका उल्लेख करते हुए मैंने कहा कि पश्चिमी नाटकों का रूपान्तर कराने के बदले, अलकाज़ी हमारी जनता की समस्याओं को छूने वाले नाटक चुनें या लिखवायें; दीवान हॉल जैसी केन्द्रीय जगह में खेलवायें, चाँदनी चौक में टिकट बेचें; दस-बीस-पचास दिन वही नाटक दिखायें तो नाटककार की और उनके निर्देशन की सफलता का पता चले। अब वे सरकार का लाखों रुपया बर्बाद करते हैं और उनके प्रयासों से कुछ ज़्यादा नहीं होने का, क्योंकि वे अपने ही जैसे स्नॉब और नौकरशाह डायरेक्टर और ऐक्टर तैयार करेंगे, जो न अच्छे नाटक लिखवा सकेंगे, न जनता को दिखा सकेंगे। ऊपर के वर्ग से भले ही स्नॉबरी-भरी वाहवाही लूट लें और अखबारों में धुआँधार प्रचार करा लें।...

साहित्य अकादेमी का वह फ़ंक्शन खासा औपचारिक और ठस चल रहा था। मैंने भाषण खत्म किया तो हॉल तालियों से गड़गड़ा गया। प्रकट ही मैं आवेश और क्रोध में बोला था, लेकिन बातें मेरी सच थीं। बहुत से लोग वह सब महसूस करते थे, पर कोई कहता नहीं था। कई लोगों ने आ कर मुझे बधाई दी।

लेकिन अलकाज़ी का रंग एकदम सफ़ेद हो गया। बहस का समापन किये बिना, वे उठे और हॉल से चले गये।

उसी शाम या दूसरे दिन मुझे उनका पत्र मिला कि वे एक दिन बाद ही स्कूल में मेरे नाटक पर डिस्कशन रख रहे हैं और मैं तत्काल स्वीकृति भेजूँ। (यह पत्र शायद उन्होंने मेरे पत्र के उत्तर में लिखा था, लेकिन दो-दिन घर से बाहर रहने के कारण मुझे देर से मिला।) उस प्रसंग के बाद वहाँ जाने की कोई तुक नहीं थी, लेकिन मैं ग़लती कभी अपने सिर नहीं लेता और यूँ भी अलकाज़ी की प्रतिक्रिया देखने को मन था। चूँकि डाक में उत्तर नहीं पहुँच सकता था, इसलिए मैं स्वयं गया। उनके सचिव को चिट्ठी दे रहा था कि अलकाज़ी ने देख लिया। पुछवाया कि क्या मैं उनसे मिलना चाहूँगा। मैंने कहा कि वे चाहेंगे तो मैं मिल लूँगा।

बहरहाल इस बार बिना अपॉयण्टमेण्ट के, उन्होंने बुला लिया और हाथ

मिला कर बैठने के बाद ही अपना सारा पोज़-वोज़ भूल कर वे बमकने लगे। दो घण्टे तक हम दोनों में बड़ी सख्त कहनी-अनकहनी बातें हुईं, जो किसी संस्मरण ही में लिखी जा सकती हैं। तभी मुझे पता चला, वे इस भ्रम में थे कि मैं अपना नाटक उनके निर्देशन में नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के मंच पर करवाना चाहता हूँ और हिन्दी के बहुत से लेखकों की तरह उन्हें परेशान किये हूँ। यद्यपि उन्होंने यह कहा नहीं, पर मैंने जाना कि इसी कारण उनके व्यवहार में परिवर्तन आ गया था। नौकरशाह तबियत के लोगों की यह आम खासियत है (ज़िन्दगी में बार-बार मुझे यह अनुभव हुआ है) कि यदि उनसे कोई काम न हो तो वे बड़े प्रेम, आदर और मिलनसारी से पेश आते हैं। फिर यदि उनसे कोई काम आ पड़े तो उनका सारा व्यवहार बदल जाता है और वे अफ़सर बन जाते हैं। (अलकाज़ी उस दिन जैसे मुझ पर बमके, मुझे लगा कि नहीं, यह आदमी आर्टिस्ट भी है, कोरा नौकरशाह नहीं। उन्होंने कई बार कहा कि मैं ब्यूरोक्रैट नहीं हूँ, लेकिन दूसरे दिन उन्होंने डिस्कशन में जैसे बलराज पण्डित को डाँट दिया, मुझे लगा, नहीं यह आदमी नौकरशाह भी है और डिक्टेटर भी।) बहरहाल मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मुझे केवल उनकी राय चाहिए थी और उन्होंने मुझे ग़लत समझा है, मेरे साथ दुर्व्यवहार किया है। और मेरा इतना वक्त बरबाद किया है। उन्होंने कहा, 'आप इसीलिए तो दिल्ली में नहीं बैठे!' मैंने उन्हें समझाया कि मेरा मुख्य काम यही है। यों मैं दस महीने रह जाऊँ तो दस तरह के काम कर लूँ। लेकिन 'मुक्त धारा' के अलावा मेरे आने की प्रेरणा यही थी कि नाटक आप से डिसकस कर लूँ। सम्भव हो तो यहीं बैठ कर दोबारा लिख लूँ। माथुर साहब भी हैं, आप भी हैं। नाटक बेहतर बन जायेगा। बहरहाल, वे अपनी ग़लती मान गये और मैंने अफ़सोस ज़ाहिर किया कि मुझे भरी-मजलिस में इस तरह उनकी पत नहीं उतारनी चाहिए थी और हमने हाथ मिला लिये।

दो दिन तक उनके छात्र नाटक पर पिले रहे, तीसरे दिन मैंने अपनी बात कही। फिर मैंने उनको नाटक के वे दोष बताये, जिन पर उनकी नज़र नहीं गयी थी, उनके कुछ परामर्श मैंने स्वीकार किये और कहा कि अब, जब मैं नाटक

लिखूँगा तो वह निश्चय ही बेहतर बन जायगा।

जब हम बाहर आये तो अलकाज़ी ने पेशकश की कि यदि मैं वहीं बैठ कर नाटक लिखना चाहूँगा तो वे सभी सुविधाएँ देंगे—मेज़-कुर्सी लगवा देंगे, टाइ-पिस्ट देंगे—और उन्होंने संकेत किया कि वे नाटक को हाथ में भी ले सकेंगे।

सच्ची बात यह है कि मेरे मन में जरा-सा लालच भी हुआ। उस दिन मैं तय नहीं कर पाया। मैंने कहा मेरी सीट बुक्ड है, मेरी पत्नी वापस चलने के लिए ज़ोर देती है, मैं कल बताऊँगा। और मैं चला आया।. . .मुझे दिल्ली में तीन महीने से कुछ दिन ऊपर हो गये थे, एक-डेढ़ महीना तो खैर मैं 'मुक्त धारा' के सिलसिले में रहा, लेकिन शेष समय बिल्कुल उसी मूर्खता में नष्ट हो गया। घर आ कर मैंने सोचा तो लगा कि अलकाज़ी की बात मान कर वहीं नाटक लिखूँगा तो मुझे दो महीने और रहना पड़ेगा। दिसम्बर ही में वह सब हो जाता तो वहीं बैठ कर नाटक लिख डालता। फिर जैसा कि मैंने अलकाज़ी को जान लिया था, मुझे लगा कि कई तरह से अपमानित होना पड़ेगा। उन जैसे स्नॉब और नौकरशाह के साथ राकेश और डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल की तो पट सकती है, पर मेरे जैसे हस्सास और भावप्रवण की नहीं पट सकती। सो मैं दूसरे दिन नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा गया। अलकाज़ी से मिला। बड़ी विनम्रता से इनकार करके और ड्रामा डिसकस करने के लिए उन्हें धन्यवाद दे कर चला आया। सीट तो बुक थी ही। उसी शाम या दूसरे दिन, इलाहाबाद की गाड़ी पकड़, वापस आ गया।

०

यह सारा प्रसंग इतना दुखद है और उस तीन महीने में मैंने संगीत नाटक अकादेमी, नैशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा, वहाँ पनपने वाले भयंकर हिन्दी-विरोध, वहाँ होने वाले देशी और विदेशी नाटकों के अनुवादों और दूसरी दसियों बातों के सिलसिले में इतना कुछ जाना कि वह सब बहुत लम्बे संस्मरण की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ में इतना ही कि जब मैं इलाहाबाद पहुँचा तो 'कैद और उड़ान' को छूने का भी मेरा मन नहीं हुआ। अपने मैनेजर से मैंने कहा कि नाटक को वैसे ही छाप लें। अगले संस्करण में मैं संशोधन करूँगा। नाटक

की फ़ाइल पर विस्तार से नोट लिखे और उसे रैक के हवाले कर दिया। मन ऐसा खिन्न और विक्षुब्ध था और बार-बार अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था कि मैं क्यों उस चक्कर में इतना कीमती समय बरबाद कर आया। मन की उस स्थिति में किसी तरह का रचनात्मक काम करना कठिन था। तब मूड को बदलने के लिए मैंने 'नयी कहानियाँ' में लेखकों की समस्याओं पर लिखे अपने लेख निकाले और अपनी पुस्तक 'कुछ. . .दूसरों के लिए!' लिखने में संलग्न हो गया। उसे लिखने के दौरान मेरी खिन्नता दूर हो गयी और उसे खत्म कर, मैं उपन्यास पर जुट गया।

०

इस बार न मेरा मन भटका, न दिमाग़ थका, न मेरी कलम रुकी। कुछ अजीब और अप्रत्याशित एकाग्रता मुझे मिल गयी। '६८ में मैं इसे बीस परिच्छेदों तक ले गया। फिर दो-तीन महीने का व्यवधान हुआ। उसके बाद ५ अप्रैल से मैं इस पर बैठा हूँ तो आठ-दस घण्टे रोज़ की औसत से काम करता चला आ रहा हूँ। छै महीने तक तो स्वास्थ्य ने साथ दिया। मौसम बदलते ही मेरी तबियत खराब हो गयी। ये पंक्तियाँ मैं खासी अशक्ति में लिख रहा हूँ।

थकन और अशक्ति के इस आलम में जैसा संशोधन-परिवर्धन मैं उपन्यास में करना चाहता था, कर नहीं पाया। यूँ अपने स्वभाव के मुताबिक मैंने इसे दो-तीन बार देखा है, लेकिन मैं जानता हूँ, इसमें छोटी-मोटी त्रुटियाँ रह गयी होंगी। मेरी पाठकों ने मेरी त्रुटियों की ओर हमेशा ध्यान दिलाया है और आशा करता हूँ कि अब भी वे मुझे इस सन्दर्भ में सहयोग देंगे ताकि जब उपन्यास के आगामी दोनों खण्ड लिखे जायँ तो शुरू से ले कर अन्त तक इसे फिर से सुधारते हुए, मैं उनके सुझावों से लाभ उठा सकूँ।

जहाँ तक प्रस्तुत खण्ड का सम्बन्ध है, यह 'गिरती दीवारें' और 'शहर में घूमता आईना' से अविच्छेद रूप से जुड़ा हुआ है, लेकिन मैंने इस तरह इसे लिखा है, कि यदि किसी पाठक ने इसके पहले दोनों भाग न पढ़े हों, तो भी इसके रसास्वादन में बाधा न पड़े।

२२/११/१९६९

उपेन्द्रनाथ अश्क

एक नन्हीं किन्दील

इनमें हर शख्स के सीने के किसी गोशे में
एक दुल्हन-सी बनी बैठी है
टिमटिमाती हुई नन्हीं-सी खुदी की किन्दील ।।

—राशिद

पहला खण्ड

एक

शिमले में कविराज रामदास के चतुराई-भरे शोषण का शिकार हो कर और बस्ती ग़ज़ाँ में अपनी सुन्दर और प्यारी साली नीला को, सुदूर रंगून के एक अधेड़ और विधुर मिलिट्री एकाउण्टेण्ट की जीवन-संगिनी के रूप में विदा कर, मन में दसियों घाव लिये चेतन कल्लोवानी मुहल्ला, जालन्धर में अपने घर आ गया था। तब उसने सोचा था कि वह कुछ दिन के लिए एकदम आराम करे। कच्चे घावों को भर जाने दे और तन-मन से स्वस्थ हो कर ही लाहौर जाय।

लेकिन माँ और पत्नी के तमाम स्नेह के बावजूद जालन्धर में उसका मन नहीं लगा। वह शहर में भटकता रहा। उसके मन की वीरानी बढ़ती रही। आखिर एक दिन तंग आ कर उसने टिकट कटाया और लाहौर आ गया।

०

हिन्दुस्तान की गर्मी से बचने के लिए अंग्रेज़ों ने बड़े-बड़े शहरों के स्टेशन—विशेषकर जहाँ सेना की छावनियाँ थीं—

ऊँची मेहराबदार छतों से ढँक दिये थे। जालन्धर छावनी का हो या लाहौर का, गाड़ी जब बाहर की चुभती धूप से छते हुए ठण्डे स्टेशन के अन्दर जाती और ठण्डी हवा के झोंके आते तो चेतन को बहुत अच्छा लगता। लेकिन बरसात के दिन, तेज़ धूप, लाहौर के प्लेटफ़ार्म पर वेहद भीड़ और उमस, हवा का ज़रा भी स्पर्श नहीं था और जी घुट रहा था। चेतन जल्दी-जल्दी स्टेशन से बाहर निकला। ताँगे वालों की छीना-झपटी और मोल-भाव के बाद जब उसने एक ऊँचे पेशावरी ताँगे में सामान रखवा दिया और दूसरे क्षण ताँगा हवा से बातें करने लगा तो चेतन ने राहत की लम्बी साँस ली।

उसने ताँगे वाले से चंगड़ मुहल्ला जाने की बात कही थी। क्षण भर बाद उसने इतना और जोड़ दिया—चंगड़ मुहल्ले में डाकखाने की बराबर की गली में जायेंगे; सरदार जगदीश सिंह, लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर के मकान पर।

(सरदार जगदीश सिंह के नाम के साथ लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर जोड़ना कोई ज़रूरी नहीं था और उस अफ़रा-तफ़री में भी मन-ही-मन उसे इस बात पर हँसी आ गयी थी, पर ताँगे वाले पर रोब पड़ जायगा, इस खयाल से उनके नाम के साथ उसने उनकी प्रिय उपाधियाँ भी लगा दी थीं।)

जब ताँगा मोहनलाल रोड से होता हुआ पैसा अखबार स्ट्रीट पार कर डाकखाने के बराबर वाली गली में मुड़ा तो मुन्शी गिरजाशंकर उसे पीपल वेहड़ा से गली की सीढ़ियाँ उतरते दिखायी दिये। चेतन ने ताँगे में बैठे-बैठे उन्हें नमस्कार किया। इससे पहले कि अपनी दरियाई घोड़े की-सी मूछों में प्रस्फुटित होती पान की लाली-भरी मुस्कान से मुन्शी जी उसके 'नमस्कार' का उत्तर देते, चेतन ने ताँगे वाले को आदेश दिया कि वह तन्दूर के पास बड़े दरवाज़े के आगे रुक जाय।

ताँगा रुक गया तो ताँगे वाले के सिर पर ही सामान लदवा कर, अटैची हाथ में लिये, चेतन खट-खट सीढ़ियाँ [illegible] ऊपर पहुँचा।

सामने बरामदे में ढेर से नंग-धड़ंग सिक्ख बच्चे खेल रहे थे। 'हेय्य ! यहाँ क्या शोर मचा रहे हो ! भागो नीचे।' उन्हें धमकाते हुए उसने कदम बढ़ा कर ज़ोर से आवाज़ दी—'भाभी !'

बच्चे (चेतन ने समझा था कि पड़ोसियों के हैं और ऊपर खेलने चले आये हैं) सहम गये, लेकिन नीचे की ओर नहीं भागे। तभी रसोई-घर से भाभी के बदले केवल कच्छा पहने नंगे बदन धुले हुए लम्बे काले, और बेहद रूखे केश नाभि तक फैलाये, एक सरदार साहब नमूदार हुए। आँखें तरेर कर उन्होंने उसकी ओर ऐसे देखा कि वह एक कदम पीछे हट कर सीढ़ियों की चौखट में आ गया।

'भाई साहब. . .मेरा मतलब है डॉक्टर रामानन्द. . .।'

'केह्ड़ा डॉक्टर रामानन्द !' उसकी बात काट कर सरदार साहब ने कुछ ऐसे टेढ़े, ठेठ पंजाबी लहजे में प्रश्न किया कि चेतन क्षण भर को मुटुर-मुटुर उनकी ओर ताकता रह गया। फिर उनके कंघी, फ़िक्सो, डोरी और ठाठे की कैद से एकदम आज़ाद बालों में दृष्टि जमाये (क्योंकि उनके चेहरे पर सिवा बालों के और कुछ दिखायी न देता था) उसने बताया कि वह अपने भाई के साथ अभी तीन महीने पहले यहीं रहता था। वह शिमला चला गया था। वहाँ प्रसिद्ध वैद्य कविराज रामदास के लिए उसे एक पुस्तक लिखनी थी. . .

लेकिन प्रकट ही सरदार साहब को उस पुस्तक से किसी तरह की दिलचस्पी नहीं थी, 'जी तुसीं जाके मकान-मालिक तो पुच्छो !' उसकी बात पूरी सुने बिना उन्होंने कहा, 'असाँ एत्थे किसे नूँ नइं पछाणदे ! दस दिन पहलाँ ही आये हाँ !'

और वे पहले सीने के घने बालों में, फिर बायीं पसली के नीचे खुजलाते हुए अन्दर चले गये।

चेतन ने ताँगे वाले से कहा, 'भई कुछ घपला हो गया है। तुम सामान ले जा कर ताँगे में रखो। हमें शायद पुरानी अनारकली जाना पड़े।'

'चार आने होर देने पैणगे तुहाणूँ ।'

'हाँ, हाँ, तुम सामान ले जा कर रखो !'

और पलट कर वह उसके आगे तेज़-तेज़ सीढ़ियाँ उतरा । नीचे पहुँच कर पीछे को मुड़, उसने ताँगे वाले से कहा, 'मैं ज़रा मकान-मालिक से पता कर आऊँ । मिनट भर में आता हूँ ।'. . .और निचले बरामदे में से होता हुआ वह सरदार जगदीश सिंह वाले पोर्शन की सीढ़ियाँ चढ़ गया । सरदार साहब, उनकी बीवी या बच्चा—कोई भी घर पर नहीं था । नौकर ने बताया कि चेतन के शिमला जाने के दस-पन्द्रह दिन बाद ही उसके भाई मकान खाली कर गये थे ।

'दस-पन्द्रह दिन बाद ही !' चेतन ने हैरत से नौकर की बात ही दुहरा दी । लेकिन दूसरे क्षण उसे अपने शिमला-प्रवास के पहले पखवाड़े की एक बात याद आ गयी और बिना नौकर से कुछ और पूछे, पलट कर, वह जैसे ऊपर चढ़ा था, वैसे ही धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियाँ उतर गया । बाहर आ कर ताँगे में बैठ गया और ताँगे वाले को चलने का आदेश देते हुए उसने कहा :

'पुरानी अनारकली, बाइबल सोसाइटी के सामने !'

दो

पैसा अख़बार स्ट्रीट से जब ताँगा लॉ कॉलेज की ओर चला तो सहसा अपना वह चिर-परिचित इलाका छोड़ते हुए चेतन का मन उदास हो आया। पीपल वेहड़ा में लाला दीवानचन्द हलवाई की वे सीली-अँधेरी कोठरियाँ; वे उपलों से अटी दीवारें, वे बदबूदार नालियाँ, चंगड़ानियों की वे कुफ़तोड़ गालियाँ; वह धूल और गर्द-ग़ुबार-भरी स्ट्रीट; उसमें रहने वाले वे ग़रीब लोग—वह सारे-का-सारा माहौल, जिसके बीच उसने दो वर्ष बिताये थे, उसे हठात प्रिय हो आया. . . सरदार जगदीश सिंह (लैण्ड लॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) के मकान का वह हवादार कमरा. . .चेतन को विश्वास नहीं था कि उसे फिर ऐसा साफ़ और सुन्दर कमरा रहने को मिल सकेगा. . .

भाई साहब मकान क्यों छोड़ गये, इसका कुछ-कुछ आभास उसे था। उनके सामने सबसे बड़ी मुसीबत दुकान के किराये की थी। बत्तीस रुपये दुकान का किराया उन्हें देना पड़ता था। प्रैक्टिस से आते दो-दो, चार-चार थे (जो खर्च हो जाते थे) और किराये की रकम इकट्ठी देनी पड़ती।

शिमला जाने से पहले चेतन यह करता था कि वेतन मिलते ही, चालीस में से बत्तीस रुपये दुकान के किराये के खाते, भाई साहब को दे देता। खाने-पीने और घर के किराये की व्यवस्था भाई साहब के सिर थी और रोते-झींखते वे अपनी ज़िम्मेदारी निभाये जाते थे। बीच में दो-एक बार घपला हुआ था तो चेतन ने अतिरिक्त काम कर के व्यवस्था कर दी थी।. . .उसके शिमला चले जाने के बाद भाई साहब कठिनाई में पड़ गये थे। शिमला पहुँचे अभी उसे चार-पाँच ही दिन हुए थे कि चेतन को भाई साहब का पत्र मिला—'दुकान का किराया देना है, रुपये भिजवाओ।'—चेतन कविराजजी के पास गया था कि वे कृपा कर उसके वेतन से उसे चालीस रुपये पेशगी दे दें. . .

कविराजजी ने पूछा था कि वह इतने रुपये क्या करेगा। तब उसने बताया था कि उसके भाई का पत्र आया है, उन्हें रुपये भेजने हैं। मन में उसने सोचा था कि बत्तीस रुपये भाई साहब को भेज देगा और शेष अपने लिए रख लेगा।. . .कविराज कुछ सोच में पड़ गये थे तो उसने उन्हें बताया था कि किस प्रकार उसके ये बड़े भाई कुछ वर्ष पहले ताश-शतरंज और चौपड़ में वक्त बरबाद करते थे; कैसे उन्होंने शतरंज के पीछे अपनी लॉण्ड्री चौपट कर दी, कैसे घर में कलह रहने लगी, कैसे उसने एक डेण्टिस्ट मित्र से कह कर उन्हें दन्दानसाज़ी की शिक्षा दिलायी और कैसे अब वह डेढ़-एक वर्ष से उन्हें लाहौर में जमाने का प्रयास कर रहा था।. . .सब कुछ उसने सविस्तार बताया था और कहा था, 'एकाध वर्ष का संघर्ष और है वैद्यजी; सामान अब उनकी दुकान में पूरा हो गया है; अन्दर पार्टीशन और बाहर बड़ा जहाज़ी बोर्ड लग गया है; कुछ ही महीने और मदद की ज़रूरत होगी, फिर वे अपने पैरों पर खड़े हो जायेंगे. . .'

तब कविराज जी ने पूछा था : 'तुम सचमुच चाहते हो कि तुम्हारे भाई अपने पैरों पर खड़े हो जायें ?'

चेतन चुप उनकी ओर ताकता रह गया था।

'देखो अज़ीज़, यदि तुम ऐसा चाहते हो तो उन्हें लिख दो कि भाई साहब, मैं अब आपकी कोई मदद नहीं कर सकता।'

'लेकिन वैद्यजी. . .'

'लेकिन वैद्य जी कुछ नहीं।' कविराजजी ने ऐसे स्नेह-भरे स्वर में कहा था, जिसके नीचे कहीं गहरी चिड़चिड़ाहट छिपी थी, 'जब तक तुम चम्मच से उन्हें दूध पिलाते रहोगे, वो ख़ुद हाथ हिलाना नहीं जानेंगे। तुम चालीस रुपये उन्हें भेज दोगे. . .'

'जी मैं बत्तीस भेजूंगा और आठ. . .'

'बत्तीस उन्हें भेज दोगे,' कविराजजी ने बिना रुके कहा था, 'सिर्फ़ पचास रुपया तुम्हारा वेतन है, बाकी अठारह में से तुम होटल वाले को क्या दोगे और दूसरे खर्च कहाँ से करोगे ?. . .'

क्षण भर को वे उसकी प्रतिक्रिया जानने को रुके थे। जब वह कुछ नहीं बोला और पूर्ववत, मुटर-मुटर उनकी ओर ताकता रहा तो उन्होंने फिर कहना शुरू किया था :

'वैद्यजी का कुछ नहीं जाता। वैद्यजी तुम्हें चालीस रुपये अभी दे देंगे, लेकिन मेरे अज़ीज़, तुम अपना तन-पेट काट कर अपने भाई की सहायता करोगे—इस उद्देश्य से कि वो लाहौर में जम जायें, जबकि असर इसका बिल्कुल उलटा होगा। ज़िन्दगी में कभी अपने प्रिय जनों को कड़वी गोलियाँ भी खिलानी पड़ती हैं। अपने भाई को लिख दो कि शिमला जैसी मँहगी जगह में मेरा अपना खर्च ही पचास में जाने कैसे चलेगा, मैं आपको कैसे भेजूं !. . .या यह लिख दो कि अभी तो मैं यहाँ आया हूँ, अभी तो मैंने काम भी शुरू नहीं किया, मैं आपको रुपये कैसे भेज सकता हूँ. . .'

क्षणांश को चुप रह कर उन्होंने फिर कहा था :

'नहीं, यह मत लिखो। यही लिख दो कि पचास रुपये तो शिमला-ऐसी मँहगी जगह में मेरे लिए ही कम हैं। मैं आपकी मदद नहीं कर

सकता. . .और तुम देख लेना कि तुम्हारे भाई साहब कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेंगे और फिर तुम्हें तंग नहीं करेंगे।'

जब इस पर भी चेतन वैसे ही मुटर-मुटर उनकी ओर ताकता रहा था तो उन्होंने कहा था :

'तुम्हें लिखने में संकोच होता है ! लाओ, अपने भाई का पता दो, मैं उन्हें पत्र लिख दूँगा। हो सकता है, अभी उन्हें कुछ बुरा लगे, पर आखिर को देखोगे कि इस कड़वी गोली से उन्हें लाभ ही हुआ है।'

प्रकट ही चालीस रुपये देने की बात कह कर कविराज पलट गये गये थे, पर उनके मुँह से सच्ची बात निकल गयी थी और चेतन समझ गया था कि अभी उसने काम शुरू नहीं किया और वे उसे इतने रुपये नहीं देना चाहते। कोई चारा न देख कर उसने अपने भाई का पत्र और पता उन्हें दे दिया था।

वापसी डाक भाई साहब का (जो पत्रोत्तर देने में निहायत सुस्त थे) एक क्रोध-भरा उत्तर चेतन को मिला था। न जाने कविराजजी ने क्या लिख दिया था कि भाई साहब ने सख्त बुरा माना था। उनका खयाल था कि उसे रुपये देने से इन्कार करना था तो पत्र स्वयं लिखना चाहिए था। उसने कविराज द्वारा पत्र लिखवा कर उन्हें क्यों अपमानित किया। उन्होंने रुपये उससे माँगे थे, कविराज से नहीं. . .आदि. . . आदि. . .अन्त में उन्होंने लिखा था कि वह चिन्ता न करे, उनका भी भगवान है और उनका काम किसी-न-किसी तरह चल ही जायगा।

भाई साहब का पत्र पढ़ कर चेतन को बहुत दुख हुआ था. . . हमेशा उन्होंने जो चाहा, उसने कर दिया—बिना-कहे कर दिया—बिना-माँगे कर दिया। एक बार वह नहीं कर सका और उन्होंने वह सब लिख मारा. . . कविराजजी रुपये देते तभी तो वह भेजता। जब टाल गये तो वह क्या करता ? उसने भाई साहब का पत्र फिर पढ़ा था। उसे फिर क्रोध आया था। दोपहर के बाद जब खाना खाने और थोड़ा आराम करने के बाद कविराज दवाखाने आये थे तो उसने कहा था :

'भाई साहब का पत्र आया है। वे बहुत नाराज़ हैं।'—और उसने पत्र उनके सामने रख दिया था।

पत्र को एक नज़र पढ़ कर कविराज मूँछों में मुस्कराये थे।

'तुम्हें अज़ीज़, इसका बुरा लगा है।— मैं न कहता था कि तुम्हारे भाई साहब तुम्हारी मदद के बिना भी काम चला लेंगे। यही तो उन्होंने लिखा है। तुम और क्या चाहते हो! तुम्हारा ख़याल था कि तुम रुपया न भेजोगे तो उनकी दुकान बन्द हो जायगी। विश्वास रखो, कहीं कुछ नहीं होगा। वो अपने दिमाग़ से सोचेंगे, अपने पाँव पर खड़ा होना सीखेंगे और तुम देख लेना, वो कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेंगे।'

चेतन चुप उनकी बातें सुनता रहा था।

'तुम्हें शायद इस बात का बुरा लगा है,' सहसा कविराजजी ने कहा, 'कि वो अब तुम्हारी मदद के बिना भी दुकान चला लेंगे। यही न?'

'जी यह बात नहीं, भाई साहब के क्रोध को देख कर. . .'

'तुम्हें यह लगता है कि वो कृतघ्न हैं,' कविराजजी ने अपने जाने जैसे उसके मुँह की बात छीन कर कहा था, 'कि तुम्हारे एहसानों का कुछ भी खयाल न कर उन्होंने ऐसा पत्र लिख दिया है।. . .देखो अज़ीज़! कृतज्ञता आम आदमी का गुण नहीं है, वह तो सुसंस्कृत व्यक्ति की विशेषता है। आम लोग निहायत कृतघ्न होते हैं। तुम यदि लगातार किसी की सहायता करो तो वह यह नहीं सोचेगा कि तुम उस पर कोई एहसान कर रहे हो, बल्कि वह तुम्हारे इस सद्व्यवहार के पीछे कोई प्रयोजन ढूँढ़ निकालेगा।—वह सोच लेगा कि उसकी मदद करके तुम्हें सुख मिलता है, तुम्हारे अहं की तुष्टि होती है और यों वह अपनी मदद करने का अवसर प्रदान कर, उलटा तुम्हीं पर एहसान कर रहा है. . . अथवा यह कि तुम नितान्त मूर्ख हो और वह परम चतुर होने के नाते तुम्हें बेवकूफ़ बना रहा है, कि मूर्खों को मूर्ख बनाना चतुर लोगों का जन्म-सिद्ध अधिकार है!. . .या फिर यह कि उसमें अतुल प्रतिभा है

और उसकी सहायता करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है।—तुम उसे सहायता न दोगे तो वह बुरा मान जायगा और तुम्हारे सारे पिछले एहसान भूल कर तुम्हें गालियाँ देने लगेगा. . .सो मेरे अज़ीज़, अपने भाई के इस क्रोध की तुम चिन्ता न करो. . .'

'जी नहीं, यह बात नहीं,' उनके उपदेश को परम धैर्य से सुन कर चेतन ने कहा था, 'मैं यह कहने जा रहा था कि यदि आप मुझे कुछ रुपये दे देते तो मैं उन्हें भेज देता, बत्तीस न सही, बीस ही सही!'

'यानी तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा बड़ा भाई कभी तुम्हारी मदद से बेनियाज़ हो सके! देखो अज़ीज़, तुम्हें मेरी बात अच्छी तो नहीं लगेगी, लेकिन इतना याद रखो कि अच्छा मददगार वह नहीं होता, जो ज़िन्दगी भर किसी की मदद करता रहे, बल्कि वह होता है, जो यह देखता रहे कि मदद लेने वाला अपने पाँवों पर खड़ा हो गया या नहीं। और जब यह देख ले कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो गया है तो उसे चलने दे। तुम क्या इसे ठीक नहीं समझते?'

चेतन चुप खड़ा रहा था।

'मेरी राय लो तो इस पत्र का उत्तर मत दो और उन्होंने भाई साहब का पत्र चेतन की ओर बढ़ा दिया और बिना उसकी ओर देखे अपना काम करने लगे।

चेतन बाहर आ कर अपनी मेज़ पर बैठ गया था। उसने भाई साहब का पत्र एक ओर रख दिया था और कविराजजी की पुस्तक के लिए पंजाब पब्लिक-लाइब्रेरी से लायी हुई पुस्तकों में से एक पुस्तक उठा कर पढ़ने लगा था। लेकिन काम में उसका मन नहीं लगा। उसने फिर भाई साहब का पत्र निकाला, पढ़ा और काग़ज़ उठा कर उनको एक पत्र लिखा :

'आपका पत्र मिला। यह जान कर खुशी हुई कि आपका भी भगवान है और वह आपकी सहायता करेगा। मैंने तो कभी अपने को आपका भगवान नहीं माना। मैं तो आपका छोटा भाई हूँ। जो मुझसे हो सकता

है, सदा करता हूँ। अभी दस दिन पहले यहाँ आया हूँ। कविराजजी से मैंने रुपये माँगे थे, वे मेरी बात झूठ न समझें, इसलिए आपका पत्र भी उन्हें दिखा दिया था। उन्होंने रुपये तो दिये नहीं, आपको पत्र लिख दिया। अब इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे पास तो लाहौर वापस आने तक के लिए रुपये नहीं हैं। जब तक इनका कुछ काम न करूँगा, ये पैसे नहीं देंगे। अभी तो मैं काम शुरू भी नहीं कर सका। दुकान पर ही उन्होंने काम करने के लिए कहा है और यहाँ मूड ही नहीं बन पाता. . .।'

और यह पत्र उसने डाक में डाल दिया था। उसका खयाल था कि महीने बाद भाई साहब का पत्र आयगा और वे रुपये मँगायेंगे, पर फिर उन्होंने पत्र नहीं लिखा।. . .उसे लगा था कि शायद कविराजजी की ही बात ठीक है, उसे भाई साहब को स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए छोड़ देना चाहिए!

०

सरदार जगदीश सिंह के नौकर की बात सुन कर चेतन को लगा था कि भाई साहब ने उसका पत्र पा कर सबसे पहला यही कदम उठाया होगा कि मकान छोड़ दें और दस रुपये महीना बचा लें। वास्तव में यही एक नहीं, इस सन्दर्भ में चन्द और भी महत्वपूर्ण कदम उन्होंने उठाये थे :

● पहला तो यह कि चेतन की भाभी को उसकी बुआ के पास भेज दिया। (चेतन की पत्नी उसके शिमला जाने से कहीं पहले माँ के साथ जालन्धर जा चुकी थी।)

● दूसरा यह कि बराबर के पड़ोसी डॉक्टर (जो थे तो केमिस्ट, पर अपने नाम के साथ डॉक्टर लिखते थे) के परामर्शानुसार लाहौर के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी दैनिक 'ट्रिब्यून' में ऐसे शागिर्द की ज़रूरत का विज्ञापन दिया, जो उचित फ़ीस दे कर दाँतों का काम सीखे। उसे प्रैक्टिकल शिक्षा का समुचित सुयोग मिलेगा, इस बात का उल्लेख विज्ञापन में विशेष रूप से था। (वास्तविक उद्देश्य ऐसा सहायक पाना था, जो पैसे भी दे और काम सीख कर उनका हाथ भी बटाये।)

● तीसरा यह कि एक चारपाई दुकान के अन्दर परछत्ती पर चढ़ा दी और एक अपने लिए रख ली। बाकी बेच दीं। कुछ सामान परछत्ती पर रख दिया और कुछ अपने एक मित्र के यहाँ डम्प कर दिया, जो अनारकली की एक गली में एक कमरा ले कर रहता था। वहीं भाई साहब ने रात को सोने की व्यवस्था भी कर ली।

चेतन का ताँगा जब भाई साहब की दुकान पर पहुँचा तो वे दुकान के बाहर तख्ते पर खड़े बराबर के डॉक्टर (केमिस्ट) से बातचीत कर रहे थे। चेतन ने ताँगे ही में बैठे उन्हें 'नमस्कार' किया और वहीं से चिल्लाने लगा कि उन्हें मकान छोड़ना था तो उसे सूचित तो कर दिया होता, वह बेकार ही ताँगा ले कर चंगड़ मुहल्ले की धूल फाँकता फिरा।

भाई साहब ने उसकी चिल्लाहट का कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन केमिस्ट ने अपना चौड़ा जबड़ा हँसी में फैला कर दाँत चियारते हुए कहा, 'अरे भाई ताँगे से उतरो, सामान रखवाओ, फिर गुस्से हो लेना।'

चेतन ने जैसे उनकी बात नहीं सुनी। वहीं बैठे-बैठे उसने पूछा कि उन्होंने मकान कहाँ लिया है।

भाई साहब ने इसका भी कोई जवाब नहीं दिया। जवाब कुछ था भी नहीं। उन्हें यदि मकान ही लेना होता तो वे इतना अच्छा और सस्ता घर ही क्यों छोड़ते!

चेतन क्षण भर उत्तर की प्रतीक्षा में वहीं बैठा रहा, फिर उचक कर उतरते हुए उसने पूछा, 'यह सामान कहाँ जायगा?'

तब भाई साहब ने जैसे दुकान के तख्ते ही को जवाब देते हुए धीरे से कहा, 'अभी यहीं उतरवा लो, गुप्ता आता है तो कोई प्रबन्ध करते हैं। मेरे पास मकान-वकान अभी कोई नहीं!'

यह गुप्ता कौन है?—चेतन पूछना चाहता था, पर उसने कुछ नहीं कहा। ताँगे से सामान उतरवा कर दुकान के तख्ते पर रखवाने लगा। तभी पुरानी अनारकली की ओर से सफ़ेद कमीज़-पतलून पहने, साँवले रंग का एक युवक आता दिखायी दिया—चौड़ा, आयताकार चेहरा, मोटे

होंट और सिर के बाल टॉमियों के बालों-ऐसे कैंची से बहुत छोटे कटे हुए। न जाने क्यों अपने साफ़-सुथरे लिबास के बावजूद वह चेतन को कुछ सनकी-सा लगा।

भाई साहब उसे देखते ही दुकान के नीचे उतर गये और उसकी ओर बढ़ते हुए बोले, 'चेतन आ गया है गुप्ता, जब तक हम नया मकान नहीं लेते, उसके सोने की समस्या है।'

गुप्ता वहीं-का-वहीं खड़ा सोचने की मुद्रा बनाये शून्य में तकता रहा।

चेतन को वह ख़ासा उजबक लगा। लेकिन उस मुद्रा की मूर्खता के बावजूद उसके पहरावे तथा आचरण में कुछ ऐसा आभिजात्य था कि चेतन चुप रहा।

तब डॉक्टर साहब ने गुप्ता का परिचय चेतन को दिया कि अमुक बड़े इंजीनियर का बेटा है, उनका शागिर्द है—उनसे दन्दानसाज़ी की शिक्षा लेने आया है।

तब जैसे गुप्ता की ज़बान खुली, 'मैंने तो डॉक्टर साहब से मकान देखने को कहा था, पर ये कहने लगे—हमारा देखा मकान चेतन को पसन्द आये न आये। वह स्वयं आ कर देखेगा।'

और जैसे यह कोई मज़ाक की बात हो, वह 'हिं-हिं' कर हँस दिया।

चेतन की भृकुटी तन गयी, 'आप कहाँ रहते हैं?' उसने 'आप' शब्द पर ज़ोर देते हुए भाई साहब से पूछा।

उत्तर गुप्ता ने दिया :

'यहीं अनारकली में एक कमरा है, वहीं रात को सोते हैं।'

भाई साहब घबराहट में झटके से दोनों हाथ आगे बढ़ाते हुए बोले, 'मेरा कमरा नहीं है, एक मित्र का है, वहीं मैं रात को जा सोता हूँ।'

ताँगे वाले ने सामान उतार कर रख दिया था, सहसा उसने कहा, 'साब मेरे पैसे चुका दीजिए मुझे जल्दी है।'

चेतन बेतरह खिजला गया था। उसने ताँगे वाले को पैसे दिये और अपने भाई से बोला, 'आप मुझे वह कमरा दिखाइए, जहाँ आप सोते हैं।'

भाई साहब ने ज़रा भी विरोध नहीं किया, 'आओ !' उन्होंने कहा और पलट कर अनारकली की ओर बढ़ चले। जाते-जाते बिना रुके उन्होंने गुप्ता से केवल इतना कहा, 'मैं इसे कमरा दिखा कर अभी आया गुप्ता साहब !'

०

वह कमरा, जिसमें भाई साहब अपने एक मित्र के साथ रहते थे (या कहा जाय कि रात बसर करते थे) अनारकली में जानकीनाथ आयरन मर्चेण्ट्स की दुकान के बराबर की गली में था। गली में खुलने वाले बारजे से वहाँ कुछ प्रकाश आता था। शेष तीनों ओर उसमें कोई, खिड़की तो दूर, झरोखा तक न था। बारजा गली की ओर खुलता था और उसमें दो खुर्री चारपाइयाँ बिछी थीं। उनके बिस्तर गोल किये हुए कमरे के एक कोने में फ़र्श पर ढेर पड़े थे। कमरे में हफ़्तों से किसी ने झाड़ू न दी थी। लगता ही न था कि वहाँ इन्सान बसते हैं। वहीं एक कोने में चेतन ने आबनूस की अपनी सेकण्ड हैण्ड मेज़-कुर्सी लगी देखी। मेज़ पर एक बोरा पड़ा था, जिसमें उसकी किताबें और काग़ज़-पत्र भरे थे। बोरे का मुँह खुला था और कागज़-पत्र मेज़ पर बिखर आये थे और उन पर बेतरह धूल जमी थी....

सहसा चेतन का खून खौल उठा। मन-ही-मन उसने तय कर लिया कि रात होने से पहले-पहले वह अपना सामान (पुस्तकें और काग़ज़-पत्र) वहाँ से उठा लेगा और फिर कभी ज़्यादा दिन को बाहर जायगा तो उनका प्रबन्ध करके जायगा। रही रात को सोने की बात तो यदि बारजे में तीसरी चारपाई आ भी जाती, तो भी चेतन वहाँ न सो पाता. . .

और वह पलट कर खट-खट सीढ़ियाँ उतर आया। जब दोनों भाई वापस दुकान पर पहुँचे और गुप्ता के साथ सिर जोड़ कर इस समस्या का हल ढूंढने बैठे तो गुप्ता ने पहले इस बात पर खेद प्रकट किया कि वह स्वयं अपने चाचा के यहाँ रहता है, वह आज़ाद होता और अलग से व्यवस्थित होता तो चेतनजी को ज़रा भी दिक्कत न होने देता। फिर

उसने सुझाया कि उसका एक मित्र पुरानी अनारकली में रहता है, यदि डॉक्टर साहब कहें और चेतन चाहे तो वह अपने उन मित्र पर ज़ोर दे कर, कुछ दिन के लिए उसके वहाँ रहने-सोने की व्यवस्था कर सकता है।

डॉक्टर साहब ने अपने शिष्य के इस प्रस्ताव का सोत्साह स्वागत किया। चेतन से कहा कि वह गुप्ता के साथ जा कर उसी वक्त वह जगह देख आये।

यद्यपि चेतन ने सुबह से नाश्ता न किया था और उसे कुछ भूख लग आयी थी, पर उसी क्षण गुप्ता के साथ चल दिया। गुप्ता ने कहा भी कि आप सफ़र से आये हैं, कुछ आराम कर लीजिए, नाश्ता-वाश्ता कर लीजिए, फिर चलेंगे, पर चेतन नहीं माना।

पुरानी अनारकली की एक गली में गुप्ता के सहपाठी का मकान था। वहाँ पहुँचे तो जिस जगह को बार-बार 'मकान' कहा जाता रहा था, वह यथार्थ में एक छोटा-सा अँधेरा-सीला कमरा निकला। गुप्ता का सहपाठी गर्मी के कारण रात को कमरे बाहर ही, खुले अहाते में, सोता था। किसी तरह की प्राइवेसी न थी और चेतन ने देखा कि दो गधे उस समय भी वहाँ मज़े से लोटनियाँ लगा रहे थे। 'शायद धोबियों या कुम्हारों का मुहल्ला है।' मन-ही-मन चेतन ने कहा, और वहीं उसने तय किया कि वह पण्डित श्यामलाल 'रत्न' के यहाँ जायगा। सम्भव हुआ तो दो-चार दिन वहीं रहेगा, न हो सका तो गुप्ता साहब के सहपाठी का एह-सान लेने के बदले वह एक चारपाई ला कर भाई साहब की दुकान से बाहर तख़्ते पर डाल लेगा।

वापस दुकान पहुँच कर उसने सारा गुस्सा भाई साहब पर उतारा और बिना इस बात की परवाह किये कि उनका शागिर्द सुन रहा है, वह चिल्लाने लगा कि बिना उसे सूचित किये, उन्होंने क्यों मकान छोड़ा! उसकी किताबें, कीमती काग़ज़, अमूल्य फ़ाइलें और दूसरा सामान क्यों उस बेदर्दी और बेपरवाही से डम्प कर दिया! अब वहाँ सोयेगा, कहाँ

काम करेगा. . .आदि. . .आदि. . .

वह ताँगे से उतरा हुआ अपना सामान दुकान की परछत्ती पर ले जाता रहा था और चिल्लाता रहा था । भाई साहब इस बीच चुप बने रहे थे । किसी बात का कोई जवाब उन्होंने नहीं दिया । बस इतना किया कि बैठे-बैठे उठे, पिछली पार्टीशन में रखे मेज़ पर से उन्होंने एक डेंचर उठाया था और चुपचाप डेण्टल इंजिन पर पाँव रखे उस पर पालिश करने लगे ।

जब सामान रख कर चेतन बाहर जाने लगा तो उन्होंने केवल इतना कहा कि वह लंच के वक्त आ जाय ।

वैसे ही तने हुए स्वर में चेतन ने पूछा, 'आप खाना कहाँ खाते हैं ?'

'खाना तो वहीं पुरानी अनारकली के ढाबे पर खाता हूँ, पर तुम आ जाओगे तो सिन्धी होटल चले चलेंगे ।'

'नहीं, आप दोपहर के खाने पर मेरा इन्तज़ार न कीजिएगा ।' चेतन ने कहा और चिक उठा कर बाहर हो गया । फिर कुछ याद आ जाने पर वहीं रुक कर, चिक के बाहर खड़े-खड़े उसने कहा, 'मैं शाम को दुकान बन्द होने से पहले पहुँच जाऊँगा । हो सकता है मैं आते-आते गरणपत रोड से एक चारपाई ख़रीद लाऊँ । जब तक मकान नहीं मिलता, शायद मुझे बाहर इसी तख्ते पर सोना पड़े । आप ज़रा बलराम से कह दीजिएगा कि चार-छै दिन मुझे पीछे वाला बाथरूम इस्तेमाल कर लेने दे । हो सके तो उससे चाबी ले रखिएगा ।'

और भाई साहब का उत्तर सुने बिना वह पलट कर सीढ़ियाँ उतर गया ।

तीन

चेतन को बेहद भूख लग आयी थी। अपने क्रोध में उसने नाश्ते के लिए भाई साहब से नहीं कहा था और खाने तक को मना कर दिया था। दुकान से उतर कर वह किसी पूर्व निश्चय के बिना अनारकली की ओर चल पड़ा। लस्सी पिये अथवा कहीं खाना ही खा ले, इसी दुविधा में वह चला जा रहा था। दस-सवा दस बजे होंगे। खाने का समय नहीं था। उसे भूख भी लगी थी और उसका गला भी सूख रहा था। अनारकली के दूसरे सिरे पर हलवाइयों की मशहूर दुकानों में से किसी एक में लस्सी पियेगा, दो पेड़े डलवायेगा ताकि डेढ़-दो बजे तक की छुट्टी हो जाय, यही उसने तय किया।

उसका मन बेहद दुखी था। बिजली के पंखे से लैस, सरदार जगदीश सिंह के मकान का वह स्वच्छ, हवादार कमरा अपने सरदई रोग़न वाले दरवाज़ों के साथ बार-बार उसकी आँखों में आता था। लेकिन अजीब बात है कि अपने बड़े भाई के बदले उसे कविराजजी पर ज़्यादा ग़ुस्सा था। यदि वे चालीस न सही, बीस ही रुपये उसे दे देते, रुपये न देते भाई साहब को वैसा पत्र न लिखते, तो भाई साहब वह

मकान न छोड़ते। भाई साहब में कुछ अजीब-सी रुखाई, कुछ निर्मम-सी दीखने वाली निरपेक्षता चेतन ने शुरू ही से देखी थी। घर के झगड़ों-टण्टों में वे सदा कमल के पत्ते की तरह रहते थे। माँ या पत्नी के ताने-तिश्ने उन्हें छू न पाते थे और पिता की मार-पीट. . .'दो पइयाँ विस्सर गइयाँ, सदका मेरी ढूई दा'—चेतन को पिता के मुँह से उनके बारे में सुनी कहावत याद आ गयी। भाई साहब ने जो किया, उसकी आशा उनसे की जा सकती थी, लेकिन यदि कविराज रुपये दे देते तो उनकी कौन बड़ी हानि हो जाती। काम तो वह उन्हें कर ही देता पर वे परम व्यावहारिक आदमी, किसी तरह की जोखिम उठाना उनके गुरु ने शायद उन्हें सिखाया नहीं था। 'तुम्हारे भाई साहब कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेंगे और तुम्हें तंग नहीं करेंगे!'—चेतन के कानों में कविराज के शब्द गूँज गये। एक तिक्त मुस्कान चेतन के होंटों पर फैल गयी. . .क्या रास्ता निकाला उन्होंने और कैसे तंग नहीं करेंगे? हो सकता है, शागिर्द की फ़ीस से उन्होंने दुकान के किराये की व्यवस्था कर ली हो, पर बाकी. . . अच्छा-भला मकान छोड़ दिया, बीवी को तीन महीने से गाँव भेज रखा है और स्वयं मज़दूरों से भी गयी-बीती हालत में रहते हैं. . .चिन्ता तो उसे झख मार कर करनी पड़ेगी। वह क्या उनकी तरह निर्मम और निरपेक्ष हो सकता है! उसे जल्द-से-जल्द मकान खोजना पड़ेगा। यदि वह फिर से अपनी नौकरी पर नहीं जाना चाहता (कविराज जी के साथ शिमला जाते वक्त उसने मन में तय कर लिया था कि वह समाचार-पत्र की वह नौकरी छोड़ देगा, जिसमें दिन-रात उसे तेरह-तेरह घण्टे खटना पड़ता था) तो उसे फ़ौरन कोई दूसरा काम खोजना पड़ेगा. . .दूसरी क्या-क्या समस्याएँ इस बीच न उठ खड़ी होंगी. . .वह भाई साहब के साथ बैठता तो उसे पता चलता।. . .और चेतन को फिर कविराजजी के उस शुभ परामर्श पर क्रोध आने लगा. . .

गर्मी बेहद थी। गर्मी और घुटन! हवा का स्पर्श तक नहीं था। पसीना आये कि उससे पहले सूख जाता था। हज़ारों अदृश्य भट्टियाँ जैसे

फ़िज़ा में दहक रही थीं और उनका ताप नस-नस को जला रहा था। लेकिन इस बेपनाह गर्मी के बावजूद अनारकली में भीड़ थी। चाहे साँझ जितनी नहीं थी तो भी ताँगों और हथ-गाड़ियों में रास्ता बनाना पड़ता था और दुकानों में क्रय-विक्रय की बराबर धूम थी। चेतन शो-केसेज़ में निगाहों को आमन्त्रण देती चीज़ों की ओर देखे बिना, मन-ही-मन कविराजजी से या भाई साहब से या अपने आप ही से उलझता हुआ अनारकली का दो-तिहाई भाग पार कर आया था। दायीं ओर अस्पताल रोड और बायीं ओर गणपत रोड पीछे रह गयी थीं। चेतन बायें हाथ के फ़ुटपाथ पर चला आ रहा था। गणपत रोड जहाँ अनारकली में मिलती थी, वहीं इस गर्मी के बावजूद तारपोलियन की छाया किये, एक सरदार साहब कुल्चे-भटूरे और आलू-छोले बेच रहे थे। सहसा चेतन के मुँह में पानी भर आया। सम्भव था कि वह दूसरे कुछ ग्राहकों के साथ वहीं खड़ा हो कर छोले-कुल्चे खाने लगता, पर तभी उसकी नज़र सामने कुछ दूर अपनी दुकान में बैठे सरदार दिलावर सिंह हलवाई पर चली गयी और बायीं पटरी से उतर, बाज़ार को पार करता हुआ वह उधर को चल पड़ा।

अस्पताल रोड से लोहारी के चौरस्ते तक अनारकली के उस टुकड़े में हलवाइयों की दो दुकानें थीं। दोनों सिक्ख हलवाइयों की थीं। 'केसरी' के आगे दिलावर सिंह की थी और दैनिक 'देश' वाली गली जहाँ अनारकली में मिलती थी, वहीं ख़ालसा होटल के आगे, कोने पर हरबिन्दर सिंह की। दिलावर सिंह की बहुत पुरानी थी और हरबिन्दर सिंह की अपेक्षाकृत नयी। चेतन प्रायः हरबिन्दर की दुकान से लस्सी पीता था। लेकिन उसे इतनी भूख लग आयी थी कि वह दिलावर सिंह की दुकान पर ही रुक गया।

दूध के चौड़े कड़ाहों के पीछे, दुकान जितना ही पुराना दिलावर सिंह किसी प्राचीन मन्दिर के उतने ही प्राचीन महन्त की तरह, चौड़े पटरे पर फसकड़ा मारे, निर्विकार भाव से लस्सी बना रहा था।

पैंतालीस-पचास को पहुँचती उम्र, मोटा, पेट, उसी के कारण किंचित अन्दर को धँसा दीखता सीना, नाभि को छूती लम्बी, नोकदार दाढ़ी, सिर पर बड़ा-सा मैला पग्गड़—उसके चेहरे पर चेतन को समाधि में निरत किसी संन्यासी की-सी निरपेक्षता दिखायी दी थी। क्षण भर को उसे लगा कि जानदार हाथ नहीं, बेजान हाथ मथनी को बिलोये जा रहे हैं। चेतन को याद नहीं कि उसने कभी दिलावर सिंह को हँसते या मुस्कराते देखा हो। दुकान उसकी मौके से थी। बहुत पुरानी थी। खूब प्रसिद्ध थी और ग्राहकों की रुचि-अभिरुचि, इच्छा-अनिच्छा से बेपरवा वह लस्सी विलोते जाता था। शुरू-शुरू में चेतन ने पण्डित रत्न के साथ एक बार दिलावर सिंह के यहाँ लस्सी पी थी। दही खट्टा था और मलाई अच्छी तरह मरी न थी। दूसरी बार चेतन फिर अकेला आया था तो उसने विशेष रूप से कहा था कि भगोने में बर्फ़ डालने से पहले दही को अच्छी तरह मथ लिया जाय और मलाई मार ली जाय। सरदार दिलावर सिंह के चेहरे से यह भी पता न चला था कि उन्होंने उसकी बात सुनी भी है कि नहीं। जब लस्सी का गिलास उसने थामा और दो घूँट भरे तो उसे बड़ी वितृष्णा हुई थी। हर घूँट के साथ उसके मुँह में मलाई के टुकड़े आ गये थे और उसे लस्सी के खट-मिट्ठेपन में उनके फीके स्वाद से बड़ी कोफ़्त हुई थी।

दुकान पर उस वक्त भी बड़ी भीड़ थी। तारपोलियन के छप्पर के नीचे बाज़ार में लगी सभी लोहे की कुर्सियाँ भरी थीं। सरदार दिलावर सिंह ने चेतन को संकेत किया कि वह अन्दर जा बैठे। चेतन सीढ़ी के रूप में रखी गयी, जूतों के तलवों से काली पड़ जाने वाली, खोखे की पेटी पर पाँव रख कर कड़ाहों के पास से हो, अन्दर कमरे में गया। लेकिन मैल की मोटी-काली परत वाली मेज़-कुर्सियों पर बैठने को उसका मन नहीं हुआ। छत पर, धुएँ और मक्खियों के निरन्तर बैठने के कारण सियाह पड़ जाने वाले लम्बे-लम्बे दो परों वाला पंखा अपने स्वामी ही की तरह मन्थर गति से हवा को बिलो रहा था।—तीनों ओर से

बन्द कमरे की उमस, दरवाज़े के बाहर कड़ाहों के नीचे दहकती भट्ठियों के ताप से द्विगुणित हो रही थी और पंखे की निर्विकार गति उसे छू तक न रही थी। चेतन का जी घुटने लगा। वह मुड़ा और पेटी पर पैर रख कर बाज़ार में कूद आया और दायीं ओर आगे हरबिन्दर सिंह की दुकान की तरफ़ बढ़ चला।

सरदार दिलावर सिंह ने आँखें उठा कर भी उसकी ओर नहीं देखा।

०

अस्पताल रोड वास्तव में वह सड़क थी, जो गणपत रोड के सामने ज़रा आगे को अनारकली से निकल कर आत्माराम एण्ड सन्ज़ तथा हिन्दी पुस्तक भवन के सामने से होती, मेयो अस्पताल के साथ-साथ जाती हुई रत्नचन्द रोड और रेलवे रोड से मिल जाती थी। लेकिन इसके साथ की दो-तीन गलियों को भी इसी नाम से पुकारा जाता था। एक गली 'पुस्तक भवन' के ज़रा आगे से निकलती थी और खालसा होटल के पास अनारकली में जा मिलती थी। यह भी अस्पताल रोड ही कहलाती थी, लेकिन इधर कुछ लोग उर्दू के प्रसिद्ध आर्य समाजी दैनिक के नाम पर इसे 'देश रोड' कहने लगे थे। इसी गली में अंग्रेज़ी का एक पुराना प्रेस 'लायन प्रेस' के नाम से था और वे लोग अपने फ़ॉर्म पर इसे 'लायन प्रेस रोड' लिखते थे—बहरहाल, जहाँ यह रोड या गली अनारकली में मिलती थी, वहाँ खालसा होटल था और उसके आगे कोने पर हरबिन्दर सिंह की दुकान थी। इस दुकान के सामने ही अनारकली का बाज़ार स्टेशन से आने वाली सरक्युलर रोड में मिल जाता था। दिलावर सिंह की दुकान से यहाँ तक मुश्किल से आध फ़रलाँग का अन्तर होगा। लेकिन भूख की बेताबी में चेतन को बहुत ज्यादा लग रहा था।

दुकान पर यहाँ भी खूब भीड़ थी। हरबिन्दर सिंह तीस-एक वर्ष का जवान था। साफ़-सुथरे कपड़े, गोरा चमकता रंग, फ़िक्सो से जमी, ठाठे से कसी दाढ़ी, बायीं ओर लटकता पगड़ी का सुबुक शमला, सिर

पर तुर्रा—बिजली की-सी गति से उसके हाथ दही बिलोते थे और हर ग्राहक की रुचि-अभिरुचि का उसे ध्यान रहता था। बाहर लगी कुर्सियाँ यहाँ भी भरी थीं। चेतन एक ओर जा कर खड़ा हो गया तो हरबिन्दर ने सिर उठा कर उसकी ओर एक मुस्कान फेंक दी।

'मुझे पाव भर दही में दो पेड़े डाल कर लस्सी बना दीजिए। मलाई एकदम मर जाय, तभी बर्फ़ डालिएगा!' चेतन ने कहा।

'रत्ती भर फ़िकर न करो बाश्शाहो! तुहाडे मन मुताबिक बनेगी, ज़रा अन्दर तशरीफ़ रक्खो!' हरबिन्दर ने मुस्कान में सोने के दाँत दिखा दिये।

बाहर बाज़ार ही से दुकान के अन्दर दीवारों से लगी संगमरमर की मेज़ें और लकड़ी की कुर्सियाँ दिखायी दे रही थीं। चूँकि दुकान ऐन कोने पर थी, इसलिए अन्दर कमरे का एक दरवाज़ा अनारकली और दूसरा सरक्युलर रोड की ओर खुलता था। गर्मी भी अन्दर उतनी नहीं होगी, यह बाहर ही से महसूस होता था, लेकिन चेतन को अन्दर जा कर बैठने की ताब नहीं थी। उसने कहा, 'मैं यहीं खड़ा हूँ, मुझे सख्त भूख लगी है, ज़रा जल्दी लस्सी बना दीजिए!'

हरबिन्दर सिंह ने भगोने में दूध डाल रखा था, 'लओ बाश्शाहो, हुणें बन जान्दी ए। अन्दर आराम नाल बैठो, एत्थे की खड़े रओगे?' उसने हँसते-माथे कहा।

चेतन को उसकी मुस्कान और उस मुस्कान को उद्भासित करते हुए सोने के दाँत बहुत भले लगे। पर वह अन्दर नहीं गया। उसे विश्वास था, वह अन्दर जा कर बैठेगा तो उसे देर से लस्सी मिलेगी। उसने हँस कर कहा:

'नहीं मैं यहीं खड़ा हूँ, आप बनाइए!'

'बस एहणाँ पहलवानाँ नूँ बना देआँ, फ़ेर तुहानूँ देन्ना हाँ।'[1]

---

१. बस, इन पहलवानों को बना दूँ, फिर आपको देता हूँ।

और उसने दुकान के बाहर लोहे की कुर्सियों पर बैठे दो लहीम-शहीम सिक्खों की ओर संकेत किया। क्षण भर को चेतन की नज़र उन पर गयी——लम्बे-तगड़े, चालीस-बयालीस इंच चौड़े सीनों वाले सिक्ख, मलमल के कुर्ते और लट्ठे की तहमदें पहने जैसे उस सारी जगह को भरे दे रहे थे—उस धरती के प्रति चेतन का सीना एक अनोखे गर्व से भर गया, जहाँ ऐसे दर्शनीय इंसान पैदा होते हैं। दूसरे क्षण उसका मन उदास हो आया। जाने ये लोग क्या करते हैं ? माझे-मालवे के होंगे, जहाँ अशिक्षा और जहालत का एक छत्र साम्राज्य है, बात-बात पर कृपाणें निकल जाती हैं, छींकते-खाँसते कत्ल हो जाते हैं और पीढ़ियों तक विद्वेष पलते हैं. . .क्या कभी वह दिन आयेगा, जब यह अपार शक्ति देश या समाज या व्यक्ति की भलाई के काम आयेगी !. . .

तभी उसका ध्यान हलवाई ने खींच लिया। इस बीच उसने भगोने में पड़ा दूध क्षण भर को हिलाया था, फिर बायें हाथ में एक ख़ाली भगोना ले कर दोनों को जैसे किनारों से छुलाते हुए, वह दूध वाला भगोना ऐसे ऊँचा करता गया था कि दूध की धार ख़ाली भगोने में अजस्र गिरने लगी थी। दायें हाथ को ऊपर करता हुआ वह उसे बाँह की पूरी ऊँचाई तक ले गया। दूध की धार अनवरत निचले भगोने में गिरती रही, मजाल है कि बूँद भर दूध भी बाहर गिरा हो। जब भगोना ख़ाली हो गया तो उसने उसे नीचे कर लिया और उसी तरह दोनों को छुलाते हुए बायें हाथ वाले भरे भगोने को ऊपर ले जाने लगा और उसी तरह दूध की धार ऊपर होती हुई ख़ाली भगोने में गिरती रही और जब बायाँ हाथ पूरी ऊँचाई तक चला गया तो भगोना ख़ाली हो गया !. . .चेतन वहीं खड़ा मुग्ध रूप से इस प्रक्रिया को देखता रहा। उस तन्मयता में उसे अपनी भूख का एहसास भी नहीं रहा। उस समय ही नहीं, जब भी चेतन बाज़ार में जा रहा होता और कोई हलवाई इस तरह दो भगोनों में दूध ठण्डा कर रहा होता, चेतन हमेशा रुक कर देखने लगता। उसको हाथों के इस सधाव और दक्षता पर आश्चर्य होता था कि हाथ उठता

चला जाता, दूध की धार ऊँची होती हुई भगोने में गिरती जाती, एक भी कतरा बाहर न गिरता और मिनटों में खौलता हुआ दूध बर्फ़-सा हो जाता।

दूध ठण्डा कर हरबिन्दर ने लस्सी वाले बड़े भगोने में चार पेड़े डाले, कुछ देर उन्हें मथनी से पीसा; फिर ठण्डा दूध डाल कर पाँच-सात हाथ ज़ोर-ज़ोर से मारे और खूब अच्छी तरह बिलो कर हाथ-हाथ भर के दो गिलास भर कर उन सरदारों को दिये। गिलासों पर मक्खन और झाग की वैसी ही मोटी परत थी, जिसकी कल्पना चेतन करता आया था। उसके मुँह में पानी भर आया। उसे लगा कि सरदारों ने पेड़े ही नहीं, दही में पानी के स्थान पर भी दूध डलवा कर लस्सी बनवायी है। उसका जी हुआ कि वह भी पाव भर दही में दो पेड़े और पाव भर दूध डलवा ले. . .लेकिन उसके आमाशय में इतनी शक्ति नहीं थी। वह जानता था कि यदि वह गाढ़ी और भारी लस्सी पी लेगा तो दिन को नहीं, रात को भी उसे भूख नहीं लगेगी और उसका सारा सिस्टम बिगड़ जायगा।

तभी हरबिन्दर ने पेड़े डाल कर उसकी लस्सी बना दी और उसी तरह मक्खन पर चम्मच टिका कर गिलास उसे थमा दिया।

चेतन ने पहले चम्मच से मक्खन खाया, फिर मज़ा ले कर लस्सी पीने लगा। वहीं खड़े-खड़े घूँट-घूँट लस्सी पीते हुए सहसा उसकी नज़र एक-दम सामने दुकान पर लगे हुए, धुएँ से किंचित सियाह पड़ जाने वाले, 'विवाहित आनन्द' के बोर्ड पर गयी। पुस्तक के नाम के नीचे लिखा था 'कविराज रामदास बी० ए०, गोल्ड मेडलिस्ट'. . .आदि आदि. . .और लस्सी का गिलास खत्म कर, हलवाई के पैसे चुका कर चेतन सरक्युलर रोड पर कविराजजी के औषधालय की ओर बढ़ चला. . .

०

भाई साहब ने जो स्थिति पैदा कर दी थी, उसे देखते हुए उसके लिए अलग से मकान लेना निहायत ज़रूरी था। पुरानी अनारकली के उस

खुले चौक अथवा दुकान के तख़्ते पर वह कितने दिन सो सकेगा ? सोता वह चंगड़ मुहल्ले के पीपल वेहड़े में भी बाहर ही था, पर वहाँ दीवार का एक पर्दा तो था, लेकिन पुरानी अनारकली के उस अहाते में तो उसने गधों को लोटनियाँ लगाते देखा था। उसके सामने दो ही रास्ते थे— या तो वह अपने समाचार-पत्र में वापस चला जाय अथवा कहीं दूसरी नौकरी कर ले। 'बन्दे मातरम' की उस नौकरी से उसका मन उचट गया था। वह अनुवाद भी करता था, हफ़्ते-पखवाड़े कहानी भी देता था; कभी-कभार दशहरे दीवाली या वसन्त पर नज़्म भी लिखता था और ज़रूरत पड़ने पर हास्य-रस के शे'र लेकिन उसके वेतन में एक पैसे की वृद्धि तक न हुई थी। फिर चार सम्पादकों में से एक सदा बीमार रहता था। महाशय धनपत राय डमी एडीटर होने के रोब में तिनका न तोड़ते थे। बाकी दो पर काम का अधिक बोझ पड़ता था. . .चेतन के सामने रातें आ गयीं, जब नींद और थकन के मारे उससे कुर्सी पर बैठा न जाता था। वह बाहर जाता था और सुराही से पानी का गिलास ले कर आँखों में छींटे मार आता था. . .जब बिल्डिंग के मुख्य द्वार की चौखट के बाहर बने चबूतरे के साथ लग कर खड़ा हो जाता था और वहीं दीवार के साथ सिर लगाये, पाँच-सात मिनट को ऊँघ जाता था . . .जब रात को डेढ़-दो बजे दफ़्तर से घर की तरफ़ चलता, बादल बरस रहे होते और मोहनलाल रोड पर घुटनों तक पानी होता। वह बन्देमातरम प्रेस के बगल से गन्दी सँकरी बदबूदार गलियों से होता पैसा अख़बार स्ट्रीट से हो कर घर आता। रास्ते में एक कुतिया हमेशा उसका टखना पकड़ने की कोशिश करती। एक बार चेतन ने उसे छड़ी से पीट दिया था, और वह जाने उसकी बू सूँघ कर, दूर ही से भूँकने लगती थी. . .जब दफ़्तर से छुट्टी पाता तो प्रातः का झुटपुटा हो चुका होता और नगरपालिका के भंगी सड़कें साफ़ कर रहे होते!. . .फिर यही नहीं, चालीस रुपये भी आराम से मिल जायें तो बात थी। पत्र चूँकि घाटे पर चलता था, इसलिए समय से वेतन न मिलता था। चेतन

को दस झूठ बोल कर और दस बहाने बना कर, दस दस बीस-बीस पेशगी लेने पड़ते। जो लोग वक्त से तनख्वाह पाने की उम्मीद में चुप रहते, उन्हें पहली के बदले कभी दूसरे महीने की पन्द्रह, कभी बीस को तनख्वाह मिलती. . .नहीं, वह वापस न जाना चाहता था। यह ठीक है कि वह तीन महीने की छुट्टी ले कर गया था और अखबार वालों को उसकी प्रतीक्षा थी, पर यदि उसे कोई दूसरा काम मिल जाय—बीस-तीस रुपये महीने का पार्ट टाइम ही, तो वह कर लेगा और मैनेजिंग डायरेक्टर से जा कर कह देगा कि डॉक्टर ने उसे रात का काम करने से मना कर दिया है. . .उसका खयाल था कि वह अब दैनिक पत्र की नौकरी नहीं करेगा! लेकिन भाई साहब ने मकान छोड़ कर, उसकी चीज़ों को अपने मित्र के उस कबाड़खाने-ऐसे कमरे में यों बेदर्दी से डम्प कर के जो स्थिति पैदा कर दी, उसे देखते हुए चेतन को लगा कि कुछ न होगा तो वह जा कर 'बन्देमातरम' के दफ़्तर में हाज़िरी दे देगा लेकिन इससे पहले कि वहाँ जाय, वह सभी कोशिशें कर देखेगा। 'बन्देमातरम' में नौकरी करते ही उसकी मैत्री पण्डित श्यामलाल 'रत्न' से हो गयी थी। वे उसे अपने बेटे की तरह चाहते थे। वह जा कर उनसे भी कहेगा कि मुझे किसी दूसरी जगह काम ले दीजिए। बहुत लोगों तक उनकी पहुँच थी।. . .

हलवाई की दुकान से लस्सी का गिलास पी कर चेतन ने सोचा था कि वह इन्फ़र्मेशन ऑफ़िस में जायगा, जहाँ पण्डित रत्न ट्रांसलेटर थे, वहीं से उनके साथ उनके घर जायगा और बातों-बातों में अपनी समस्या उनके सामने रखेगा। लेकिन हरबिन्दर सिंह की दुकान से कविराज का बोर्ड देख कर उसे उनका वादा याद आ गया। शिमला को चलते वक्त उन्होंने कहा था कि यदि लाहौर पहुँचने पर वह अपने समाचार-पत्र में काम न करना चाहेगा तो वे उस वक्त तक उसे पार्ट टाइम काम दे देंगे, जब तक कि उसकी नौकरी कहीं दूसरी जगह नहीं लग जाती। . . .शिमले के प्रवास में उसका मन कविराजजी की ओर से खट्टा हो

गया था। लेकिन वह उनको उनका वचन याद दिलायेगा, यदि महीने-दो महीने के लिए उन्होंने कुछ काम दे दिया तो इस बीच वह कोई दूसरा काम ढूँढ़ लेगा।. . .लेकिन यदि फिर उन्होंने उसे कोई उपन्यास-वुपन्यास लिखने के लिए कहा तो ?—उसने मन-ही-मन सवाल किया। . . .वह उपन्यास आदि नहीं लिखेगा। उनसे कहेगा कि वे कोई दूसरा काम दे दें—अपने मासिक पत्र में, अपने लड़के को पढ़ाने का या कोई और।. . .और तब उसने सोचा कि जैसे भी हो उसे कविराज के आने तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।. . .इसी उधेड़बुन में वह उनके औषधालय के नीचे पहुँच गया था। क्यों न वह ऊपर जा कर पूछ ले कि कब तक उनके आने की सम्भावना है।. . .और वह सीढ़ियों की ओर बढ़ा। विभिन्न औषधियों की मिश्रित गन्ध में साँस लेता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ कर चेतन ऊपर पहुँचा तो क्षण भर को वह चौखट में ठिठका खड़ा रह गया। सामने जालीदार पर्दे के पीछे अपने कमरे में कविराज स्वयं विराजमान थे। वह जा कर एक ओर कुर्सी पर बैठ गया।

जब दूसरे रोगी और मिलने वाले निबट गये तो कविराज ने उसे बुलवाया।

'मैं तो सोचता था अभी आप महीना बाद आयेंगे। मैं तो यों ही आपकी कुशल-क्षेम जानने चला आया था। 'नमस्कार' करने के बाद उसने ज़रा हँसते हुए कहा, 'इतनी जल्दी तो आपके आने की उम्मीद नहीं थी।'

कविराज ने कुर्सी की ओर हाथ बढ़ाते हुए उसे बैठने का संकेत किया और बोले, 'पहले तो यही इरादा था, पर तुम चले आये तो हमारा भी मन नहीं लगा। बीबीजी ने भी कहा कि चेतनजी के चले जाने के बाद लगता है, जैसे घर की रौनक ही चली गयी है (चेतन मन-ही-मन हँसा। शिमले में रुल्दू भट्ठे के उस मकान की सीढ़ियों से उतरते हुए कभी-कभी जैसी टेढ़ी नज़र से वे उसकी ओर देखा करती थीं, उसे वह भूला न था—लेकिन उसने कविराजजी की बात नहीं काटी और वे

कहते गये :) बीबीजी ने दो-तीन बार ऐसा कहा तो हमने भी बोरिया-बिस्तर उठाया और चले आये। कल ही लाहौर पहुँचे हैं और आज ड्यूटी पर हाज़िर।'

और उन्होंने प्रशंसा की इच्छुक निगाहों से उसकी ओर देखा।

चेतन ने उन्हें निराश नहीं किया, 'लेकिन आपने एक दिन आराम तो कर लिया होता।' उसने कहा और इस एक ही वाक्य से उसने उन्हें दाद भी दी और खुला मस्का भी लगाया।

(मन-ही-मन उसे एहसास भी हुआ कि वह मस्का लगा रहा है और उसे अपनी इस प्रतिभा पर, जिससे वह नितान्त अनभिज्ञ था, हैरत भी हुई और ख़ुशी भी।)

'आराम मेरे अज़ीज़, उन लोगों के लिए नहीं, जो जीवन में किसी उद्देश्य को ले कर चलते हैं। आराम तो उन लोगों के लिए है. . .'

चेतन के अनुमानानुकूल ही कविराजजी 'कर्मयोगियों के लिए कर्म ही विश्राम है' के अमूल्य सिद्धान्त पर उसे उपदेश देने लगे थे। बातों-बातों में वे इस विषय को 'अपने' उद्देश्य और 'अपने' संघर्ष और फ़िर 'मैं' पर ले आये और उन्होंने अपनी अपार कर्मठता, निष्ठा और लगन के कई किस्से चेतन को सुनाये। अन्त में उन्होंने सहसा उससे पूछा, 'कहो अज़ीज़ अब तुम्हारे क्या इरादे हैं ? क्या कर रहे हो आजकल ?'

चेतन ने ऐसे दर्शाया, जैसे वह कविराजजी के उपदेश को बड़े ध्यान से सुन रहा था। (हालाँकि वह बुरी तरह बोर हो रहा था, क्योंकि शिमला के प्रवास में उसने वे किस्से कविराजजी से कई बार सुने थे, पर वह परम तन्मयता से उनके मुखारबिन्द की ओर ध्यान लगाये था।) उनके प्रश्न को पूरी तरह सुनने के बावजूद सहसा उसने ऐसे अचकचाते की-सी भंगिमा बनायी, जैसे उसने प्रश्न सुना ही न हो और उसने मात्र यह कहा :

'जी।'

'मैं यह पूछ रहा था,' कविराजजी ने किंचित खुश हो कर कहा,

'कि तुम आजकल क्या कर रहे हो। अखबार की चक्की के उसी हत्थे को फिर सँभाल लिया है अथवा कोई दूसरा काम ले लिया है ?'

'जी मैं तो आज ही जालन्धर से आया हूँ। वहाँ अपनी साली की शादी में शामिल हुआ, फिर अपने घर कुछ दिन रहा।' चेतन ने कहा, और क्षरण भर रुक कर बोला, 'यहाँ भाई साहब को जब आपका पत्र मिला तो उन्होंने क्रोध में मकान छोड़ दिया। अपना तो अपना, साथ में मेरा सामान—किताबें, फ़ाइलें, रचनाएँ, ज़रूरी काग़ज़-पत्र—सब अपने एक मित्र के यहाँ यों ही खुले में डम्प कर दिया। अपनी उस पुरानी नौकरी पर मैं जाना तो नहीं चाहता, पर दो-चार दिन में मुझे कहीं-न-कहीं रहने का इन्तज़ाम करना है। मेरी इतने श्रम से लिखी हुई रचनाएँ वहाँ कूड़े की तरह पड़ी हैं, जहाँ न बैठने की जगह है, न सोने की। पढ़ने-लिखने की तो बात ही दूर रही। फिर मेरी पत्नी का समय व्यर्थ में बर्बाद हो रहा है। 'हिन्दी रत्न' उसने पास कर लिया है और मैं चाहता हूँ कि 'हिन्दी भूषरण' अथवा 'प्रभाकर' में वह दाखिल हो जाय। अगर मुझे अभी कहीं बीस रुपये की भी पार्ट टाइम नौकरी मिल जाय तो मैं वहाँ अपनी सेहत खराब न करूँ और इस बीच कहीं दूसरी जगह नौकरी ढूँढ़ लूँ।'

'इतनी ही बात है अज़ीज़ तो तुम कल से दो घण्टों के लिए मेरे यहाँ आ जाया करो। जब तक तुम्हें कहीं नौकरी नहीं मिलती, मैं तुम्हें बीस रुपया महीना दे दिया करूँगा। अख़बार के दफ़्तर में दिन-रात खून जला कर सेहत तबाह करने की सलाह मैं नहीं देता।'

चेतन उन्हें धन्यवाद देता और 'नमस्कार' करता हुआ नीचे उतरा तो सीधा गरणपत रोड गया। वहाँ से उसने चारपाई ख़रीदी। मज़दूर के सिर पर लदवा कर दुकान पहुँचा। चारपाई को बराबर की महीलाल स्ट्रीट में रखवा दिया। भाई साहब को साथ ले कर पड़ोस में शीशों का कारबार करने वाले बलराज के पिता को कहलवाया कि वे पिछली गली में अपना स्टोर वाला बाथरूम कुछ दिन इस्तेमाल कर लेने दें। फिर वह

मकान देखने निकल पड़ा। भाई साहब ने लाख कहा कि खाना खा कर जाना, पर उसने एक नहीं सुनी।. . .पहले उसने सोचा था कि औषधालय से कविराजजी के आने की तारीख पूछ कर फिर पण्डित श्यामलाल 'रत्न' के यहाँ जायगा, पर जब कविराजजी ही मिल गये और उन्होंने उसे पार्ट टाइम काम भी दे दिया तो उसने तय किया कि वह सबसे पहले मकान ढूँढ़ेगा, फिर पण्डित 'रत्न' को जा कर अपने आने की खबर देगा।

चार

सातवें ही दिन चेतन जल्दी-जल्दी पण्डित 'रत्न' से मिलने जा रहा था—उन्हें मात्र अपने लाहौर आ जाने की खबर देने नहीं, उनसे यह अनुरोध करने कि जैसे भी हो, उसे कोई और नौकरी ले दें।

०

०

चेतन को मकान मिल गया था—कृष्णा गली नम्बर-१ में। ठीक ही मिल गया था। ठीक—याने बिसात के मुताबिक—और उसी इलाके में, जहाँ कि वह चाहता था। पिछले छै दिन में उसने लगातार भाग-दौड़ कर, नीला गुम्बद से मील-डेढ़-मील इधर-उधर सभी जगह मकान देख डाले थे, लेकिन कोई भी उसे पसन्द न आया था—मकान अच्छा होता तो किराया बिसात से बाहर होता; किराया कम होता तो मकान की हालत देख कर तबियत झक हो जाती।

बात यह है कि जिस प्रकार चेतन समाचार-पत्र की अपनी नौकरी से ऊब गया था, उसी तरह चंगड़ मुहल्ले के उस इलाके से भी उसकी तबियत (उसे छोड़ते समय

किंचित उदास होने के बावजूद) भर गयी थी। अब, जब भाई साहब की कृपा से उस इलाके से उसे मुक्ति मिली थी, वह किसी ऐसी जगह घर लेना चाहता था, जो ग्वालमण्डी और नीला गुम्बद दोनों के नज़दीक हो। चन्दा को आगे पढ़ना था। वह श्रीमती कृपाल देवी के विद्यालय में पढ़ती थी और वह ग्वालमण्डी में था। चेतन की इच्छा थी कि उस इलाके के इर्द-गिर्द उसे कोई सस्ता मकान मिल जाय। उसकी पत्नी को समय से विद्यालय और भाई साहब को वक्त से क्लिनिक पहुँचने में आसानी हो। चंगड़ मुहल्ला चन्दा के विद्यालय से बहुत दूर था। फिर चेतन ने उस इलाके को बहुत अच्छी तरह देख लिया था और अब उसके लेखक को वहाँ कोई नया अनुभव प्राप्त होगा, इसकी अधिक सम्भावना नहीं थी। इसके अलावा बड़े भाई के बारे में 'दाँतों का प्रसिद्ध डॉक्टर होने' की बात भी उस मुहल्ले का बच्चा-बच्चा जान गया था और अब चेतन चाहता था कि नये इलाके में जाय; नये लोगों से मिले; नये अनुभव सँजोये; उसके भाई का प्रचार नये लोगों में हो; और नये-नये मरीज़ उनसे इलाज कराने आयें!

वास्तव में जब लाहौर पहुँच कर चेतन को सरदार जगदीश सिंह वाले ख़ूबसूरत, रोशन, हवादार मकान के छूट जाने का पता चला था तो उसे पहले अफ़सोस हुआ था, फिर स्वभावानुसार 'यथा विधाता वधीयते तदैव (मह्यम) शुभाय' की अपनी पुरानी नीति के अनुसार उसने उस बुराई से (अपने लिए) भलाई निकालने की तरकीब सोच ली थी।... नया इलाका हो, चेतन इतना ही न चाहता था, पहले से कद्रे अच्छा हो, यह भी चाहता था। कृष्णा गली का इलाका रेलवे रोड पर नया-नया बना था। रत्नचन्द रोड के साथ, मेयो अस्पताल के चौरस्ते से सब्ज़ीमण्डी के चौरस्ते तक रेलवे रोड की बायीं ओर ख़ाली जगह पड़ी थी। उसी में पिछले कुछ वर्षों से मकान बनने लगे थे। रेलवे रोड की ओर से सीधी गलियाँ अन्दर को जाती थीं, जिन्हें रत्नचन्द रोड की ओर से एक चौड़ा रास्ता ऐन बीचोंबीच काटता था। यह सारी नयी

बस्ती कृष्णा गली कहलाती थी। मेयो अस्पताल के चौरस्ते की ओर से रेलवे रोड पर पहली गली थी। उस पर नम्बर-१ का बोर्ड लगा था। इसके बाद २, फिर ३, फिर ४। मकानों के पृष्ठ-भाग मिले हुए थे और प्रवेश-द्वार गलियों में थे। तीन ओर से बन्द और गली की ओर खुले होने के कारण अधिकांश मकान अँधेरे थे। तो भी कृष्णा गली निम्न-मध्यवर्गीय सफ़ेदपोश लोगों की बस्ती थी। चंगड़ मुहल्ले की तरह चंगड़ों, गूजरों और मज़दूर लोगों की नहीं। फिर चेतन ने जो जगह ली, वह अँधेरी नहीं थी।—रत्नचन्द रोड और गली नम्बर-१ के बीच कुछ जगह ख़ाली पड़ी थी। वहाँ शायद नक्शे के मुताबिक दुकानें बनने वाली थीं, पर चूंकि वह लम्बा टुकड़ा लकड़ी के टाल, पत्थर के कोयले तथा बाँस-बल्ली वालों ने ले रखा था और वहाँ कहीं लकड़ियों की मदद से, कहीं तख़्तों या चादरों के सहारे और कहीं ऊँचे-ऊँचे बाँस-बल्लियाँ धरती में गाड़ कर अहाते बना लिये गये थे, इसलिए वह जगह अपेक्षाकृत खुली थी। चेतन ने मकान का जो हिस्सा लिया, उसके सामने थोड़ी-सी जगह एकदम ख़ाली थी। जिसके पास किराये पर थी, उसने उसे घेरा न था अथवा वह किराये पर ही न चढ़ी थी, जो भी हो, इस खुली जगह के कारण चेतन के पोर्शन की बैठक ख़ासी रोशन थी।...
दिन भर इन गलियों में, एक-एक घर में दस्तक देने पर भी जब उसे कोई पोर्शन ख़ाली न मिला था और वह थक कर जाने लगा था तो उसे इस मकान का पता चला था और दस मिनट में उसे मकान पसन्द आ गया था। मकान नया-नया बना था और इसके निचले दोनों पोर्शन ख़ाली थे। उनमें से दायें वाला चेतन ने लेना तय कर लिया था।

ये दोनों पोर्शन डेवढ़ी तथा आँगन के दायें-बायें थे। डेवढ़ी में प्रवेश करते ही दोनों ओर बैठकें थीं, आँगन में दोनों तरफ़ लम्बे-लम्बे रसोई-घर थे और पिछली ओर एक-एक कमरा। पिछले कमरे यद्यपि कोठरियों से किंचित बड़े थे और 'कमरे' कहला सकते थे, पर न तो उनमें कोई खिड़की थी, न झरोखा। वे ख़ूब अँधेरे थे और दिन को भी वहाँ बत्ती

जलानी पड़ती थी। हाँ, दिन की गर्मी में बाहर से आने पर उनमें कुछ राहत मिल सकती थी। दोनों खण्डों के लिए गर्मी में बाहर सोने के लिए वही छोटा-सा आँगन था—उस गर्मी में, दो मंज़िले मकान के उस छोटे-से आँगन में सोना, नरक की यातना भुगतने के बराबर था। (दूसरी मंजिल के एक खण्ड में मालिक-मकान रहता था और दूसरा किराये पर था। छत पर वही लोग सो सकते थे।) तभी चेतन पर उन खण्डों के खाली होने का राज़ खुला था।. . .लेकिन बरसात बीतने को थी। सितम्बर के महीने में लाहौर की हवा में हलकी-सी ठण्डक आ जाती है और दुकान के तख़्ते पर सोने के बदले चेतन ने इस आँगन में सोना पसन्द किया था। मन में उसने यह भी सोच लिया था कि ज़्यादा गर्मी लगेगी तो गली और सड़क के बीच खुले अहाते में सो जायगा। रहे भाई साहब तो वे गर्मियों भर अपनी उसी बाल्कनी का आनन्द ले सकते थे।. . .अपेक्षाकृत रोशन होने के कारण चेतन ने दायाँ पोर्शन चुना था। बिजली के बिना (यदि कोई हरिकेन जलाना चाहे तो) किराया ग्यारह रुपये था और बिजली समेत कुल तेरह रुपये। उस दिन सुबह ही चेतन ने भाई साहब को मकान दिखा दिया था। वहीं यह भी तय हो गया था कि चेतन किराया देगा और भाई साहब खाने-पीने का ख़र्च देंगे और चेतन ने तेरह रुपये मालिक-मकान को पेशगी दे कर रसीद ले ली थी।

०

मकान की व्यवस्था हो गयी थी और चेतन इन सात दिनों में बराबर कविराजजी के यहाँ दो घण्टे के लिए जाता भी रहा था। लेकिन इन सात दिनों में ही उसे इस बात का भी आभास मिल गया था कि कविराजजी के साथ ज़्यादा दिन उसकी चलेगी नहीं और उसे कहीं-न-कहीं दूसरी जगह नौकरी ढूंढनी होगी। वास्तव में उसने जो पुस्तक उन्हें लिख कर दी थी, उसका एक परिच्छेद उनसे गुम हो गया था और उन्होंने उससे कहा था कि जब तक वे उसके लिए कोई दूसरा काम

निकालते हैं, वह उस परिच्छेद को पुनः लिख दे।

कविराजजी जिस सफ़ाई और सलीके से काम करने के आदी थे, उसमें पूरे एक चैप्टर का गुम हो जाना एकदम अचम्भे की बात थी। चेतन ने हामी तो भर दी थी, पर कैसे वह परिच्छेद उनसे गुम हो गया था, यह बात वह उनसे पूछ न सका था। उत्सुकता उसकी बराबर बनी रही थी। दो दिन पहले उसने यादराम से पूछा था तो मालूम हुआ था कि बीबीजी की ग़लती से छोटे बाबा ने वैद्यजी की किताब ख़राब कर दी थी।

'कैसे ?—कैसे ख़राब कर दी ?' चेतन ने बेसब्री से पूछा था।

तब यादराम ने मन्नी के हवाले से जो बताया, उससे चेतन सिर्फ़ यही जान सका कि उसके शिमला छोड़ने के बाद, कविराजजी अपनी चारपाई उसके कमरे में ले आये थे। एक मेज़ भी उन्होंने वहाँ लगवा ली थी और उस कमरे में बैठ कर वे पुस्तक के मसौदे में संशोधन-परिवर्धन किया करते थे। कुछ परिच्छेद जो उन्होंने ठीक कर लिये थे, उनकी मेज़ पर ही पड़े थे। जाने खिड़की खुली रह जाने से आँधी के कारण अथवा वैसे ही एक परिच्छेद के पन्ने नीचे फ़र्श पर गिर गये। मन्नी बर्तन मल रही थी, नन्हा अपनी माँ के पास था। न जाने बीबी जी क्या काम कर रही थीं, बच्चे को उन्होंने फ़र्श पर छोड़ रखा था। वह घुटनों के बल चलता दूसरे कमरे में गया और उसने पहले ज़मीन पर पड़े काग़ज़ों को दोनों हाथों में ले कर उनका रसास्वादन करने का प्रयास किया। फिर जब इस प्रयास में उसका मुँह कड़वा और ज़बान नीली हो गयी तो काग़ज़ों को फ़र्श पर रख कर वह उन पर बैठ गया और उसने फ़र्श को गन्दा करने के बदले उन्हें गन्दा करना उचित समझा। लेकिन जब उसने (ऐसा मन्नी ने मज़ाक में कहा) देखा कि फ़र्श भी गन्दा हो रहा है तो उसने उसे पोंछने का प्रयास किया। जब सब गड़बड़ा गया तो ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।. . .बीबीजी ने जा कर देखा तो काग़ज़ ही नहीं, बच्चे के हाथ-पैर, टाँगें—सब बुरी तरह गन्दे हो

गये थे। झुँझला कर उन्होंने बच्चे को पीट दिया। उसकी चीखें सुन कर मन्नी राख-सने हाथ लिये हुए किचन से भागी-भागी आयी और उसने बच्चे को उनके चंगुल से छुड़ाया, उसे धोया, उसके कपड़े बदले, फिर आ कर फ़र्श साफ़ किया और काग़ज़ उठा कर बाहर कूड़े पर फेंक आयी।

शाम को जब कविराजजी घर आये और खाना खा कर मेज़ पर बैठे तो उन्हें पूरा एक परिच्छेद गुम मिला। बीबीजी के माथे पर चढ़े तेवर देख कर उन्हें उनसे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने मन्नी को बुला कर पूछा। तब यह जान कर कि अपनी ग़लती पर बीबीजी ने उस नन्हें बच्चे को पीट दिया, उन्हें अपार विक्षोभ हुआ। लेकिन सदा की तरह बरबस अपने क्रोध पर विजय पा कर उन्होंने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि भगवान ने अपनी असीम अनुकम्पा से नन्हें की रक्षा की। यदि काग़ज़ों में लगा आलपिन उसके मुँह में चुभ जाता या कहीं खुल कर अन्दर ही चला जाता या जब वह काग़ज़ पर बैठा था, उसके चूतड़ में चुभ जाता तो ?. . .और भगवान को कोटिशः धन्यवाद देते हुए वे उस जगह गये थे, जहाँ मन्नी काग़ज़ फेंक आयी थी कि मसौदे का कुछ हिस्सा बच सकता हो तो बचा लिया जाय। इस बात को असम्भव जान, वे लौट आये। घर आ कर उन्होंने साबुन से हाथ धोये। बीबीजी को तसल्ली दी कि क्रोध करने की कोई ज़रूरत नहीं, जिसने इतनी बड़ी किताब लिखी है, वह चन्द पन्ने फिर लिख देगा। इसकी ख़ैर मनाओ कि बच्चे का अहित नहीं हुआ।. . .और इसी प्रसन्नता में बच्चे के सिर से वार कर दस रुपये का एक नोट उन्होंने उसी वक्त मन्त्री, आर्य समाज को इस चिट के साथ भेज दिया कि नन्हें को भगवान ने एक दुर्घटना से बचाया है, ये दस रुपये आप भगवान के नाम से किसी ज़रूरतमन्द बच्चे की माँ को दे दीजिए. . .दूसरे दिन वे सारे काग़ज़-पत्र उठा कर दफ़्तर ले गये। लेकिन तीसरे ही दिन उन्होंने घोषणा की कि वे लाहौर जा रहे हैं।

यादराम ने अपनी अनगढ़ देहाती भाषा में यह किस्सा ऐसे सुनाया था कि चेतन को मज़ा आ गया। बहरहाल, उसने फिर से उपयोगी सामग्री इकट्ठी की थी और औषधालय के पिछले कमरे में उसकी मेज़ लगा दी गयी थी, जहाँ कविराजजी के सहयोगी (कविराजजी के निदान के बाद औषधियाँ तजवीज़ करने वाले और छपे हुए फ़ॉर्मों पर ऐन-मैन कविराजजी की तरह हस्ताक्षर करने वाले) वैद्य त्रिलोक चन्द अग्रवाल बैठते थे। वे ही कविराजजी की अनुपस्थिति में उनकी जगह रोगियों को देखते भी थे। चेतन वहीं दो घण्टे बैठ कर काम करता था। इस बार वैद्यजी ने खुले फुलस्केप काग़ज़ नहीं, एक कापी उसे ला दी थी और कहा था कि वह अन्तिम मसौदा उसी पर तैयार करे।

लेकिन इन थोड़े ही दिनों में कविराजजी को महसूस होने लगा था कि चेतन को दो घण्टों में जितना काम करना चाहिए, उतना वह कर नहीं रहा—याने दस-ग्यारह आने रोज़ पाने पर उसे वैद्यजी को जितना काम देना चाहिए था, वह नहीं दे रहा और हँसते-हँसते उन्होंने कहा था, 'भई, अज़ीज़ राजकुमार बड़ी ज़िद कर रहा था कि मुझे चेतन भाई से अंग्रेज़ी में निबन्ध लिखना सीखना है, वे बहुत अच्छा सिखाते हैं। मैंने उससे कहा था कि बेटा, तुम उनके घर जा कर एकाध घण्टा पढ़ लिया करना, यहाँ तो उन्हें टाइम नहीं मिलता।'

चेतन का माथा ठनका था। शिमला के तीन महीने के प्रवास में वह कविराजजी की हर बात और हर भंगिमा का अर्थ समझने लगा था। वह जानता था कि कविराजजी बीस रुपये देंगे तो चालीस का काम लेंगे। पिछले ही दिन उसने उन्हें बताया था कि उसे कृष्णा गली नम्बर-१ में दो कमरे का एक पोर्शन मिल गया है और वह कल से वहाँ चला जायगा। अपने उत्साह में उसने मकान का नम्बर और मालिक मकान का नाम भी बता दिया था कि यदि वैद्यजी को ज़रूरत पड़े तो उसे चपरासी के हाथ नोट भेज कर बुलवा लें और सबेरे जब भाई साहब को मकान दिखाने के बाद, अपने पुराने मित्र रहीम चंगड़ की बैलगाड़ी

ले कर अनारकली के उस कमरे और दुकान की परछत्ती से सारा सामान लाद कर वह कृष्णा गली पहुँचा तो अभी वह सामान उतार ही रहा था, जब कविराजजी का सुपुत्र राजकुमार रत्नचन्द रोड से साइ-किल पर जाता हुआ उतरा और दाँत निकोसते हुए उसने कहा—'अच्छा भाई साहब, यहाँ मकान लिया है आपने ?'. . .यद्यपि उसने पढ़ने-पढ़ाने की कोई बात न की थी, लेकिन चेतन इतने ही से जल-भुन गया था और उसने तय कर लिया था कि उसी वक्त जा कर पण्डित 'रत्न' से कहेगा कि उसे किसी दूसरी जगह कोई काम दिला दें। पण्डितजी दफ़्तर से घर आ कर फिर जल्दी ही निकल जाते थे। चेतन साढ़े पाँच तक उनके घर पहुँच जाना चाहता था, इसलिए वह बिना सामान को ठीक ढंग से रखे, कमरा बन्द कर, मुँह-हाथ धो और कपड़े बदल कर चला आया था।

०

०

अपने ध्यान में मग्न चेतन लोहारी के चौरस्ते पर पहुँच गया। उसका मन था कि सीधे सड़क-सड़क जाने के बदले लोहारी की ओर को ज़रा मुड़ कर, गोलबाग़ में हो जाय। तभी सहसा दायीं ओर 'उर्दू बुक स्टाल' से उठ कर मिर्ज़ा नईम बेग चग़ताई ने छड़ी से उसका रास्ता रोक लिया।

चेतन ने आँखें उठायीं तो हँस कर अभिवादन किया, 'आदाब मिर्ज़ा !'

'आदाब नहीं, आदाब-अर्ज़ बच्चे !' मिर्ज़ा ने कहा और फिर छड़ी वाला हाथ माथे पर ले जाते हुए बड़ी संजीदा अदा से गर्दन को ज़रा-सा झुका कर बोले, 'तस्लीमात अर्ज़ !'. . .फिर उसका बाज़ू थाम कर सड़क से ज़रा एक ओर करते हुए मिर्ज़ा ने कहा, 'उर्दू में लिखते हो, तो सही बोलना भी सीखो ! यहाँ वाले लोग ग़लत उर्दू बोलते हैं, इसीलिए ग़लत लिखते हैं।. . अब मैंने तुम्हारा बाज़ू थाम कर तुम्हें ज़रा सड़क

के किनारे किया है। तुम लोग लिखोगे—'मिर्ज़ा ने चेतन को बाज़ू से पकड़ कर सड़क के किनारे किया।' ग़लत! सरासर ग़लत! बाज़ू से कभी किसी को पकड़ा जाता है? पकड़ा जाता है, हाथ से!'

और मिर्ज़ा ने छड़ी की मूठ पर दबाव देते हुए, गर्दन को ज़रा खम दे कर दाद पाने के अन्दाज़ में चेतन की ओर देखा।

'पंजाबियों की किस्मत में ज़बान को 'ग़लत-उल-आम-फ़सीह'[1] बनाना ही लिखा है।' चेतन ने पीछा छुड़ाने के उद्‌देश्य से कहा।

'क्या मतलब!' मिर्ज़ा की बड़ी-बड़ी आँखें बेतरह फैल गयीं।

'पंजाबी ग़लत उर्दू बोलते और ग़लत लिखते हैं,' चेतन ने कहा, 'लेकिन वे ग़लतियाँ आम हो जायँगी तो उस्ताद लोग उसी भाषा को आम-फ़हम और इसीलिए सही मान लेंगे।'

मिर्ज़ा को चेतन से इस जवाब की उम्मीद न थी। निमिष भर को वे चुप रह गये। फिर उन्होंने झुँझला कर कहा, 'पर तुम्हारे यार पण्डित रत्न तो ऐसा नहीं सोचते। वे तो अपनी ज़बान मुझसे ठीक कराते हैं—कैसी बामुहावरा और फ़सीह ज़बान लिखते हैं!'

'आपके इल्म का फ़ायदा तो मैं भी उठाऊँगा,' चेतन हँसा, 'वो तो मैंने उन पंजाबियों की बात की थी, जो आपके इस इल्म का फ़ायदा नहीं उठा सकते।'

मिर्ज़ा खुश हो गये। फिर उन्होंने ज़माने की कोरज़ौकी[2] और ना-कदर-शनासी[3] पर एक लम्बी साँस ली और सिर को झुका कर तर्जनी ऊपर आसमान की ओर उठा दी—कि सब ऊपर वाले की मर्जी है।

चेतन को लगा जैसे मिर्ज़ा खड़े-खड़े ही मराक़बे[4] में चले गये हैं। उसने उन्हें नहीं टोका। पल भर बाद उन्होंने स्वयं ही, और भी

---

१. वे ग़लत प्रयोग, जो जनता की बोली में दाख़िल हो कर सही मान लिये जाते हैं। २. अरसिकता। ३. गुणज्ञता का अभाव। ४. समाधि।

लम्बी साँस लेते हुए सिर उठाया, आँखें खोल दीं और चेतन से पूछा, 'इस वक्त किधर जा रहे हो ?'

'पण्डितजी के यहाँ।'

'इधर से कैसे ?'

'मैं गोलबाग़ में से हो कर फिर भाटी की सड़क पकड़ लूँगा।' चेतन ने कहा।

'अपने यार को मेरा सलाम देना।'

और छड़ी को माथे तक ले जा कर सलाम करते हुए मिर्ज़ा अनारकली की ओर बढ़ गये और चेतन गोलबाग़ को हो लिया।

पाँच
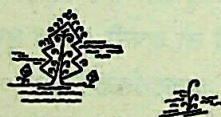
चेतन को जब भी अनारकली और लोहारी गेट के चौरस्ते से मोरी या भाटी गेट की ओर जाना होता, वह सीधा सरक्युलर रोड से जाने के बदले, लोहारी दरवाज़े की ओर से, गोलबाग़ में से हो कर जाता ।

पुराने लाहौर के चारों ओर बड़ी चौड़ी खन्दक थी । अंग्रेज़ों ने उसे पाट कर, उसमें पेड़-पौदे लगा दिये थे । वह नहर, जिससे खन्दक में पानी आता था, छोटे-से पक्के रजबहे के रूप में परिवर्तित कर दी थी, जो इस बाग़ के बीचोंबीच बहती थी । जहाँ शहर के दरवाज़े आते, यह नहर सड़क के नीचे हो कर फिर बाग़ में जा निकलती थी । चूँकि यह बाग़ शहर के चारों तरफ़ था, इसलिए नाम गोलबाग़ पड़ गया था ।. . .कभी जब चेतन रेलवे स्टेशन से आता तो सरक्युलर रोड के साथ ही दायीं ओर शुरू हो जाने वाली गोलबाग़ की हरी पट्टी अनायास उसका ध्यान खींच लेती । नहर पर कहीं कुछ औरतें कपड़े धो रही होतीं; कहीं बच्चे नहा रहे होते; कहीं बगुले मछलियों की ताक में बड़े धैर्य से बैठे होते । लेकिन चेतन कभी उधर से हो कर न आता, क्योंकि

गोलबाग़ का यह भाग खासा सूना और बेरौनक था। लेकिन लोहारी गेट से मोरी गेट तक वाले हिस्से में बड़ी रौनक होती—कहीं पेन्शनर बुड्ढे बैठे तात्कालिक राजनीति पर बहस कर रहे होते और महात्मा गान्धी की मूर्खता का बखान करते हुए, नये ज़माने को कोस रहे होते। उनकी समझ में यह न आता कि तोपों-तलवारों से लैस सेनाओं वाली अंग्रेज़ी सरकार को यह नंगा फ़कीर महज़ चर्खे के बल पर कैसे हरा देगा।. . .कुछ, जिन्हें दूसरों के साथ बैठना नहीं भाता था, चुपचाप बैठे यादों के मनके पिरो रहे होते। कहीं आवारा बेकार युवक बैठे ताश खेल रहे होते। कहीं चौपड़ अथवा शतरंज बिछी होती। एक छोटा-सा मन्दिर भी बना था, वहाँ कुछ लोग घुँघरूओं वाले सोंटे से भाँग घोंट रहे होते!. . .मोरी दरवाज़े के बाहर काँग्रेस अथवा दूसरी सभा-सोसाइटियों की सभाएँ होतीं। कुछ लोग यों ही घास में अधलेटे आराम कर रहे होते। कहीं बच्चे पतंग उड़ा रहे होते. . .चेतन इन सबका नज़ारा करता बढ़ा जाता. . .

मिर्ज़ा नईम बेग चग़ताई से (जिन्हें पण्डित 'रत्न' मज़ाक में चहीम बेग नग़ताई कहा करते थे) मिलने के बाद जब चेतन गोलबाग़ में दाखिल हुआ तो वह इर्द-गिर्द के वातावरण से एकदम बेखबर हो गया। मिर्ज़ा का पूरे-का-पूरा सरापा उसके साथ चला आया—लम्बा छरहरा कद, नुकीला चेहरा, पचास-पचपन की उम्र, कटी-छँटी नुकीली खिचड़ी दाढ़ी, कद्रे मोटी, पर चेहरे पर सजती नाक, बड़ी-बड़ी, एहसास और हैरत-भरी आँखें—मिर्ज़ा जवानी में खासे सुन्दर रहे होंगे। इधर उम्र और संघर्षों के बोझ से वे किंचित झुक कर चलने लगे थे, जिससे उनकी गुद्दी के नीचे, कन्धों के बीच एक छोटा-सा कोहान बन जाता था और मिर्ज़ा कुछ कम लम्बे लगते. . .चेतन गोलबाग़ की ओर मुड़ने से पहले क्षण भर को उन्हें जाते देखता रहा था। वह जब-जब उनसे मिलता था, उन्हें ऐसे ही देखने लगता था, क्योंकि घोर ग़रीबी के बावजूद उनके चेहरे से कुछ विचित्र-सा आभिजात्य झलकता था। उनके आचार-व्यवहार में सुरुचि-

सम्पन्नता और बोल-चाल में नज़ाकत और नफ़ासत थी। इस सब के बावजूद उनकी तबियत में एक अजाना फक्कड़पना था और यह दिलचस्प बात है कि उस तमाम फक्कड़पनें के साथ ही उनके यहाँ कुछ अजीब-सी गम्भीरता थी।

०

०

और बाग़ में से जाते हुए चेतन की आँखों ने सहसा उन दृश्यों को देखना छोड़ दिया, जिनके कारण सीधी सड़क छोड़ कर उसने बाग़ का मार्ग अपनाया था। उनके बदले मिर्ज़ा से सम्बन्ध रखने वाली गत दो वर्षों की कई झाँकियाँ उसकी आँखों में प्रोद्भासित हो उठीं।

०

०

. . .समाचार पत्र में आये हुए कुछ ही महीने हुए हैं। वह दफ़्तर में खिड़की के पास बैठा प्रकट खिड़की के प्रकाश में प्रूफ़ पढ़ रहा है, पर उसकी आँखें बार-बार गली के पार—सामने दो-मंज़िले मकान के खुले झरोखे में खड़ी युवती की ओर उठ जाती हैं—युवती दफ़्तर के लम्बे सींकिया ख़ज़ानची की बीवी है—काले पत्थर की सुडौल, सुगढ़ मूर्ति-ऐसी! तीखी सुतवाँ नाक, नुकीली ठोड़ी, भरे गाल, चौड़ा माथा और देवियों-सी बड़ी-बड़ी आँखें! श्याम रंग की कोई युवती भी इतनी सुन्दर हो सकती है, यदि चेतन ने उसे न देखा होता तो सुनने पर कभी विश्वास न कर पाता। उसकी आवाज़ अपने तीखेपन के बावजूद इतनी मीठी है कि जब वह कभी खिड़की में आती है और नीचे खोंचे वाले अथवा किसी पड़ोसिन से बतियाती है तो चेतन का दिल बेतरह धड़क उठता है।

. . .वह पड़ोसिन से बतिया रही है। उसके स्वर की मिठास चेतन के कानों में निरन्तर रस उँडेल रही है। उसकी निगाहें बार-बार उधर को उठ जाती हैं। तभी दफ़्तर के आँगन में बड़े ज़ोरों का शोर उठता है। चेतन क्षण भर तक कुछ भी नहीं सुनता। उसके कान उस काले

पत्थर की बोलती हुई मूर्ति की बातें सुनने में लगे हैं। पर जब शोर बढ़ता ही जाता है और सम्पादक के अलावा सभी लोग आँगन की ओर भागते हैं तो चेतन भी अनिच्छापूर्वक उधर जाता है। देखता है कि मिर्ज़ा नईम वेग खज़ानची को और सम्पादक को और मैनेजिंग डायरेक्टर को वेतहाशा मल्लाहियाँ सुना रहे हैं। खज़ानची अपना सींकिया, लम्बा शरीर लिये, उन्हें समझाने की कोशिश करता है, पर वे और भी बिफर जाते हैं।. . .पूछने पर चेतन को मालूम होता है कि मिर्ज़ा ने कुछ ही दिन पहले साम्प्रदायिक संस्थाओं—अहरार पार्टी तथा आर्य स्वराज्य सभा—के आन्दोलनों पर व्यंग्य करते हुए छद्म नाम से जो कविता लिखी थी, उसके पाँच रुपये उन्हें नहीं मिले। खज़ानची ने आज रुपया देने का वादा किया था पर पैसे देने के बदले उन्हें मैनेजिंग डायरेक्टर से जा कर शिकायत करने को कहता है। (चेतन के समाचार पत्र में ऐसी कोई-न-कोई घटना लगभग रोज़ होती है—खज़ानची के पास पैसे न हों तो वह वेचारा क्या करे !) जब मिर्ज़ा का क्रोध किसी तरह शान्त नहीं होता और लगता है कि अगर तत्काल उन्हें चुप नहीं कराया जाता तो सारी गली इकट्ठी हो जायगी, तब अख़बार के (डमी) सम्पादक लाला धनपत राय बी० ए० (नेशनल) अपनी लम्बी-पतली नाक और गोरे-चिट्टे महाशयी चेहरे के साथ नथुने फड़काते और तुनकते हुए बाहर आते हैं और अपनी खादी की कमीज़ से पाँच रुपये का नोट निकाल कर उन्हें देते हैं। मिर्ज़ा नोट को तहा कर अँगरखे की जेब में रखते हुए कहर-भरी नज़र से सब की ओर देखते हैं और भुनभुनाते चल देते हैं।

. . .चेतन फिर दफ़्तर में आता है। कुर्सी पर बैठने से पहले वह क्षण भर को खिड़की में जा खड़ा होता है। देवी (कदाचित अपने देवता की प्रशंसा में मिर्ज़ा की उपाधियाँ सुन कर) अन्तरधान हो गयी हैं। मिर्ज़ा कन्धे झुकाये तेज़-तेज़ चले जा रहे हैं। उनका कूबड़ और भी उभर आया है—चेतन उपेक्षा से मुँह फेर कर कुर्सी पर जा बैठता है। उस कवि के लिए, जो दूसरों के आदेश पर महज़ रुपयों के लिए कविता

लिखता है, उसके मन में कोई आदर नहीं, फिर ऐसा कवि, जो पाँच रुपल्ली के लिए इतना ज़मीन-आसमान एक कर दे—उँह !

और वह फिर प्रूफ़ पढ़ने में तल्लीन हो जाता है।

०

. . .एफ़० सी० कॉलेज के हॉल में मुशायरा है । चेतन भी आमंत्रित है और सभा के अध्यक्ष की कुर्सी के पीछे लगी कुर्सियों की पंक्ति में एक किनारे बड़े ही नामालूम ढंग से कुर्सी पर बैठा है। लाहौर के मुशायरों से उसे बड़ी घबराहट होती है। लड़के कब किसी शायर की लू-लू बोल दें, इसका कोई ठिकाना नहीं । चेतन ने ऐसे अवसरों के लिए ख़ास प्रबन्ध कर रखा है। उसने एक हास्य-रस की ग़ज़ल लिख रखी है :

शेख़ की दाढ़ी सफ़ाचट हुई मिस की ख़ातिर
रंग आलम का बदलता नज़र आता है मुझे ।

इस ग़ज़ल के दो शे'र हैं, जिन्हें सुन कर लाहौर के युवक अनायास ठहाके मारते हुए 'मुकर्रर,' 'मुकर्रर' चिल्लाने लगते हैं। पहला शे'र है :

आज कल बूट मेरे घिस के बने हैं जूता
रात को ख़्वाब में 'भल्ला' नज़र आता है मुझे ।

(भल्ला—याने कॉलेज के छोकरों की चहेती, फ़्लेक्स के जूतों की प्रसिद्ध दुकान 'भल्ले दी बसन्ती हट्टी' का मालिक लाला धनीराम भल्ला —उसी की ओर चेतन का इशारा है।) दूसरा शे'र है :

सर से फ़ौरन ही उछल पड़ती है मेरी पगड़ी
उनके जब हाथ में. . .

चेतन शे'र कहता हुआ यहाँ निमिष भर को रुकता है कि लड़के चिल्ला उठते हैं :

. . .जूता नज़र आता है मुझे ।

और ठहाके और तालियाँ और 'मुकर्रर इरशाद' के नारे ।

और उस वक्त जब लड़के ठहाके मार रहे होते हैं, वह एक गम्भीर

ग़ज़ल के चन्द अशआर जल्दी-जल्दी पढ़ कर अपनी जगह सकुशल आ बैठता है।. . .एफ़० सी० कॉलेज के उस मुशायरे में जब उसकी बारी आती है, तो वह यही करता है और किसी दुर्घटना के बिना अपनी कुर्सी पर वापस आ जाता है. . .

मिर्ज़ा आगे की पंक्ति में अध्यक्ष के साथ ही बैठे हैं। उनका गर्म अचकन और टोपी धुली तो नहीं, पर उन्होंने उसे इस्त्री ज़रूर कराया है और पायजामा भी धोबी-धुला पहन रखा है। छड़ी को तख्त पर ज़रा टेढ़ी टेके, उसकी मूठ पर दोनों हाथ टिकाये, उस पर ठोड़ी रखे, वे अत्यन्त गम्भीर भाव से मुशायरे की कार्रवाई देख रहे हैं। बीच में सिर उठा कर किसी अच्छे शे'र पर 'मरहबा,' 'सुबहान अल्लाह' कहते हुए दाद भी दे रहे हैं।. . .अपनी बारी पर वे उठते हैं। छड़ी पर दोनों हाथों का ज़ोर कुछ और बढ़ा कर, हॉल की छत के कोने को जैसे अपने दिल का महरम[1] बनाते हुए वे बड़ी अदा से अपनी ग़ज़ल की पहली पंक्ति पढ़ते हैं :

नहा के आज वो निकले बदन चुराये हुए

कि हॉल में एक बेपनाह शोर बुलन्द हो जाता है। चेतन की नज़र सामने पहली पंक्ति में बैठे एक लड़के पर जाती है—लगता है जैसे उसे चाबी लगी हुई है। पंक्ति खत्म होते ही वह अपनी जगह घुटनों के बल बैठता है। दाद देने के अन्दाज़ में हाथ आगे बढ़ाता है। ठोडी को आगे करके और मुँह को अजीब तरह टेढ़ा करते हुए वह पहले मिसरा उठाता है—नहा के आज वो निकले बदन चुराये हुए—फिर निमिष भर का अन्तराल दे कर चिल्लाता है, 'वाह. . .ववाह. . .सुबहान अल्लाह. . .क्या कहने हैं. . .ज़रा फिर पढ़िए . .(स्वयं ही झूमते हुए) क्या मिसरा कहा है . .नहा के आज वो निकले बदन चुराये हुए. . .वाह, ववाह. . .वाह मुकर्रर. . .मुकर्रर. . .'

---

१. राज़दान।

लगता है जैसे वह अपनी सदा और अपनी अदा पर ख़ुद ही लट्टू है और उसे हॉल में किसी और के होने का होश नहीं। अनवरत वह टेढ़ा-सीधा हो कर, झूम-झूम कर चिल्लाये जा रहा है. . .और हॉल में ऐसे और भी लड़के हैं।

मिर्ज़ा कुछ क्षण हतप्रभ से वैसे ही खड़े रहते हैं। फिर दोबारा वही पंक्ति पढ़ते हैं।

अबकी लड़का उचक कर खड़ा हो जाता है। 'वाह. . .ववाह. . . वाह। अबद[1] तक पढ़ते जाइए, क्या मिसरा है—नहा के आज वो निकले (रुक कर और आँख दबा कर और बदन चुराने की नकल करके) बदन चुराये हुए. . .'

मिर्ज़ा छत से नज़रें हटा कर हॉल में बैठे श्रोताओं पर डालते हैं। वहाँ अजीब हड़बोंग मचा है। क्षण भर वे उसी तरह खड़े रहते हैं, फिर जैसे उठे थे, वैसे ही पीछे रखी कुर्सी पर बैठ जाते हैं, और दोनों हाथों पर ठोड़ी टिका कर मुटर-मुटर तकने लगते हैं।

लड़के लाख शोर मचाते हैं। अध्यक्ष अपनी सीट पर खड़े हो कर उनसे पूरी ग़ज़ल पढ़ने की 'इस्तदुआ'[2] करते हैं। लेकिन मिर्ज़ा टस-से-मस नहीं होते। पंजाबी छोकरों की इस कोरज़ौकी पर वे हॉल से उठ कर चले जाते हैं।

०

. . .चेतन पैसा अख़बार स्ट्रीट में घर की ओर जा रहा है कि डाकख़ाने के पास अपनी फ़ार्मेसी में बैठे हुए मुन्शी गिरिजाशंकर अपनी दरियाई घोड़े की-सी मूँछों में मुस्कराते और पान तथा तमाखू की कालिमा से काले पड़ जाने वाले अपने दाँत दिखाते हुए उसे आवाज़ देते हैं—'चेतन जी, ज़रा इधर तशरीफ़ लाइए! आपको हिन्दुस्तान के अज़ीम शायर से मिलायें!'

चेतन सीढ़ियाँ चढ़ कर फ़ार्मेसी में जा पहुँचता है। वहाँ धोबी का

---

१. सृष्टि के अन्त तक। २. प्रार्थना

धुला चुन्नटदार मलमल का कुर्ता और लट्ठे का पायजामा पहने, गले में ताज़ा इस्त्री किया हुआ अँगरखा सजाये और सिर पर दुपल्ली लगाये मिर्ज़ा बड़ी शान से बैठे 'नासिख़' और 'आतिश' की भोड़ का कोई किस्सा सुना रहे हैं. . .चेतन ने उन्हें कई बार अपने दफ़्तर में नज़्म देने आते, फ़ज़ल बुक डिपो पर पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठ पलटते, उसी की तरह लाहौर के गलियाँ-बाज़ार पैदल नापते, मुशायरे में सम्मिलित होते देखा है। उसके मन में उन्हें कुछ और जानने की आकांक्षा भी इधर बलवती हो उठी है, पर किसी ने उसका परिचय उनसे नहीं कराया।

वह कमरे में जा कर दोनों को 'आदाब अर्ज़' करता है। मुन्शी गिरिजाशंकर मिर्ज़ा को उसका परिचय देते हैं और फिर चेतन को बताते हैं कि मिर्ज़ा हिन्दुस्तान के मशहूर अदीब तथा यू० पी० के प्रसिद्ध अदब-नवाज़ ख़ानदान के जगमगाते रुक्न[1] हैं और उन्हें नज़्म और नस्र पर यकसाँ दस्तरस हासिल[2] है. . .वग़ैरह. . .वग़ैरह. . .

मिर्ज़ा बड़े रंग में हैं। उनके चेहरे पर जोश की लाली और आँखों में चमक है।

'हाँ तो मैं कह रहा था, मुन्शी साहब,' चेतन की 'आदाब अर्ज़' के जवाब में सरसरी-सी 'तस्लीमात अर्ज़' दाग़ कर अपनी बात जारी रखते हुए मिर्ज़ा कहते हैं, 'जब उस्ताद नासिख़ महफ़िल में पहुँचे तो जल्सा करीब-करीब ख़त्म हो चुका था, लेकिन ख़्वाजा हैदरअली 'आतिश' और कुछ दूसरे शायर अभी मौजूद थे। वो जा कर बैठे तो रस्मी ता'ज़ीम और मिज़ाज-पुरसी के बाद[3] उन्होंने पूछा, 'क्यों भई क्या बहुत देर हो गयी ?'

'हाँ,' किसी ने कहा, 'सब को आपका इश्तियाक[4] रहा।'

---

१. स्तम्भ। २. पद्य तथा गद्य पर समान अधिकार प्राप्त है।
३. औपचारिक अभिवादन और मिज़ाज का हाल पूछने के बाद।
४. औत्सुक्य।

तभी शमग्र उनके सामने आयी और उस्ताद 'नासिख़' ने उन साहब की तरफ़ देखते हुए मतला पढ़ा :

जो ख़ास हैं, वो शरीके-गुरोहे आम नहीं

(एक मिसरा कह कर मिर्ज़ा अपनी ही बात काटते हुए कहते हैं, 'यहाँ पंजाब में आम लोग गुरोह को गिरोह या गरोह कहते हैं, हालाँकि सही लफ़्ज़ गुरोह है !') और अपनी बात जारी रखते हैं, 'हाँ तो पहलवाने-सुख़न उस्ताद 'नासिख़' ने मतला पढ़ा :

जो ख़ास हैं, वो शरीके-गुरोहे-आम नहीं
शुमार दाना-ए-तसबीह में इमाम नहीं ।[1]

वजाहृ, 'आतिश' को लगा कि उन पर चोट की गयी है । उन्होंने ग़ज़ल पढ़ी तो एक मतला फ़िलबदीह[2] जोड़ दिया :

यह बज़्म वो है कि 'लाख़ैर' का मुकाम नहीं
हमारे गंजिफ़ा में बाज़ि-ए-ग़ुलाम नहीं ।[3]

शेख़ 'नासिख़' ग़ुलाम नहीं थे, लेपालक (दत्तक) थे, लेकिन चोट करने वाले उस बारीकी की कब परवा करते हैं । 'आतिश' ने 'लाख़ैर' याने जिनकी कोई ख़ैर-ख़बर लेने वाला न हो और 'ग़ुलाम'—याने पाले हुए—इन दो अलफ़ाज़ से उस्ताद 'नासिख़' के वालिद की ग़रीबी और दूसरे बाप के ज़रिये परवरिश पाने पर चोट की ।. . .लेकिन बाद में पढ़ने वाले, 'नासिख़' के एक शागिर्द ने उसी मुशायरे में 'आतिश' के उस हमले का जवाब दिया और हकीकत यह है, और जैसा कि मौलाना

---

१. जो विशिष्टता लिये हुए हैं, वे जनता की भीड़ में शामिल नहीं, ऐसे ही जैसे नमाज़ पढ़ाने वाले इमाम की गिनती माला के मनकों में नहीं होती । २. उसी वक्त-आशु काव्य के रूप में । ३. हमारी ताश में ग़ुलाम का कोई खेल नहीं ।

आज़ाद ने अपने 'आबेहयात' में ज़िक्र भी किया है, लाजवाब दिया। 'नासिख' के शागिर्द ने मतला पढ़ा और उस्ताद 'आतिश' को सुना कर पढ़ा :

जो खास बन्दा है, वो बन्दा-ए-अवाम नहीं
हज़ार बार जो यूसुफ़[1] बिके ग़ुलाम नहीं।'

मिर्ज़ा जब किस्सा खत्म कर चुकते हैं और मुन्शी गिरजाशंकर दाँत निकोसते हुए उनकी प्रशंसा कर लेते हैं तो चेतन कहता है कि उसने मिर्ज़ा का नाम तो बहुत सुना है, लेकिन मुलाकात का शरफ़ हासिल नहीं हुआ।[2] उर्दू तो उसने बाकायदा नहीं पढ़ी, लेकिन उसे भी कुछ शेर-ो-शायरी और अफ़साना-नवीसी का शौक है, उनकी सोहबत में बैठ कर वह कुछ सीख सकेगा।

तब मुन्शी गिरजाशंकर बताते हैं कि मिर्ज़ा उसी बाज़ार के एक अहाते में आ गये हैं और उन लोगों के पड़ोसी हो गये हैं और चेतन उसी वक्त उनके साथ जा कर उनका निवास-स्थान देख आता है— बड़े से दरवाज़े के अन्दर एक अहाते में टाट के पर्दे का एक घेरा दिखा कर मिर्ज़ा बताते हैं कि उसी में रहते हैं, चेतन जब आये, वहीं से आवाज़ दे ले।

०

. . .शाम का वक्त है, चेतन दफ़्तर से आता हुआ उनके यहाँ जा पहुँचता है। मिर्ज़ा टाट की बनी चार दीवारी में टाट ही के पर्दे के दरवाज़े में से उसे अन्दर आने को कहते हैं। अन्दर जा कर चेतन देखता है कि पक्की इंटों की दो पुरानी कोठरियाँ हैं। उनके सामने बाँसों और टाट

---

१. एक पैग़म्बर थे, जो बेहद खूबसूरत थे। उनके भाइयों ने उन्हें कुएँ में डाल दिया था, जिन लोगों ने निकाला, उन्होंने ग़ुलाम बना कर बेच दिया। मिस्र की साम्राज्ञी ज़ुलेखा ने उन्हें खरीदा। वह सम्राट को भूल उनसे प्रेम करने लगी थी। २. इज्जत नहीं मिली।

की मदद से थोड़ी जगह घेर कर दो अलग-अलग अहाते बना लिये गये हैं। इधर के अहाते और कोठरी में मिर्ज़ा निवास करते हैं, दूसरे में कोई दूसरा परिवार रहता है। अन्दर कोठरी से कपड़े की एक पुरानी ईज़ी चेयर निकाल कर मिर्ज़ा बाहर अहाते में बिछा देते हैं। स्वयं वे ज़रा-सी लोहे की अँगीठी सुलगा कर शाम के लिए एलमोनियम की छोटी-सी पतीली में सालन पकाने का प्रबन्ध करते हैं—कुछ अजीब-सी, गोबर, मूत्र, बकरियों की मेंगनियों, कीचड़-सीलन और न जाने किस-किस चीज़ की बू वातावरण में बसी हुई है। लेकिन चंगड़ मुहल्ले में रहने से चेतन के नथुने इस मिली-जुली बू के अभ्यस्त हैं।. . .चेतन को मिर्ज़ा की ग़रीबी देख कर अफ़सोस होता है। मिर्ज़ा सालन पकाने की भी व्यवस्था किये जा रहे हैं और चेतन पर फब्तियाँ भी कसे जा रहे हैं। चेतन अनायास ज़ोर से हँस देता है। सहसा पर्दे के दूसरी ओर सूराख में से दो जवान आँखें झाँकती हैं। चेतन का हृदय एक धड़कन मिस कर जाता है।

०

. . .कुछ दिन बाद फिर शाम को चेतन उसी अहाते में उस कुर्सी पर बैठा है। उसे हैरत होती है कि हिन्दुस्तान का एक अज़ीम (अज़ीम न भी सही) शायर, जिसकी उम्र शे'र कहते गुज़र गयी, इस कोठरी और गन्दे अहाते में रहने को विवश है। क्या जब वह इस उम्र को पहुँचेगा, वह भी उन्हीं की तरह चंगड़ मुहल्ले की ग़लाज़त में सड़ रहा होगा। . . .नहीं, वह इससे निकल जायगा।. . .तभी बड़े ही चंचल मीठे स्वर में कोई लड़की उधर बतियाने लगती है। जब चेतन मिर्ज़ा की किसी बात पर ज़ोर से हँसता है और उधर लड़की का चंचल स्वर लहराता है तो मिर्ज़ा सालन छौंकते हुए मुँह-आँख दबा कर कहते हैं, 'बच्चे! ज़रा खयाल रखना, ख़ून बड़ा मीठा है हमारी पड़ोसिन का. . .' और उनकी आँखों में कुछ अजीब-सी शरारत चमक जाती है।

०

. . .उसी टाट से घिरे अहाते में शाम के वक्त चेतन उसी ईज़ी चेयर पर बैठा है और मिर्ज़ा साहब 'जुरंत' (शेख़ कलन्दर बख़्श जुरंत) के किस्से सुना रहे हैं।—जुरंत किस तरह अपने अन्धे होने का स्वांग धर कर अमीरों की हरमसराओं में जाने लगे और अपने चुटकुलों और नकलों से नाज़नीनों का मन बरमा कर उनके हुस्न से लुत्फ़ उठाने लगे और किस तरह उस प्रक्रिया में सचमुच अन्धे हो गये—इस सब का उल्लेख करने के बाद मिर्ज़ा चेतन को बताते हैं, कैसे जुरंत नवाब शुजाउद्दौला के साथ मुर्शिदाबाद चले गये और मशहूर भाँड 'करेला' से उनकी नोंक-झोंक हुई।

चेतन के सामने मिर्ज़ा एक खोखे की पेटी को उल्टा कर के उस पर बैठे किस्सा सुना रहे हैं कि करेला की बात चलते ही सहसा उठ कर खड़े हो जाते हैं—'करेला, पुराना ख़ुर्राट,' वो कहते हैं, 'दिल्ली का मशहूर भाँड, नवाब के साथ मुर्शिदाबाद गया था। एक दिन महफ़िल में उसका तायफ़ा हाज़िर था। शेख़ जुरंत भी वहाँ मौजूद थे। उसने नकल की। एक हाथ में लकड़ी ले कर दूसरा अन्धों की तरह बढ़ाया। टटोल-टटोल कर काँपते-लरज़ते चलने लगा और बोला, 'हुज़ूर मुलाहिज़ा हो, शायर भी अन्धा, शे'र भी अन्धा, मज़मून भी अन्धा :

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है
कहाँ है, किस तरफ़ को है, किधर है।'

और 'कहाँ है,' 'किस तरफ़ को है,' 'किधर है' कहते और अन्धे की तरह टटोलते हुए मिर्ज़ा नईम बेग 'करेला' की ऐसी नकल दिखाते हैं कि चेतन को मज़ा आ जाता है।

फिर वे उसी पेटी पर आ बैठते हैं और बात जारी रखते हैं—उनकी आँखों में वही पुरानी चमक आ जाती है, चेहरे पर नया रंग दौड़ जाता है—'शेख़ साहब नकल सुन कर बहुत नाराज़ हुए, लेकिन थे तो 'इन्शा' और 'कतील' की टोली के। घर आ कर उन्होंने उसकी हज्व[1]

---

१. किसी की निन्दा में लिखी कविता

कह दी और ख़ूब खाक उड़ायी। सुन कर 'करेला' बहुत कड़बड़ाया। दूसरे जल्से में उसने फिर अन्धे की नकल की। उसी तरह लाठी ले कर फिरने लगा और लुत्फ़ यह कि ग़ज़ल भी जुर्रत ही की चुनी :

इमशब किसी काकुल की हिकायात है वल्लाह[1]
क्या रात है, क्या रात है, क्या रात है वल्लाह
आलम है जवानी का जो उभरा हुआ सीना
क्या गात है, क्या गात है, क्या गात है वल्लाह
जुर्रत की ग़ज़ल जिसने सुनी उसने कहा वाह
क्या बात है, क्या बात है, क्या बात है वल्लाह'

और ग़ज़ल सुनाने के बाद मिर्ज़ा उठ खड़े होते हैं और हाथ बढ़ा, लाठी ले कर अन्धे की तरह चलने की नकल करते हुए बताते हैं कि कैसे 'करेला' ने इस ग़ज़ल को जल्से में पढ़ा और कैसे पहले शे'र में हर बार 'क्या रात है' कहते हुए लकड़ी का सहारा बदला। 'करेला' की नकल करने में मिर्ज़ा हाथ और टाँगों को अन्धे की तरह से ऐसे कँपाते हैं कि चेतन 'वाह वा' कर उठता है।

तभी उसकी नज़र (और अजीब बात है कि ऐन उस वक्त मिर्ज़ा की नज़र भी) सामने टाट के छेद पर जाती है। दो आँखें उस छेद पर लगी हुई हैं।

मिर्ज़ा ग़ज़ल के दूसरे शेर भी उसी तरह पढ़ते हैं। और भी जोश से 'क्या गात' और 'क्या बात' पर लाठी का सहारा बदलते हैं, काँपते-लरज़ते हैं और चेतन दुगुने जोश से दाद देता है।

वे आँखें पर्दे से हट जाती हैं, मिर्ज़ा उसी खोखे पर आ बैठते हैं और 'जुर्रत' का एक दूसरा किस्सा सुनने लगते हैं :

'एक दिन इन्शा जुर्रत की मुलाकात को आये। देखा तो सर झुकाये बैठे कुछ सोच रहे हैं। उन्होंने पूछा कि हज़रत किस फ़िक्र में बैठे

---

१. आज रात किसी की ज़ुल्फ़ों के किस्से हैं।

हो ? जुर्रत ने कहा—एक मिसरा हुआ है और खूब हुआ है, लेकिन जब तक दूसरा मिसरा न होगा, न सुनाऊँगा, नहीं तो तुम मिसरा लगा कर छीन लोगे। इन्शा ने बहुत ज़ोर दिया तो आख़िरकार 'जुर्रत' मान गये और उन्होंने मिसरा पढ़ा :

उस ज़ुल्फ़ पे फब्ती शबे-देजूर[1] की सूझी

इन्शा ने फ़ौरन कहा :

अन्धे को अँधेरे में बहुत दूर की सूझी।

चेतन ज़ोर से ठहाका मार कर हँसता है। वे आँखें फिर छेद से आ लगती हैं। चेतन का ध्यान बँट जाता है। निमिष भर उधर देख, वह फिर मिर्ज़ा पर निगाहें जमा देता है। सहसा उसे उन पर तरस आने लगता है।—इतना बड़ा शायर, इतना बड़ा लतीफ़ा-गो। इन्शा और जुर्रत के ज़माने में होता तो क्या उनकी तरह शाही दरबारों में इज़्ज़त न पाता और हठात उसके मन की बात उसके होंटों पर आ जाती है—'मिर्ज़ा आप इस नाक़द्रशनास अंग्रेज़ी ज़माने में पैदा हुए, वरना अगर आप उस ज़माने में होते तो यक़ीनन 'जुर्रत' और 'इन्शा' से ज़्यादा क़द्र-ो-मंज़िलत[2] पाते।'

अचानक मिर्ज़ा एक लम्बी साँस लेते हैं और पैर भी खोखे पर रख, घुटनों को बाहों में बाँध कर बैठ जाते हैं। चेतन चाहता है वे कोई बात करें, पर वे कोई बात नहीं करते, उसी तरह घुटने बाँहों से बाँधे सिर नेहुड़ाये मौन बने रहते हैं। वे आँखें पर्दे से हट जाती हैं, मिर्ज़ा वैसे ही उदास बैठे रहते हैं, उनका मुँह सहसा सुत कर लम्बा-सा हो जाता है। कुछ देर यूँ ही बैठे रह कर अचानक कहते हैं, 'ख़्वाजा मीर दर्द की एक ग़ज़ल है। सुनोगे ?'. . .और बिना उसका जवाब सुने हलके तरन्नुम[3] से सुनाने लगते हैं :

---

१. अमावस की रात २. आदर सत्कार ३. गाना

'तुहमतें चन्द अपने ज़िम्मे धर चले
जिस लिए आये थे, सो हम कर चले।
ज़िन्दगी है या कोई तूफ़ान है
हम तो इस जीने के हाथों मर चले।
दोस्तो देखा तमाशा याँ का बस
तुम रहो अब हम तो अपने घर चले।
शमअ की मानिन्द हम इस बज़्म में
चश्मे-तर आये थे दामन-तर चले।
जो शरर[1] हैं हस्ती-ए-बे-बूद[2] याँ
बारे हम भी अपनी बारी भर चले।
साक़िया याँ लग रहा है चल चलाओ
'दर्द' जब तक बस चले, साग़र चले॥'

चेतन वहाँ से चलता है तो उसका मन सहसा उदास हो आता है। उसे अपने आप पर अफ़सोस होने लगता है कि उसने ऐसी बात क्यों कह दी, जिससे उनको अपने वर्तमान की याद हो आयी! वे हँसी-ख़ुशी, ग़प्पों-चुटकुलों में जिस वर्तमान को भुलाये हुए थे, उसने क्यों उन्हें उसकी याद दिला दी।

शमअ की मानिन्द हम इस बज़्म में
चश्मे-तर आये थे, दामन-तर चले

चेतन यही शेर गुनगुनाता हुआ घर तक चला आता है।

०

०

और यही गम्भीर मिर्ज़ा चेतन की शादी की खबर सुन कर एक निहायत शरारत-भरा इश्तेहार बनाते हैं और न केवल उसे 'बन्देमातरम' के दफ़्तर के बाहर चिपका देते हैं, वरन हाथ ही से उसकी कापियाँ तैयार

---

१. चिनगारी २. ऐसी हस्ती, जिसका कोई ठिकाना न हो।

कर मित्रों में बाँट आते हैं।—गोलबाग़ की रविश पर चलते हुए उस विज्ञापन की मुख्य पंक्तियाँ चेतन की आँखों के सामने कौंध जाती हैं :

लौण्डा-ए-ख़ुदरग़
की
शादी-ए-ख़ाना-आबादी

दफ़्तर बन्देमातरम के सामने
उश्शाक[1] के
मातमी जुलूस
पंडित श्यामलाल 'रत्न' की बेपनाह सरासीमगी[2]

१. प्रेमियों २. परेशानी

छः

चेतन मोरी दरवाज़े से फिर सरक्युलर पर हो लिया और सड़क पार कर, बायें हाथ के फ़ुटपाथ पर चलने के बदले, गोलबाग़ के जँगले के साथ-साथ दायें हाथ के फ़ुटपाथ पर ही चलने लगा।

मिर्ज़ा द्वारा बनाये गये उस विज्ञापन की याद आ जाने से चेतन के होंटों पर क्षीण-सी मुस्कान आ गयी। यदि जालन्धर में कोई उससे कहता कि वह भी लौण्डों में गिना जा सकता है और उस पर भी कोई मर सकता है, तो क्या उसे विश्वास होता! कॉलिज में वह भी कुछ समझा जाता था।

उन दिनों की दो घटनाएँ अनायास उसकी आँखों में घूम गयीं।

o

o

. . .जब वह एफ़० ए० पास कर के थर्ड ईयर में दाख़िल हुआ तो काँग्रेस आन्दोलन ज़ोरों पर था। चेतन का कॉलिज आर्य समाजी था और उसके प्रिंसिपल राजनीतिक आन्दोलनों में

युवकों का भाग लेना बहुत बुरा समझते थे। उनसे शिक्षण-संस्थाओं में जो अनुशासनहीनता आ गयी थी, उसके ज़बरदस्त विरोधी थे और अपने कॉलेज पर उनकी छाप तक न पड़ने देना चाहते थे। प्रिंसिपल की इच्छा थी—उनके छात्र ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते हुए पुराने ब्रह्मचारियों की तरह अपना जीवन बितायें। तड़के चार बजे उठ कर, नित्यकर्म से निबट, व्यायाम करें, नहायें, फिर मन लगा कर सन्ध्या-वन्दन करें, वक्त पर कॉलेज आयें। सादा कपड़े पहनें, कोई व्यसन न पालें, खूब पढ़ें, बड़े आदमी बनें।—यूँ वे अपने उपदेशों में बड़े आदमियों के नाते लाला लाजपतराय और पण्डित लखपतराय का भी उल्लेख करते थे, पर उनकी दृष्टि में आई० सी० एस० सबसे बड़ा आदमी था और उनके कॉलेज के कितने आई० सी० एस० और पी० सी० एस० हुए, इसका उल्लेख वे हर वार्षिकोत्सव में बड़े गर्व से किया करते थे। यद्यपि वे स्वयं सादा कपड़े पहनते थे, पर यदि कोई लड़का खादी के कपड़े पहने तो उन्हें लगता था कि वह काँग्रेस में शामिल हो गया है और उसके प्रति वे सशंक और कठोर हो उठते थे—पायजामा, कमीज़, कोट और पगड़ी उनके निकट आर्य समाजी कॉलेज के छात्रों की आदर्श भूषा थी। उन्हें पतलून-कोट पहनने वाले से उतनी चिढ़ न थी, जितनी खादी पहनने वालों से।

सेकण्ड ईयर तक चेतन वही कपड़े पहनता और बाकायदा पगड़ी बाँधता रहा था, लेकिन थर्ड ईयर में कुछ दिन बैठने के बाद ही उसने एक दिन अचानक पगड़ी को तिलांजलि दे दी और खादी के कुर्ते-पायजामे में कॉलेज चला गया।

बात यह थी कि कॉलेज में अमीरों के लड़के ही नहीं, मध्य-वित्त परिवारों के लड़के भी चेतन से अच्छे कपड़े पहनते थे। अपने पुराने और अनफ़िट कोट-पतलून को देख कर उसे बुरी तरह हीन-भाव का एहसास होता। खादी के कपड़े सस्ते और देर-पा भी थे और उन्हें घर धोया भी जा सकता था और स्वतन्त्रता-संग्राम के कारण उन्हें पहन कर कॉलेज

के सूट-बूट-धारी छात्रों की अपेक्षा विशिष्ट भी बना जा सकता था। फिर यद्यपि अपने बड़े भाई के राजनीतिक कारनामों की प्रतिक्रिया में उसे राजनीति से चिढ़ थी, लेकिन आज़ादी की उस लड़ाई में कम-से-कम इतना योग देना वह अपना धर्म समझता था। इसके अलावा सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह थी कि प्रिंसिपल की तानाशाही उसे बेहद अखरती थी। छात्रों के साथ वे ऐसा अपमानजनक व्यवहार करते, जैसे न उनकी कोई रीढ़ हो, न हस्ती। सोच-सोच कर चेतन ने उनके दुर्व्यवहार के प्रति मौन विद्रोह के रूप में खादी के कपड़े पहनने का फ़ैसला कर लिया। और जब यह फ़ैसला कर लिया तो उसने पगड़ी से भी मुक्ति पा ली।

इसमें सन्देह नहीं कि कॉलेज में नंगे सिर जाने की बात कुछ महीने पहले वह स्वप्न में भी न सोच सकता था। बी० ए० की पढ़ाई शुरू होने से पहले तक उसके कॉलेज की स्थिति उनके हाई स्कूल से बेहतर नहीं थी। क्योंकि न केवल उसके त्यागमूर्ति प्रिंसिपल पहले उसी हाई स्कूल के हेडमास्टर थे, बल्कि कुछ अध्यापक भी (जो एम० ए० थे और संस्था के आजीवन सदस्य थे) सीधे वहीं से कॉलिज में पढ़ाने लगे थे। उनका व्यवहार लड़कों के प्रति वही पुराना था—क्रूरतापूर्ण, असंस्कृत और तानाशाही! इतिहास के अध्यापक तो लड़कों को बेंचों पर खड़े होने का दण्ड तक दे दिया करते थे। लेकिन कॉलेज में डिग्री कक्षाएँ खुलते ही वातावरण में अनायास कुछ खुलापन आ गया था। हुआ यह कि सरकारी ग्राण्ट की शर्तों के अनुसार प्रिंसिपल को बाहर से कुछ अध्यापक लाने पड़े। जो नये अध्यापक आये, उनमें दो गवर्नमेण्ट कॉलेज, लाहौर के पढ़े हुए थे और एक बंगाली था। वे तीनों नंगे सिर आते। प्रिंसिपल ने दबी ज़बान से कहा भी कि आर्य समाज की संस्था है, उन्हें नंगे सिर कॉलेज न आना चाहिए। लेकिन उन लोगों को सिर ढँकने की आदत नहीं थी। गवर्नमेण्ट कॉलेज, लाहौर का यों भी बड़ा रोब था, इसलिए प्रिंसिपल चुप रह गये। दक्षिण भारत का एक छात्र भी नंगे

सिर आता था। इसके अलावा खादी के पायजामे-कुर्ते पर पगड़ी यों भी अच्छी नहीं लगती। वह जानता था कि प्रिंसिपल जल-भुन कर रह जायेंगे, लेकिन उसे इस बात का भी यकीन था कि वे कुछ कर भी नहीं सकेंगे।

उसका अनुमान ग़लत नहीं था। कॉलेज में एक पीरियड धर्म-शिक्षा का भी होता था, जिसमें अनुपस्थिति जघन्य पाप मानी जाती थी। चेतन की कक्षा में हफ़्ते में छै दिन यह पीरियड संस्कृत के अध्यापक लेते—पतले-दुबले, लम्म-सलम्मे, गम्भीर और सख्तगीर! वे बाकायदा सुन कर देखते कि छात्रों को सन्ध्या, कण्ठस्थ है कि नहीं। जो भूल जाता, उसे जुर्माना कर देते। धर्म-शिक्षा के सन्दर्भ में उनकी संस्था में कितनी प्रगति हो रही है और उनके छात्र उनके उपदेशों पर कितना चलते हैं, यह जानने के लिए प्रिंसिपल भी हफ़्ते में किसी दिन धर्म-शिक्षा के पीरियड में स्वयं आ धमकते और तत्काल रजिस्टर उठा कर हाज़िरी लेने लगते। जो लड़के ग़ैरहाज़िर होते, उनको सख्त जुर्माना कर देते। हाज़िरी लेते वक्त रजिस्टर से आँख उठा-उठा कर वे हर लड़के को देखते कि वह स्वयं हाज़िरी बोल रहा है अथवा उसका कोई साथी उसकी प्रॉक्सी दे रहा है।...पहले ही दिन जब चेतन खादी के बुर्राक कुर्ते-पायजामे में अपने घुँघराले बाल बेपरवाही से बिखेरे कॉलेज पहुँचा तो दुर्भाग्य से प्रिंसिपल धर्म-शिक्षा के पहले ही पीरियड में स्वयं आ धमके और हाज़िरी लेते वक्त जब उनकी निगाहें चेतन पर गयीं तो उसने देखा कि उनकी दृष्टि उस पर क्षण भर तक जमी रही। उस वक्त वे कुछ नहीं बोले, लेकिन उन्हें बुरा लगा है, इसका आभास चेतन को हो गया। क्योंकि जब वे फिर लड़कों की हाज़िरी लेने लगे तो उनकी आवाज़ में हल्की-सी चिड़छिड़ाहट और क्रोध था।

उस दिन उन्होंने अपना उपदेश सादा जीवन जीने और ऊँचा सोचने की प्राचीन भारतीय परम्परा पर दिया और बताया कि ऋषि-मुनियों ने कैसे जंगलों में रह कर और कन्द-मूल-फल खा कर उपनिषदों-जैसे गहन ग्रन्थों का प्रणयन किया। चेतन को सबसे दिलचस्प बात यह लगी

(और वह उसकी प्रतीक्षा ही कर रहा था) कि अपने उपदेश में घुमा-फिरा कर वे अपनी बात को पगड़ी पर ले आये। उन मूर्खों को, जो विदेशी सभ्यता के प्रभाव में अपनी भूषा तक तज रहे थे, उन्होंने पगड़ी के लाभ बताये कि किस प्रकार उत्तर भारत में पगड़ी सर्वोचित शिरो-वस्त्र है। लू के दिनों में न केवल सिर को, बल्कि शमले के माध्यम से गर्दन को भी बचाती है। और सर्दियों में ठण्ड नहीं लगने देती। जो लड़के शौकीनी में नंगे सिर रहना पसन्द करते हैं, उनकी भर्त्सना करना भी वे नहीं भूले। और उन्होंने बताया कि भारतीय परम्परा में देवी-देवता, माता-पिता और बुजुर्गों के सामने नंगे सिर जाना उनका अपमान करना है।

०

लेकिन प्रिंसिपल साहब का उपदेश बहरे कानों पर पड़ा था। क्योंकि दूसरे ही दिन से चेतन की देखा-देखी, कुछ अन्य छात्र भी नंगे सिर आने लगे थे। प्रिंसिपल को यह सब कितना बुरा लगा, इसका आभास भी चेतन को जल्दी ही मिल गया।

०

दिसम्बर का महीना था। नौमाही परीक्षाएँ चल रही थीं। शीत हड्डियों के अन्दर गूदे तक को सन्न कर रहा था, पर चेतन के पास गर्म कोट नहीं था। वह खादी का कुर्ता-पायजामा पहने परीक्षा देने चला आया था। कॉलिज के खुले हॉल में डेस्कें लगी थीं और वहाँ खासी ठण्ड थी। शुरू-शुरू में उससे होल्डर न पकड़ा जाता था, पर एक बार जब दोनों हाथों को ज़ोर से मल कर वह पेपर करने बैठा था तो उसे किसी चीज़ का बोध न रहा था। उसे नहीं मालूम—कब प्रिंसिपल हॉल में आये, कब अपनी डेस्कों पर खड़े हो कर दो-एक लड़कों ने कापियाँ माँगी, कब प्रिंसिपल स्वयं इंविजिलेटर के तख़्त से कापियाँ उठा कर बाँटने लगे थे (कापियाँ बाँटना चपरासियों का काम था, लेकिन प्रिंसिपल कभी-कभी ये अदाएँ दिखाया करते थे।) चेतन की कापी ख़त्म हो गयी थी। तभी

प्रिंसिपल कापियाँ लिये हुए उसकी डेस्क के पास से गुज़रे तो चेतन ने बिना उनकी ओर देखे, बैठे-बैठे ही कापी के लिए हाथ बढ़ा दिया।

कापी उसे देते हुए प्रिंसिपल उसके डेस्क पर झुके और दाँत पीसते हुए बोले :

'वेल लाला जी !' (कोई भले ही ब्राह्मण हो अथवा शूद्र, प्रिंसिपल उसे लाला जी कह कर ही पुकारते थे—क्योंकि वे स्वयं लाला थे।) 'इज़ दिस योर स्वराज्य ? यू कैन नॉट ईवन स्टैण्ड, ह्वेन योर प्रिंसिपल कम्ज़ टु यू।'

चेतन खड़ा हो गया। दिल में डर के बावजूद, सभी लड़कों के सामने डाँटे जाने के कारण, क्रोध में किंचित काँपते हुए बोला :

'सर ! इट इज़ नॉट योर जॉब टु डिस्ट्रिब्यूट द आंसरबुक्स। इट्स ए प्यून्ज़ जॉब ! बट इफ़ यू हैव टेकेन इट, यू शुडण्ट एक्स्पेक्ट योर स्टूडेण्ट्स टु गेट अप ह्वेन दे आर एब्ज़ॉब्ड इन डुइंग देयर पेपर्स।'

सारे हॉल में सन्नाटा छा गया। लड़के सवाल करना छोड़ कर धड़कते हुए दिलों के साथ उधर देखने लगे—ग्रे रंग की पट्टी का बन्द गले का कोट और उसी कपड़े का घुटन्ना पायजामा पहने और सिर पर पगड़ी बाँधे, पतले-छरहरे, पस्त कद, क्रोधी, क्रूर प्रिंसिपल शहर ही नहीं, प्रान्त भर में तानाशाह प्रसिद्ध थे। कॉलेज में ज़बरदस्त अनुशासन रखते थे; उसे राजनीतिक आन्दोलनों की सर्दी-गर्मी से बचाये रखते थे और अवसर पड़ने पर राजनीति में भाग लेने वाले छात्रों को उनकी योग्यता और भविष्य का विचार किये बिना, कॉलेज से निकाल देते थे।... लड़कों को पक्का विश्वास था कि इस बदतमीज़ी के लिए वे चेतन को उसी वक्त हॉल के बाहर निकाल देंगे।

लेकिन प्रिंसिपल यह अप्रत्याशित उत्तर सुन कर क्षण भर के लिए किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ रह गये। इससे पहले कि वे कुछ कहते, चेतन होंटों ही में, 'यू'ल एक्स्क्यूज़ मी सर !' कहता हुआ बैठ गया और प्रकट उनकी उपस्थिति को भूल कर पेपर करने लगा।

तब प्रिंसिपल साहब बमक उठे। चेतन ही को नहीं, सारे हॉल में लड़कों को सुनाते हुए अपने तीखे कर्कश स्वर में चिल्लाने लगे :

'वेल लाला जी, यू थिंक, यू हैव ऑलरेडी गॉट योर स्वराज्य एण्ड यू डोण्ट केयर टु रेस्पेक्ट योर पेयरेण्ट्स, योर टीचर्ज़, ईवन योर प्रिंसिपल ! बट यू डोण्ट नो एबाउट लाला लाजपतराय—दैट ग्रेट लीडर विद अ टर्बन, आर्य समाज हैज़ प्रोडयूस्ड। दैट ग्रेट फ़िलेंथ्रॉपिक पण्डित लखपतराय, दैट ग्रेट सेज महात्मा हंसराज. . .'

और कैसे वे महान लोग आज़ादी के लिए लड़ते हुए ख्यात हो कर या बड़े ओहदों पर पहुँच कर अथवा लाखों कमा कर, अपनी परम्पराओं का आदर करना, अपने बड़ों का सम्मान करना नहीं भूले, इस पर प्रकाश डालते हुए प्रिंसिपल ने महानता के होते हुए भी विनम्रता, आत्मानुशासन और संयम पर आध घण्टा लेक्चर दिया था।

चेतन इस बीच निरन्तर अपनी कापी पर झुका रहा था। उसकी देखा-देखी दूसरे लड़के भी कापियों पर झुक गये थे। तब प्रिंसिपल को सहसा भान हुआ कि वे धर्म-शिक्षा के पीरियड में नहीं, परीक्षा-हॉल में भाषण दे रहे हैं और हठात भाषण को खत्म कर, वे झल्लाये हुए हॉल से निकल गये।

०

०

चेतन भाटी दरवाज़े के बाहर सिनेमा-हॉलों के सामने से निकला जा रहा था। शाम का वक्त था। दोनों हॉलों के अन्दर खूब रौनक थी और यद्यपि उनके बाहर शो-केसों में लगे हुए, उन दिनों चलने वाले तथा आगामी फ़िल्मों के स्टिल देखना उसे बहुत प्रिय था, पर वह रुका नहीं। किसी सिनेमा-हॉल की ओर उसकी निगाह नहीं गयी। अपने ध्यान में मग्न वह बाग़ के जँगले के साथ-साथ बढ़ा चला गया।

तभी उस ज़माने की एक और घटना उसे याद आ गयी और किंचित मुस्कान में फैले उसके होंट और भी फैल गये।

○○

स्कूल के दिनों में चेतन को व्यायाम अच्छा न लगता। लंगोट लगा कर शरीर को तेल मलना और डण्ड पेलना उसे उजड्ड गँवारों का काम लगता—लड़ने-भिड़ने और शारीरिक काम करने वालों का! वह तो कवि बनना चाहता था और कवि को, उसका ख़याल था, कोमल शरीर, कोमल भावनाओं और स्वतन्त्र प्रकृति वाला, मस्त और बेपरवाह व्यक्ति होना चाहिए।. . .तब यह अजीब बात है कि कॉलेज में दाख़िल होते ही उसने अपने शरीर की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया। उसका माथा बहुत छोटा था। मैट्रिक तक पिता के आदेशानुसार वह सिर मुँड़ाता और माथे पर उस्तरे से ख़त बनवाता आया था। (इसी कारण उसका माथा छोटा और भद्दा हो गया था और शीशे में अपनी शक्ल उसे यतीमों-ऐसी लगती थी। उन्हीं दिनों उसके एक साथी के गाल पर उस जगह बाल आ गये, जहाँ प्रायः बाल नहीं होते। तब उसने मोचने से उन्हें उड़ा दिया। फिर आये तो फिर उड़ा दिया और तीन-चार बार उड़ाने से बाल आने बन्द हो गये। उसने चेतन को यह गुर बताया तो चेतन ने तय किया कि वह इसी तरह अपना माथा बड़ा कर लेगा।—दो साल में उसका माथा बड़ा हो गया और किसी ने इस परिवर्तन पर ध्यान तक न दिया था। परम निष्ठा से वह रोज़ दो-तीन नये बाल हटा देता और यदि पहले आये हुए बालों की जगह फिर कोई उग आता तो उसे भी हटा देता। माथा उसने इतना चौड़ा बना लिया था, जो अच्छा लगे। कॉलेज में जाते ही उसने लम्बे-लम्बे बाल रख लिये थे। पगड़ी की नोक से वह बालों की लट को काले चाँद-सी खींच लेता तो उसे अपना चेहरा बहुत अच्छा लगता। फ़र्स्ट ईयर में ही कुन्ती से उसकी निगाहें चार हो गयी थीं और जाने कैसे वह अपने आप कसरत करने लगा था। अपने पिता की नसीहत उसे याद थी—'एकदम ज़्यादा कसरत मत करो,' वे समझाया करते थे, 'पट्ठे दुखने लगेंगे। एक दिन ज़्यादा कसरत कर लोगे तो दूसरे दिन मन नहीं करेगा। पहले दिन केवल दस

डण्ड और दस बैठकें निकालो। फिर हर रोज़ दो-दो बढ़ाते जाओ। मालूम भी नहीं होगा और तुम जितनी चाहो कसरत कर सकोगे. . .'

जब चेतन थर्ड ईयर में पहुँचा तो उसे कसरत करते हुए दो वर्ष हो गये थे। लेकिन वह अपने छोटे भाई की तरह डण्ड-बैठकों को बढ़ा कर एक-एक हज़ार तक नहीं ले गया, वरन जब पचास पर पहुँचा तो रुक गया था—उसके सीने की हड्डियाँ वैसे ही दिखायी देती थीं और पट्ठों का माँस वैसे ही ढीला था लेकिन दो वर्ष लगातार मालिश करके व्यायाम करने से उसने महसूस किया था कि उसके सीने पर माँस की तह ज़रा मोटी हो गयी है, बाँह मोड़ने पर पट्ठा उभरने लगा है, पैर जोड़ कर खड़े होने पर दोनों जाँघों के बीच थोड़ी-सी जगह शेष रह जाती है। उसे विश्वास हो गया कि यदि वह कसरत कुछ और बढ़ा देगा तो उसका वक्ष माँसल हो जायगा, पट्ठे सुदृढ़ हो जायेंगे और उसकी जाँघें (पैर मिला कर खड़े होते समय) आपस में मिल जायँगी। तब न केवल दो-दो डण्ड-बैठक रोज़ बढ़ा कर वह उन्हें सौ तक ले गया था, बल्कि पिता के ज़माने के जो दो मुगदर पड़े थे, वह उन्हें भी फेरने लगा था। आध-आध मन के मुगदर, जिन्हें साधारण लड़के उठा न सकते थे, वह (उसी तरह दो-दो से शुरू करके) तीस-तीस फेरने लगा था। यूँ तो इस सब के बाद भी वह रहा पतला-छरहरा ही, लेकिन मालिश करने से उसकी जिल्द चमकने लगी, धीरे-धीरे उसके शरीर में कसाव आ गया और उसके अंग माँसल हो गये। चेतब कभी लंगोट लगा कर मालिश और कसरत करके नीचे दालान में जा कर छोटे-से शीशे के आगे खड़ा होता तो पहले बायीं और फिर दायीं भुजा के पट्ठे को फुला कर देखता। (पूरे शरीर को एक साथ देखने की गुंजाइश उस आईने में नहीं थी) तब उसे बहुत अच्छा लगता और उसके मन में इच्छा होती—काश! उसके घर में आदमकद आईना होता—डण्ड-बैठक निकाल और मुगदर फेर कर वह उसके सामने आ खड़ा होता और अपने पट्ठों पर नियंत्रण करने का अभ्यास करता। अपना एक-एक अंग वह अपनी इच्छा के अनुसार कमा लेता!

अपने छोटे भाई जितना न सही, पर लगातार व्यायाम करने से उसमें कुछ अजीब-सा आत्म-विश्वास पैदा हो गया था—वह सचमुच उसके सुगठित होने वाले सुन्दर शरीर के कारण था अथवा कुन्ती की आँखों में उसके प्रमाण की झलक के कारण, यह तो वह नहीं जानता, लेकिन यह सच है कि वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बाह्योन्मुख, बेपरवा, हँसमुख, फक्कड़, हाज़िर-जवाब और दिलेर हो गया था।

०

उन्हीं दिनों कॉलेज का एक प्रसिद्ध गुण्डा चेतन से नाराज़ हो गया और उसी आत्म-विश्वास के कारण चेतन ने उसे पीट दिया और इतने प्रसिद्ध गुण्डे को पीट देने से वह कॉलेज ही में नहीं, शहर भर में नाम पा गया।

०

उस गुण्डे का नाम राजकिशोर था, पर वह मित्रों में 'गोगा' के नाम से प्रसिद्ध था। खत्रियों का लड़का था और कल्लोवानी मुहल्ले के आगे कोट पक्का में रहता था। डील-डौल में गोगा गुण्डा न लगता था, पर उसका दबदबा ऐसा था कि कॉलेज के माने हुए गुण्डे और उसकी अपेक्षा कहीं ताकतवर लड़के उसकी अर्दल में रहते थे।. . . डेढ़-एक वर्ष पहले, जब वे लोग फ़र्स्ट ईयर में पढ़ते थे, जालन्धर छावनी में एक हॉकी टूर्नमिन्ट हुआ था। दोआबा हाई स्कूल की टीम में कोट किशनचन्द के दो सुन्दर लड़के रजत और उसका छोटा भाई जगत भी थे। गोगा जगत पर मरता था। लेकिन वही अकेला उस पर न मरता था, शहर के दूसरे गुण्डों की भी उस पर आँख थी। उसकी टीम ही में उसके चाहने वाले भी थे। मैच के खत्म होने पर उनसे गोगा का झगड़ा हो गया। उसने आव देखा न ताव, खींच कर चाकू विरोधी नेता को दे मारा। (सौभाग्य से बाँह पर लगा, नहीं बड़ी मुश्किल होती) झगड़े में चाकू चलते ही वहाँ भगदड़ मच गयी। कॉलेज के दो अन्य जाट लड़के—बसन्त सिंह और दिलबाग़ सिंह—भी वहाँ गये हुए थे। वे गुण्डे तो नहीं थे, लेकिन लहीम-शहीम और हथछोड़ थे। अपने कॉलेज के लड़के का झगड़ा

दूसरी संस्था के लड़कों से होता देख वे राजकिशोर के साथ हो गये। तब दूसरी पार्टी के लोग भाग गये। यों भी शोर मच गया कि एक लड़के का खून हो गया है। घायल लड़के को ताँगे में डाल कर लोग अस्पताल की ओर भागे और गोगा अपने साथियों के साथ चौड़े-दिहाड़े खिसक गया। किसी को उसे पकड़ने की हिम्मत न हुई। पुलिस घटना-स्थल पर पहुँची तो गोगा शहर पहुँच चुका था। बाद में चेतन ने सुना था कि पुलिस कोट पक्का तक आयी थी, लेकिन गोगे का बाप अमीर था, वह घटना-स्थल पर तो पकड़ा नहीं गया था, इसलिए मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया।

मामला कैसे रफ़ा-दफ़ा हुआ, यह तो चेतन को मालूम नहीं था, लेकिन उस घटना के भिन्न-भिन्न और अत्यन्त अतिशयोक्तिपूर्ण वृत्तान्त शहर भर में फैल गये—और राजकिशोर एक ही दिन में शहर का ज़बरदस्त गुण्डा मशहूर हो गया। उसके साथ कॉलेज के दूसरे गुण्डे आ मिले और उसका दल ख़ासा मज़बूत हो गया, यहाँ तक कि प्रोफ़ेसर भी उससे भयभीत रहने लगे। जब उसकी इच्छा होती, क्लास में आता; जब इच्छा होती, उठ कर चला जाता। न कोई प्रोफ़ेसर उसे टोकता, न जुर्माना करता, न उसकी शिकायत करता। कहा तो यह भी जाता था कि वह पेपर तक उड़ाने की शक्ति रखता है। उसकी बहादुरी और गुण्डई के दसियों किस्से कॉलेज में प्रचलित थे।

चूँकि राजकिशोर के घर का निकटवर्ती रास्ता चेतन के मुहल्ले से हो कर जाता था, इसलिए कई बार ऐसा होता कि चेतन और अनन्त उसके साथ ही आते। अनन्त यों भी चेतन की अपेक्षा फक्कड़ और बेपरवाह था। उसके स्वभाव में किंचित आवारगी भी थी, इसलिए राजकिशोर से उसकी खूब घुटती थी।. . .उन्हीं दिनों चेतन के मुहल्ले में चौधरियों के दीसे (जगदीश) नक्शा-नवीस की शादी हुई। बीवी उसकी न केवल सुन्दर थी, वरन चंचल भी थी। सबेरे-शाम दो-मंज़िले की खिड़की में बैठ कर और दोपहर को ऊपर खुली बरसाती में जा कर

मुहल्ले के जवान लड़कों से आँखें लड़ाती। एक दिन चेतन और अनन्त ऊपर शहनशीन पर बैठे थे कि वह बरसाती में आ गयी और घूँघट उठा कर बैठ गयी। अनन्त उस दिन के बाद रोज़ आने लगा, लेकिन माँ तथा अपने छोटे भाई परसराम के डर से चेतन ने ऊपर बैठना छोड़ दिया। तब वह कम्बख़्त नीचे दो-मंज़िले की खिड़की में आ कर बैठने लगी। अनन्त ने एक दिन गोगे से दीसे की दुलहिन के सौन्दर्य और चांचल्य का उल्लेख किया। गोगे ने बड़ हाँकी कि उसे एक बार दिखा दिया जाय, वह चार दिन में उसे ऐंटी कर के दिखा देगा (ऐंटी का शब्द वो लोग उड़ाने के अर्थों में इस्तेमाल करते थे।—गोगे ने चुटकी बजा कर समझा दिया कि कितनी सफ़ाई से और कितनी जल्दी वह उसे उड़ा ले जायगा।)

उस दिन गोगा बरबस चेतन के साथ मुहल्ले में आ गया।...चेतन को पहले तो यही बात बुरी लगी कि दूसरे मुहल्ले का कोई लड़का उसके मुहल्ले की किसी लड़की या बहू के बारे से कोई ऐसी-वैसी बात कहे या करने की सोचे, फिर वह सब उसके माध्यम से हो, उसके घर से हो, यह बात उसे ठीक नहीं लगी। उसके पिता मुहल्ले की बहू-बेटियों को अपनी बहू-बेटियाँ समझते थे, कहीं उनके कान में भनक पड़ जाय तो कत्ल तक करने को तैयार हो जायेंगे, यह बात चेतन भली-भाँति जानता था।...उसने टालना चाहा, लेकिन राजकिशोर नहीं माना। 'बस तुम एक बार उससे आँख मिलवा दो।' उसने कहा और साथ चला आया।

चेतन ने उसे बैठक के बाहर ज़रा रुकने को कहा और बोला कि मैं अन्दर से जा कर दरवाज़ा खोलता हूँ। भाग कर वह ऊपर गया और जब उसे इस बात का सन्तोष हो गया कि सब लोग ऊपर छत पर हैं तो उसने अन्दर से जा कर दरवाज़ा खोला। राजकिशोर बैठक की सीढ़ियों में खड़ा, भरे मुहल्ले में, बड़ी दबंगई से दीसे की खिड़की की ओर ताक रहा था। दरवाज़ा खुलते ही उसने चेतन से पूछा, 'कहाँ है वो।'

चेतन को बेहद ग़ुस्सा आया। उसने कदरे सख़्ती से कहा, 'अन्दर आ जाओ, बाहर मुहल्ले में खड़े हो कर मत इशारे करो।'

'मैं किसी साले चौधरी-औधरी की परवा नहीं करता!' गोगे ने प्रकट ही दीसे के अफ़ीमची बाप चौधरी सुलक्खा राम की ओर संकेत किया।

'लेकिन मैं करता हूँ।' चेतन ने किंचित दृढ़ता से कहा और उसका हाथ पकड़, उसे अन्दर खींच लिया, 'यहाँ बैठ जाओ। आयगी तो वह सामने उस खिड़की में आयगी। यहाँ बैठे-बैठे भी नज़र आ जायगी। इस समय वह ऊपर छत पर होती है।'

राजकिशोर उठ कर खिड़की में जा खड़ा हुआ।

'खिड़की में मत खड़े हो,' चेतन ने कहा, 'यहाँ कुर्सी पर बैठ जाओ।'

गोगे के तेवर चढ़ गये, 'ऊपर छत पर चलो।'

'ऊपर छत पर हम नहीं जा सकते। मेरे छोटे भाई और माँ वहीं हैं।'

'माँ के यार उस अनन्त को ले जा सकते हो, हमें नहीं ले जा सकते।'. . .और गोगा तिनतिनाता, होंटों में बड़बड़ाता हुआ बाहर निकल गया।

'माँ का यार' साधारण पंजाबी गाली थी। गोगे ने वह अनन्त को दी थी या उसे, यह चेतन तय नहीं कर पाया और होंटों में उसने जो गालियाँ दीं, वे चूँकि चेतन ने सुनी नहीं, इसलिए उसने उनका कोई नोटिस नहीं लिया। उसी दिन से चेतन ने मार्क किया कि उसे सामने पाते ही गोगे के माथे पर तेवर चढ़ जाते हैं। लेकिन चेतन ने उन्हें देख कर भी अन-देखा कर दिया और सहज भाव से मित्रों में उठता-बैठता रहा।. . . कांग्रेस-आन्दोलन का ज़माना था। नित्य स्ट्राइकें और भूख-हड़तालें होतीं। शहर के कई गुण्डे हमेशा के लिए गुण्डई छोड़ कर स्वातन्त्र्य संग्राम में कूद गये थे और जेलें काट रहे थे। राजकिशोर को और उसके साथियों को सिवा तमाशा देखने के आन्दोलन से कुछ लेना-देना न था, लेकिन

वे कहीं पीछे रहें, यह भी उन्हें स्वीकार न था, इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलन सम्बन्धी कॉलेज की सरगर्मियों में वे भी आगे बढ़ कर हिस्सा लेते थे।

मुहल्ले की उस घटना के चार-छै रोज़ बाद ही की बात है। अर्थ-शास्त्र के अन्तिम पीरियड से पहले एक पीरियड ख़ाली था और कॉलेज की सरगर्मियों में भाग लेने वाले प्रमुख लड़के प्रिंसिपल के आफ़िस से बायीं ओर ज़रा दूर बाग़ में बैठे थे। गोगा भी था, बसन्त भी, दिलबाग़ भी। बात गोलमेज़ कॉन्फ़रेंस की हो रही थी। महात्मा गान्धी इंग्लिस्तान से वापस आने वाले थे और यह तय था कि ज्यों ही उनके पाँव भारत की धरती को छुएँगे, उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जायगा और उस दिन देश भर में हड़ताल होगी। सब लड़कों की यह इच्छा थी कि किसी-न-किसी बहाने प्रिंसिपल अपने आप कॉलेज बन्द कर दें—महात्मा गान्धी की गिरफ़्तारी के दिन भी और सार्वजनिक देशव्यापी विरोध के दिन भी—ताकि लड़कों को न स्ट्राइक करने या धरना देने की ज़रूरत पड़े और न प्रिंसिपल को जुर्माने करने या लड़कों को कॉलेज से बाहर निकालने की। बहस इस बात पर हो रही थी कि कौन जा कर यह बात प्रिंसिपल से कहे। बहुत सोच-विचार के बाद यह तय हुआ कि आठ-दस लड़के मिल कर एक प्रतिनिधि मण्डल की सूरत में जायँ। तब उस मण्डल की भेंट के लिए प्रिंसिपल से समय लेने की समस्या सामने आयी। कौन उनसे जा कर कहे कि एक प्रतिनिधि-मण्डल उनसे मिलना चाहता है। वे अव्वल नम्बर के चिड़चिड़े, पल में तोला, पल में माशा किस्म के परम नियन्त्रण-प्रिय तानाशाह! यदि समय लेने को जाने वाले से पूछ बैठें कि प्रतिनिधि मण्डल किस विषय में मिलना चाहता है? कि उसे किसने भेजा है? इस सब की प्रेरणा किसने दी है? कौन-कौन रिंग लीडर हैं? आदि. . .आदि. . .तब क्या कहा जायगा?

लड़के चाहते थे कोई ऐसा आदमी जाय, जो प्रिंसिपल से डरे नहीं और यदि प्रिंसिपल कोई ऐसा-वैसा प्रश्न करें तो घबराये नहीं और कहे

कि मुझे तो केवल समय लेने के लिए आपके पास भेजा गया है। आपके सभी प्रश्नों का उत्तर प्रतिनिधि मण्डल ही देगा। कौन-कौन उसमें हैं, यह आप देख ही लीजिएगा।

अभी सब लोग गम्भीरता से इस समस्या पर सोच ही रहे थे कि गोगे ने अपनी जगह बैठे-बैठे निहायत बेतुकेपन से कहा, 'चेतन को भेजो ना ! यह सारी क्लास का वो है'—क्या वो है इसके लिए उसने बाँह खड़ी कर के उसे हिलाते हुए निहायत भद्दा संकेत किया।

इस पर उसके मित्र बसन्त और दिलबाग़ ने परम सन्तोष से ठहाका लगाया।

तब गुरु-गम्भीर बातचीत में उस अगुरुता और बेतुकेपन पर चेतन को बड़ा क्रोध आया। गोगे के विद्वेष का कारण वह जानता था। उसने पलट कर कहा, 'नहीं गोगे को भेजो। यह तो सारे कॉलेज का वो है—' क्या वो है, यह दर्शाने के लिए उसने बाँह को लटकाते और हिलाते हुए और भद्दी भंगिमा बना दी।

और इस हाज़िर-जवाबी का मज़ा लेते हुए सब-के-सब अनायास हँस दिये।

गोगे का चेहरा काला पड़ गया। इसके पहले कि चेतन का लटका हुआ हाथ अपनी जगह आता, वह उठा और पूरे ज़ोर से बाँह घुमा कर उसने चेतन की कनपटी पर एक जड़ाऊ मुक्का दे मारा।

चेतन का ध्यान उधर नहीं था। मुक्का उसकी बायीं कनपटी के पास माथे पर बैठा। उसका चश्मा दूर जा गिरा और उसके माथे पर गुमटा उभर आया। उछल कर उसने राजकिशोर को पकड़ लिया और एक-दो मुक्के भी मारे, लेकिन तभी सब लोग बीच में आ गये और ऐन उस वक्त घण्टी बज गयी। सब क्लास की ओर भागे।

अर्थशास्त्र का पीरियड था। अर्थशास्त्र चेतन का प्रिय विषय था और प्रोफेसर भाटिया उसके प्रिय अध्यापक थे। लेकिन जब चश्मा उठा कर आँखों पर लगाते हुए चेतन पहली बेंच पर अपनी जगह जा कर बैठा

और उसने कनखियों से दूसरी ओर अगली बेंच पर गोगे को बसन्त और दिलबाग़ सिंह के मध्य बैठते और अपनी ओर देखते पाया तो एक दुर्वार क्रोध से उसकी आँखों में अँधेरा छा गया। प्रोफ़ेसर, क्लास रूम और छात्र उसे दिखायी देने बन्द हो गये। उसकी आँखों में गोगे का विकृत चेहरा, बिजली की गति से उसकी कनपटी पर बैठता हुआ उसका मुक्का और वहाँ उभरता हुआ गुमटा आ गया। उसका खून खौल उठा।. . . प्रोफ़ेसर क्या भाषण दे रहे हैं, उसे कुछ सुनायी नहीं दिया. . .फिर पूरे पीरियड में यह कितनी ही बार हुआ—उसका हाथ उस गुमटे को सहलाता, उसकी आँखों में पूरी-की-पूरी घटना फ़िर से घटती, उसका खून खौल उठता और उसकी आँखों में अँधेरा छा जाता. . .

कब घण्टी बजी और कब प्रोफ़ेसर का भाषण समाप्त हुआ, चेतन को कोई ज्ञान नहीं। उसे तब होश आया, जब लड़के क्लास से निकल रहे थे और उसके बेंच वाले उसके उठने की प्रतीक्षा में थे। वह उठा। साइकिल स्टैण्ड पर आया तो उसने देखा कि साइकिल नहीं है। उसका हृदय धक् से रह गया—। कहीं गोगे के इशारे से उसके साथियों ने उसकी साइकिल ही तो ऐंटी नहीं कर दी. . .तभी उसे याद आया कि सुबह वह देर से कॉलेज आया था और साइकिल-स्टैण्ड पर जाने के बदले सीधा क्लास रूम के बरामदे की सीढ़ियों के पास जा रुका था और वहीं साइकिल टिका कर ऐन उस वक्त क्लास में पहुँचा था, जब प्रोफ़ेसर उसका नाम पुकार रहे थे। 'येस सर! हीयर सर!' कहता हुआ वह अपनी जगह जा बैठा था। फिर क्लास खत्म होने पर उसे साइकिल को स्टैण्ड पर रखने की सुध न रही थी।. . .इस बात की याद आते ही उसकी जान-में-जान आयी। लेकिन दूसरे ही क्षण फिर उसे खयाल आया, वह जल्दी में साइकिल को ताला लगाना भूल गया था। किसी ने उड़ा न ली हो. . .उसके दिल में फिर धुकड़-पुकड़ होने लगी। वह जल्दी-जल्दी उस विंग में गया, जहाँ सवेरे उसने साइकिल रखी थी।. . .चेतन ने सन्तोष की एक लम्बी साँस ली—साइकिल सीढ़ी से वैसे ही अडोल टिकी हुई

थी, जैसी कि वह सबेरे टिका गया था। फिर उसने साइकिल का। हैण्डल थामा और मुड़ा। इस बीच काफ़ी लड़के साइकिलों पर चढ़ कर चल दिये थे। सहसा उसकी नज़र हॉल के बाहर (प्रकट ही उसकी प्रतीक्षा में खड़े राजकिशोर तथा उसके दोनों मित्रों पर गयी। पल भर को चेतन के जी में आयी कि वह साइकिल पर पैर रख के भाग चले और गेट के बाहर अनन्त तथा अन्य मित्रों के साथ जा मिले।. . .लेकिन राजकिशोर ने उसका रास्ता रोक लिया तो?. . .रास्ता न भी रोका (क्योंकि कॉलेज की हद में शरारत करने का साहस वह शायद न करता) पर यदि वह साथ हो लिया तो ?. . .नहीं यह कायरता उससे न होगी। फिर जो होना है, सो हो. . .और दायें हाथ से पूर्ववत साइकिल का हैण्डल थामे, बड़ी बेपरवाही से ख़रामाँ-ख़रामाँ चलता वह उनके पास से निकल चला। (मन में उसने सोच रखा था कि यदि वह सब उसके मन का भ्रम हुआ और वे लोग यूँ ही किसी दूसरे साथी की प्रतीक्षा में खड़े हुए तो वह चन्द कदम आगे जा कर साइकिल पर सवार हो जायगा।) पर तभी वे तीनों चुपचाप उसके साथ हो लिये। चेतन के बायीं ओर दिलबाग़ सिंह, फिर बसन्त सिंह, फिर राजकिशोर! चेतन ने कनखियों से गोगे की ओर देखा—उसकी आँखें एकदम शून्य में टिकी थीं और वह जैसे नींद में चला जा रहा था। चेतन को विश्वास हो गया कि रेलवे फाटक के उस पार ही वह चेतन को पकड़ लेगा। (रेलवे फाटक के इस ओर को प्रिंसिपल कॉलेज और होस्टल की हद मानते थे। वहाँ लड़ने वालों को कॉलेज से निकाल देते थे और फिर किसी की सिफ़ारिश नहीं सुनते थे।) राजकिशोर की उस टकटकी से उसके दुर्वार क्रोध का पता चलता था। चेतन ने जैसे पहली बार उसे सिर से पैर तक नापा—उसका कद चेतन से इंच-दो-इंच कम ही था; शरीर पतला-दुबला था; दुर्व्यसनों के कारण उसके कल्ले अन्दर धँस गये थे; जबड़े की हड्डियाँ उभर आयी थीं और उसके चेहरे पर लम्बी नाक ही नुमाइयाँ दिखायी देती थी या फिर कमीज़ के खुले कालर में से ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ा

हुआ टेंटुआ। तन पर खुले कालर की रेशमी कमीज़ और कमर में महीन किनारे की बढ़िया धोती उसने पहन रखी थी। उसकी यह आदत थी कि वह अपनी शान दिखाने को कभी कोई लिबास पहन आता, कभी कोई. . .'मैं इस साले को पीट दूँगा।' चेतन ने मन-ही-मन कहा—'अगर दिलबाग़ और बसन्त सिंह में से कोई इसकी मदद को न आया, तो मैं इस साले को पीट दूँगा।' उसने एक बार फिर विश्वास से मन-ही-मन यह वाक्य दोहराया।

दिलबाग़ सिंह ने चेतन से कुछ बात करने का प्रयास किया। चेतन ने 'हाँ हूँ' में जवाब भी दिया, लेकिन वह अपनी दृष्टि निरन्तर गोगे पर जमाये रहा और आने वाली विपत्ति से जूझने की स्कीम मन-ही-मन तेज़ी से बनाता रहा।. . .

'अव्वल मारे सो गुरु का चेला,' चेतन के कानों में उसके पिता का उपदेश गूँज गया, 'शत्रु तुमसे कितना भी तगड़ा क्यों न हो, पर यदि तुम उससे पहले भरपूर वार करोगे और जितने में वह तैयार होगा, दो-चार ज़ोर की उसके लगा दोगे तो सौ में से पचहत्तर बिसवे वह भाग खड़ा होगा।. . .वह न भागे और भारी पड़े तो शोर मचा दो। लोग इकट्ठे हो जायँगे और इससे पहले कि वह तुम्हें पीटे, बीच-बचाव कर देंगे। जीत तुम्हारी रहेगी। तुम कमज़ोर हो', उसके पिता ने एक बार उसे समझाया था, 'मौका देख कर लड़ो। प्रतिद्वन्दी को बाज़ार की भीड़ में पकड़ो और दे एक, दे दो—इससे पहले कि वह चौंके—उसका सिर फोड़ दो, जब तक वह प्रतिकार करेगा, लोग इकट्ठे हो जायँगे।'

चेतन को अपने पिता के परामर्श का एक-एक शब्द याद आ गया। बाज़ार की भीड़ तो थी नहीं। सड़क लगभग सुनसान थी, केवल इक्का-दुक्का लड़के आ-जा रहे थे। उसके साथी साइकिलों पर आगे निकल गये थे। लड़ाई के स्थल का चुनाव उसके हाथ में नहीं था। ज्यों ही रेलवे का फाटक पार हुआ कि गोगा उस पर टूट पड़ेगा। कॉलेज के गेट से रेलवे का फाटक कोई डेढ़-एक फ़रलाँग था और वे आधा रास्ता पार कर

आये थे। जिस प्रकार दिलबाग़ सिंह ने चेतन से बात करने की कोशिश की थी उसी तरह बसन्त सिंह ने गोगे से। लेकिन बातचीत चल न पायी थी। चारों चुपचाप जैसे आने वाली घटना के बारे में ही सोचते चले जा रहे थे—राजकिशोर के तेवर चढ़े थे, नाक उठी हुई थी और वह उसकी सेध में बराबर टकटकी लगाये हुए था। चेतन की एक आँख बराबर उस पर लगी थी। वह मन-ही-मन अपना कार्यक्रम दोहरा रहा था।. . .अगर राजकिशोर अकेला उस पर झपटा तो इससे पहले कि वह वार करे, वह उसकी भुगत सवार देगा। बाग में वह बेध्यान था। अब वह उसे यों वार नहीं करने देगा. . .और अगर दिलबाग़ या बसन्त उसकी मदद को आये तो उनमें से जिसका हाथ या बाँह या रान या टाँग, जो भी अंग उसके काबू में आयगा, पकड़ लेगा, छोड़ेगा नहीं। काट कर रख देगा। वे भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा है। यह नहीं कि मार कर ख़ुश-ख़ुश घर चले जायँ। उसके पिता ने उसे एक बार समझाया था, 'बस न चले तो दुश्मन की पिंडली की अगली हड्डी पर अथवा उसके नाज़ुक अंग पर ज़ोर की ठोकर मारो। वह बेहोश हो कर गिर पड़ेगा।'. . .

तभी रेलवे का फाटक आ गया। कोई गाड़ी गुज़र रही थी और फाटक बन्द था। राजकिशोर उसी तरह सामने देखता हुआ रुक गया। चेतन को बड़ी झुँझलाहट हुई। जो होना है, हो जाय। यह असमंजस उसे मारे डाल रहा था। उसकी एकाग्रता नष्ट कर रहा था। पूरी यकसूई से उसने एक आँख गोगे पर लगा दी और मन-ही-मन सारी प्रक्रिया को दोहराया। तभी फाटक खुल गया। उसी तरह ख़रामाँ-ख़रामाँ चलते, वे उसके पार हुए। चेतन जैसे अनजाने ही सड़क के किनारे हो गया ताकि फेंकते वक्त चश्मा न टूट जाय। वे लोग भी जैसे अजाने उसके साथ दायीं ओर हो गये। ज्यों ही उन्होंने गेट पार किया और चन्द कदम आगे आये कि तभी राजकिशोर ने ज़रा बायीं ओर को झुक कर साइकिल सड़क पर टिका दी और, 'आ तो मादरचोद!' कहता हुआ

मुक्का भींचे बसन्त और दिलबाग़ के आगे से चेतन की ओर लपका। तभी चेतन ने (राजकिशोर से साइकिल धरती पर टिकाते ही जिसने एक ही स्विग में दायाँ हाथ साइकिल से उठा कर चश्मा फ़ुटपाथ की रेत में फेंक, पाँव से जूता उतार लिया था) जूते का एक भरपूर वार उसकी कनपटी पर दिया। गोगा इसके लिए तैयार नहीं था। चेतन ने इस ज़ोर से वार किया कि वह लड़खड़ा गया। उसका पाँव धोती में उलझ गया। एक अन्धे क्रोध से पागल हो कर चेतन ने दो जूते और उसके रसीद कर दिये। राजकिशोर गिरा, लेकिन दूसरे क्षण ही उठ कर उसने ज़ोर का मुक्का चेतन के मारा।

तभी कॉलेज की ओर से आते हुए कुछ लड़कों ने बीच-बचाव करने की कोशिश की। दिलबाग़ ने अपनी लम्बी मज़बूत बाँह उनके आगे कर दी :

'बराबर का जोड़ है, होने दो।'

और लड़के दोनों के गिर्द घेरा बाँध कर खड़े हो गये। दिलबाग़ सिंह की यह बात सुन कर कि दूसरा कोई बीच में नहीं पड़ेगा, चेतन का साहस दुगुना हो गया। राजकिशोर मुक्का कस कर, दायीं ओर किंचित पीछे को झुक, पूरे ज़ोर से घुमा कर लाता, लेकिन इस बीच में चेतन को उससे बचने का मौका मिल जाता। उसका मुक्का बचा कर वह दायें-बायें दोनों हाथों से गोगे के तीन-चार मुक्के जड़ देता। दुर्भाग्य से राजकिशोर धोती पहन कर आया था। दूसरी बार फिर उसकी धोती पैर में फँस गयी और वह चेतन के मुक्के से लड़खड़ा कर गिर पड़ा। चेतन का जी हुआ उछल कर उसकी छाती पर सवार हो जाय और मार-मार कर उसके होश ठिकाने कर दे। लेकिन वह कमर पर हाथ रख कर खड़ा हो गया। ज्यों ही मुक्का घुमाता हुआ राजकिशोर उठा कि चेतन ने एक मुक्का उसकी कनपटी पर फिर जड़ दिया।

गोगा वाही-तबाही बक रहा था और बेपनाह गालियाँ दे रहा था। चेतन उसका वार बचाते हुए, पूरी एकाग्रता से चुपचाप लड़े जा रहा

था। उसके कानों में कोई शब्द सुनायी न दे रहा था। उसकी सारी वृत्तियाँ उस एक बात पर सिमट आयी थीं कि कैसे गोगे का वार बचा कर उसके दो-चार जमा दे। उसे इस बात का एहसास था कि वह उसे पीट रहा है और यद्यपि उसका अपना कुर्ता फट गया था, माथे पर गुमटें उभर आये थे, ह्रोंट कट गये थे, उसके बायें हाथ की छिंगुली चोट खा गयी थी, लेकिन दुर्निवार क्रोध के अधीन, एकदम अन्धा हो कर, वह दोनों हाथों से उस पर मुक्के बरसा रहा था।

बाद में आने वाले लड़के तमाशा देखने को रुक गये थे। आगे साइकिलों पर जाने वाले, राजकिशोर की गालियाँ और शोर सुन कर वापस आ गये थे। उनके गिर्द तमाशियों का दायरा बहुत बड़ा हो गया था। घूँसों और मुक्कों से पार पड़ता न देख कर अपने जोश में गोगे ने चेतन को गर्दन से पकड़ लिया। लेकिन वह कभी कुश्ती लड़ा न था, जबकि चेतन कई बार अखाड़े हो आया था; अपने छोटे भाई परसराम और देवू काने को प्रायः कुश्ती लड़ते देखता रहा था और कई दाँव जानता था। ज्योंही गोगे ने दोनों हाथों से चेतन की गर्दन को पकड़ा कि उसे झकझोरे, चेतन ने अपने दोनों हाथ ऊपर ले जा कर उँगलियों में उँगलियाँ फँसा ऊपर से उसकी दोनों बाँहों को झटका दे कर दबाना शुरू किया और दूसरे क्षण राजकिशोर के घुटने ज़मीन पर लग गये और चेतन ने पलक झपकते उसी दाँव से उसे चित कर दिया और उसके सीने पर चढ़ बैठा। उसकी गर्दन को दोनों हाथों में पकड़, वह उसका सिर सड़क पर ज़ोर-ज़ोर से पटकने जा रहा था कि दिलबाग़ सिंह ने उसकी एक बाँह को अपने मज़बूत हाथ से पकड़ कर उसे उठा दिया। राजकिशोर उठ कर गालियाँ देता हुआ उसे फिर चिमटने वाला था कि दिलबाग़ ने दूसरे हाथ से उसे थाम लिया और चेतन को छोड़ कर वह उसे परे ले गया।

राजकिशोर गालियाँ देते हुए झुका और हारे हुए बच्चे की तरह ज़मीन से एक पत्थर उठा कर उसने चेतन को दे मारा।

पत्थर की ज़द से बचते हुए चेतन ने ललकारा, 'आ साले मैदान में। कायरों की तरह ईंट-रोड़े क्या चलाता है!' राजकिशोर की धोती खुल गयी थी। धोती बाँधते हुए वह चाकू से चेतन का पेट चाक कर देने, उसकी आँतें बाहर निकाल देने, उसे कत्ल कर देने की धमकियाँ देता हुआ, गालियों के अर्ध-विराम और पूर्ण-विराम लगा रहा था।. . .लेकिन उसे स्वयं मालूम नहीं था कि वह रो रहा है और उसकी आँखों से लगा-तार आँसू बह रहे हैं।

०

इस घटना से कॉलेज में राजकिशोर का दबदबा ख़त्म हो गया था। यद्यपि उसने चाकू मारने की धमकी दी थी, लेकिन चेतन दूसरे दिन से स्काउटिंग की वर्दी पहन कर कॉलेज जाने लगा था, जिसकी पेटी के साथ उसने एक बड़ा-सा चाकू लटका रखा था। यह चाकू उसके पिता कोयटा के एक पठान से लाये थे। हाथ भर लम्बा उसका फल था और उसके दस्ते में पुश्त की ओर एक लटका लगा था, जिसे अँगूठे से दबाते ही खट् से चाकू खुल जाता था। चेतन ने कई मित्रों को चाकू खोल कर दिखाया था और कहा था कि राजकिशोर चाकू मार के बच कर नहीं जा सकता—हमारे मुहल्ले के सामने से गुज़रता है, मैं तो उसका घर से निकलना बन्द कर दूँगा।

चेतन ने प्रकट ही बड़ हाँकी थी, लेकिन राजकिशोर घबरा गया था। न केवल वह उस जगह न आता, जहाँ वे सब बैठे होते, वरन उसने कल्लोवानी की ओर से घर जाना भी छोड़ दिया था। वह लाल बाज़ार, जौड़ा दरवाज़ा, रैनक बाज़ार और सैयदाँगेट से हो कर लगभग मील भर चक्कर मार कर कोट पश्का जाता।

०

०

पण्डित श्यामलाल 'रत्न' के घर को जाते हुए चेतन के होंटों पर मुस्कान और भी फैल गयी। राजकिशोर से लड़ाई होने के बाद अपने कॉलेज में

चेतन स्वयं एक ग्रूप का नेता हो गया था। यद्यपि उसकी टोली के लड़के भले थे तो भी वे उसे नेता मानने लगे थे। किसी प्रोफ़ेसर से कुछ कहना हो, प्रिंसिपल से कहना हो, चेतन ही आगे होता। उसकी हँसमुखता और हाज़िर-जवाबी बढ़ गयी थी। कॉलेज की सरगर्मियों में वह हिस्सा लेने लगा था। 'बज़्मे-अदब' और 'नाटक-क्लब' का वह महत्वपूर्ण सदस्य बन गया था। कॉलेज के नाटकों में उसने महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभायी थीं। श्रीमती मंजरी में उसने एक अमीर शराबी का पार्ट किया था। 'अभिमन्यु-वध' में वह जयद्रथ बना था।. . .और लाहौर में लोग उसी पर मरने लगे. . .वह मन-ही-मन हँसा। पर तभी उसने देखा कि वह पण्डित 'रत्न' के घर के आगे खड़ा है—कब वह भाटी गेट और रावी रोड पार कर शीशमहल रोड पर आ गया और कब सारी-की-सारी सड़क पार कर पण्डितजी के मकान तक पहुँचा, उसे कुछ भी होश नहीं. . .

उसने दरवाज़े पर हलके से दस्तक दी।

सा
त

कुछ क्षण तक अन्दर से कोई सुन-गुन नहीं मिली।

चेतन को डेढ़-पौने-दो वर्ष पहले उस पहली शाम की याद हो आयी जब वह पण्डितजी के साथ उनके घर आया था। यही मौसम था; यही शाम का दिये-वाती का वक्त था, वह पण्डितजी के साथ था, जब उन्होंने दरवाज़े पर आ कर दस्तक दी थी।

कुछ क्षण तक कोई अन्दर से दरवाज़ा खोलने का प्रयास करता रहा था। नये दरवाज़े थे। बरसात के कारण फूल आये थे। अन्दर से किसी ने ज़ोर लगाया था। इधर से पण्डितजी ने धक्का दिया था। दोनों किवाड़ भयानक आवाज़ के साथ खटाक् से खुल गये और चेतन ने देखा कि कमीज़-सलवार पहने, सोलह-सत्रह वर्ष की साँवली-सी नाज़ुक लड़की (जो कदाचित किवाड़ों को भरसक अपनी ओर खींच रही थी) अपने ही ज़ोर से धड़ाम डेवढ़ी के फ़र्श पर दोनों हाथों के बल पीछे जा गिरी है।

पण्डितजी ने बढ़ कर उसे उठाया। 'अरे प्यारी, चोट तो नहीं लगी।' और उसे उठा कर बाँह में भरते हुए

उन्होंने उसके सिर को प्यार से चूम लिया था।

'मेरी बेटी !' उन्होंने चेतन को उसका परिचय दिया था।

दुपट्टा सँभालते हुए लड़की की आँखें निमिष भर को उठी थीं। वह फिर शरमा कर आँगन की ओर भाग गयी थी। और वह क्षण और वह शर्मीली निगाह हमेशा के लिए चेतन के मन पर नक्श हो गयी थी।

वहीं खड़े-खड़े उसने चाहा—प्यारी ही दरवाज़ा खोले।

लेकिन वह खड़ा रहा और किसी ने दरवाज़ा नहीं खोला तो उसने फिर बड़े ज़ोर से दस्तक दी।

अन्दर से किसी ने एक बार ही ज़ोर लगा कर दरवाज़ा खोल दिया।

बीबीजी थीं। पण्डितजी की पत्नी को चेतन बीबीजी कह कर पुकारता था। उनकी उम्र पैंतीस वर्ष की होगी, पर लगती चालीस-पैंतालीस की थीं। दोहरा बदन। लम्बी-तगड़ी, लेकिन ढीली। उनका रंग जवानी में ज़रूर गेहुँआ रहा होगा, लेकिन पाँच बच्चों के बाद (जिनमें बड़े का देहान्त हो गया था और दूसरा चेतन से दो ही तीन साल छोटा होगा) अब सँवला गया था. . .उनका चेहरा तना हुआ था, लेकिन चेतन को देखते ही वह खिल गया।

'कहो, कैसा रहा शिमले में ! कब आये ?'

और दरवाज़ा बन्द कर के वे आगे-आगे चल दीं। चेतन अपना हाल-चाल देता हुआ उनके पीछे-पीछे जा कर उनके सामने (अपनी सुरक्षित जगह) रसोई-घर में रखे रंगीन पीढ़े पर बैठ गया।

आँगन में पण्डितजी का सबसे छोटा लड़का पोगलू दो पहियों वाली साइकिल चलाने का प्रयास कर रहा था और उससे बड़ी बहन भड़ोली उसकी मदद कर रही थी।

वह तेरह वर्ष की लड़की थी। मिट्टी की बड़ी बोरसी-ऐसी मोटी, इसीलिए पण्डितजी प्यार से उसे 'भड़ोली' कहते थे। पोगलू की साइकिल में पिछले पहिये के साथ दोनों ओर छोटे-छोटे पहिये लगे थे। साइकिल

दायें या बायें झुकती तो उन पर टिक जाती और पोगलू गिरता नहीं और पाँव धरती पर लगा लेता था। लेकिन तो भी भड़ोली साइकिल के पीछे-पीछे भाग रही थी कि यदि वो गिरे तो वह उसे थाम ले।

पोगलू छै वर्ष का था। वह ठीक तरह से बोल न सकता था। जन्म से कमज़ोर था। तीन वर्ष तक तो वह कुछ भी नहीं बोल पाता था। उसकी राल बहती रहती थी। और वह आल्थी-पाल्थी मारे नंग-धड़ंग कमरे में या आँगन में बैठा रहता था। लेकिन पण्डितजी उसे बेहद प्यार करते थे। दफ़्तर से आते ही, अपने धोबी-धुले और कलफ़ लगे नफ़ीस कपड़ों के बावजूद वे उसे उठा लेते थे, रूमाल से उसका मुँह पोंछ कर उसे चूम लेते। इधर दो वर्ष में उसमें कुछ शक्ति आ गयी थी। वह बोलने भी लगा था, लेकिन था वैसा ही, जिसे पंजाबी में 'लोह्‌ला' कहते हैं। उसका नाम रामचन्द था, पर पण्डितजी प्यार से उसे पोगलू कह कर बुलाते थे।. . .उस समय वह कमीज़ और स्लैक्स पहने था और इधर-से-उधर साइकिल चला रहा था। प्यारी से भड़ोली तीन-चार साल छोटी थी। वह प्रकट ही अपनी माँ पर गयी थी—मोटी और भद्दी—स्कर्ट के नीचे उसकी मोटी-मोटी पिंडलियाँ चेतन को खासी भद्दी लगती थीं। पोगलू की साइकिल के पीछे-पीछे जब वह खुले आँगन में इधर-उधर भागती, तो छोटी-सी हथिनी-ऐसी लगती।

किचन की ओर आते-आते चेतन ने एक उड़ती-सी निगाह कमरे के अन्दर डाली थी—उसे लगा था, जैसे प्यारी लेटी है। जब वह बीबीजी को शिमले और जालन्धर में अपने प्रवास और निवास तथा वापस आ कर लाहौर में अपने मकान ढूंढ़ने की बात बता चुका तो सहसा उसने पूछा :

'अन्दर क्या प्यारी लेटी है ?'

हठात बीबीजी का खिला मुख उदास हो गया। एक लम्बी साँस उनके होंटों से निकल गयी, 'प्यारी तो दो महीने से बीमार है।'

'दो महीने से ।' चेतन खेद-भरे स्वर में केवल बीबीजी के शब्द दोहरा कर रह गया ।

'रीढ़ की हड्डी पर फोड़ा हो गया था ।' बीबीजी उसी उदास स्वर में बोलीं । 'हमने समझा मामूली फोड़ा है । चार-छै दिन तो पुल्टिस बाँधी, जब आराम नहीं आया तो डॉक्टर को दिखाया । महीना भर इलाज करने पर जब कोई लाभ नहीं हुआ तो ये (पण्डितजी) अस्पताल ले गये । उन्होंने प्लास्टर बाँध दिया है । हिलना-डुलना मना है । बेचारी पड़ी रहती है ।'

बीबीजी का ढीला-सा मुँह और भी ढीला हो गया था । चेतन ने देखा उनकी आँखों के नीचे मांस लटक आया है । गालों का गोश्त हलका-सा नीचे को झुका मालूम होता है और ठोड़ी पर गोदने का निशान, जो कभी छोटा-सा होगा, अब बड़ा-सा लगता है । उनकी आँखें भर आयीं और उन्होंने दुपट्टे के छोर से उन्हें पोंछ डाला ।

चेतन के जी में आया उठ कर अन्दर चला जाय । प्यारी (राम-प्यारी) बड़ी ही सीधी-सादी, भोली-भाली लड़की थी । ज्यादा बोलती नहीं थी । लेकिन जब कभी शनि या इतवार को पण्डितजी स्वयं गोश्त या कोफ़्ते अथवा गोश्त वाला पुलाव पकाते और स्वयं ही परोसते (कि यह उनकी हॉबी थी और चूँकि बीबीजी न गोश्त खातीं, न उसे हाथ लगातीं, न रसोई-घर में आने देतीं, इसलिए पण्डितजी आँगन में अँगीठी जला कर स्वयं वह सब पकाते और सच्ची बात यह है कि बहुत अच्छा पकाते) तो प्यारी रोटी या तरकारी देने आती ।. . .कभी चेतन रात वहीं रह जाता तब दूसरी सुबह जब वह नित्य कर्म से निबट कर आता तो प्यारी पानी का लोटा ले कर उसके हाथ धुला देती । ऐसे में जब वह कभी उसकी ओर देखती तो उसकी आँखों में स्नेह भी होता, विश्वास भी, हुलास भी । चेतन उसे छोटी बहन-सा मानता । उसके बहन तो थी नहीं और वह बहन के प्यार से अनभिज्ञ भी था, पर उसे देख कर उसके मन में कुछ वैसा ही प्यार उमगता, जैसा कभी अपनी मृत नन्हीं बहन

के लिए उमगा करता था। चेतन की बहन जीवित होती तो प्यारी जितनी ही बड़ी होती. . .और चेतन के सामने ढाई वर्ष की एक छोटी-सी बच्ची की शक्ल घूम जाती जो बड़ी प्यारी बातें करती और समझदार इतनी कि सभी दंग रह जाते। एक ही बार चेतन के दादा ने उसे समझाया था और वह कभी कमरे गन्दे न करती थी, सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर जाती और अपनी दो ईंटों पर बैठती थी।

०

चेतन की इस बहन का नाम सावित्री था, पर घर में सब उसे मुन्नी कह कर पुकारते थे। शिवशंकर जब पाँच वर्ष का हुआ था तो चेतन के दादा दुर्गाष्टमी को परिवार समेत माता चिन्तपुरनी के मेले में गये थे। जालन्धर के हिन्दू मुण्डन और यज्ञोपवीत संस्कार माता चिन्तपुरनी के दरबार ही में करते हैं। वहाँ जब शिवशंकर का सिर मूँड़ा गया तो मुन्नी का सिर भी मूँड दिया गया। जब शंकर के कान छेदे गये तो साथ ही उसके भी छेद दिये गये। जाने क्या हुआ कि दोनों के कान पक गये। चिन्तपुरनी के मेले से लौट कर जालन्धर आते-आते बेतरह सूज गये और उनमें पीप पड़ गयी। दादा दोनों को रेलवे-अस्पताल के डॉक्टर को दिखाने ले गये। उस अहमक ने जाने क्या दवा लगा दी कि बच्ची तड़फड़ा गयी। उसका सारा मुँह सूज गया। तकलीफ़ तो शंकर को भी ज्यादा हो गयी, पर मुन्नी तो तड़पने लगी, सूजन उसके मुँह से शरीर की ओर बढ़ने लगी। तब दादा दोनों बच्चों को डॉक्टर महाराजकृष्ण के यहाँ ले गये।

भैरो बाजार में डॉक्टर महाराजकृष्ण की दवाइयों की बड़ी दुकान थी और वे चेतन के पिता—पण्डित शादीराम के घनिष्ठ मित्र थे। डॉक्टर महाराजकृष्ण की दुकान में दाखिल होते ही दवाइयों की मिली-जुली बू दिमाग़ में भर जाती थी। लम्बी गली-सी आयताकार दुकान के अन्दर दूसरे सिरे पर सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊँचाई पर एक कमरा था, जिसमें डॉक्टर महाराजकृष्ण बैठते थे—सूट-बूट पहने, अंग्रेज़ों-से गोरे-चिट्टे और

काफ़ी मोटे ! उस कमरे का दरवाज़ा बाहर ढिक्की पर खुलता था, जो प्रकट ही बाज़ार से ऊँची थी । इसलिए कमरा भी ऊँचे पर था । चेतन भी दादा के साथ गया था । डॉक्टर साहब ने बच्चों को देख कर बहुत डाँटा कि इतनी देर से क्यों लाये ? ज़हर बहुत फैल गया है । बहरहाल उसने दोनों को दवा दे दी । लेकिन मुन्नी नहीं बची । तीसरे दिन वह बेहोश हो गयी और मर गयी ।. . .चेतन को जब भी अपनी उस नन्हीं-सी बहन की याद आती, उसका मन बुरी तरह कचोट जाता । यों तो मरने वाला कैसा भी क्यों न हो, प्रायः सभी उसकी तारीफ़ करते हैं और उसमें दुनिया-जहान के गुण ढूँढ़ लेते हैं, लेकिन चेतन की उस नन्हीं बहन में सचमुच ही कुछ गुण थे, जो चेतन के दादा, चेतन की माँ और (यह हैरत की बात है कि) स्वयं चेतन के पिता को भी याद आते और उदास कर जाते ।

. . .माँ को कन्यादान के पुण्य से वंचित रह जाने का खेद था । पाँच लड़कों के बाद उसने चाहा था, लड़की हो और लड़की हुई थी । चेतन के पिता से अनुरोध कर माँ ने बाजे बजवाये थे, मुहल्ले में लड्डू बाँटे थे और गोटे-कनारी वाले न जाने कितने ही तिकोने रेशमी रूमाल, टोपियाँ, फ़राक, जाँघिये माँ ने बच्ची के लिए सी लिये थे। वह दिन-रात कुछ-न-कुछ उसके लिए बनाती ही रहती । चेतन को याद नहीं, माँ ने अपने किसी बेटे के लिए इस साध से कुछ भी बनाया हो और जिसके लिए इतने आयोजन हो रहे थे, वह उन सब का मोह छोड़ कर चली गयी थी । माँ की आँखों का पानी सूखता ही न था । जब उसको वे रेशमी कपड़े काटने लगे तो उसने सब उठा कर मुहल्ले की एक ग़रीब ब्राह्मणी को उसकी बच्ची के लिए दे दिये । मुन्नी के बाद माँ के फिर लड़का ही हुआ—चेतन का छठा भाई महेन्द्र । और माँ को बेटी का तथा भाइयों को बहन का अभाव हमेशा खलता रहा ।

. . .चेतन के पिता पण्डित शादीराम मुन्नी की मृत्यु के कई महीने बाद तक जब शराब पीने बैठते तो मुन्नी का ज़िक्र ज़रूर करते कि जब से वह

आयी थी उनकी आय तिगुनी हो गयी थी। शराब भी उन्होंने कम कर दी थी। मुन्नी बड़ी भाग्यवान थी। और यह कहने के बाद वे लम्बी साँस भरते हुए शराब की कटोरी मुँह से लगा लेते।

...चेतन जानता था कि बात ग़लत न थी। उसके ज़ालिम पिता भी बच्ची को प्यार करते थे। आय भी उनकी बढ़ गयी थी और शराब भी उन्होंने कम कर दी थी। (यह सब आकस्मिक था, या मुन्नी के भाग्य से, चेतन नहीं कह सकता, पर ऐसा था ज़रूर।) स्वयं अपने बारे में वह इतना जानता था कि मुन्नी के देहान्त के बाद (केवल ढाई वर्ष की बच्ची के देहान्त के बाद) वह सन्न-सा रह गया था। सात दिन तक घर में खाना न पका। मुहल्ले वाले ज़ोर दे-दिला कर कुछ खिला-पिला जाते। घर सूना हो गया था। उसके बाद चिन्तपुरनी फिर कोई नहीं गया—चेतन के सबसे छोटे भाई महेन्द्र के मुण्डनों पर भी नहीं, न बड़े भाई साहब के बड़े लड़के के मुण्डनों पर। दुर्गा माता पर से सब का विश्वास उठ गया था...

०

चेतन ने सुना था कि रीढ़ की हड्डी का नासूर तो बहुत बुरा होता है। सहसा उसके सामने अपनी नन्हीं-सी बहन का चेहरा घूम गया—कान से ठोड़ी तक बायीं ओर घाव बढ़ गया है, चेहरा सूज गया है और वह सूजन प्रतिदिन बढ़ कर शरीर को ग्रस लेती है...उसका मन उदास हो उठा। उसके जी में आया—जा कर प्यारी को देखे, उसे तसल्ली दे... वह उठने की सोच ही रहा था कि तभी बाहर दस्तक हुई।

बीबीजी ने कहा, 'पण्डितजी आ गये हैं,' और उन्होंने भड़ोली से दरवाज़ा खोलने को कहा।

लेकिन चेतन उठा, 'मैं खोलता हूँ!' उसने कहा और जा कर दरवाज़ा खोला—पण्डितजी और उनका बड़ा लड़का चन्द्रमोहन थे।

चेतन उन्हें नमस्ते कहने ही जा रहा था कि हर्ष मिले उल्लास के साथ उन्होंने कहा—'अरे चेतन!' और बढ़ कर उसे बाँह में भर लिया।

०००

आठ

इससे पहले कि चेतन कुछ कहता, पोगलू साइकिल चलाता दोनों के बीच आ गया। पण्डितजी ने चेतन को छोड़, उसे उठा लिया, प्यार किया और उतार दिया। फिर वे अपने कमरे में गये। चेतन उनके पीछे-पीछे गया।

अन्दर जाते ही पण्डितजी ने प्यारी के गाल थपथपाये और उसका हाल-चाल पूछा। फिर वे चेतन की ओर पलटे :

'मैं ज़रा ऊपर हो आऊँ। तुम बैठो।' उन्होंने पगड़ी और वास्केट उतारते हुए कहा और कमरे से निकल गये। तभी प्यारी ने हाथ जोड़ कर चेतन को 'नमस्ते' की।

'नमस्ते' का जवाब दे कर चेतन ने पूछा, 'कैसी तबियत है ?'

उदास मुस्कान प्यारी के होंठों पर फैल गयी कि अच्छी हूँ। कहा उसने कुछ नहीं। चेतन चुपचाप क्षण भर खड़ा रहा। क्या कहे, उसे कुछ नहीं सूझा। वह बाहर आ गया और उसी रंगीन पीढ़े पर जा बैठा। पण्डितजी पानी का लोटा ले कर ऊपर चले गये थे। तभी चन्द्रमोहन कुछ

पुस्तकें लिये हुए कमरे से निकला और बिना इधर-उधर देखे दूसरे कमरे में चला गया।

०

पण्डित रत्न पेशावर की तरफ़ के मोह्याल ब्राह्मण थे — मोह्याल ब्राह्मण, जो गोश्त खाना या शराब पीना बुरा नहीं मानते और अपने आप को पठानों से कम नहीं समझते।—न लम्बा, न मँझला कद, गठा दोहरा बदन, गोरा रंग, चौड़ा माथा, चौड़े, लेकिन सुन्दर पठानी नक्श, किंचित अन्दर को झुकी धवल दन्तावली, तन पर कमीज़-शलवार, उस पर काली जैकेट, सिर पर कुल्लेदार मुशद्दी पगड़ी, पैरों में फ़्लेक्स के पम्प शू— पण्डितजी निश्चय ही सुन्दर थे—सुन्दर और हँसमुख ! लेकिन उनके किसी बच्चे को न उनका रंग-रूप मिला था, न बुद्धि और न स्वभाव !

चेतन क्षण भर तक मन-ही-मन पिता-पुत्र के रूप-गुण की तुलना करता रहा। फिर वहीं बैठे-बैठे उसके सामने पण्डितजी की तरह शल-वार, कमीज़, कुल्लेदार पगड़ी पहने हुए, वैसा ही एक और चेहरा घूम गया, जो वास्तव में पण्डितजी से उसके परिचय और फिर उस परिचय के प्रगाढ़ मैत्री में बदल देने का कारण बना। यह चेहरा मंगतराम 'बलोची' का था और बलोची दैनिक 'भीष्म' का फक्कड़ और अक्खड़ सम्वाददाता था।

०

जब सनातन धर्म सभा जालन्धर के दफ़्तर में (जिसकी नाट्य समिति का वह उपमन्त्री था) चेतन लाहौर के प्रसिद्ध सनातनी दैनिक पत्र 'भीष्म' के सम्पादक (जिसे उर्दू लिपि में लिखा होने के कारण सब 'भीषम' कह कर पुकारते थे) तथा उर्दू के प्रसिद्ध शायर, पण्डित राम-लुभाया 'फ़िदा' से मिला था; उसने उन्हें अपनी कुछ ग़ज़लें सुनायी थीं; उन्होंने उसे लाहौर चलने की दावत दी और अपने स्कूल तथा घर के वातावरण से खिन्न और अपनी सगाई से अत्यन्त विक्षुब्ध चेतन उनके साथ चला आया था, तो उसने यही समझा था कि 'फ़िदा' साहब उसकी

प्रतिभा के प्रति आकृष्ट हो कर एक भावी महाकवि के प्रोत्साहन और सहायता के लिए उसे अपने साथ लाहौर ले जा रहे हैं। लेकिन जब उन्होंने समाचार-पत्र के कार्यालय के निकट ही 'पंजाब हिन्दू होटल' में उसके रहने-खाने, ग्वालमण्डी चौरास्ते के हलवाई से उसके लिए डेढ़ पाव दूध और सब्ज़ीमण्डी के नाई, धोबी से उसकी हजामत और कपड़ों की सफ़ाई की व्यवस्था कर दी और वह दफ़्तर जाने लगा, तो चन्द ही दिनों में उसको पता चल गया कि दाल में कुछ ही नहीं—बहुत कुछ काला है।

'फ़िदा' साहब का कमरा विभाग से अलग था। वहाँ एक कुर्सी और मेज़ लगी थी। 'फ़िदा' साहब शक्ल से ज़रा भी कवि नहीं लगते थे। कालर-विहीन कमीज़, घुटन्ना पायजामा, पैरों में पुराने देशी जूते, सिर पर पगड़ी (जो वे प्रायः उतार कर मेज़ पर रख देते थे) एक आँख दबी हुई और नज़र कमज़ोर। वे काग़ज़ को बिल्कुल आँखों के पास ले जा कर पढ़ पाते थे। कुर्सी के बराबर ही दायें हाथ को उन्होंने हुक्का रख छोड़ा था। दिन भर वे मेज़ पर टाँगें पसारे, कुर्सी पर पीछे को टेक लगाये हुक्का गुड़गुड़ाया करते थे। समाचार-पत्र पर नाम उनका जाता था, पर काम 'महात्मा' करते थे। इन महात्मा का असली नाम ज्ञान-चन्द था, पर 'प्रीतम बारबटनी' के नाम से प्रसिद्ध थे। किसी ज़माने में ज़रूर सुन्दर होंगे, क्योंकि रंग उनका गोरा और नक्श तीखे थे, लेकिन उस समय तो वे पैंतीस के दिखायी देते थे। अगस्त का महीना था। बेपनाह उमस हो जाती थी। दिन को तो 'प्रीतमजी' किसी तरह कपड़े पहने रहते थे, पर रात को बनियान उतार, पंखे के नीचे बैठ कर पत्र का सम्पादन करते थे। उनके बायीं ओर मेज़ पर एक पहाड़ी युवक बैठते थे, जिनका नाम तो दिलीपचन्द था, पर वे डोगरा कहलाते थे। थे तो कहीं काँगड़े की ओर के रहने वाले, पर 'फ़िदा' साहब ने उन्हें 'क्यों बे डोगरे ?' कहना शुरू किया तो वे डोगरा हो गये।...डोगरा भी गोरे-चिट्टे, सुन्दर नैन-नक्श वाले युवक थे। चेतन से चार-पाँच

साल बड़े होंगे। ज़रूरी खबरों का अनुवाद वही करते थे। कभी-कभी साप्ताहिक संस्करण में 'डोगरा' के नाम से हास्य-व्यंग्य का कॉलम भी लिखते थे। उनके अलावा चेतन ही के समवयस्क कोमल कान्त दो युवक और थे, जो महात्मा और डोगरा के सामने मेज़ की शेष दो ओर बैठते थे। वे अखबार का काम करने के साथ-साथ, ज़रूरत पड़ने पर 'फ़िदा' साहब के लिए चिलम भी भर लाते थे। बीस मिनट या आधे घण्टे बाद 'फ़िदा' साहब इन दोनों में से एक या दूसरे को अपने कमरे में बुलाते और उनकी कोई-न-कोई ग़लती दिखा कर 'क्यों बे गूँगे ?' कहते हुए उनके गालों पर प्यारी-प्यारी चपतें लगाया करते थे। उन लौण्डों के गालों पर चपते लगाते हुए उनके चेहरे पर कुछ अजब-सी प्यार और डाँट-भरी मुस्कान खेल जाती। उनकी दबी आँखों में रोशनी आ जाती, दाँत भिच जाते और नथुने और होंट फड़क उठते—'क्यों बे गूँगे ?'

डोगरा भी एकाध बार आ कर एक-आध चपत खा जाते थे, हाँ प्रीतमजी के चपत लगाने 'फिदा' साहब को स्वयं वहाँ जाना पड़ता। रात को जब कमीज़-बनियान उतारे पंखे के नीचे बैठे 'प्रीतमजी' खबरों का अनुवाद कर रहे होते या प्रूफ़ पढ़ रहे होते या कॉपी लगा रहे होते तो 'फ़िदा' साहब अपने कमरे से आते और उनके पास जा कर उनकी नंगी पीठ पर एक प्यारी-सी चपत लगा कर कहते—'क्यों बे महात्मा ?' . . .चेतन ने दो-तीन दिन यह सब देखा तो उसे लगा कि यदि वह यहीं रहा तो उसे भी 'गूँगा' बन कर चपतें खानी पड़ेंगी।

यद्यपि चेतन बी० ए० तक अंग्रेज़ी पढ़ा हुआ था और अच्छी कहानियाँ लिख लेता था, पर 'फ़िदा' साहब ने उससे कहा था कि वह 'डोगरा' के साथ बैठ कर अंग्रेज़ी खबरों का अनुवाद करना सीखे। तब वह दिन-रात दोनों समय (कि उस ज़माने में समाचार-पत्रों के सम्पादकगण दिन-रात काम करते थे और शिफ़्ट सिस्टम चालू नहीं हुआ था) दफ़्तर जाने लगा था। उन दो-तीन दिनों में उसने जितनी खबरों का अनुवाद किया था, 'डोगरा' ने सब काट दी थीं, जिससे वह बड़ा हतो-

त्साह हुआ था। इसके अलावा तीसरे या चौथे दिन जब वह एक समाचार का अनुवाद करने का प्रयास कर रहा था, तो 'फ़िदा' साहब आये थे। 'प्रीतमजी' की नंगी पीठ पर एक चपत जमाते और 'क्यों वे महात्मा ?' कहते हुए दबी आँखों से उन्होंने चेतन की ओर देखा था। चेतन को लगा था, अभी वे एक हलकी-सी चपत उसके गाल पर जड़ देंगे और पूछेंगे, 'क्यों वे गूँगे ! कुछ तरजुमा-अरजुमा आया कि नहीं ?'. . .लेकिन क्षण भर वे उसे देखते रहे थे। चेतन तना बैठा रहा था ! फिर कुछ अस्वस्ति भाव से वह हिला था और वे चले गये थे। चेतन के वहाँ बैठे-बैठे वे दो-तीन बार आये थे। उसे वे उस बाज़ सरीखे लगे थे, जो झपट्टा मारने के पहले शिकार पर मँडरा रहा हो. . .उसे कल्पना-मात्र से घिन आने लगी थी।. . .उनके मुहल्ले से ज़रा दूर बनियों की गली में, उसी मकान में, जहाँ उसका मित्र लालू बनिया रहता था, एक चुंगी का मुहर्रिर दयाल ढोढा रहा करता था—वह बाज़ार पापड़ियाँ की गली के एक लड़के निरंजन पर मरता था। निरंजन चेतन की दृष्टि में सुन्दर न था—पतला, छरहरा, आँखें बिल्ली-सी भूरी। कानों में वह छोटी-छोटी बालियाँ पहनता था। चेतन जिन दिनों फ़र्स्ट ईयर में था, निरंजन आठवीं कक्षा का छात्र था। दयाल ढोढा अपना सारे-का-सारा वेतन उसे खिलाने-पिलाने और घुमाने में खर्च कर देता था। जब कभी निरंजन रूठ जाता तो दयाल उसे मनाने के लिए—खुले गिरेबान वाली मैली कमीज़, मैली धोती, सिर के बिखरे खिचड़ी बाल, धँसे कल्ले, बढ़ी दाढ़ी, और अधेड़ उम्र के साथ—बड़े दयनीय भाव से उसके पीछे गली-गली, बाज़ार-बाज़ार मारा-मारा फिरता। वह सब देख कर चेतन को कभी-कभी हैरत होती।. . .किन्तु दयाल विधुर था। उसकी पत्नी उसकी जवानी में मर गयी थी। उसकी बुढ़भसता समझ में आती थी, लेकिन 'फ़िदा' साहब के तो बीवी थी, बच्चा था और वे दोनों उनके दफ़्तर के साथ वाले पोर्शन में ही रहते थे और 'फ़िदा' साहब बीवी से डरते भी थे. . .

०

वहीं बैठे-बैठे चेतन के सामने उनकी पत्नी का चित्र आ गया, और एक किस्से की याद हो आयी, जो उसने उन्हीं दिनों 'डोगरा' से सुना था :

०

'भीष्म' कार्यालय के ऐन सामने रेलवे रोड पर ही एक मकान के दोतल्ले पर उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार महाशय 'देवदर्शन' रहते थे। नाम तो उसका सोहनलाल था, पर मुन्शी चन्द्रशेखर की नकल में (जिन्होंने अपना असली नाम कामताप्रसाद छोड़ कर चन्द्रशेखर रख लिया था) महाशय सोहनलाल चोपड़ा ने भी अपना नाम 'देवदर्शन' रख लिया था और इसी नाम से वे प्रसिद्ध हो गये थे। किसी ज़माने में आर्य समाज के वैतनिक प्रचारक थे, फिर धीरे-धीरे लिखने लगे। चन्द्रशेखर यदि किसी आधारभूत विचार को देहात के वातावरण में रख कर कहानी लिखते तो महाशय देवदर्शन झट उसी विचार को शहरी वातावरण में रख कर कहानी गढ़ देते। उन दिनों पंजाब में हिन्दी का वैसा प्रचार न था। कोई न जान पाता कि उन्होंने कहानी चुरायी है। भाषा वे बड़ी सीधी-सादी और मीठी लिखते थे। पंजाब के उर्दू भाषी हिन्दुओं में वे बड़े लोकप्रिय कथाकार थे। पंजाब के चन्द्रशेखर कहलाते थे और अपने नाम के साथ 'अदीबे-फ़ितरत-निगार'—याने प्रकृति का सच्चा ख़ाका खींचने वाला साहित्यकार—लिखते थे।

इधर महाशयजी ने पंजाब के प्रसिद्ध धनाधीश और दानी सरदार डिंगा सिंह को उनके विलायत पलट मोने (सिर मुंडे) युवक-पुत्र के माध्यम से अपना भक्त बना लिया था। वे जो नयी कहानी लिखते, स्वयं जा कर सरदार डिंगा सिंह को सुना आते। उन्हीं की आर्थिक सहायता से उन्होंने उच्चकोटि की एक उर्दू मासिक पत्रिका 'मन्दिर' प्रकाशित करनी शुरू की थी, जो पंजाब की ही नहीं, देश की उर्दू-पत्रिकाओं में प्रथम श्रेणी की मानी जाती थी।

'मन्दिर' का साइनबोर्ड 'भीष्म' के ऐन सामने लगा हुआ था और

महाशय देवदर्शन बरामदे में खड़े हों तो 'फ़िदा' साहब से बात कर सकते थे। 'फ़िदा' साहब महाशयजी के वतनी थे। दोनों साथ-साथ पढ़े थे। फिर महाशयजी आर्य समाजी और 'फ़िदा' साहब सनातनी हो गये, लेकिन दोस्ती दोनों में बरकरार रही। पहले 'देवदर्शन' दूर कृष्णनगर में रहते थे, पर जब उन्हें आर्थिक सहायता मिली और उन्होंने दैनिक 'भीष्म' के सामने दो-मंज़िले पर 'मन्दिर' के लिए दफ़्तर लिया तो तिमंज़िले पर दो कमरों में अपने रहने की व्यवस्था भी कर ली।

नये दफ़्तर में आने और सामान वग़ैरह जमाने के दूसरे ही दिन वे अपनी पत्नी को ले कर 'फ़िदा' साहब से मिलने आये!

'फ़िदा' साहब की पत्नी उस समय बर्तन मल रही थीं, धोती उनकी न केवल सिर से हटी थी, बल्कि घुटनों से भी उठी थी। तब देवदर्शन जी के दस्तक देने पर 'फ़िदा' साहब ने दरवाज़ा खोला और महाशय देवदर्शन को देखा तो 'नमस्कार' के आदान-प्रदान के बाद उन्होंने वहीं से चिल्ला कर अपनी पत्नी से कहा, 'अरे भाई सिर पर कपड़ा कर लो देवदर्शनजी आये हैं।'

उनकी पत्नी ने जल्दी से धोती ठीक की, हाथ धोये और कमरे में, जो बैठक और शयन-कक्ष दोनों का काम देता था, जा खड़ी हुई। तभी 'फ़िदा' साहब के पीछे-पीछे महाशय देवदर्शन आये और उन्होंने कहा, 'भाभीजी नमस्कार!'

'फ़िदा' साहब की पत्नी ने ज़रा-सा घूँघट खींच लिया था। किंचित परिचित स्वर सुन कर उन्होंने सिर उठाया और महाशयजी को देख कर बोलीं:

'हाय हाय इह ते मोइया सोहनलाल है, एह हुण देवदर्शन हो गया है! मैं वी आक्खाँ केहड़ा देवदर्शन आया है?'[1]

---

१. हाय-हाय यह तो मुआ सोहन लाल है। यह अब देवदर्शन हो गया है। मैं भी कहूँ कौन देवदर्शन आया है।

०

डोगरा चेतन को बात सुना कर देर तक हँसते रहे थे और उन्होंने चेतन को बताया था कि स्वयं 'फ़िदा' साहब से उन्हें यह किस्सा मालूम हुआ था।. . .ऐसी दबंग पत्नी का पति और एक भोले-से बच्चे का बाप दफ़्तर ही में लौण्डे रखे हुए था, यह देख कर चेतन को हैरत होती थी, लेकिन उनकी पत्नी बेचारी बाहर दफ़्तर में तो आती न थी और अन्दर जाते समय अज़ीम शायर पण्डित रामलुभाया 'फ़िदा,' भीगी बिल्ली बन जाते थे। स्वयं चाहे वे असुन्दर थे, पर हृदय उन्हें सौन्दर्योपासक मिला था और वैसी दबंग मर्द-औरत उनकी सौन्दर्य-भावना को ख़ासी ठेस पहुँचाती थी इसीलिए यथा सम्भव वे अपने इर्द-गिर्द सौन्दर्य की सृष्टि किये रहते थे—लेकिन चेतन को तब इस मनोवैज्ञानिक सत्य का ज्ञान न था। वह दयाल ढोढा से पण्डित रामलुभाया की तुलना करता तो जहाँ दयाल के लिए उसके मन में सहानुभूति जगती, पण्डितजी के लिए घृणा।. . .तो भी शायद वह काफ़ी दिनों तक 'भीष्म' में बना रहता, यदि वहाँ मंगतराम बलोची न होता और वह बदतमीज़ी न करता।

०

मंगतराम पण्डित श्यामलाल 'रत्न' ही की तरह शलवार-कमीज़ और कुल्लेदार पगड़ी पहनता था। अंतर यही था कि उसकी शलवार ज़्यादा घेरदार थी, कमीज़ के ऊपर वास्केट के बदले वह कोट पहनता था और कुल्ले पर मुसद्दी पगड़ी के बदले साधारण मलमल की पगड़ी बाँधता। उसके सभी कपड़े काफ़ी मैले रहते. . .बलोची का रंग गोरा था। चेहरा उसका कभी ज़रूर सुन्दर रहा होगा, लेकिन चेतन को वह निहायत उजड्ड, गँवार और बर्बर लगता था। वह बर्बरता उसके जबड़े और मुँह की बनावट में थी, या इसका कारण पान-रँगे दाँत दिखाते हुए उसका निहायत बेतुकेपन से हँसना था, चेतन यह कभी तय नहीं कर पाया। लेकिन प्रकट ही उसकी इसी बर्बर आकृति के कारण 'फ़िदा' साहब उसे 'बलोची' कहने लगे थे, वरना जैसे 'डोगरा' का काश्मीर से कोई

सम्बन्ध न था, वैसे ही मंगतराम को बलोचिस्तान से कुछ लेना-देना न था। बलोची पान खाता था तो उसके होंट ही नहीं, ठोड़ी तक रँग जाती थी और बातें करते हुए पान की पीक उसके होंटों के कोनों से बहने लगती थी। वह शायद ठर्रा पीता था और धार्मिक दैनिक में काम करने के कारण मुँह की बदबू को रोकने के लिए वेतहाशा पान चबाता था, जिससे उसके दाँतों की जड़ें और सन्वे काली पड़ गयी थीं। कभी कोई गन्दा-सा मज़ाक करते हुए वह मुँह चियारता तो चेतन को वह निहायत बुरा और घृणास्पद लगता। वह दिन भर घूमता था। कुछ समाचार एजेंसियों के संचालकों से उसकी मैत्री थी, कचहरी के सरिश्तेदारों से उसका परिचय था (शायद खाना-पीना भी था) वकीलों के यहाँ उसका आना-जाना था और चेतन ने सुना था कि वह पुलिस विभाग में भी रहा है। उसे समाचार इकट्ठे करने में कठिनाई न होती।. . .'फ़िदा' साहब जब चेतन को ले कर पहले दिन दफ़्तर में आये थे और उन्होंने सब को उसका परिचय दिया था तो बलोची मौजूद था। महात्मा और डोगरा काम में तल्लीन थे। उन्होंने क्षण भर को सिर उठाया था और माथे का पसीना पोंछते हुए उनींदी आँखों में थकी-सी मुस्कान लिये, उसके 'नमस्कार' का उत्तर दिया था। 'फ़िदा' साहब ने डोगरा की ड्यूटी लगायी थी कि वह चेतन को अनुवाद सिखाये और घोषणा की थी कि जब तक चेतन जी अनुवाद नहीं सीख जाते, हर सप्ताह सण्डे ऐडीशन में कहानी दिया करेंगे।. . .डोगरा ने ज़रा-सी औपचारिक खुशी भी प्रकट न की थी और पूर्ववत खबरों का अनुवाद करते हुए हामी भर ली थी। चेतन के समवयस्क शेष दो सम्पादकों ने उसकी ओर ऐसे देखा था, जैसे चिड़िया-घर के पुराने बन्दर नये आने वाले अपने जातीय भाइयों को देखते हैं। सिर्फ़ बलोची ने अतिरिक्त मुस्कान में अपना मुँह चियार दिया था। उसकी आँखों में एक वहशी चमक आ गयी थी और उसने बढ़ कर चेतन की पीठ थपथपाते हुए 'फ़िदा' साहब से कहा था, 'पण्डितजी आप इसे रिपोर्टिंग पहले सिखाइए और मेरे हवाले कीजिए। पन्द्रह दिन में ताक

न कर दूँ तो बलोची नाम नहीं।'

'ओए महात्मा तूँ पहलाँ अपना कम्म ताँ ठीक कर, दूजियाँ दी फ़िकर फ़ेर करीं।'[1] फ़िदा साहब ने उत्तर दिया था और वे उसे अपने साथ ले गये थे. . .

पाँच-सात दिन बाद ही जब चेतन शाम को दफ़्तर का काम ख़त्म करके सीढ़ियाँ उतर रहा था तो अभी वह आधी सीढ़ियाँ भी उतर न पाया था कि बलोची तेज़-तेज़ पीछे से उतरा और जब चेतन उसे रास्ता देने के लिए दीवार के साथ सिमट गया तो उस तंग जगह से गुज़रते हुए बलोची ने दोनों कन्धों से पकड़ उसे चूम लिया था और मुँह चियारता हुआ खट-खट सीढ़ियाँ उतर गया था। बदबू का हलका-सा भभका चेतन के नथुनों में समा गया था। उसने कमीज़ की आस्तीन से मुँह पोंछ लिया और क्रोध और घृणा से उसका तन-मन सुलग उठा था।

चेतन इस बू से परिचित था। उसके पिता कभी उसे चूमते थे तो उसके नथुनों में ऐसी ही बू का भभका आता था। बलोची की उम्र उसके पिता-जितनी नहीं तो सात-आठ वर्ष ही कम होगी।. . .उसने अपने पिता में सब ऐब देखे थे, पर यह ऐब उसे उनमें दिखायी न दिया था।. . .अभी दस-बारह दिन पहले वह जालन्धर में था। जब अमीरचन्द ने भागो को पीट दिया था और अपने वचन में बँधे उसके पिता जब अमीरचन्द की तलाश करने निकले थे, उसके मामा के चौबारे पहुँचे थे और वहाँ उसके पलँग पर उन्होंने एक बारह-तेरह बरस के लड़के को सोते पाया था तो उन्होंने उसे जो मल्लाहियाँ सुनायी थीं, वे चेतन को उस वक्त भी याद थीं। लेकिन न अमीरचन्द के मामा, न दयालचन्द ढोढा, न हरबल्लब के मेले में इकट्ठे होने वाले बैंतबाज़—(जो लौण्डों के इश्क में बैत कहते थे।)—उनमें से कोई भी किसी धार्मिक संस्था से

---

१. अरे महात्मा, तू पहले अपना काम तो ठीक कर, दूसरों की चिन्ता फिर करना।

सम्बन्धित न था। इस सनातन धर्मी अखबार में दिन भर यही कुछ होता देख, चेतन को घोर वितृष्णा हुई थी। उसे लगा था कि जालन्धर में अपने हाई स्कूल की नौकरी छोड़ कर, लाहौर के उस अखबार में आना आसमान से गिर कर खजूर में अटकने के ही बराबर है।

०

अभी चेतन 'भीष्म' के उस दम-घोंटू वातावरण से निकलने की कोई योजना न बना पाया था कि बलोची ने उसे फिर परेशान किया था और चेतन ने, अपने से कहीं ज्यादा बड़े और वहशी कुत्ते के चंगुल में फँसे पिल्ले की तरह अपने पैने दाँत दिखा दिये थे।

०

डिग्री लेने के बाद भी चेतन ने कसरत करना नहीं छोड़ा था। वह बाकायदा तेल की मालिश करके प्रातः सौ डण्ड और सौ बैठकें लगाया करता था और लाहौर आने पर भी उसने अपना यह क्रम जारी रखा था।. . .पंजाब हिन्दू होटल, दैनिक 'भीष्म' के निकट ही रेलवे रोड और सब्ज़ी मण्डी के चौरस्ते में स्थित था। भरी घनी आबादी में ढाबानुमा निम्न-मध्यवर्गीय होटल—उसकी इमारत भी सदियों पुरानी थी। नीचे होटल था और ऊपर कुछ छोटे-छोटे कमरे थे। पाँच रुपये एक कमरे का किराया। कमरों के आगे थोड़ी खुली छत थी, जहाँ कमरों में रहने वाले सोते थे। वहाँ कसरत करने के लिए कोई जगह नहीं थी। छत पर जाने को एक बाँस की सीढ़ी थी। इसी से चढ़ कर चेतन छत पर जा कर कसरत किया करता था। बिना इस बात की परवा किये कि लँगोट लगा कर और मालिश करके होटल की छत पर कसरत करते हुए उसे चारों ओर की छतों से लोग देखते हैं, चेतन रोज़ बाकायदा वहाँ सौ डण्ड और सौ बैठकें लगाता। कसरत के लिए जाते और उसके बाद आते हुए उस सीढ़ी से उतरते समय चेतन को कुछ अस्वस्ति-बोध तो होता, पर वह किसी बात की चिन्ता किये बिना अपना दैनिक क्रम जारी रखे था।

एक दिन सुबह जब चेतन लंगोट लगाये, हाथ में तेल की शीशी

लिये, नंगे बदन बाँस की सीढ़ी उतर रहा था तो ऐन उस वक्त बलोची आ गया और जब चेतन निचली सीढ़ी पर था, उसने उसे कलावे में भर लिया। लेकिन छत पर पैर रखते ही, बलोची के हाथ को अपने दायें खाली हाथ से पकड़, उसे ज़रा परे हटा, घूम कर, चेतन उसकी गिरफ़्त से आज़ाद हो, उसके सामने आ गया।

'बड़ी कसरत हो रही है, खूब जिस्म कमा लिया है,' बलोची ने दाँत चियारते हुए उससे हाथ मिलाया था और फिर वह चेतन के पंजे को वहशियों की तरह अपने हाथ में दबाने लगा था। चेतन सतर्क न होता तो बलोची उसकी हड्डियाँ चटखा देता। लेकिन चेतन ने स्कूल और कॉलेज के गुण्डों से अपने हाथ को मसल जाने से बचाने का एक गुर अपने पिता से सीख रखा था। उसने बलोची के हाथ में तत्काल अपना हाथ ढीला छोड़ दिया—ऐसे कि उसका अँगूठा और छिगुली आपस में मिल गये। बलोची ने बड़े ज़ोर से चेतन का हाथ मसला—यह सोच कर कि अभी चेतन बिलबिला उठेगा, लेकिन जब उसके चेहरे पर दर्द का कोई चिन्ह प्रकट नहीं हुआ और चेतन उसके हाथ में वैसे ही अपना हाथ ढीला छोड़े हुए मन्द-मन्द मुस्कराता रहा तो बलोची ने चेतन के हाथ की पुश्त पर अँगूठे का ज़ोर दे कर उसके हाथ को सीधा करने और फिर मसल कर उसकी हड्डियाँ चटखाने का प्रयास किया, लेकिन चेतन ने अपने हाथ को और भी गोल कर लिया और बलोची दाँत पीस कर ज़ोर लगाने के बावजूद उसके हाथ को सीधा न कर सका।

तब चेतन ने एक झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और बोला, 'मुझे ज़रा एक जगह जाना है आप दिलजंग के बैठिए! मैं ज़रा कपड़े बदल लूँ।'

दिलजंग एक सिक्ख युवक था, जो चेतन के कमरे से एक कमरा छोड़ कर कोने वाले कमरे में डेरा जमाये था। वह कचहरी में क्लर्क था। पढ़ने का बड़ा शौकीन—उसकी बड़ी-बड़ी आँखें बाहर को निकली पड़तीं और उनमें अजीब-सा उनींदापन रहता। दाढ़ी उसकी

बेपरवाही से बँधी रहती थी। शायद उसके पास फ़िक्सो लगा कर ठाठा बाँधने का समय ही नहीं था। जो वक्त मिलता, उसमें किताबें पढ़ा करता और बुद्धिजीवी क्लर्कों की आँखों में जो थकान, उनींदापन, ऊबाहट, उदासी और पहुँचे-हुओं का-सा भाव आ जाता है, वह दिलजंग सिंह के यहाँ प्रचुर मात्रा में था। लाहौर के बहुत से पत्रकारों और लेखकों से उसकी मैत्री थी और वह बलोची का भी मित्र था।

लेकिन बलोची दिलजंग के कमरे में नहीं गया। वह चेतन के पीछे-पीछे उसके कमरे में चला आया।—छोटा-सा कमरा। सामने खिड़की, उसके नीचे मुश्किल से अटी हुई चारपाई। दरवाज़े के पास दायीं ओर दीवार से लगी छोटी-सी मेज़ और कुर्सी; उसके पीछे दीवार में बिना किवाड़ों की एक मामूली-से पर्दे से ढँकी अलमारी और बायीं ओर खूँटियाँ, जिन पर चेतन ने कपड़े टाँग रखे थे।

चेतन लंगोट उतार कर कमीज़-पतलून, या कुर्ता-पायजामा पहनता, लेकिन बलोची की आँखों में बेपनाह भूख और वासना को देख कर उसे क्षण भर को भय हुआ—परदेश का मामला है, यह आदमी उससे बड़ा है, तगड़ा है और वहशी है। दयाल ढोढा की तरह दयनीय नहीं, राज-किशोर की तरह दबंग है। लेकिन भय का कोई चिन्ह चेतन ने अपने चेहरे पर नहीं आने दिया। खूँटी से तौलिया उठा कर उसने ज़ोर से अपना बदन रगड़-रगड़ कर तेल और पसीना पोंछा, फिर बना लंगोट उतारे कमीज़-पतलून पहन ली। शीशे में देख कर बाल बनाये और जूते पहन कर वह बाहर निकल आया।. . .मंगतराम बलोची, जो लगातार उसकी ओर देख रहा था, यन्त्र-चालित-सा उसके पीछे चला आया।

चेतन को कहीं जाना नहीं था। वह तो वास्तव में चाहता था कि यह मरदूद टल जाय तो वह कुछ आराम कर के पसीना सुखाये, नहाये-धोये और कुछ लिखने-पढ़ने का प्रयास करे। लेकिन जब उसे लगा कि यह पाजी उसके साथ ही चल देगा तो उसने ताला लगाया और सीढ़ियाँ

उतरने से पहले सहसा उसने दायें हाथ की मुट्ठी बन्द की और फिर उसे उलट कर उभरे हुए गट्टों की ओर संकेत किया :

'अपने गट्टों से मारिए—जितने ज़ोर से आप मार सकते हैं।' चेतन ने कहा।

बलोची ने क्षण भर उसकी ओर देखा। फिर मुट्ठी बन्द कर पूरे ज़ोर से अपने गट्टे उसके गट्टों पर मारे।

चेतन का हाथ टस-से-मस नहीं हुआ।

'अब आप अपने गट्टे बढ़ायें, मैं मारता हूँ!'

बलोची ने मुट्ठी बन्द कर, उल्टा हाथ उसके आगे कर दिया।

चेतन ने मुट्ठी बाँधी, दायीं ओर उसे किंचित घुमा कर बाँह को मरोड़ता हुआ वह उसे सिर से ऊपर ले गया और तब ज़रा-सा झटका देते हुए उसने इतने ज़ोर से वार किया कि दर्द के मारे बलोची कितनी देर तक हाथ झुलाता रहा।

'तुम्हारी हड्डियाँ हैं या लोहा!'

चेतन ने मुट्ठी बन्द कर के हाथ आगे बढ़ा दिया। 'आप मेरी कलाई पकड़ कर जितने ज़ोर से चाहें, मेरे गट्टे दीवार से मारिए।'

'क्या तुमने गट्टे दीवार से मार कर प्रैक्टिस कर रखी है?'

'एक बार आप मारिए।' चेतन ने वैसे ही कड़ाई आगे बढ़ाते हुए कहा, 'एक बार मैं मारूँगा।'

लेकिन बलोची टाल गया। 'तुम जाओ, तुम्हें देर हो जायगी,' उसने कहा और दिलजंग सिंह के कमरे की ओर चला गया।

०

यदि बलोची दिलजंग सिंह के पास जा कर न बैठता और उसके साथ होटल के नीचे उतर जाता, तो चेतन उसे जुल दे कर वापस आ जाता; और अपने काम में लग जाता। लेकिन उसे दिलजंग सिंह के कमरे को जाते देख कर चेतन नीचे उतर गया था। यद्यपि अभी सुबह के आठ बजे थे, पर चौरस्ते पर बेपनाह भीड़ थी। उस सब से बेपरवाह चेतन

सीधा रेलवे रोड और अस्पताल रोड को पार कर 'विश्व साहित्य प्रकाशन' और 'हिन्दी पुस्तक भवन' के पास से होता हुआ अनारकली पहुँच गया। दुकानें अभी खुल ही रही थीं। सारी अनारकली का चक्कर लगा कर उसने एक चाकू ख़रीदा और वापस फिरा।

उसने अपना पुराना नुस्ख़ा आज़माया था। उसके पिता उससे कहा करते थे, 'तू कमज़ोर है, तगड़े लड़कों से लड़ नहीं सकेगा। दीवार से पहले धीरे-धीरे, फिर ज़ोर-ज़ोर से गट्टे मार कर उन्हें लोहे-सा बना ले और गट्टे लड़ाने में महारत[1] पैदा कर। मैं भी तेरी तरह पतला-दुबला था, पर अपने कहीं हृष्ट-पुष्ट लड़कों को एक ही चोट में तारे दिखा देता था। और अपने पिता के सद्-परामर्श पर चलते हुए उसने अपने गट्टे लोहे-ऐसे बना लिये थे और वह अपने से कहीं मज़बूत लड़कों को गट्टे लड़ा कर हरा देता था।

चेतन ने उस वक्त तो बलोची को धता बता दी थी, लेकिन उसे भय था कि वह उसे तंग करने से बाज़ न आयगा और वह उसकी रोज़ की बदतमीज़ियों को सह न सकेगा। चाकू उसने बढ़िया, खटके से तत्काल खुल जाने वाला लिया था और उसने सोचा था कि एक-दो बार जब बलोची दफ़्तर में होगा, वह चाकू खोल कर दिखायेगा और क़िस्सा सुनायेगा कि कैसे एक बार वह गुण्डों से घिर गया था और इस चाकू ने उसकी रक्षा की थी और कैसे प्रतिद्वन्द्वी के ख़ासा घाव आ गया था और वह जेल जाता-जाता बचा था (मन में उसने तय किया कि जालन्धर छावनी में चाकू चलाये जाने वाले राजकिशोर के किस्से में कुछ पत्ते लगा कर वह सुना देगा) और यदि उसका इच्छित प्रभाव न पड़ा तो ज़रूरत पड़ने पर वह चाकू का प्रयोग करने में भी नहीं हिचकिचाएगा।

०

लेकिन उसे चाकू चलाने की ज़रूरत नहीं पड़ी क्योंकि महीने के अन्दर-

---

१. निपुणता

अन्दर उसे लाला लाजपत राय के प्रसिद्ध राष्ट्रीय दैनिक 'बन्देमातरम' में नौकरी मिल गयी।

०

एक दिन चेतन 'फ़िदा' साहब के दफ़्तर में बैठा उन्हें नयी लिखी कहानी सुना रहा था, जब महाशय देवदर्शन वहाँ आ गये। चेतन ने अभी कहानी सुनानी शुरू ही की थी। उनके आने पर वह चुप हो गया। 'फ़िदा' साहब ने उसका परिचय दिया और बताया कि वे उसकी नयी कहानी सुन रहे थे। महाशय देवदर्शन ने उसे कहानी जारी रखने को कहा। चेतन ने उसे फिर शुरू से सुनाना आरम्भ किया। समाप्ति पर देवदर्शन जी ने कहानी की भूरि-भूरि प्रशंसा की, चेतन की खूब पीठ ठोंकी, उसे अपने यहाँ आने की दावत दी और यह भी कहा कि वह उनकी पत्रिका के लिए भी कहानी लिखे।

उस रात चेतन को खुशी के मारे नींद न आयी थी। महाशय देवदर्शन पंजाब के चन्द्रशेखर थे और चेतन को तो उनकी भाषा मुन्शी चन्द्रशेखर से भी सरल और सुगम लगती थी। वे कैसे मुन्शीजी की जेबें सफ़ाई और चाबुकदस्ती से काटते हैं, तब उसे यह सब मालूम नहीं था। वह उनका भक्त था। जब महाशयजी ने उसकी कहानी की प्रशंसा की तो चेतन को लगा जैसे उसे तीनों लोकों का साम्राज्य मिल गया है। फिर उन्होंने महज़ शिष्टाचारवश प्रशंसा न की थी, उससे अपने 'मन्दिर' के लिए कहानी भी माँगी थी। वह रात के एक बजे के लगभग दफ़्तर से आया था, पर वह सो न सका। घण्टा-डेढ़ घण्टा करवटें बदलने के बाद वह उठा था और मेज़ पर बैठ गया।. . .तीसरे दिन वह नयी कहानी ले कर उनके पास पहुँच गया था।

वह उन्हें कहानी सुनाना चाहता था, पर ऐन उस वक्त महाशयजी ने स्वयं नयी कहानी ख़त्म की थी और बिना इस बात की परवा किये कि वह कहानी सुनना भी चाहता है या नहीं, वे उसे कहानी सुनाने लगे थे।—दो बहुत गहरे मित्र हैं। उनमें से एक मित्र अपनी विधवा भाभी

के साथ रहता है, जो अपने देवर के उस मित्र को (जो उसके पति का भी मित्र था) बहुत मानती है। जायदाद के बँटवारे को ले कर देवर-भाभी में झगड़ा हो जाता है। झगड़े की जड़ हैं—गहने! भाभी का कहना है कि सास के मरने पर जो गहने घर में हैं, उनमें उसके भी गहने शामिल हैं, क्योंकि देवरानी तो अपने सब गहने सास के रहते ही ले चुकी है, लेकिन उसे जो गहने मायके से पड़े, वे उन्हीं में हैं। उन्हें पहले निकाल दिया जाय, फिर बँटवारा हो। देवर इसके लिए तैयार नहीं। वह अपने मित्र को बुलाता है। दोनों में षड्यन्त्र होता है कि भाभी को समझायें—मुकदमेबाज़ी से कोई लाभ नहीं, एक मध्यस्थ तय कर लें। चूँकि उस व्यक्ति पर भाभी को बड़ा विश्वास है, वह उसके पति का घनिष्ट मित्र रहा है, इसलिए वह उसे मध्यस्थ बनाना स्वीकार कर लेगी। मित्र तैयार हो जाता है और देवर को यह आश्वासन देता है कि वह फ़ैसला उसी के हक में करेगा। लेकिन जब वह मध्यस्थ के आसन पर बैठता है और सारे गहने उसके सामने आते हैं तो वह अपने मित्र से किया हुआ वादा भूल जाता है। वह उस पर बुरी तरह जिरह करता है और दूध-का-दूध और पानी-का-पानी अलग कर देता है।. . . कहानी का मर्म यही था कि जज का आसन भगवान का आसन है और मध्यस्थ के मुँह से सत्य ही निकलता है।

कहानी सुनते समय भी चेतन को लग रहा था (और कहानी खत्म होने पर तो विश्वास हो गया) कि उसने यह कहानी पहले पढ़ रखी है। अन्तिम पंक्तियाँ सुनने के बाद उसे याद भी हो आया कि उसने 'पंच भगवान' के बारे में मुन्शी चन्द्रशेखर की एक कहानी पढ़ी थी और उसे वह बड़ी अच्छी लगी थी। महाशय देवदर्शन ने उसी का आधारभूत विचार उठा कर उसे शहरी वस्त्र पहना दिये थे।

लेकिन चेतन ने मन की बात नहीं कही। उसने कहानी की थीम, उसकी कला तथा सरल प्रवहमान भाषा की खूब प्रशंसा की और अपनी कहानी उन्हें दे कर चला आया। दूसरे ही दिन उन्होंने उसे बताया कि

न केवल उन्हें उसकी कहानी पसन्द आयी है और वे उसे ताज़ा अंक में छाप रहे हैं, वरन वे उस पर नोट भी दे रहे हैं।

और इस बात को सात दिन भी नहीं बीते थे कि उन्होंने एक दोपहर को उसे दफ़्तर में बुलाया।

चेतन दफ़्तर ही में था। चूँकि उसकी रुचि अनुवाद में नहीं थी, इसलिए उसने 'फ़िदा' साहब से कहा कि जब तक वह अनुवाद नहीं सीख लेता, हर हफ़्ते साप्ताहिक संस्करण के लिए एक कहानी लिखा करेगा और केवल दिन ही को आया करेगा। वह सुबह नौ बजे दफ़्तर चला जाता। दोपहर को एक घण्टा लंच की छुट्टी करता और फिर शाम को बलोची के आने से पहले उठ आता। दिन को वह कुछ वक्त अनुवाद सीखने की कोशिश करता, शेष समय कहानी लिखता। महाशय देवदर्शन ने चिट भेजी थी—'ज़रूरी काम है, पाँच मिनट को अभी चले आइए।'

चेतन तत्काल चला गया था। वहाँ महाशय धनपतराय बी० ए० (नेशनल) बैठे थे। महाशय देवदर्शन ने उन्हें चेतन का परिचय दिया। धनपतरायजी ने उससे कई तरह के प्रश्न पूछे कि वह कितना पढ़ा है, कब से लिखता है, ग़ज़ल में उसके उस्ताद कौन हैं, उसने कितनी कहानियाँ लिखी हैं, 'भीष्म' में वह क्या काम करता है? आदि. . .आदि. . . चेतन ने सब प्रश्नों के उत्तर में सच-सच सब कुछ बता दिया था। अनुवाद के सम्बन्ध में अपनी अज्ञता भी उसने नहीं छिपायी और यह भी कहा कि वह सीखना चाहता है और यदि कोई थोड़ी-सी भी मदद करे तो वह सीख लेगा।

तब महाशय धनपतराय ने देवदर्शनजी से कहा, 'ठीक है, इनका मन हो तो आ जायें। आप इनसे पैसों की बात कर लीजिएगा। बाकी यदि ये चाहेंगे तो हम सब कुछ सिखा लेंगे।'

उनके नथुने किंचित फड़के थे और जैसे नाक ही में मुस्करा कर और हाथ जोड़ कर, दोनों को एक साथ नमस्ते करते हुए, वे चले गये थे।

उनके जाने के बाद महाशय देवदर्शन ने कहा, 'देखो भाई, 'बन्दे मातरम' (जिसे उर्दू वाले 'बन्दे मात्रम' बोलते थे) में एक उप-सम्पादक की जगह खाली हुई है। धनपत मेरे मित्र हैं। चाहते थे मैं किसी का नाम सुझाऊँ। मुझे तुम्हारा ध्यान आ गया। यहाँ 'भीष्म' में तो तुम्हें कुछ मिले-विलेगा नहीं। वहाँ तुम्हें चालीस रुपये महीना मिलेंगे। जैसे हर सप्ताह यहाँ कहानी लिखते हो, वैसे ही वहाँ लिखना। अनुवाद सीख लोगे तो पैसे बढ़ जायेंगे।'

चेतन को ऐसे लगा, जैसे छप्पर फाड़ कर लक्ष्मी छम-छम करती उतर आयी है। महाशय देवदर्शन का धन्यवाद किन शब्दों में करे, यह उसकी समझ में न आ रहा था।

'मैं आपका बहुत-बहुत मशकूर हूँ,' उसने कहा था और पूछा था, 'मुझे कब जॉयन करना होगा ?'

'यह बात तुम कल जा कर उनसे तय कर लेना।'

और दूसरे दिन चेतन 'बन्दे मातरम' के दफ़्तर जा पहुँचा था और महाशय धनपतराय से बात करके अगले दिन से आने के लिए 'हाँ' कर आया था—ख़ुशी उसे वास्तव में 'बन्दे मातरम' में मुलाज़मत मिलने की नहीं थी, बलोची की सन्निकटता से मुक्ति पाने की थी।

और जिस दिन उसने 'बन्दे मातरम' में अपनी मुलाज़मत शुरू की थी, उसी शाम को उसने पहले-पहल पण्डित रत्न के दर्शन किये थे और महीना भी नहीं बीता था कि उन्होंने उसे अपनी छत्र-छाया में ले लिया था।

०

वहीं पीढ़े पर बैठे-बैठे 'बन्दे मातरम' की मुलाज़मत के वे पहले दिन चेतन की आँखों में घूम गये।

नौ

'बन्दे मातरम' के दफ़्तर में चेतन और महाशय धनपतराय बी० ए० (नेशनल) के अलावा दो और सहकारी सम्पादक थे। एक थे एसिस्टेण्ट ऐडीटर मलिक मुहम्मद यूसुफ़ और दूसरे—चिश्ती साहब ! चेतन को मलिक साहब का नाम अत्यन्त उपयुक्त लगता था, क्योंकि वे यूसुफ़[1]-ऐसे ही सुन्दर थे—तीस-एक वर्ष की उम्र, न लम्बा, न मँझला कद, दोहरा बदन, भरा-भरा तिकोना चेहरा, सुतवाँ नाक, बड़ी-बड़ी आँखें, ग़िलाफ़ी पलकें—उनकी शक्ल ईरानियों-जैसी लगती थी। हो सकता है उनका कोई पुरखा ईरान से आ कर पंजाब में बस गया हो। चेतन को वे बहुत

---

१. एक मशहूर पैग़म्बर, जो सुन्दरता में अपना सानी न रखते थे। उनके भाइयों ने उन्हें बेच दिया। मिस्र के सम्राट ने उन्हें ख़रीद लिया था और मिस्र की साम्राज्ञी जुलेख़ा उनसे प्रेम करने लगी थी :

कमाल बन्दगी-ए-इश्क है ख़ुदावन्दी
कि एक जन ने महे-मिस्र सा ग़ुलाम लिया
—सौदा

अच्छे लगते थे। केवल एक बात से वह परेशान रहता था। मलिक साहब बड़े गम्भीर थे। चेतन ने कभी ही उनको हँसते या मुस्कराते देखा था। वे अनवरत काम करते और उनके चौड़े गोरे माथे पर प्रायः हलके-से तेवर बने रहते। उनकी इस मौन और गम्भीर प्रकृति के सन्दर्भ में चेतन को जो बात सबसे दिलचस्प लगी, वह यह थी कि मलिक साहब पत्र का हास्य-व्यंग्य का कॉलम भी लिखते थे। यह कॉलम अग्रलेख वाले पृष्ठ पर ही छपता था। इसका शीर्षक था—'नमकदाँ'—और मलिक साहब 'नमकपाश'[२] के नाम से यह कॉलम लिखा करते थे। इसमें वे सरकार की अनीतियों, सरकार के पिट्ठुओं की खुशामदपरस्तियों, साम्प्रदायिक संस्थाओं की ज्यादतियों और दूसरी राजनीतिक और सामाजिक कुरीतियों पर हास्य-व्यंग्य-भरी (हास्य-भरी कम, व्यंग्य-भरी ज़्यादा) नमकपाशी करते थे।

नौकरी स्वीकार करने के बाद चेतन पहले दिन दफ़्तर पहुँचा था, तो उसने कमरे में दो मेज़ें रखी देखी थीं। एक अपेक्षाकृत बड़ी थी, दूसरी छोटी। बड़ा मेज़ दरवाज़े से चन्द कदम के अंतर पर ही थी—मेज़ की लम्बी तरफ़ लाला धनपतराय बी० ए० (नेशनल) बैठे थे। उन्होंने चेतन को अपने सामने की कुर्सी पर बैठने के लिए कहा था। लालाजी की

---

२. उर्दू शायरी में 'नमक,' 'नमकदाँ' और 'नमकपाश' का बड़ा महत्व है। महबूब को दुख देने वाला, घावों पर नमक छिड़कने वाला याने नमकपाश कहा गया है। लेकिन चूँकि व्यंग्य भी चुभता है, इसलिए उसको भी नमक का दर्जा दिया गया है और व्यंग्य करने वाले को नमकपाश का। इसी सन्दर्भ में व्यंग्य का कॉलम 'नमकदाँ' (नमक का बर्तन) कहलाया :

ऐ 'नमकपाश' ख़ुदा के लिए चुटकी न रुके
कोई दम और तड़पने का मज़ा रहने दे।

—अमीर

बायीं तरफ़—दरवाज़े के ऐन सामने—मँझले कद और दोहरे शरीर के एक मौलाना-सूरत व्यक्ति बैठे थे। उन्होंने कमीज़-शलवार पहन रखी थी। घनी काली दाढ़ी और मूँछों ने उनका सारा चेहरा छिपा रखा था। उनकी आँखों में कुछ अजीब-सी बर्बरता थी। वे पैड पर झुके, काम में तल्लीन थे। अखबार के दफ़्तर में सम्पादक की मेज़ पर बैठे थे, इसलिए सम्पादक लगते थे, पैसा अखबार स्ट्रीट में किसी दुकान पर बैठे होते तो चेतन उन्हें कसाई ही समझता। लाला धनपतराय के दायीं ओर एक अधेड़ उम्र के पतले छरहरे मुसलमान—मौलाना चिश्ती —बैठे काम कर रहे थे।

दूसरी मेज़ सामने दीवार से लगी थी। उस पर अकेले मलिक मुहम्मद यूसुफ़ चेतन ही की तरह गली में खुलने वाली खिड़कियों की ओर पीठ किये बैठे थे। वहीं बैठे वे लाला धनपतराय से बात कर सकते थे और पूछने वाली बात पूछ सकते थे।

कमरा बहुत बड़ा था। दरवाज़ों पर बढ़िया सरदई रोग़न था। गली की ओर जँगलेदार खिड़कियाँ खुलती थीं। इन खिड़कियों के साथ कातिबों[1] के तख्त लगे थे। तीन कातिब चेतन की ओर बैठे थे और दो मलिक साहब की मेज़ के सामने। लाला धनपतराय की पीठ के पीछे एक दरवाज़ा दूसरे कमरे में खुलता था, जहाँ अखबार के मैनेजिंग डायरेक्टर और असली सम्पादक लाला दीवानचन्द बैठते थे।

तीन-चार दिन बाद ही चेतन को पता चल गया कि घनी दाढ़ी-मूछों वाले कसाई-सिफ़त हज़रत, अल्लामा रफ़ीउद्दीन हैं, जिन्हें सब 'अल्लामा बटेर' कहते हैं। वे बड़े आलम हैं। उन्हें जवाब दे दिया गया है और उन्हीं की जगह चेतन को रखा गया है।

---

१. लियो की छपाई में, कम्पोज़िंग नहीं होती। कातिब (लिखने वाले) लोग सुन्दर अक्षरों में ऐसी सियाही से पीले या सफ़ेद काग़ज़ पर लिखते हैं, जो पत्थर या प्लेट पर नक़्श हो जाती है। कम्पोज़ किये फ़ॉर्म की जगह वही प्रेस में फ़िट होती हैं और उनसे फ़ॉर्म छपते हैं।

'अल्लामा बटेर' अरबी-फ़ारसी के विद्वान थे। इधर वे 'अहरार पार्टी' में शामिल हो गये थे। अहरार पार्टी लाहौर की 'आर्य स्वराज्य सभा' की तरह अर्ध-साम्प्रदायिक-अर्ध-राष्ट्रीय पार्टी थी और उसका सदस्य 'बन्दे मातरम' जैसे राष्ट्रीय दैनिक में काम न कर सकता था। उन्होंने हास्य-रस की एक नज़्म लिख रखी थी, जो चेतन ने एफ़० सी० कॉलिज के एक मुशायरे में उनके मुँह से सुनी थी। वह नज़्म कॉलिज के लड़कों में खूब लोकप्रिय थी। चेतन को उसकी पहली पंक्तियाँ तत्काल याद हो गयी थीं :

बटेर की जो मौत है
वो कौम की हयात है

और इसके बाद मुजाहिदों को तलकीन की गयी थी[1] कि वे कैसे कोरमे और रोग़न जोश और मुर्ग़ मुसल्लम की प्लेटों पर टूट पड़ें और उन्हें चट कर जायँ !

नज़्म पढ़ते-पढ़ते 'अल्लामा बटेर' की आवाज़ में जो जोश और आँखों में चमक आ गयी थी, उसी के कारण उनका चेहरा, उसके दिमाग़ में नक्श हो गया था और दफ़्तर में दाखिल होते ही उसने उन्हें पहचान लिया था. . .

०

चेतन को हैरत हुई थी कि ऐसी हिंस्र वृत्ति का आदमी उस अहिंसावादी राष्ट्रीय दैनिक के सम्पादन-विभाग में कैसे काम करता है। लेकिन उसने सुना था, अल्लामा नेशनल कॉलिज में अरबी-फ़ारसी पढ़ाते रहे हैं और कॉलिज बन्द होने पर 'बन्दे मातरम' में आ गये थे। देखने में वे बेफ़िक्र, बेपरवाह, मस्त-मलंग आदमी लगते थे। बहुत देर बाद चेतन को मालूम हुआ कि वास्तव में इसी फक्कड़पने के कारण उन्हें अपनी नौकरी से हाथ धोने पड़े थे। कुछ लोगों का यह भी कहना था कि अहरार पार्टी में

१. सद परामर्श दिया गया था।

तो वे 'बन्दे मातरम' की नौकरी के बाद शामिल हुए थे। हुआ वास्तव में यह था कि उनसे गान्धीजी की जीवनी को उर्दू का जामा पहना कर 'बन्दे मातरम' के साप्ताहिक संस्करण में धारावाहिक रूप से देने को कहा गया था। इंग्लिस्तान में पढ़ाई के दिनों में अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए गान्धीजी ने कहीं लिखा था कि एक बार उन्होंने गोश्त चखा तो था, पर उन्हें अच्छां नहीं लगा। अल्लामा बटेर ने अनुवाद करते हुए उसके आगे ब्रैकेट में लिख दिया—'अच्छा न पका होगा' और वह उसी तरह छप गया। काँग्रेस का मुखपत्र और परम राष्ट्रीय दैनिक !. . .मैनेजिंग डायरेक्टर ने वह पढ़ा तो न केवल मौलाना को बुला कर इस ग़ैर-जिम्मेदारी के लिए डाँटा, वरन उन्हें आदेश दिया कि वे तत्काल त्यागपत्र दे दें, नहीं तो उन्हें निकाल दिया जायगा। उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उस वक्त उन्हें ९० रु० मासिक मिलते थे। अखबार को उसका यह लाभ हुआ कि उनकी जगह (चेतन के रूप में) ४० रु० मासिक का आदमी रख लिया गया और उन दिनों जब समाचार-पत्र की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, यह प्रबन्ध लाभकर ही था। 'नमकदाँ' पहले वे ही लिखते थे। उनके चले जाने के बाद (और अल्लामा बटेर चेतन के आने के कुछ दिन बाद ही चले गये थे) वह कॉलम मलिक मुहम्मद यूसुफ़ लिखने लगे। वे १९२१ में पढ़ना छोड़ कर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े थे। फिर आन्दोलन के मन्द होने पर नेशनल कॉलिज में दाखिल हो गये थे। लेकिन इससे पहले कि वे बी० ए० की डिग्री लेते, कॉलेज टूट गया और वे 'बन्दे मातरम' में आ गये। छै वर्ष से वे यहीं काम करते थे।

चेतन को लाला धनपतराय ने अपनी शागिर्दी में ले लिया। चेतन हर सप्ताह एक कहानी लिखता और साथ ही अनुवाद सीखने की कोशिश करता।

अखबार में सरकारी तौर पर तो दिन के डेढ़ बजे से साढ़े चार बजे शाम और रात को साढ़े नौ बजे से डेढ़ बजे तक ड्यूटी देने का नियम था, लेकिन पूरे महीने में एक दिन भी ऐसा नहीं आया, जब शाम को साढ़े छै

श्रौर रात को ढाई से पहले चेतन दफ़्तर से निकला हो। अनुवाद उसे करना आता नहीं था। फिर महाशय धनपतराय स्वयं कुछ ज़्यादा करते नहीं थे। लोग कहते थे कि वे काम की नहीं, अखबार पर डमी सम्पादक के नाते अपना नाम देने की तनख्वाह पाते हैं। उस ज़माने में सभी अखबारों में दो-दो सम्पादक होते थे—एक असली और एक नकली। असली सम्पादक अग्रलेख और सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखता और नकली सम्पादक केवल नाम देता। 'वन्दे मातरम' जैसे राष्ट्रीय पत्र पर सम्पादक के रूप में नाम देने वाले डमी सम्पादक के लिए जोखिम भी काफ़ी था। जाने कब किस अग्रलेख अथवा टिप्पणी पर सरकार मुकदमा चला दे और सम्पादक को दो से दस साल की सज़ा हो जाय। नकली सम्पादक तो अन्य पत्रों के भी थे, पर मुसलमानों अथवा हिन्दुओं के दैनिक पत्रों को वैसा भय न था। मुसलमानों के दैनिक पत्र—'इन्कलाब' और 'सियासत,' सरकार-परस्त थे और हिन्दुओं के पत्र, 'देश,' 'समाज,' 'भीष्म,' इत्यादि—सब सरकार का विरोध करते थे, लेकिन इस तरह कि उन पर कोई विपत्ति न आये। 'बन्दे मातरम' के सम्पादक की स्थिति दूसरी थी, इसलिए डमी सम्पादक होने के बावजूद उनके त्याग का महत्व था और लाला धनपतराय बी० ए० (नेशनल) इसे भली-भाँति जानते थे। दस-पन्द्रह दिन काम करने पर ही चेतन को मालूम हो गया कि महाशय धनपतराय केवल नाम देने के ही पैसे लेते हैं। अग्रलेख तो मैनेजिंग डायरेक्टर लाला दीवानचन्द स्वयं लिखते। और लाला धनपतराय दोपहर तो दो बजे से चार तक, कभी मेज़ पर बाँहें रख कर उनमें सिर रखे ऊँघे जाते, कभी दोनों पैर कुर्सी पर उठा लेते; घुटनों को बाँहों में ले लेते; दायें कन्धे पर सिर न्योढ़ा लेते और हलके-हलके खर्राटे लेने लगते। रात को बारह बजे से दो बजे बजे तक भी वे उसी प्रकार सोते। जब कभी न्यूज़ एजेंसी का चपरासी तार[1] लाता तो वे चौंक कर उठते, हस्ताक्षर

---

१. आज टेली-प्रिण्टर से अखबारों के दफ़्तरों ही में समाचार मिल

करते और तार ले कर मलिक साहब की ओर फेंक देते। मलिक साहब तार पढ़ कर स्वयं रख लेते अथवा दूसरे सम्पादकों को बाँट देते।

चेतन की बायीं ओर मौलाना चिश्ती बैठते थे। पतले, छरहरे। पचपन-साठ की उम्र। उनके चेहरे को देख कर लगता था, जैसे बिना नहाये-धोये बिस्तर से सीधे उठ कर चले आये हैं। मलिक साहब तार उनकी तरफ़ फेंक देते तो वे अपने आगे पहले से लगी तारों की गड्डी के नीचे उसे भी करीने से सजा लेते और फिर सिर झुकाये, एक पैर कुर्सी पर रखे, बायें हाथ की कोहनी मेज़ पर टिकाये, उस पर बायाँ गाल रखे, पूर्ववत अनुवाद करने लगते।

मलिक साहब 'नमकदाँ' न लिख रहे होते तो वे भी बराबर खबरों का अनुवाद करते और प्रूफ़ पढ़ते। दोपहर हो या रात, चेतन ने उन्हें कभी पलक झपकते, हँसते, मुस्कराते या बात करते नहीं देखा था। मशीन की तरह वे चुपचाप काम किये जाते।

महाशय धनपतराय ने पहले ही दिन चेतन को बता दिया था कि उसे सुबह उठ कर सबसे पहले अखबार पढ़ना चाहिए; नये-नये शब्दों को नोट करना चाहिए; कैसे खबरों की सुर्खियाँ दी जाती हैं, यह देखना चाहिए; अंग्रेज़ी शब्दों के लिए जो सरस उर्दू शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन पर ध्यान देना चाहिए।. . .'हमें 'ज़मींदार' और 'इन्कलाब' जैसे अखबारों की नकल नहीं करनी है।' उन्होंने कहा था, 'ज़मींदार ने अभी हाल ही में ह्वाइट पेपर का तरजुमा 'क़रतासे-अबियज़' किया है, लेकिन हमने 'कोरा काग़ज़' लिख कर ही काम चला लिया है।. . .इन बातों का खयाल रखोगे तो तुम्हें बड़ी जल्दी अंग्रेज़ी से उर्दू में ठीक-ठीक अनुवाद करना आ जायगा।'

०

जाते हैं, पर तब विभिन्न समाचार एजेंसियां अपने चपरासियों के हाथ खबरों के तार भेजा करती थीं।

लेकिन रोज़ घण्टा-डेढ़-घण्टा अख़बार पढ़ने, समाचारों के शब्दों और शीर्षकों पर ध्यान देने के बावजूद चेतन को लगा कि लाला धनपतराय बी० ए० (नेशनल) की छत्र-छाया में काम करते हुए वह ठीक से अनुवाद ही नहीं, 'बन्दे मातरम' में काम तक नहीं कर सकेगा।

०

स्थिति वास्तव में यह थी कि अनुवाद-कला से तो चेतन नितान्त अनभिज्ञ था। जब महाशयजी उसे कोई तार देते तो वह यथासम्भव उसका अनुवाद कर के उन्हें दे देता। (चूंकि वे चेतन को अपना शागिद समझते थे, इसलिए यह कहना ठीक होगा कि जब वह ख़बर कर लेता तो वे परम उत्साह से स्वयं उससे ले लेते।). . . शुरू-शुरू में वे सारी-की-सारी ख़बर काट कर स्वयं लिख देते थे और चेतन से कहते थे कि वह अपनी ख़बर से उसे मिलाये। दो-चार बार ऐसा हुआ कि जल्दी में उन्होंने जो संशोधन किया, वह ठीक नहीं था। चेतन ने संकोचवश कुछ न कहा। कातिब ने बिना किसी तरह की शंका उठाये, मक्खी-पर-मक्खी मार दी। वैसे ही प्रूफ़ पढ़े गये और वैसे ही वह ख़बर छप गयी। जब मैनेजिंग डायरेक्टर ने शिकायत की तो महाशय धनपतराय बी० ए० (नेशनल) ने वह ग़लती चेतन के सिर मढ़ दी।

उन्हीं दिनों चेतन को लगा कि उसके पास एक ऐसा शब्दकोश होना चाहिए, जिससे वह अंग्रेज़ी शब्दों के अर्थ जान सके। पहले कुछ दिन वह कठिन शब्दों के अर्थ लाला धनपतराय से पूछता रहा, फिर जब उन्होंने बेरुख़' बरती और झुँझलाने लगे तो वह बड़े विनम्र और अनुनय-भरे स्वर में चिश्ती साहब से पूछने लगा। (मलिक साहब से पूछने का तो उसे साहस ही न हुआ।) एक दिन काम ज्यादा था, उसे चार-पाँच बार जब शब्दों के अर्थ पूछने पड़े तो चिश्ती साहब चिढ़ गये। उसी शाम चेतन जा कर ढाई रुपये में फ़ैलन की डिक्शनरी ख़रीद लाया। उसमें रोमन अक्षरों में अंग्रेज़ी शब्दों के अर्थ उर्दू और पंजाबी में दे रखे थे। चेतन को यह शब्दकोश बहुत अच्छा लगा। उसने अर्थ पूछना बन्द कर दिया।

लेकिन बात केवल ठीक या ग़लत अर्थों की ही न थी, शैली, मुहावरों तथा लाला धनपतराय बी० ए० (नेशनल) के दर्प और तुनुक-मिज़ाजी की भी थी।

और एक महीने के अन्दर-अन्दर यह हुआ कि न केवल बी० ए० (नेशनल) साहब का सारा उत्साह मन्द पड़ गया, वरन वे दफ़्तर में सब के सामने चेतन को डाँटने भी लगे। एक दिन जब चेतन को पूरा विश्वास था कि उसकी ग़लती नहीं थी और जब महाशयजी ज़रूरत से ज़्यादा ही अपनी डमी ऐडीटरी का रोब गाँठने लगे तो न जाने उसके मन में क्या बगूला उठा, चेतन सीधा मैनेजिंग डायरेक्टर के कमरे में गया और उसने जा कर कहा कि वह नया-नया उस काम पर लगा है, जी-जान से मेहनत करता है और दिल लगा कर काम सीखने का प्रयास कर रहा है और महाशय धनपत राय उसे बेकार डाँटते रहते हैं। 'मैं एक भी ख़बर का तरजुमा बिना महाशयजी को दिखाये कातिब को नहीं देता,' उसने कहा, 'जब महाशय जी उसे ठीक कर देते हैं, तो वह अनुवाद मेरा नहीं रहता, उन्हीं का हो जाता है। छप जाने के बाद मुझे डाँटने की तुक मेरी समझ में नहीं आती। डाँटना हो तो उन्हें उस समय डाँटना चाहिए, जब मैं ख़बर का अनुवाद करके उन्हें देता हूँ!'. . . चलते-चलते यों ही अति सामान्य ढंग से उसने इतना और कहा, 'सारा वक्त तो महाशयजी ऊँघते रहते हैं, ग़लतियाँ नहीं होंगी तो और क्या होगा ?' और उसने मैनेजिंग डायरेक्टर से निवेदन किया, 'आप चाहे मुझे छुट्टी दे दें, पर महाशयजी से कह दें कि मुझे बेकसूर मत डाँटा करें।'

मैनेजिंग डायरेटर, लाला दीवानचन्द शान्त प्रकृति के गान्धीवादी थे। विवाह उन्होंने किया न था और अपना जीवन देश के हित में अर्पित कर दिया था। उन्हें किसी ने ज़ोर से बोलते न सुना था। उन्होंने बड़े धीरे से, जैसे अपनी मेज़ को आदेश देते हुए, चेतन से कहा कि वह जाय, जा कर काम करे और वे महाशयजी को समझा देंगे।

न जाने उन्होंने महाशय धनपतराय से क्या कहा कि महाशयजी चेंतन को और भी परेशान करने लगे। इस बीच चेतन उनके दर्प और घोर अहम्मन्यता का कारण जान गया था, यह भी समझ गया था कि वे उतने योग्य नहीं हैं और डमी सम्पादक होने का संकट मोल लेने का वेतन पाते हैं। इसी कारण चेंतन भी शेर हो गया और तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने लगा। दफ़्तर का वातावरण अत्यन्त कलुषित हो गया। एक दिन तो उनकी झों-झों सुन कर मैनेजिंग डायरेक्टर अपने कमरे से निकल आये और उन्होंने दोनों को डाँट दिया।

मलिक यूसुफ़ इस बीच नितान्त निरपेक्ष बने रहे थे। लेकिन उस दिन उन्होंने महाशय धनपतराय से कहा, 'आप चेंतन को निकम्मा समझते हैं, आप उन्हें मुझे दे दीजिए, आप चिश्ती साहब को ले लीजिए। हम दिन को काम करेंगे, आप रात को कीजिए। महाशयजी ने 'ना-नुच' की तो मलिक साहब ने कहा, 'ठीक है आप चेतन को ले लीजिए और दिन को आइए, मैं चिश्ती साहब को ले लेता हूँ और हम दोनों रात को आयेंगे।' महाशय धनपतराय चेतन से कुछ ऐसे तंग आ गये थे कि उन्होंने चिश्ती साहब के साथ रात में आना स्वीकार कर लिया, लेकिन व्यंग्य से उन्होंने हँस कर कहा, 'मलिक साहब आप तीन दिन में तंग आ जायँगे और फिर यही सिस्टम चालू करने को कहेंगे।'

'मैं नहीं कहूँगा! आप निशा-ख़ातिर रहें।' मलिक साहब ने बिना सिर उठाये कहा।

तब तय यह हुआ कि दिन वाले सम्पादक एक बजे से आठ बजे तक आयेंगे और रात वाले आठ से डेढ़ बजे तक।

चेतन यद्यपि रात की ड्यूटी से मुक्ति पा कर बड़ा प्रसन्न हुआ था, पर उसे मलिक साहब के साथ काम करना पड़ेगा, इससे वह मन-ही-मन बेतरह डर भी गया था। लेकिन महाशयजी से वह इस हद तक चिढ़ गया था कि उसने मलिक साहब के साथ काम करना स्वीकार कर लिया। मलिक साहब ने जिस आत्म-विश्वास के साथ उस नौसिखिए को अपने

साथ ले लिया था, उससे चेतन को सन्तोष हुआ था कि आखिर दफ़्तर में कोई तो है, जो उसे कुछ समझता है।

०

उन्हीं दिनों उसने मलिक साहब को अच्छी तरह जाना और पण्डित श्यामलाल 'रत्न' से उसका परिचय हुआ, जो बाद में समस्त प्रवादों के बावजूद गाढ़ा होता गया।

०

उस व्यवस्था के बाद जब वह पहले दिन दफ़्तर में गया (मलिक साहब अपनी कुर्सी पर बैठे रहे और वह अपनी कुर्सी पर जा बैठा) तो उन्होंने मुँह ज़रा-सा उसकी ओर घुमा कर कहा, 'देखिए मैं लाला धनपतराय की तरह आपका तरजुमा ठीक-वीक नहीं करूँगा। मैं सिर्फ़ ग़लतियाँ बता दूँगा, ठीक करना या उसे दोबारा-सहबारा लिखना आप ही का काम है। आप हौसला न छोड़ेंगे, और मेहनत से काम सीखेंगे तो एक महीने में आपको तरजुमा करना आ जायगा, वरना अल्लाह मालिक है।'

'जी मैं इमकान[1] भर कोशिश करूँगा।' चेतन ने सिर्फ़ इतना ही कहा. . .

और उस दिन एक ख़बर उसे सात बार करनी पड़ी थी, लेकिन वह झुँझलाया नहीं। वह अनुवाद करता, मलिक साहब रद्द कर देते। वह फिर करता। चौथी बार ख़बर का अनुवाद उन्होंने पास कर दिया, लेकिन शीर्षक ठीक न था। तीन बार उसने मलिक साहब की हिदायत के अनुसार शीर्षक भी बदला। आखिर जब उन्होंने शीर्षक समेत अनुवाद पास कर दिया तो उसे बड़ी ख़ुशी हुई।

उस दिन आठ घण्टे में उसने केवल पाँच ख़बरें कीं। लेकिन दूसरे दिन जब उसने उन ख़बरों को अख़बार में छपे देखा तो उसे इतनी ख़ुशी हुई, जितनी अपनी मौलिक कहानी को छपे देख कर न हुई थी।—ये

१. भरसक

सारे-के-सारे समाचार उसने स्वयं अंग्रेज़ी से किये थे, उनके शीर्षक उसने स्वयं जमाये थे। उन पाँच ख़बरों में से एक पर दो-कॉलमी सुर्ख़ी जमी थी। चेतन उन ख़बरों को बार-बार पढ़ता, पर उसका जी न भरता। . . .एक महीने के अन्दर-अन्दर मलिक साहब ने उसे अनुवाद में निपुण कर दिया था।

लेकिन इस एक महीने में उन्होंने बड़ी सख़्ती से काम लिया था। कई बार उसे इस बुरी तरह डाँट दिया कि उसके आँसू आ गये। लेकिन एक बार भी पलट कर उसने कुछ नहीं कहा, क्योंकि जब भी उसने ठीक अनुवाद किया अथवा उपयुक्त शीर्षक लगाया, उन्होंने सदा उसकी पीठ ठोंकी।. . .यद्यपि महाशय धनपत राय का साधारण-सा व्यंग्य भी उसे लग जाता था, पर मलिक साहब के डाँटने अथवा क्रोध में गाली तक दे देने का वह बुरा न मानता।

पण्डित 'रत्न' मलिक साहब के पास प्रायः हर दूसरे-तीसरे आते थे, पर जब से मलिक साहब की ड्यूटी दिन की हुई थी और वे शाम आठ बजे तक बैठने लगे थे, पण्डितजी प्रतिदिन आने लगे थे। पहले वे मलिक साहब को 'कोलियर्ज़ वीकली' अथवा 'स्ट्रैण्ड' आदि अंग्रेज़ी पत्रिकाएँ देने आते। पाँच-सात मिनट उनकी मेज़ के कोने पर बैठते, फिर चले जाते। पर चेतन को इतने से ही आभास मिल गया था कि वे मलिक साहब को बहुत मानते हैं। उनसे बातें करते हुए उनकी आँखों में कुछ अजीब-सी कोमलता आ जाती थी।

पण्डित 'रत्न,' प्रेस इन्फ़रमेशन ब्यूरो में प्रमुख अनुवादक थे। अख़बारों के महत्वपूर्ण समाचारों अथवा सम्पादकीय टिप्पणियों का अनुवाद अंग्रेज़ी में करके निदेशक के सामने पेश करना उनका काम था। अंग्रेज़ी और उर्दू—दोनों भाषाओं पर उन्हें समान अधिकार था। वे 'गुमनाम जर्नलिस्ट' के छद्म नाम से पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ भी देते थे। उनके दफ़्तर में इंग्लिस्तान तथा अमरीका से जो मासिक और साप्ताहिक आते, उसमें जो कहानी उन्हें अच्छी लगती, उसको वे उर्दू में रूपान्तरित कर

देते। उनकी कहानियों की बड़ी माँग थी। उस ज़माने में जब लेखों अथवा कहानियों के पारिश्रमिक की कोई प्रथा न थी, पण्डित 'रत्न' पाँच से दस रुपये प्रति कहानी ले लेते और किसी-किसी महीने तो उनकी आय चालीस-पचास रुपये हो जाती। अंग्रेज़ी कहानियों का रूपान्तर करने में उन्हें सिद्धि प्राप्त थी। और चेतन उनकी कहानियाँ शौक से पढ़ता था। उनकी उर्दू मँजी-धुली और टकसाली थी। शहर के बड़े-बड़े उर्दू अदीब उनका लोहा मानते थे। उन्हीं दिनों उर्दू के प्रसिद्ध नाटककार इम्तियाज़ अली 'ताज' और कवि मजीद मलिक ने मिल कर एक वार्षिकी —कारवाँ—के नाम से निकाली थी—रायल साइज़, अत्यन्त उत्कृष्ट काग़ज़, सुन्दर लिखायी-छपाई, पंजाब के एकमात्र प्रसिद्ध आर्टिस्ट अब्दुल रहमान चग़ताई के चित्र और तिरंगा मुखपृष्ठ! उसमें चेतन ने उनकी कहानी पढ़ी थी और वह दंग रह गया था—मुन्शी चन्द्रशेखर, महाशय देवदर्शन, कौशिक और राजेश्वरप्रसाद सिंह की कहानियों से वह कितनी भिन्न थी! (बाद में जब उसे मालूम हुआ कि वह उनकी मौलिक कहानी नहीं, रूपान्तरित है, तो उसे किंचित निराशा हुई थी, लेकिन पण्डितजी की विद्वता में उसका जो विश्वास था, उसमें ज़रा भी कमी न आयी थी।)

जब से 'बन्दे मातरम' के सम्पादकीय विभाग में नयी व्यवस्था हुई थी, और पण्डित रत्न रोज़ शाम को आने लगे थे, यूसुफ़ साहब की मेज़ के कोने पर बैठने के बदले वे महाशय धनपतराय की ख़ाली कुर्सी पर बैठ जाते और कभी चेतन की अनूदित ख़बरों को ठीक करके शीर्षक लगा देते, कभी मलिक साहब को 'नमकदाँ' लिखने में सहायता देते—शहर के हंगामों की ख़बरें देते, कभी कोई नया विषय सुझाते और कभी काम ज़्यादा होता तो स्वयं एकाध नोट लिख देते।

पण्डित 'रत्न' हँसमुख प्रकृति के व्यक्ति थे और व्यंग्य-विनोद से काम लेना, बात-बात पर चुटकले छोड़ना, उनके स्वभाव का अंग था। नयी व्यवस्था के शुरू के दिनों की बात है, (चेतन अभी पूरी तरह अनु-

वाद करने के योग्य न हुआ था) एक दिन काम ज़्यादा होने के कारण मलिक साहब 'नमकदाँ' न लिख सके थे। पण्डितजी शाम को आये और मलिक साहब को परेशान देखा तो चेतन के सामने मेज़ पर बैठ कर 'नमकदाँ' लिखने लगे। उस दिन उन्होंने साम्प्रदायिक नेताओं के आग उगलने वाले भाषणों पर कालम लिखा। गुरुद्वारा शीषगंज का कुछ झगड़ा चल रहा था, नमकपाश शहर के दूसरे साम्प्रदायिक अड्डों से होता हुआ गुरुद्वारा शीषगंज पहुँच जाता है और वहाँ के एक भाषण की बानगी प्रस्तुत करता है. . . डेढ़ पौने दो वर्ष बीत जाने पर भी चेतन को उस टिप्पणी की अन्तिम पंक्ति शब्दशः याद थी :

'ओये भरावो सिक्खो! की तुसी इह्नाँ हिन्दुआँ नाल
मिलवर्तन करोगे, जिन्हाँ दे सिर रंगीन मिंजी दे पावेयाँ
वाँगू होंदे ने।'[1]

और 'नमकपाश' की टिप्पणी थी कि मुंडे हुए सिरों और तआवन (सहयोग) में क्या रिश्ता है, यह सोचने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि इन भोले बादशाहों के भाषणों में तर्क को ढूँढ़ना रेत में तेल खोजने के बराबर है।

०

चेतन ने उर्दू केवल छठी कक्षा तक पढ़ी थी। वह उर्दू में कहानियाँ भी लिखता था और ग़ज़लें और नज़्में भी, लेकिन उसका उच्चारण खासा अशुद्ध था। साधारणतः समाचार-पत्रों और पुस्तकों में ज़ेर-ज़बर[2] न रहने से उच्चारण में उसे बड़ी कठिनाई होती थी, फिर उर्दू लिपि के 'वाओ' और 'दाल'—ये दो अक्षर कातिब ऐसे लिखते थे कि उर्दू न जानने वाला 'दाल' की जगह 'वाओ' और 'वाओ' की जगह 'दाल' पढ़ जाता।

---

१. अरे सिक्ख भाइयो, क्या तुम इन हिन्दुओं के साथ सहयोग करोगे, जिनके सिर रंगीन चारपाई के पायों-जैसे (मुण्डे हुए) होते हैं।
२. मात्राएँ

चेतन दिल से चाहता था कि अख़बार में जितने प्रचलित शब्द हैं, उनका उच्चारण उसे आ जाय, लेकिन दफ़्तर में पूछते हुए उसे संकोच होता था और बाहर किससे पूछे, यह बात उसकी समझ में नहीं आती थी। तभी उसकी नज़र में एक शब्द आया, जो अख़बार में बार-बार प्रयुक्त होता था। चेतन को उसके अर्थ का भी आभास था, लेकिन उसका ठीक उच्चारण न आता था। एक दिन उसने मलिक साहब का अच्छा मूड देख कर डरते-डरते उनसे कहा, 'मलिक साहब यह लफ़्ज़ क्या है—तादकतीका—जिसका मतलब शायद होता है. . .'

उसकी बात काटते हुए, बिना सिर उठाये उन्होंने कहा—'यह तादकतीका ही है।'

जिस लहजे में मलिक साहब ने यह बात कही और जैसे उनके नथुनों में क्षीण-सी मुस्कान पैदा हुई, चेतन को लगा कि शब्द का उच्चारण ठीक नहीं, यह भी कि मलिक साहब को इस बात का बुरा लगा है कि ऐसे रोज़मर्रा के शब्द का उच्चारण भी उसे नहीं आता और वह घर से चला आया है, दैनिक अख़बार में ऐडीटरी करने !

सारा दिन चेतन मलिक साहब से आँखें नहीं मिला पाया। पूरे मनोयोग से ख़बरों का अनुवाद करता रहा। यद्यपि उसने शब्दकोश की सहायता से, यथाशक्य ठीक-ठीक अनुवाद किया था तो भी मलिक साहब ने उस दिन उससे कई ख़बरें दोबारा-सहबारा करायीं और एक जगह, जहाँ उसने मक्खी-पर-मक्खी मार दी थी, उसे बेतरह डाँट दिया. . . चेतन को हर बार यही लगा कि उनकी यह डाँट उसके उसी बेतुके प्रश्न के कारण है।

शाम को जब पण्डित 'रत्न' आये तो मलिक साहब ने हलकी-सी मुस्कान के साथ (जो पहले उनकी नासिका में झलकती थी और फिर होंटों पर प्रकट हो कर ग़ायब हो जाती थी) कहा, 'देखिए पण्डितजी, आपका यार ता-वक्ते-कि को 'तादकतीका' पढ़ता है।'

पण्डितजी, मलिक साहब की मेज़ के कोने पर एक पैर ज़मीन से

टिका कर बैठ गये और चेंतन की ओर को रुख करके उन्होंने कहा, 'साहब, जब तक आप उर्दू का बाकायदा मुतालआ नहीं करते, यह मसला आपके लिए लायबखुल ही रहेगा।' और मलिक साहब की ओर मुड़ कर बोले, 'ये हज़रत लायनहल[1] को भी लायबखुल पढ़ा करते हैं।'

मलिक साहब उस महीने में पहली बार हँसे।

चेंतन कहना चाहता था, 'मैं कब 'लायनहल' को 'लायबखुल' पढ़ता हूँ। मैंने तो यह लफ़्ज़ ही नहीं सुना. . .'

लेकिन मलिक साहब को हँसते देख कर वह चुप रह गया। बल्कि उसने चाहा कि वह एक-दो और ऐसी बेवकूफ़ियाँ करे, मलिक साहब उसकी बेवकूफ़ियों पर हँसें और उसके प्रति उनका रुख कुछ और नर्म हो जाय।

पण्डितजी उसी तरह मेज़ पर झुके बैठे उर्दू शब्दों के उच्चारण और उनके सन्दर्भ में अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखों की ग़लतियों के किस्से सुनाने लगे।

'. . .एक बार मेरा छोटा साला (साला खासा बेवकूफ़ है।) बाहर से एक हैण्ड बिल लिये हुए भागा आया और सब को सुना कर चिल्लाने लगा—खुशंजरी, खुशंजरी, खुशंजरी. . .

'मैंने इश्तहार उसके हाथ से लेकर देखा, ऊपर दोनों कोनों पर और मिडल में मोटे कलम से लिखा था खुशखबरी. . .खुशखबरी. . .खुश-खबरी—चूँकि 'खुश' और 'खबरी' अलग-अलग नहीं, इकट्ठे लिखे थे, इसलिए वह अकलमन्द उन्हें खुशंजरी पढ़ रहा था. . .

'. . .एक बार हमारे एक पंजाबी नेता अलीगढ़ के एक जल्से में तकरीर कर रहे थे। तकरीर करते हुए वो पूरे जोश से बोले, 'रौलेट एक्ट के खिलाफ़ महात्मा गान्धी ने जब इहतजाज[2] की सदा बुलन्द की तो पंजाब के बच्चे-बच्चे ने उस आवाज़ पर लीबक कहा. . .'

---

१. जो हल न हो सके। २. विरोध।

'वो इसके बाद जलियाँ वाला बाग़ के खूनी हादिसे का ज़िक्र करने वाले थे, पर अचानक सुनने वाले ज़ोर से ठहाका मार कर हँस दिये। . . .बाद में उन्हें किसी ने बताया कि साहब लफ़्ज़ लीबक नहीं लब्बैक[1] है।

'. . .एक अच्छे पढ़े-लिखे साहब मियगाँ का मिसरगाँ पढ़ रहे थे और मुयदा का मुसरदा। अब उन्हें कौन बताता कि साहब उर्दू रस्मुलख़त[2] में एक हर्फ़ 'य' भी है। कभी आपने इस अमर पर ग़ौर फ़रमाया कि यह हर्फ़ भी कहीं इस्तेमाल होता है कि नहीं—मियगाँ और मुयदा में यही 'य' इस्तेमाल होता है।'

पण्डितजी किस्से-पर-किस्सा सुनाते और मलिक साहब को हँसाते जा रहे थे और चेतन सोच रहा था कि वह अंग्रेज़ी लिपि को ही बेतुकी समझता था। उर्दू लिपि तो उससे भी गयी-बीती है। ज़ेर ज़बर न लगाओ तो बलवन्त सिंह को बलूनत सिंह, बलौनत सिंह, बिलवुन्त सिंह, बुलवुन्त सिंह, बुलवून्त सिंह, बिलौन सिंह, बिलोनत सिंह, बिलूनत सिंह— कुछ भी पढ़ लो। नीचे-ऊपर की बिन्दियाँ ज़रा इधर-उधर हो जायें तो खुशखबरी का खुशंजरी, लब्बैक का लीबक और लायनहल का लायीखल या लायबखुल हो जाय. . .देवनागरी लिपि में इस तरह की ग़लती कभी नहीं हो सकती। उसने सुना था कि मुन्शी चन्द्रशेखर उर्दू से हिन्दी में आये थे (मन-ही-मन उसने सोचा कि इसी कठिनाई के कारण आये होंगे और उसे अफ़सोस हुआ कि उसने हिन्दी क्यों नहीं सीखी, वह हिन्दी में लिखता तो उसे यह कठिनाई पेश न आती। जैसे बड़े-से-बड़ा भारतीय अंग्रेज़ीदाँ न अंग्रेज़ी बोल सकता है, न लिख सकता है, चेतन ने सोचा, इसी तरह बड़े-से-बड़ा पंजाबी उर्दूदाँ, दिल्ली अथवा लखनऊ वालों की तरह उर्दू नहीं बोल सकता। और पण्डितजी कह रहे थे :

---

१. समर्थन किया! २. लिपि।

'जभी तो कहा जाता है कि :
आती है उर्दू ज़ुबाँ आते-आते !'

०

लेकिन इस डाँट-फटकार और मज़ाक का यह प्रभाव हुआ कि वह न केवल मालिक साहब का, बल्कि पण्डितजी का भी प्रिय पात्र हो गया। वह मलिक साहब के ही नहीं, पण्डितजी के घर भी जाने लगा और जब कुछ महीने के बाद फिर व्यवस्था बदली और पहले की तरह चारों सम्पादक दिन-रात आने लगे तो वह रोज़ शाम को बिला नागा पण्डित जी के साथ घूमने लगा।

पण्डितजी से उसकी घनिष्टता इस हद तक बढ़ गयी कि मंगतराम बलोची और दूसरे लोगों ने प्रवाद फैला दिया और जब उसकी शादी हुई तो मौलाना नईम बेग चग़ताई ने हाथ से लिख कर वह इश्तहार दफ़्तर 'बन्दे मातरम' के बाहर दरवाज़े के बराबर चिपका दिया, जिसकी सुर्ख़ी थी :

लौण्डा-ए-ख़ुदरंग
की
शादी-ए-ख़ाना-आबादी

द
स

रसोई-घर के सामने आँगन में रंगीन पीढ़े पर बैठा हुआ चेतन कल्पना-ही-कल्पना में पिछले वर्ष-डेढ़-वर्ष की अँधेरी-उजेली गलियों में भटकता रहा और बीबीजी उसके सामने (आँगन की ओर से एकदम खुली रसोई में) बैठी खाना पकाती रहीं।

शिमला जाने से पहले चेतन जब कभी पण्डितजी के यहाँ, उनके दफ़्तर से आने के पहले पहुँचता था तो बीबीजी सदा उसे अपने सामने पीढ़े पर बैठा कर घर-द्वार की बातें किया करती थीं। लेकिन उस शाम उनका मन शायद अपनी बेटी की बीमारी के कारण उदास था; एकाध बात करके वे चुप हो गयी थीं और पण्डितजी लोटा ले कर ऊपर चले गये थे तो चेतन फिर अपने विचारों में गुम हो गया था।

वे ऊपर से वापस आये तो चेतन लपक कर उठा और इससे पहले कि वे अपने लड़के अथवा लड़की को हाथ धुलाने के लिए आवाज़ देते, वह नल पर गया और बाल्टी से पानी का साफ़ लोटा भर कर उनके हाथ धुलाने को तैयार जा खड़ा हुआ।

पण्डितजी से उसका परिचय, जो मलिक यूसुफ़ के मज़ाक से शुरू हुआ था, इस साल-डेढ़-साल में न केवल घनिष्ट हो गया था, वरन पण्डितजी का घर उसे अपना घर प्रतीत होने लगा था। बीबीजी का हो अथवा पण्डितजी का, कोई भी काम करने में उसे हिचकिचाहट न होती थी।

पण्डितजी लोटे को मिट्टी से मल रहे थे, जब चेतन ने प्यारी की बीमारी का ज़िक्र चलाना चाहा, 'प्यारी को देख कर बड़ा अफ़सोस हुआ,' उसने कहा, 'क्या कहते हैं डॉक्टर ?' उसने पूछा।

पण्डित रत्न के सदैव हँसते हुए मुख पर एक हलका-सा बादल आ कर चला गया, 'रीढ़ की हड्डी का नासूर है।' उन्होंने किंचित बेपरवाही से कहा, 'अस्पताल में दिखाया था। डॉक्टरों ने प्लास्टर लगा दिया है।' और फिर उस तकलीफ़देह प्रसंग को हटा कर किंचित हँसते हुए उन्होंने पूछा, 'तुम कहो, कैसा रहा शिमले में ?'

'अच्छा ही रहा,' चेतन ने उनका लोटा और मिट्टी-सने हाथ धुलाते हुए कहा, 'कविराजजी बज़ाहिर तो मेरी सेहत के खयाल से मुझे शिमला ले गये थे, लेकिन वहाँ जा कर मालूम हुआ कि उनका असल मकसद मुझसे एक किताब लिखवाना था। शिमला भी देख आया और उन्हें एक किताब लिख कर भी दे आया।'

'कैसी किताब ?' पण्डितजी ने आँगन में आर-पार बँधी रस्सी पर सूखने के लिए डाला हुआ तौलिया खींच कर उससे हाथ पोंछते हुए पूछा।

'बच्चे की पैदाइश से पहले और उसके जन्म के बाद माँ-बच्चे की देख-रेख और पाँच साल तक के बच्चे की बीमारियों और उनके इलाज-उपचार के बारे में।'

'लेकिन तुम इस सिलसिले में क्या जानते हो ?'

और पण्डितजी दीवार के साथ रखा पटरा उठा कर रसोई के सामने आ बैठे। चेतन के लिए उन्होंने दूसरा पटरा रख दिया और उसे

अपने साथ खाना खाने का आदेश दिया ।

चेतन रात को ज़रा देर से खाने का आदी था और पण्डितजी दफ़्तर से आ कर खाना खा लेते थे । चेतन को भूख नहीं थी । लेकिन कभी ऐसा नहीं हुआ था कि वह खाने के वक्त पहुँचा हो और उन्होंने बिना खाना खाये उसे जाने दिया हो, इसलिए वह बैठ गया ।

बीबीजी ने थालियाँ परस दीं और खाना खाते हुए चेतन पण्डित रत्न को सविस्तार अपने शिमला-प्रवास और वहाँ कविराज के लिए पुस्तक लिखने की कहानी सुनाने लगा । कविराज रामदास के मिठबोले-पन, चतुराई और धूर्तता का उल्लेख करते हुए उसने सभी घटनाएँ सुनायीं; वापस लाहौर पहुँचने पर भाई साहब की बेपरवाही के कारण अपनी परेशानी, कविराज से भेंट और उनके यहाँ पार्ट-टाइम काम करने की बात भी उसने कही और अन्त में अपना मन्तव्य प्रकट किया ।

'काम तो मैंने उनका ले लिया है । दो घण्टे के बीस रुपया महीना देना उन्होंने तय किया है, पर साथ में अपने साहबज़ादे को थोड़ा-बहुत पढ़ाने की बात भी उन्होंने कह दी है । जैसा कि मैं उन्हें जान गया हूँ, उनसे मेरी ज़्यादा दिन पटेगी नहीं । आप कहीं दूसरी जगह ही कोई काम ले देते तो बहुत अच्छा होता । पार्ट टाइम भी मिल जाय तो मैं कर लूँगा ।'

पण्डित रत्न चुपचाप उसकी बातें सुनते रहे थे, बीच में दो-तीन बार हँसे भी और होंटों-ही-होटों में उन्होंने दो-चार गालियाँ भी कविराज को दीं, लेकिन जब चेतन ने अपनी बात ख़त्म की तो खाना ख़त्म करके उठते हुए उन्होंने कहा, 'तुम 'बन्दे मातरम' क्यों नहीं जाते ? कल ही मैं वहाँ गया था । यूसुफ़ कह रहे थे—सुना है चेतनानन्द आ गये हैं, लेकिन दफ़्तर नहीं आये और उनके इन्तज़ार में कोई नया आदमी नहीं रखा गया ।'

'पण्डितजी अब मैं वहाँ काम नहीं करना चाहता ।' चेतन ने ऐसे स्वर में कहा, जिसमें विवशता-मिला अनुरोध था । 'इस डेढ़-दो साल में

मेरी सेहत चौपट हो गयी है। रात को काम करने से मुझे एतराज़ नहीं, अगर दिन को दो-तीन घण्टे सोने को मिल जायँ, लेकिन 'बन्दे मातरम' में दिन-रात काम करना पड़ता है और आराम ज़रा नहीं मिलता।'

पण्डित रत्न ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप नल पर हाथ धो कर तौलिये से पोंछते रहे। चेतन ने भी हाथ धोये और रूमाल से पोंछते हुए उसने इतना और कहा, 'फिर मैं चालीस रुपये पर आया था। तर-जुमा करना मुझे ज़रा नहीं आता था। महाशय धनपतराय ने मुझसे वादा किया था कि मैं तरजुमा सीख लूँगा तो मेरी तनख्वाह बढ़ जायगी। डेढ़ वर्ष से ऊपर मुझे अख़बार में काम करते हो गया है। 'नमकदाँ' और लीडिंग आर्टिकल छोड़ कर सभी काम मैं करता हूँ। अफ़साने लिखता हूँ; नज़्में लिखता हूँ और अब तो कापी भी लगाता हूँ, लेकिन एक पैसे की तरक्की उन्होंने मुझे नहीं दी। दूसरी कोई जगह न मिली और कवि-राज से न पटी तो झख मार कर मुझे वहीं जाना पड़ेगा। लेकिन मैं चाहता नहीं।'

पण्डितजी इस बीच कमरे में आ गये थे। चेतन भी उनके पीछे-पीछे अपनी बात कहता चला आया था। उसकी बात सुनते हुए उन्होंने तहमद उतार कर फिर शलवार पहन ली थी। कमीज़ पर वास्केट पहन कर सिर पर कुल्लेदार पगड़ी रखी, पैरों में पम्प शू पहने और कोने से मैला कपड़ा उठा कर उन्हें पोंछा। फिर बाहर की ओर चलते हुए बोले :

'ठीक है, अभी चलते हैं। जा कर देखते हैं। कहीं-न-कहीं काम मिल ही जायगा। 'भीष्म' तो बन्द हो गया है। उसे उसके एडवरटाईज़िंग मैनेजर पण्डित गणेशलाल ने ख़रीद लिया है। वो नया परचा निकालने जा रहे हैं। 'ज़ख्मी' उसके ऐडीटर होंगे। वहाँ भी सब-ऐडीटर की ज़रूरत होगी। 'देश' या 'समाज' में भी कोई जगह ख़ाली हो सकती है। घब-राओ नहीं, कहीं-न-कहीं कुछ हो जायगा।'

बातें करते हुए वे आँगन पार कर गये थे। डेवढ़ी में पलट कर

उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'मुझे आज वापसी पर कुछ देर हो जायगी।'

और वे बाहर निकल गये। चेतन भी उनके पीछे लपका। बाहर गली में निकल कर उन्होंने ज़ोर से आवाज़ दी :

'भड़ोली, डेवढ़ी का दरवाज़ा बन्द कर लो!'

दूसरा खण्ड

ग्या
र
ह

५ दिसम्बर, १९३१

'कल मलिक साहब बहुत खुश हुए और इसीलिए जब ड्यूटी ख़त्म होने पर महाशय धनपतराय को काम सँभाल बाहर निकले तो बोले—चलो ज़रा अनारकली तक मेरे साथ।'

०

कृष्णा गली की अपनी बैठक में चेतन एक ईज़ी चेयर पर नोट-बुक लिये बैठा था। पण्डित रत्न ने सात-दस दिन लगा कर दौड़-धूप करके उसे 'वीर भारत' में पार्ट टाइम काम ले दिया था। उसे केवल रात की शिफ़्ट में काम करना था और वेतन उसका तीस रुपये तय हुआ था। दिन-रात दोनों वक्त काम कर के ४० रु० पाने के मुकाबले में एक ही वक्त के तीस रुपये चेतन को बहुत ज्यादा लगे। दिन भर वह अपना लिखे-पढ़ेगा, रात को 'वीर भारत' में काम करेगा, यह उसने फ़ैसला किया। सामान वग़ैरह करीने से सजा कर उसने सोचा कि पिछले चन्द दिनों में वह जिन लोगों से मिला है, उनके ख़ाके वह अपनी नोट-बुक में दर्ज कर ले। लेकिन लिखने से पहले उसने यूँ ही कापी खोली तो वह पाँच दिसम्बर पर खुल गयी और वह पढ़ने लगा :

'मलिक साहब की यह आदत है कि जिस दिन वो मुझ पर बहुत ग़ुस्से होते हैं, उस दिन शाम को साथ चलने का हुक्म देते

हैं । जिस दिन मैं ठीक काम करता हूँ और वो ग़ुस्से नहीं होते, वे दफ़्तर से निकलते ही आँगन से सायकिल उठा, ड्योढ़ी की सीढ़ियों से उतार, उस पर पैर रखते हैं और बायाँ हाथ ज़रा सिर के ऊपर उठाते हुए, 'अच्छा तो चल दिये !' कहते हैं और यह जा, वो जा, नज़रों से ओझल हो जाते हैं ।'

एकदम सीधी पंक्तियों में लिखे हुए उर्दू के निहायत सुन्दर छोटे-छोटे शब्द और वाक्य ! चेतन को नोट-बुक में लिखी अपनी ख़ुशख़त इबारत बड़ी अच्छी लगी और तीसरी कक्षा के उस टीचर की याद उसे हो आयी, जिसने गणित में चाहे उसे नाकारा बना दिया हो, पर ख़ुशख़ती के लिए उसके मन में पर्याप्त रुचि पैदा कर दी थी । नोट-बुक में लिखे हुए शब्द उसे कातिबों की लिखायी-ऐसे ही सुन्दर लगे—एकदम नगीनों-जैसे । वह आगे पढ़ने लगा :

'मैं मलिक साहब के साथ हो लिया । अनारकली तक वे चुपचाप चले आये । एक भी बात उन्होंने नहीं की । लेकिन इस तरह चुपचाप चलते हुए भी न जाने कैसा अपनापे का एहसास उनके साथ-साथ चलने में हुआ । लगा, जैसे वो अब ज़रा भी नाराज़ नहीं हैं ।

'यूँ कहने को महाशय धनपतराय भी सुन्दर हैं । रंग भी उनका गोरा है, नाक-नक्शा भी तीखा है । काँग्रेस के स्वयं-सेवक-दल में भी रहे हैं, भाषण भी ज़ोरदार दे लेते हैं और मुझे यह नौकरी भी उन्हीं ने दिलवायी है, पर जाने क्यों, जब-जब मैं उनकी तरफ़ देखता हूँ, कुछ अजीब-सी घमण्ड-भरी मूर्खता उनके चेहरे पर साफ़ दिखायी देती है, जो मन में नफ़रत पैदा करती है । लेकिन युसुफ़ तो यूसुफ़ ही हैं—उनके माथे के तेवर, उनकी आँखों की लाली, उनका ग़ुस्सा—सब अच्छा लगता है और उनके नथुनों में फूट कर होंटों पर झलक उठने वाली वह मुस्कान. . .

'अनारकली में तराज़ू-जैसे दो झाबे लगाये, उनमें सफ़ेद रंग

की पपड़ियाँ-सी भरे एक ख़ोंचे वाला आवाज़ लगा रहा था—खस्ता करारि-ए-खुरमाँ-एँ-गज़ेक—मैंने इस ख़ोंचे वाले को कई बार देखा था। कई बार इसकी आवाज़ भी सुनी थी, लेकिन मैं यह न जान पाया था कि आखिर यह बेच क्या रहा है। कई बार मेरा मन हुआ, दो पैसे की गज़क ख़रीद कर देखूँ, लेकिन इस डर से कभी हौसला न कर पाया कि अगर चीज़ महँगी हुई तो आने-दो पैसे की माँगने पर ख़ोंचे वाला मज़ाक न कर दे—'क्यों घर में क्या मेहमान आ गये हैं।'. . .पंजाबी ख़ोंचे वालों की मज़ाकिया तबियत से मुझे डर लगता था।

'मलिक साहब ने दो आने की गज़क ली तो काफ़ी चढ़ गयी। तब मन-ही-मन मैंने तय किया कि आज मैं भी गज़क चख कर देखूँगा। और जब मलिक साहब को अस्पताल रोड पर छोड़ कर मैं पलटा तो मैंने दो पैसे की गज़क ख़रीद ली। चख कर देखी तो मालूम हुआ कि घुले हुए तिलों की मिठाई है। तिल तो मुझे गर्मी करते हैं। मैं इतनी सारी कैसे खाता ? सो मैंने सामने मनिहारी वाले की दुकान से शीशे की एक गुम्बदनुमा ढक्कन वाली सफ़ेद कटोरी ख़रीदी, उसमें गज़क रख, घर आ कर उसे ताक में सजा दिया।

'आज मैंने मलिक साहब को कल शाम की गज़क वाली बात सुनायी तो उनके नथुनों में बड़ी प्यारी-सी मुस्कान झलक उठी. . .'

०

चेतन ने डायरी के पृष्ठ उलटे। एक जगह फिर उसकी निगाह चिपक गयी। लिखा था :

'कल ईद थी। हम (मैं और पण्डित रत्न) मेक्लोड रोड पर ग़ुलामनबी बिल्डिंग में मलिक साहब को ईद की मुबारक देने गये। पुरानी अनारकली की कमर्शयल बिल्डिंग्ज़ की तरह ही ग़ुलामनबी बिल्डिंग भी बनी हुई है। नीचे बड़ी दुकानें हैं। ऊपर फ़्लैट। इन सब में ज़्यादातर मुसलमान रहते हैं।

'अदबी दुनिया' के ऐडीटर और मालिक मशहूर शायर 'ताजवर' नजीबाबादी भी वहीं रहते हैं और गवर्नर की कौंसिल के मेम्बर सर ज़फ़रुल्लाह खाँ के नज़दीकी रिश्तेदार, 'दौरे-जदीद' के मालिक और ऐडीटर चौधरी अफ़ज़ल बेग भी ! इन दो नामी हस्तियों के अलावा कुछ अदीब-किस्म के गुमनाम लेखक भी इसी बिल्डिंग में रिहायश रखते हैं। पण्डितजी रास्ते में ताजवर साहब और हफ़ीज़ जालन्धरी के बीच होने वाली नोक-झोंक के किस्से सुनाते रहे।

'मलिक साहब घर पर ही थे। सफ़ेद बुर्राक शलवार और हलके सरदई रंग की कमीज़ पहने वो बाहर निकले और पण्डितजी से गले मिले। उस बग़लगीरी में मुझे कुछ अजीब-सी मुलायमत का एहसास हुआ। गर्मजोशी भी और बेहद नर्मी भी। पंजाबी हमा-गोशी[1] की वह शिद्दत नहीं, जो हड्डियों को कड़कड़ा देती है। पण्डित जी ने जब उन्हें बाँहों में भरा तो ऐसे, गोया किसी ऐसी नाज़ुक चीज़ को कुलाबे में ले रहे हैं, जो छूते ही टूट जायगी। बड़ी एहति-यात से उन्होंने मलिक साहब को सीने से लगाया—ऐसे कि मुश्किल से सीने-से-सीना छुआ होगा। पहले दायें सीने से बायाँ फिर बायें से दायाँ—पण्डितजी के चेहरे पर लाली झलक आयी और मलिक साहब के चेहरे पर कुछ अजीब-सा हिजाब।[2]

'मलिक साहब हमें बैठक में ले गये। कमरा तो काफ़ी बड़ा था, पर फ़र्नीचर के नाम पर उसमें सिर्फ़ एक दरी बिछी थी। वहीं हम जा बैठे. . .पण्डितजी अपने साथ कुछ परचे[3] ले आये थे, जो उन्होंने मलिक साहब को दिये। कुछ क्षण बैठे दोनों उनमें छपने वाली कहानियों पर बातचीत करते रहे। फिर पण्डितजी उठे।

'अरे आप ईद की सवैयाँ तो चखते जाइए।' मलिक साहब ने वैसे ही नाक में मुस्करा कर कहा। फिर वहीं आलमारी से निकाल

---

१. आलिंगन। २. लज्जा। ३. पत्रिकाएँ।

कर एक दस्तरख्वान फ़र्श पर बिछा दिया। उसके बाद वो अन्दर जा कर एक ट्रे में सवैयों से भरा तामचीनी का काफ़ी गहरा कटोरा और तीन बड़े चम्मच ले आये जिन्हें उन्होंने और दस्तरख्वान पर बीचों-बीच रख दिया।

'मेरा ख़याल था कि वो अब जा कर कटोरियाँ या तश्तरियाँ लायेंगे। लेकिन वो और कुछ नहीं लाये और ख़ुद बैठ गये और उन्होंने एक चम्मच उठा लिया।

'आइए!'

'पण्डितजी ने भी चम्मच उठा लिया और वो मलिक साहब के साथ सवैयाँ खाने लगे।

'हालाँकि मलिक साहब की 'आइए' में मैं भी शामिल था, लेकिन मैं वैसे ही बैठा रहा. . .मुसलमान के साथ खाने में मुझे झिझक न थी। मैं कॉलेज के ज़माने में हमीद के घर खा-पी लिया करता था। लेकिन मुसलमान तो दूर रहा, किसी हिन्दू के साथ भी एक थाली में बैठ कर मैंने कभी न खाया था। माँ तो कभी हम भाइयों को भी एक थाली में खाने की इजाज़त न देती थी. . . लेकिन जब पण्डित रत्न ने कहा, 'आओ चेतन!' तो मैं इनकार न कर सका, न कोई बहाना बना सका। चुपचाप मैंने चम्मच उठा लिया।

'लेकिन मैंने दो चम्मच ही लिये होंगे कि मलिक साहब ने बुरी तरह डाँट दिया।

'बात यह हुई कि पण्डितजी और मलिक साहब कटोरे में से चम्मच भर कर उसके नीचे बायाँ हाथ रखे हुए चम्मच मुँह में डालते थे। जबकि मैंने चम्मच के नीचे हाथ नहीं रखा और दोनों बार मुँह ज़रा-सा आगे कटोरे पर करके चम्मच मुँह में डाल लिया।

'चम्मच के नीचे भी हाथ रखो। यह कैसे गँवारों की तरह खाते हो।—उन्होंने ख़ासे कड़े लहजे में कहा।

'जी चाहा, उसी वक्त चम्मच रख कर उठ जाऊँ और बाहर बरामदे में जा कर पण्डितजी का इन्तज़ार करूँ। लेकिन जिस तरह दफ़्तर में ग़लतियाँ करने पर जब मलिक साहब डाँटते हैं तो मैं कभी पलट कर कुछ नहीं कह पाता, इसी तरह उस वक्त भी कुछ नहीं कह सका और चुपचाप चम्मच से ज़रा नीचे बायें हाथ का कप बनाते हुए (कि अगर चम्मच से सवैयाँ या दूध गिरे तो हाथ पर पड़े) सवैयाँ खाने लगा।

'बार-बार सोचने पर भी यह बात मेरी समझ में न आ रही थी कि अगर मैंने चम्मच के नीचे हाथ न रखा तो क्या बुरा हुआ? जब चम्मच मुँह में ले कर उसी में फिर सवैयाँ भरी जाती हैं, तब सुच्चे-जूठे का तो सवाल ही न रहा। सोचते-सोचते यही समझ में आया कि मलिक साहब की डाँट का यही सबब था कि अगर भरे हुए चम्मच से सवैयाँ का कोई तार छलक जाय तो खाने वाले या उसके साथियों पर ज़रूर छींटे पड़ेंगे। इसीलिए मलिक साहब ने मुझे डाँट दिया था।

'रास्ते भर पण्डितजी बमकते आये, लेकिन मैं चुपचाप चला आया. . .जाने मुहज़्ज़ब[1] लोगों के तौर-तरीके मुझे कब आयेंगे।'

o

फिर एक पृष्ठ पर लिखा था।

o

'पण्डितजी के साथ लगभग रोज़ घूमता हूँ। उनके सभी दोस्तों से मिला हूँ। सभी अड्डों पर गया हूँ। यह देख कर हैरत होती है कि उनके यारों में दयाल ढोढों की कमी नहीं। यूँ कहूँ तो ठीक होगा कि उनके दोस्तों में ज़्यादातर दयाल ढोढे जैसे हैं. . .

'. . .उनके एक दोस्त हैं—ज्ञानचन्द ! ऑडिट ऑफ़िस में

---

१. सभ्य।

हेड क्लर्क हैं। मोरी दरवाज़े और भाटी दरवाज़े के बीच सरक्युलर रोड के एक चौवारे में रहते हैं। उनके पास एक कमरा और रसोई-घर है। उनके चौबारे के सामने खुला आँगन है। वहाँ जाने पर ऐसा लगता है, से किसी पहुँचे हुए फ़कीर के तकिये पर आ गये हैं। उनकी सूरत भी फ़कीरों-जैसी है। रंग गोरा है। सिर के बालों को मेंहदी लगाते हैं। उनको देख कर लगता ही नहीं कि ये किसी दफ़्तर के ज़िम्मेदार अफ़सर हैं। सुनता हूँ किसी ज़माने में ग़ज़ल कहा करते थे और 'सीमाब' तख़ल्लुस[1] रखते थे, मगर अब वह शौक कब का चुक गया है। नौकरी करते उन्हें बाईस-एक बरस हो चुके हैं और अब वे रिटायर होने को हैं।

'शाम को उनके चौबारे पर कुछ दोस्त आ इकट्ठे होते हैं। बादाम और पिस्ता डाल कर सिल-बट्टे पर बड़ी लगन से भाँग घोटी जाती है और एक लोटा पी कर वो बड़े प्रेम से गाया करते हैं—पण्डितजी से मालूम हुआ है कि उन्होंने एक लड़का (लौण्डा वे नहीं कहते, पर जब वो बात करते हैं तो लगता यही है।) पाला था। उसे लिखाने-पढ़ाने की कोशिश की, पर सफल नहीं हुए। तब उसे उन्होंने गाना-बजाना सिखाया। उसकी शादी की। लेकिन शायद बहू से उनकी पटी नहीं। भाटी दरवाज़े के अन्दर जिस मकान में रहते थे, वह उन्हें दे कर खुद उस चौबारे पर उठ आये हैं, पहले कभी दिन-त्योहार पर बूटी छनती थी, अब यह रोज़ का शग़ल हो गया है।

'. . .एक दूसरे दोस्त हैं। एग्ज़ेकटिव इंजीनियर हैं। उन्होंने शादी नहीं की। अभी एस० डी० ओ० थे कि एक दिन अनारकली में एक मुसलमान छोकरा उन्हें भा गया। वह छाता खोले उसकी हर तीली से एक-एक रूमाल बाँधे आवाज़ लगाता

---

१. उपनाम।

और लोगों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचता था। कभी वह छाते की डण्डी को दोनों हाथों से घुमा देता। रूमाल हवा में लहराते और वह आवाज़ लगाता। पण्डितजी के दोस्त को वह इतना प्यारा लगा कि उन्होंने उस दिन उसके सारे रूमाल ख़रीद लिये। दो-तीन दिन यही होता रहा, फिर उन्होंने उस लौण्डे को ही ख़रीद लिया—ख़रीद लिया कहना ग़लत है। असल में वो उसके वालिद के घर गये। उसे समझाया कि लड़का उसका ज़हीन[1] है, वह उसे उनको दे दे। दस रुपया महीना उन्होंने उसके वालिद को देना शुरू कर दिया और लड़के को घर ले आये। उसका नाम उन्होंने लाल मुहम्मद की बजाय लाल चमन रख दिया और उसे पढ़ाया-लिखाया। उसकी शादी की और उसे बैरिस्ट्री पढ़ने के लिए विलायत भेज दिया। वहाँ वह पिछले सात वर्षों से है। इस साल या अगले साल आयेगा और उन्होंने उसके लिए छावनी की सड़क पर एक कोठी बनवा दी है।

०

'. . .उनके एक और दोस्त हैं। पुराने जर्नलिस्ट हैं। हाल ही में उनकी जान-पहचान एक हसीन लड़के से हुई, जिसने जालन्धर के उसी कॉलेज से बी० ए० किया है, जहाँ से मैंने। मेरा ख़याल है, वह मुझसे एक बरस जूनियर था। कॉलेज में उसके पीछे गुण्डे लगे रहते थे। पण्डितजी के इन दोस्त ने अपनी सारी जमा-पूँजी लगा कर एक सिने-मैगज़ीन शुरू की है और उसे अपना पार्टनर बना लिया हैं।

०

'. . .गुरू घण्टाल' के मालिक-सम्पादक लाला जीवनलाल कपूर अपने और डोगरा के फ़ोहश[2] किस्से सदा नमक-मिर्च लगा कर

---

१. मेधावी। २. अश्लील।

सुनाया करते हैं।

०

'. . .महाशय धर्मचन्द, सम्पादक और मालिक 'बहार' (जो 'गुरु घण्टाल' के बाद सबसे ज़्यादा बिकने वाला अहम हफ़्तावार है) हर दूसरे-तीसरे बरस एक नया ऐडीटर रख लेते हैं, जो 'भीष्म' के गूंगों का-सा दर्जा रखता है। महाशय धर्मचन्द 'महात्मा' नहीं पालते। जहाँ 'ऐडीटर' 'गूंगे' से 'महात्मा' बना, वे उसे धता बता देते हैं।'

०

फिर एक पृष्ठ पर लिखा था :

'मुझे उर्दू रोज़नामों और हफ़्तेवारों के अकसर ऐडीटरों, ट्रांसलेटरों और अखबार के 'अपने शायरों' पर तरस आता है। ये लोग कितने भूखे हैं? भूखे और नदीदे! ये समाज को सुधारने, उसमें और उसके नज़ाम में इन्कलाब लाने के सपने ही लोगों को देते हैं, बड़े जोशीले मज़मून लिखते हैं, लेकिन खुद उनकी समझ, सोच और अमल का दायरा इतना तंग और महदूद[1] है कि मुझे कभी-कभी लगता है—मैं कहाँ आ फंसा। इस माहौल से स्कूल की फ़िज़ा कैसे बुरी है? ऐसी ऐडीटरी से मास्टरी क्या बेहतर नहीं?. . .लेकिन अब अगर मैं इस दलदल में आ फँसा हूँ तो इससे कुछ पाये बिना इसे नहीं छोड़ूँगा! हाँ, मैं इसमें सदा नहीं रह सकूँगा। भाई साहब लाहौर आ ही गये हैं। जिस दिन उनकी दुकान चल निकली और मेरे सिर पर छत का सहारा हुआ, मैं इस दमघोंटू माहौल से निकल जाऊँगा। इस अखबारी ज़िन्दगी के तजरुबे घाते में रहेंगे। मुझे अगर अदीब[2] बनना है तो ज़िन्दगी के बुरे और तकलीफ़देह तजरुबात से कन्नी काट कर काम नहीं चलेगा। जो कुछ भी रास्ते में आयेगा, उसे आँखें खोल कर देखूँगा फिर चाहे वह कितना भी भयानक, घिनावना, ग़लीज़ और नफ़रत-अंगेज़ क्यों न हो. . .'

---

१. सीमित। २. लेखक।

०

चेतन ने पृष्ठ पलटे : एक पृष्ठ पर फिर उसकी निगाहें जम गयीं ।

०

'बलोची को मेरी और पण्डितजी की दोस्ती से बेपनाह हसद[१] है । पण्डितजी से वह डरता है । उनके ओहदे और काबलियत—दोनों के कारण ! उसने मेरे खिलाफ़ खासा स्कैण्डल फैला दिया है ।

'इस स्कैण्डल का असर ज़ायल[२] करने का यही तरीका है कि पण्डितजी के साथ खुले आम घूमूँ और लोगों को बकने दूँ । लोग सच की खोज नहीं करते । करना नहीं चाहते । वे अपना एक निजी सच (जो सौ फ़ीसदी झूठ होता है) गढ़ लेते हैं और उसी को सच मान कर उसका प्रचार किया करते हैं । उनको असली बात बताने, उनके झूठ का पर्दा फ़ाश करने, उनके सामने सच्चाई के ढोल पीटने से कुछ हासिल नहीं. . .उन्होंने जिस झूठ को सच समझ रखा है, उसे वो कभी नहीं छोड़ेंगे । अगर एक छोड़ भी देगा तो कोई दूसरा उसे थाम लेगा. . .मैंने तय किया है कि पहले अगर हफ़्ते में दो-तीन बार पण्डितजी के जाता था तो अब रोज़ जाऊँगा—उनके हाथ-में-हाथ दिये घूमूँगा ! उनके साथ बेझिझक सभी दोस्तों के यहाँ जाऊँगा. . .पण्डितजी के मन में मेरे लिए वैसी बात नहीं है, जैसी बलोची के मन में । उन्होंने एक-दो बार प्यार से मेरा माथा ज़रूर चूमा है, पर जाने क्यों मुझे बुरा नहीं लगा । शायद इसलिए कि उनकी आँख में मैल नहीं था । अजीब-से प्यार का जज़्बा था, जो कहीं एकदम सच्चा महसूस होता था । जब से उन्होंने अपने मरहूम[३] बड़े लड़के का फ़ोटो दिखाया है (अजीब बात है कि उसकी शक्ल मुझ से थोड़ी-बहुत मिलती है) और कहा है कि मुझे देख कर पहले दिन ही उन्हें उसकी याद आ गयी थी, मुझे पण्डितजी

---

१. ईर्ष्या । २. नष्ट । ३. दिवंगत ।

का साथ अच्छा लगता है। उनकी बीवी भी मुझे बेटे की तरह मानती है और वैसा ही प्यार देती है. . .मैं पण्डितजी के मन की बात क्या जान सकता हूँ ? हो सकता है, अपने अकसर दोस्तों की तरह उनमें भी यह कमज़ोरी हो और उन्होंने उसको सबलीमेट कर लिया हो[1]. . .यह भी हो सकता है कि उन्हें मेरी कहानियाँ पसन्द हों और वो मेरा हौसला बढ़ाना चाहते हों. . .या फिर यही सच हो कि उन्हें सचमुच मुझे देख कर अपने बड़े बेटे की याद आ जाती हो।. . .जो भी हो अगर उनके मन में कुछ होगा भी तो इस खुले ब्योहार से ख़त्म हो जायगा, इसका मुझे पूरा यकीन है।'

०

चेतन यों ही अनमने भाव से कापी के पृष्ठ पलटता गया। एक जगह ख़ाली पृष्ठ में केवल चन्द पंक्तियाँ लिखी थीं :

०

'आज चौधरी अफ़ज़ल बेग ने रुपये भिजवा दिये। शाम को मैं जिससे भी मिला, मैंने इस बात का ज़िक्र किया। सब ने इस बात पर हैरत ज़ाहिर की। क्योंकि सब का यह ख़याल था कि उस मूज़ी से पन्द्रह रुपये तो दूर, पन्द्रह पैसे भी नहीं मिल सकते। कई दोस्तों ने बताया कि उनके रुपये उसने मार रखे हैं।. . .दोस्तों की हैरत देखता हूँ तो मुझे कॉलिज के ज़माने की याद आ जाती है, जब मैंने गोगे को पीट दिया था और साथियों को इस बात पर हैरत न थी कि राजकिशोर पिट गया, बल्कि इस पर कि वह मुझसे पिटा।'

०

चेतन ने इसके बाद नोटबुक में कई पृष्ठ ख़ाली रख छोड़े थे—शायद इस ख़याल से कि वह उस घटना को विस्तार से उसमें लिखेगा, पर शायद उसे समय नहीं मिला या जाने क्या व्याघात उपस्थित हुआ कि.

---

१. उन्नयन कर लिया हो

वह उस घटना को वहाँ नहीं लिख सका। उस पैरे को पढ़ते-पढ़ते सहसा सारी-की-सारी घटना चेतन की आँखों में कौंध गयी. . .

०

. . .किस्सा वास्तव में यह था कि भाई साहब की दुकान पर एक बड़े जहाज़ी साइनबोर्ड की ज़रूरत थी। उस पर उस मन्दी के ज़माने में भी चौदह-पन्द्रह की लागत का अनुमान था। चेतन का वेतन दुकान और घर के किराये में निकल जाता था और भाई साहब मुश्किल से घर का खर्च चला पाते थे। तब चेतन ने पण्डित रत्न से कहा था कि उसे कुछ अतिरिक्त काम कहीं से ले दें, जिससे कुछ आय हो जाय !

उन्हीं दिनों चौधरी अफ़ज़ल बेग ने पंजाब के किसानों के लिए एक साप्ताहिक—दौरे-जदीद—निकाला था। सरकार से उन्हें उस पत्र के लिए कुछ अनुदान मिलता था। पण्डित रत्न ने एक दिन चेतन से कहा कि चौधरी साहब को एक सहकारी की ज़रूरत है, जो काम चाहे घर पर करे, पर उनका अंक वक्त से तैयार कर दे।

'इतना समय तो मेरे पास नहीं,' चेतन ने कहा, 'कि मैं पूरा साप्ताहिक तैयार कर दूँ, पर यदि वे चाहें तो हर हफ़्ते मैं उन्हें एक कहानी अथवा लेख दे सकता हूँ।'

और चेतन पण्डितजी के साथ ग़ुलाम नबी बिल्डिंग, मैक्लोड रोड पहुँचा था। चौधरी घर ही पर थे। बिल्डिंग की दूसरी मंज़िल में सभी फ़्लैटों के सामने लम्बा खुला बरामदा था। चौधरी साहब ने बाहर बरामदे ही में कुर्सियाँ लगा दीं और पण्डितजी ने उन्हें चेतन का परिचय दिया।

चौधरी अफ़ज़ल बेग लम्बे-ऊँचे, मोटे-तगड़े, लहीम-शहीम, पले हुए रीछ-सरीखे आदमी थे। दायीं बाँह उनकी न जाने कैसे कट गयी थी, लेकिन बायीं इतनी मज़बूत थी कि यदि वे बायीं बाँह की धौल किसी को जमा दें तो वह वहीं ज़मीन में धँस जाय।

पण्डितजी की बात सुन कर चौधरी साहब हँसे, 'आपके इस अज़ीज़ को कौन नहीं जानता !'

उन्होंने 'अज़ीज़' शब्द पर कुछ ऐसे ज़ोर दिया कि चेतन का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। उसका जी हुआ कि उठ कर चल दे। लेकिन वह चुपचाप बैठा रहा।

तब चौधरी साहब ने जिज्ञासा प्रकट की कि वह 'दौरे जदीद' के लिए क्या कर सकता है ?

चेतन ने हर हफ़्ते कहानी अथवा लेख लिखने की बात थी।

उन्होंने बताया कि कहानी या लेख जो भी वह लिखे, कृषि-सम्बन्धी लिखे। और जब कातिब कापी तैयार कर दे तो उनके प्रूफ़ भी वह पढ़ दे। वे उसे तीस रुपया महीना दे दिया करेंगे। तीन महीने वह काम करके दिखाये, फिर वे वेतन बढ़ा देंगे।

चेतन ने कहा कि वह यथासम्भव मेहनत और दयानतदारी से काम करेगा। उसकी शर्त केवल एक है कि उसे हर हफ़्ते अनुपात के अनुसार पारिश्रमिक दे दिया जाय।

'वह हो जायगा।' चौधरी साहब ने अपनी कुल्लेदार पगड़ी सिर से उतार कर बराबर की कुर्सी पर रखते और खलवाट पर हाथ फेरते हुए कहा।

०

चेतन ने 'दौरे-जदीद' के लिए तीन कहानियाँ और तीन लेख लिखे, पर जब उसे तीसरे हफ़्ते तक पहले सप्ताह का पारिश्रमिक न मिला तो उसने चौथे सप्ताह काम नहीं किया।

इसके बाद वह कई बार दो-ढाई मील की मंज़िल मार कर पारिश्रमिक के लिए मैक्लोड रोड गया, पर रुपया देना तो दूर रहा वे उल्टा उससे मज़ाक करते कि जिसका यार पण्डित 'रत्न' हो, उसे चन्द रुपयों की क्या ज़रूरत है, कि दस-बीस रुपये की क्या बात है, हज़ारों उस पर न्योछावर किये जा सकते हैं। और वे आँखें दबाते और अपने आप ठहाके लगाते।

चौदह-पन्द्रह घण्टे दफ़्तर में काम कर, किसी तरह के आराम के

बिना चेतन ने 'दौरे-जदीद' के लिए काम किया था और चौधरी साहब थे कि पैसा देना तो दूर, उल्टा उससे भोंडे मजाक करते थे। उसके सब्र का प्याला एकदम भर गया। एक दिन जब पण्डितजी मलिक साहब को मिलने मैक्लोड रोड जाने लगे तो चेतन उनके साथ हो लिया। जब वे सीढ़ियाँ चढ़, बिल्डिंग के बरामदे में पहुँचे तो चौधरी साहब अपने फ़्लैट के सामने बरामदे के चौड़े जँगले पर एक टाँग नीचे लटकाये बैठे थे। पण्डितजी मलिक साहब के यहाँ जाने से पहले चौधरी साहब की ओर चले गये और उचक कर उनके पास जा बैठे।

चेतन ने चौधरी साहब से कहा कि वे एक मिनट को उसकी बात सुन लें।

'बोलो, बोलो, यहीं बोलो।'

'नहीं सिर्फ़ एक मिनट को मेरी बात सुन लीजिए।'

चौधरी साहब का एक पाँव ज़मीन के साथ लगा था, उसी के बल वे उतर आये और चन्द कदम बरामदे में बढ़ गये।

'बोलो !'

जल्दी में चेतन को कुछ न सूझा कि क्या कहे।

'आप मेरे पैसे देंगे या नहीं ?' उसने कहा।

चौधरी साहब क्रोध से पागल हो उठे। 'क्या कहा—देंगे या नहीं ? नहीं देंगे तो क्या कर लोगे ?' और वे मुड़ कर पण्डितजी की ओर आये। 'देखिए पण्डितजी, यह आपका लौण्डा बहुत सिर चढ़ गया है। मुझे धमकी देता है—देंगे या नहीं !'

अपनी पूरी आवाज़ से गरजते हुए पूर्ववत एक टाँग लटकाये दूसरी रान के सहारे जँगले पर अपनी जगह जा बैठे और चिल्लाने लगे :

'तीन महीने की बात कर के तीन हफ़्ते से काम नहीं किया, इसके भरोसे मेरा इतना नुक्सान हो गया और ऊपर से धमकी देता है—देंगे या नहीं ? नहीं देंगे तो क्या कर लेगा ?'

चेतन का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। अपने आप पर पूरा संयम

रख के उसने कहा, 'मेरी मेहनत के पैसे हैं, मैं सिर्फ़ इतना कहता हूँ कि मैं ले कर छोड़ूँगा ।' यह कह कर वह मुड़ा और तेज़-तेज़ सीढ़ियों की ओर बढ़ गया । चौधरी साहब क्या चिल्लाते रहे, उनके मुँह से कैसे झाग निकलने लगी, उनका सारा खून कैसे उनके चेहरे पर आ कर जमा हो गया, वे क्या वाही-तबाही बकने लगे, उसने यह सब नहीं सुना ।

०

बिल्डिंग से नीचे उतर कर क्षण भर के लिए चेतन रुका कि यदि पण्डित जी आ रहे हों तो उनकी प्रतीक्षा कर ले । फिर दूसरे ही क्षण वह वापस घर की ओर चल पड़ा । पण्डितजी साथ होते तो शायद वे दोनों बातें करते हुए सीधे मैक्लोड रोड पर जाते और निस्बत रोड के किनारे पर लक्ष्मी मैन्शन्ज़ से मुड़ते, लेकिन क्रोध में वह चन्द कदम आगे चल कर बायीं ओर को ग्वालमण्डी से आने वाली सड़क की ओर मुड़ गया ।

वह निस्बत रोड से दयाल सिंह कॉलेज के बराबर हो कर गन्दे नाले को आने वाली सड़क के पास पहुँच गया था जब पण्डितजी ने पीछे से उसके कन्धे पर हाथ रखा ।

उनकी साँस फूल रही थी और माथे पर हलका-सा पसीना आ गया था । लगता था, जैसे वो भागते हुए वहाँ तक आये थे ।

'तुमने तो एकदम फ्रण्टियर मेल ही चला दी !' पण्डित जी ने कढ़े हँस कर कहा ।

चेतन सहज गति से चलने लगा ।

कुछ क्षण दोनों चुप रहे, फिर पण्डितजी ने कहा, 'तुम्हें चौधरी साहब को यों धमकी न देनी चाहिए थी ।'

'पण्डितजी आप भी मुझी को इल्ज़ाम देते हैं,' चेतन फट पड़ा, 'उस साले से कुछ नहीं कहते, जो मेरे रुपये दबाये बैठा है । मुझे इस बात का यकीन न हो गया होता कि वो पैसे नहीं देगा तो मैं यों न बमकता ।'

'तो तुम्हारा खयाल है कि इस तरह चौधरी से पैसे ले लोगे ?'

'यह आप देख लीजिएगा । अगर उसने मेरी मेहनत के पैसे न दिये तो मैं बीच-बाज़ार उसकी पत उतार दूँगा, फिर चाहे मुझे जो भी भुगतना पड़े । आप सिर्फ़ इतना कीजिएगा कि अबके चौधरी से मिलें तो उसे कह दीजिएगा कि जिस दिन वो दोस्तों के साथ मुझे अनारकली में मिल गया, खींच कर दो जूते मैं उसके लगा दूँगा ।'

'तुम उन्हें नहीं जानते, बायाँ हाथ उनका इतना मज़बूत है कि उनके एक ही वार में तुम ज़मीन पर लोटते नज़र आओगे ।'

'मैं ज़मीन के अन्दर ही चाहे न धँस जाऊँ, पर जूते मैं उसके ज़रूर मारूँगा; और तभी मारूँगा, जब वह कुल्लेदार साफ़ा बाँधे, चमचम करती कमीज़-शलवार पहने अपने दोस्तों के बीच अनारकली की सैर करता दिखायी देगा !'

०

उस दिन के बाद चेतन ने यह क्रम बना लिया कि हर रोज़ चौधरी साहब के जान-पहचान वाले किसी-न-किसी पत्रकार से मिलता । अपनी दुख-गाथा उसे सुनाता, अपनी धमकी दोहराता और उससे कहता कि वह चौधरी साहब से मिले तो उन्हें चेतावनी दे दे ।

'इससे पहले कि वह जाने या सँभले, मैं उछल कर एक ही बार में उसकी पगड़ी और कुल्ला अनारकली में गिरा दूँगा,' उसने बहार के मालिक और सम्पादक महाशय धर्मचन्द से कहा, 'आप उनसे मिलें तो उन्हें समझा दीजिएगा ।'

'अरे वो तुम्हें कैद करा देंगे । वो ज़फ़रुल्लाह खाँ के नज़दीकी रिश्तेदार हैं ।'

'ज़फ़रुल्लाह खाँ तो दूर रहे, वह सिकन्दर हयात खाँ का भी रिश्तेदार हो, मैं जूता उसको ज़रूर मारूँगा । एक तो मेरे पैसे दबाये बैठा है, दूसरे माँगने जाता हूँ तो ऊपर से भद्दे मज़ाक करता है । आ जाय मुझे कहीं नज़र अनारकली में, फिर मैं उसे बताऊँगा ।. . .कैद की मैं परवा नहीं करता ।'

०

चेतन ने इतने लोगों से यह कहा कि उसे स्वयं विश्वास हो गया, वह चौधरी को जूता मार सकेगा। कई बार कल्पना-ही-कल्पना में चेतन वह दृश्य देखता कि चौधरी का कुल्लेदार साफ़ा उड़ कर अनारकली बाज़ार में गिर गया है और इससे पहले कि कोई उसे गिरफ़्तार करे, वह भाग गया है. . .कभी वह देखता कि चौधरी ने उसे पकड़ लिया है और चेतन शोर मचा रहा है कि उसके रुपये मार लिये हैं, माँगने पर उसे निर्दोष पीट रहे हैं। भीड़ इकट्ठी हो जाती है और उसे छुड़ा देती है. . . कभी देखता कि उसे पुलिस पकड़ कर ले गयी है। और वह अदालत में चौधरी अफ़ज़ल वेग का पर्दा फ़ाश कर रहा है. . .कभी देखता कि चौधरी उसे बेतरह पीट रहा है और वह चिल्ला रहा है, भीड़ इकट्ठी हो जाती है और हिन्दू-मुस्लिम दंगे के डर से चौधरी घबरा जाता है. . .

लेकिन ज्यों-ज्यों वह इस सन्दर्भ में सोचता, चौधरी को सबक सिखाने का इरादा उसके मन में ज़ोर पकड़ता जाता। वह रोज़ शाम को अनारकली में एक-दो चक्कर लगाने लगा।

तभी जब एक दिन चेतन लोहारी के चौक में फ़ज़ल बुक डिपो से नयी मासिक पत्रिकाओं पर एक दृष्टि डाल कर वापस लौट रहा था कि अचानक केसरी की दुकान के निकट उसे चौधरी अफ़ज़लवेग अपने दो-तीन कुल्लाधारी साथियों के साथ ख़रामाँ-ख़रामाँ आते दिखायी दिये।

चेतन का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क उठा, लेकिन अपने-आप पर पूरा काबू पा कर, किंचित व्यंग्य-भरे स्वर में दायें हाथ को हवा में सीधा कर उसे हिलाते हुए उसने दूर ही से पूछा :

'क्यों चौधरी साहब, कुछ हम पर भी नज़रे-इनायत होगी कि नहीं?'

चौधरी साहब का रंग उड़ गया। इससे पहले कि वह कोई कदम

उठाता, चौधरी साहब ने उसे इशारे से बुलाया और उसके कान में कहा, 'पुत्तर दी सौंह कल तैन्नूँ रुपये मिल जानगे !'[1]

और सचमुच दूसरे ही दिन उनका एक आदमी उसे दफ़्तर में लिफ़ाफ़ा दे गया। चेतन ने खोल कर देखा—१५) के नोट थे और एक रुक्का—'पन्द्रह रुपये भेज रहा हूँ। मेरे ख़याल में इससे ज़्यादा का तुमने काम नहीं किया था।'

काम तो उसने ख़याल में ज़्यादा का ही किया था, पर उन्होंने पन्द्रह ही भिजवा दिये, यही बड़ी बात थी। वह जानता था कि शायद ही कोई ऐसा पत्रकार लाहौर में होगा, जिसके कुछ-न-कुछ रुपये उन्होंने न मार रखे हों। चेतन को वह लिफ़ाफ़ा पा कर इतनी खुशी हुई कि वह उसी शाम सभी मित्र-परिचितों को वह खबर दे आया था।

१. बेटे की सौगन्ध, तुझे कल रुपये मिल जायेंगे।

बारह

हालाँकि चेतन का मन नोट-बुक में लगा हुआ था, पर जैसी कि उसकी आदत थी, अपने आपको बरबस उससे हटा कर, कापी के कुछ पृष्ठ छोड़, वह उन व्यक्तियों और घटनाओं को नोट करने लगा, जिनसे वह गत सात-दस दिन में दो-चार हुआ था। यूँ भी नोट-बुक पढ़ते-पढ़ते उसका मूड बन गया था, लिखने में उसे कोई दिक्कत नहीं हुई। जिस क्रम से वह उन लोगों से मिला था, उसी क्रम से उसने उनके नोट लेने शुरू किये और पहला शीर्षक लिखा :

चौधरी ईशरदास

'चौधरी ईशरदास (ईश्वरदास), आर्य समाज के मशहूर रोज़ाना अख़बार, 'समाज' के ऐडीटर हैं—लम्बे, ऊँचे, छै फ़ुट तीन इंच के मज़बूत जवान। दफ़्तर में दाखिल होते ही सामने मेज़ पर अपनी अलसाई आँखों को लिये हुए, सीधे स्तून[1]-से जमे दिखायी देते हैं। अगर वो कुछ और लम्बे होते या कमरे की छत क़द्रे नीची होती तो लगता कि वही छत को थामे हुए हैं। क्रिकेट के खिलाड़ी हैं। छुट्टी के दिन लाज़िमी तौर पर मैच खेलने जाते हैं। लेकिन अख़बार की नौकरी

---

1. स्तम्भ।

और मुतवातिर रतजगों ने उनकी आँखों में दायमी[१] अलसाहट भर दी है। मैंने सुन रखा था कि वो किसी क्रिकेट टीम के कप्तान भी रहे हैं, इसलिए उन्हें यों थके, अलसाये बैठे देख कर मुझे उन पर दया हो आयी। अंग्रेज़ अफ़सर वरनेक्युलर प्रेस को नफ़रत और तंज़[२] से गटर प्रेस कहते हैं—गटर प्रेस—याने नाली के अखबार। मतलब उनका लफ़्ज़ी नहीं, बल्कि यह है कि वे सब-के-सब टुकड़िया हैं। लेकिन अपने तजरुबे को देखता हूँ तो मुझे लफ़्ज़ी माने ही ठीक लगते हैं। उर्दू का प्रेस—वह चाहे मुस्लिम लीग का हो, चाहे आर्य समाज का (जहाँ तक इन्टलेक्चुअल मैयार[३] का ताल्लुक है) गटर से बेहतर नहीं—कहाँ क्रिकेट के मैदान की आज़ाद खुली फ़िज़ा और कहाँ फ़िरकापरस्त[४] उर्दू रोज़नामे का दमघोंटू माहौल। चौधरी साहब दिन-रात इसी कुर्सी पर बैठे हुए मैले-पुराने, खस्ता और बोसीदा[५] बल्ले की तरह हो जायेंगे, जिससे टकरा कर तजरुबात के गेंद किसी तरह की रद्द-अमल[६] के बग़ैर फिच्च से वहीं गिर जाया करेंगे और एक दिन इस बैट की गर्दन टूट जायगी और वह कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जायगा।'

०

इतना लिख कर चेतन कुर्सी पर पीछे को लेट गया और उसकी आँखों में 'समाज' के मालिक महाशय प्रभु दयाल 'मस्त' से अपनी भेंट कौंध गयी।

चेतन को कहीं दूसरी जगह नौकरी दिलाने के प्रयास में पण्डित रत्न उसे सबसे पहले मस्तजी से ही मिलाने ले गये थे। चौधरी ईशरदास को एक 'आदाब अर्ज़' फेंक कर वे दायीं ओर के पार्टीशन में से होते हुए अन्दर एक खुले, रोशन और हवादार कमरे में पहुँचे थे, जहाँ एक तख्त और कुछ कुर्सियाँ बिछी थीं। तख्त पर गद्दा था, जिस पर ताज़ी

---

१. स्थायी। २. व्यंग्य। ३. स्तर। ४. साम्प्रदायिक। ५. जीर्ण-जर्जर। ६. प्रतिक्रिया।

धोबी-धुली चादर बिछी थी और वैसे ही दूधिया गिलाफ़ में मढ़ा एक गोल तकिया पड़ा था, जिसके सहारे महाशय प्रभुदयाल मस्त बैठे थे। उनके शरीर पर केवल खादी का सफ़ेद बुर्राक तहमद और बण्डी थी और बड़ी सफ़ाई से तह किया लम्बा साफ़ा उनके बायें कन्धे से लटक रहा था। पण्डित रत्न ने चेतन का परिचय दिया और उसने 'नमस्कार' में हाथ उठाये तो उन्होंने मुस्कान में होंट फैलाते हुए हाथ जोड़ कर 'नमस्कार' का उत्तर दिया और उन्हें कुर्सियों पर बैठने का संकेत करते हुए बताया कि उन्होंने चेतन की कुछ कहानियाँ देखी है और उन्हें पसन्द आयी हैं। इस पर जब पण्डितजी ने प्रोत्साहित हो कर अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया तो उनकी वह खुली मुस्कान सिकुड़ गयी और उन्होंने सूचना दी कि वे अब वानप्रस्थी हो गये हैं। संसार के माया-मोह से उन्होंने हाथ खींच लिया है। समाचार-पत्र का सब कार्य-भार उन्होंने अपने बड़े लड़के को सौंप दिया है। और यह कह कर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और धीरे-धीरे झूमते और उपनिषदों के श्लोक सुनाते हुए, समय रहते संसार के माया-मोह को त्यागने पर प्रवचन देने लगे। उन्होंने बताया कि इसी वर्ष से वे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर गये हैं। वे अब पच्चीस वर्ष तक घूम-घूम कर आर्य-समाज की सेवा करेंगे और जब ७५ के होंगे तो संन्यास ले कर हरिद्वार अथवा हृषीकेश में कुटिया बसा लेंगे।

उस भावी महर्षि के मुखारविन्द से झरने वाली अमृत-वर्षा में आकण्ठ शराबोर, और यों बोर हो कर, जब वे बाहर निकले तो दरवाज़े के बाहर के पार्टीशन में उनके सुपुत्र श्री शत्रुघ्नलाल 'तीर' से भेंट हो गयी।

०

'तीर' जी कॉलेज के ज़माने में क्रान्तिकारियों की काल्पनिक रूमानी कहानियाँ लिखते थे। बड़ी भावुकतापूर्ण और प्रवहमान उनकी शैली थी। चेतन को वे कहानियाँ बड़ी अच्छी लगा करती थीं। वह 'समाज' के

साप्ताहिक संस्करण में बड़े चाव से उन कहानियों को पढ़ा करता था और सपनों में उन कहानियों के नायक उसे अपने साथ जंगलों के अँधेरे कोनों में षड्यन्त्र करते मिलते थे। वह स्वयं वैसा नायक बन जाता और प्रेयसियों की मुहब्बत ठुकरा कर देश के लिए कुर्बान हो जाता। चेतन ने कल्पना-ही-कल्पना में 'तीर'जी की बड़ी सुन्दर छवि वना रखी थी और जब उसने सुना था कि 'तीर'जी अपने कई साथियों के साथ एक षड्यन्त्र में धर लिये गये हैं तो उसका हृदय बुरी तरह कचोट गया था। 'समाज' के साप्ताहिक संस्करण में जेल से लिखी उनकी भावुक रूमानी कहानियाँ छपती रही थीं और अंक पाते ही जैसे एक साँस में वह उन्हें पी जाया करता था। लाहौर आने पर चेतन ने सुना था कि एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता की सुपुत्री, जो स्टुडेण्ट यूनियन की सरगर्म सदस्या थी और बड़े ओज-भरे भाषण देने वाली थी और जिसके साँवले-सलोने मुख और घुँघराले बालों पर विश्वविद्यालय के आधे युवक फ़िदा थे, 'तीर'जी के प्रेम में फंसी है और दोनों ने तर्जनी छील कर अपने लोहू से प्रतिज्ञा की है कि न केवल एक दूसरे के लिए अपने आप को न्योछावर कर देंगे, वरन यदि अवसर आया तो देश के नाम पर एक दूसरे का बलिदान दे देगें। उनके प्रेम के इतने किस्से प्रचलित थे कि चेतन 'तीर'जी के दर्शनों का बड़ा इच्छुक था। उन दिनों उन पर हाई कोर्ट में मुकदमा चल रहा था। सेशन जज ने उन्हें उनके दो साथियों के साथ फाँसी की सज़ा दे दी थी, जिसकी अपील हाई कोर्ट में चल रही थी। चेतन जिन दिनों लाहौर पहुँचा था, दैनिक 'समाज' के पहले पृष्ठ पर मोटे शीर्षकों के नीचे इस मामले का वृत्तान्त छपता था। 'तीर'जी के पिता ने अपने समाचार-पत्र में उनका ऐसा प्रचार किया था कि भगतसिंह और दत्त उनके मुकाबले में निरीह कबूतर लगते थे। बहरहाल लाहौर के सबसे बड़े वकीलों की मदद से उनका केस लड़ा गया। उसके प्रचार के कारण 'समाज' की ग्राहक संख्या में हज़ारों की वृद्धि हो गयी। लेकिन 'तीर' जी बेदाग़ छूट गये। जिस दिन उनका स्वागत हुआ, चेतन भी उनके

दर्शनों को गया और जब उसने किसी सुन्दर, सुकुमार, तीखे, भावप्रवण युवक के स्थान पर एक निहायत काले-कलूटे, भैंसे-ऐसे मुच्छड़ युवक को देखा तो उसे बड़ी निराशा हुई। उनकी प्रेयसी उनके विरह में स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेती हुई जेल चली गयी थी। वह अभी जेल ही में थी, जब उसने सुना कि 'तीर'जी की शादी अनारकली के एक प्रसिद्ध व्यापारी की बदनाम लड़की से हो रही है और उन्हें पचास हज़ार नकद दहेज में मिला है। लड़की सुन्दर होती तो शायद चेतन उन्हें क्षमा कर देता, पर वह वैसी ही मोटी भदभद थी, जैसे 'तीर'जी। और एक बार अखबारों तक में यह खबर छप गयी थी कि वह अपने नौकर के साथ भाग गयी थी। फिर जब छै महीने बाद ही चेतन ने सुना कि उनकी भूतपूर्व प्रेयसी को जेल में यक्ष्मा हो गया है तो उस कैरियरिस्ट विद्रोही की रचनाओं से चेतन को प्रबल घृणा हो गयी थी। उनके पिता ने कैसे उन्हें व्यापारी की उस लड़की से शादी करने को राज़ी कर लिया, यह चेतन के लिए एक पहेली थी। प्रकट ही उन्होंने अपने प्रेम का बलिदान किया था, लेकिन देश के लिए नहीं, धन के लिए! अब वे अपने पिता की जगह पत्र के अग्रलेख लिखने लगे थे और उनकी कहानियों की वह काट खत्म हो गयी थी।

०

पण्डितजी ने 'तीर'जी को चेतन का परिचय दिया, उसकी बड़ी प्रशंसा की और अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया। यह भी बताया कि 'मस्त' जी ने सब कुछ उन्हीं पर छोड़ दिया है।

उनके अधीन काम करने का विचार ही चेतन के लिए प्राण-घातक था, वह पण्डित रत्न को रोकना चाहता था, पर वे नाराज़ न हो जायँ, इसलिए चुप बना रहा।

'तीर'जी ने बताया कि स्टाफ़ में पहले ही ज़रूरत से ज्यादा आदमी हैं। चेतन की कहानियाँ और कविताएँ उन्होंने पढ़ी हैं और उन्हें पसन्द भी हैं, उनके यहाँ जगह होती तो वे ज़रूर उन्हें रख लेते, लेकिन मजबूर हैं।

तब पण्डितजी ने कहा, 'आप इनकी कहानियाँ ही 'समाज' में छाप दिया करें, इनकी कुछ सहायता हो जायगी।'

'हाँ, यह हो सकता है!' उन्होंने सोत्साह कहा। 'मैं अभी चौधरी साहब से कहता हूँ, वे ही इसका निर्णय करते हैं।'

और पार्टीशन पार कर वे चौधरी साहब के कमरे में आये। उन्होंने चौधरी साहब को चेतन का परिचय दिया और उनसे अनुरोध किया कि उसकी कोई कहानी अवश्य छापें।

चौधरी साहब ने चेतन की ओर नहीं देखा। अपनी अलसायी आँखें मेज़ पर रखी अखबार की कापी से उठा कर (जिसे वे तैयार कर रहे थे) बायीं ओर कुर्सी के निकट ही रखी छोटी अलमारी पर डालीं और बोले—'यह कहानियों से ही भरी है।'

इतनी देर तक चेतन चुप रहा था। चौधरी साहब की यह बात सुन कर जाने क्या गोला-सा उसके मन में उठा कि उसने तीखे स्वर में कहा, 'लेकिन इसमें चेतनानन्द की एक भी कहानी न होगी!'

चौधरी साहब जैसे झटका खा गये। तब उन्होंने पहली बार चेतन की ओर देखा। लेकिन चेतन सीढ़ियों की ओर मुड़ गया था। वहीं से उसने कहा, 'आइए पण्डितजी!'

०

चेतन ने आँखें खोलीं और नोटबुक में चौधरी ईशरदास के बारे में लिखे नोट के नीचे थोड़ी जगह छोड़ कर लिखा :

'महाशय प्रभुदयाल 'मस्त' के भी दर्शन किये। मुझे वे रंगे हुए सियार-से लगे। वहीं उनके बड़े साहबज़ादे श्री शत्रुघ्न 'तीर' से भी भेंट हो गयी और इतने बरसों से मेरे मन ने उनकी जो मूर्ति बनायी थी, वह भरभरा कर गिर गयी। वहाँ रुकना मेरे लिए मुश्किल हो गया।. . .पण्डितजी को मेरे सुलूक से बड़ी कोफ़्त हुई। रास्ते भर मुझे दुनियादारी की बातें समझाते रहे और मैं उस लड़की के बारे में सोचता रहा, जिसने अपने जज़्बाती प्यार में दिक

मोल ले लिया था। दुनियादारी का मतलब क्या अपने हर सच्चे जज्बे को झूठे और खोटे पर कुर्बान करते जाना नहीं क्या ?'

०

फिर कुछ जगह छोड़ कर चेतन ने शीर्षक लिखा :

जीवनलाल कपूर

और उसके सामने पंजाब के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'गुरु घण्टाल' के मालिक-सम्पादक से अपनी भेंट का चित्र आ गया।. . .जब वह पण्डित रत्न के साथ उनके यहाँ पहुँचा तो वे कुर्सी पर सीधे बैठे 'ट्रू स्टोरी' मैगज़ीन पढ़ने में निमग्न थे। 'नमस्कार' के आदान-प्रदान के बाद वे कुर्सियों पर बैठे ही थे कि कपूर साहब पण्डितजी को शिमला की माल पर चेतन से अचानक भेंट हो जाने का किस्सा सुनाने लगे कि किस प्रकार वे सम्पादक-'बहार,' महाशय धर्मचन्द के साथ माल पर जा रहे थे कि चेतन उन्हें आगे से आता हुआ मिल गया। उसने बताया कि उसी शाम 'गेटी थियेटर' में 'अनारकली' खेला जाने वाला है, वह उसमें अभिनय कर रहा है और उसने उन्हें नाटक देखने की दावत दी. . .

(चेतन कहना चाहता था कि मैंने दावत नहीं, केवल नाटक होने की सूचना और उसे देखने की सलाह भर दी थी, लेकिन वह चुप रहा।)

'. . .अजी पण्डितजी ! हम समझे कि यह शहज़ादा सलीम का पार्ट कर रहा होगा और हम शाम को थियेटर पहुँचे और इससे मिलने की ख्वाहिश ज़ाहिर की। पहले तो कोई इन हज़रत को बुलाने के लिए ही तैयार न हुआ। जब हमने मैनेजर को बताया कि हम पंजाब के मशहूर हफ़्तावारों के मालिक और ऐडीटर हैं, चेतन हमारे मित्र हैं, वो नाटक में अहम रोल कर रहे हैं और उन्होंने हमें नाटक देखने की दावत दी है तो मैनेजर ने कहा कि वह किसी चेतन-वेतन को नहीं जानता; फ्री पास बिल्कुल बन्द हैं और किसी भी ऐक्टर को पहले दिन फ्री पास नहीं दिया गया। तब हमने कहा कि हम खेल नहीं देखेंगे, सिर्फ़

चेतन से मिल कर चले जायँगे। तब बा-दिले नाख़्वास्ता[1] वह अन्दर गया और दूसरे क्षण रेशमी ग़रारा और जम्पर पहने, सिर पर अरबी औरतों की तरह चुनरी बाँधे, नाक में कील और कानों में आवेज़े लटकाये छम-छम करती एक बाँदी हमारे सामने आ खड़ी हुई। पहली नज़र में तो हम पहचान भी नहीं पाये कि यही हज़रत हैं. . .सीने पर ये मोटी-मोटी छातियाँ. . .'

और महाशयजी हाथों से हवा में बड़े-बड़े गोले बनाते हुए सिर पीछे को फेंक कर ज़ोर से ठहाका मार कर हँसने लगे। चेतन को उनकी इस बदतहज़ीबी और फूहड़ता पर बड़ा क्रोध आया था। वह पण्डितजी से कहना चाहता था कि वे चलें और उसकी नौकरी के सन्दर्भ में उनसे कोई बात न करें, लेकिन ठहाका बन्द कर, सीधे हो कर बैठते ही कपूर साहब डोगरा का किस्सा सुनाने लगे कि कैसे उसे बवासीर हो गयी थी। वे उसे अस्पताल देखने गये तो वह पतलून नीचे खिसकाये चूतड़ आगे किये, दूसरे मरीज़ों के साथ एक पंक्ति में खड़ा था और डॉक्टर बारी-बारी सबके चूतड़ों का निरीक्षण कर रहा था. . .

और जैसे उन्होंने बड़े मज़ाक की बात की हो, वे सिर पीछे किये फिर छत-फाड़ ठहाका लगा उठे थे।

०

चेतन को डर था कि पण्डितजी उसके सिलसिले में बात करेंगे तो कहीं वे कोई और भद्दा मज़ाक न कर दें, लेकिन पण्डितजी ने स्वयं ही उनके उस मूड में बात करना उचित न समझा था। उसके बाद लालाजी ने कमज़ोर जुलाहे और उदमाती जुलाही का एक अश्लील किस्सा सुनाया था और हँसते-हँसते उन्हें उच्छू लग गया।

यद्यपि उस वक्त तो चेतन को बेहद ग़ुस्सा आया था, पर अपने कमरे में ईज़ी चेयर पर नोट-बुक घुटनों पर लिये बैठे-बैठे पहले चेतन के सामने

---

१. अनिच्छापूर्वक।

गेटी थियेटर के विंग में ज़ाफ़रान की वेश-भूषा में अपनी सूरत घूम गयी और फिर मेयो हस्पताल के गलियारे में गोरे-काले नंगे चूतड़ों की पंक्ति में झुके हुए डोगरा साहब की आकृति और वह अनायास मुस्करा उठा और शीर्षक के नीचे लिखने लगा :

'लम्बा कद, बन्द गले का घुटनों तक लम्बा ग्रे कोट और उससे मैच करती पतलून, सिर पर क्रिस्टी टोपी—कपूर साहब के चेहरे पर सदा कामयाब शख़्स का इत्मीनान, ख़ुशी और ख़ुद-एतमादी (आत्मविश्वास) झलकती है। वो हफ़्तावार 'नौजवान' के स्टाफ़ में असिस्टेण्ट ऐडीटर थे कि एक दिन उन्होंने आज़ाद लाला को ऐसा हफ़्तावार निकालने की बात करते सुन लिया, जिसमें 'ट्रू स्टोरी' की तरह के दिलचस्प किस्से हों। आज़ाद लाला तो सोचते ही रह गये, कपूर साहब ने अपने एक साथी लम्भूराम 'दर्द' को साथ मिला कर 'गुरु घण्टाल' शुरू कर दिया—और अख़लाकी कद्रों (नैतिक मूल्यों) की गिरावट के मारे हुए रू-ब-तनज़्ज़ुल (पतनशील) यूरोप की सच्ची कहानियों के साथ उन्होंने अपने अख़बार में धार्मिक भारत के आदर्शों की कुछ ऐसी चटनी पेश की कि पहले अंक की एक कापी भी नहीं बची। तब दूसरे ही इशू से दोनों साझीदारों में झगड़ा हो गया। लम्भूराम ने अलग हो कर 'कुक्कड़ू घूं' निकाला, लेकिन 'दर्द' साहब शायर थे और लालाजी खत्री, सो, 'गुरु घण्टाल' चल रहा है और 'कुक्कड़ू घूं' की एक अंक के बाद ही 'कुक्कड़ू घूं' बोल गयी।

'कपूर साहब को इस बात का फ़ख़्र है कि उनका हफ़्तावार बैलगाड़ी पर लद कर डाकख़ाने जाता है. . .कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि अगर कोई दूसरा अख़बार उनके परचे से बेहतर निकल आया, जिसमें यूरोप वालों की सच्ची कहानियों के बदले हमारी ज़िन्दगी की सच्ची कहानियाँ भी छपने लगीं या रोज़ाना अख़बारों के सण्डे ऐडीशनों के कारण (जो 'गुरु घण्टाल' की नकल में निकलने लगे हैं) परचा ख़रीदने वालों की तादाद घट गयी और किसी दिन परचा

ठप्प हो गया तो उनके चेहरे पर कैसे भाव होंगे ? क्या वो तब भी इसी तरह के फूहड़ और ग़लीज़ किस्से सुनाते हुए छत-फाड़ ठहाके लगा सकेंगे . . .'

०

लाला जीवनलाल कपूर पर नोट लिख कर चेतन क्षण भर को रुका। थोड़ी देर सोचता रहा। फिर उसने शीर्षक दिया :

पण्डित टेकराम 'शाहीं'[1]

और लिखने लगा :

'मँझला ठिगना कद, पतला-छरहरा शरीर, लगभग चौकोर चेहरा, गोरा रंग और बड़े-बड़े कान—पण्डित टेकराम 'शाहीं,' ऐडीटर 'देश' को देख कर लगता है कि पण्डितजी जब बढ़ने लगे तो किसी जिन्न ने उनके सिर पर हाथ रख कर दबाते हुए कहा—'रुक जा!' और वे रुक गये। उनका चेहरा चौकोर हो गया। तब जिन्न ने उनके दोनों कान पकड़ कर बाहर खींच लिये। और अब उनके चेहरे पर कान-ही-कान दिखायी देते हैं।'. . .

इतना लिख कर चेतन रुका—उसके सामने शाहीं पण्डित का ठिगना-सा कद, तीखी नाक, पतले-पतले भिंचे होंटों वाला गोरा चेहरा घूम गया। जब वे लाला जीवनलाल कपूर से मिल कर लाला धर्मचन्द, सम्पादक 'बहार' की ओर जाने की सोच रहे थे तो हस्पताल रोड के तिराहे पर उन्हें आज़ाद लाला अपने प्रेस की ओर जाते हुए मिल गये थे। पण्डित रत्न उनके साथ चन्द कदम बढ़ गये थे और उन्हें प्रेस में छोड़ कर लौटे थे तो उन्होंने कहा था, 'चलो, ज़रा शाहीं साहब की तरफ़ चलें। इस वक्त वे घर ही पर होंगे। आज़ाद लाला से मालूम हुआ कि शायद 'देश' में कोई जगह खाली है। दस-पन्द्रह दिन पहले महाशय वेदव्रत ने उनसे ज़िक्र किया था। भर न गयी हो तो आज़ाद लाला से सिफ़ारिश करायी जा सकती है।'

---

१. उकाब=बाज़

और वे दोनों 'वहार' के दफ़्तर जाने का ख़याल छोड़, पण्डित टेकराम 'शाहीं' से मिलने चल दिये।

चेतन शाहीं साहब को पत्र-व्यवहार के माध्यम से जानता था। जब वह जालन्धर ही में था और उर्दू ग़ज़लें लिखते-लिखते सहसा कहानियाँ लिखने लगा था तो उसकी आरम्भिक कहानियाँ पण्डित शाहीं ने लगातार 'देश' के साप्ताहिक संस्करणों में छाप कर उसे प्रोत्साहन दिया था। 'देश' के हर सण्डे ऐडीशन में पण्डितजी एक राजनीतिक ग़ज़ल, एक धारावाहिक उपन्यास और व्यंग्य-कालम लिखते थे। सत्याग्रह का आन्दोलन मन्द पड़ चुका था, पर साम्प्रदायिक दंगे भारत के शरीर पर नित नये फोड़ों की तरह फूट निकले थे। एक ओर 'तब्लीग़'[1] और 'तंज़ीम'[2] तथा दूसरी ओर 'शुद्धि' और 'संगठन' का ज़ोर-शोर था। 'गुरु घण्टाल' ने एक बड़ी आक्रामक नज़्म 'धर रगड़ा' छापी थी, जिसका बड़ा शोर मचा था और कई मुसलमान पत्र-पत्रिकाओं ने उसका उत्तर दिया था। पण्डित शाहीं अपने समाचार-पत्र के रविवासरीय अंक में डॉ० किचलू और मौलाना ज़फ़र अली ख़ाँ पर अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हमले करते थे, जिसका जवाब मौलाना ज़फ़र अली ख़ाँ दैनिक 'ज़मींदार' में और मौलाना अब्दुल मजीद सालिक दैनिक 'इन्कलाब' में देते थे। कुछ ही वर्ष पहले ख़िलाफ़त आन्दोलन में जब महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह का बिगुल बजाया था तो डॉ० किचलू और ज़फ़र अली ख़ाँ कांग्रेस के साथ थे, पर मोपला काण्ड के बाद सत्याग्रह आन्दोलन के मन्द पड़ते ही 'तंज़ीम' और 'तब्लीग़' का शोर उठा, साम्प्रदायिक दंगों की आग देश

---

१. ख़ुदा का हुक्म दूसरों तक पहुँचाना। २. संगठन—मुसलमान साम्प्रदायिकों के दो आन्दोलन! तब्लीग़ के द्वारा वे ग़ैर-मुस्लिमों को मुसलमान बनाते और तंज़ीम से अपना संगठन करते। इन आन्दोलनों के जवाब में हिन्दुओं ने शुद्धि और संगठन (संघटन) के आन्दोलन चलाये।

में फैल गयी, तब यद्यपि मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली तो कांग्रेस के साथ रहे, पर मौलाना ज़फ़र अली खाँ और डॉ० किचलू उस साम्प्रदायिक आन्दोलन में बह गये। हिन्दू साम्प्रदायिकों ने जवाब में शुद्धि और संगठन के आन्दोलन चलाये और 'देश' तथा 'समाज,' जो आर्य समाज के प्रमुख पत्र थे—उनके साथ हो गये। इनमें भी 'देश' प्रमुख था। स्वामी श्रद्धानन्द जैसे नेता (जो सत्याग्रह आन्दोलन में शामिल थे) शुद्धि आन्दोलन में आगे आ गये। 'गुरु घण्टाल' हो या 'देश' या 'समाज'—ये सब-के-सब पत्र निम्नमध्यवर्गीय हिन्दुओं में, जिनमें अधिकांश दुकानदार और छोटे-छोटे नौकर-पेशा लोग थे—अत्यन्त लोकप्रिय थे। अंग्रेज़ी पढ़ा-लिखा वर्ग 'ट्रिब्यून' पढ़ता था। तब शाहीं साहब की साम्प्रदायिक ग़ज़लें बड़े शौक से पढ़ी जाती थीं और दुकानदार एक-दूसरे को सुना कर उनका रस लेते। चेतन उर्दू में ग़ज़लें लिखता था। उसके उस्ताद जालन्धर के मशहूर उर्दू शायर थे। उसके पिता के मित्रों में कई मुसलमान थे। इसलिए उसे यह साम्प्रदायिकता ग़लत लगती थी। हमीद और हुनर साहब की संगति में वह शाहीं साहब की ग़ज़लों के जवाब में मौलाना ज़फ़र अली खाँ की ग़ज़लें भी पढ़ा करता था। उसकी दिलचस्पी साहित्यिक थी और कई बार शाहीं पण्डित की ग़ज़ल के जवाब में मौलाना ज़फ़र अली खाँ की पूरी-की-पूरी ग़ज़ल उसे याद हो जाती थी। जब डॉक्टर किचलू ने पंजाब में तंज़ीम के आन्दोलन का साथ दिया और ज़फ़र अली खाँ ने तब्लीग़ का तो शाहीं पण्डित ने 'देश' के सण्डे ऐडीशन में एक ग़ज़ल लिखी :

पंजाब की हवा ही सरासर गयी बदल
किचलू नये-नये हैं ज़फ़र खाँ नये-नये।

यद्यपि चेतन को उस ग़ज़ल का तो यही एक शेर याद था, लेकिन मौलाना ज़फ़र अली खाँ की ग़ज़ल के कई शेर उसे याद रह गये थे। न केवल यह, उसने उन्हें अपनी डायरी में नोट भी कर लिया था और कठिन शब्दों के अर्थ उस्ताद से पूछ कर लिख लिये थे :

भारत में खुल गये हैं दबिस्तां[1] नये-नये
जिनसे निकल रहे हैं ज़बां-दां नये-नये
शुद्धी और संगठन हैं मज़ामीं की सुर्खियां
आरायिशे-कलाम[2] हैं उनवां[3] नये-नये
औराक[4] 'देश' के हों और 'शाहीं' का हो कलम
फिर क्यों तराशे जायें न बुहतां[5] नये-नये
इस्लाम अपने कासा-ए-सर[6] की मनाये ख़ैर
बांधे हैं खिश्तो-संग[7] ने पैमां[8] नये-नये
सुबहे-वतन में शामे-ग़रीबां की है नुमूद[9]
लायी है रंग गर्दिशे-दौरां[10] नये-नये
है तुक से तुक मिलाने का जिनको नहीं शऊर
शायर नये-नये हैं ग़ज़लख्वां नये-नये !

हुनर साहब चेतन के उस्ताद भाई थे और 'देश' के विरोधी आर्य समाजी पत्र 'समाज' में काम करते थे। वे कभी-कभी जालन्धर आते और शाहीं साहब का मज़ाक उड़ाया करते । उन दिनों वे आये हुए थे और दोस्तों की मजलिस में दोनों ग़ज़लें पढ़ी गयी थीं। 'अदबी मैयार'[11] से मौलाना की ग़ज़ल भारी पड़ती है।' हुनर साहब ने फ़तवा दिया और चेतन उनसे सहमत था कि मौलाना की ग़ज़ल का यह शेर :

सुबहे-वतन में शामें-ग़रीबां की है नुमूद
लायी है रंग गर्दिशे-दौरां नये-नये

व्यापक सन्दर्भों को छूता है और शुद्धि-संगठन से हट कर अंग्रेज़ों के ज़ुल्म पर और टोडियों के हमलों पर भी लागू होता है।

मौलाना ज़फ़र अली खां ऊंचे दर्जे के शायर थे। राजनीतिक ग़ज़लों

---

१. स्कूल। २. लेखनी का अलंकार। ३. शीर्षक। ४. पृष्ठ। ५. अभियोग। ६. सिर के प्याले की। ७. ईंट-पत्थर। ८. प्रतिज्ञाएं। ९. आविर्भाव, उगना। १०. ज़माने का चक्कर। ११. स्तर।

में भी वे बड़ी अनोखी और नादिर ज़मीनें[1] निकालते थे। उसी ज़माने की एक ग़ज़ल के चार शेर भी चेतन को याद रह गये थे। पण्डित शाहीं ने एक ग़ज़ल में मौलाना के रंग बदलने पर हमला किया था और उन्होंने 'ज़मींदार' में अपनी सफ़ाई दी थी :

यक रंग है सफ़ीना[2]-ए-इस्लाम का सवार
होंगे वो और जिनके हैं दो किश्तियों में पाँव
मैं वो नहीं कि मुँह हो सफ़ेद और दिल सियाह
हो और ही किसी को मुबारक ये धूप-छाँव
मैं शेर हूँ जो गूँज रहा हूँ कछार में
बिल्ली नहीं जो घर ही में करती है म्याँव-म्याँव
कहती है यह पुलिस कि निकल जाओ शहर से
अब जा के हम बसायेंगे जंगल में कोई गाँव !

प्रकट ही पण्डित टेकराम का नाम लिये बग़ैर मौलाना ने उन पर ज़बरदस्त चोट की थी।. . .लेकिन चेतन की कहानियाँ दैनिक 'देश' के सण्डे ऐडीशनों में छपती थीं और जब कभी शाहीं साहब की कलम से कोई अच्छा शेर निकलता था तो वह पत्र में उसकी दाद भी देता था और उसके मन में उनसे मिलने की भी उत्कट इच्छा थी।. . .लेकिन वह लाहौर पहुँचा पण्डित रामलुभाया 'फ़िदा' के संग, जो सनातन धर्मी अखबार निकालते थे और लाहौर में उन दिनों जहाँ एक तरफ़ हिन्दू और मुसलमान अखबारों में चपकलश[3] रहती थी, वहाँ दूसरी ओर आर्य समाज के दोनों मुख-पत्रों और सनातन धर्म के मुख-पत्र 'भीष्म' में झौं-झौं रहती। अपने दैनिक 'भीष्म' में फ़िदा साहब, जो उर्दू के बहुत अच्छे शायर थे, 'खास शायर के कलम से' धार्मिक और राजनीतिक नज़्में लिखते। फ़िदा साहब शाहीं पण्डित को मौलाना ज़फ़र अली खाँ ही की तरह शायर नहीं, तुक्कड़ मानते थे। और चेतन उनसे मिलने

---

१. अनोखी और नयी तुकें। २. किश्ती। ३. ले-दे, नोक-झोंक।

की इच्छा मन-ही-मन दबाये रह गया था। लेकिन 'भीष्म' को छोड़ कर वह 'बन्दे मातरम' में चला गया, और वहाँ उसे पण्डित रत्न और मलिक यूसुफ़ की संगति मिली और शाहीं साहब की साहित्यिक विद्वत्ता के बारे में उसका रहा-सहा भरम भी टूट गया और उनके शेरों की त्रुटियाँ उस पर पूरी तरह उजागर हो गयीं।. . .चूँकि पण्डित रत्न प्रेस इन्फ़ॉरमेशन ब्यूरो में काम करते थे इसलिए हर अख़बार पढ़ते। मलिक यूसुफ़ 'नमकदाँ' लिखते और उस कारण सभी अख़बारों के व्यंग्य-कालम पढ़ते। उन दिनों, जब वह मलिक यूसूफ़ के साथ दिन को काम करता था, एक शाम जब पण्डित रत्न आ कर बैठे तो मलिक साहब ने 'इन्कलाब' के व्यंग्य-कालम, 'अफ़कारो-हवादिस'[1] में पण्डित टेकराम 'शाहीं' के जवाब में लिखा सालिक साहब का एक नोट सुनाया और दोनों इतना हँसे कि पण्डित रत्न की आँखों में आँसू निकल आये, एक ही दिन पहले' पण्डित शाहीं ने 'देश' में एक ग़ज़ल लिखी थी, जिसमें 'करने' 'मरने' काफ़ियों[2] के साथ 'लग पड़े' रदीफ़[3] रखी थी। चेतन को उसका मकता[4] ही उस वक्त याद था :

'शाहीं' के ज़ोरे-कलम ने ज़ोर वो बांधा है अब।
वाह-वा का शोर दुश्मन भी तो करने लग पड़े।

सालिक साहब ने इस 'लग पड़े' पर आपत्ति करते हुए पण्डित शाहीं की उर्दू-दानी का मज़ाक उड़ाया था और लिखा था, 'पण्डित ढेकराम 'साही' ने (सालिक साहब टेकराम को सदा पंजाबी गाली 'ढेका' की निस्बत से ढेकराम और 'शाहीं' को साही लिखते थे) अपनी ग़ज़ल में रदीफ़ 'लग पड़े' रखी है। यह 'लग पड़े' किस ज़बान का मुहावरा है?' और उनकी ज़बान-दानी और शायरी का मज़ाक उड़ाते हुए लिखा था कि शायरी पण्डितजी के बस का रोग नहीं। अपने नोट का अन्त

---

१. चिन्ताएँ-दुर्घटनाएँ, रचनाएँ-आलोचनाएँ। २. तुकों। ३. ग़ज़ल में तुक के बाद आने वाला अन्तिम शब्द। ४. ग़ज़ल का अन्तिम शेर।

सालिक साहब ने जिस वाक्य से किया था, वह अपनी फूहड़ अश्लीलता के बावजूद ऐसा सटीक था कि उसी को पढ़ कर पण्डित रत्न और मलिक यूसुफ़ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये थे। सालिक साहब ने नोट के अन्त में लिखा था :

'. . .हाँ अगर पण्डितजी 'पड़ने' का वादा करें
तो हम 'लगने' का वादा करते हैं।'

और इस वाक्य से 'लगने' और 'पड़ने' के अर्थ उन्होंने शाहीं पण्डित पर प्रकट कर दिये थे।

०

शाहीं साहब के घर को जाते हुए एक के बाद एक ग़ज़ल, शेर, घटना, किस्सा चेतन के सामने आता रहा। वह शौक, जो उन्हें कहानियाँ भेजते हुए, उनसे मिलने के सिलसिले में चेतन के मन में था, पण्डित रत्न और मलिक यूसुफ़ की संगति में एकदम खत्म हो गया था। उनकी कहानियों, धारावाहिक उपन्यासों और ग़ज़लों की बेशुमार त्रुटियाँ उस पर प्रकट हो गयी थीं। फिर पत्रकारों की एक-दो मजलिसों में उसने पण्डित शाहीं को देखा भी था। वे सदा अपने में सिकुड़े-सिमटे दिखायी दिये थे। न वे दूसरे पत्रकारों की तरह हँसी-ठहाके लगाते थे, न मज़ाक करते थे। बड़ी मुश्किल से उनके पतले-पतले होंटों पर तीखी-सी मुस्कान खेलती थी। चेतन को लगा कि वे प्रबल हीन-भाव से ग्रसित हैं—वे एक चतुर पत्रकार थे और घटिया कवि और उससे भी घटिया कथाकार।. . . उनके साथ काम करने के खयाल ही से चेतन को बड़ी घबराहट हुई थी, लेकिन पण्डित रत्न, जो उसे कहीं-न-कहीं अच्छी जगह दिलाने के लिए इतने परेशान थे, उसे डाँट न दें, इसलिए वह चुप रहा।

पण्डितजी उसे बहुत मानते थे, पर ज़रा-सी बात पर डाँट भी देते थे। चेतन ने बस इतना किया कि 'देश' की उस जगह के लिए किसी तरह का उत्साह प्रकट नहीं किया, पण्डित शाहीं, महाशय वेदव्रत, आज़ाद लाला अथवा उस रिक्त स्थान के बारे में कोई प्रश्न नहीं किया और

चुपचाप पण्डित रत्न के साथ चलता गया। पण्डितजी शायद उसके मन की बात भाँप गये, इसलिए वे सहसा पण्डित शाहीं की प्रशंसा करने लगे। उनके आरम्भिक संघर्ष का उल्लेख कर, 'देश' को उसकी वर्तमान प्रतिष्ठा तक पहुँचाने में उन्होंने कितना श्रम किया था और किस विरोध का सामना किया था, पण्डित रत्न ने सविस्तार उस दिन चेतन को बताया। पण्डितजी की बातें सुनते-सुनते शाहीं साहब का एक दूसरा ही रूप चेतन के सम्मुख खुलता चला गया।

०

शाहीं पण्डित रावलपिण्डी के निवासी थे। वे 'अफ़ग़ान युद्ध' में सेना के एक विभाग में काम करते थे, लेकिन साथ ही 'प्रकाश,' 'आर्य गज़ट,' 'सनातन धर्म प्रचारक' और 'नौजवान' आदि, लाहौर के प्रमुख साप्ताहिकों में धार्मिक नज़्में और कहानियाँ भी लिखते थे। १९१९ में जब कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में हुआ तो पंजाब की राजधानी लाहौर में केवल दो अख़बार निकला करते थे—'हिमालय' (साप्ताहिक) और 'पैसा अखबार' (दैनिक)। दोनों सरकार-परस्त थे। रौलेट ऐक्ट के विरोध में जब कांग्रेस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा; जलियान वाला बाग़ हत्याकाण्ड हुआ; लाहौर, गुजरात, और कसूर में गोलियाँ चलीं और प्रबल दमन-चक्र चला और उसके फलस्वरूप सारे देश में राजनीतिक चेतना दौड़ गयी, तभी शाहीं पण्डित भी नौकरी छोड़ कर पत्रकार हो गये। दमन रुकते और सरकार के जाँच-कमेटियाँ नियुक्त करते ही लाहौर में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आ गयी। प्रसिद्ध पत्रकार और देशभक्त चौधरी बाँकेदयाल ने झंग से 'झंग सियाल' निकाला और उनकी कविता :

पगड़ी सम्हाल ओ जट्टा
पगड़ी सम्हाल ओये
लुट्ट लेया माल तेरा
लुट्ट लेया माल ओये

पंजाब के बच्चे-बच्चे की ज़बान पर चढ़ गयी। तभी मौलाना ज़फ़र

अली खाँ ने अपने जन्मस्थान करमाबाद से साम्प्रदायिक साप्ताहिक 'सितारा-ए-सुबह' निकाला, जिस पर सूत्र-वाक्य लिखा रहता था :

इस्लाम जिन्दा रहता है हर करबला के बाद

फिर उन्होंने करमाबाद से ही साप्ताहिक 'ज़मींदार' निकाला, जो बाद में लाहौर आ गया और राजनीतिक दैनिक बन गया। लाला दीनानाथ, जो तब तक 'हिमालय' निकालते थे, 'आज़ाद' उपनाम रख कर 'नौ-जवान' निकालने लगे, कुछ समय तक जिसका बड़ा ज़ोर रहा।

पण्डित टेकराम ने भी उन्हीं दिनों रावलपिण्डी में साप्ताहिक 'शान्ति' को ले कर उसे दैनिक बनाया और न केवल उसे चलाया, बल्कि चम-काया। इधर लाहौर में गुरुकुल आर्य समाज के अनुवर्तियों के लिए महा-शय वेदव्रत ने 'आर्य प्रकाश' के साथ-साथ 'देश' निकाला। वे लाला दीनानाथ 'आज़ाद' के साप्ताहिक 'नौजवान' में काम कर चुके थे और उनसे पत्रकारिता की शिक्षा ले चुके थे। वे बी० ए० तक पढ़े हुए थे, इसलिए दूसरे पत्रकारों की अपेक्षा विद्वान थे। एक ही वर्ष बाद आर्य समाज के दूसरे सेक्शन की ओर से भी महात्मा हंसराज के प्रयास से 'समाज' निकल आया और लाहौर में पत्रकारों का खासा जमावड़ा हो गया। महाशय वेदव्रत अपना धार्मिक साप्ताहिक 'प्रकाश' भी अपने एक आर्य समाजी मित्र लाला निश्चिन्तराम की सहायता से चलाते थे और उन्हीं की सहायता से उन्होंने 'देश' जारी किया। धार्मिक साप्ताहिक तो वे स्वयं सम्पादित कर लेते थे, परन्तु राजनीतिक दैनिक बिना अनु-भवी सम्पादक का सहयोग लिये, चलाना कठिन था। तब उन्होंने आज़ाद लाला से कहा कि वे सम्पादक के लिए कोई परिश्रमी युवक दिलायें। आज़ाद लाला भी पिण्डी के रहने वाले थे। 'शाहीं' की पहली रचनाएँ छाप चुके थे। उन्होंने शाहीं पण्डित को सानुरोध बुला लिया और 'देश' का सम्पादक बनवा दिया। शाहीं पण्डित के आते ही 'देश' दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करने लगा।

'उस ज़माने में,' पण्डित रत्न ने अपनी रौ में कहा, 'डेली अख़बार

आज के आधे होते थे। सिर्फ़ एसोसियेटेड प्रेस एक ख़बर-रसाँ एजेंसी[1] थी। उर्दू अख़बार शाम को निकला करते थे। रात को जो ख़बरें आतीं, उन्हें 'कल की बची हुई ख़बरें' की सुर्ख़ी के नीचे छापा जाता।... शाहीं पण्डित में हज़ार ख़ामियाँ हों, पर आदमी वह धुन का पक्का है। एक शाम वह अख़बार की अन्तिम कापी के प्रूफ़ पास करके प्रेस को भेज चुका था और दफ़्तर बन्द करके जाने की सोच रहा था कि 'एसोसिएटेड प्रेस' के तार में उसे स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या का समाचार मिला। 'शाहीं' को यह समाचार दूसरे दिन, कल की बची हुई ख़बरों में छापना गुनाह के बराबर लगा। वहीं खड़े-खड़े उसने तय किया कि 'देश' का 'मॉर्निंग ऐडीशन' निकलेगा।'...और पण्डित रत्न ने चेतन को बताया कि महाशय वेदव्रत लाहौर से बाहर गये हुए थे और यह फ़ैसला बड़ा महत्वपूर्ण फ़ैसला था, पर उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी पर कातिबों को रोक लिया; उन्हें वहीं खाना खिलाने का प्रबन्ध किया; लिथो प्रेस को जा कर तैयार किया कि वे रात को संस्करण छापें; उस्ताद फ़ीरोज़ की मिन्नत की, जो पत्थर पर कापी लग जाने के बाद ग़लतियाँ दुरुस्त करते थे और जितनी ख़बरें रात को बारह बजे तक आयीं—सब का अनुवाद करके स्पेशल मॉर्निंग ऐडीशन तैयार किया। दो-ढाई बजे तक प्रेस में संस्करण छपता रहा। एजेण्टों को कह दिया गया था कि एक संस्करण सुबह छपेगा। सो अभी लोगों ने आँखें भी न खोली थीं कि अख़बार बेचने वाले, 'देश का मॉर्निंग ऐडीशन'—'स्वामी श्रद्धानन्द का बुज़दिलाना क़त्ल' का शोर मचाते हुए सारे शहर में फैल गये। ...उर्दू अख़बारों की दुनिया में तहलका मच गया। शाहीं पण्डित ने दूसरे दिन सुबह ही, अख़बार का मॉर्निंग ऐडीशन स्पेशल मैसेंजर द्वारा महाशय वेदव्रत को भेजा। वे बड़े प्रसन्न हुए। आ कर उन्होंने लाला निश्चिन्त राम और उनकी पत्नी से सलाह की। उन्होंने रुपये की

---

१. समाचार भेजने वाली एजेंसी।

व्यवस्था कर दी। अख़बार को शाम की बजाय सुबह निकालने का फ़ैसला किया गया। पहले दफ़्तर सुबह दस से ले कर छै बजे तक लगता था। अब दिन को साढ़े बारह से साढ़े चार बजे और रात को नौ से साढ़े बारह बजे तक खुलने लगा और 'देश' अंग्रेज़ी अख़बारों की तरह सुबह-सुबह निकलने लगा। दूसरे अख़बार वालों को बहुत बुरा लगा। एक प्रतिद्वन्द्वी ने अपने ख़ास शायर की कलम से 'वफ़ादार कुत्ता' नाम की एक ग़ज़ल भी छापी, जिसका मतला था :

है मालिक का बेहद वफ़ादार कुत्ता
यह रहता है रातों को बेदार[1] कुत्ता

और उसमें शाहीं पण्डित पर दबी-छिपी चोटें कीं। लेकिन शाहीं साहब बदस्तूर डटे रहे। नियमित रूप से हर सुबह अख़बार निकालते रहे। झख मार कर सभी अख़बारों को अपने समाचार-पत्र सुबह-सवेरे निकालने पड़े।

'यही नहीं,' अमृतधारा बिल्डिंग के सामने से शाहीं साहब की गली की ओर मुड़ते हुए पण्डित रत्न ने कहा, 'गुरु घण्टाल' की हर दिल अज़ीज़ी[2] से प्रभावित हो कर शाहीं साहब ने सब से पहले 'देश' का सण्डे ऐडीशन निकालना शुरू कर दिया। उससे पहले इतवार को सभी अख़बारों के दफ़्तरों में एक दिन छुट्टी रहती थी। पत्रकारों ने बड़ी मुख़ालिफ़त[3] की पर फिर पहले की तरह सब ने हफ़्तावार ऐडीशन छापने शुरू किये। 'समाज' और 'बन्दे मातरम' ने सोम के दिन मण्डे ऐडीशन; और मुसलमान अख़बारों ने 'जुमा' और 'जुमारात' को स्पेशल ऐडीशन निकालने शुरू कर दिये!'

पण्डित टेकराम 'शाहीं' का घर आ गया था। पण्डित रत्न ने बढ़ कर दस्तक दी।

०

---

१. जागृत। २. लोकप्रियता। ३. विरोध।

दरवाज़ा शाहीं पण्डित ने स्वयं खोला। वे केवल कमीज़ और पायजामे में थे। उनके ऊपर के होंट पर मक्खी-जैसी मूँछें थीं। पण्डितजी को देख कर बड़ी दबी-सी मुस्कान उन मूँछों में फैल गयी और उन्होंने उन लोगों से पलँग पर बैठने के लिए कहा।

छोटा-सा कमरा था, जो स्टडी भी था, बैठक भी और सोने का कमरा भी। खिड़की के साथ छोटी-सी मेज़-कुर्सी लगी थी। खिड़की बन्द थी। मेज़ और खिड़की काग़ज़ों, मसौदों और अख़बारों के तराशों से भरे लिफ़ाफ़ों से अटी पड़ी थीं। दूसरी दीवार के साथ पलँग लगा था, जिस पर खादी का पलँगपोश बिछा था। कमरे में कोई कलाकृति नहीं थी, कलाकृति लगाने के लिए जगह भी नहीं थी। क्योंकि दीवारों में छोटे-छोटे रैक फ़िट थे, जिनमें दो तो किताबों से भरे थे और तीसरे में कुछ घरेलू सामान था।

'मैं तो परवाज़े शाहीं[1] लिख रहा था।' बड़ी महीन-सी मुस्कान से शाहीं पण्डित ने कहा।

'मैं जानता था कि आप बिज़ी होंगे,' पण्डित रत्न बोले, 'लेकिन इधर से जा रहा था, सोचा, नियाज़[2] हासिल करते जायँ। अगर कालम लिख लिया हो तो सुनाइए!'

'पूरा तो नहीं लिखा, पर जितना लिखा है, सुन लीजिए।' शाहीं पण्डित ने कहा और बड़ी मीठी-सी, संकोच-भरी मुस्कान उनके होंटों पर खेल गयी।

'परवाज़े-शाहीं' याने बाज़ की उड़ान, दैनिक 'देश' के व्यंग्य-कालम का शीर्षक था, जो पण्डित शाहीं हर रोज़ लिखते थे। हालाँकि चेतन को कालम ख़ासा फीका लगा, पर पण्डित रत्न ने (कि वे दुनियादारी जानते थे) उसकी बड़ी प्रशंसा की। शाहीं बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पण्डितजी को कोई नयी कहानी 'देश' के लिए देने का अनुरोध किया।

---

१. बाज़ की उड़ान। २. दर्शन।

पण्डित रत्न ने कहा कि वे बहुत अच्छी कहानी देंगे और शाहीं साहब से छुट्टी ले कर उठे। शाहीं उन्हें दरवाज़े तक छोड़ने आये। वहीं पण्डित रत्न ने सरसरी तौर पर पूछा कि क्या 'देश' में कोई जगह खाली हुई है ?

'एक ट्रांसलेटर की जगह खाली है ! क्या किसी को रखाना है ?'

तब पण्डितजी ने बताया कि चेतन ने अपने अखबार की नौकरी छोड़ दी है और वे सोचते हैं कि उनके साथ काम करने में उसे खुशी भी होगी और वह सीख भी सकेगा।

शाहीं पण्डित ने कहा कि उनकी तरफ़ से कोई आपत्ति नहीं, वे ज़रा वेदव्रत जी अथवा उनके बड़े सुपुत्र से मिल लें।

पण्डित रत्न ने पूछा कि आज़ाद लाला से कहलवा दें तो कैसा रहे ? महाशय वेदव्रत तो उनका कहना मोड़ते नहीं।

'इससे अच्छा क्या होगा।' शाहीं की मक्खी-ऐसी मूँछों के नीचे वही संकोच और कृपणता-भरी मुस्कान खेल गयी।

और वे उन्हें 'आदाब अर्ज़' कह कर चले आये।

०

चेतन यही सब सोचते-सोचते उठ कर कमरे में घूमने लगा था। सहसा वह फिर आ कर कुर्सी पर बैठ गया। उसने अपने लिखे नोट को फिर पढ़ा और नीचे इतना और लिखा :

'खादी के कुर्ते-पायजामे, लम्बे कोट और गान्धी टोपी में अपने ठिगने-से कद के साथ पण्डित शाहीं, बाज़ के बदले बिज्जू-ऐसे लगते हैं। उनका तखल्लुस[1] उन पर ठीक नहीं बैठता। लेकिन उनकी आँखों में बाज़ जैसी चमक है और उनकी ज़िन्दगी को देखता हूँ तो लगता है कि उनमें झपट्टा मारने की शक्ति भी है और अपने शिकार को पंजे में दबाये रखने की ताकत भी।

---

१. उपनाम।

'उन्होंने 'देश' के लिए जो कुछ किया है, उसे जान कर उनके रहने की जगह को देखते हुए, उन पर दया हो आयी। किया तो सब कुछ उन्हीं ने है, पर महाशय वेदव्रत की बिल्डिंग बन रही है और पण्डित शाहीं के लिए रहने का ठीक-ठिकाना नहीं। कोई दिन ऐसा भी आ सकता है, जब महाशय वेदव्रत को उनकी ज़रूरत न रहे और वो उन्हें दूध की मक्खी की तरह निकाल कर अलग कर दें और शाहीं पण्डित फिर किसी दूसरी जगह इतनी ही जद्दो-जेहद[1] करने को मजबूर हों!

'पण्डित शाहीं की शख्सियत, उनकी कहानियों और नज़्मों को देख कर मुझे मौलाना ज़फ़र अली खाँ की ग़ज़ल का मिसरा याद आ जाता है :

बिल्ली नहीं जो घर ही में करती है म्याँव-म्याँव।

'उनकी तंज़िया[2] ग़ज़लें बिल्ली की म्याँव-म्याँव से ज़्यादा हकीकत नहीं रखतीं। उनकी तहरीरों[3] और शायरी में कुछ अजीब-सी लिजलिजी चिपचिपाहट महसूस होती है। उनके तंज़ में दाल-भात की बू आती है। गोश्त खाने और शराब पीने वालों और शराब की तारीफ़ में दीवान-के-दीवान सियाह कर देने वालों का मुकाबला दाल-भात वाली शायरी से नहीं हो सकता—मक्खन-मिश्री, पिस्ते-बादाम वाली शायरी से भले ही हो। पठानों के नज़दीक रह कर भी वे आखिर ग़रीब ब्राह्मण ही हैं. . .शुक्र है लाला दीनानाथ 'आज़ाद' नाराज़ हो गये और मैं उस बिज्जू के साथ काम करने से बच गया।'

आज़ाद लाला

'आज़ाद लाला सूट-बूट में लैस, चाक-चौबन्द कुर्सी पर बैठते हैं। उम्र उनकी साठ को पार कर गयी है। उनकी आँखों के पपोटों

---

१. संघर्ष। २. व्यंग्य-भरी। ३. लेखन।

पर दोहरे ग़िलाफ़ चढ़ गये हैं और नीचे थिगलियाँ लटक आयी हैं। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें और घनी भवें एकदम सफ़ेद हो गयी हैं। नीली टूटल टाई, वास्केट वाले बढ़िया ग्रे सूट और बड़ी-सी शमलेदार पगड़ी में सजे अपने दफ़्तर में बैठे, वो किसी प्रेस या अख़बार के मालिक नहीं, किसी स्कूल के हेड मास्टर लगते हैं। आज़ाद लाला कभी जरूर हेड मास्टर रहे हैं। जब उन्होंने तनख्वाह के बारे में मेरे झूठ बोलने पर मुझे डाँटा तो उनकी डाँट में किसी स्कूल के हेड मास्टर का-सा लहजा था. . .लेकिन सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि उन्होंने मेरे झूठ का महज़ बहाना बनाया और इसीलिए उनके लहजे में तल्खी और तुन्दी आ गयी. . .बहरहाल, लालाजी महाशय वेदव्रत से मेरी सिफ़ारिश करने से बच गये और मैं शाहीं पण्डित की घुटन और एहसासे-कमतरी[1] से भरी सोहबत में दोनों वक्त काम करने से. . .इस दुनिया में कैसे-कैसे फ्रॉड हैं। अजीब बात यह है कि वही लोगों में इज़्ज़त पाते हैं।'

०

नोट-बुक में लिखते-लिखते चेतन सहसा रुक गया। अपने अपमान की वह सारी-की-सारी घटना उसके सामने आ गयी।

०

जब पण्डित रत्न को शाहीं साहब से मालूम हो गया था कि 'देश' में एक ट्रांसलेटर की जगह ख़ाली है तो दूसरे ही दिन पण्डितजी आज़ाद लाला से कह आये थे कि वे चेतन के लिए महाशय वेदव्रत से बात कर लें। उन्होंने दो दिन बाद आने को कहा था, सो तीसरे दिन पण्डितजी चेतन को ले कर उनके यहाँ पहुँचे।

आज़ाद लाला का पूरा नाम देशभक्त लाला दीनानाथ 'आज़ाद' था। पहले न वे 'आज़ाद' थे, न 'देशभक्त'। वे 'हिमालय' नाम का सर-

---

१. हीनभाव।

कारपरस्त साप्ताहिक निकालते थे। फिर १९२१ के आन्दोलन में जब उसकी ग्राहक संख्या एकदम घट गयी तो वे कांग्रेस के समर्थक हो गये। अपना उपनाम उन्होंने 'आज़ाद' रख लिया और 'हिमालय' को बन्द कर के 'नौजवान' निकाला। महाशय वेदव्रत ही नहीं, पंजाब के अधिकांश प्रसिद्ध पत्रकार 'नौजवान' के पन्नों में ही छप कर आगे बढ़े। कुछ ही वर्ष बाद जब कांग्रेस की तहरीक[1] मन्द हुई और साम्प्रदायिक आन्दोलनों का ज़ोर बढ़ा तो आज़ाद लाला ने 'नौजवान' को बन्द कर दिया और हफ़्तावार 'केसरी' निकाला। बीच में कुछ वर्ष उन्होंने पट्टी का कोट-पतलून ज़रूर पहना था, पर वह उनसे चला नहीं। 'गुरु घण्टाल' के आगमन से पहले उनका पत्र खूब चलता था। अब वे उम्र में भी बढ़ गये थे। प्रेस और पत्र का काम उनका लड़का सँभालता था। वे कुछ वक्त के लिए ही आते थे।

हस्पताल रोड पर प्रेस के अहाते से लगी दो-मंजिली इमारत के निचले बरामदे में बायीं ओर को ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ती थीं। पण्डित रत्न के पीछे-पीछे चेतन उन्हीं से ऊपर जँगलेदार बरामदे में पहुँचा था। वहाँ सीढ़ियों से ज़रा आगे, बायीं ओर का दरवाज़ा आज़ाद लाला के दफ़्तर को जाता था। वह पण्डित रत्न के पीछे उसमें दाखिल हुआ तो उसने देखा कि एक छोटा-सा आयताकार कमरा है। दायीं ओर की दीवार में अँगीठी बनी है, जिसके नीचे मेज़-कुर्सी लगी है। अँगीठी और मेज़ पर एक ही रंग का, घर ही में किसी स्त्री के हाथों का कढ़ा मेज़पोश और अँगीठी-कवर है। कमरे में दरी बिछी है। मेज़ के पीछे आज़ाद लाला बैठे हैं—सूट-बूट पहने, वही बड़ी-सी पगड़ी बाँधे और मोटा चश्मा लगाये।

उनके सामने की कुर्सियों में से एक पर पण्डितजी जा बैठे। चेतन

---

१. आन्दोलन।

से किसी ने कुर्सी पर बैठने के लिए नहीं कहा, इसलिए वह पण्डितजी के पीछे खड़ा रहा।

तब आज़ाद लाला ने सहसा चेतन से पूछा, 'तुम्हें बन्दे मातरम में क्या मिलता था ?'

'पचास रुपये !' चेतन ने उत्तर दिया।

'लेकिन मेरी इन्फ़र्मेशन है कि तुम्हें वहाँ महज़ चालीस रुपये मिलते थे।' आज़ाद लाला के स्वर में तल्ख़ी थी, 'पण्डित रत्न ने जैसा कहा, मैंने तुम्हारे लिए पचास रुपये ही की बात की थी, लेकिन जब मैंने शाहीं साहब से पूछा तो उन्होंने कहा कि चेतन को वहाँ सिर्फ़ चालीस मिलते थे।'

'मुझे चालीस मिलते थे, पर साल बाद उन्होंने दस रुपये तरक्की देने की बात कही थी। आप महाशय धनपतरायजी से पूछ लीजिएगा।'

(प्रकट ही चेतन ने झूठ बोला था—लेकिन उस प्रक्रिया में उसका चेहरा उतर गया।)

'तुम झूठ बोलते हो !' आज़ाद लाला ने अपनी तर्जनी उसकी ओर बढ़ा दी, जैसे उसने कोई भारी गुनाह किया हो।

'जी अगर मुझे चालीस ही लेने होते तो मैं वहीं न काम करता !'

आज़ाद लाला का चेहरा विकृत हो गया और उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें काँपने लगीं।

'तुम्हें 'देश' में पचास रुपये ही मिलते, पर मेरे सवाल के जवाब में तुम्हें कहना चाहिए था कि तुम्हें मिलते तो चालीस हैं, पर तुम पचास चाहते हो। जो आदमी इस ज़रा-सी बात पर झूठ बोल सकता है, मैं उसकी सिफ़ारिश महाशय वेदव्रत से नहीं कर सकता।'

चेतन अपनी जगह स्तम्भित खड़ा रह गया। उसकी ज़बान गुंग हो गयी। कोई भी उत्तर उससे न बन पड़ा। एक भयानक सन्नाटा कमरे में छा गया। जब पण्डित रत्न कुछ क्षण बाद उठे तो चेतन ने चाहा था कि उसके पाँव नीचे की छत फट जाय और वह उस में समा जाय !. . .

०

'जो आदमी ज़रा-सी बात पर झूठ बोल सकता है, मैं उसकी सिफ़ारिश महाशय वेदव्रत से नहीं कर सकता।'—चेतन के कानों में आज़ाद लाला के वे शब्द गूँज गये।—साले सच्चाई और पारसाई के'! चेतन मन-ही-मन खौल उठा। उसका दम अपने कमरे में घुटने लगा। उसने बैठक का दरवाज़ा लगाया और बाहर निकल गया।—शाम धीरे-धीरे, उसके अन-जाने, शहर पर उतर आयी थी, लेकिन बत्तियाँ जलने में अभी बहुत देर थी। कई दिन की सख्त उमस के बाद आसमान पर बादल घिर गये थे और हवा का कोई आवारा झोंका ख़ाक उड़ाता हुआ गुज़र जाता था। चेतन जैसे यन्त्र-चालित-सा उस उड़ती धूल के पीछे कृष्णा गली पार कर के रेलवे रोड पर आ गया। गली के मुहाने पर वह क्षण भर अस-मंजस में खड़ा रहा कि किस तरफ़ जाय। फिर दायें हाथ को मुड़ कर मेयो हस्पताल के आगे से होते हुए वह निस्बत रोड की तरफ़ मुड़ गया, क्योंकि न केवल वह सड़क पक्की थी, वरन चौड़ी भी थी। रेलवे रोड के मुकाबले में उस पर बहुत कम भीड़ होती थी। भीड़ हो तो भी आदमी अपने में अकेला उस पर घूम सकता था।

चेतन फ़ुटपाथ पर चला जा रहा था—इर्द-गिर्द के वातावरण से एकदम अनभिज्ञ!. . .पण्डित रत्न ने उससे एक शब्द भी न कहा था और जैसे उस घटना को भुलाने के लिए वे 'कोलियर्ज़ वीकली' में छपी एक दिलचस्प कहानी सुनाने लगे थे। लेकिन वे क्या सुनाते रहे, चेतन ने नहीं जाना। उसने कुछ नहीं सुना। उसके सामने निरन्तर उसकी ओर तनी हुई आज़ाद लाला की तर्जनी आती रही और उसके कानों में उनके शब्द गूँजते रहे कि ऐसे झूठे आदमी की सिफ़ारिश वे महाशय वेदव्रत से नहीं कर सकते। पण्डितजी को घर छोड़ कर जब वह वापस आया तो तमाम रात उसे नींद न आयी थी।. . .उसे अपने आप पर ग़ुस्सा आता रहा था कि उसने क्यों झूठ बोला! आज़ाद लाला पर क्रोध आता रहा था कि उस ज़रा-से झूठ पर उन्होंने उसे पण्डित रत्न के

सामने क्यों डाँटा ? वह पण्डित रत्न पर झुँझलाता रहा था कि उन्होंने आज़ाद लाला और उनकी आदत और ख़सलत[1] के बारे में उसे विस्तार से क्यों नहीं बताया ?. . .

वहीं निस्बत रोड के फ़ुटपाथ पर मन-ही-मन उबलते-खौलते हुए चेतन की आँखों के सामने वह घटना आ गयी, जो पण्डित रत्न ने शाहीं साहब से किसी कमज़ोर क्षण में सुनी थी और उन्होंने चेतन को सुनायी थी :

महाशय वेदव्रत और लाला निश्चिन्तराम दोनों आर्य समाजी युवक थे। महाशय वेदव्रत छोटा-सा धार्मिक साप्ताहिक निकालते थे और लाला निश्चिन्तराम डिब्बी बाज़ार में किनारी बेचते थे। दोनों साथ-साथ पढ़े थे और दोनों बड़े गहरे मित्र थे। महाशय वेदव्रत, पतले-छरहरे, श्याम वर्ण के निहायत तेज़ पत्रकार थे और लाला निश्चिन्तराम गोल-मटोल, गोरे-चिट्टे, चुटियाधारी, सीधे-सादे धर्मपरायण आर्य समाजी थे। १९१९ के बाद, जब पंजाब में पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ आयी और उन्होंने देखा कि आर्य समाज के जिस सेक्शन के वे नेता थे, उसका काम एक साधारण साप्ताहिक से नहीं निकलता और उसे एक दैनिक मुखपत्र की आवश्यकता है तो लाला निश्चिन्तराम ने पूँजी का प्रबन्ध किया और वेदव्रत ने श्रम और मेधा का और दो-वरका[2] 'देश' निकल आया। शुरू-शुरू में दफ़्तर लाला निश्चिन्तराम के निवास-स्थान के एक बाहरी हिस्से में रखा गया।

लाला निश्चिन्तराम की पत्नी बड़ी सुन्दर थीं और महाशय वेदव्रत में श्याम वर्ण के बावजूद कुछ वैसा आकर्षण था, जिसने राधा को पर-कीया बना दिया होगा। शाहीं पण्डित का तो यह भी कथन था कि दोनों मित्रों के सहयोगी प्रयास से जो पत्र निकला, उसके पीछे श्रीमती निश्चिन्तराम की ही प्रेरणा थी। लालाजी तो दुकान पर चले जाते और जगह की तंगी के कारण अग्रलेख तथा सम्पादकीय टिप्पणियाँ

---

१. स्वभाव = प्रकृति। २. चार पृष्ठों का।

लिखने के लिए महाशयजी उनकी बैठक में चले जाते। दफ़्तर और बैठक के बीच छोटा-सा बरामदा था। एक दिन कोई ज़रूरी बात पूछने के लिए शाहीं पण्डित सहज भाव से अन्दर गये। दरवाज़ा खोला तो उल्टे पाँव वापस फिर आये—सामने तख्त पर राइटिंग पैड-वैड एक ओर रखे महाशय वेदव्रत और श्रीमती निश्चिन्तराम एक-दूसरे के आलिंगन में बद्ध दीन-दुनिया से बेखबर थे. . .खटका होते ही महाशयजी दूसरे कमरे में भाग गये, लेकिन दूसरे ही क्षण उन देवीजी ने शाहीं पण्डित को बुलवाया और उनसे कहा कि इस बात को अपने तक ही रखें।

उसी महीने शाहीं पण्डित की तरक्की भी हो गयी।. . .चेतन ने जब से यह बात सुनी थी, उसकी कल्पना में वह दृश्य कई बार आया था। उसने अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी में जो अनुभव प्राप्त किया था—अपने मित्रों के जीवन और उनकी बातों से, पुस्तकें पढ़ कर अथवा खुली आँखों अपने इर्द-गिर्द देख कर—उससे उसने यही जाना था कि सुन्दर स्त्री एस्सेट (आदेय) से कहीं ज्यादा लायबिलिटी (प्रदेय) है, कि उसे अपने वश में रखने का कर्तव्य पति का है, इसलिए उसे पहले लाला निश्चिन्तराम पर क्रोध आया कि वे अपनी सुन्दर पत्नी को वश में नहीं रख सके. . .लेकिन जब उसने इस समस्या पर कुछ और सोचा तो उसे महाशय वेदव्रत पर ग़ुस्सा आने लगा. . .पत्नी आखिर बर्तन-भाण्डा तो नहीं कि उसे अलमारी या सन्दूक में बन्द कर के रखा जाय. . .फिर सुन्दर पत्नी. . .आदमी सौन्दर्य के आगे कितना विवश हो जाता है। एक मुस्कान, प्यार-भरा एक शब्द, एक लज्जा-भरा आलिंगन—पति की सारी शंकाएँ दूर कर देता है और आँखें रखते हुए भी वह अन्धा हो जाता है. . .कभी-कभी अपने पिता की परकीया लच्छमा को ले कर माँ में और चेतन में बहस चलती थी तो चेतन के पुरुष को लच्छमा के सार्जेण्ट पति देवीदास पर ग़ुस्सा आता था कि वह क्यों अपनी बीवी को अपने मित्र के पास जाने देता है। तब वह सोचा करता था कि वह होता तो ऐसी बीवी अथवा ऐसे मित्र की हत्या कर देता।. . .

पर माँ सारा दोष चेतन के पिता का समझती थी। उसके खयाल में मित्र की प्रतिष्ठा को बनाये रखना मित्र ही का काम है। नारी दुर्बल हो सकती है, पर यदि पुरुष दुर्बल हो जाय तो फिर यह धरती रसातल को चली जाय. . .फिर लच्छमा तो छोटी जाति की थी और देवीदास की पत्नी बनने से पहले उसके सम्बन्ध चेतन के पिता से थे, लेकिन श्रीमती निश्चन्तराम तो अच्छे घराने की थीं। चेतन के पिता तो शराबी-जुआरी थे, महाशय वेदव्रत तो न केवल धर्मपरायण थे, वरन अपने अखबार में नित्य धर्म की दुहाई देते थे।. . .जो अपने मित्र को ठगता है, वह कहाँ का धर्म परायण ! उसके पिता जो करते थे, खुलेआम करते थे, इस तरह चोरी से सेंध नहीं लगाते थे. . .अपनी माँ की बातों से धीरे-धीरे उसका यह मत बन गया था कि पुरुष-स्त्री के सन्दर्भ में पुरुष को दृढ़ होना चाहिए—महाशय वेदव्रत को अपने मित्र की पत्नी में कुछ कमज़ोरी दिखायी दी थी तो उन्हें स्वयं दृढ़ होना चाहिए था। अपने मित्र को कॉन्फ़िडेन्स में ले लेना चाहिए था, मित्र-पत्नी को बता देना चाहिए था कि उसे हृदय से चाहते हुए भी मित्र की प्रतिष्ठा के नाते वे उससे किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रख सकते, ऐसा करना मित्र से विश्वासघात के बराबर होगा।—(पहल तो पुरुष ही करता है, वही उस स्थिति को बचा सकता है—चेतन का ऐसा खयाल था) अपनी भावना का उन्हें उन्नयन कर लेना चाहिए था।

चेतन अपने ध्यान में मग्न लक्ष्मी इन्श्योरेंस बिल्डिंग तक आ गया। उसे शाम को 'वीर भारत' भी जाना था। वह वापस मुड़ा।

'मैं ऐसे आदमी की सिफ़ारिश महाशय वेदव्रत से नहीं कर सकता।' चेतन के कानों में आज़ाद लाला का वाक्य पिघले सीसे-सा तन-मन जलाता चला गया—जिस व्यक्ति की सारी ज़िन्दगी, व्यापार, कारबार, उतने बड़े झूठ और मित्र-द्रोह पर टिकी है (चेतन जानता था कि जब कुछ ही वर्ष पहले लाला निश्चिन्तराम का सहसा देहान्त हो गया था तो उनके हिस्से के बदले कुछ रुपया उनकी पत्नी को दे कर महाशय वेदव्रत पत्र

के एकमात्र स्वामी हो गये थे) उससे आज़ाद लाला ज़रा-से उस झूठ के कारण उसकी सिफ़ारिश नहीं करना चाहते थे. . .साले सत्यवादी हरिश्चन्द्र के !. . .

०

चेतन बिफरता हुआ वापस अपने कमरे में आया। उसने आज़ाद लाला पर लिखा नोट पढ़ा और फिर उसके नीचे लिखने लगा :

'यह ठीक है कि आदमी दग़ा-फ़रेब, बददयानती और रिया-कारी से भरी झूठी और दोहरी ज़िन्दगी जीते हुए, समाज में इज़्ज़त और मान पा लेता है। लेकिन आदमी से जवाब-तलब करने वाला महज़ समाज ही तो नहीं, उसकी अपनी आत्मा भी तो है। आदमी अपने भले-बुरे के लिए उसके आगे जवाबदेह है। यही वजह है कि दुनिया भर का दुख और इल्ज़ाम सहते हुए भी लोग अपनी आत्मा की ख़ुशी और तस्कीन[1] के लिए सूली पर चढ़ गये—सब तरह के ऐश-आराम में रहता हुआ कोई शख़्स अपनी आत्मा के कोड़ों की मार का नरक भोग सकता है और सब तरह के दुख सहता हुआ भी कोई सुख और सन्तोष महसूस कर सकता है।'

चेतन ने यहाँ तक लिखा था कि सहसा उसके दिमाग़ में एक ख़याल कौंधा—महाशय वेदव्रत कैसे हैं, इससे उसे क्या लेना-देना है? आज़ाद लाला यदि नौकर रखाने की मुसीबत से बचना चाहते हों तो किसी दूसरी तरह भी बच जाते, लेकिन कितना निरीह और बे-ज़रर[2] भी क्यों न हो, उसने झूठ तो बोला। अगर वो कहता कि वह चालीस रुपया महीना पा रहा है, इसीलिए वहाँ नौकरी छोड़ना चाहता है, उसे पचास मिल जायें तो वह बड़ा शुक्रगुज़ार होगा, तब आज़ाद लाला उसे पण्डित रत्न के सामने यूँ ज़लील न करते। वह अपने आपको जो भी समझता हो, पर उम्र में तो वह उनके लड़के से भी छोटा है।

---

१. तुष्टि। २. जो कोई नुकसान न पहुँचा सके।

और थोड़ी स्पेस छोड़ कर उसने नोट बुक में इतना और लिखा : 'मैंने आज तय किया है कि छोटा भी क्यों न हो, मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा, ताकि मुझे इस तरह अपने या किसी दूसरे के सामने नदामत[1] का शिकार न होना पड़े !'

ज़ख़्मी

'पतले-छरहरे, गोरे, मँझला कद, पैंतीस-चालीस की उम्र, बात-बात पर मज़ाक करने और हँस कर मज़ाक सह जाने वाले शिवप्रसाद 'ज़ख़्मी' मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। जब पण्डित रत्न उनसे कोई मज़ाक करते हैं, उनके गोरे चेहरे पर लाली दौड़ जाती है और दायें गाल पर डिम्पल बन जाता है। मुझे 'ज़ख़्मी' के साथ काम करना पसन्द है।'

०

चेतन ने नोट-बुक बन्द करके अलमारी में रखी। उसे रात को आठ बजे 'वीर भारत' के दफ़्तर पहुँचना था। खाना वह साढ़े नौ बजे वहीं नीचे ढाबे में जा कर खा आता था। बैठक को उसने ताला लगाया और दफ़्तर को चल दिया।

दो ही दिन पहले उसे 'वीर भारत' में रात की शिफ़्ट में काम करने की नौकरी मिल गयी थी। आज़ाद लाला से मिल कर आने के दूसरे दिन ही जब शाम को वह पण्डितजी के यहाँ गया तो उन्होंने उसे बताया कि 'भीष्म' के विज्ञापन व्यवस्थापक पण्डित गणेशलाल ने नये सनातनी दैनिक 'वीर भारत' का डेक्लेरेशन ले लिया है। 'पण्डित गणेशलाल आज पत्र का पहला अंक ले कर दफ़्तर आये थे,' पण्डित रत्न ने कहा, 'मैं था नहीं। वे जुत्शी साहब को अंक दे गये। जुत्शी साहब ही से मालूम हुआ कि 'ज़ख़्मी' उसके ऐडीटर होंगे। 'ज़ख़्मी' आदमी बढ़िया है,

---

१. ग्लानि।

हमारा यार है। वहाँ अगर जगह खाली हो और तुम्हें मिल जाय तो बहुत अच्छा हो।'. . .

और पण्डितजी जल्दी-जल्दी उसे ले कर 'ज़ख्मी' साहब से मिलने को चल दिये थे।

जब वे दोनों गली पार कर सड़क पर आ गये तो सहसा चेतन ने पूछा, 'भीष्म अब नहीं निकलेगा ?'

'अब क्या निकलेगा। उसे 'फ़िदा' साहब के गूंगे ले डूबे !' और पण्डितजी हँसे, 'इतनी देर भी गणेशलाल की वजह से चलता रहा।' फिर कुछ क्षण रुक कर उन्होंने कहा, 'आदमी गणेशलाल मेहनती है। 'भीष्म' जितना कम छपता था, उसके मुकाबले में जितने इश्तेहार उसे मिलते थे, वह उसी की हिम्मत थी।'

'ज़ख्मी' लोहारी दरवाज़े के अन्दर रहते थे, पर अनारकली और सरक्युलर रोड के चौराहे पर ही वे उन्हें मिल गये। 'फ़ज़ल बुक डिपो' पर वे पत्र-पत्रिकाएँ पलट रहे थे कि चेतन की निगाह उन पर पड़ गयी और उसने पण्डितजी का ध्यान उधर आकर्षित किया।

पण्डितजी ने जा कर 'ज़ख्मी' की पीठ थपथपायी और उन्हें 'वीर भारत' के सम्पादक बनने पर बधाई दी।

'गणेशलाल आज दफ़्तर में आये थे।' उन्होंने कहा, 'मैं था नहीं, जुत्शी साहब से मालूम हुआ था कि गणेशलाल ने नया डेक्लेरेशन दिया है और आप ऐडीटर हो कर आ रहे हैं। मैंने जुत्शी साहब से कहा था कि पण्डित गणेशलाल इससे बेहतर चुनाव नहीं कर सकते।'

और पण्डितजी ने फिर 'ज़ख्मी' साहब की पीठ ठोंकी। उनका रंग लाल हो गया और दायें गाल में गढ़ा बन आया। तब सहसा पण्डित जी ने पूछा :

'कहिए स्टाफ़ पूरा रख लिया ?'

'नहीं, अभी पूरा नहीं रखा।' ज़ख्मी साहब ने कहा, 'गणेशलाल ने 'भीष्म' बन्द होने से पहले नये अख़बार के डेक्लेरेशन की दरख्वास्त

दे दी होती तो मुश्किल पेश नहीं आती। लेकिन 'भीष्म' को बन्द हुए दो महीने हो चुके हैं। डोगरा तो 'देश' में चले गये और वहाँ जम गये। प्रीतम बारबटनी रात को 'समाज' में जाते हैं, चौधरी ईशरदास की सेहत खराब हो गयी है। वो सिर्फ़ दिन ही को आते हैं। बाकी दो गूँगों में से एक को तो 'फ़िदा' साहब अपने साथ ही रखे हुए हैं, सुनता हूँ कि उसे कोई न्यूज़ एजेंसी खोल कर देने वाले हैं, दूसरे को गणेशलाल ले आये हैं। वह और प्रीतमजी दिन को आते हैं और मैं रात को। मुझे अभी कोई काम का आदमी नहीं मिला।'

'तुम चेतन को क्यों नहीं रख लेते।' सहसा पण्डितजी ने सुझाव दिया। यह 'बन्दे मातरम' को छोड़ रहा है। काम खूब मेहनत से करेगा।'

'जो आपका हुक्म!' ज़ख्मी साहब ने उत्तर में सिर नवा दिया।

और चेतन उसी शाम से ३० रु० मासिक पर दैनिक 'वीर भारत' में सब-ऐडीटर हो गया। 'बन्दे मातरम' में उसे दिन-रात दोनों वक्त काम करने के केवल चालीस मिलते थे। 'वीर भारत' में महज़ रात की ड्यूटी के ३० रु० और यह व्यवस्था चेतन को अच्छी लगी थी। यद्यपि रात की नौकरी उसे पसन्द न थी—जब से उसकी शादी हुई थी, वह रात को दो बजे से पहले कभी घर न पहुँच पाया था, पर अब उसका सारा दिन खाली होगा और वह जैसे चाहे, उसका इस्तेमाल कर सकेगा। खूब लिखे-पढ़ेगा। फिर अभी कविराज की नौकरी उसने छोड़ी नहीं थी। जितने दिन वह उनके यहाँ काम करेगा, उसे २० रु० महीना मिलते रहेंगे—यह सब सोच कर वह मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ था और उसने नौकरी स्वीकार कर ली थी।

चेतन चुपचाप चला जा रहा था। कविराज के बारे में उसने जो सोचा था, वह ग़लत साबित हुआ था। कल ही उसने कविराज का परिच्छेद ख़त्म किया था। वह कापी ले कर उनके पास गया था और उसे उनके सामने रखते हुए उसने उन्हें बताया था कि परिच्छेद उसने

ख़त्म कर दिया है। उसे रात की नौकरी मिल गयी है, दिन उसका अपना है, यदि कोई और काम उसके ज़िम्मे हो तो वे उसे बता दें, वरना वह छुट्टी कर ले।

कविराज ने नौकरी मिल जाने पर बड़ी ख़ुशी प्रकट की और उसे बधाई दी और कहा कि यदि उसे नौकरी न मिलती तो वो कोई-न-कोई काम उसके लिए निकालते, पर अभी उसे दिन को ख़ूब सोना और आराम करना चाहिए, वरना रात-दिन काम करने से पहले की तरह उसकी सेहत ख़राब हो जायगी।

और इतना कह, वे अपने काम में लग गये। चेतन क्षण भर खड़ा रहा तो उन्होंने सिर उठा कर कहा, 'फिर तुम्हें कभी ज़रूरत पड़े अज़ीज़, तो तुम बेझिझक चले आना।'

और इतना कह कर वे फिर काम पर झुक गये।

यद्यपि चेतन स्वयं उनसे छुट्टी पाना चाहता था और पिछले सात-दस दिन से बराबर पण्डितजी को ले कर जगह-जगह घूम रहा था तो भी उसे वैद्यजी से ऐसे रूखे व्यवहार की अपेक्षा न थी। उसने उन्हें नमस्कार किया और मन-ही-मन उबलता हुआ घर चला आया था और अपने उद्विग्न मन को शान्त करने के लिए पुराने काग़ज़-पत्रों को ठीक करके अलमारी में रखने लगा था। तभी उसकी दृष्टि अपनी कहानियों के संग्रह की फ़ाइल पर गयी थी, जिसके लिए कविराज काग़ज़ ले कर देने वाले थे और उनकी इस उदारता से अभिभूत हो कर जिस पर चेतन ने समर्पण लिखा था :

> कविराज रामदास बी० ए० के नाम
> जिनसे पहली ही मुलाक़ात मन में
> बेपनाह अक़ीदत[1] पैदा कर देती है।

चेतन ने फ़ाइल खोल कर समर्पण देखा। निमिष भर को उसके मन में

---

१. श्रद्धा।

आयी कि जा कर कविराज को उनके वचन की याद दिलाये। पर वह जानता था कि अब, जब उनका काम निकल गया है, वे टाल जायेंगे। न टालेंगे और पचास रुपये काग़ज़ के खाते देंगे तो डेढ़ सौ रुपये का काम उससे लेंगे। 'साले हातिमताई के!' मन-ही-मन उसने कहा और क्रोध के प्रबल वेग से वह पन्ना .फ़ाइल से खींच कर निकाल दिया और मुट्ठी में बुरी तरह मसल कर उसे टुकड़े-टुकड़े करके कोने में फेंक दिया था।

०

'वीर भारत' का दफ़्तर आ गया था। चेतन ने सिर को झटका दिया और दफ़्तर की सीढ़ियाँ चढ़ गया।

तेरह

रात दो बजे, अख़बार की अन्तिम कापी के प्रेस में चले जाने के बाद, जब ज़ख्मी साहब को 'आदाब अर्ज़' कर, चेतन दफ़्तर की सीढ़ियाँ उतरा और घर की तरफ़ मुड़ा तो सहसा उसकी तरफ़ उठी आज़ाद लाला की तर्जनी और नोट-बुक में लिखी अपनी प्रतिज्ञा उसके सामने आ गयी। उसने यह तय कर लिया था कि अब आगे के लिए वह झूठ नहीं बोलेगा, लेकिन इतनी ज़रा-सी बात के लिए उसके होंटों से सहसा झूठी बात निकली कैसे ? वह यही सोचने लगा। उसके पिता नम्बरी दबंग और फक्कड़ थे। वे बुरे-से-बुरा काम कर आते और आ कर माँ से सच्ची-सच्ची बात कह देते और माँ उनकी इस सत्यवादिता पर गर्व करतीं और प्रकारान्तर से अपने बेटों को सच बोलने का उपदेश देतीं। अपने पिता के प्रति समस्त क्रोध और नफ़रत के बावजूद उनके कुछ गुणों के लिए चेतन के मन में एक अजीब-सी श्रद्धा-मिली ईर्ष्या थी और उन गुणों में एक गुण था—उनकी दबंगई-मिश्रित सच्चाई ! उनका बेटा होने के नाते उसमें यह दुर्गुण कहाँ से आ गया कि वह एक ज़रा-सी बात के लिए झूठ बोल गया; उसे पण्डित रत्न के सामने

आज़ाद लाला' की डाँट सुननी पड़ी और ग्लानि का शिकार होना पड़ा! . . .और जैसे खुले मैदान में साँप का पीछा करता हुआ कोई व्यक्ति किसी अँधेरी गुफा में चला जाय, चेतन उस झूठ के स्रोत को खोजता हुआ लड़कपन के अँधेरे ग़ारों में खो गया।

बेहद उमस थी, आसमान पर बादल का निशान तक न था और दिन भर की गर्द वायु-मण्डल में छायी हुई थी, जिसमें बड़ा-सा चाँद हस्पताल के ऊपर आकाश और धरती के बीच निस्पन्द लटका दिखायी दे रहा था। चेतन ने एक नज़र उस चाँद पर डाली। कोई और रात होती तो वह लगातार उसे देखता घर तक चला जाता, पर तब उसने देख कर भी उसे नहीं देखा। वह निरन्तर उसी साँप का पीछा करता हुआ बढ़ा चला गया।

आज़ाद लाला के दफ़्तर की उस घटना के बाद उसने पिछले दिनों का जायज़ा लिया तो उसने पाया कि वह तो बिना जाने, महज़ मज़ाक अथवा शरारत में, 'बन्दे मातरम' के दफ़्तर में समय पर वेतन लेने के लिए अथवा अपनी अर्जित छुट्टी पाने के लिए प्रायः झूठ बोलता रहा है और वह समझता था कि आज़ाद लाला के सामने महज़ संयोगवश उसके मुँह से झूठ निकल गया था।

चूँकि उसके पुराने धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रीय समाचार-पत्र की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी, इसलिए महीने की पहली तारीख को तनख्वाह मिलने की बजाय, प्रायः किस्तों में पन्द्रह-बीस तक मिलती थी, लेकिन चेतन को बत्तीस रुपये तो अपने भाई के मालिक-मकान को देने होते थे और छै रुपये अपने मालिक-मकान को और पहली को वेतन पाये बिना उसका काम नहीं चलता था। उसे महीने की पहली तारीख को ही वेतन मिल जाय, इसलिए एक महीने का वेतन पाने के दस पन्द्रह दिन बाद ही वह इस या उस बहाने कुछ पेश्गी के लिए तगादा शुरू कर देता था और चूँकि सम्पादन-विभाग में उसकी तनख्वाह सब से कम थी, इसलिए उसके बार-बार के तगादों से तंग आ कर मैनेजिंग डायरेक्टर ने खज़ा-

नची को स्थायी आदेश दे दिया था कि चेतन की तनख्वाह उसे पहली तारीख़ को मिल जाय। किन्तु चेतन किसी तरह का रिस्क न लेता था और मैनेजिंग डायरेक्टर के पास जाने के बदले पन्द्रह दिन पहले खज़ानची से तगादा शुरू कर देता था और पैसे माँगने के लिए नये-से-नया (प्रकट ही झूठा) बहाना गढ़ लेता था।

इसके अलावा समाचार-पत्र में स्टाफ़ भी कम था और चूंकि स्टाफ़ कम था, इसलिए सभी को अपनी बिसात से ज्यादा काम करना पड़ता था और एक-न-एक उप-सम्पादक बीमार रहता था, इसलिए महीने में जो ढाई दिन की छुट्टी सम्पादकों को मिलती थी, उसे बिना किसी बहाने के ले पाना कठिन था। वहीं हस्पताल रोड पर जाते-जाते चेतन के सामने अपने कई झूठ आ गये और एक घटना विशेष रूप से उसकी आँखों में कौंध गयी।

. . .शुरू गर्मियों का मौसम था। दिन यद्यपि कद्रे गर्म होने लगे थे, पर शाम-सबेरे खासी ठण्ड हो जाती थी। चन्दा लाहौर आयी हुई थी। पिछली सर्दियों में जब वह लाहौर आयी थी और एक रात लाला श्यामलाल ऐडवोकेट का इन्टरव्यू लेने के साथ-साथ चेतन ने उसे लॉरेंस की सैर कराने का जो प्रयत्न किया था और रात ज्यादा हो जाने के कारण वह जैसे डर गयी थी, वह बात चेतन को निरन्तर सालती रही थी और उसका मन था कि आते इतवार को उसे ले कर पूरा दिन लॉरेंस में गुज़ारे और उसे पहाड़ी पर ले जाय और शाम को लॉरेंस की सैर कितनी पुरलुत्फ़ होती है, इसका एहसास कराये। लेकिन वह जानता था कि माँगने पर उसे कभी छुट्टी नहीं मिलेगी। तब उसने यह किया कि कई दिन पहले से हजामत बनाना बन्द कर दिया और दफ़्तर में काम करते हुए एक-आध बार अपनी तबियत की खराबी का ज़िक्र करता रहा। शुक्र और शनि को उसने स्नान भी नहीं किया और इतवार की सुबह आठ बजे के करीब गर्म लोई से शरीर को ढाँपे, दाढ़ी बढ़ाये और सिर के लम्बे बाल बिखराये, महीनों का मरीज़ बना, दफ़्तर चला गया।

मैनेजिंग डायरेक्टर दफ़्तर के ऊपर ही रहते थे। ठिगने-से गोल-मटोल आदमी। खादी के कुर्ते-धोती पर वैसी ही गोल-सी टोपी पहनते थे। पीपल्ज़ बुक सोसाइटी के आजीवन सदस्य। बहुत कम और बहुत धीरे बात करने वाले।. . .ऊपर पहुँच कर उसे मालूम हुआ कि वे अनारकली में उस प्रेस में गये हैं, जहाँ पीपल्ज़ बुक सोसाइटी का मुख-पत्र, अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'पीपल्ज़' छपता था, जिसके वे अवैतनिक सम्पादक थे। चेतन उनके पीछे प्रेस में जा पहुँचा। वे बाज़ार के किनारे ही प्रेस के तंग दरवाज़े में लोहे की कुर्सी पर बैठे प्रूफ़ देख रहे थे। सहसा उसे सामने खड़ा देख, वे चौंके। चेतन ने मिनमिनाते हुए कहा कि उसे कई दिन से हलकी-हलकी हरारत है, इसके बावजूद वह दफ़्तर आता रहा है, लेकिन आज उसका सारा शरीर टूट रहा है, उसे छुट्टी चाहिए और उसने कलाई आगे बढ़ा दी कि देख लीजिए उसे बुखार है।. . .लालाजी ने उसकी कलाई नहीं देखी। सिर्फ़ उसके चेहरे पर ऊबी और चिड़चिड़ाहट-भरी दृष्टि डाली और उसे छुट्टी दे दी।. . .चेतन होंटों ही में उनका शुक्रिया अदा कर मुड़ा। पैसा अखबार स्ट्रीट तक मरी-मरी बीमार चाल से चलता आया। लेकिन ज्योंही पैसा अखबार स्ट्रीट में दाखिल हुआ, उसने लोई को उतार कर कन्धे पर डाला और सरपट भागता हुआ घर पहुँचा और जोश में अपनी पत्नी को बाँहों में भर कर उसने एक चक्कर दे दिया।. . .चन्दा चकित उसकी ओर देखती रह गयी थी। तब उसने पत्नी से कहा था कि वह कुछ पराँठे और सूखे आलू बना ले, वह इतने में बाल कटवा और हजामत बनवा आता है, वे आज लॉरेंस बाग़ की सैर को जायेंगे। और वह जैसे आया था, कुछ आने जेब में डाल कर वैसे ही हजामत बनवाने निकल गया था. . .

रात के सन्नाटे में हस्पताल के साथ-साथ घर की ओर जाते हुए लॉरेंस की वह सैर उसके सामने घूम गयी थी। यद्यपि घर से चलने में उन्हें देर हो गयी थी और सूरज की धूप तेज़ हो गयी थी, लेकिन जब पैदल दो-ढाई मील की मंज़िल मार कर वे बाग़ के घने पेड़ों की छाया में

पहुँचे थे और ठण्डी हवा के झोंके हलके पसीने से तर उनके शरीरों पर ठण्डे लेप सरीखे लगे थे तो उनकी सारी थकान दूर हो गयी थी। वहीं चिड़ियाघर के बाहर से अपनी पत्नी को जल-पक्षी दिखा कर, वह उसे सड़क के दूसरी ओर घने छतनार गगनचुम्बी पेड़ों की छाया में ले गया था। वहाँ उन्होंने कुछ पल विश्राम किया था। फिर वह चन्दा को चिड़िया-घर दिखाने ले गया था। दोपहर का खाना बाग़ के घने पेड़ों के नीचे खा कर, वहीं दरी बिछा कर वे लेट गये थे। शाम को वह उसे पहाड़ी पर ले गया था। इतवार का दिन! बाग़ में खूब रौनक थी। चन्दा बड़ी खुश थी। एक बार पूरे बाग़ का चक्कर लगा कर और जैसे तृप्त हो कर जब वे घर लौटे थे तो चंगड़ मुहल्ले की अपनी उस कोठरी में पहूँच कर चेतन ने अपनी पत्नी को बाँहों में भर कर चूम लिया था।. . .

उस दिन अपने उस झूठ और चतुराई पर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई थी और डेढ़-पौने दो वर्ष की अपनी नौकरी में उसने एक-दो नहीं, कई बार ऐसे ही बेज़रर झूठ बोले थे। चेतन के सामने वे सारे-के-सारे झूठ, जिन पर वह बड़ा खुश हुआ था, एक दूसरे ही रूप में आ गये। यह ठीक है कि उन्हें बोलने में कुछ औचित्य भी था और उसे किसी तरह की ग्लानि न उठानी पड़ी थी, पर यदि उस तरह झूठ बोल कर छुट्टी लेने के बाद बाग़ की सैर करते हुए उसके मैनेजिंग डायरेक्टर उसे देख लेते! वे आज़ाद लाला की तरह उसकी ओर तर्जनी नहीं उठाते; शायद कुछ भी नहीं कहते, पर उनकी निगाहों में जो अभियोग होता, मात्र उसी से वह ज़मीन में गड़ जाता।. . .

०

और चेतन अपने झूठ का पीछा करता हुआ मन की एक ही छलाँग में चौथी कक्षा में पहुँच गया—किला मुहल्ला, जालन्धर के प्रायमरी स्कूल में—जब अपने जाने उसने पहला झूठ बोला था।

०

रात उसके पिता जालन्धर आये थे और सुबह जब वह स्कूल गया था

तो वे सोये हुए थे, पर शाम को जब वह आया तो उन्होंने उसे बुलाया था और उसे सलेट निकालने का आदेश दिया था कि वे उसके गणित की परीक्षा लें। लेकिन चेतन के पास (उसके सौभाग्य से) सलेट नहीं थी। पिछली बार जो सलेट वे ले कर दे गये थे, वह तड़क गयी थी और यद्यपि उसकी चौखट में उसने पत्तियाँ लगवायी थीं, पर वह बहुत दिन न चली थी। उस ज़माने में लोहे की सलेटों का चलन न था। सलेटें सीधी शिवालक की पहाड़ियों से आती थीं और चौखटों में जड़ कर छात्रों के पास पहुँच जाती थीं। पतली और चिकनी काली सलेटें देखने में अच्छी लगती थीं, पर ज़्यादा दिन न चलती थीं। पहले चौखटे अलग होते, फिर सलेटें ज़रा-सी ठेस से दो या तीन हो जातीं। प्रायः छात्र टूटी हुई सलेटों के टुकड़ों ही से काम चलाते। चेतन के पिता को जब इस बात का पता चला तो वे उसी वक्त उसे साथ ले कर बाज़ार गये थे। उन्होंने उसे एक मोटी और भारी सलेट और पेंसिलों का एक डिब्बा खरीद दिया था। सलेट उसे दे कर वे बाज़ार शेखाँ[1] की तरफ़ बढ़ गये थे और फिर दो दिन जो वे जालन्धर रहे, उन्हें उसकी गणित की परीक्षा लेने का ध्यान नहीं आया। सुबह जब वह स्कूल जाता, वे घुत्त सोये होते और शाम को जब वह स्कूल से आता, वे अपने मित्रों के साथ बाज़ार शेखाँ अथवा किसी दूसरे अड्डे पर मौज उड़ा रहे होते।

उन्होंने उसे जो सलेट ले कर दी, वह न चिकनी थी, न काली। भारी थी और सचमुच के सलेटी रंग की थी। उसके वज़न के मुकाबले में उसकी चौखट बड़ी नाज़ुक और हलकी मालूम देती थी। चेतन ने सोचा था कि वह उसके कोनों पर पत्तियाँ लगवा लेगा, लेकिन इससे पहले कि वह यह सावधानी बरतता, न केवल उसकी चौखट टूट गयी, वरन उसकी दो उँगलियों को घायल भी करती गयी।

जब वह पहले ही दिन नयी सलेट पर कापियाँ और किताबें रख,

---

१. वेश्याओं का बाज़ार।

उन्हें बग़ल में दबा कर चला तो भारी सलेट और किताबों के बोझ से पापड़ियाँ बाज़ार तक पहुँचते-पहुँचते उसकी बाँह दुखने लगी। तब उसने उन्हें दूसरी बग़ल में दबा लिया। पर सलेट इतनी भारी थी कि जल्दी ही उसकी दूसरी बाँह भी दुखने लगी। तब उसने बस्ता सिर पर उठा लिया। उसे बड़ी राहत मिली। पहले वह सलेट के साथ हलका-सा हाथ लगाये किताबों को थामे रहा। कभी इस हाथ से, कभी उस हाथ से। लेकिन पगड़ी पर टिके हुए बस्ते को सहारे की भी ज़रूरत न थी। जब उसका हाथ थक जाता तो वह उसे नीचे कर लेता। धीरे-धीरे उसे इतना अभ्यास हो गया कि सिर पर बिना हाथ के सहारे, घड़े उठाये मटकती चली जाती गुजरियों की तरह, वह रोज़ सिर पर सलेट और किताबें उठाये स्कूल जाने लगा। लेकिन चन्द ही दिन बाद वह एक सुबह इसी तरह किताबें उठाये अपने ध्यान में मस्त चला जा रहा था कि बकरवालों की ढिक्की[1] पर उसे हलकी-सी ठोकर लगी। उसके सिर का सन्तुलन बिगड़ गया। किताबें गिरीं और सलेट की चौखट किताबों के भार से सिर से गिरते ही अलग हो गयी। चेतन ने सलेट को अपने उल्टे हाथ से थामने का प्रयास किया तो उसके नुकीले किनारे से उसके दायें हाथ की बीच की दो उँगलियाँ पिछली ओर से कट गयीं। यही भला हुआ कि सलेट नहीं टूटी। केवल उसका एक कोना थोड़ा-सा भुर गया। ढिक्की के फ़र्श पर पुरानी नानकशाही[2] ईंटें लगी थीं। यदि उसका हाथ बीच में न आ जाता तो अपनी मज़बूती और मोटाई के बावजूद सलेट टूक-टूक हो जाती।

चेतन की उँगलियों पर घाव आ गया। खून बहने लगा। लेकिन वह न रोया, न चिल्लाया और न घर की ओर भागा। उसने किताबें उठायीं, उन्हें बायीं बग़ल में दबाया और यद्यपि उसके हाथ से खून बह

---

१. ढलान। २. पुराने ज़माने में मोटी ईंटें न होती थीं। बहुत छोटी ईंटें बनती थीं जिन्हें नानकशाही ईंटें कहते थे।

रहा था, पर बकरवालों के चौक के आगे ही स्कूल था, इसलिए वह स्कूल को भागा—'गिरते हैं शहसवार ही मैदाने जंग में'—अपने पिता का उपदेश उसने मन-ही-मन दोहराया। गिरने या चोट खाने पर रोने से अपने बेटों को बरजने के लिए वे प्रायः उन्हें—एक नारे की तरह—यह उपदेश दिया करते थे। जैसे गिर जाना दुख की नहीं, खुशी की बात हो—और चाहते थे कि उनके बेटे गिर जाने पर यह नारा लगायें और रोने की बजाय हँसें। 'खेल-कूद और दौड़-भाग में चोटें तो आयेंगी। बहादुर लोग रोया नहीं करते।' वे समझाया करते और यद्यपि चेतन बच्चा था और उस शेर की दूसरी पंक्ति, 'वह तिफ़्ल[1] क्या गिरेगा जो घुटनों के बल चले' उस पर पूरी तरह उतरती थी, (क्योंकि वह घुटनों के बल चाहे न चलता हो, लेकिन था तो बच्चा ही) तो भी अपने पिता के उपदेश के अधीन वह शहसवार बना, ज़ख्मी हाथ लिये, स्कूल पहुँचा।

चौथी के उस्ताद और प्रायमरी स्कूल के मुख्याध्यापक, लाला नानकचन्द बड़े ही अच्छे स्वभाव के व्यक्ति थे। यूँ वे लड़कों को सज़ा देते थे, पर सज़ा देते हुए लगता था, जैसे वे स्वयं सज़ा पा रहे हों। चेतन का खयाल था कि नयी सलेट तोड़ने पर वे उसे डाँटें-फटकारेंगे, क्योंकि वह उस बेपरवाही से बस्ता उठाये बेध्यानी से चल रहा था, पर जब उन्होंने उसका हाथ खून से लथपथ देखा तो झट अपनी पगड़ी से एक छोटा-सा टुकड़ा फाड़ कर उसे पानी से भिगो, पट्टी बाँध दी और घर जाने का आदेश दे दिया।

चेतन घर को चला तो उसे इस बात का डर था कि इतनी ज़रा-सी बात पर स्कूल से छुट्टी कर लेने पर उसे माँ बुरा-भला कहेगी, क्योंकि न केवल माँ ही उसे बाकायदा स्कूल जाने का उपदेश देती थी, वरन उसके पिता भी स्कूल से बे-मतलब ग़ैर-हाज़िर रहने को जघन्य अपराध

---

१. बच्चा।

समझते थे। यही कारण था कि उँगलियाँ कट जाने के बावजूद चेतन घर वापस आने के बदले सीधा स्कूल चला गया था। उसने मन में सोच लिया था कि वह इसका सारा दोष हेड मास्टर को देगा और कह देगा कि उसने छुट्टी नहीं माँगी, उन्होंने बरबस घर भेज दिया।

जब घर पहुँचने पर माँ ने कुछ नहीं कहा, वरन सन्दूक से धुला कपड़ा निकाल कर फिर से उसकी उँगलियों पर पट्टी बाँध दी तो मन-ही-मन चेतन को बड़ा आश्चर्य और सन्तोष हुआ। शाम को यद्यपि मुहल्ले के ही एक साथी लड़के ने माँ से शिकायत कर दी कि चेतन गुजरियों की तरह सिर पर बस्ता उठाये जा रहा था, इसीलिए सलेट गिर गयी, तो भी माँ ने कुछ न कहा था। चेतन ने सारी बात सच-सच बता दी कि भारी सलेट से उसकी बाँहें दुखने लगी थीं, इसलिए उसने सलेट और किताबें सिर पर रख ली थीं। तब माँ ने सलेट का नाप ले कर एक बस्ता सी दिया कि यदि फिर कभी किताबें गिरें तो न बिखरें, न फटें और न यूँ चोट लगे।

चेतन पहली बार स्कूल से ग़ैर-हाज़िर हुआ था। उँगलियों में हलके-से दर्द के अतिरिक्त वह एकदम स्वस्थ था। मन लगाने को वह अपने बड़े भाई के कोर्स की पुस्तक, 'हिकायाते शीरीं' (मीठी-मधुर कहानियाँ) पहला भाग पढ़ने लगा और उनमें उसे ऐसा रस मिला कि दिन कब गुज़र गया, उसे मालूम नहीं हुआ। स्कूल की पढ़ाई की बोरियत के मुकाबले में उसे घर में बैठ कर 'हिकायाते शीरीं' पढ़ना बहुत अच्छा लगा।

हेड मास्टर और माँ की दयालुता का यह प्रभाव हुआ कि कुछ ही दिन बाद वह झूठ बोल कर फिर घर वापस आ गया।

वह गणित में बहुत कमज़ोर था। पाँच वर्ष का था, जब उसके पिता उसे घर ही पर पढ़ाने लगे थे। दो-एक वर्ष में उन्होंने उसे इतनी अंग्रेज़ी पढ़ा दी थी कि कई बार वह मैट्रिक पास लड़कों के मुकाबले में जीत जाता था। उर्दू की लिखाई भी उसकी बहुत अच्छी थी, पर गणित पर उन्होंने ध्यान न दिया था। वे जब पढ़ाने लगते तो अंग्रेज़ी से शुरू

करते और चूंकि बात हमेशा कुटम्मस पर टूटती, इसलिए दूसरे किसी विषय की बारी ही न आती। फिर जब उनकी बदली रिलीविंग में हो गयी और माँ जालन्धर आ गयी तो वे उसे ले कर किला मुहल्ला के प्रायमरी स्कूल पहुँचे। चेतन यदि दूसरी कक्षा में दाखिल होता तो शायद वह गणित में कमज़ोर न रहता, पर पिता को यह स्वीकार नहीं हुआ कि अंग्रेज़ी में मैट्रिक पास लड़कों को हरा देने वाला उनका मेधावी सुपुत्र केवल दूसरी कक्षा में प्रवेश पाये। उन्होंने उसे तीसरी कक्षा में दाखिल करा दिया और गणित में कमज़ोरी दूर करने को तीसरी कक्षा के अध्यापक की ट्यूशन लगा दी। वे स्कूल के एक कमरे में रहते थे और चेतन स्कूल के बाद एक घण्टा उनसे गणित पढ़ता और खुशखती[1] सीखता। खुशखती तो उसकी बहुत अच्छी हो गयी, क्योंकि उसमें दिमाग़ नहीं लगाना पड़ता था, पर गणित उसका बदस्तूर कमज़ोर रहा। रहता भी क्यों न? अध्यापक महोदय स्वयं ही तीसरी-चौथी कक्षा को गणित पढ़ाते थे। उसे पास-फ़ेल करना उन्हीं के हाथ में था। सो पढ़ाने के बदले वे उससे चिलम भरवाते अथवा सौदा-सुलुफ़ मँगाते। सवाल लिखा कर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते और हुक्का पीते-पीते ऊँघ जाते। और यद्यपि चेतन का गणित कमज़ोर रहा, पर वह पास हो गया। अध्यापक ने उसे परीक्षा के एक दिन पहले जो सवाल कराये और अच्छी तरह समझाये थे, वही दूसरे दिन परीक्षा में पूछे। पाँच में से दो सवाल फिर भी चेतन ने ग़लत कर दिये तो भी वह पास हो गया। माँ ने यह सोच कर कि उसे गणित आ गया है, ट्यूशन बन्द कर दी और वही अध्यापक, जो उस पर खासे मेहरबान थे, चौथी कक्षा में उसकी कुटम्मस करने लगे और गणित की घण्टी में चेतन के प्राण निकलने लगे।

सलेट के गिरने, उससे चेतन की उँगलियों के ज़ख्मी होने और यूँ स्कूल से छुट्टी पाने के सात-एक दिन बाद, वह एक दिन स्कूल गया तो

---

१. सुलेख।

गणित के जो सवाल घर से कर के लाने के लिए दिये गये थे, वे उसने नहीं किये थे। करता भी क्या, गणित उसका इतना कमज़ोर था कि उसे कुछ समझ ही नहीं आता था। प्रायः वह अपने बड़े भाई की मदद से सवाल कर ले जाया करता था, लेकिन उसके भाई कोई जासूसी उपन्यास पढ़ रहे थे और उन्होंने चेतन की मिनमिन पर कोई ध्यान न दिया था और स्वयं उससे सवाल निकले नहीं थे और गणित की घण्टी में कुटम्मस की पूरी सम्भावना थी। तभी जब पहले ही पीरियड में लाला नानकचन्द क्लास में आये और उसकी खुशखती की कापी देख कर उन्होंने उसकी प्रशंसा की तो चेतन के मन में न जाने क्या आया कि उसने कहा, 'मास्टरजी मेरे पेट में बड़ा दर्द हो रहा है!'

मास्टरजी ने उसे छुट्टी दे दी। अपने इस झूठ पर चेतन का दिल बे-तरह धड़कने लगा। वह डरता-डरता घर की तरफ़ चल दिया। जो रास्ता वह मिनटों में तय कर लेता था, उसे तय करने में उसने घण्टा-डेढ़-घण्टा लगा दिया—स्कूल के पास उन दिनों किला मुहल्ला के चौक में एक रँहट चला करता था, जिसका निर्मल पानी नाली में बहता था तो स्कूल के लड़के उसी से अपनी तख्तियाँ साफ़ करके गाचनी (पीली मिट्टी) मल-मल कर स्कूल की दीवार से सूखने को रख देते थे। रँहट म्युनिसिपल कमेटी का था और उसकी देख-रेख करने वाले ने बतखें पाल रखी थीं। एक बतख ने छोटे-छोटे चूज़े दे रखे थे, जो रँहट के चौड़े चहबच्चे में तैरते तो बड़े भले लगते थे। चेतन स्कूल से घर की ओर चला तो देर तक खड़ा चहबच्चे में तैरते उन चूज़ों को देखता रहा। वहाँ से चला तो बकरवालों के चौक में अटक गया। चौक बहुत बड़ा था। उसमें रेठों के काले-काले नन्हें गोल बीजों-सी मींगनियाँ जगह-जगह बिखरी हुई थीं और बकरियाँ बैठी जुगाली कर रही थीं और मेमने खरमस्ती करते मैदान भर में कुदकड़े मार रहे थे। देर तक चेतन उन्हें देखता रहा। वहाँ से चला तो एक ढिक्की के पार दूसरी ढिक्की के दायीं ओर अहाते में रेशम रँगा जा रहा था। रँगे हुए रेशम की गुच्छियाँ

ढिक्की में ऊपर से नीचे तक रस्सियों पर लटकी थीं और नालियों में नीला पानी बह रहा था। ताँबे के बड़े-बड़े देगनुमा कड़ाहों से रँगे रेशम की गुच्छियाँ निकाल, उन्हें अच्छी तरह निचोड़ कर रँगरेज़ अपनी औरतों को थमाते जा रहे थे, जो उन्हें एक बार फिर निचोड़ और फटक कर रस्सियों पर डालती जाती थीं। जब देग से सब गुच्छियाँ खत्म हो जातीं तो देग का रंगीन माँड़-सा पानी रँगरेज़ नाली में बहा देते, जो चौरस्ती अटारी तक नाली को रँगता और बू फैलाता चला जाता। अहाते के पास जाते ही चेतन की नाक में रेशम की बू बस गयी थी।—अजीब-सी दमघोंटू बू—लेकिन जाने क्यों चेतन को वह अच्छी लगती थी। बहुत देर तक खड़ा वह यही कार्य-व्यापार देखता रहा था। जब कड़ाहों की सब गुच्छियाँ खत्म हो गयीं और पानी नाली में बहा दिया गया तो वह चल पड़ा।. . .आगे पापड़ियाँ बाज़ार के तिकोने चौक में वह देर तक खड़ा साल्हो पापड़िए को पापड़ बेलते और उसके लड़के मेलाराम को पिता के पास रखी पापड़ों की गड्डी उठा कर एक-एक पापड़ परे धूप में चटाई पर फैलाते देखता रहा।. . .और यों घण्टा-डेढ़-घण्टा बिता कर जब वह धड़कते हुए दिल के साथ घर पहुँचा और माँ ने पूछा कि वह इतनी जल्दी क्यों आ गया तो उसने दबी ज़बान से वही बहाना दोहरा दिया। उसकी आशा के विपरीत माँ ने कुछ नहीं कहा। कटोरी में थोड़ा पानी गर्म किया। अन्दर से वह हाथ की तली पर अजवायन ले आयी, उसे मसल और फटक कर उसने चेतन से कहा कि वह उसे फाँक ले और ऊपर से दो घूँट पानी पी ले।

चेतन अजवायन निगल नहीं सका। वह उसके मुँह में बिखर गयी। दाँतों के नीचे आ गयी। उसने चबाया तो उसका मुँह कड़वा गया। उसने जल्दी-जल्दी गर्म पानी पिया, पर मुँह की कड़वाहट दूर न हुई। लेकिन थोड़ी-सी कड़वाहट के बदले उसे सारा दिन मौज मनाने और मज़े से 'हिकायाते शीरीं' पढ़ने को मिल गया और यह सौदा उसे बुरा नहीं लगा।

०

इसके बाद चेतन का पेट प्राय: दुखने लगा और बेज़रूरत दवाएँ खाने से उसे सचमुच पेचिश हो गयी, लेकिन उसके इन झूठों का क्रम तब तक चलता रहा, जब तक वह आठवीं कक्षा में दो वर्ष बिता कर 'भूतना' के चंगुल से नहीं निकल गया और गणित की कमी उसने रेखा गणित से पूरी नहीं कर ली।

०

चेतन को मालूम नहीं हुआ कि वह कब हस्पताल रोड पार कर रेलवे रोड पहुँचा और कृष्णा गली में मुड़ गया। सहसा उसने अपने आपको घर के सामने खड़े पाया। गर्मी के कारण उसके भाई ने बिस्तर बाहर की उस थोड़ी-सी खुली जगह में लगा रखे थे, जो बाँसों के टाल के साथ खाली थी। स्वयं वे गहरी नींद सोये हुए थे। चेतन ने उनके तकिये के नीचे से चाबी उठायी। बैठक खोल कर उसने कपड़े बदले और फिर ताला बन्द कर सिरहाने रखी सुराही से पानी का गिलास पी कर और चाबी को भाई साहब के सिरहाने रख कर वह अपने बिस्तर पर लेट गया।

लेट गया, पर उसकी आँखों में ज़रा भी नींद नहीं थी। उसका दिमाग़ बदस्तूर अपने झूठ के पीछे लगा था। चौथी में गणित पढ़ाने वाले अध्यापक के स्थान पर उसकी आँखों में अड्डी चुक्क भूतना का चित्र आ गया। भूतना का—जो यद्यपि आठवीं को पढ़ाते थे, पर जिनका आतंक चौथी कक्षा ही से चेतन के दिमाग़ में बस गया था।

चौ
द
ह

चौथी कक्षा से ही जो चेतन के मन में अड्डी चुक्क भूतना[1] का आतंक बस गया तो इसका कारण चेतन से चार वर्ष और चेतन के बड़े भाई से दो वर्ष बड़ा मुहल्ले ही का एक ब्राह्मण लड़का कश्मीरी लाल था, जो बहुत दूर के रिश्ते में चेतन का सम्बन्धी भी था और जिसे चेतन के पिता बहुत मानते थे और अपना सातवाँ पुत्र बनाये हुए थे।

गर्मियों की दोपहर थी। पिछले कमरे में भाई साहब कश्मीरी लाल से (जो चेतन के पिता के अनुरोध पर भाई साहब को परीक्षा की वैतरणी पार कराने आ जाते) अंक गणित पढ़ रहे थे। चेतन दरवाज़े के पास ही बाहर दालान में बैठा, भाई साहब की इतिहास की पुस्तक देख रहा था। 'हिकायते शीरीं' के अलावा उसे अपने भाई की इतिहास की पुस्तक पढ़ने में बड़ा रस मिलता था। उसका मन रामायण, महाभारत के साथ-साथ अशोक, चन्द्रगुप्त, बाबर, हुमायूँ, शाहजहाँ और मुमताज़ महल की कहानियों में खूब रमता। बार-बार पढ़ने पर भी वे उसे अच्छी

---

१. एड़ी उठा कर चलने वाला भुतना (भूत)।

लगतीं। वह राजाओं और रानियों और युद्धों और सन्धियों में रमा हुआ था कि तभी सहसा कश्मीरी लाल की मीठी डाँट उसके कानों में पड़ी :

'गणित में मेहनत न करोगे तो 'भूतना' मुर्ग़ा बना कर होश ठिकाने कर देगा।'

इसके बाद जब दो-तीन बार यही शब्द 'भूतना' चेतन के कानों में पड़ा तो उसका ध्यान इतिहास की कहानियों से हट कर उधर जा लगा। भाई साहब ने शायद कुछ जिज्ञासा प्रकट की थी और उत्तर में कश्मीरी लाल 'भूतना' के सम्बन्ध में उनकी ज्ञान-वृद्धि कर रहे थे :

'एक बार अंग्रेज़ी का पीरियड खाली था,' कश्मीरी लाल कह रहे थे, 'मास्टर आया न था। लड़के शोर मचा रहे थे कि इतने में क्लास में भूतना घुस आया और एक सिरे से दूसरे सिरे तक बेंचों के किनारों पर बैठे हुए लड़कों की पीठ पर ज़ोर से एक-एक मुक्का मारता चला गया। लड़के तो उसकी शक्ल देख कर ही सहम गये थे, लेकिन हमला करते समय सिर नीचा किये भागते हुए सुअर की तरह, दोनों ओर की डेस्कों के किनारों पर बैठे हुए लड़कों की पीठ दोहरी कर, कमरे का पूरा चक्कर लगा कर, हल्ले का ज़ोर खत्म होने पर ही भूतना कुर्सी पर बैठा। बैठते ही उसने मानीटर से पूछा, 'दस्स ताँ बदा काहदी घण्टी ऐ ?'[1]

'जब मानीटर ने बताया कि अंग्रेज़ी का पीरियड है तो उसी से अंग्रेज़ी की पुस्तक ले कर भूतना ने उसे खोला और लड़कों को आदेश दिया, 'भूतनी देयो पुत्तरो, कड्ढो ते कापियाँ।'[2]

'हम ने कापियाँ निकाल लीं और भूतने ने डिक्टेशन[3] बोलनी शुरू की। कुर्सी पर बैठे-बैठे उसे शायद वहशत होने लगी थी। फिर उठ कर कमरे में घूमने लगा और डिक्टेशन लिखाते-लिखाते लड़कों की लिखाई का निरीक्षण भी करने लगा।

---

१. बता रे बद किस विषय का पीरियड है ? २. भुतनी के बच्चो निकालो तो कापियाँ। ३. श्रुत लेखन।

'मैं बड़ी तन्मयता से लिख रहा था कि सहसा लगा जैसे कनपटी से कान उखड़ गया हो। साथ ही पीठ पर एक ज़ोर का घूँसा पड़ा।

'भूतनी देया पुत्तरा, जे तेरा सिर कट्ट के एस पासे रख लेया जावे ते धड़ ओस पासे, ते अच्छा लग्गेगा ?'[१]

कश्मीरी लाल मुस्कराये और बोले, 'दुर्भाग्य से मैंने लाइन ख़त्म होने के कारण एक शब्द को आधा उसी पंक्ति में और आधा अगली पंक्ति के शुरू में लिख दिया था।

'अभी मैं अपनी पीठ सहला ही रहा था,' कश्मीरी लाल फिर बोले 'कि एक दूसरे लड़के की पीठ पर एक और धमाका हुआ।

'भूतनी देया पुत्तरा, जे तेरा सिर ऐट्डा वड्डा होवे ते जिस्म ऐन्ना कु जेहा ते चंगा दिस्सेगा ?'[२] भूतना कह रहा था। अपनी झल्लाहट में उसने कापी उठा कर क्लास को दिखायी कि किस प्रकार उस मूर्ख लड़के ने ऐफ़ (f) के ऊपर का हिस्सा मोटा और नीचे का पतला बना दिया था।

'लड़कों की किस्मत अच्छी थी कि अंग्रेज़ी के अध्यापक आ गये, नहीं जाने किस-किस का भुरकस बनता।'

कश्मीरी लाल फिर हँसे और चेतन के हृदय में पूरी तरह भूतना नाम के अध्यापक का आतंक बैठ गया। भूतना आठवीं कक्षा में अध्यापक थे और उनका असली नाम रामचन्द था। प्रायः ऐसा होता है कि बचपन की बातें, नाम और शक्लें भूल जाती हैं; पर कुछ बातें, नाम और शक्लें ऐसी भी होती हैं, जो सदा-सदा के लिए मन के पर्दे पर अंकित हो जाती हैं। बचपन की एक तुकबन्दी, जिस में लड़कों ने सभी

---

१. भुतनी के बच्चे, यदि तेरा सिर काट कर इस ओर रख दिया जाय और धड़ उस ओर तो क्या अच्छा लगेगा ? २. भुतनी के बच्चे यदि तेरा सिर इतना बड़ा हो और धड़ इतना ज़रा-सा तो क्या अच्छा लगेगा ?

मास्टरों के नाम गिन रखे थे, चेतन को तब तक भी पूरी-की-पूरी याद थी :

घण्टी वज्जी टन टन
विच्चों निकलेया मेहरचन्न
मेहरचन्न ने खाया दाना
विच्चों निकलेया मूला काना
मूले काने रिद्धी दाल
विच्चों निकलेया नन्दलाल
नन्द लाल घुमाया हाथ
विच्चों निकलेया बिशेशरनाथ
बिशेशरनाथ ने खोलेया बुक्क
विच्चों निकलेया अड्डी चुक्क[1]

वहीं बाँसों के टाल के पास, पूरे चाँद की सुलगती चाँदनी के नीचे लेटे-लेटे, जिसकी वजह से चेतन की नींद और भी ग़ायब हो गयी थी, उसके कानों में यह तुकबन्दी गूँज गयी, जिसे आधी छुट्टी के बाद घर को जाते हुए लड़के समवेत स्वर से गाते थे और इसके साथ ही उन

---

१. घण्टी बाजी टन टन
बीच से निकला मेहरचन्द
मेहरचन्द ने खाया दाना
बीच से निकला मूला काना
मूला काना पकायी दाल
बीच से निकला नन्दलाल
नन्दलाल फैलाया हाथ
बीच से निकला बिशेशरनाथ (विश्वेश्वरनाथ)
बिशेशरनाथ ने खोला बुक्क (ओक)
बीच से निकला अड्डी चुक्क ।

श्रध्यापकों के गुण-दोष चेतन के सामने श्रा गये, जिनका नामोल्लेख इस तुकबन्दी में लड़कों ने किया था—मेहरचन्द ('चन्द' पंजाबी भाषा में 'चन्न' हो जाता है।) जो स्कूल के प्रिंसिपल थे, लड़कों के प्रति जिनकी क्रूरता श्रौर दानियों से दान लेने की क्षमता बड़ी प्रसिद्ध थी। मूलाराम, जो पाँचवीं में गणित श्रौर उर्दू पढ़ाते थे, श्राँखों से जिन्हें कम दिखायी देता था, कापी हो या सलेट, बायीं श्राँख के एकदम निकट ला कर देखते थे श्रौर दायें हाथ से थप्पड़ रसीद करते वक्त बायाँ सदा दूसरे गाल पर रख लेते थे कि लड़का मुँह फेर कर थप्पड़ के पूरे श्रानन्द से वंचित न रह जाय। नन्दलाल, जो छठी में श्रंग्रेज़ी पढ़ाते थे, गोरे-चिट्टे, पतले-छरहरे, मँझला कद, वालरस की तरह ऊपर के होंट पर छायी हुई मूँछें—कुर्सी पर बैठे हुए खँखारा करते थे श्रौर बलग़म थूकने की बजाय मुँह में पपोलते रहते थे। बिशेशरनाथ , जो मँझले कद श्रौर गठे हुए बदन के भारी-भरकम श्रादमी थे, सीधा रूल मारने के बदले, मुट्ठी में रूल का ऊपरी सिरा पकड़ कर निचले से पीठ पर ऐसे ठहोके देते थे कि रीढ़ की हड्डी तक में दर्द की लहर दौड़ जाती थी। कभी-कभी दो उँगलियों के बीच पेंसिल रख कर उँगलियाँ दबाते थे श्रथवा चाबी कान के पीछे रख कर उसके छेद में वहाँ का नर्म माँस ले कर ऐसे मरोड़ते थे कि लड़कों की चीखें निकल जाती थीं श्रौर श्रड्डी चुक्क. . .वे तो क्रूरता में लासानी थे श्रौर चेतन के दिमाग़ पर सदा-सदा के लिए नक्श हो गये थे।

०

चेतन जिस स्कूल में पढ़ता था, उसकी दो शाखाएँ थीं। एक किला मुहल्ला में श्रौर दूसरी वहाँ से डेढ़ मील के श्रन्तर पर करतारपुर रोड के जरा इधर, पुलिस लाइन्ज़ के सामने। पहली में चौथी तक पढ़ाई होती थी, दूसरी में पाँचवीं से दसवीं तक। पहली में छात्र टाट पर बैठते थे, दूसरी में बेंचों पर। टाट से उठ कर बेंचों पर बैठना, क्लर्की छोड़ डिप्टी क्लक्टरी पाने के बराबर था। चेतन को चौथी कक्षा पास

करने के बाद बड़े स्कूल में जाना अच्छी तरह याद था। अजीब-सा उल्लास और खुशी मन में समायी हुई थी। लड़के बेंचों को ऐसे देखते थे, जैसे मखमल की बनी हों। कभी उन पर हाथ फेरते थे, कभी एक बेंच पर बैठते थे, कभी वहाँ से उठ कर दूसरी पर। किला मुहल्ला के खुरदरे टाटों के मुकाबले में लकड़ी की लम्बी-लम्बी, गहरे नीले रंग वाली डेस्कें—जिनमें तीन-तीन छात्रों के बैठने, किताबें रखने और थक जाने पर पीछे पीठ लगा कर बैठने की व्यवस्था थी, किला मुहल्ला के सील-भरे, छोटे, अँधेरे, टपकते हुए कमरों के मुकाबले में हाई स्कूल के खुले, रोशन, हवादार कमरे—चेतन को लगा था, जैसे नरक से उठ कर वे स्वर्ग में आ गये हों।

लेकिन इस सारे उल्लास और खुशी में एक अजीब-से औत्सुक्य-मिले भय का भी अंश था। चेतन के मन में 'भूतना' को देखने की बड़ी साध थी। जब नये स्कूल में आने के कारण हर्ष का प्रथम आवेग खत्म हुआ तो आधी छुट्टी में चेतन ने भाई साहब को जा ढूँढ़ा और उनसे भूतना को दिखा देने का अनुरोध किया। भाई साहब उस समय सातवीं कक्षा में पढ़ते थे। भूतना से वे भी डरते थे। लेकिन बड़े स्कूल में आ कर भूतना को देखना इन्द्र के दरबार में काले देव को देखने से कम न था। चेतन के बड़े भाई उसके आग्रह को देख, उसे ले कर उस बरामदे में गये, जो स्कूल के बड़े गेट के सामने पड़ता था। उसकी प्लिन्थ (चौकी) काफ़ी ऊँची थी और उसकी सारी लम्बाई तक सीढ़ियाँ चढ़ती थीं। एक बड़ी-सी मेज़ और आठ-दस कुर्सियाँ वहाँ रखी रहती थीं, जहाँ आधी छुट्टी अथवा खाली घण्टों में अध्यापक लोग बैठते थे। भाई साहब ने दूर ही से क्षण भर को उस तरफ़ देखा और बोले, 'यहाँ नहीं है, जाने कहाँ है, फिर दिखा देंगे।'

चेतन उस वक्त तक 'भूतना' के बारे में इतनी बातें सुन चुका था कि उसे 'भूतना' को एक नज़र देखने की बड़ी उत्सुकता थी। तभी जब वे निराश हो कर मुड़ने वाले थे, बरामदे की बायीं ओर वाली कक्षा से

निकल कर एक अध्यापक कुछ अजीब ढंग से उचकता हुआ-सा, जैसे अपने आप बदबदाता आया और कुर्सी में धँस गया। भाई साहब ने संकेत कि यही 'भूतना' है !

साधारणत: आधी छुट्टी की घण्टी बजते ही, अध्यापकों के कुर्सी छोड़ने से पहले ही, लड़के क्लासें छोड़ देते थे और शोर मचाते, हँसते-हँसाते अध्यापकों से भी आगे कमरों से निकल जाते थे। पर 'भूतना' टीचर्ज़ रूम (यद्यपि वह कमरा नहीं बरामदे का केन्द्रीय भाग था, जहाँ अध्यापकों के बैठने के लिए एक बड़ी-सी मेज़ और कुर्सियाँ लगी थीं, लेकिन जो टीचर्ज़ रूम ही कहाता था) में जा कर अपनी जगह बैठ गये तो जिस क्लास को वे पढ़ा कर आये थे, उसके लड़के कमरे से निकले और उनका चांचल्य उस समय तक नहीं उभरा, जब तक वे उनके पास से हो कर, बरामदे की सीढ़ियाँ उतर, मैदान में नहीं आ गये।

भाई साहब चेतन को वहीं छोड़ कर अपने साथियों से जा मिले, पर चेतन चुपचाप जैसे सम्मोहित-सा, अपने उस भावी जल्लाद को निर्निमेष ताकता रहा—मँझला कद, उड़ते हुए बगुले की-सी कुछ अजीब तरह से आगे को बढ़ी हुई गर्दन, उसी कारण गुद्दी के नीचे बना ज़रा-सा कूबड़, चौड़ा-चकला जबड़ा, ज़रा-सा बाहर को लटकता हुआ निचला होंट, ऊपर की दन्त-पंक्ति में सामने के दाँतों में काफ़ी अंतर, कठोर आकृति—चेतन को विश्वास था कि यदि ढीली-ढाली पगड़ी के स्थान पर उनके सिर पर दो सींग होते तो 'भूतना' किसी राक्षस से कम भयानक न दिखायी देते। फ़र्क यही था कि उनका रंग गोरा था, बल्कि जब वे क्रोध में होते तो लाल चुकन्दर हो जाता।

चूँकि वे बात-बात में छात्रों को 'भूतना,' 'भूतनी दा पुत्तर' ऐसी गालियाँ देते थे, इसलिए लड़कों ने उन्हीं को 'भूतना' की उपाधि दे दी थी, जो उन पर पूरी तरह फ़िट भी बैठती थी और चूँकि वे एड़ियाँ उठा कर उचकते हुए चलते थे, इसलिए भूतना के साथ 'अड्डी चुक्क' और जोड़ दिया था। उनका असली नाम—रामचन्द—तो बहुत-से लड़के न

जानते थे, पर 'भूतना' से स्कूल का प्रत्येक छात्र भली-भाँति परिचित था।

०

कई बार ऐसा होता है कि आदमी जिस चीज़ से डरता है, वही उसके सामने आ जाती है। चेतन कश्मीरी लाल के छोटे भाई को जानता था, जब कश्मीरी लाल का देहान्त यक्ष्मा से हो गया, फिर उसकी बड़ी भाभी यक्ष्मा से मर गयी तो छोटे भाई के मन में यक्ष्मा का ऐसा आतंक समाया कि उसने न केवल कसरत करना शुरू किया, वरन खाने-पीने में भी पूरा परहेज़ रखने लगा। वह चेतन ही की उम्र का था, 'मौत से मैं नहीं डरता,' एक बार उसने चेतन से कहा था, 'एकदम आ जाय तो मैं उसे पसन्द भी करता हूँ, पर तिल-तिल कर मरना, दूसरों को और अपने आपको असहनीय परिस्थिति में देखना, मुझे पसन्द नहीं।' और प्रातः उठना, सुबह-शाम सैर को जाना, व्यायाम करना और गरिष्ठ पदार्थों से अपने आमाशय को बचाना—कौन-सी सावधानी थी, जो छोटू ने नहीं अपनायी। एक बार जब उसे शूल रोग हुआ तो हफ़्तों उबली हुई सब्ज़ियाँ खाता रहा—पर उस व्यक्ति की तरह, जो होनहार से बचने के लिए भागा था और सीधा उसकी बाँहों में जा गिरा था, छोटू भी यक्ष्मा से बचने की अतिरिक्त सतर्कता के कारण उसके चंगुल में जा फँसा—उस वक्त, जब उसे घी, मक्खन, दूध वग़ैरह लेना चाहिए था, वह उबली सब्ज़ियाँ लेता रहा, उसकी आँतें कमज़ोर हो गयीं और अन्ततोगत्वा यक्ष्मा ने उसे धर दबाया।

'भूतना' सम्बन्धी चेतन के भय का भी यही हुआ—उनसे बचने के प्रयास में वह एक वर्ष के बदले दो वर्ष उनके चंगुल में फँसा रहा।

वास्तव में बिना ज़रूरत दवाएँ खाने से चेतन का मेदा सचमुच ख़राब हो गया था। यों भी वह अपने सभी भाइयों के मुकाबले में कम-ज़ोर था। नितान्त क्षीण-काय और दुर्बल! भूतना की मार सहना तो दूर, वह तो उनकी सूरत तक से संत्रस्त था। लेकिन पाँचवी कक्षा में

दाखिल होते ही भूतना के दर्शन करने से ले कर आठवीं कक्षा में पहुँचने तक तीन वर्षों में अपने बड़े भाई की सहायता से चेतन भूतना के स्वभाव की हर गति-विधि से परिचित हो गया था और उनकी कुटम्मस से बचने के सभी गुर उसे पूरी तरह कण्ठस्थ हो गये थे। चेतन भूतना के हाथों बहुत पिटा नहीं, लेकिन इसी प्रयास में एक के बदले दो वर्ष उनके 'मधुर वचन' सुनते रहने का पर्याप्त 'सौभाग्य' उसे प्राप्त हुआ।

पढ़ने पर शायद यह बात उतनी भय-प्रद न लगे—विशेषकर उस सूरत में जब उनसे पिटने की अधिक नौबत नहीं आयी—लेकिन वास्तव में स्थिति उतनी सरल नहीं थी। चेतन की दशा उस व्यक्ति की-सी थी, जो जंगल में सीधे मार्ग चलते-चलते एक अन्धे बाघ के सामने पड़ जाय और उससे बचने के प्रयास में न केवल भय से उसके बाल सफ़ेद हो जायें, वरन उसे जंगल को पार करने में अधिक समय लग जाय।

आठवीं के वे दो वर्ष और उनकी एक-एक यातना चेतन के मन-मस्तिष्क पर बड़ी गहरी रेखाएँ छोड़ गयी थी। उन दिनों का एक-एक ब्योरा उसके स्मृति-पट पर ऐसे अंकित था, जैसे कल घटा हो।

०

भूतना जब क्रोध में आते थे तो जो छात्र पहले सामने पड़ जाय, उसी पर अपना सारा ग़ुस्सा निकाल देते थे। अंजाम प्राय: यह होता था कि अयोग्य लड़कों के बदले योग्य लड़के ही उनके हाथों ज्यादा पिटते। चेतन उनके पीरियड में पिछली बेंचों पर बैठता था और दो वर्षों में उसे कुछेक ही दिन ऐसे याद थे, जब वे वहाँ तक पहुँचे हों और चेतन पिट गया हो।

प्राय: दर्जे में आते ही (यदि उन्हें गणित की कोई नयी विधि न सिखानी होती तो) वे मानीटर से सवाल लिखाने को कहते। वह उनके आदेशानुसार चक्रवर्ती अंक गणित निकाल, चालू परिच्छेद में से प्रश्न लिखाता। प्राय: मानीटर अथवा कोई दूसरा योग्य छात्र पहले सवाल निकाल कर उन्हें दिखाने ले जाता। अकसर योग्य लड़कों के उत्तर ठीक

होते, पर यदि दुर्भाग्य से किसी का उत्तर कभी ग़लत होता तो उसकी कुटम्मस शुरू हो जाती ।

जब सब लड़के सवाल कर चुकते तो भूतना मानीटर को सब की कापियाँ देखने का आदेश देते । वह लड़कों की कापियों पर ग़लत अथवा ठीक के चिह्न लगा देता । तब भूतना जुनूनियों की तरह कुर्सी से उठते हुए कहते—'हो जाए ताँ ज़रा बेंचाँ ते खड़े भारत दे सितारे ।'[1]

भारत के सितारों से उनका मतलब उन लड़कों से होता, जिनके जवाब ग़लत निकलते । भारत के सितारे बेंचों पर खड़े हो जाते । भूतना निकटतम लड़के को आ दबोचते और उसकी ठुकाई शुरू कर देते ।

उनको निकट आते देख कर लड़के के चेहरे पर जो हवाइयाँ उड़तीं और शिकार को निकट पा कर भूतना की आँखों में जो अमानुषिक चमक आ जाती, उनका मुख जैसे तमतमा जाता और जैसे वे दाँत किच-किचाने लगते, उनकी स्मृति मात्र से बिस्तर पर लेटे-लेटे चेतन के रोंगटे खड़े हो गये ।

पीटते समय भूतना बे-इख्तियार हो जाते । अपने आप पर उनका कोई अधिकार न रहता । एक बार अपने शिकार को पीट कर वे दोनों ओर की बेंचों के बीच की जगह में चक्कर लगाते । बेंचों पर खड़े छात्रों के दिल धड़क उठते कि अब उनकी बारी आयी, पर किसी दूसरे को कुछ कहे बिना, 'भूतना' बकते-झकते, एक चक्कर लगा कर फिर उसी ग़रीब के सिर पर जा सवार होते और उसे पीटने लगते । बोलते-बकते उनके मुँह से झाग निकलने लगती और कई बार पीटते-पीटते थक कर वे एक दो-हत्थड़ अपने सिर पर भी मार लेते ।

अपने बड़े भाई के और अपने अनुभव से चेतन ने जान लिया था कि जो प्रश्न वे सेक्शन 'ए' में एक दिन पहले करवाते, वही वे दूसरे दिन

---

१. भारत के सितारे ज़रा बेंचों पर खड़े तो हो जायें ।

सेक्शन 'बी' में (जो द्वितीय-तृतीय श्रेणी के छात्रों से बना था और जिस में चेतन भी था) करवाया करते। सेक्शन 'ए' सब से अच्छे लड़कों का सेक्शन था। उसी में कोट पश्का का एक लड़का कुलबीर खन्ना भी पढ़ता था। सातवीं में वह चेतन की बेंच पर बैठा करता था और उससे चेतन की गहरी दोस्ती हो गयी थी—हो सकता है उसके अर्ध-चेतन ने एक वर्ष पहले ही से यह सावधानी बरती हो। जब आठवीं में कुलबीर 'ए' सेक्शन में चला गया तो चेतन स्कूल से आ कर सब से पहले खन्ना के यहाँ जाता और उसकी गणित की कापी देख कर जो दो-एक सवाल 'भूतना' ने कराये होते, उन्हें बड़े सुन्दर अक्षरों में नकल कर लाता।

बात तो अजीब लगती है, लेकिन भूतना को सफ़ाई और खुशखती की सनक थी। जिस प्रश्न का उत्तर सुन्दर ढंग से लिखा गया होता, उस पर वे 'गुड' (अच्छा) देते और यदि प्रश्न विशेषकर सुन्दर अक्षरों और मुकम्मल ढंग से किया गया होता तो कभी-कभार 'वेरी गुड' भी देते। तिमाही और छमाही परीक्षाओं में इन 'गुड्ज़' का भी असर पड़ता।

चेतन सब से पिछली बेंच के परले कोने में, जहाँ अनायास भूतना की दृष्टि न पड़े, बैठा करता था। जब भूतना सवाल लिखाते अथवा उनके आदेश पर मानीटर लिखवाता, तो प्रकट चेतन सिर झुकाये बड़ी तन्मयता से सवाल किया करता, पर सवाल तो वह प्रायः घर ही से करके ले जाता। कुछ देर तक सवाल हल करने का बहाना करके वह कापी ले जाता। (इस बात का ख़याल रखता कि दो-चार लड़के पहले दिखा लें तो वह भी दिखाये और व्यर्थ में भूतना की निगाहों में न चढ़े।) सवाल लिखा कर भूतना प्रायः कुर्सी पर ऊँघने लगते। वे प्रायः ऊँघते-ऊँघते ही प्रश्नों के उत्तर भी देखते और यदि किसी का उत्तर ग़लत न हो तो उस पर एक बड़ा-सा अंग्रेज़ी का अक्षर 'आर' लिख देते। ग़लत हो तो फिर उनकी नींद ग़ायब हो जाती, कापी के पृष्ठ पर बड़ा-सा क्रास बना कर वे उचक कर उठते और लड़के की शामत आ

जाती । चेतन हमेशा इस बात का खयाल रखता कि वे ऊँघ रहे हों, जब वह कापी ले कर जाय । जाग कर वे चेतन की कापी पर बड़े सुन्दर अक्षरों में हल किया हुआ प्रश्न देखते और बड़ा-सा गुड लिख देते । चेतन गणित में यद्यपि सबसे कमज़ोर था, पर उसकी कापी में 'गुड्ज़' की संख्या कक्षा में सबसे ज़्यादा थी । जब कोई प्रश्न नया होता याने पहले दिन 'ए' सेक्शन में कराया गया न होता तो चेतन 'लघु शंका,' 'दीर्घ शंका,' पेट अथवा सिर दर्द का बहाना करके चला जाता और फिर संकट की सम्भावना टल जाने पर ही आता ।

०

वहीं बिस्तर पर लेटे-लेटे चेतन की आँखों में एक घटना विशेष रूप से कौंध गयी ।

०

शहर में उन दिनों सरकस आया हुआ था । स्कूल से कुछ ही दूरी पर एक बहुत बड़ा मैदान था । वहीं सरकस ने डेरे डाले थे । चेतन भूतना की मार से बचने के लिए झूठा बहाना करके निकलता तो सीधा सरकस के मैदान में जा कर शेरों, हाथियों और बन्दरों को देखा करता । सरकस प्रायः शाम को साढ़े तीन बजे शुरू होता । दोपहर में कई बार ऐक्टर अभ्यास कर रहे होते । धरती से कुछ ही ऊपर रस्सा बाँध कर उस्ताद युवा शागिर्दों को उस पर चलना अथवा कलाबाज़ियाँ लगाना सिखा रहे होते । चेतन भूतना अथवा उनके गणित को भूल कर पूरी तन्मयता से वह सब देखा करता और जब वापस स्कूल पहुँचता तो कई बार दूसरे टीचर की घण्टी भी खत्म हो चुकी होती ।

एक दिन जब चेतन पशु-अनुसन्धान और सरकस-दर्शन के अपने उस मिशन से लौटा तो भूतना ने दूसरी क्लास से एक छात्र को उसे बुलाने भेजा ।

चेतन के तो जैसे प्राण ही निकल गये । सीता के कष्ट को हरने के लिए धरती फट गयी थी । लेकिन चेतन को याद था कि यद्यपि उसने

भी उस समय कुछ उसी तरह की अभिलाषा की थी, पर फटना तो दूर रहा, वह उसे पैरों के नीचे और भी सख्त लगी थी। लेकिन मुश्किल कितनी भी क्यों न पड़े, चेतन की सोच-समझ की शक्तियाँ शिथिल न पड़ती थीं। अपनी माँ की ही तरह मुसीबत के वक्त वह और भी तेज़ी से सोचना सीख गया था। इतिहास की घण्टी थी। इतिहास उसका प्रिय विषय था। उस पीरियड में वह अगली बेंचों पर बैठता था। अध्यापक उससे प्रसन्न थे। उन्होंने पानीपत के पहले युद्ध के सम्बन्ध में एक प्रश्न लिखाया था। निमिष भर में उसने तय कर लिया कि क्या करना चाहिए। उसने मास्टर साहब की ओर देखते हुए लड़के से कहा कि अभी प्रश्न करके आता हूँ। अध्यापक ने उस छात्र से वही बात दोहरा दी कि सवाल खत्म कर ले तो अभी भेजता हूँ। यद्यपि चेतन सवाल का जवाब लगभग लिख चुका था, फिर भी जितना ज्यादा-से-ज्यादा समय वह उसमें लगा सकता था, उसने लगाया और अध्यापक को दिखा कर और उनसे शाबाशी पा कर, जब वह भूतना की क्लास में पहुँचा तो घण्टी प्रायः खत्म होने वाली थी।

'पहुँचा' कहने में जिस त्वरा का आभास मिलता है, वह चेतन के जाने में बिल्कुल न थी। वह तो रेंगता हुआ-सा वहाँ पहुँचा था। दरवाज़े में दाखिल हुआ तो भूतना ब्लैक-बोर्ड पर कोई प्रश्न समझा रहे थे। चेतन चुपचाप कुछ क्षण तक खड़ा रहा। 'क्या आज्ञा है?' या 'जी आपने बुलाया था?' ऐसा कोई वाक्य उसके मुँह से नहीं निकला। ब्लैक-बोर्ड से ज़रा दृष्टि हटने पर जब उन्होंने उसे देखा तो सवाल समझाना छोड़, मानो एक ही डग में उन्होंने चेतन को आ दबोचा और जैसे छिपकली किसी बड़े-से पतंगे को दबोच कर सिर को ज़ोर से हिला कर उसे झिंझोड़ा देती है, भूतना ने दायें हाथ से उसकी गर्दन को झिंझोड़ा और दाँत पीसते हुए कहा, 'दस्स ताँ वदा तूँ कित्थे गया सैं।'[1]

---

१. बता रे बद तू कहाँ गया था?

सहमे हुए स्वर में चेतन ने बताया कि उसके पेट में दर्द था, इसलिए वह ज़रा बाहर गया था।

झल्ला कर और ज़ोर का एक घूँसा उसकी पीठ पर दे कर भूतना ने कहा, 'तैन्नूँ पेट-दर्द मेरे ई पीरियड विच्च हुन्दा ई। फड़ ते भूतनेयाँ ज़रा कन्न।'[1]

और चेतन ने एक ओर हो कर कान पकड़ लिये। यह कान पकड़ना कितनी बड़ी सज़ा है, इसे साधारणतः जान पाना कठिन है। इस कान पकड़ने को आम भाषा में 'मुर्ग़ा बनना' भी कहते हैं। इस 'आसन' में धरती पर उकड़ूँ बैठ कर, दोनों हाथ घुटनों के नीचे से ला कर कानों को पकड़ा जाता है। उस दशा में पिछला हिस्सा अनायास उठ जाता है। भूतना उसके निरन्तर उठे रहने पर ज़ोर देते थे। उस प्रकार दो-तीन मिनट से ज़्यादा बड़े-से-बड़ा मज़बूत लड़का भी कान न पकड़ सकता था। चेतन को ऐसे कई लड़कों की शक्लें याद थीं, जिन्होंने इस प्रकार कान पकड़ रखे थे और उनके मुख नसों के तन जाने से लाल हो गये थे और दर्द के मारे जिनके गालों पर अनायास आँसू बह रहे थे, पर जो कान छोड़ने अथवा अपना पिछला भाग नीचा करने का साहस न कर पाते थे।

चेतन ने कभी कान न पकड़े थे। उसने कभी इसकी नौबत ही न आने दी थी। पर उसने लड़कों को कान पकड़े और पिछला हिस्सा ज़रा नीचे होने पर भूतना को उनकी पीठ पर घूँसे लगाते देखा था। वह जानता था कि ज़रा भी ठीक तरह कान न पकड़े तो घूँसा पीठ पर पड़ेगा। दाँत भींच कर उसने कान पकड़े और जितना वह ऊँचा उठ सकता था, उठा। क्योंकि लड़के ठीक तरह कान न पकड़ते थे, इसलिए कान पकड़ते ही उनकी पीठ पर भूतना का घूँसा बजता था। निमिष

---

१. तुझे पेट दर्द मेरी ही घण्टी में होता है। पकड़ तो भुतने ज़रा कान!

भर भूतना ने चेतन को कान पकड़े देखा और सन्तुष्ट हो, फिर ब्लैक-बोर्ड की तरफ़ पलटे ।

चेतन का रक्त उसके चेहरे की नसों में आ गया था, माथा फटने-फटने को होने लगा था, पिंडलियाँ कसाव की शिद्दत और दर्द से काँपने लगी थीं । यदि उसे वैसे ही मुर्ग़ा बने ज़्यादा देर तक रहना पड़ता तो वह अचेत हो जाता अथवा विवश हो, उसे पीठ पर घूँसा सहना होता । पर तभी घण्टी बज गयी । वह पहुँचा ही देर से था और उसकी इस सावधानी ने उसकी रक्षा की थी ।

लेकिन उसके बाद वह कई दिनों तक स्कूल नहीं गया और सचमुच बीमार पड़ गया ।

०

छात्रों को पीटने में भूतना के स्वभाव की बेइख्तियारी और बेतुकेपन के कई दृश्य चेतन के सामने कौंध गये । एक तो इतना स्पष्ट था जैसे सुबह ही घटा हो ।

०

प्रश्न लिखा कर भूतना कुर्सी पर सो गये थे । मानीटर ने प्रश्न हल करके कापी जब उनके सामने रखी तो उन्होंने ऊँघते-ऊँघते उठ कर उसे देख लिया और मानीटर को दूसरे छात्रों की कापियाँ देखने का आदेश दे कर फिर ऊँघने लगे ।

जब मानीटर सारी क्लास में घूम कर छात्रों की कापियों पर 'ग़लत' और 'सही' के निशान लगा चुका तो भूतना को ऊँघते देख कर उसने ही 'भारत के सितारों' को बेंचों पर खड़े होने का आदेश दे दिया और स्वयं अपनी सीट पर जा बैठा ।

भूतना ने स्वयं लड़कों की मरम्मत करने के बदले कुर्सी पर बैठे-बैठे मानीटर को आदेश दिया, 'दो-दो मुक्के ज़ोर नाल मार सारेयाँ दे ।'[१]

१. सब के ज़ोर के साथ दो-दो घूंसे जमा ।

भारत का पहला सितारा उस रोज़ दुर्भाग्य से मानीटर की डेस्क पर ही उदित हो गया था। कुछ मैत्री का लिहाज, कुछ रोज़ की संगति का, मानीटर ने मुक्का ज़रा धीरे-से लगाया। तभी भूतना लपक कर उठे और गरजे :

'भूतनी देया पुत्तरा, इह ज़ोर नाल मुक्का मारेया ई, जाँ प्यार कीत्ता ई। आ ते मैं तैन्नूँ दस्साँ मुक्का किंज मारीदा ऐ।'[1]

और गर्दन से दबोच कर उन्होंने मानीटर की पीठ को एक ज़ोरदार घूँसे से गुँजा दिया।

'मास्टरजी मैं. . .' मानीटर ने कहना चाहा।

'ओए मैं देया पुत्तरा. . .ज़रा ऐद्धर ते हो, मैं तैन्नूँ मुक्का मारना सिखावाँ।'[2]

और दाँत किचकिचाते और दाद पाने के लिए छात्रों की ओर देखते हुए भूतना ने ज़ोर से एक मुक्का उसकी पीठ पर और जमा दिया।

'जी मैं. . .' मॉनीटर ने कहना चाहा।

'ओए जी मैं की ? तूँ मानीटरी करना ऐं कि दोस्तियाँ निभाउँदाँ ऐं ? ओए बदा तूँ बकरा ऐं, ते मैं कसाई आँ, चल ते किद्धर नूँ चलना ऐं।'[3]

साथ ही उन्होंने एक थप्पड़ और दो घूँसे उसे और प्रदान किये।

मानीटर के बड़प्पन की चीखें निकल गयीं। लेकिन भूतना ने उसे नहीं छोड़ा। दाँत पीसते और मुक्कों से दोहरी हो जाने वाली कमर को सीधा करने का अवसर देते हुए उन्होंने उसे दोनों कानों से पकड़ कर

---

१. भुतनी के बच्चे यह तूने घूँसा लगाया है या प्यार किया है ? आ तो मैं तुझे बताऊँ कि घूँसा कैसे लगाया जाता है। २. ओ मैं के बच्चे, ज़रा इधर हो, तुझे मुक्का मारना सिखाऊँ। ३. अरे 'जी मैं' क्या, भुतनी के बच्चे तू मानीटरी करता है या मैत्री निभाता है ? अरे तू बकरा है तो मैं कसाई हूँ, चल तो किधर को चलता है !

झकझोरते हुए बताया कि उन्होंने बड़े-बड़े बद सीधे कर दिये हैं और वे उसे ऐसी 'दोस्ती निभाना' सिखायेंगे कि उम्र भर उसे याद रहेगा। जब उन्होंने उसे और दो-चार थप्पड़ रसीद किये तो मानीटर बिलबिला उठा और भूतना कमरे का चक्कर लगाने चले। पिछली बेंचों के लड़के सीधे मानीटर की गत बनती न देख सकते थे। तनिक टेढ़े हो कर अथवा उचक कर देख रहे थे। अपने उस चक्कर में एक-एक घूँसा उन सब की पीठ पर रसीद करते हुए भूतना फिर मानीटर से जा भिड़े। इस बीच में वे बड़े ज़ोरों से अपने कसाई होने की घोषणा करते गये।

चेतन को अच्छी तरह याद था, जब दूसरा चक्कर लगा कर उन्होंने तीसरी बार मानीटर को जा पकड़ा तो एक दो-हत्थड़ उसके जमाते हुए अपने सिर भी जमा ली थी। उस समय उनका चेहरा देख कर भय आता था। मुँह लाल हो रहा था, होंटों से झाग निकल रही थी, जबड़े और भी उभरे दिखायी देते थे और गर्दन आगे को निकली पड़ती थी।

तभी जब वे जा कर कुर्सी पर धँसने के लिए मुड़े, घण्टी बज गयी। मानीटर बेंच पर दोहरा हो कर, बाँहों में सिर दिये रोने लगा और 'भारत के सितारे' सुख की साँस लेते हुए नीचे उतरे।

०

रोज़ क्लास में बदों को सुधारने के अलावा वर्ष में ऐसे दिन भी आते, जब भूतना खास तौर पर 'बिगड़े हुए बदों' के सुधारार्थ तैयार रहते। जब परीक्षा फल निकलता तो फ़ेल होने वालों की वे अतिरिक्त ठुकाई करते। जब बड़े दिन की, ईस्टर की अथवा गर्मियों की छुट्टियाँ होतीं तो वे चालीस-पचास से सौ-दो-सौ तक, छुट्टियों की संख्या के अनुसार, घर से प्रश्न हल कर लाने के लिए देते। जो लड़के घर का काम करके न लाते, उनकी वे पूरी खबर लेते और उनकी सारी बदी निकाल दें, पूरी निष्ठा से इस प्रयास में जुट जाते। इस बीच वे बार-बार अपने कसाई और उनके बकरे होने की घोषणा करते जाते।

रेखा गणित तो चेतन ने भाई साहब से सीख लिया था। तिकोनें,

आयत और वर्गादि वे बड़े श्रम और साधना से बनाता और उसे वह काम बड़ा अच्छा लगता, पर अंक गणित अथवा बीज गणित का वह एक भी प्रश्न न कर पाता। दो-चार सवाल होते तो कुलबीर की मदद भी ले लेता, पर सौ-दो-सौ सवाल नकल करना उसके बस में नहीं था और फिर कई बार 'ए' और 'बी' सेक्शनों के होम-वर्क में अन्तर भी होता। लेकिन चेतन अपने बड़े भाई से यह जान चुका था कि वे छुट्टियाँ खत्म होते ही 'होम वर्क' की कापियाँ नहीं लेते। बात यह थी कि जो लड़के 'होम वर्क' न करते, वे प्राय: छुट्टियों के बाद तीन-चार दिन तक ग़ायब रहते। भूतना उन 'बदों' को आ जाने का अवसर देते और छुट्टियों के पाँच-छै दिन बाद, जब वे सव, यह समझ कि बला टल गयी होगी, वापस आते तो भूतना मानीटर से कापियाँ इकट्ठी करने को कहते। फिर जो लड़के बिल्कुल कोरे निकलते अथवा जिनका काम अधूरा होता अथवा जिन्होंने सफ़ाई से अपना काम न किया होता और बेगार टाली होती, उनकी सारी बदी भूतना निकालने पर कटिबद्ध हो जाते।

चेतन दो वर्ष उनकी क्लास में रहा था, पर एक बार भी उसने गणित का होम-वर्क नहीं किया था। छुट्टियों के बाद स्कूल जाने से उसकी आत्मा काँपती, पर वह उनके स्वभाव के एक-एक पेच-ो-ख़म से वाकिफ़ था। इसलिए छुट्टियों के बाद दो-तीन दिन तक वह बराबर क्लास में बना रहता। हाज़िरी का जवाब भी बड़े ज़ोरों से देता और किसी-न-किसी प्रकार भूतना को अपनी शक्ल भी दिखा देता। भूतना रोज़ मानीटर से कापियाँ लेने को कहते, लेकिन फिर टाल जाते और सभी लड़कों को दूसरे दिन कापियाँ लाने का आदेश देते और दाँत पीसते हुए घोषणा करते कि सभी 'भारत के सितारे' आ जायेंगे तभी वे कापियाँ देखेंगे। जब वे कापियाँ लेने को कहते तो चेतन का दिल बे-तरह धड़क उठता, लेकिन वे कापियाँ न लेते। तीन दिन हाज़िरी दे कर चेतन ग़ायब हो जाता। बीमार तो रहता ही था। पन्द्रह दिन तक फिर वह वापस न आता और इस बीच 'भारत के सितारों' की पूरी बदी

निकल चुकी होती और भूतना भूल चुके होते कि और कौन बद ग़ायब था और किसने कापी नहीं दी थी।

०

उमस बेहद थी। चेतन जिस करवट लेटता, चादर पसीने से तर हो जाती। उसकी आँखें किरकिरा रही थीं, पर दिमाग़ तना था और नींद ग़ायब थी। अपने झूठ, चालाकी, चतुराई, भय और संत्रास का एक-एक क्षण उसकी आँखों में सजीव हो उठा था। आँखें बन्द कर, जब उसने मस्तक में ध्यान जमा कर नींद को बुलाने का प्रयास किया तो उसके सामने लड़कपन के उन संत्रस्त दिनों के साथ उस कसाई अध्यापक की जिन्दगी भी घूम गयी और एक घटना की याद से अनायास वह मन-ही-मन मुस्करा उठा।

०

भूतना गणित के अध्यापक ही न थे, बोर्डिंग के सुपरिंटेण्डेण्ट भी थे और उन्हें इस बात का गर्व भी था कि उन्होंने बोर्डिंग के बड़े-बड़े 'बदों' को सीधा कर दिया है।

स्कूल का बोर्डिंग नगर से तीन मील बाहर उजाड़-बियाबान जगह में बना था—सैनिकों की अधबनी बैरकों-सरीखा। मन-बहलाव का वहाँ कोई साधन न था। यों भी आर्य समाजी स्कूल। वहाँ के सारे छात्र ब्रह्मचारी। और ब्रह्मचारियों के लिए मन-बहलाव घोर पाप। उनसे आशा रखी जाती कि सर्दी हो या गर्मी, वे प्रातः चार बजे उठें। गर्मियाँ हों तो तत्काल शौचादि से निवृत्त हो, व्यायाम करें। सर्दियाँ हों तो पहले दो घण्टे पढ़ें, फिर नित्य कर्म से निवृत्त हों और चाहे कैसा भी कड़ाके का जाड़ा क्यों न पड़ रहा हो, प्रतिदिन ठण्डे पानी से स्नान करें। स्नानादि के लिए स्नान-गृहों की तब व्यवस्था न थी। रँहट चला दिया जाता था और लड़के बोर्डिंग की पवित्र जल-वायु का आनन्द लेते हुए दिसम्बर-जनवरी की सर्दी में उसकी धारा के नीचे नहाते। इसके

बाद सब सन्ध्या-भवन में इकट्ठे होते और 'सन्ध्या' के मन्त्रों का समवेत स्वर उस वीराने को गुँजा देता।

लेकिन इस कलिकाल में विज्ञान ने सुख-सुविधा के सामान पैदा करके छात्रों को आराम तलब बना दिया है। व्रत्त-उपवास, नियम और निष्ठा का धार्मिक जीवन बिताने और ब्रह्मचर्य के अपने पुरातन आदर्श पर चलने की सहज रुचि उन में नहीं रही। माता-पिता जिस आदर्श के विचार से अपने बच्चों को उस आर्य समाजी स्कूल में भेजते थे, स्कूल के अधिकारियों का कर्तव्य था कि उस आदर्श पर लड़कों को चलायें और चूँकि पुरानी कहावत है कि लातों के भूत बातों से नहीं माना करते और छात्रों से बढ़ कर 'लातों के भूत' और कौन होंगे, इसलिए उन भूतों को सीधे रास्ते पर डालने का सत्कार्य भूतना को सौंपा गया था। इस बात की ज़िम्मेदारी उनकी थी कि गाँवों से आ कर जो छात्र शहर के प्रलोभनों में फँसने वाले हों, उन्हें रोकें, नियम-निष्ठा का जीवन बिताना सिखायें और पूर्ण ब्रह्मचारी और पक्के आर्य समाजी बनायें।

भूतना अपना यह कर्तव्य जुनूनियों के जोश से पूरा करते। चार के बदले प्रातः साढ़े तीन बजे उठते। स्वयं जा कर सुबह उठने की घण्टी बजाते और उस समय तक बजाये जाते, जब तक बिस्तरों में दुबके छात्र तो क्या, इर्द-गिर्द के पेड़ों पर अपने घोंसलों में सोये पक्षी तक उठ कर चहचहाने (या फ़रियाद करने) न लगते। इसके बावजूद जो छात्र इस लम्बी घण्टी की आवाज़ न सुनते, उन्हें गर्दनों से पकड़ कर वे उनके लिहाफ़ों से जा निकालते। नहाने, व्यायाम करने अथवा सन्ध्या-वन्दन में जो छात्र सुस्ती दिखाता, उसकी मरम्मत करते। चूँकि इस प्रयास में उन्हें सतत आधी रात को उठ कर निरन्तर सजग रहना पड़ता, इसलिए कक्षाओं में जा कर वे कुर्सी पर पड़े ऊँघा करते।

बोर्डिंग में खेलों के लिए हॉकी और फ़ुटबाल की व्यवस्था थी और व्यायाम के लिए पैरेलल बार और मुगदर थे। इनडोर खेलों की नितान्त मनाही थी। ताश-शतरंज पकड़ी जाती तो पिटाई होती और यदि

किसी की जेब से सिगरेट निकल आते तो जिस प्रकार पिछले ज़माने में अपराधी का मुँह काला करके उसे नगर में घुमाते थे, भूतना अपराधी को गर्दन से पकड़ कर सारी बैरक में घुमाते और प्रत्येक कमरे के सामने रुक कर एक घूंसा अथवा थप्पड़ उसे रसीद करते ताकि दूसरे छात्रों को शिक्षा मिले।

लेकिन जिस प्रकार दो वर्ष आठवीं में रह कर चेतन उनके चंगुल से बचता रहा, उसी प्रकार ऐसे लड़कों की कमी न थी, जो ऐन उनकी नाक के नीचे सब कुछ करते थे। इस निरोध और दमन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप चेतन जानता था, कि वहाँ वह सब होता था, जिसकी रोक के लिए अधिकारियों ने भूतना को बोर्डिंग की उस जेल का सुपरिं-टेण्डेण्ट बना रखा था।

लेकिन उस चोरा-छिप्पी के अतिरिक्त, जो भूतना की ऐन नाक के नीचे चलती, लड़के कभी-कभी भूतना के उस ज़ुल्म का बदला खुले आम लेने से भी न चूकते।

एक बार गर्मियों के दिनों में जब नगर में एलफ्रेड नाटक कम्पनी आयी हुई थी, रात की हाज़िरी के बाद लड़के चुपचाप थियेटर देखने खिसक जाते थे और ढाई-तीन बजे वापस आते थे। नाटक रेलवे रोड के मँडवे[1] में होता, जो बोर्डिंग से लगभग चार मील दूर था। कई बार नाटक देर से ख़त्म होता तो लड़के सुबह की घण्टी के बाद आते। भूतना जब हाज़िरी लेने जाते तो अनुपस्थित लड़कों के साथी कह देते कि वे नित्य-कर्म से निवृत्त होने गये हुए हैं। न जाने कैसे भूतना को इस बात की भनक मिल गयी। दूसरी ही रात वे झल्लाये हुए दो लड़कों को साथ ले, रेलवे रोड पहुँचे और मँडवे के बाहर जा खड़े हुए। ज्योंही लड़के थियेटर से निकले, भूतना ने उन्हें धर दबोचा। फिर जो दुर्गति उनकी हुई, उसकी चर्चा कई दिन तक स्कूल में होती रही।

१: थियेटर हॉल।

लेकिन उन लड़कों में से, जो थियेटर देखने जाते थे, अधिकांश धनी-मानियों के लड़के थे, जो स्कूल में पढ़ने नहीं, मौज मनाने आते थे और जिनका सदा यह प्रयास रहता था कि जितनी देर यह मौज मनायी जा सके, अच्छा है, फिर चाहे अधिकारी अथवा दूसरे 'दब्बू' अथवा रट्टू लड़के उन्हें 'गुण्डों' की उपाधि ही से क्यों न विभूषित करें। दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य से भूतना का हाथ जिस लड़के की गर्दन पर पहले पड़ा, वह उन लड़कों का रिंग लीडर, पन्नालाल था। अपनी आदत के अनुसार उसे पकड़ लेने के बाद भूतना ने फिर किसी को नहीं छुआ और तीन-चार मील उसकी 'रिंग लीडरी निकालते' चले आये।

०

दो-एक दिन तो पन्नालाल अपनी चोटें सहलाता रहा, फिर उसने भूतना से ऐसा बदला लिया कि कुछ अर्से के लिए वे बोर्डिंग छोड़ने पर विवश हो गये।

०

बात, जैसी कि चेतन ने सुनी थी, यूँ हुई कि उन दिनों कृष्ण पक्ष की काली रातें थीं और उन्हीं का लाभ उठा कर लड़के थियेटर देखने जाते थे। चाँदनी रातों में इस बात का डर रहता कि बाहर मैदान में सोये हुए भूतना कहीं जाग कर पकड़ न लें। सोते वे गहरी नींद थे, पर चाँदनी रातों में थियेटर देखने को जाने का साहस लड़कों को न होता। जिस रात पन्नालाल की सारी 'रिंग लीडरी' भूतना ने निकाली, उसके तीन दिन बाद भी अमावस थी। आकाश में उस दिन कुछ मेघ भी छाये थे। उन्होंने रात की सियाही पर ऐसा पर्दा डाल दिया था कि तारों की टिमटिमाहट से जो थोड़ा प्रकाश होता, वह भी मिट गया था। उस सूचीभेद्य अन्धकार में न जाने कहाँ से आधी रात को पन्नालाल एक टट्टू पकड़ लाया। न जाने वह उसी वक्त लाया था अथवा पहले ही से ला कर उसने वीराने में बाँध रखा था। बोर्डिंग के चारों ओर दो-ढाई मील के घेरे में गाँव थे; उन्हीं में से वह ले आया होगा। रात, जब भूतना

मुहावरे की भाषा में घोड़े बेच कर सोये हुए थे, उसने एक बहुत लम्बी मज़बूत रस्सी ले कर, उसका एक सिरा उनकी चारपाई के पाये से बाँध दिया और दूसरा टट्टू की गर्दन से। लेकिन इससे पहले उसने भूतना की पगड़ी से, जो उनके सिरहाने एक स्टूल पर पड़ी थी, एक-दो हलके लपेटे दे कर उन्हें चारपाई से भी उलझा दिया।

तभी उसका संकेत पा कर, अपने कमरों के बाहर दूसरे लड़कों के साथ मैदान में चारपाइयाँ बिछाये लेटे हुए पन्नालाल के साथी शोर मचाने लगे, 'पकड़ लो,' 'जाने न पाये!' 'जाने न पाये,' 'पकड़ लो!' 'मारो मारो! जाने न पाये'। पन्नालाल ने टट्टू के एक छाँटा रसीद किया, सारे बोर्डिंग में लड़के उठ कर बेतहाशा भागने लगे, 'पकड़ो,' 'मारो', 'जाने न पाये' का शोर मच गया। टट्टू डर कर बगटुट भागा और पन्नालाल और उसके साथियों ने उसे भागने में पूरी मदद दी तो भूतना चारपाई से उलझे दूर तक घिसटते चले गये और उनकी हड्डी-पसली बराबर हो गयी। पन्नालाल के साथी, भूतना को उठा कर उनकी मरहम-पट्टी कराने ले गये और उसने इस बीच में रस्सी और टट्टू का निशान तक मिटा दिया।

दूसरे दिन सारे शहर में यह ख़बर फैल गयी कि घोड़ों पर चढ़ कर डाकू बोर्डिंग को लूटने आये थे। भूतना को उन्होंने उन्हीं की पगड़ी से चारपाई के साथ बाँध दिया था। पन्नालाल और उसके साथियों ने उनका डट कर मुकाबला किया और उन्हें भगा दिया। एक डाकू का घोड़ा जो मास्टर रामचन्द की चारपाई से टकराया तो उसे उलटाता गया। मास्टरजी को बड़ी चोटें आयी हैं। पन्नालाल को भी चोटें आयी हैं (जिनमें से अधिकांश वही थीं, जो मास्टरजी ही के हाथों आयी थीं) लेकिन उसकी निर्भयता और बहादुरी के कारण बोर्डिंग लुटने से बच गया।

पन्नालाल स्कूल का सबसे बदमाश लड़का था, और कई वर्षों से मैट्रिक में डटा था, लेकिन इस घटना ने उसे हीरो बना दिया। हेड-

मास्टर ने सारे स्कूल के छात्रों को मैदान में बुला कर उन्हें कर्तव्य-पालन, साहस तथा वीरता पर एक छोटा-मोटा भाषण दिया, आर्य वीरों के गुण गाये और पन्नालाल की पीठ ठोंकी। और पास के गाँवों में जा कर निश्चय ही डाकुओं का पता लगाने की प्रतिज्ञा करके पन्नालाल और उसके साथियों ने सप्ताह भर के लिए स्कूल से छुट्टी ले ली और खूब मौजें उड़ायीं।

लेकिन दुर्भाग्य से महीने-पन्द्रह दिन बाद एक खूबसूरत लौण्डे के पीछे अपने ही एक साथी से पन्नालाल का झगड़ा हो गया और धीरे-धीरे इस षड़यन्त्र का भण्डा फूट गया। पन्नालाल स्कूल से निकाल दिया गया और जिस मैदान में उसे शाबाशी मिली थी, वहीं स्कूल के सभी छात्रों के सामने पन्नालाल और उसके साथियों को बारह-बारह बेंत लगाये गये। कहीं पन्नालाल और उसके साथी में झगड़ा न हुआ होता तो पन्नालाल और उसके साथियों की बहादुरी स्कूल के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जाती और नित नये दिन उस कहानी पर रंग चढ़ा करता।

इस घटना के बाद प्रिंसिपल ने भूतना को कुछ अर्से के लिए बोर्डिंग की सुपरिंटेण्डेण्टी से अवकाश दे दिया। इसलिए नहीं कि भूतना डर गये। वे शहीद लेखराम और मुन्शीराम के परम अनुयायी, उन गुण्डों से क्या डरते, पर अधिकारियों ने ही उनको कुछ आराम देना आवश्यक समझ

०

भूतना का पैत्रिक मकान किला मुहल्ला में था। उनका परिवार वहीं रहता था—पत्नी, लड़की और लड़का—होस्टल के उस वीराने में उनकी पढ़ाई की व्यवस्था न थी (हाई स्कूल वहाँ से ढाई मील था और प्रायमरी स्कूल साढ़े तीन-चार मील।) इसलिए बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के विचार से भूतना अपने परिवार को होस्टल न लाये थे। सुपरिंटेण्डेण्ट

के लिए बोर्डिंग में जो अलग क्वार्टर था, वह उन्होंने एक दूसरे अध्यापक को सहर्ष दे रखा था और स्वयं वहीं एक साधारण कमरे में रहते थे।

उनकी लड़की किला मुहल्ला की एक पाठशाला की सातवीं कक्षा में पढ़ती थी। लड़का वहीं की प्रायमरी शाखा में पढ़ता था। भूतना कभी-कभी वेतन देने अथवा बाज़ार से होस्टल का राशन खरीदने के दिन घर का चक्कर लगाते। घबराये हुए-से, पागलों की तरह आते और उसे तरह एड़ियाँ उचकाते तेज़-तेज़ वापस चले जाते। उनका प्यार तो बच्चों को क्या मिलता, पर उनकी क्रूरता से वे अवश्य बचे रहते।

होस्टल से अवकाश पाने पर जब भूतना घर आ गये तो सप्ताह भर लगातार सोते रहे। जब उनकी चोटें कुछ ठीक हो गयीं तो उन्हें फिर होस्टल की याद सताने लगी। वहाँ उतनी जल्दी जाना सम्भव न हुआ तो उन्होंने अपना ध्यान अपने बच्चों की ओर फेरा और एक को ब्रह्मचारिणी और दूसरे को बाल ब्रह्मचारी बनाने के महत कार्य में संलग्न हो गये। उनके इस प्रयास का फल ठीक-ठीक क्या हुआ, इसका पता तो चेतन को बहुत देर बाद चला, परन्तु उनके इस प्रयास की सरगर्मी का प्रमाण चेतन को उन्हीं दिनों मिल गया।

वह शाम को जाने किसी काम से, अथवा यूँ ही टहलने, इमाम नासरुद्दीन जा रहा था। छत्ती गली के बाहर निकला ही था कि भीड़ के आगे-आगे एक युवक की गर्दन पकड़े, क्रोध से दाँत निकाले, निचला होंट लटकाये, आँखें लाल-अंगारा किये, अपनी चिरपरिचित भंगिमा में भूतना भागम-भाग आते दिखायी दिये।

'मास्टरजी क्या बात है?' सुक्खू बिस्कुट वाले ने सहसा दुकान से नीचे उतरते हुए पूछा।

भूतना क्षण भर के लिए उसकी दुकान के आगे रुके। एक घूँसा उस युवक की पीठ पर जमाते हुए उन्होंने सुक्खू को बताया कि वह 'भूतनी दा पुत्तर' उनकी लड़की से छेड़खानी कर रहा था और वे कई दिनों से देख रहे थे। आखिर आज उन्होंने उसको पकड़ लिया और अब

वे उसकी सारी बदी निकाल कर दम लेंगे। दाँत किचकिचा कर उन्होंने घोषणा की—'बद देया पुत्तरा! तूं बकरा एँ ते मैं कसाई आँ, चल ते किद्धर नूं चलना एँ।' और उसकी पीठ पर एक और घूंसा जमाते हुए उसी प्रकार गर्दन से दबोचे, धकेलते हुए-से, वे उसे ले चले।

प्रतिवाद में युवक क्या मिनमिनाया, यह चेतन की समझ में नहीं आया। तमाशाइयों में किसी की समझ में आया होगा, इसमें भी चेतन को सन्देह था।

इतने वर्ष बाद, उस रात चेतन को उस युवक की शक्ल याद नहीं आयी, पर उस समय मास्टर रामचन्द का जो रौद्र रूप उसने देखा, वह उसकी स्मृति पर वैसे-का-वैसा अंकित था। उस लड़के को गर्दन से पकड़े, अपने किसी परिचित दुकानदार अथवा मित्र को अपनी उस मुहिम की कैफ़ियत देते और उस युवक को पीटते हुए, जिस प्रकार वे किला मुहल्ला से चल कर, 'भैरो बाज़ार' और 'बोह्ड़ वाला बाज़ार' से होते हुए छत्ती गली तक आये थे, उसी प्रकार 'लाल बाज़ार' पार कर 'बाँस बाज़ार' के दूसरे सिरे पर वे उसे पण्डित राधाराम वकील की कोठी पर ले गये। भीड़ को उन्होंने अन्दर जाने से मना कर दिया और स्वयं कोठी के बड़े फाटक में दाखिल हो गये।

पण्डित राधाराम आर्य समाज के प्रधान और नगर के प्रतिष्ठित वकील थे। चेतन भी भीड़ के साथ उस युवक का अंजाम जानने के लिए गयी रात तक उनकी कोठी के बाहर खड़ा रहा, पर न वह युवक निकला, न मास्टर रामचन्द। हार कर भीड़ धीरे-धीरे छँट गयी और वह भी घर चला आया।

कुछ दिन बाद पता चला कि पण्डित राधाराम ने उस युवक को डाँट-डपट कर कोठी के पिछले दरवाज़े से निकाल दिया था और भूतना को समझाया था कि उन्होंने उस युवक को जो इतना पीटा है, यदि वह अदालत में जा कर भारतीय दण्ड विधान की धारा ३२३ अथवा ३२६ के अधीन फ़ौजदारी का मामला चला दे तो वे क्या करेंगे? यदि उसने

कहा कि मैंने लड़की को नहीं छेड़ा तो वे क्या प्रमाण देंगे ? वकील साहब ने उन्हें समझाया कि आपको अपनी लड़की को कचहरी में हाज़िर करना पड़ेगा। वकीलों के नामाकूल प्रश्नों के उत्तर उसे देने होंगे। मुफ़्त में उसकी बदनामी होगी।

यह सब सुन कर भूतना शान्त हो गये। वकील साहब ने उन्हें समझाया कि लड़की सयानी हो गयी है तो उसकी शादी कर दें और उन्होंने उस वक्त तक भूतना को कोठी से बाहर नहीं जाने दिया, जब तक बाहर इकट्ठे तमाशाइयों में सभी-के-सभी एक-एक कर नहीं चले गये।

उनकी सुपुत्री की वय तब बारह-तेरह वर्ष की थी, पर उसे पूर्ण ब्रह्मचारिणी बनाने का विचार छोड़ कर भूतना ने उसका ब्याह कर दिया। रहा लड़का तो वह कैसा बाल ब्रह्मचारी बना, इसका पता चेतन को तब लगा जब किसी-न-किसी तरह किला मुहल्ला के स्कूल से चौथी पास कर वह पाँचवी कक्षा में हाई स्कूल आया। मास्टर रामचन्द उसे सुधार सके या नहीं, पर यह बात सोलह आने सच है कि उसने उन्हें एकदम सुधार दिया।

०

चेतन उस समय नवीं कक्षा में पढ़ता था। दो वर्ष आठवीं में लगा कर वह किसी-न-किसी प्रकार अपने भाई की सहायता से आठवीं का वह दुर्गम नद पार कर आया था। चूंकि रेखा गणित में उसकी रुचि थी, इसलिए भाई साहब ने उसे उसमें ऐसा ताक कर दिया कि जब दूसरे वर्ष उसने परीक्षा दी तो असफल नहीं रहा। इसी रेखा गणित के सहारे उसने मैट्रिक पास किया, नहीं गणित में जैसा वह कमज़ोर था, उसे देखते हुए दस वर्ष तक दसवींसे उसका निकल पाना असम्भव था।

एक दिन आधी छुट्टी का समय था। लड़के स्कूल के मैदान में खेल रहे थे कि बरामदे में, जहाँ टीचर लोग बैठते थे, ज़ोर-ज़ोर से भूतना के चिल्लाने की आवाज़ सुनायी दी। कुतूहलवश लड़के उधर भागे।

चेतन भी उनके पीछे जा कर खड़ा हो गया—ऐसे कि यदि भूतना उधर लपकें तो उस पर उनका हाथ न पड़े। तब उसने देखा कि वे एक छोटे-से मैले गन्दे लड़के को बेतरह धुन रहे हैं और बड़े ज़ोरों से अपने कसाई और उसके बकरा होने की घोषणा कर रहे हैं और वह लड़का है कि न रोता है, न चिल्लाता है, बस रेत के बेजान बोरे की तरह पिट रहा है।

पूछ-ताछ करने पर चेतन को मालूम हुआ कि वह उनका लड़का बिरजू है। पिछले दिन घर से भाग गया था। बोर्डिंग के लड़के उसे सारे शहर में ढूंढ़ कर हार गये। अभी मिला है। श्मशान में छिपा हुआ था। रात भर वहीं रहा।

रात भर जो निडर लड़का मरघट में छिपा रहा, चेतन के मन में उसे अच्छी तरह देखने की उत्सुकता हुई। छुट्टी मिलते ही वह पाँचवीं कक्षा की गैलरी के आगे जा खड़ा हुआ। बिरजू जब बस्ता लिये हुए निकला तो चेतन ने उसे ध्यान से देखा। छोटे-से कद का गन्दा-मैला लड़का था। नाक तीखी थी, पर चेहरा पिचका-सा लगता था। मुख पर चेचक के मद्धम-से दाग़ थे। नाक से निरन्तर लेस बह रही थी, जिसे वह जब तब अपनी आस्तीन से पोंछ लेता था। कुछ अजीब तरह की भावना-हीन शून्यता उसकी आकृति पर बिराज रही थी।

(चेतन ने उस छोटी-सी ज़िन्दगी में भी अनेकानेक चेहरे देखे थे। टिमटिमाते तारों का जैसे आभास रहता है, पहचान नहीं रहती, इसी तरह उनमें से अधिकांश को वह तब देखता तो पहचान न पाता। लेकिन कुछ ऐसी आकृतियाँ भी होती हैं, जिनकी प्रत्येक रेखा मानस-पट पर अंकित हो जाती है। मास्टर रामचन्द और उनका सुपुत्र ऐसी ही आकृतियों में से थे। मास्टर रामचन्द से तो ख़ैर चेतन दो वर्ष तक पढ़ा था, उन्हें बहुत निकट से उसने देखा था। बिरजू को तो ज्यादा देर तक देखने का अवसर उसे नहीं मिला। फिर भी न जाने उसकी सूरत में क्या था कि उसकी याद उसी प्रकार बनी हुई थी।)

दूसरे दिन जब चेतन स्कूल पहुँचा तो सारा स्कूल इस चर्चा से

भिनभिना रहा था, कि भूतना का लड़का साँझ ही से फिर भाग गया है। स्कूल से वह घर गया ही नहीं, रास्ते ही से रफ़ूचक्कर हो गया।

इस बार वह तीसरे दिन पकड़ा गया। भूतना अपनी लड़की की शादी के बाद फिर होस्टल में आ गये थे और पूर्ववत अवैतनिक सुपरिंटेण्डेण्ट बना दिये गये थे। लड़की के पठन-पाठन की चिन्ता उन्हें रही न थी, बिरजू हाई स्कूल में आ गया था, इसलिए वे किला मुहल्ला छोड़, अपने बीवी-बच्चे के साथ होस्टल उठ आये थे। जब बिरजू स्कूल से चलने के बाद होस्टल नहीं पहुँचा और वहाँ पहुँचने पर भूतना को पता चला कि वह बद फिर ग़ायब हो गया है तो उन्होंने फिर लड़कों को दौड़ा दिया। मन्दिर, मस्जिद, श्मशान और कब्रिस्तान—लड़कों ने सब देख डाले, पर वह कहीं नहीं मिला। तीसरे दिन होस्टल का एक लड़का अपने गाँव फगवाड़ा जा रहा था, रास्ते में फिलौर के स्टेशन पर उसे बिरजू दीख पड़ा। वह उसे बरबस ले आया।

इस बार भूतना ने होस्टल के सभी लड़कों के सामने बेंत से उसकी मरम्मत की। इसलिए भी कि न केवल बिरजू को नसीहत हो, वरन छात्रों को भी कान हो जायें कि जब उनका सुपरिंटेण्डेण्ट अपने लड़के को उसके दोष पर घुन कर रख सकता है तो उनको भी क्षमा न करेगा। चेतन ने बिरजू को उस दिन पिटते नहीं देखा, पर उसने सुना था कि कई बेंत टूट गये थे। स्कूल में कई दिन उस सज़ा की चर्चा रही। भूतना गर्व-स्फीत स्वर में उसका ज़िक्र करते रहे और अपने सहकारियों के सामने घोषणा करते रहे कि वे उस बिरजू की सारी बदी निकाल देंगे।

लेकिन इस बात को महीना भी पूरा नहीं हुआ कि बिरजू फिर भाग गया। इस बार वह ऐसा भागा कि महीनों तक उसकी खोज-खबर न मिली। भूतना कभी बहराम जाते, कभी बंगा, कभी इलावलपुर, कभी फगवाड़ा। दूर-पार जहाँ कहीं भी कोई सगा-सम्बन्धी रहता था, भूतना ने अपने सुपुत्र की खोज की, लेकिन उस 'बद' का पता न चला। भूतना लगभग पागल हो गये। उन्हें देख कर पहली बार चेतन को

इस बात का एहसास हुआ कि उस कसाई के पहलू में माँस का वह नाज़ुक लोथड़ा भी है, जिसे दिल कहा जाता है।. . .लड़की अपनी ससुराल चली गयी थी। उसके बाद उनके घर बस यही लड़का था। उन्हीं की मार के भय से भागा है, यह बात बीस प्रकार से भूतना के कान में पड़ी। और शायद ज़िन्दगी में पहली बार उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि मार-पीट की लाठी सभी गधों को नहीं हाँक सकती, कोई अड़ियल हठ कर के बीच बाज़ार बैठ भी सकता है। एक-डेढ़ महीने बाद एक आर्य समाजी भजनीक ने लुधियाने से उन्हें कार्ड लिखा कि उन्होंने बिरजू को एक हलवाई के यहाँ बरतन मलते देखा था, वे उसे अपने साथ घर ले आये हैं और उसे तत्काल मँगा लिया जाय।

उसका बेटा हलवाई की दुकान पर जूठे बर्तन मल रहा था, यह बात सुन कर भूतना की पत्नी इतना रोयी कि अपनी तमाम डाँट-डपट के बावजूद भूतना उसे चुप न करा सके और पहली गाड़ी से लुधियाने को चल दिये।

इस बार भूतना ने बिरजू को नहीं पीटा। लड़का भी ऐसे रहने लगा जैसे सदा के लिए सुधर गया। लेकिन भूतना अपनी आदत इतनी जल्दी कैसे छोड़ सकते थे! परीक्षा में वह फ़ेल हो गया तो भूतना ने स्कूल से आ कर उसका कान पकड़ लिया और लगातार चार घूँसे उसकी पीठ पर रसीद करते हुए घोषणा की कि वह बकरा है और वे कसाई हैं और वे उसे कच्चा चबा जायँगे और नमक भी नहीं लगायेंगे।

लेकिन उस पितृ-भक्त ने अपने पिता को यह कष्ट नहीं दिया। आधी रात को, जब मास्टरजी मुँह खोल कर ज़ोर-ज़ोर से ख़र्राटे ले रहे थे, वह दबे पाँव उठा और चुपचाप होस्टल से निकल गया।

इसके बाद क्या हुआ, बिरजू कब आया, चेतन को याद नहीं। मैट्रिक की परीक्षा के बाद परिणाम सुनने वह स्कूल नहीं गया। वह बी० ए० में था, जब उसने बिरजू को एक दिन भैरो बाज़ार में पुरानी पुस्तकों की एक छोटी-सी दुकान सजाये देखा। उसके कपड़े उतने ही गन्दे और

मैले थे, चेहरा उसी प्रकार बैठा-बैठा था और उसकी नाक उसी तरह बह रही थी।

चेतन का छोटा भाई शिवशंकर उन दिनों आठवीं कक्षा में पढ़ता था। उससे पूछने पर चेतन को पता चला कि बिरजू को विद्वान बनाने के समस्त प्रयास कर देखने के बाद भूतना हार कर बैठ गये थे और आखिर उन्होंने उसे दुकान खुलवा दी थी।

'क्या अब भी वे उतना ही पीटते हैं ?' उसने पूछा था।

'आतंक तो उनका उतना ही है,' शिव ने कहा था, 'पर अब वे पीटते नहीं। ज़्यादा वक्त क्लास में ऊँघते रहते हैं।'

•

इसके बाद भूतना से चेतन का साक्षात्कार नहीं हुआ। वह बी० ए० पास करके लाहौर चला आया। तीन वर्ष बाद, जब वह अपने छोटे भाई को कॉलिज में दाखिल कराने गया तो उसने प्रिंसिपल के कमरे के बराबर क्लर्क की मेज़ पर भूतना को बैठे छात्रों की फ़ीस लेते देखा। पूछने पर मालूम हुआ कि भूतना को स्कूल से हटा दिया गया है। चूंकि पुराने समर्पित टीचर हैं, इसलिए दया करके प्रिंसिपल ने क्लर्क की नौकरी दे दी है।

प्रिंसिपल से मिल कर जब चेतन बाहर आया तो भूतना बरामदे में खड़े थे। उनके चेहरे की वह भयानकता जाने कहाँ ग़ायब हो गयी थी और उसका स्थान कुछ अजीब-सी बेबसी ने ले लिया था। चेतन ने आँख भर कर उन्हें देखा—उनके दाँत वैसे ही मज़बूत और खुले-खुले थे, निचला होंट वैसे ही लटका था, पर इन दोनों से जिस क्रूरता का आभास मिलता था, उसका कहीं निशान तक नहीं था। चेतन ने उनकी आँखों को देखा। हाँ, अन्तर वहीं आया था। उनकी वह वहशत और वर्बरता चुक गयी थी—बुझी-बुझी, दयनीय आँखें। चेतन ने लक्ष्य किया —उनके सिर पर पगड़ी भी नहीं थी। बाल एकदम सफ़ेद हो गये थे। कन्धे झुक गये थे और उनकी गुद्दी के नीचे कूबड़ कुछ और उभर

आया था। और इन दोनों ने उन बुझी-बुझी आँखों के साथ मिल कर उनके चेहरे को कुछ अजीब-सा निरीह बना दिया था। चेतन ने उनके पास से गुज़रते हुए उन्हें 'नमस्कार' किया।

यद्यपि चेतन (जब वह परीक्षा न दे पाने के कारण दूसरे वर्ष आठवीं में उनके चंगुल में फँस गया था) एक बार उनसे पिट जाने पर अपने बुड्ढे दादा को स्कूल ले गया था और उनकी गरज से हेडमास्टर तक लरज़ गये थे और उन्होंने भूतना को बे-भाव की सुनायी थीं और चेतन का चेहरा उन्हें याद रहना चाहिए था, लेकिन भूतना ने उसको नहीं पहचाना। एक अजीब-सी दयनीय मुस्कान उनके होंटों पर फैली और भूतना ने बिना उसे देखे, धरती में निगाहें गाड़े उसके 'नमस्कार' का उत्तर दे दिया।

उस तमाम ज़ुल्म के बावजूद, जो उनके हाथों उसे सहने पड़े थे, चेतन का हृदय उनके प्रति कुछ विचित्र-सी सहानुभूति से भर आया। वह सहानुभूति इस जानकारी के बाद कुछ बढ़ी ही कि अधिकारियों ने इसलिए उन्हें अलग कर दिया था कि लड़के अब उनका आतंक नहीं मानते थे।

विडम्बना यह है कि जब वे सचमुच बच्चों को पढ़ाने के योग्य हुए थे, अधिकारियों ने उन्हें स्कूल से निकाल बाहर किया था।

प
न्द्र
ह

चेतन की आँखें भारी होने लगी थीं, जब एक बड़ी-सी कार रात के तीसरे पहर सड़क के सूनेपन का लाभ उठाती हुई फ़ुल-स्पीड में ज़न्नाटे से गुज़र गयी। उसकी तेज़ बत्तियों का एक क्षणिक लिश्कारा सामने सड़क के टुकड़े पर जैसे उड़ता चला गया। बराबर के टाल पर एक दूसरे पर रखे बाँस के ढेर धरती की लरज़िश से खड़खड़ाये; ज़रा आगे मेयो अस्पताल के चौराहे पर कार की पों-पों रात के सन्नाटे को चीरती चली गयी। फिर सब कुछ वैसे ही शान्त और निस्तब्ध हो गया।

चेतन आँखें बन्द किये निश्चेष्ट पड़ा था। उसकी आँखें इस बीच कई बार भारी हुई थीं, लेकिन दिमाग़ का तनाव कम न हुआ था और नीम गनोदगी में भी बदस्तूर उसके दिमाग़ के पर्दे पर एक के बाद एक चित्र बनता रहा था। अपने झूठ का पीछा करता हुआ वह चौथी से आठवीं कक्षा तक और अपने घर से भूतना के घर तक पहुँच गया था। भूतना के प्रसंग से छुट्टी पा, उसने करवट बदल कर सोने का प्रयास किया था, ध्यान को मस्तक में

लगाया था। उसकी आँखें भी भारी हो गयी थीं और वह ऊँघ भी गया था, लेकिन तभी कार के ज़न्नाटे ने उसकी नींद को झकझोर दिया।

कार के मालिक को मन-ही-मन एक कुफ़्रतोड़ गाली दे कर चेतन ने फिर करवट बदली और सोने का प्रयास किया। नींद उसकी आँखों पर उतर भी आयी, पर तभी उसका ध्यान अपनी नाभि के नीचे मसाने के तनाव पर चला गया। उसने लाख यत्न किया कि उधर से ध्यान हट जाय, लेकिन नहीं हटा और उसकी आँखों में उतरती हुई नींद फिर जाने कहाँ ग़ायब हो गयी। वह उठा और जा कर गली की नाली पर बैठ गया।

निवृत्त हो कर वापस आया तो उसने बायें हाथ से सुराही को टेढ़ा कर हाथ धोया। फिर अनजाने पानी का गिलास भरा। क्षण भर वह उसे हाथ ही में लिये रुका रहा। पिये न पिये, इसी असमंजस में! वह पानी का गिलास पियेगा, तो फिर जब सोने लगेगा, उसे लघुशंका होगी, उससे निबट कर इत्मीनान से सोये, इस ख़याल से वह फिर उठेगा, फिर सोने से पहले पानी पी लेगा और यह दुश्चक्र चलता रहेगा. . .चेतन की यह आदत थी कि उसका दिमाग़ तना न हो और वह पड़ते ही सो जाय तो एक-आध बार तड़के उठे तो उठे, वरना वह गहरी नींद सोता था— न उसे पेशाब सताता था, न प्यास। और अगर कहीं उसकी नींद उचट जाय तो जब तक दिमाग़ को सब तरफ़ से हटा कर वह नींद को बुलाता था, उसे मसाने में तनाव का एहसास हो जाता था। वह उठता था, निबट कर और पानी पी कर फिर लेटता था तो उसकी नींद उड़ जाती थी और उसका दिमाग़ भटक जाता था। कई बार वह रात-रात भर जग जाता था और इसी कारण दोपहर भर सोता था।

तीन कब के बज चुके थे। उसने सोचा कि पानी न पिये ताकि उसका मसाना भारी न हो और उसे नींद आ जाय! लेकिन वह जानता था कि वह पानी न पियेगा तो उसका गला सूखने लगेगा और जब तक वह उठ कर पानी न पी लेगा, उसे चैन न आयेगा।. . .और वहीं गिलास

हाथ में लिये-लिये उसके सामने उसके दादा का चित्र घूम गया, जिनके कारण बचपन ही से उसे सोने से पहले पानी पीने की आदत पड़ गयी थी।

चेतन ने गिलास मुँह से लगा लिया, लेकिन आधा पी कर शेष गिरा दिया, ताकि उसका गला भी तर हो जाय और उसके मसाने पर ज़ोर भी न पड़े।

हमेशा ऐसे में उसे दादा की याद आ जाती थी। उस कहानी की भी, जो प्रायः वे स्वयं सोने से पहले पानी पीने के सिलसिले में अपने पोतों को सुनाया करते थे।—मँझला कद, पतला-छरहरा लेकिन गठा हुआ बदन, गोरा रंग, सन की तरह सफ़ेद औरंगज़ेबी दाढ़ी, गोल सिर पर कैंची की मदद के कटे हुए बहुत छोटे बाल—पटवारगीरी से रिटायर हो कर जब वे घर आ गये थे तो वे रात को छत पर सोते वक्त चेतन और उसके भाइयों को—चन्दा राजा : तारा राजा; लल्लू करे कवल्लियाँ, रब सिद्धियाँ पावे;[1] निखट्टू रुल्दू और तीन परियाँ तथा ऐसी ही कई-कई कहानियाँ सुनाते। सोते वक्त वे पानी का गिलास ज़रूर पीते और तब उस राजकुमार की कहानी भी सुनाते थे, जो प्यासा सो गया था और जिसका प्यासा भौर (रूह) शरीर को छोड़ कर पानी की तलाश में उड़ता फिरा था और एक घड़े में बन्द हो गया था।

चेतन बिस्तर पर लेटा तो उसके दिमाग़ में वह कहानी घूम गयी। कौन राजकुमार था? कहाँ का राजकुमार था? चेतन यह सब भूल गया था। उसे बस इतना स्मरण था कि एक राजकुमार था। उसकी रानी माँ ने बाँदी को आदेश दे रखा था कि हमेशा सोने से पहले उसे पानी पिला दिया करे। एक दिन बाँदी का यार आ गया। वह उससे बातों में ऐसी निमग्न हुई कि राजकुमार को पानी पिलाना भूल गयी। सोते में राजकुमार को बड़ी प्यास लगी तो उसकी रूह शरीर को छोड़ कर प्यासी भटकने

---

१. मूर्ख लल्लू उल्टी बातें करे, लेकिन भगवान सब सीधी कर दे।

लगी। किसी गाँव में एक औरत पानी पीने उठी थी। उसने घड़े का ढक्कन उठा रखा था। प्यासी रूह उसमें चली गयी। औरत ने पानी पी कर ढक्कन घड़े पर रख दिया और रूह वहीं बन्दी हो गयी। और सुबह जब राजकुमार न उठा तो रानी पछाड़ें खाने लगी. . .

कहानी का अन्त क्या हुआ था, चेतन को याद नहीं। लेकिन दादा ने उन्हें यह कहानी इतनी बार सुनायी थी कि चेतन के बालक-मन में प्यासे सोने के बारे में एक दहशत पैदा हो गयी थी। उसे लगता कि वह पानी पी कर न सोयेगा और नींद में उसकी प्यासी रूह छटपटाती घूमेगी और कहीं वह किसी घड़े या सुराही में बन्द हो गयी तो. . .इस विचार मात्र से उसका दिल बैठने-सा लगता. . .और उसे याद नहीं, वह कब सोने से पहले पानी पीने लगा था. . .

कैसी हास्यास्पद कहानी के कारण उसके मन में दहशत बैठ गयी थी और उसने यह वाहियात आदत डाल ली थी ?—चेतन ने मन-ही-मन सोचा और अपने उस पटवारी दादा के भोलेपन पर उसे हँसी आ गयी—चण्डी के उपासक, तमाम देवी-देवताओं में विश्वास रखने वाले, परम आस्थावान और सादालौह ! और मस्तिष्क की जिस चिन्तन-प्रक्रिया से वह अपने भूठ का पीछा करता हुआ, भूतना और भूतना से अपने दादा तक पहुँचा था, उसी से वह दादा की सादालौही से फिर भूतना तक पहुँच गया और उसकी उनींदी आँखों में वह घटना घूम गयी, जब भूतना ने एक बार उसे बेकसूर पीटा था और वह अपने बूढ़े दादा को स्कूल ले गया था।

०

पहले वर्ष में भूतना के भय, स्कूल से अनुपस्थिति और बीमारी के कारण चेतन परीक्षा में नहीं बैठा था। यद्यपि मन-ही-मन उसे इस बात का दुख हुआ था कि उसके साथ पढ़ने वाले लड़के एक कक्षा आगे चले गये हैं और उसे अपने से एक कक्षा पीछे वाले छात्रों के साथ बैठना पड़ेगा और वह कुलबीर खन्ना की सहायता से भी वंचित हो जायगा, लेकिन

परीक्षा में न बैठने के कारण दूसरा कोई चारा न था और उसके सामने आठवीं कक्षा में नये आने वाले छात्रों के साथ बैठने की मजबूरी थी। तब सबसे पहले उसने यह तय किया कि वह 'ए' सेक्शन के किसी मेधावी छात्र को खोजे। चेतन के सौभाग्य से उसकी यह समस्या उसके मुहल्ले ही में हल हो गयी। लाला मनिराम का मँझला लड़का अमींचन्द, जो उससे एक वर्ष पीछे था, उसके साथ आ मिला और चूंकि वह सातवीं में सभी विषयों में फ़र्स्ट आया था, इसलिए 'ए' सेक्शन में गया। अमीं-चन्द से चेतन की दोस्ती नहीं थी। वह दिन-रात पढ़ने वाला, अपने में बन्द, निहायत असामाजिक, रट्टू लड़का था—उसके व्यवहार में चेतन को हल्के-से दम्भ का भी आभास होता था। उसके मुकाबले में वह उसी वर्ष आठवीं में आने वाले अपने ही मुहल्ले के दूसरे लड़के अनन्त को पसन्द करता था। पहले ही से दोनों में कुछ दोस्ती थी, जो आठवीं में समकक्ष हो जाने के कारण और भी गहरी हो गयी।. . .लेकिन अमींचन्द के निकट होने का मौका वह निरन्तर ढूंढ़ता रहा।

नया सत्र शुरू होते ही स्कूल का वार्षिक अधिवेशन हुआ। अमींचन्द को हर विषय में प्रथम रहने के कारण ढेर सारे पुरस्कार मिले। कॉलेज में सब से अच्छे चरित्र के लिए अलग से इनाम मिला। उसके पास इतनी किताबें हो गयीं कि अकेले उन्हें घर ले जाना उसके लिए कठिन हो गया। तब मुहल्ले के सभी फिसड्डी लड़के, ऐसे खुशी-खुशी उसके साथ किताबें उठा कर चले, जैसे पुरस्कार उन्हीं को मिले हों। क्षणांश को चेतन के मन में आया कि अमींचन्द के निकट होने का यह सब से अच्छा अवसर है। पर उसके अहं को यह स्वीकार न हुआ। चाहे वह परीक्षा न देने के कारण उसके साथ आ मिला हो, पर था तो वह उससे एक साल बड़ा ही। फिर वह पण्डित शादीराम का बेटा था, जिनसे सारा मुहल्ला थर्राता था, जबकि अमींचन्द के पिता मामूली सब-पोस्ट-मास्टर थे और ऐसे दबे पाँव आते-जाते थे कि किसी को उनके अस्तित्व

का भी पता न चलता था। दूसरे लड़कों की तरह अमींचन्द की पुस्तकें उठाये-उठाये उसके साथ जाना चेतन को नहीं रुचा।

पर चाहे उसे अच्छा लगे या बुरा, अमींचन्द के बिना उसका काम न चल सकता था, इसलिए चेतन ने कभी कोई सवाल पूछने के बहाने, कभी किसी शब्द का उच्चारण जानने की गरज़ से अमींचन्द के यहाँ आना-जाना शुरू कर दिया। घाते में उसकी भाभी और माँ के ढेरों काम किये और आखिरकार वह उसे अपनी रविश पर ले आया और 'ए' सेक्शन में एक दिन पहले कराये गये प्रश्न नकल करने लगा और आठवीं कक्षा के दूसरे वर्ष में उसका काम पुराने ढर्रे पर चल निकला।

०

लेकिन इस तमाम सावधानी के बावजूद वह एक दिन भूतना के हत्थे चढ़ गया और उस वक्त जब उसका कोई दोष न था, बुरी तरह पिट गया।

०

वह चार-पाँच दिन बीमार रहने के बाद स्कूल आया था। (और सचमुच बीमार रह कर आया था) एक दिन पहले भूतना ने टाइम-टेबल बदल दिया था और आदेश दिया था कि रेखा गणित की पुस्तक के बदले सब लड़के अपना चक्रवर्ती गणित लायें। चेतन पुराने टाइम टेबल के अनुसार रेखा गणित ही की पुस्तक ले गया था। भूतना क्लास में आये तो रोज़ की तरह मानीटर को सवाल लिखाने का आदेश देने के बदले उन्होंने गोली दाग़ी कि सब लड़के अपने हाथों में अपनी-अपनी किताब ले कर खड़े हो जायें और वे स्वयं पुस्तकें देखेंगे।

बात यह थी कि पिछले दिन भूतना ने कई 'भारत के सितारों' की मरम्मत की थी और चूँकि पूरा पीरियड इसी में बीत गया था, इसलिए उन्होंने आदेश दिया था कि दूसरे दिन भी वे गणित ही करायेंगे और सब अपनी गणित की पुस्तक ले कर आयें। जिन छात्रों के पास पुस्तक नहीं थी, वे उनके पीरियड में ग़ायब हो गये थे।. . .चेतन भूतना

की बात नहीं समझा। अपनी तरफ़ की डेस्कों की कतार में केवल उसी के पास चक्रवर्ती गणित नहीं था। जब भूतना पुस्तक देखते हुए उसकी डेस्क पर आये तो उसने रेखा गणित की पुस्तक आगे बढ़ा दी। भूतना ने गर्दन से पकड़ कर एक घूंसा उसकी पीठ पर रसीद करते हुए कहा, 'भूतनिया, इह चक्रवर्ती हिसाब ऐ ?'[१]

हालाँकि चेतन की पीठ दोहरी हो गयी थी और उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये थे, उसने कहा, 'मास्टरजी आज रेखा गणित का पीरियड है, इसलिए मैं यही लाया हूँ।'

'ओ भूतनी देया पुत्तरा ! कल जद मैं चक्रवर्ती लियाण नूँ किहा सी ताँ तूं सुत्ता पिया सें ?'[२]

और यह कहते हुए उन्होंने उसके दोनों कान पकड़ कर उसे झिंझोड़ा और फिर बाँया कान पकड़े-पकड़े दन् से दायें हाथ का एक थप्पड़ उसके जड़ दिया।

चेतन की ग़लती होती तो शायद वह चुपचाप मार खा जाता अथवा रो कर माफ़ी माँगता, पर उसे अपना दोष कहीं नज़र नहीं आया, इस-लिए इस बात के बावजूद कि भूतना के थप्पड़ से उसका गाल और कनपटी जल उठे और सिर चकरा गया और आँसू अनायास उसके दोनों गालों पर बहने लगे थे, वह चुप नहीं रहा। उसने कहा, 'मास्टरजी मैं तो बीमार था, पाँच दिन की छुट्टी पर था, मुझे कल की बात का पता नहीं।'

भूतना ने दायें हाथ से उसकी गर्दन दबा कर उसे दो-तीन झटके दिये और जैसे सारी क्लास को सुनाते हुए बोले, 'ओए बदा तैनूँ कदीं

---

१. अरे भुतने, यह चक्रवर्ती गणित है ? २. ओ भुतनी के बच्चे, कल जब मैंने चक्रवर्ती गणित लाने का आदेश दिया था, तब तू क्या सोया हुआ था ?

पता वी होया ए, स्कूल आण लग्गेयाँ किसे कोलों पुच्छ लैणा सी।'[1]
. . .और एक मुक्का उसके और जमा कर वे आगे बढ़ गये।

जाने चेतन के मन में क्या गोला-सा उठा। एक सात्विक क्रोध से उसका तन-मन सुलग उठा और यह अजीब बात है कि पल भर में उसने सोच लिया कि भूतना के ज़ुल्म से नजात पाने का इससे बेहतर मौका फिर हाथ नहीं आयेगा और ज्योंही भूतना ने पीठ फेरी, वह बस्ता-वस्ता वहीं डेस्क पर छोड़ कर तेज़-तेज़ कमरे से बाहर निकल गया। भूतना किसी लड़के को उसे वापस लाने न भेज दें, इसलिए गैलरी पार कर सीढ़ियाँ उतरते ही वह सरपट भागा। स्कूल का गेट पार कर वह टिक्का के बाग़ तक भागता चला गया। जब इतनी दूर तक उसे अपने पीछे किसी के आने का आभास नहीं मिला तो क्षण भर को रुक कर उसने पीछे देखा और आश्वस्त हो कर भागना छोड़ दिया, लेकिन उसके पैरों की गति मन्द नहीं हुई—दरवाज़ा ख़ाकंरूबाँ में से हो कर चौक महेन्द्रुआँ तक बिजली के कौंधे-सा लपकता हुआ और फिर वहाँ से मुहल्ला महेन्द्रुआँ को मुड़ कर मिट्ठा बाज़ार, बोह्ड़ वाला चौक, लाल बाज़ार, बाज़ार पटफेरियाँ, पापड़ियाँ और बाजियाँ वाले बाज़ार चीरता हुआ वह आनन्दों के चौक में अपने घर पहुँचा और उसी तेजी से धड़-धड़ाता हुआ सीढ़ियाँ चढ़ गया।

माँ ऊपर आँगन के बीचोंबीच (नीचे आँगन में प्रकाश के लिए) बने हुए लोहे के जँगले के पास रसोई-घर के आगे बैठी बर्तन मल रही थी। इस तरह उसे परेशान हाल आते देख कर वह घबरा गयी।

'क्या हुआ।' उसने भयभीत स्वर में पूछा और माँ की बात के उत्तर में चेतन की आँखों से धार-धार आँसू बहने लगे—उसकी पीठ, कानों, गालों और कनपटियों का दर्द, जिसका इस बीच उसे खयाल तक

---

१. अरे बद ! तुझे कभी पता भी हुआ है ? स्कूल आते वक्त किसी से पूछ लेना था।

न आया था, कई गुना हो आया और ज़ार-ज़ार रोते हुए (इस एहसास के साथ कि दादा बैठक में हैं, पाठ ख़त्म कर चुके हैं और चण्डी स्तोत्र अलमारी में रख रहे हैं) हिचकियाँ लेते हुए उसने कहा, 'मुझे भूतना ने बेकसूर पीटा है, मुझे गालियाँ दी हैं। मैंने लाख कहा कि मैं बीमार था, मुझे मालूम नहीं कि चक्रवर्ती हिसाब लाना है, पर मेरी एक नहीं सुनी और मार-मार कर मुझे अधमरा कर दिया।'

तभी माँ का ध्यान उसके कानों की लाल लवों और तमतमाये गालों पर गया और उसका कलेजा मुँह को आ गया। उसने पानी से हाथ धोये कि उठ कर अपने बेटे को सीने से लगा ले कि तभी धोती के ऊपर कमीज़ पहनते हुए उसके दादा सक्रोध बैठक से निकले (सर्दी हो या गर्मी, वे केवल धोती पहने, नंगे तन चण्डी की पूजा करते थे।) और, 'आ ते मैं पुच्छाँ तेरे ओस मास्टर नूँ, क्यों ओस ने तैन्नूँ बेकसूर मारेया ऐ।'[1] —कहते हुए उसकी बाँह पकड़े उसे लगभग पीछे घसीटते हुए वे सीढ़ियाँ उतर गये।

चेतन के दादा बहुत तेज़ चलते थे। उन्हें इस बात का गर्व था कि (पटवारगीरी के ज़माने में) पीठ पर कभी मकई के भुट्टों की, कभी बाजरे की और कभी बासमती चावलों की गठरी लादे, वे सुबह कपूरथला से चलते थे तो शाम को चेतन की परदादी के चरण छू कर ही पानी पीते थे।...'किस तराँ ओस भैंडीयाह्वे ने बेकसूर बच्चे नूँ मारेया। ओस अन्हें नूँ नज़र नहीं आया कि बच्चा बीमार ऐ?'[2] चेतन के दादा आगे-आगे बड़बड़ाते जा रहे थे और चेतन उनके पीछे-पीछे भागा जा रहा था। जिस तरह वह बाज़ारों को चीरता घर आया था, उसी तरह अपने दादा के पीछे-पीछे भागम-भाग वह स्कूल पहुँचा। गेट

---

१. आ तो मैं पूछूँ तेरे मास्टर को कि उसने क्यों तुझे निर्दोष पीटा है। २. किस तरह उस बहन के साथ जना करने वाले ने तुझे निर्दोष पीटा है। उस अन्धे को दिखायी नहीं दिया कि बच्चा बीमार है।

ही से उसने देखा कि हेड मास्टर हॉल के दरवाज़े में खड़े हैं। चेतन ने अपने दादा को बता दिया कि वे हेड मास्टर हैं और वहीं दरवाज़े के दायीं ओर हॉल में बैठते हैं।

तभी हेड मास्टर अन्दर चले गये। चेतन ने अपने दादा को बरामदे की सीढ़ियों के पास छोड़ा और बोला, 'दादाजी मैं अपनी क्लास में जाता हूँ। ज़रूरत पड़ी तो मुझे वहाँ से बुलवा लीजिएगा। आप हेड मास्टर से मिलिए।'. . .इतना कह कर वह दायीं ओर को खिसक गया। और दादा घड़घड़ाते सीढ़ियाँ चढ़ चले।

०

स्कूल की बिल्डिंग आयताकार थी। बीच में एक बहुत बड़ा हॉल था। दायें-बायें गैलरियाँ, जिनको जाने वाले दरवाज़े हॉल की दायीं-बायीं दीवारों के ऐन बीचोंबीच थे। गैलरियों के दोनों ओर दो-दो कमरे। इन आठ कमरों में पाँचवीं से आठवीं तक चार क्लासों के दो-दो सेक्शन। नवीं और दसवीं के लिए इस बिल्डिंग के पीछे स्कूल की पिछली हद पर एक नया ब्लॉक बना था। वहीं साइंस की प्रयोगशाला थी। ड्राइंग की क्लास हॉल में लगती थी। बरामदे से हॉल में दाखिल होते ही दायीं तरफ़ हेड मास्टर की मेज़ थी, बायीं ओर क्लर्क और खज़ानची की। उनके सामने वाले कोने में ड्राइंग की क्लास लगती। हॉल इतना बड़ा था कि ड्राइंग मास्टर की आवाज़ से (यद्यपि वे धीरे बोलते थे) हेड मास्टर के काम में कोई विघ्न न पड़ता।

चेतन की क्लास दायीं गैलरी के बायें कोने पर थी। वह दायीं ओर को चला कि आगे से मुड़ कर गैलरी में से होता हुआ अपनी क्लास को जाय, लेकिन अभी वह बरामदे की सीढ़ियों के ज़रा आगे, सातवीं कक्षा के पास ही पहुँचा था कि उसके कानों में दादा की गरजदार आवाज़ पड़ी, 'ओह केहड़ा मास्टर ए तुहाडा जेहड़ा बच्चेयाँ नूँ बेकसूर कुट्टदा ए ते ओहना दे वालदैन नूँ गालियाँ कड्डदा ए। ओसनूँ बुलाओ

न मेरे सामने। ओहदे च एन्नाँई ज़ोर ए ते मेरे नाल ज़रा दो-दो हत्थ कर वेक्खे।'[1]

दादा की गरज सुन कर और हेड मास्टर के अवाक और स्तम्भित चेहरे की कल्पना करके चेतन के होंटों पर अनायास मुस्कान दौड़ गयी। वह अपना अपमान और पीड़ा भूल गया। 'अब उस 'भूतनी दे पुत्तर' को पता चलेगा कि कैसे किसी को बेकसूर पीटा जाता है।' उसने मन-ही-मन कहा और भाग कर बिल्डिंग के कोने से मुड़, वह गैलरी की सीढ़ियाँ चढ़ गया। इतिहास का पीरियड शुरू हो गया था। उसने अपनी डेस्क से किताब उठायी और चुपचाप अगली डेस्क पर जा बैठा।

उसे अभी आ कर बैठे मुश्किल से दस मिनट हुए होंगे कि हेड मास्टर का बुलावा आ गया।

'हेड मास्टर साब चेतन को बुला रहे हैं।' चपड़ासी के मुँह से ये शब्द सुनते ही उसका दिल धड़क उठा। वह अपनी जगह खड़ा हो गया। अध्यापक ने सर के इशारे से उसे चपड़ासी के साथ जाने का आदेश दिया। गैलरी में चपड़ासी के पीछे-पीछे चलते हुए चेतन डरा, कहीं हेड मास्टर उसे इस बात के लिए सज़ा न दें कि उसने अपने दादा से जा कर क्यों शिकायत की। हेड मास्टर बड़े कठोर और शासन-प्रिय व्यक्ति थे। उनके पिता तो अंग्रेज़ी सरकार के किसी दफ़्तर में मामूली क्लर्क थे और उन्हें लड़कपन ही में छोड़ कर परलोक सिधार गये थे। लेकिन वे हमेशा कक्षा में सर्वप्रथम रहते हुए छात्र-वृत्ति पाते; पढ़ने के साथ-साथ पढ़ाते हुए एम० ए० की ऊँची कक्षा तक जा पहुँचे थे। चूँकि प्रिंसिपल के ख़ास शागिर्द थे और उनकी सहायता से इतनी ऊँची शिक्षा प्राप्त कर पाये थे, इसलिए उनके अनुरोध पर उन्होंने आर्य

---

१. वह आपका कौन-सा अध्यापक है, जो बेकसूर बच्चों को मारता है और उनके माता-पिता को गालियाँ देता है। उसे ज़रा मेरे सामने बुलाइए। उसमें इतना ही ज़ोर है तो मेरे साथ ज़रा दो-दो हाथ करे।

समाज को अपना जीवन दान कर दिया था। स्कूल के वे लाइफ़ मेम्बर हो गये थे और एम० ए० करते ही उन्हें हेड मास्टर का पद मिल गया था। छै फ़ुट ऊँचे, दोहरे बदन के गोल-मटोल गोरे आदमी थे। उनके चेहरे पर न मूँछें थीं, न दाढ़ी और लड़के उपेक्षा से उन्हें 'खोदा'[1] कहते थे। चेहरे पर सुनहरा चश्मा लगाते थे, पतलून-कोट और सिर पर पण्डिताऊ पगड़ी बाँधते थे और जवानी के बावजूद (कदाचित रौब डालने को) हाथ में छड़ी ले कर चलते थे।. . .गैलरी से हॉल में कदम रखते ही चेतन ने कोने की ओर निगाह दौड़ायी। हेड मास्टर अपनी मेज़ पर बैठे काग़ज़ों पर झुके हुए थे और उसके दादा का कहीं नाम-निशान न था। उसका दिल बे-तरह धड़कने लगा।

हेड मास्टर की मेज़ के पास जा कर उसने हाथ जोड़ कर होंटों में ही उन्हें 'नमस्कार' किया और अदब से एक ओर खड़ा हो गया।

'तुमने अपने बूढ़े दादा को क्यों तकलीफ़ दी।' सहसा हेड मास्टर ने सिर उठा कर उस पर आधी निगाह डालते हुए सख़्ती से कहा और वे उठे।

चेतन को लगा, वे कोने से छड़ी उठा कर उसे अभी पीटेंगे। वह अपने आप में सिमट गया और उससे कोई उत्तर नहीं बन पड़ा।

लेकिन हेड मास्टर ने छड़ी नहीं उठायी। उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखा—'तुम्हें मास्टर रामचन्द ने बेकसूर पीटा था तो घर जाने के बदले तुम्हें मेरे पास आना चाहिए था। अपने बूढ़े दादा को तकलीफ़ नहीं देनी चाहिए थी।'

और उन्होंने उसके कन्धे को थपथपाया, 'समझे!'

'जी!'

'आगे को कभी कोई ऐसी बात हो तो फ़ौरन मेरे पास आओ।'

और चेतन के कन्धे पर हाथ रखे-रखे वे उसे बाहर बरामदे में लाये।

---

१. जिसके चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ न उगे।

चेतन ने देखा—सामने मैदान में बायीं ओर शीशम के पेड़ के नीचे (जहाँ सभी क्लासों के लड़के बारी-बारी आ कर ड्रिल किया करते थे और उस वक्त किसी क्लास के लड़के गोल दायरा बनाये बैठे थे।) एक बेंच पर उसके दादा ड्रिल मास्टर हरिराम के साथ बैठे बातें कर रहे हैं।

हरिराम, ड्रिल मास्टर, न केवल उसके पिता के मित्र थे, वरन उन्हीं की तरह गठे बदन, कठोर चेहरे पर नींबू-टिकाऊ मूछें रखते थे और रोज़ पीते थे। अंतर केवल यही था कि वे पी कर उसके पिता की तरह शोर नहीं मचाते थे, बल्कि और भी चुप हो जाते थे। चेतन ने कई बार उन्हें नशे में घुत्त, नाक की सेध में देखते हुए, हलकी-सी लड़खड़ाहट में शाम के वक्त बाज़ार शेखाँ की ओर से आते देखा था। उस वक्त वे नमस्ते का जवाब भी नहीं देते थे। लेकिन चूँकि न केवल उसके पिता से, वरन कभी-कभार उनकी अनुपस्थिति में दादा से कह कर माँ से भी रुपये 'उधार' ले जाते थे और चेतन जानता था कि उसके पिता से उधार लेने वाले कभी न लौटाते थे, इसलिए मास्टर हरिराम की सख्तगीरी के बावजूद वह उनसे डरता नहीं था। यद्यपि वे क्रोध में होते तो बुरी तरह पीट देते थे, सारे ज़िले में सब से अच्छे एथ-लीट थे और दबदबा उनका इतना था कि सारा स्कूल इकट्ठा होता और लड़कों के शोर के मारे कान पड़ी आवाज़ न सुनायी देती और वे एक सीटी बजा कर ज़ोर से 'सायलेंस' कह देते तो मौत का-सा सन्नाटा छा जाता। पर, उन्होंने चेतन को कभी न पीटा था और उसकी कमज़ोरी और बीमारी के खयाल से वे उसे कठिन व्यायाम से भी छुट्टी दे देते थे।

हेड मास्टर चेतन के कन्धे पर हाथ रखे ड्रिल मास्टर के पास आये। मास्टर हरिराम उन्हें देख कर तुरन्त खड़े हो गये। चेतन के दादा भी खड़े हो गये। इससे पहले कि वे कुछ कहते, हेड मास्टर ने मास्टर हरिराम को संकेत किया कि वे लड़कों को छुट्टी दे दें।

मास्टर हरिराम ने गरजदार आवाज़ में आदेश दिया, 'बॉयज़ ! स्टैण्ड अप !'

लड़के तत्काल अपनी-अपनी जगह खड़े हो गये।

'अटेन—शन !'

और लड़के अटेंशन में तन गये।

'डिस्पर्स एण्ड गो टु योर क्लास !'

और लड़के एकदम उड़ंछू हो गये !

तब हेड मास्टर ने दादा से कहा, 'पण्डितजी, मैंने बच्चे को समझा दिया है। इसे मेरे पास आना चाहिए था। मैं हेड मास्टर हूँ, मैं आखिर किस मर्ज़ की दवा हूँ ?'

'लेकिन मैं ज़रा ओस मास्टर नूँ वेक्खना चाहुना हाँ,' दादा गरजे 'जीन्हें इस निक्के जेहे बीमार बच्चे नूँ मार के अपनी बहादुरी दस्सी ऐ। ओह वड्डा बहादुर है ते मेरे नाल कुश्ती लड़े।' और दादा ने अपनी आस्तीनें चढ़ायीं।

'वो आपके चरण छूएँगे या आप से कुश्ती लड़ेंगे ?' हेड मास्टर ने बड़े संयम और टैक्ट से दादा को शान्त किया, 'वो काम से होस्टल चले गये हैं, वरना मैं अभी बुलवा कर उनसे माफ़ी मँगवाता। अब आप घर जाइए। आपके बच्चे को अब कोई कुछ नहीं कहेगा।'

और उन्होंने मास्टर हरिराम से कहा कि वे दादा को छोड़ आयें। और वे चेतन को साथ लिये हुए वापस हॉल में आ गये। तभी उन्होंने चेतन से घटना का ब्योरा जाना। चेतन ने उन गालियों समेत, जो भूतना ने दी थीं, सारी घटना कह सुनायी और उस मार का ज़िक्र करते-करते वह रो पड़ा। दिल-ही-दिल में उसे डर था कि अब, जब उसके दादा चले गये हैं, हेड मास्टर उसे सज़ा देंगे।

लेकिन हेड मास्टर ने उसे तसल्ली दी। उसे आश्वासन दिया कि

---

१. लेकिन मैं ज़रा उस मास्टर को देखना चाहता हूँ, जिसने इस छोटे-से बीमार बच्चे को पीट कर अपनी बहादुरी दिखायी है। इतना बड़ा बहादुर है तो मेरे साथ कुश्ती लड़े।

अब कभी ऐसा नहीं होगा और उसे आदेश दिया कि कभी फिर ऐसी बात हो तो घर जाने के बदले वह उनके पास आये और उसकी पीठ थपथपा कर उन्होंने उसे वापस क्लास में भेज दिया।

६

रात जब वे सब खाने-पीने के बाद छत पर अपनी-अपनी चारपाइयों पर जा लेटे थे, दादा ने बड़े गर्व से हेड मास्टर से अपनी झोड़ का किस्सा सुनाया था कि कैसे उनकी बात सुन कर हेड मास्टर का रंग फ़क हो गया और उसके हाथों के तोते उड़ गये। 'ओह ताँ हरिया मास्टर ओथे आ गया ते ओहने मेरे पैर फड़ लये,' चेतन के दादा ने कहा, 'नहीं ताँ मैं ओस हेड मास्टर दी सारी हेड मास्टरी कड्ट सुट्टनी सी। मेरे सामने ताँ ओसने भूतने नूँ बुलाण लई मुण्डा भेजेया सी, पर भैंडीयाहवा नट्ठ गया होणा ऐ।'[१]

यद्यपि चेतन के पिता तो हर वाक्य के साथ कुफ़्र-तोड़ गाली देते थे और उन्हें नयी-से-नयी गालियाँ ईजाद करने का गर्व था, पर चेतन के दादा सिर्फ़ यही एक गाली देते थे। यह गाली उनका तकिया कलाम बन गयी थी और कई बार वे दूसरों के साथ बेध्यानी में अपने को भी गाली दे लेते थे। और यद्यपि माँ को पुरुषों का गाली देना अत्यन्त बुरा लगता था, लेकिन चेतन को अपने दादा के मुँह में यह गाली बड़ी अच्छी लगती थी और नितान्त अकेले में वह होंटों-ही-होंटों में इसे दोहरा भी लिया करता था।

'अव्वल ताँ ओह भैण्डीयाहवा हुण तैन्नूँ कुछ कहेगा नहीं, पर जे

---

१. वह तो हरिराम मास्टर वहाँ आ गया और उसने मेरे पैर पकड़ लिये, वरना मैं उस हेड मास्टर की सारी हेड मास्टरी निकाल देता। उसने भूतना को बुलाने के लिये लड़के को भेजा था, पर बहन के साथ जना करने वाला भाग गया होगा।

कदीं ओह फेर तैन्नूँ बेकसूर मारे ताँ मैंन्नूँ दस्सीं । मैं ओसनूँ हमेशा लई सिद्धा कर देयाँगा ।"[1]

लेकिन चेतन को फिर कभी अपने दादा को कष्ट देने की ज़रूरत नहीं पड़ी, क्योंकि न केवल उसे भूतना ने, वरन किसी दूसरे अध्यापक ने भी मैट्रिक तक फिर कभी कुछ नहीं कहा । और चूँकि भूतना की मार का डर उसे न रहा था, इसलिए उसने स्कूल से ग़ैर हाज़िर रहना भी छोड़ दिया और वह आठवीं का दुस्तर नद पार भी कर गया । मैट्रिक तक तो उसने रेखा गणित की सहायता से किसी तरह परीक्षाएँ पास कीं । कॉलेज में पहुँचा तो उसने गणित को सदा के लिए नमस्कार कर दिया, बल्कि किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में उसने सुना कि उसमें गणित की ज़रूरत पड़ती है तो उसके निकट भी वह नहीं फटका ।

---

१. अव्वल तो वह अपनी बहन के साथ जना करने वाला अब तुझे कुछ कहेगा नहीं, पर यदि वह फिर कभी तुझे बेकसूर पीटे तो मुझे बताना । मैं उसे हमेशा के लिए सीधा कर दूँगा ।

सा
ल
ह

जाने किधर से हलकी ठण्डी हवा चलने लगी थी। चेतन की आँखों में नींद उतर आयी। झूठ-सच, भूतना और दादा, बचपन और लड़कपन—सब कुछ उसके दिमाग़ से लुप्त हो गया। लेकिन तभी सहसा ज़ोर की खड़खड़ाहट होने लगी। एक बार उसने करवट बदली। जब लगातार थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद ज़ोर का खड़ाका और फिर वेपनाह खड़खड़ाहट होती रही तो उसने ऐसे आँखें खोल दीं, जैसे वह रात भर सो कर उठा हो। गर्मियों की भोर का धुँधलका आसमान में फैल रहा था और चाहे सड़क की बत्तियाँ अभी जल रही थीं, पर मकानों के ख़ाके साफ़ दिखायी देने लगे थे। दायीं ओर टाल के सामने बाँसों के गट्ठों से ऊपर तक लदी दो-तीन बैलगाड़ियाँ आ खड़ी हुई थीं। मज़दूर उन पर चढ़े हुए थे और वहीं से एक-एक गट्ठा दोनों ओर से थाम और ज़रा झुला कर बाँसों के ढेर पर फेंक रहे थे। गट्ठा खड़ाक से गिरता और नीचे पड़े बाँसों को खड़खड़ाता चला जाता। कभी वह गिरते ही खुल जाता और बाँस भयानक शोर करते हुए छितर जाते। इस खड़खड़ाहट में सो पाना उसके लिए असम्भव था। वह उठ कर बैठ

गया । उसने अपने भाई की चारपाई की तरफ़ निगाह डाली । वे विसुध सोये हुए थे । यद्यपि वे प्रातः उठने के आदी थे, पर चेतन जानता था कि पाँच बजे से पहले सड़क पर यदि ढोल भी बजने लगें तो उनकी नींद में खलल नहीं आयेगा और ठीक पाँच बजे वे अपने आप उठ जायेंगे ।. . . चेतन को अपने भाई से ईर्ष्या हो आयी । काश वह भी उनकी तरह निश्चिन्त सो सकता ! बैठे-बैठे उसने ज़ोर की अँगड़ाई ली । तभी सड़क की ओर से धूल का बादल आया । कमेटी के भंगी सड़क साफ़ कर रहे थे । चेतन उछल कर उठा । उसने बिस्तर गोल किया । भाई साहब के सिरहाने के नीचे से चाबी उठायी । तभी उसकी दृष्टि उनकी कमर पर गयी । उनका तहमद खुल गया था । वैसे ही कन्धे पर बिस्तर उठाये-उठाये, चाबी वाले हाथ से उसने उसे ठीक कर दिया । फिर घर के अन्दर आ कर उसने बिस्तर कुर्सी पर रखा । जा कर चारपाई उठा लाया । उसे कमरे की बायीं दीवार के साथ सटा कर लगाया और उस पर बिस्तर बिछा दिया । फिर वह सुराही उठा लाया और रसोई-घर का ताला खोल, उसने उसे यथास्थान रखा । ऊपर की मंज़िल पर लोग जग गये थे । वह पानी का लोटा ले कर तीसरी मंज़िल पर गया । शौचादि से निबट कर उसने तहमद बाँधा और कमीज़ पहनने के बदले उसकी दोनों बाँहें गले में लपेटे, वह घर से निकल गया । मन-ही-मन उसने तय किया कि वह निस्बत रोड से होता हुआ, घुर शिमला पहाड़ी तक जायगा ताकि लौटते-लौटते उसका शरीर थक जाय । तब ग्वालमण्डी के चौरस्ते से दो पेड़े डलवा कर लस्सी का बड़ा गिलास पियेगा और आ कर सो जायगा और एक बजे तक सोता रहेगा ।

o

मेयो हस्पताल के चौरस्ते से जब चेतन निस्बत रोड की तरफ़ मुड़ा तो उसके मन में सारी-की-सारी घटनाएँ फिर एक बार घूम गयीं । उसके दिमाग़ ने फिर रात का छोड़ा हुआ तार पकड़ लिया और झूठ-सच की समस्या में उलझ गया । यह उद्घाटन उसे काफ़ी विक्षुब्ध कर गया था कि वह चौथी

कक्षा ही से झूठ बोलता रहा है। और वह समझता था कि आज़ाद लाला के सामने उसने सहसा पहली बार झूठ बोला था।. . .बायीं ओर के फ़ुटपाथ पर चलते-चलते सुबह की ठण्डी हवा और (आसमान पर छायी हुई धूल के बावजूद) खिली फ़िज़ा से बेख़बर वह उसी साँप के पीछे लड़कपन से भी दूर—अपने बचपन की अँधेरी गुफ़ाओं में चला गया और उसने पाया कि झूठ तो शायद वह तभी से बोल रहा है, जब से उसने होश सँभाला है। वही नहीं, उसकी माँ भी पिता की क्रूरता से उसे बचाने के लिए झूठ बोल देती थी।. . .वह पाँच-सात वर्ष का रहा होगा, जब सैला खुर्द के स्टेशन पर पिता उसे अंग्रेज़ी पढ़ाने लगे थे। उन्होंने ज़बानी ही उसे सारी प्रायमर कण्ठस्थ करा दी थी। चूँकि वे ज़रा-सी ग़लती पर बेतरह पीटते थे, इसलिए उसकी माँ ने अंग्रेज़ी की प्रायमर स्वयं पढ़ ली थी और जो पाठ उसके पिता रात को उसे सिखाते, वह दिन को उसे याद करा देती। वे शाम की अन्तिम गाड़ी रवाना कर, घर आते थे; प्रायः स्टेशन ही से पी आते थे और खाना खाते हुए उसे पढ़ाते। शुरू-शुरू में चेतन को ज़्यादा कठिनाई नहीं हुई। उसकी स्मरण-शक्ति बचपन से ही बहुत अच्छी थी, लेकिन जल्दी ही वे उसे अंग्रेज़ी में वाक्य रचना सिखाने लगे। वे एक वाक्य बोल देते और उसकी अंग्रेज़ी बनाने को कहते। हर बार वाक्य में कुछ-न-कुछ बढ़ा देते।

राम जाता है।

राम स्कूल को जाता है।

राम श्याम के साथ स्कूल को जाता है।

राम चार पैसे ले कर श्याम के साथ स्कूल को जाता है।

और ऐसे में एक दिन जब उससे ग़लती हो गयी, उन्होंने उसे बुरी तरह पीट दिया।

दूसरे दिन माँ ने उसे शाम ही को खिला-पिला कर उनके आने से पहले ही सुला दिया। जब वे अन्तिम गाड़ी रवाना करके आये और उन्होंने चेतन के बारे में पूछा तो माँ ने कहा कि वह सो गया है।

रज़ाई के अन्दर आँखें पूरी तरह खोले सिर से पैर तक कान बना, चेतन भय के कारण सिमटा हुआ सुन रहा था। अपने पिता की प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक, उसका नन्हा-सा दिल बे-तरह धड़क रहा था—यह सोच कर कि कहीं वे उसकी रज़ाई उठा कर उसे जागते हुए न पा लें और कान पकड़ कर उसे उठा न दें और फिर कल का पढ़ाया पाठ पूछने न लगें, उसने झूठ-मूठ ज़ोर से आँखें बन्द कर ली थीं।

लेकिन सौभाग्य से उसके पिता ने रज़ाई न उठायी थी और वह कुछ क्षण कमरे की हर गति-विधि कानों के माध्यम से लेता हुआ अन्त में सो गया था।...

चेतन को याद आया कि जब उस दिन के अनुभव से लाभ उठा कर वह कई दिन तक ऐसे ही पिता के आने से पहले सोता रहा था तो एक रात, जब वे कुछ ज्यादा पिये हुए लौटे थे, उन्होंने भद्दी-सी गाली देते हुए माँ को डाँटा था कि वह क्यों उसे उनके आने से पहले सोने देती है और उन्होंने उसकी रज़ाई उलट दी थी, कान पकड़ कर उसे उठा दिया था और उसे अपनी अंग्रेज़ी की प्रायमर लाने के लिए कहा था और जब वह प्रायमर ले कर काँपता-काँपता चारपाई के पास आ खड़ा हुआ था तो वे उससे प्रश्न करने लगे थे।

उस दिन उसके पिता देर से घर आये थे। चेतन सचमुच सो गया था। पिता ने क्या प्रश्न पूछा, उसके निद्रालस मस्तिष्क ने ग्रहण नहीं किया। उसने जो उत्तर दिया, वह ग़लत था। उसके पिता ने दूसरी बार क्रोध से प्रश्न दोहराया तो यद्यपि उसने ग़लती सुधार ली, पर पहली बार ही ठीक उत्तर क्यों नहीं दिया, इस कारण पिता ने दन् से एक थप्पड़ उसके जड़ दिया था—इतने ज़ोर से कि वह धरती पर गिर गया था...फिर तो उसे इतना याद है कि पिता उससे प्रश्न पूछते रहे थे और वही सब, जो वह अपनी माँ को कई बार सुना चुका था, उसे भूलता रहा था और उसके पिता उसे पीटते रहे थे—उसी रात नहीं, उसके बाद की दो रातों तक। तीसरी रात उन्होंने उसे इतना पीटा था कि उसका

पायजामा दोनों तरफ़ से गीला हो गया था और न केवल माँ उसे बचाने में पिट गयी थी, वरन परदादी गंगादेई भी और उसके बाद जो वह बीमार पड़ा था तो महीनों तक न उठा था।

उन भयानक रातों की याद आने पर अपने उस बालक रूप के लिए चेतन का हृदय अपार दया और करुणा से भर आया। न जाने वे रातें उसकी याद को कितनी बार घायल कर चुकी थीं और कितनी बार वह उनके बारे में सोच चुका था—तब यदि उस क्रूर पिता अथवा भूतना-ऐसे कसाई अध्यापक की मार से बचने के लिए वह झूठ बोलता रहा तो उसका क्या दोष था ? चेतन ने सोचा—उन झूठों पर यदि किसी को ग्लानि होनी चाहिए थी तो उसे नहीं, वरन उसके क्रूर पिता अथवा उसके निर्दयी अध्यापक को अथवा उस धर्म-व्यवस्था को, जिसमें ऐसे कसाई पनपते हैं और जो सत्य बोलने का उपदेश देते हुए झूठ बोलने को बाध्य करते हैं। उसके पिता सच बोलते थे। अपने तमाम पाप उसकी माँ के सामने स्वीकार कर लेते थे—इसीलिए न कि वह पतिव्रता कोई विरोध न कर सकती थी और उन्हें दण्ड पाने का भय न होता था। और यदि आज़ाद लाला के सामने उसके मुँह से झूठ निकल गया तो क्या उसी को ग्लानि होनी चाहिए—उस मालिक को अथवा उसके सम-र्थक को नहीं, जो अपने पत्र की इमारत एक उतने बड़े झूठ और कर्मचारियों के घोर शोषण पर खड़ी किये हुए था—हर पिता, हर अध्यापक, हर मालिक सत्य बोलने का उपदेश देता है—शास्त्रों में लिखा है—सत्यमेव जयते—सत्य की जय होती है—कहाँ ? चेतन को उत्तर नहीं मिला—किस सत्य की जय होती है ? विजेता अपने पक्ष को सत्य का पक्ष बना लेते हैं. . .चेतन का दिमाग़ चकरा गया. . .उसने एक ही दिन पहले नोट-बुक में लिखा था कि अब कभी झूठ नहीं बोलेगा ताकि उसे नदामत न उठानी पड़े. . .लेकिन उस व्यवस्था में वह कैसे झूठ नहीं बोलेगा ? हाँ, यह हो सकता है कि झूठ बोलने से पहले वह इस बात की सावधानी बरत ले कि उसका झूठ पकड़ा न जाय और उसे ग्लानि न उठानी पड़े।

चेतन मुश्किल से मैक्लोड रोड के चौरस्ते तक पहुँचा था कि सहसा रुक गया। घर से चला था तो उसने सोचा था कि वह शिमला पहाड़ी तक जायगा, पर जैसे ही उसकी सोच का मार्ग अवरुद्ध हुआ, उसके पैर आगे नहीं बढ़े। वह वापस मुड़ा। उसने अपनी कापी में ग़लत प्रतिज्ञा लिखी थी। रात भर के अपने चिन्तन के फलस्वरूप उसे कुछ और लिखना चाहिए था। वह सच-झूठ की समस्या में उलझा, तेज़-तेज़ वापस आया। ग्वालमण्डी के चौरस्ते पर हलवाई की दुकान से उसने हाथ भर का लस्सी का गिलास पिया, लेकिन घर आ कर वह सोया नहीं। लेटने से पहले उसने फिर नोट-बुक निकाली। कुछ क्षण ईज़ी चेयर पर बैठा सोचता रहा, फिर उसने लिखा :

'सच बोलना आम आदमी के बस की बात नहीं।

'सच बोलना कमज़ोर आदमी के बस की बात भी नहीं।

'सच बोलने के लिए किसी शाहनशाह या डिक्टेटर की शक्ति चाहिए या फिर दुनिया को अँगूठे पर रख कर जंगल जा बसाने वाले किसी संन्यासी या फ़कीर की फक्कड़ई।

कबिरा खड़ा बाज़ार में लिये लुकाठी हाथ
जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ

'चले हमारे साथ—कहाँ ?—सच के रास्ते पर ! लेकिन उस राह पर चलने के लिए घर फूँकना ज़रूरी है।'

और चेतन ने आगे लिखा :

'मैं न शाहनशाह बन सकता हूँ, न डिक्टेटर । फ़कीरी मुझे पसन्द नहीं, न संन्यासी बनने की तरफ़ मेरा झुकाव है, क्योंकि जहाँ तक ख़ुदग़रज़ी का ताल्लुक है, संन्यासी किसी तानाशाह से कम नहीं, मैं सिर्फ़ अपनी अना की तस्कीन[1] के लिए सारे जग से ऊपर उठ कर जंगल की गहरी गुफा या पहाड़ की कन्दरा में डेरा नहीं जमा

---

१. अहं के सन्तोष।

सकता—इस पर भी मुझे झूठ से सख़्त नफ़रत है। उस नदामत की वजह से नहीं, जो झूठ के खुल जाने से उठानी पड़ती है, बल्कि इस कारण कि झूठ मुझे छोटा कर जाता है, वह मेरा सुभाव नहीं है। बच्चा सब कुछ सच-सच कह देता है, जब तक कि माता अथवा पिता का डर उसे झूठ बोलना नहीं सिखाता। झूठ मुझे अपनी बेबसी का एहसास दिलाता है, बताता है कि मैं कितना कमज़ोर और लाचार हूँ, कि ज़रा-ज़रा-सी बात के लिए झूठ मेरे होंटों पर आ जाता है। दुनिया में सच का नहीं, झूठ का साम्राज है और इसीलिए आदमी की रूह बग़ावत करती है। सच कहने के लिए छटपटाती है। साईं बुल्हे शाह ने कहा है :

झूठ आक्खां ते कुछ बचदा ऐ
सच आक्खां ते भांबड़ मचदा ऐ
दिल दोहां गलां तों जचदा ऐ
जच-जच के जिह्वा कहंदी ऐ
मुँह आयी बात न रहंदी ऐ

'जच-जच कर ज़बान इसीलिए कहती है कि यही वह कहना चाहती है। बिना रुके वह सच इसलिए नहीं कह सकती कि सीधे सच से शोले लपकते हैं और झूठ से बचाव होता है, लेकिन चूँकि इतने झूठ में आदमी की रूह घुटती है, इसलिए वह रुक-रुक कर सच कहता है और शायद यही 'सत्य की विजय' है—दुनिया की सारी बग़ावतें, सारे इन्कलाब सदियों से इकट्ठे होते झूठ को उखाड़ फेंकने के लिए ही बरपा होते हैं।

'क्या मैं दुनिया में दिन-रात झूठ बोलने वाला हकीर इन्सान बन कर रह जाऊँगा ? क्या झूठ से मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी ? क्या मुझे आने वाले इन्कलाब का आसरा तकते रहना पड़ेगा ? दुनिया को तर्क कर के जंगल में जा बसने अथवा दुनिया को लताड़ कर डिक्टेटर बन जाने के अलावा क्या दूसरा कोई रास्ता नहीं है ?

'ज़रूर होगा। मैं उस राह की खोज करूँगा। ऐसा काम अपनाऊँगा, जिसमें अपनी रोज़ी-रोटी के लिए मुझे झूठ न बोलना पड़े और मैं बेबस और लाचार हो कर न जिऊँ।'

०

अपने अव्यवस्थित विचारों को चेतन लगातार नोट-बुक में लिखता चला गया था। अपने नये निर्णय की अन्तिम पंक्ति लिख कर उसने सहसा कापी बन्द की। अपनी उलझन को काग़ज़ पर उँडेल कर वह एकदम हलका हो आया। गाढ़े मट्ठे के प्रभाव में उसकी आँखों पर गनोदगी छा रही थी। वह पिछले अँधेरे कमरे में गया। भाई साहब तैयार हो कर दुकान पर चले गये थे, वह उनके बिस्तर से तकिया ले कर वहीं ठण्डी खुर्री चारपाई पर लेट गया।

दूसरे ही क्षण उसके अंग शिथिल पड़ गये और वह गहरी नींद सो गया।

स त्र ह

चेतन सुबह का सोया डेढ़ बजे उठा। टेबल पर रखे टाइम-पीस पर उसने निगाह डाली तो यह जान कर उसे सन्तोष हुआ कि वह पूरे पाँच घण्टे सोया रहा है। उसने कहीं पढ़ा था कि दिन के एक घण्टे की नींद रात के दो घण्टे की नींद के बराबर होती है। वह खुश हुआ कि उसने सारे रतजगे की कसर निकाल ली है। तभी सहसा दायीं पसलियों पर उसे ज़ोर की खुजली हुई। उसने देखा, नंगी जिल्द पर चारपाई की बुनावट के निशान बन गये हैं—जाने वह कितनी देर एक ही करवट सोया रहा था—चारपाई का बाघ जैसे अपनी सारी बुनावट समेत वहाँ नक्श हो गया था और जिल्द का रंग लाल हो आया था।. . .धीरे-धीरे उस जगह को सहलाता हुआ वह बैठक में आया कि कपड़े उठा कर नहा आये। भूख उसे नहीं थी। यूँ भी लंच के पहले सो जाने पर हमेशा उसकी भूख मर जाती थी। तो भी थोड़ी-बहुत पेट-पूजा ज़रूरी थी। उसने खूँटी से तौलिया और बनियान उठायी। तभी उसकी दृष्टि मेज़ के कोने पर रखी नोट-बुक पर गयी। कन्धे पर

तौलिया और बनियान डाले, वहीं मेज़ के कोने से लगा खड़ा वह सुबह का लिखा हुआ पढ़ने लगा। खत्म करते ही वह सहसा कुर्सी पर बैठ गया। उसने कलम उठाया और ज़रा-सी जगह छोड़ कर फिर लिखने लगा। शायद सो जाने के बावजूद उसका अवचेतन मन उसी समस्या में उलझा था :

'मैं जिस सच के पीछे पड़ा हूँ, वह बुनियादी सच नहीं है, शायद अज़ली[1] सच भी नहीं है। चाहे युधिष्ठिर ने अपनी फ़तह को सच की फ़तह कहा हो, पर 'सत्यमेव जयते' का हरगिज़ यह मतलब नहीं हो सकता। ये सारे दुनियावी सच-झूठ रेलिटिव[2] हैं, इज़ाफ़ी हैं। एक फ़रीक[3] का सच दूसरे का झूठ होता है और जो हार जाता है, वह ज़रूरी नहीं कि हमेशा झूठा हो। जीत जाने वाले हमेशा हकीकत को अपना सच साबित करने के लिए तोड़-मरोड़ लेते हैं। शास्त्र जब कहते हैं—सत्यमेव जयते—तो वो दुनियावी सच्चाइयों को ले कर कभी ऐसा नहीं कह सकते। उनका मतलब यकीनन ऐसे सच से होगा; जो बुनियादी है। जो बस सच है, जिसके मुकाबले में झूठ नहीं है, जिसकी कोई रेलिटिविटी[4] नहीं है।

'तब बुनियादी सच क्या है ? मौत ? हाँ मौत एक बुनियादी सच्चाई है। लेकिन मौत की कोई इज़ाफ़त[5] नहीं है, शायद ऐसा न कहा जा सके। ऐसी मौत भी हो सकती है, जो ज़िन्दगी से बेहतर हो।. . .तब ज़िन्दगी ? हाँ ज़िन्दगी भी एक बुनियादी सच्चाई है। किसी ने लिखा है कि मौत के तन पर ही सदा ज़िन्दगी के फूल खिलते हैं। लेकिन रेलिटिविटी ज़िन्दगी की भी है—ऐसी ज़िन्दगी, जो मौत से बदतर हो। अज़ली सच्चाई शायद इन दोनों से परे होगी। जब न ज़िन्दगी थी, न मौत, तब क्या था ? और जब न

---

१. अनादि काल से चला आने वाला। २. सापेक्ष। ३. पक्ष। ४. सापेक्ष्यता। ५. सापेक्ष्यता।

ज़िन्दगी रहेगी, न मौत, तब क्या रहेगा ? जो था और जो रहेगा, उसे ब्रह्म कहा जाय या अज़ली शक्ति—या महज़ ख़ला[1]—वही ग़ैर-इज़ाफ़ी ख़ालिस सच है—बुनियादी, अज़ली, चिरन्तन—उसी की जय का ज़िक्र शास्त्रों ने किया होगा। वही सच है, बाक़ी सब झूठ है।'

०

चेतन ने नोट-बुक बन्द कर दी और नहाने चला गया। सुबह उसने सोचा था कि सोने के बाद वह दुकान जायगा और भाई साहब के साथ खाना खायगा,लेकिन बहुत देर हो गयी थी। वे उसकी प्रतीक्षा करके कब के खाना खा चुके होंगे। नहा कर और कपड़े बदल कर वह बाहर निकला। ग्वालमण्डी के एक ढाबे से उसने खाना खाया और पुरानी अनारकली की तरफ़ चल पड़ा।

भाई साहब दुकान पर नहीं थे। अपने शागिर्द गुप्ता के आसरे क्लिनिक छोड़ कर वे माल रोड पर दन्दानसाज़ी का सामान लेने गये हुए थे। चेतन पार्टीशन के बाहर वेटिंग रूम में बैठ गया। कुछ पत्रिकाएँ उसके नाम आयी हुई थीं। दैनिक 'ट्रिब्यून' तिपाई पर रखा हुआ था। गुप्ता ने उसके नाम जालन्धर से आया एक पत्र दिया। चन्दा का था। उसने लिखा था कि अब, जब चेतन की नौकरी लग गयी है, उसे मकान भी मिल गया है तो वह उसे बुला ले। वह अपनी पढ़ाई जारी रखना चाहती है।

चन्दा की लिखाई और अभिव्यक्ति बेहतर हो गयी थी। पढ़ाई के लिए उसकी लगन देख कर उसे खुशी हुई। पत्र को जेब में रख कर वह उस दिन का अख़बार पढ़ने लगा। फिर उसने पत्रिकाएँ उलट-पलट कर देखीं। जब इस पर भी भाई साहब न आये और साढ़े चार बज गये तो चेतन उठा। उसने गुप्ता से कहा, 'भाई साहब से कहिएगा, दुकान

---

१. शून्य।

से सीधे घर आयें, मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगा।' और वह उठा, बाहर निकला और दुकान की सीढ़ियाँ उतर, पण्डित रत्न की ओर चल दिया। उन्हें शीशमहल रोड से ले कर उनके साथ घूमता-घामता, उन्हें अनार-कली में छोड़ कर वह सात बजे के करीब घर पहुँचा। थकन मिटाने के लिए नहा-धो कर तहमद लगाये, नंगे बदन वह ईज़ी चेयर पर आ बैठा और यूँ ही फिर नोट-बुक देखने लगा। दोपहर को उसने जो दो पैरे लिखे थे, उसके नीचे उसने फिर लिखना शुरू किया :

'यह बुनियादी सच और ऊपरी सच, वक्ती सच और दायमी सच—ये सब बहुत उलझा हुआ है और ज़िन्दगी और शास्त्रों का मेरा इल्म बहुत थोड़ा है। इस तरह सोचने से मैं किसी पक्के नतीजे पर नहीं पहुँच सकता. . .अभी मुझे इस चक्कर में न पड़ कर वक्ती हकीकत—याने अपनी ज़िन्दगी की मौजूदा कशमकश—से ही जूझना होगा। दिन के खाली समय को ऐसे फ़ायदामन्द काम में लगाना होगा, जिससे मैं ज़िन्दगी की मुसीबतों से लड़ता हुआ इनमें से रास्ता बना सकूँ और आखिरकार ऐसा काम अपना सकूँ, जिसे मैं अपने दिल-दिमाग़ की सारी ताक़त और ज़िन्दगी के सारे सपने दे सकूँ। जरनलिज़्म से तीस-चालीस, पचास-सौ या पाँच सौ कमा लेना महज़ मेरी ज़िन्दगी का मकसद नहीं हो सकता।'

नोट-बुक को बन्द कर के चेतन ईज़ी चेयर पर पीछे को लेट गया। उसे लगा कि वह बहुत सोचता है। और प्रायः बेकार सोचता है। वह अत्यधिक भावप्रवण है और ऐसी अतिशय भावप्रवणता को ले कर वह कैसे दुनिया में रास्ता बना पायेगा? कदम-कदम पर उसे घाव लगेंगे, खराशें आयेंगी। उसका वक्त वेकार की सोच में नष्ट होगा। आज़ाद लाला की एक ज़रा-सी बात उसका चैन और नींद हराम कर गयी। जाने ज़िन्दगी में उसे कितनी ही ऐसी बातों का सामना करना होगा। लेकिन जो भी हो, वह ऐसा निरर्थक झूठ फिर नहीं बोलेगा और इस सारे छल-प्रपंच में रास्ता बनायेगा।. . .अब, जब उसे नौकरी मिल

गयी है। मकान की समस्या हल हो गयी है, आज़ाद लाला का एहसान नहीं लेना पड़ा और पण्डित शाहीं-ऐसे मिडियाकर के अधीन काम नहीं करना पड़ा, उसे इस सारे प्रसंग को भुला देना चाहिए। उसे अपनी पत्नी को लाहौर बुला लेना और 'प्रभाकर' में प्रवेश दिला देना चाहिए। सितार और दिलरुवा वह शिमला से ले आया है। उसे चन्दा को किसी संगीत विद्यालय में दाखिल करा, उसे पूरी तरह सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनाना चाहिए और स्वयं दिन का खाली वक्त साहित्य-सृजन में लगाना चाहिए—यही मार्ग है, जिस पर चल कर वह पत्रकारिता के इस बीहड़ जंगल से निकल सकता है। उसकी पत्नी बी० ए० कर लेगी, उस पर बोझ बनने के बदले उसका हाथ बँटायेगी और वह साहित्य के कला-शिल्प पर अधिकार पा कर सुन्दर कहानियाँ, कविताएँ और उपन्यास लिखेगा—वह ज़िन्दगी कितनी दिलचस्प, कितनी सुखद, कितनी सोद्देश्य और जीने योग्य होगी—वह दिन-दिन भर लिखेगा और क्षण भर को भी नहीं ऊबेगा।

०

भविष्य के सपनों में विचरता हुआ वह यूँ ही नोट-बुक के पिछले पृष्ठ बे-पढ़े पलटता रहा। सहसा एक पृष्ठ पर उसकी निगाहें टिक गयीं। वह पढ़ने लगा :

०

'कल रात जालन्धर गया था। चन्दा ने न कोई सवाल किया, न एतराज़, चुपचाप अपने दोनों भारी गहने ला कर मेरे हाथ पर रख दिये।. . .और मैं गाड़ी में बैठा, लाहौर से जालन्धर तक न जाने कितने सवाल-जवाब दोहराता गया था ?. . .चन्दा की बात सोचता हूँ तो अचानक भाभी की सूरत आँखों में घूम जाती है—उसी की तरह दो-दो रुपये के लिए लड़-मरने वालियों की सूरत आँखों में घूम जाती है. . .जाने चन्दा ने किस माँ का दूध पिया है ! दुनिया की ज़रा-सी हवा भी उसे नहीं लगी। अंग्रेज़ी से शब्द उधार लूँ तो

कहना चाहता हूँ : शी इज़ ए ट्रेयर—शी इज़ ए प्राइसलेस ट्रेयर (treasure) !'. . .

०

नोट-बुक पढ़ते-पढ़ते चेतन उस नीम-अँधेरे कमरे को भूल गया। बाहर गली में बेपनाह शोर मचाते बच्चों को भूल गया। बाहर बाँसों के टाल से आती हुई कर्कश ध्वनि को भूल गया—भूल गया कि उसे भूख लग आयी है और कुछ ही क्षण पहले उसने सोचा था, घर बैठ कर भाई साहब की प्रतीक्षा करने से बेहतर है कि वह भाई साहब की दुकान पर जाय और उन्हें ले कर वहीं सिन्धी होटल में खाना खाये।. . .वहीं अपने कमरे के नीम-अँधेरे में बैठा-बैठा वह कुछ ही महीने पहले की उस घटना में खो गया, जब शिमला जाने से पहले, सहसा वह एक रात जालन्धर गया था।. . .

०

तब 'बन्दे मातरम' में काम करते हुए उसे साल के लगभग हो गया था और वे अभी चंगड़ मुहल्ले में ही रहते थे। चन्दा को माँ जालन्धर ले गयी थी और भाई साहब ने भाभी को लाहौर बुला लिया था। चेतन का आम दस्तूर था कि वह भाई साहब के आने की प्रतीक्षा करता। दोनों इकट्ठे खाना खाते। फिर चेतन सवा नौ के करीब दुकान की चाबी ले कर दफ़्तर चला जाता। चन्दा होती तो वह आवाज़ देता था और वह उठ कर किवाड़ खोलती, पर भाई साहब को रात डेढ़-दो बजे उठ कर दरवाज़ा खोलना नापसन्द था, इसलिए चेतन दुकान पर सोता था. . . उस शाम भाई साहब को दुकान से आने में देर हो गयी थी और चेतन ने भाभी से कहा था कि वह उसे खाना परस दे। वह खाना खा रहा था कि भाई साहब आ गये थे। दुकान की चाबी उन्होंने उसकी ओर फेंक दी थी और अन्दर जा कर कपड़े बदलने की बजाय वहीं खड़े-खड़े कपड़े बदलने लगे थे।

खाना खाते-खाते चाबी उठा कर चेतन ने जेब में रख ली थी तो

वहीं कपड़े बदलते हुए भाई साहब ने सोल्लास बताया कि आज उनकी दुकान पर डी० टी० एस० आया था।

'डी० टी० एस० !' चेतन के हाथ का ग्रास होंटों के पास ही रुक गया था—डी० टी० एस०—याने डिवीज़नल ट्रैफ़िक सुपरिंटेण्डेण्ट—चेतन के पिता के टी० आई० और ए० टी० एस० आदि अफ़सरों का भी अफ़सर !. . .

'हाँ !' भाई साहब की पतलून धरती पर ढेर पड़ी थी। उनकी पतली-पतली लम्बी टाँगों पर बाल ख़ासे भद्दे लग रहे थे, लेकिन पतलून में से पैर निकाल कर उसे उठाना और तहमद लगाना वे भूल गये थे और वैसे ही खड़े-खड़े बेध्यानी में टाई की गिरह खोलने लगे थे। 'रिटा-यर्ड डी० टी० एस० !' उन्होंने कहा।

'यूँ ही पूछने आया था या कुछ काम भी करा गया है ?'

'दाँत बनवा रहा है। आज ही मैंने इम्प्रेशन लिया है।'

'अब और क्या चाहिए !' चेतन ने सोल्लास कहा था, 'आप तो यूँ ही घबराने लगते हैं। मैंने आपसे कहा था न, कि जल्द ही बड़े-बड़े अफ़-सर आपके यहाँ आने लगेंगे।'

भाई साहब ने पतलून से पैर निकाल कर उसे धरती से उठाया और जा कर उसे खूँटी पर केंचुल-सा लटका दिया था और वहाँ से तहमद उठा कर उसे कमर के गिर्द लपेटते हुए उदास भाव से बोले थे, 'अफ़सर तो आने लगेंगे लेकिन. . .'

लेकिन क्या ?—इसकी उन्होंने व्याख्या नहीं की। लम्बी साँस भर कर चुप हो गये थे और हाथ-मुँह धो कर उसके पास ही बिछे टाट पर आ बैठे थे।

तब चेतन ने वही प्रश्न दोहराया था।

'कुछ नहीं,' भाई साहब जैसे कुएँ में से बोले थे, 'वह डी० टी० एस० जब इम्प्रेशन देने को कुर्सी पर बैठा और मैंने साँचे में मोम भर कर उसके ऊपर के दाँतों का इम्प्रेशन लिया तो उसने कहा, 'यह कुर्सी

कैसी ? हैलगता है, जैसे मुझे फाँसी लग रही है।'. .कुछ क्षण भाई साहब चुप रहे थे, फिर उन्होंने कहा था, 'आज पहली बार मुझे लगा कि मेरे पास इस सेकेण्ड हैण्ड पुरानी देसी कुर्सी के बदले नयी विलायती डेण्टल चेयर होनी चाहिए !'. . .

सहसा चेतन उठ खड़ा हुआ था। भाभी उसकी थाली में एक फुल्का और रखने जा रही थी, पर चेतन ने मना कर दिया था। वह नाली पर कुल्ला कर के वहीं घूमने लगा था।. . .कई बार उसके मन में खयाल आया था कि भाई साहब की दुकान में नयी कुर्सी होनी चाहिए, पर वह हमेशा यह सोच कर इस विचार को दिमाग़ से निकाल देता था कि उनकी प्रॅक्टिस कुछ चल जाय तब नयी डेण्टल चेयर खरीदने की बात सोची जायगी। भाई साहब के प्रोत्साहनार्थ उसने जो भी कहा हो, पर उसने सपने में भी यह न सोचा था कि यह समस्या उसके सामने हठात यूँ आ खड़ी होगी—मन-ही-मन उसे गर्व हुआ। उनकी दुकान चलाने के लिए उसने जो प्रचार किया था, आखिर वह रंग ला रहा था। उनके यहाँ बड़े-बड़े अफ़सर आने लगे थे। अब तो जैसे भी हो, डेण्टल चेयर का प्रबन्ध करना चाहिए।. . .सहसा उसने पूछा :

'नयी डेण्टल चेयर कितने को आयेगी भाई साहब ?'

'ढाई सौ रुपये में !'

'अगर ढाई सौ रुपये का प्रबन्ध हो जाय तो आपका काम चल जायगा ?'

'डेण्टल चेयर आयेगी तो डेण्टल इंजिन न आयेगा ?' भाई साहब ने कहा, 'फिर कुछ दूसरा सामान भी तो चाहिए।'

'कितने में यह सब हो जायगा ?'

'सौ रुपये तो इस सब के लिए और चाहिएँ।'

चेतन फिर कमरे में घूमने लगा। भाई साहब चुपचाप खाना खाने लगे।

'ठीक है,' उनके पास क्षण भर को रुक कर उसने कहा, 'दो-एक दिन में मैं प्रबन्ध कर दूँगा। आप फ़िक्र न कीजिए।'

और वह कमरे से निकल गया। आध घण्टे बाद वह घर वापस आया। भाई साहब सोने की तैयारी कर रहे थे! उन्होंने कुण्डी खोली तो चेतन ने दुकान की चाबी उनके हाथ पर रख दी।

'मैं इसी गाड़ी से जालन्धर जा रहा हूँ।'

'दफ़्तर. . .?'

'दफ़्तर से मैंने आज रात की छुट्टी ले ली है। कल मैं वापस पहुँच जाऊँगा।'

और वह पलट कर तेज़-तेज़ चल दिया था।

०

भाई साहब ने न उसे रोका, न उससे कुछ पूछा। उन्हें पूरा विश्वास था कि जब उसने डेण्टल चेयर का प्रबन्ध करने को कहा है तो वह ज़रूर कर देगा।

०

घास मण्डी से ताँगा ले कर चेतन स्टेशन पहुँचा था। नौ बजे की गाड़ी कब की निकल गयी थी, लेकिन दस बजे वाली मेल पकड़ने में वह सफल हो गया था। उसे मुश्किल से खड़े होने भर को जगह मिली थी। लेकिन वह इस भीड़ का या इस तरह खड़े-खड़े जालन्धर पहुँचने का आदी था। प्राय: (जब चन्दा जालन्धर होती) वह महीने में एक बार शनि की रात दस बजे वाली गाड़ी पकड़ता, एक-डेढ़ बजे रात जालन्धर पहुँचता, इतवार को घर रहता और सोमवार तड़के फ्रंटियर मेल पकड़ कर समय से दफ़्तर पहुँच जाया करता। घर जाने की जल्दी उसे भीड़, उमस, गर्मी या लू—सब कुछ भुला देती।

उसके बड़े भाई की दुकान यद्यपि चल निकली थी, लेकिन उनके पास अच्छी डेण्टल चेयर न थी। दुकान शुरू करते समय उन्होंने ८० रु० की जो देसी कुर्सी ख़रीदी थी, वह न घूम सकती थी, न ऊपर-नीचे हो

सकती थी और न उसकी पीठ को एकदम सीधा कर के पायदान को उठा कर मरीज़ को (अचेत हो जाने की स्थिति में) उस पर लिटाया जा सकता था। उसमें न स्पिटून था, न स्लाइवा इंजेक्टर, न वॉटर सिरिंज—बस उसमें केवल टाँगें फैला कर बैठा जा सकता था। लेकिन कुर्सी की पीठ आगे-पीछे न हो सकती थी, इसलिए उसमें बैठने वाले की कमर में दर्द होने लगता था।. . .गाड़ी के डिब्बे में संडास वाली दीवार से पीठ लगाये चेतन अपने ध्यान में मग्न था—सहसा उसके सामने भाई साहब की बेढंगी, खुर्री, लम्बी, बेतुकी कुर्सी पर लेटा एक मोटा गंजा अफ़सर आ गया—भाई साहब स्टील के साँचे में गर्म-गर्म मोम भर कर हाथ को छुला कर, यह देखते हुए ज़्यादा गर्म तो नहीं, मरीज़ से कहते हैं कि सिर पीछे करके पूरा मुँह खोले। जब वह सिर पीछे लगा कर मुँह खोल देता है तो भाई साहब उसे और ज़्यादा मुँह खोलने का आदेश देते हैं। वह इतने ज़ोर से मुँह चियारता है कि उसके होटों के कोने दर्द करने लगते हैं। तब भाई साहब बायें हाथ के अँगूठे से उसका ऊपर का होंट उठा कर साँचे को दायें हाथ से दातों के नीचे रख कर पूरे ज़ोर से ऊपर को दबाते हैं—ताकि टूटे दाँतों का इम्प्रेशन मोम में आ जाय। डी० टी० एस० को लगता है जैसे उसकी गर्दन की हड्डी तड़क जायगी—वह पैरों पर ज़ोर दे कर कमर और पुट्ठे उठा कर विरोध में चिल्लाना चाहता है, पर उसके कण्ठ से, भू-गर्भ में होने वाली भूचाल की गरगराहट जैसी कुछ आवाज़ निकल कर रह जाती है। तभी भाई साहब सँभाल कर साँचे को नीचे खींच लेते हैं।. . .गाड़ी के डिब्बे की दीवार के सहारे खड़ा चेतन अपने-आप हँस पड़ता है। लेकिन वह दूसरे क्षण गम्भीर हो जाता है।. . .उसके मन में पहले भी कई बार भाई साहब को डेण्टल चेयर ले कर देने का खयाल आया था। लेकिन उस शाम जब भाई साहब ने डी० टी० एस० वाली घटना सुनायी तो उसने तत्काल उन्हें डेण्टल चेयर ले कर देने का फैसला कर लिया था—कैसे उसका प्रबन्ध करेगा, यह भी सोच लिया था।

वह डेढ़ बजे घर पहुँचा था। माँ से मिल कर वह ऊपर बरसाती में अपनी पत्नी के पास गया था। माँ, चेतन की आवाज पहचान कर, नीचे डेवढ़ी में आने से पहले, चन्दा को जगा गयी थी। चेतन ऊपर पहुँचा तो चन्दा बिस्तर पर बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी!

'मैं सिर्फ़ तुमसे मिलने आया हूँ—ज़रूरी काम से।' उसके पास बैठते ही चेतन ने कहा था, 'फ्रंटियर मेल से सुबह वापस चला जाऊँगा।'

'जी!'

'बात यह है,' अपनी बात जारी रखते हुए उसने कहा था, 'भाई साहब के पास डेण्टल चेयर नहीं है और अच्छी कुर्सी के बिना उनकी प्रैक्टिस नहीं चल सकती। मैंने उनका इतना प्रचार किया है कि अब उनके यहाँ बड़े-बड़े अफ़सर आने लगे हैं।' और उसने संक्षेप में डी० टी० एस० वाला किस्सा सुनाया और बोला, 'मैं चाहता हूँ कि भाई साहब फ़ौरन एक नयी डेण्टल चेयर ले लें। तुम ऐसे करो कि तुम्हें अपने मायके की ओर से जो गहने पड़े हैं, उनमें से जो सबसे भारी गहना है, वह मुझे ला दो।'

'भारी तो रानी हार है। आठ तोले का होगा।' चन्दा ने तनिक भी प्रतिवाद किये अथवा कोई प्रश्न पूछे बिना भोलेपन से कहा।

'आठ नहीं, मुझे लगभग दस तोले सोना दरकार होगा!' चेतन ने कहा था, 'आजकल सोने का भाव पैंतीस-छत्तीस रुपये तोला है। दस हों तो लगभग तीन-साढ़े-तीन सौ मिल जायँगे।'

'तो कानों के दो बुन्दे भी ले लीजिए। वो भी तो मेरी माँ ने डाले हैं।'

'जाओ ला दो! मैं तड़के फ्रंटियर मेल से वापस चला जाऊँगा।'

और चन्दा ने बिना आवाज़ किये, धीरे से नीचे जा कर दोनों गहने चेतन को ला दिये थे। यह भी नहीं पूछा था कि आखिर जेठानी के पास भी तो गहने हैं, उन्हें बेच कर भाई साहब क्यों नहीं कुर्सी ले लेते?

चेतन का जी चाहा था—अपनी पत्नी को बाँहों में भर कर चूम ले। उसके सामने वह दृश्य घूम गया था, जब भाई साहब ने लाल बाज़ार के एक सर्राफ़ के यहाँ नौकरी की थी और पहले महीने का वेतन —पन्द्रह रुपये—वे लाये थे और घर में हंगामा हो गया था। उस दिन आटा खत्म हो गया था, माँ ने केवल दो रुपये माँगे थे और भाई साहब ने पहली तनख्वाह लाने के ज़ोम में पत्नी को आदेश दिया था कि माँ को दो रुपये दे दे। पत्नी ने उनकी बात नहीं सुनी थी। माँ दालान में पीढ़े पर बैठी सूत अटेर रही थी। तब भाभी पास ही रखी मेज़ के कोने पर टाँगें नीचे लटकाये बैठ गयी थी और उसने माँ और भाई साहब को सुना कर वो पुराने गड़े मुर्दे उखाड़ने शुरू किये थे और ऐसी-ऐसी बातें कही थीं, जो न सुनी जा सकती थीं, न सही जा सकती थीं। माँ रोने लगी थी। भाई साहब झट कोट पहन कर भीगी बिल्ली की तरह सीढ़ियाँ उतर गये थे और स्वयं चेतन का खून खौल-खौल उठा था।. . .

इस बात के बावजूद कि शादी के बाद नीला चेतन के मन-मस्तिष्क पर छायी हुई थी, और चन्दा की सुस्ती और फूहड़ता के कारण वह अत्यन्त विक्षुब्ध रहता था, अपनी पत्नी की सरलता और अपने प्रति उसके अगाध विश्वास को देख कर चेतन अभिभूत रह गया था। हलके-से उसे बाँह में भर कर उसने कहा था, 'देखो चन्दी, अव्वल तो मैं भाई साहब से शर्त कर लूँगा कि दस रुपया महीना वे इस खाते में मुझे वापस करते जायँ, पर जैसा मैं उन्हें जानता हूँ, हो सकता है, वे एक भी पाई न दें। लेकिन तुम फ़िक्र न करना। मैं जो हूँ। तुम्हें सोने में पीली कर दूँगा।'

'मैं कुछ कहती हूँ।' चन्दा ने बड़े ही अभिभूत भाव से सिर्फ़ इतना कहा था।

जाने उस स्वर में क्या था ? कैसा स्पर्श, कैसी प्यार-भरी सहलाहट कि चेतन ने बाँह को कस कर उसे अपने सीने से लगा लिया था. . .

उस गहरी निथरी झील में जी भर ग़ोता लगाने के बाद, जब वह उसके सुखद स्निग्ध किनारे लेटा हुआ ऊपर आकाश में मन्द होते सितारों को देख रहा था, चेतन को लगा था—वह कभी उस झील की थाह न पा सकेगा। उस अगाध स्नेह, उस अपार विश्वास को कभी न माप सकेगा . . .तभी बरने पीर पर मुर्ग़ ने दूसरी बार बाँग दी थी। चेतन ने सारी रात चन्दा के वक्ष से लगे बातें करते गुज़ार दी थी। मुर्ग़ की बाँग के साथ ही वह उठ बैठा था और झट-पट निबट-नहा कर तैयार हो गया था। चलते समय उसने अपनी पत्नी को आदेश दिया था कि वह किसी से इस बात का ज़िक्र न करे। यदि माँ कभी पूछे तो कह दे कि दोनों गहने लाहौर ही में पड़े हैं।

चन्दा ने सिर की हलकी-सी जुम्बिश से स्वीकृति दी थी कि वह ऐसा ही करेगी और चेतन क्षणिक आवेश में उसे एक बार और बाँहों में भींच कर अलग हो गया था और लगभग भागता हुआ स्टेशन को चल दिया था। हरलाल पंसारी की दुकान के पास वह क्षण भर को रुका था। सैदाँ गेट से जाय या चौरस्ती अटारी से, ताँगा मिलने की कोई सम्भावना न थी, इसलिए वह चौरस्ती अटारी की ओर से लगभग भागता हुआ पंज पीर पहुँचा था। और वहाँ उसे अड्डा होशियारपुर से आने वाले एक ताँगे में जगह मिल गयी थी।

०

यद्यपि वह रात भर जागता रहा था तो भी अपनी सफलता पर वह बड़ा प्रसन्न था। लाहौर पहुँच कर वह स्टेशन से सीधा भाई साहब की दुकान पर पहुँचा था और दोनों ज़ेवर उसने भाई साहब के हाथ पर रख दिये थे। 'आप इन्हें बेच कर डेण्टल चेयर और औज़ार ले आइए।' उसने सोल्लास कहा था, 'मैं चन्दा से वही गहने लाया हूँ, जो उसके माता-पिता ने दहेज़ में दिये थे। कोई ऐसा गहना ले आता, जो इधर से पड़ा है तो माँ को पता चल जाता। और मैं यह नहीं चाहता। आप एक ही बार

में तो इतना रुपया लौटा नहीं सकेंगे। धीरे-धीरे देते जाइएगा। मैं फिर उसे दोनों गहने बनवा दूँगा।'

और चेतन ने उन्हें समझाया कि वे दस रुपया महीना वापस करते जायँ।

भाई साहब बड़े प्रसन्न हुए थे और परम उदारता से उन्होंने दस रुपया महीना देने का वादा कर लिया था। बाज़ार जा कर गहने बेचने में उन्हें बड़ी उलझन हुई। उन्होंने जा कर अपने पड़ोसी शीशों वाले बलराम के पिता से सलाह ली। वे उन्हें ले कर सर्राफ़े में गये। दो-तीन जगह उन गहनों का मोल डलवाया और स्वयं साढ़े तीन सौ रुपया दे कर दस तोले के दोनों गहने उन्होंने रख लिये और भाई साहब डेण्टल चेयर और इंजिन ही नहीं, दूसरे औज़ार भी ले आये थे।

०

वहीं कृष्णागली के अपने नये कमरे में बैठे-बैठे चेतन के सामने सारी घटना घूम गयी। भाई साहब ने अभी उसे एक पैसा भी वापस नहीं दिया था। जो पैसा उन्हें आता था, उससे वे और सामान ले आते थे, केवल खाने का ख़र्च वे करते थे और चेतन अपना वेतन भी उन्हें दे देता रहा था। शिमले से वह रुपये नहीं भेज सका था और वे नाराज़ हो गये थे। वह स्वार्थी होता तो साल भर पहले अपना कहानी संग्रह छपवा लेता। उन गहनों से, जो उसने भाई साहब को तब ला कर दिये थे, उसके तीन संग्रह छप जाते। वह शिमला से वापस आया था तो चन्दा ने पूछा तक न था कि भाई साहब ने दस रुपया महीना देना शुरू किया या नहीं। चेतन जानता था कि वह कभी उससे नहीं पूछेगी. . .वहीं बैठे-बैठे उसने सोचा कि अब, जब उसकी नौकरी लग गयी है, वह चन्दा को बुला लेगा। 'हिन्दी रत्न' उसने पास कर लिया था, वह उसे 'हिन्दी भूषण' सम्भव हुआ तो 'प्रभाकर' में दाखिल करा देगा। साथ ही वह उसे संगीत की शिक्षा दिलायेगा और वह 'प्रभाकर' पास कर गयी तो उसे तीन साल के अन्दर-अन्दर केवल अंग्रेज़ी में बी० ए० करा देगा।

वह बी० ए० कर ले, तब कोई बात नहीं। भाई साहब अब अपना खर्च स्वयं करने लगे थे, वही रुपया, जो वह उन पर खर्च करता था, चन्दा की पढ़ाई पर खर्च करेगा। उसे योग्य बनायेगा। गहनों का क्या है। अव्वल तो भाई साहब रुपये देंगे, न भी देंगे तो वह स्वयं कमायेगा और उसे दो के बदले दस गहने बनवा देगा।. . .तभी उसने सोचा कि जब तक भाई साहब आते हैं, वह चन्दा के पत्र का उत्तर दे दे और उसे लिखे कि उसका पत्र मिल गया है, वह चली आये।

वह उठ कर बत्ती जलाने वाला था कि भाई साहब बैठक में दाखिल हुए।

'क्या बात है तुम अँधेरे में क्यों खड़े हो ?'

'बस बत्ती जलाने ही जा रहा था।' चेतन ने कहा और बढ़ कर बत्ती जला दी।

भाई साहब ने जेब से एक चिट्ठी निकाल कर उसे दी।

चेतन ने पढ़ने की कोशिश की, पर न जाने कैसे कीड़े-मकोड़े-से काग़ज़ पर बने थे, उससे एक पंक्ति भी नहीं पढ़ी गयी।

'किसका है ?' उसने पूछा।

'बुआ का है।' भाई साहब ने कहा, 'श्रीरामपुर से आया है ?'

'बुआ. . .श्रीरामपुर. . .कौन बुआ !'

'अरे चम्पा की बुआ !'

'पर वे तो कपूरथला रहती थीं।'

'नहीं, आज कल वे अपने मायके श्रीरामपुर में हैं। तुम शिमला चले गये तो मैंने चम्पा को वहीं भेज दिया था।'

और भाई साहब चुप हो गये।

'क्या लिखा है ?' चेतन ने पूछा।

'तुम्हारी भाभी बीमार है। शायद सर्दी-वर्दी खा गयी है। खाँसी-बुखार है। बुआ ने लिखा है कि श्रीरामपुर में इलाज की व्यवस्था नहीं।

गाँव के वैद्य-हकीम की दवाओं से कुछ लाभ नहीं हुआ, उसे बुला लिया जाय।'

चेतन भूल गया कि वह चन्दा को पत्र लिखने जा रहा था।

'तो मैं ले आऊँ जा कर ?'

भाई साहब चुप रहे।

'कहाँ है श्रीरामपुर ?'

'मैं तो नहीं जानता। लाहौर से चालीस मील दूर है। एक फ़्लैग स्टेशन है। बुआ कपूरथला से अपने गाँव जाती हुई चम्पा को देखने आयी थीं। मैंने उन्हीं के साथ तुम्हारी भाभी को भेज दिया था।'

'ठीक है। मैं जा कर ले आऊँगा। ज्यादा होगा, एक दिन की छुट्टी ले लूँगा। वहाँ गाँव में बीमारी बढ़ गयी तो बाद में मुश्किल होगी। झूठ और बीमारी को कभी बढ़ने नहीं देना चाहिए।' चेतन ने बिलकुल बुजुर्गों की तरह दादा से सुनी हुई कहावत दुहरा दी।

चेतन के भाई सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा :

'इस खत पर बुआ का पूरा पता लिखा है। इसे सँभाल कर रख लो।' और दूसरी ही साँस में इतना और, 'मुझे आज दुकान बन्द करने में देर हो गयी। ऐन वक्त पर एक मरीज़ आ गया। तुम खाना खा आते।'

'नहीं कोई बात नहीं।' चेतन ने कहा, 'चलिए इकट्ठे खाते हैं।'

पत्र सँभाल कर उसने जेब में रख लिया और बाहर निकल कर बैठक का ताला लगा दिया।

अ ठा र ह

मैंयो हस्पताल के लम्बे-चौड़े बरामदे में जँगले से लगी एक बेंच पर चेतन बैठा था। उसके बराबर ही सिर पर दुपट्टा ओढ़े-लपेटे उसकी भाभी बैठी थी। सामने कमरे के दरवाज़े पर स्टूल रखे, बड़ी मुस्तैदी से चपड़ासी डटा था।

चेतन के पीछे जँगला था, फिर नीचे पक्की सड़क, उसके परे बहुत लम्बा-चौड़ा मखमली घास का आयताकार लॉन, जिसमें ज़ीनिया, बालसम और कॉक्सकोम्ब की क्यारियाँ थीं और तारकोल के पीपों को बीच से काट कर बनाये गये गमलों में जामुनी, उन्नाबी और गुलाबी बिगनबेलिया के रंगारंग फूल अनायास ध्यान आकर्षित करते थे। लॉन को बीचोंबीच काटती हुई सड़क मेयो रोड वाले गेट की तरफ़ गयी थी, जिसके दोनों बाज़ू चारदीवारी थी और परे हस्पताल के मेन गेट से घूम कर आने वाली ढालुवीं सड़क चारदीवारी के साथ-साथ नीला गुम्बद तक चली गयी थी।. . .भाई साहब की दुकान को जाते अथवा वहाँ से आते हुए चेतन प्रायः रोज़ उस सड़क से

गुज़रता हुआ नज़र अन्दर डालता था । उसे वह गेट, वह लॉन, उसमें खिले फूल और हस्पताल की बिल्डिंग, वह लम्बा बरामदा और उसमें मरीज़ों की भीड़ बहुत अच्छी लगती थी । लेकिन अब, जब से वह आया था, उसने एक बार भी पलट कर उधर नहीं देखा था ।

हस्पताल का मेन गेट उसके घर के निकट ही हस्पताल रोड और रत्न चन्द रोड के चौरस्ते, या कहा जाय कि पँचरस्ते, पर था । वहाँ हस्पताल रोड और रत्न चन्द रोड आ कर मिलती थीं । रेलवे रोड और निस्बत रोड फूटती थीं और रत्न चन्द रोड सीधी मेडिकल कॉलेज और फिर पटियाला हाउस के साथ होती हुई मैक्लोड को पार कर हॉल रोड में जा मिलती थी । उसी पर ज़रा आगे हस्पताल की चारदीवारी के साथ एक सड़क नीला गुम्बद को उतरती थी और मेयो रोड कहलाती थी । आउट डोर मरीज़ इधर ही से आते थे, क्योंकि सामने के बरामदे में बायीं ओर इंचार्ज डॉक्टर खन्ना का कमरा था । लेकिन चेतन इधर के गेट से नहीं, पँचरस्ते वाले मेन गेट से हो कर आया था और जब से आया था, बिना हिले-डुले कुछ अजीब से तनाव में बैठा था । उसके मन की स्थिति उस वकील जैसी थी, जो अपने मुवक्किल के लिए सरतोड़ कोशिश करने के बावजूद यह जान गया हो कि वह उसे मृत्युदण्ड से न बचा सकेगा । इस पर भी एक अस्पष्ट-सी आशा से जज के आने की प्रतीक्षा कर रहा हो ।. . .चेतन की निगाहें कभी चपड़ासी की निगाहों से जा मिलतीं और उसके चेहरे पर अनायास दयनीयता मिली मिस्कीनी उतर आती और कभी वे भाभी के चेहरे पर जा टिकतीं और उसके अन्तर की दया और करुणा उसकी आँखों में उमड़ आती ।

चेतन की भाभी बिना इधर-उधर देखे, जड़वत बैठी थी—हलके-से घूँघट के बावजूद उसकी लम्बी नाक, जो उसके धँसे कल्लों और उभरे जबड़ों में और भी नुमाइयाँ हो गयी थी, काली-काली छाइयों-भरे सँवलाये चेहरे पर साफ़ दिखायी देती थी । श्रीरामपुर के आँगन में पहली बार भाभी को इस हालत में देखने के बाद, जब-जब उसकी दृष्टि

उस चेहरे पर गयी थी, उसके हृदय में एक तीव्र कचोट उठी थी। इसी जून में जब वह कविराज के साथ शिमला गया था तो उसे हमेशा की तरह गोरी-चिट्टी, हट्टी-कट्टी छोड़ गया था। यह तीन महीने के अन्दर-अन्दर उसे क्या हो गया ?. . .और उसके सामने अनायास कई दृश्य घूम जाते. . .बार-बार वही दृश्य !

. . .चेतन नवीं कक्षा में पढ़ता है, जब भाई साहब दुल्हन ब्याह कर लाते हैं। ऊपर का दालान मुहल्ले की लड़कियों और युवतियों से खचा-खच भरा है। कँगने की रस्म होने जा रही है। चेतन दरवाज़े की चौखट में खड़ा सब कौतुक देख रहा है। कश्मीरी लाल की बहन शान्ति (जिसे बेटी के अभाव में माँ अपनी बेटी बनाये है) ननद के नाते एक थाली में लस्सी-चावल इत्यादि डाल कर लाती है। तब दूल्हा दुल्हन की कलाई से मंगल सूत्र खोलता है और दुल्हन दूल्हे की कलाई से। शान्ति माँ से अँगूठी ले कर उसे मंगल सूत्र में बाँधती है और उसे मुट्ठी में ले कर एक चक्कर दे कर थाली में फेंक देती है। चेतन देखता है कि बिजली की-सी तेज़ी से भाभी का गोरा मज़बूत हाथ भाई साहब से पहले उसे झपट लेता है। भाई साहब उसे छीनना चाहते हैं, पर छीन नहीं पाते। भाभी अँगूठी मुट्ठी में ले लेती है। भाई साहब (कि जिन्हें अपने कसरती होने पर नाज़ है) ज़ोर लगा कर हार जाते हैं, पर मुट्ठी नहीं खोल पाते। कुछ लड़कियाँ उन्हें उकसाती हैं। कुछ भाभी को प्रोत्साहित करती हैं। भाई साहब के माथे पर पसीना आ जाता है, पर उनसे भाभी की मुट्ठी नहीं खुलती। तब वे उसकी कलाई थाम, दायें हाथ का अँगूठा उसकी नस पर रख कर ज़ोर से दबाना चाहते हैं कि भाभी उन्हें शर्मसार करती हुई, मुट्ठी खोल कर अँगूठी उनके आगे फेंक देती है।

. . .कँगने की रस्म हो चुकी है। मुहल्ले की बड़ी-बूढ़ियाँ और पड़ोसी महिलाएँ लड़कियों की भीड़ में रास्ता बनाती हुई आती हैं। दुल्हन का घूँघट उठा कर देखती हैं। उसे शगुन और माँ को बधाई देती हैं और घोषणा करती हैं कि रामानन्द पिछले जन्म में मोतियों का दान

करके आया है। चेतन इस कहावत का मतलब समझता है और उसका मन अपनी भाभी का सुन्दर मुख देखने को लालायित हो उठता है।

. . .एकान्त है। चेतन ज़रा-सा घूंघट उठा कर अपनी भाभी का चेहरा देखता है—लम्बी नाक, नुकीला चेहरा, भरे-भरे कल्ले, गालों पर कश्मीरी सेबों की-सी हलकी स्वाभाविक लाली और भरपूर जवानी का चिह्न—छोटे-छोटे कील! भाभी सुकोमल चाहे न हो, पर बड़ी सुन्दर और स्वस्थ है।

. . .भाई साहब, जो वर्षों से रोज़ तीन-तीन सौ डण्ड-बैठक पेलने के आदी हैं, भाभी से शरीर पर ज़रा मालिश करने को कहते हैं। भाभी इतने ज़ोर से मालिश करती है कि भाई साहब का सारा बदन लाल हो उठता है। वह अन्धाधुन्ध मालिश किये जाती है और वे दाँत भींचे रहते हैं। उनके पौरुष पर आँच न आ जाय, इस भय से वे उसे हाथ ज़रा नर्म करने को भी नहीं कह पाते। यह और बात है कि बाद के आठ वर्षों में फिर वे कभी भूले से भी उसे मालिश करने को नहीं कहते।. . .

एक के बाद एक चित्र चेतन की आँखों के सामने घूम जाता है। पिछले आठ वर्षों में यद्यपि भाभी को तीन बच्चे भी होते हैं (लड़का रह जाता है, जो दादी के पास जालन्धर पढ़ता है और बच्चियाँ परलोक सिधार जाती हैं।) तो भी, न उसकी देह के सोने में कोई अन्तर आता है, न उसके शरीर की गठन में, लेकिन जाने इन पिछले तीन महीनों में क्या होता है कि उसका भरा-गठा शरीर सूख कर काँटा हो जाता है; आँखों के नीचे गढ़े पड़ जाते हैं; गालों पर काली छाइयाँ उभर आती हैं और गोरा-चिट्टा चेहरा एकदम सँवला जाता है।. . .

भाभी के सौन्दर्य के कारण उसके प्रति चेतन के मन में जो आकर्षण था, वह धीरे-धीरे, इन आठ वर्षों में उसके कर्कश, ज़िद्दी स्वभाव और उसकी वज्र-मूर्खता के कारण घोर विकर्षण में बदल गया था। लेकिन जब वह श्रीरामपुर के छोटे-से स्टेशन से उतर कर, चार कोस की मंज़िल मार, बुआ के आँगन में दाखिल हुआ था और रसोई-घर में

बैठी बुआ ने भाभी को बुलाया था और वह आ कर बराबर की कोठरी की चौखट में बैठ गयी थी तो भाभी की सूरत देख कर चेतन का हृदय धक् से रह गया था।

०

वहीं बेंच पर बैठे-बैठे चेतन के सामने श्रीरामपुर स्टेशन के बाद गाँव तक का वह चार कोस का सपाट रास्ता घूम गया।. . .स्टेशन से उतर कर कटे हुए खेतों की मेड़ों और पगडण्डियों पर से होता हुआ वह गाँव पहुँचा था। दो-चार सूनी, वीरान, कच्ची दुकानों वाले तथाकथित बाज़ार और भूलभुलैयाँ-सी गलियों में से हो कर, ज़ब वह बुआ के घर में दाखिल हुआ था तो वह रसोई-घर के आगे बैठी चूल्हा झोंक रही थी। रसोई-घर विशाल कच्चे आँगन के कोने में कोठरे के आगे बना था—मिट्टी की घुटनों तक ऊँची, मेंड़-ऐसी दीवार से घिरा हुआ और बे-छता! लकड़ियाँ शायद गीली थीं। बुआ झुकी हुई निरन्तर फूँकें मार रही थी और धुआँ उठ कर अन्दर कोठरे में जा रहा था। चेतन ने लक्ष्य किया —इन आठ वर्षों में बुआ का मोटा शरीर काफ़ी दुबला गया है। उसका श्याम रंग एकदम सियाह पड़ गया है। लड़कियों के धुएँ के कारण उसकी आँखों में पानी भर आया है। चेतन ने जा कर प्रणाम किया तो बुआ ने कोठरे की ओर मुड़ कर कहा था, 'चम्पा, देख तेरा देवर आया है।'

उत्तर में थोड़ी देर तक कोठरे में कोई खाँसता रहा था। बाहर की रोशनी के कारण उस कच्चे कोठरे में पहले चेतन को कुछ दिखायी न दिया था। फिर जो पतली-दुबली बीमार स्त्री उस अँधेरे में नमूदार हुई, उसे पहली दृष्टि में चेतन अपनी सुन्दर, गोरी, हृष्ट-पुष्ठ भाभी के रूप में ले नहीं पाया। जब वह दहलीज़ में आ कर ज़रा-सा घूँघट खींच कर बैठ गयी और बैठ कर खाँसने लगी और चेतन ने उसे ग़ौर से देखा तो यह जान कर उसे ज़बरदस्त धक्का लगा कि वह उसकी भाभी ही है! उसने यह भी देखा कि भाभी अभी तक उससे घूँघट निकालती है। शुरू

में वह ऐसा नहीं करती थी, लेकिन एक बार चेतन से नाराज़ हो कर उसने उससे घूँघट करना शुरू कर दिया था। फिर चाहे चन्दा ने अपने जेठ के सामने घूँघट उठा दिया, लेकिन भाभी अपने देवर से घूँघट करती रही।

निमिष भर को चेतन अवाक खड़ा रह गया था, फिर उसने भाभी को प्रणाम करते हुए कृत्रिम हँसी के साथ उसका हाल-चाल पूछा था।

भाभी क्षण भर खाँसती रही थी। फिर उसने वहीं दहलीज़ में आँखें गाड़े कहा था, 'ठीक हूँ।'

चेतन ने मुड़ कर बुआ से पूछा था कि भाभी को क्या तकलीफ़ है?

'खाँसी-बुख़ार है।' बुआ ने चूल्हे में फूंक मारना छोड़, दुपट्टे से आँखों का पानी पोंछते हुए कहा था, 'गाँव के वैद से बहुतेरा इलाज कराया है, पर कोई लाभ नहीं हुआ। यहाँ यह कुछ खाती है, न पीती है। ठीक से दवा-दारू नहीं करती। बस गुम-सुम बैठी खाँसती रहती है। तुम अब इसे ले जाओ और वहाँ ठीक से इसका इलाज कराओ।

चेतन रात वहीं रह गया था। सारी रात भाभी रह-रह कर खाँसती रही थी। चेतन उस खाँसी से ख़ूब परिचित था। मुहल्ले में न जाने कितनी जवान लड़कियाँ, औरतें, युवक उस खाँसी का शिकार हो चुके थे। एक बार किसी परिवार में यह खाँसी घर कर जाती थी तो परिवार-का-परिवार साफ़ कर देती थी।. . .दूसरे दिन वह भाभी को ले कर वापस लाहौर आ गया था। गाँव में सवारी का कोई प्रबन्ध न था। चार कोस की मंज़िल! भाभी बार-बार खाँसती और दो फ़र्लांग चल कर बैठ जाती। घण्टे भर का रास्ता उन्होंने ढाई-तीन घण्टे में तय किया था। लाहौर पहुँच कर अपना कमरा खोल, भाभी को वहाँ बैठा, वह अन्दर की चाबी लाने दुकान गया था। तब उसने भाई साहब पर अपना सन्देह प्रकट किया था, 'मेरा ख़याल है, भाभी को टी० बी० हो गयी है।'

'टी० बी०!' भाई साहब मुँह बाये खड़े रह गये थे और भय से उनका चेहरा सफ़ेद पड़ गया था।

'घबराने की ज़रूरत नहीं,' चेतन ने उन्हें तसल्ली दी थी। 'पहले तो

मैं अभी जालन्धर पत्र लिखता हूँ कि खत देखते ही माँ चन्दा को ले कर फ़ौरन यहाँ आ जाय। यूँ तो मैंने सामने सड़क पार के पंसारी से परिचय कर लिया है। अभी जा कर उससे आटा-दाल और दूसरा सामान उधार ले आऊँगा, पर भाभी की जैसी हालत है, खाना-वाना उससे ज़्यादा दिन पकेगा नहीं।'

'क्या बहुत कमज़ोर हो गयी है ?' भाई साहब ने पूछा था।

'मैं तो पहचान ही नहीं सका।' और चेतन ने श्रीरामपुर पहुँचने और भाभी को देख कर चकित रह जाने की बात सविस्तार कही। लेकिन दूसरे ही साँस में उसने उन्हें तसल्ली दी :

'आप घबराइए नहीं। मैं आज या कल मेयो हस्पताल जाऊँगा। पता चलाऊँगा कि वहाँ कैसे क्या होता है। फिर भाभी को ले जाऊँगा। सारे टेस्ट करवाऊँगा। बीमारी का पता चल जाय तो इलाज किया जा सकता है। हो सकता है, मेरा सन्देह ग़लत हो। पर भाभी जैसे खाँसती है. . .'

'तुम माँ को अभी पत्र लिख दो।' भाई साहब ने सहसा उसकी बात काट कर कहा था।

चेतन ने वहीं से पैड ले कर पत्र लिखा था। उसे लिफ़ाफे में बन्द करके वह स्वयं डाकखाने डाल आया था। वापस दुकान पर पहुँचा तो भाई साहब कुर्सी पर बैठे, मेज़ पर पत्री फैलाये उसमें डूबे हुए थे।

'क्या देख रहे हैं ?' चेतन ने दुकान में पैर रखते ही कहा।

भाई साहब ने सिर उठाया, 'मेरे भाग्य में दो शादियाँ लिखी हैं,' उन्होंने कहा, 'चम्पा को देख कर कभी न लगता था कि उसे ऐसा रोग लग सकता है।'

'मेरा इन पत्रियों-वत्रियों में कोई विश्वास नहीं,' चेतन किंचित हँसा था, 'माँ हर साल किला मुहल्ला के उस बुढ़ऊ पण्डित को पिताजी की पत्री दिखाती और वर्ष-फल बनवाती रही। कोई पूजा-पाठ और व्रत-नियम उसने नहीं छोड़ा, लेकिन न पिताजी ने शराब छोड़ी, न जुआ।

इन ज्योतिषियों की भविष्यद् वाणियाँ अँधेरे के तीर होती हैं और संयोग से निशाने पर लगती हैं।'

भाई साहब ने कोई उत्तर नहीं दिया। क्षण भर रुक कर उन्होंने कहा, 'मैंने कई लोगों की पत्रियाँ देखी हैं। कई बार मेरी बातें सौ फ़ी-सदी सच निकली हैं और लोग ही नहीं, मैं भी दंग रह गया हूँ।'

'सच भी हो तो हाथ-पर-हाथ रखे थोड़े बैठा जा सकता है।' चेतन ने ज़ोर दे कर कहा, 'हमारा काम कोशिश करना है। फलाफल की चिन्ता करना नहीं। आप पत्री बन्द कीजिए और मुझे चाबी दीजिए। मैं कल ही भाभी को ले कर हस्पताल जाऊँगा, उसे वहाँ दिखाऊँगा और उसका पूरा इलाज-उपचार कराऊँगा।'

भाई साहब ने चाबी दे दी। चेतन घर वापस आया था। फिर वह ढाबे से दो थालियाँ ले आया। भाभी को खिला और स्वयं खा कर उसने सड़क पार के पंसारी की दुकान से उधारी पर आटे-दाल का प्रबन्ध किया। राशन कनस्तरों और डिब्बों में डाल, घड़ों में पानी भर दिया और धूल-जमे बर्तनों को टोकरे से बाहर निकाल, उन्हें धो-माँज कर फिर सजा दिया। तब वह अपने कमरे में जा कर बिस्तर पर लेट गया था।

पिछले २४ घण्टों में वह आठ कोस चल चुका था। और जब से आया था, लगातार पैदल घूम रहा था। रात श्रीरामपुर के उस आँगन में उसे नींद न आयी थी। आधी रात में पानी आ गया था। उन्होंने चारपाइयाँ कोठरे में कर ली थीं। धुएँ, उमस और सील की बू से उसका जी घुट गया था। मच्छर उसे बेतरह काटते रहे थे, भाभी लगातार खाँसती रही थी और वह सारी रात बिस्तर पर करवटें बदलता रहा था। रात को उसे अपने समाचार-पत्र में ड्यूटी देनी थी। वह चाहता था कि दो-एक घण्टे उसे नींद आ जाय, पर जब लाख प्रयत्न करने पर भी उसे नींद नहीं आयी तो वह उठा। उसने हाथ-मुँह धोया। भाभी थकी हुई सो रही थी। उसे जगाना उसने ज़रूरी नहीं समझा। ऊपर मालकिन-मकान से कह आया कि उसकी भाभी आ गयी है। बीमार है।

थकी हुई सो रही है। वह हस्पताल जा रहा है। यदि वह पूछे तो वे उसे बता दें। वह दो-एक घण्टे में वापस आ जायगा।

यद्यपि दो एक-दिन पहले ही उसने तय किया था कि अब न केवल वह रोज़ नोट-बुक लिखेगा, वरन कहानियाँ लिखना भी शुरू करेगा। पर उस वक्त सारा लिखना-पढ़ना उसके दिमाग़ से एकदम विलुप्त हो गया था। वहाँ केवल भाभी का बीमार चेहरा था और उसके रोग का निदान जानने की बेचैनी।

मकान-मालकिन से मिल कर वह नीचे आया था, उसने अपने कमरे को ताला लगाया था और हस्पताल की ओर चल दिया था।

०

हस्पताल के मुलाज़मीन को रिश्वत देना मना है।

सहसा चेतन की निगाह सामने दरवाज़े के दायीं ओर लगी लाल पट्टी पर चली गयी। वह मन-ही-मन हँसा और उसके कानों में उसके पिता का एक कथन घूम गया—तेल तमा जिसको मिले, तुरत नरम हो जाय—जिसे उसके पिता प्रायः कहा करते थे। और इसी सिद्धान्त पर खुले हाथों अमल करते हुए उन्होंने अच्छे-से-अच्छे स्टेशनों पर बदली करायी थी और अपने नित नये झगड़ों और लड़ाइयों और उनके फलस्वरूप होने वाले मामलों-मुकद्दमों और जाँच-पड़तालों में फ़तह पायी थी और बार-बार मुअत्तल हो कर बहाल हो गये थे।. . .'जहाँ ऐसी पट्टियाँ लगी हुई हैं, वहीं सबसे ज़्यादा रिश्वत चलती है,' चेतन ने सोचा और उसके दिमाग़ में किसी शेर की एक पंक्ति घूम गयी :

मस्जिद के ज़ेरे-साया ख़राबात चाहिए

'आदमी की यह कैसी प्रकृति है कि जिस चीज़ से उसे मना किया जाय, वही करने की प्रबल इच्छा उसके मन में रहती है—चूँकि यहाँ रिश्वत देने की मनाही है, इसलिए मुलाज़िम और मरीज़—दोनों को रिश्वत ले-दे कर देखने की प्रबल उत्कण्ठा होती है। जल्दी काम निकालने के अलावा कानून तोड़ने का सुख अचेतन रूप से उन्हें प्राप्त होता है।'

चेतन जब हस्पताल पहुँचा था तो पूछने पर, वहाँ से लौटते हुए एक आदमी ने उसे बताया था कि वह समय से डॉक्टर को दिखाना चाहता है तो सुबह-सुबह पहुँच कर चपड़ासी की मुट्ठी गर्म कर दे, तब वह उसकी पर्ची सब से पहले डॉक्टर की मेज़ पर रख देगा।. . . लेकिन चेतन को अभी पहले महीने का वेतन भी नहीं मिला था और उसका हाथ बेहद तंग था। तब उसने तमा के बदले तेल से काम निकालने की सोची थी। उसने कहीं पढ़ा था कि वक्त वास्तव में धन है और जो आदमी वक्त बर्बाद करता है, वह धन ही बर्बाद करता है। चेतन के पास धन नहीं था। सो उसने सोचा कि थोड़ा वक्त ही बर्बाद कर लेना बेहतर है। पूछता-पूछता वह इसी बरामदे में आया था। डॉक्टर और मरीज़ जा चुके थे और चपड़ासी को अपेक्षाकृत फ़ुर्सत थी। वह एक टाँग स्टूल पर रखे और एक लटकाये ऊँघ रहा था। चेतन के जूतों की चाप से वह चौंका तो चेतन ने बड़े तपाक से कहा था :

'आदाब अर्ज़ मियाँ साहब।'

मियाँ साहब की टाँग नीचे आ गयी और वे स्टूल पर आधे-बैठे आधे-खड़े हो गये थे।

'मैं यहाँ के मशहूर कौमी अखबार 'बन्दे मातरम' में काम करता रहा हूँ।' चेतन ने कहा, 'इधर कुछ बीमार हो गया था। इसलिए मुझे नौकरी छोड़ देनी पड़ी। अब मैं रोज़नामा 'वीर भारत' में सिर्फ़ रात की ड्यूटी देता हूँ। रात के दो बजे लौटता हूँ और दिन को देर से उठता हूँ। मैं तो सुबह ही आना चाहता था, पर रात तीन बजे आया और देर तक सोता रहा।. . .'

इन ब्योरों की प्रकट कोई ज़रूरत न थी, पर आत्मीयता स्थापित करने के लिए चेतन ने सविस्तार अपना परिचय दिया और बोला, 'एक मुसीबत में फँस गये हैं मियाँ साहब, इसलिए आपकी ख़िदमत में आया हूँ।'

चपड़ासी ने किंचित रुखाई से पूछा कि क्या बात है ?

'मेरी भाभी गाँव गयी हुई थी,' चेतन ने कहा, 'वह बहुत बीमार है। मैं चाहता हूँ कि उसकी बीमारी का पता चल जाय।'

चेतन की लम्बी भूमिका सुन कर चपड़ासी घबरा गया था कि जाने क्या काम वह उससे लेना चाहता है। लेकिन बात इतनी ही-सी है, जिसके लिए अख़बार का ऐटीडर उसके पास आया है, यह जान कर उसने सोत्साह कहा, 'आप उन्हें सुबह हस्पताल ले आइए ऐडोटर साहब। डॉक्टर खन्ना बहुत लायक हैं, तशख़ीस[1] हो जायगी।'

'हम आपके बड़े मशकूर होंगे,' चेतन ने कृतज्ञता से कहा, 'मेरे बड़े भाई बाइबल सोसाइटी के सामने प्रैक्टिस करते हैं। दाँतों के डॉक्टर हैं, पर नयी-नयी प्रैक्टिस है। आप जानते हैं, लाहौर में प्रैक्टिस जमा लेना आसान नहीं। सो हम ज़रा तंगी में हैं।. . .'

'आप फ़िक्र न कीजिए। आप उन्हें ले आइए।'

क्षण भर रुक कर चेतन ने पूछा, 'एक्स-रे तो यहाँ नहीं होता ?'

'क्यों एक्स-रे का केस है ?' मियाँ साहब ने चिन्ता से पूछा।

'मालूम नहीं। उसे खाँसी-बुख़ार है। कमज़ोर बहुत हो गयी है। शायद ऐक्स-रे कराना पड़े।'

चपड़ासी को रिश्वत देने वाले मिलते थे और वह उनका काम करके उन्हें सलाम ठोंकता था। गिड़गिड़ाने वाले ग़रीब मिलते थे जिन्हें वह डाँटता-फटकारता और धकियाता था। चेतन की बातों से उसे कुछ अजीब-से अपनत्व और बराबरी का एहसास हुआ। उसने तपाक से कहा, 'कोई फ़िक्र नहीं ऐडीटर साहब, आप उन्हें ले आइएगा। ज़रूरत पड़ी तो एक्स-रे हो जायगा।'

'आप ज़रा ऐक्स-रे डिपार्टमेण्ट के चपड़ासी से कह दीजिएगा।'

'अरे साहब आप मेरा नाम लीजिएगा। कोई दिक्कत नहीं होगी। रफ़ी मियाँ को यहाँ सारा हस्पताल जानता है।' और चपड़ासी ने अपने

---

१. निदान

सीने पर हाथ मार कर अपना महत्व जताया।

'रफ़ी मियाँ,' चेतन ने आजिज़ी से कहा, 'मुझे ज़रा आज उनसे मिलवा देते तो आपका एहसान होता। सुबह तो आपको दम मारने की भी फ़ुर्सत नहीं होगी. . .'

चपड़ासी क्षण भर असमंजस में रुका रहा, फिर बोला, 'आप कल आइएगा। एक्स-रे कराना होगा तो मैं ख़ुद साथ चला जाऊँगा।'

'अरे रफ़ी मियाँ।' चेतन ने ज़रा हँस कर परम पुराने परिचितों की तरह कहा, 'कल आपको हमारी तरफ़ देखने की भी फ़ुर्सत नहीं होगी।'

तब जाने चपड़ासी के मन में क्या आया। वह उठा और चेतन को ऐक्स-रे डिपार्टमेण्ट में चपड़ासी के पास ले गया और उसने कहा, 'हमीद भाई, यह ऐडीटर साहब अपने ही आदमी हैं। कल अगर ये किसी मरीज़ को एक्स-रे के लिए लायें तो इनका काम ज़रा जल्दी करा दीजिएगा।'

चेतन ने दोनों का बहुत शुक्रिया अदा किया था। रफ़ी मियाँ को वापस उनके स्टूल पर छोड़ कर और मन में कुछ हलका हो कर हस्पताल से लौटा था। घर आ कर उसने भाभी से कहा था कि वह सुबह-सुबह तैयार हो जाय। वह उसे हस्पताल ले जायगा। फिर कपड़े उतार कर केवल तहमद पहने वह अपने कमरे में लेट गया था। और यद्यपि चार बज चुके थे और शाम उतर आयी थी, वह पड़ते ही सो गया था।

०

चेतन की दृष्टि फिर अपनी भाभी के चेहरे पर चली गयी। वह उसी तरह निर्विकार बैठी थी। क्या इसका दिमाग़ एकदम ठस है?—उसने मन-ही-मन सोचा—तीन-चार बार वह उसे ले कर हस्पताल आया है। पिछले सात दिनों से उसने हस्पताल और घर एक कर दिया है। रफ़ी मियाँ ही की नहीं, उसने कई डॉक्टरों की भी हमदर्दी हासिल कर ली है। उसने अपनी भाभी का स्टूल और स्पूटम टेस्ट कराया है। एक्स-रे कराया है और एक डिपार्टमेण्ट से दूसरे डिपार्टमेण्ट में दौड़ता फिरा है।

दो दिन पहले माँ चन्दा को ले कर आ गयी है। और घर के सब लोग आतंकित हैं, लेकिन उसकी इस भाभी ने एक बार भी अपनी बीमारी के बारे में उससे कोई प्रश्न नहीं किया।

माँ के आने से एक दिन पहले उसे उनका पत्र मिल गया था। परसों सुबह वह उसे और चन्दा को लेने स्टेशन गया था। माँ ने आँगन में दाखिल होते ही जब अपनी बड़ी बहू को देखा था तो यद्यपि उस वक्त उसने कुछ भी नहीं कहा था पर निराशा से ऐसे सिर हिलाया था कि कहने को कुछ भी न रह गया था। चन्दा ने रसोई घर का काम सँभाल लिया था। माँ नहाने-धोने और पूजा पाठ में लग गयी थी। और चेतन अस्पताल चला आया था। जब दोपहर को वह चारपाई पर लेटा था तो माँ उसके पास आ बैठी थी। तब चेतन ने उसे सविस्तार बताया था कि डॉक्टर ने ऐक्स-रे और स्पूटम-स्टूल टेस्ट[1] के लिए कहा है। २४ घण्टे की बलग़म वह टेस्ट के लिए दे आया है। तब माँ ने कहा था, 'ऐक्स-रा जो दस्सेगा, मैं तैन्नूँ हुणेई दस्स देन्नी हाँ। इहनूँ पुराना बुखार ए, इह खाँसी ही दस्सदी ए!'[2]

और उसने चेतन को समझाया था कि वह चन्दा से ज़रा बच के रहने को कहे। 'मैं रामानन्द नूँ कहाँगी,' चेतन की माँ ने कहा, 'कि एन्नूँ आदमपुर भेज देवे। तुसीं लोग अपना देखोगे कि इहदा अग्गा-तग्गा करोगे? मैं लै जांदी, पर मेरे नाल एस लड़ाकी दी इक दिन नहीं बनदी!'[3]...

---

१. बलग़म और पाख़ाने का निरीक्षण। २. एक्स-रे जो बतायगा, मैं तुझको अभी बता देती हूँ। इसे पुराना बुख़ार है। यह बात खाँसी ही बताती है। ३. मैं रामानन्द से कह दूँगी कि इसे आदमपुर (भाभी के मायके) भेज दे। तुम लोग अपना देखोगे कि इसके आगे-पीछे फिरोगे। मैं इसे ले जाती, पर मेरे साथ इस लड़ाको की एक दिन नहीं बनती।

यद्यपि चेतन से भी कभी इस भाभी की नहीं पटी थी, पर माँ की इस निठुरता से उसे बड़ा दुख हुआ था। लगातार भाग-दौड़ करके उसने सारे टेस्ट कराये थे और रफ़ी मियाँ की सहायता से सबकी रिपोर्टें प्राप्त की थीं और वे सब भाभी के कार्ड के साथ डॉक्टर की मेज़ पर सब से ऊपर रखवा दी थीं। वह भाभी को ले कर समय से बहुत पहले आ गया था। बरामदे में मरीज़ों के बैठने के लिए कोई कुर्सी और बेंच न थी। मरीज़ बरामदे के फ़र्श पर, सीढ़ियों पर, लॉन में बिखरे हुए थे। अधिकांश गन्दे, मैले, फटे कपड़ों में अपना नंगापन ढाँपे ग़रीब मज़दूर-किसान थे। बीच-बीच में निम्नमध्यवर्गीय सफ़ेदपोश भी थे, जो फ़र्श पर बैठने की बजाय जँगले से लगे खड़े थे, अथवा अपना एक-आध आदमी वहाँ छोड़ कर लॉन में जा बैठे थे। चेतन जब पहले दिन भाभी को लाया था तो वे भी उन्हीं की तरह जँगले से टिक कर खड़े हो गये थे, पर भाभी बहुत देर खड़ी न रह सकी थी और वहीं फ़र्श पर बैठने लगी थी। तभी रफ़ी मियाँ उठ कर गये थे और किसी वॉर्ड-बॉय की मदद से एक बेंच उठा लाये थे और उसे उन्होंने जँगले के साथ बिछा दिया था और कहा था, 'आप इधर बैठिए ऐडीटर साहब।'

सुबह चेतन अपनी भाभी को ले कर जब आया था तो एक भी मरीज़ वहाँ नहीं था, लेकिन इस एक घण्टे में सारा बरामदा मरीज़ों से पट गया था। बेंच के निकट ही जँगले से पीठ लगाये एक जलोधर का मरीज़ आ बैठा था, जिसका शरीर सूख कर काँटा हो गया था और पेट बहुत फूल आया था। उसकी ओर दृष्टि जाते ही चेतन के शरीर में एक सिहरन दौड़ जाती थी। परे, आँखों पर पट्टी बाँधे एक बुढ़िया कराह रही थी। बाहर जँगले के नीचे सड़क पर रखी चारपाई पर एक स्त्री लगभग बेहोश पड़ी थी, कण्ठ तक उसका शरीर चादर से ढँका था और वह रह-रह कर कराह रही थी। उसकी चारपाई से कुछ अजीब-सी गला-घोंटती बू आ रही थी—'जाने उसे क्या तकलीफ़ है?'—चेतन ने मन-ही-मन सोचा—'उसके कोई भयानक घाव है, जो सड़ रहा है।

आदमी अपनी तकलीफ़ को बहुत समझता है, पर हस्पताल में आने पर पता चलता है कि एक-से-एक भयानक रोग के मारे इस दुनिया में पड़े हैं। कभी-कभी आदमी को हस्पताल में आ कर जनरल वॉर्ड में चक्कर लगा जाना चाहिए। दुख में और भी ज़्यादा दुखियों का खयाल मन को तसल्ली देता है।'

चेतन इतनी देर से अपने ध्यान में गुम बैठा था, पर जब से वह चारपाई नीचे सड़क पर आयी थी और उसके साथ ही गला-घोंटती-सी बू उस तक आने लगी थी, चेतन का ध्यान रह-रह कर उधर जाता था और उस चारपाई से होता हुआ अन्य मरीज़ों पर चला जाता और वह चाहता था कि डॉक्टर आ जाय तो वह उसका फ़ैसला सुन कर घर जाय। फ़ैसला उसे लगभग मालूम था। तो भी एक हलकी-सी आशा का तार बँधा था—लेकिन इतना हलका कि उसके होने का भी उसे आभास नहीं था।

लेकिन भाभी ने इस एक घण्टे में ज़रा भी इधर-उधर न देखा था। न कोई बात पूछी थी। न कही थी। वह एकदम निर्विकार बैठी थी।

तभी परे बरामदे के मरीज़ों में हलचल हुई। फ़र्श के बीचोंबीच बैठे मरीज़ और उनके सम्बन्धी किनारों पर हो गये। कुछ बैठे खड़े हो गये और मेडिकल कॉलेज के दो छात्रों को जिलौ में लिये डॉक्टर खन्ना खट-खट चलते हुए आते दिखायी दिये।

रफ़ी मियाँ उठ कर मुस्तैदी से खड़े हो गये।

चेतन ने ज़रा आगे बढ़ कर 'नमस्कार' किया।

डॉक्टर खन्ना बिना उसकी ओर देखे, सिर की हलकी-सी जुम्बिश से उसके 'नमस्कार' का उत्तर देते हुए कमरे के अन्दर चले गये।

मरीज़ों का रेला सब तरफ़ से कमरे की ओर उमड़ा। रफ़ी मियाँ बीच दरवाज़े के खड़े हो गये उन्होंने सब को परे रहने का आदेश दिया और कहा कि वे बारी-बारी सबको बुलायेंगे। फिर क्षण भर को वे अन्दर गये और आ कर उन्होंने चेतन से कहा :

'आइए ऐडीटर साहब।'

०००

उन्नीस

अपनी भाभी को लिये हुए जब चेतन हस्पताल से घर आया तो उसका उतरा हुआ चेहरा देख कर ही माँ समझ गयी थी कि उसका सन्देह ग़लत नहीं था। जब भाभी पिछले कमरे में जा कर चित लेट गयी और चेतन अपने कमरे में आ गया और माँ उसके पीछे-पीछे आयी तो चेतन ने बिस्तर पर ढहते हुए लगभग रुद्ध स्वर में कहा, 'तुम ठीक कहती थी माँ, भाभी को टी० बी० है, तीसरी स्टेज में है और उसके दोनों फेंफड़े खोखले हो गये हैं।'

प्रत्याशित होने के बावजूद चेतन की बात सुन कर क्षण भर माँ कुछ नहीं कह सकी। वह कुर्सी पर बैठ गयी, दायाँ पैर उसने ऊपर उठा लिया, घुटना मोड़ लिया और उस पर हाथ और हाथ पर ठोड़ी टिका कर बैठी शून्य में देखने लगी।

चेतन के सामने हस्पताल का कमरा और उसमें डॉक्टर खन्ना की गम्भीर, व्यस्त, तत्पर सूरत घूम गयी। चपड़ासी की आवाज़ सुनते ही वह भाभी के साथ अन्दर गया था। बड़ी तत्परता से उसने अपना परिचय देते हुए

भाभी का नाम बताया था। तब चपरासी ने मेज़ पर रखा कार्ड, स्टूल और स्पूटम की रिपोर्टें और ऐक्स-रे का फ़ोल्डर डॉक्टर के आगे कर दिया था।

डॉक्टर ने रिपोर्टें देखी। उनके माथे पर हलके-से तेवर बन गये। फिर उन्होंने पीले फ़ोल्डर से ऐक्स-रे फ़ोटो का नेगेटिव निकाला। बायें हाथ में ले कर उसे दरवाज़े की रोशनी में देखा। उसके साथ नत्थी ऐक्स-रे विशेषज्ञ की रिपोर्ट देखी, फिर नेगेटिव पर नज़र डाली और उसे फ़ोल्डर में वापस रखते हुए अंग्रेज़ी में चेतन को बताया था कि उसकी भाभी को यक्ष्मा है, खासी एडवान्स्ड[1] स्टेज में है, उसके दोनों फेफड़े अफ़ेक्टेड[2] हैं और उसे फ़ौरन किसी सेनेटोरियम में पहुँचाना चाहिए।

'सेनेटोरियम,' चेतन मन-ही-मन हँसा था। 'भोजन के संसे पड़े धन की कैसी आस?' उसने माँ से सुनी हुई कहावत मन में दोहरायी और डॉक्टर से कहा कि सेनेटोरियम में जाने की सकत उनमें नहीं है, वे कोई दवाई दे दें और खाने-पीने का परहेज़ बता दें।

उस ज़माने में स्टेप्टोमाइसिन-पेनसिलिन जैसी अचूक औषधियाँ और एड्हीयन, फ्रे निक और पसलियों के ऑपरेशन तो दूर, ए० पी० और पी० पी०[3] तक का चलन न हुआ था और साधारण डॉक्टर यह तक न जानते थे कि यक्ष्मा खूराक की कमी, कमज़ोरी और फ़ाकाकशी के कारण होता है। लेकिन डॉक्टर खन्ना हस्पताल के प्रसिद्ध डॉक्टर थे। उन्होंने कहा कि मरीज़ को फ़ौरन किसी पहाड़ी पर ले जाया जाय। स्वच्छ हवा और अच्छी गिज़ा दी जाय। ले सके तो प्याज़ और लहसुन का रस उसे एक चम्मच रोज़ दिया जाय! खाँसी-बुखार के लिए एक मिक्स्चर

---

१. विकसित २. ग्रस्त। ३. ए० पी०, पी० पी०—क्रमशः फेफड़े के बाहर प्लूरा में और पेट में हवा भर कर कृत्रिम रूप से फेफड़े और डायफ्राम को दबाना ताकि फेफड़ा फैल न सके और बीमारी के कीड़े वहीं-के-वहीं मर जायें।

लिख दिया और पुर्जा उसे दे कर वे दूसरे मरीज़ों की तरफ़ मुड़ गये। (चेतन ने ध्यान नहीं दिया था, जब डॉक्टर निरीक्षण करने के बाद उसकी भाभी के लिए नुस्खा लिखने लगे थे तो चपड़ासी ने एक-साथ मरीज़ों की पूरी-की-पूरी पलटन अन्दर बुला ली थी।)

०

माँ को डॉक्टर की रिपोर्ट सुना कर चेतन हताश चारपाई पर लेट गया। माँ ने घुटने से हाथ हटा लिया और उस पर ठोड़ी टेक, अपने विचारों में गुम बैठी रही।

०

उस वक्त भी, जब हस्पताल में चेतन को मालूम हुआ था कि उसकी भाभी को यक्ष्मा है और काफ़ी बढ़ी हुई अवस्था में है और इस वक्त भी, जब चेतन ने माँ के सामने वही बात दोहरायी थी, उसने सोचा था कि इतने कम अर्से में भाभी का रोग इतना बढ़ कैसे गया ? यद्यपि उसे श्रीरामपुर में ही सन्देह हो गया था कि उसकी भाभी को यक्ष्मा है, पर रोग इतना बढ़ गया है, यह उसने कभी नहीं सोचा था। एक शक यह भी था कि शायद उसे पुराना बुखार और खाँसी है और अगर फ़ौरन इलाज न कराया गया तो बीमारी यक्ष्मा में परिणत हो जायगी। उसने पढ़ रखा था कि इस बीमारी के कीड़े महीनों और कई बार वर्षों अन्दर-ही-अन्दर पलते रहते हैं और प्रकट होने के बाद भी बीमारी महीनों ले जाती है। उसकी भाभी तो तीन महीने पहले हट्टी-कट्टी थी। यह तीन ही महीनों में कैसे हुआ कि बीमारी इस हद तक बढ़ गयी और उसके दोनों फेफड़े छलनी हो गये ? फिर रोग के स्वाभाविक कष्ट के अलावा भाभी के चेहरे पर किसी तरह की शिकायत का भाव न था। कुछ अजीब-सी निरपेक्षता से वह अपनी बीमारी को ले रही थी। किसी मूक हठी पशु की तरह, जैसे वह अपनी यातना बे-आवाज़ सहन किये जा रही थी और चेतन के मन में बार-बार प्रश्न उठता था कि वह, जो इतनी कर्कशा थी, लड़ाकी थी; ऐसे मौन, निःशब्द कैसे हो गयी—क्या इसका

दिमाग़ ठस्स हो गया है ? क्या यह कुछ नहीं सोचती ? कुछ नहीं महसूस करती ?

सहसा पिछले कमरे में भाभी की खाँसी ने माँ-बेटे दोनों का ध्यान भंग कर दिया । 'मैं ताँ पहले ई जानदी सी,' माँ ने कहा, 'लच्छन ही दस्सदे सन ।'. . .फिर कुछ क्षण चुप रह कर उसने वही चिन्ता प्रकट की, 'इहनूँ एत्थे किद्दाँ रक्खोगे ? कौन इहदा इलाज-उपचार करेगा ?' वह कुछ क्षण चुप रही फिर बोली, 'इह बीमारी ताँ घर-दे-घर साफ़ कर जान्दी ए ।'[1]

चेतन इसका क्या जवाब दे, वह सहसा तय नहीं कर पाया । भाई साहब आयें तो उनकी सलाह से कुछ हो । माँ ठीक कहती थी, लेकिन इस हालत में उसे बाहर तो नहीं फेंका जा सकता । पिछले एक सप्ताह में भाभी ने एक शब्द भी अपनी बीमारी के सन्दर्भ में नहीं कहा था । बस खाँसती रहती थी । या कभी-कभी कराह उठती थी । वह पूछता था, 'भाभी कैसी तबियत है ?' तो कहती थी, 'ठीक हूँ ।'

चेतन के सामने मुहल्ले की कई लड़कियों और युवतियों के चित्र आ गये, जो यक्ष्मा के चंगुल में फँस कर हकीमों और वैद्यों की सस्ती दवाओं के सहारे इस भवसागर के पार लग गयी थीं । यदि किसी घर में एक बहन को रोग लगा तो दूसरी भी उसका शिकार हुई, पति को लगा तो पत्नी को भी लगा । एक भाई उसके चंगुल में फँसा तो दूसरे का भी वही हश्र हुआ । चेतन के अपने घर में तो किसी को यह रोग नहीं था । चेतन की दादी उस समय परलोक सिधार गयी थी, जब चेतन के पिता सिर्फ़ तीन बरस के थे, पर उसे टी० बी० नहीं थी । प्लेग का प्रकोप हुआ था और चेतन के दादा, पड़दादी और तीन वर्ष के उसके पिता को

---

१. मैं तो पहले ही जानती थी । लक्षण ही बताते थे । इसको यहाँ कैसे रखोगे ? कौन इसका इलाज-उपचार करेगा ? यह बीमारी तो घर-के-घर साफ़ कर जाती है ।

छोड़ कर शेष घर-का-घर साफ़ हो गया था। एक बचे थे चूनी चाचा, जो पागल थे। याने जब से चेतन ने होश सँभाला था, उन्हें पागल ही देखा था। माँ कहती थी कि चूनी चाचा ही क्यों, पागलपन का एक तार सारे परिवार में विद्यमान है। लेकिन यक्ष्मा—यह बीमारी उसके घर में नहीं थी। उसके ननिहाल में भी नहीं थी। फिर भाभी को कहाँ से आ लगी ? क्या उसके मायके में किसी को यह बीमारी थी ? लेकिन चेतन को भाभी के मायके के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। भाई साहब को और भी कम था, क्योंकि वे गौना लेने गये सो गये, फिर ससुराल नहीं गये। रहे पिता जी, सो जब भाभी के पिता पण्डित गिरधारीलाल (जो उन्हीं के डिवीज़न में स्टेशन मास्टर थे और जिनके स्थान पर पण्डित शादीराम रिलीविंग के दिनों में दो महीने काम कर चुके थे और अपनी उदारता के कारण मित्र भाव स्थापित कर चुके थे) एक दिन उनके यहाँ अपनी लड़की के लिए झोली पसार कर आ खड़े हुए तो पण्डितजी ने कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं समझी और कहा कि आप जालन्धर जा कर मेरा लड़का देख आइए, आपको पसन्द है तो मुझे कोई एतराज़ नहीं। लड़का, पण्डित गिरधारीलाल पहले ही देख आये थे; इसलिए पण्डित शादीराम ने शगुन का रुपया ले लिया। केवल एक शर्त रखी कि बरात के डेढ़-दो सौ आदमियों का वे प्रबन्ध करें, देने-लेने में उनका विश्वास नहीं, बस उनके मित्रों का आदर-सत्कार कर दें। लड़की कैसी है, उसकी माँ कैसी है, घर कैसा है, उन्होंने कुछ नहीं जाना। लड़का तो क्या देखता, माँ ने भी आदमपुर जा कर लड़की नहीं देखी। और पिता आदमपुर गये तो डेढ़ सौ के बदले तीन सौ बराती ले कर ! उन दिनों वे दुसूआ के स्टेशन पर नियुक्त थे। दुसूआ बहुत बड़ी मण्डी है। मौसम में गेहूँ और आम की खूब निकासी होती है। उन्हें ऊपरी आमदनी भी खूब थी। पहले लड़के की शादी ! दुसूआ, जालन्धर और होशियारपुर से तमाम सगे-सम्बन्धियों, मित्रों और दोस्तों को वे ले गये। आदमपुर दोआबा छोटा-सा कस्बा। डेढ़ सौ की जगह

जब बरात में तीन सौ आदमी पहुँच गये तो पण्डित गिरधारीलाल को खासी परेशानी हुई। लेकिन वे पण्डितजी की आदत से परिचित थे, इसलिए उन्होंने अपनी ओर से भरसक कोशिश की कि उन्हें कष्ट न हो। . . .चेतन तब नवीं जमात में पढ़ता था। उसे इतना याद है कि पिता अपने दोस्तों के साथ शराब में मस्त थे और शेष लोग ताश और शतरंज खेलने, खाने और सोने में। भाई साहब के कुछ दोस्त जनवासे से दूर एक पेड़ की छाया में बैठे फ़्लाश खेलते रहे थे और चार घण्टे बाद जब बुलाहट पड़ने पर उठे थे तो न कोई जीता था, न हारा था।. . .एक घटना उस शादी की चेतन के दिमाग़ पर बे-तरह नक्श हो गयी थी। कोई रस्म थी और पण्डित गिरधारीलाल दूल्हे को लेने आये थे। भाई साहब लाहौर के गवर्नमेण्ट कॉलेज में पढ़ने वाले अपने मित्र की संगति में दूल्हा बने, उस रस्म पर नाक-भौं सिकोड़ रहे थे और नख़रा कर रहे थे और लड़की वाले परेशान थे, तभी पण्डित शादीराम के कानों में उसकी भनक पड़ी। वहीं मित्रों में बैठे पण्डित जी ने दूल्हे को बुला कर हुक्के की नली उसकी पीठ पर दी और भाई साहब के लाहौरी मित्र की चिन्ता किये बिना भद्दी-सी गाली देते हुए कहा कि चल, जैसे पण्डितजी कहते हैं कर, साला दूल्हा बना फिरता है!. . .भाई साहब की आँखें भर आयी थीं (और ऐसा चेतन को उन्होंने बाद में बताया) उनका जी चाहा था कि शादी-वादी को बीच ही में छोड़ कर वे भाग जायँ, पर कहाँ, यह उस क्षण वे तय न कर पाये थे और आँसू पोंछते हुए अपने लाहौरी मित्र से आँखें मिलाये बिना, वे अपने ससुर के साथ चले गये थे. . .

वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे चेतन के सामने पूरी-की-पूरी घटना आ गयी। भाई साहब की उस सूरत पर उसे हँसी भी आयी, दया भी और अपने पिता के उस व्यवहार के प्रति क्रोध भी।. . . यह सब करने के बदले उन्होंने यदि लड़की के स्वभाव के बारे में, उसके सम्बन्धियों के स्वभाव के बारे में जाँच-पड़ताल की होती तो कितना अच्छा होता!

और चेतन की याद के पर्दे पर भाई साहब के आरम्भिक वैवाहिक

जीवन की एक घटना कौंध गयी, जब उन्हें मालूम हुआ था कि पण्डित शादीराम ने अपनी बेपरवाही में अपने बड़े लड़के के गले में कितना बड़ा चक्की का पाट बाँध दिया है।

. . .शादी तो भाई साहब की हो गयी थी, पर वे कुछ कमाते-धमाते नहीं थे। पढ़ाई उन्होंने छोड़ दी थी। नौकरी कोई मिली न थी और सारा दिन ताश-शतरंज में वे मस्त रहते थे। शुरू के कुछ दिन उन्होंने पत्नी के साहचर्य में नव-विवाहित की तरह गुज़ारे सो गुज़ारे, फिर वे अपने मित्रों में जा शामिल हुए और भाभी ने ज़रा-ज़रा-सी बात पर लड़-लड़ा कर घर भर का जीना दूभर कर दिया। एक बार वह ऐसे ही लड़ कर चली गयी और जब दो महीने नहीं आयी तो अपने भाई की इच्छा और माँ के आदेश पर वह भाभी को लेने आदमपुर गया था। तब भाभी ने आने से इनकार कर दिया था। उसका भाई मेल ट्रेन ड्राइवर हो गया था। उस ज़माने में ४०० रु० उसका वेतन था। और आठ सौ तक उसके जाने की सम्भावना थी।—भाभी ही की तरह लम्बा-तगड़ा, खुले-खुले अंगों वाला और वैसा ही ठस्स—चेतन को भाभी से मालूम हुआ कि उसकी पत्नी पागल हो गयी है। बच्चा हुआ था। उसी के बाद जाने क्या हुआ कि वह पागल हो गयी। यद्यपि अपनी इस भाभी से (जो डील-डौल में उसी की तरह हट्टी-कट्टी, परम देहातिन और वैसी ही लड़ाकी थी) चेतन की भाभी की कभी नहीं बनी, पर उस समय जब उसे अपनी सुध-बुध न थी, उसके बच्चे के पालन-पोषण का प्रश्न था। सास तो बहुत पहले स्वर्ग सिधार गयी थी। इसलिए भाभी न केवल नव-जात शिशु, वरन उसके बड़े भाई और बहन को भी सँभाले हुए थी, इसलिए उसने अपनी विवशता प्रकट की थी।

चेतन को एक झलक उसकी उस पागल भाभी की भी मिली थी। आँगन के बायीं ओर के कमरे में वह बन्द थी। डेवढ़ी से आते हुए गलियारे की ओर को खुलने वाली, कमरे की खिड़की से चेतन ने उसे देखा था। वह कमरे के बीचोंबीच अलिफ़ नंगी खड़ी थी। उसकी

भरी-पुरी देह सूख कर काँटा हो गयी थी; मैली-सी, छोटी-छोटी छातियाँ बेहिस लटक रही थीं और सिर के बाल जटाएँ बन गये थे और वह मर्दों के मुँह पर चढ़ी रहने वाली बेहद अश्लील, गन्दी, कुफ्र-तोड़ गालियाँ बक रही थी। क्षण-भर के लिए चेतन ने उसे देखा था और वह पतली-दुबली, सूखी, कृश, नंगी, तनी देह जैसे हमेशा के लिए उसके दिमाग़ पर नक्श हो गयी थी।

उसी शाम वह जालन्धर वापस आ गया था।

लेकिन जब इस बात को दो महीने हो गये और भाभी नहीं आयीं और माँ को पिताजी के पास जाना था और उसकी अनुपस्थिति में खाना पकाने की समस्या थी—भाभी आ जाती तो दादा चूल्हा झोंकने से बचते—तब चेतन ने भाभी को लिखा कि वह तत्काल आ जाय। जब एक सप्ताह तक कोई उत्तर नहीं आया तो चेतन ने फिर किंचित कड़ी ताकीद की। तब भाभी के ड्राइवर भाई का पत्र आया, जिसे पढ़ते ही चेतन के तन-बदन में आग लग गयी। पत्र लम्बा था। उसमें भाई साहब की आवारगी और बेकारी का सविस्तार वर्णन था और अन्त में लिखा था कि जब उसका पति कमाने लगेगा और उसके योग्य होगा, तभी उसकी बहन जालन्धर जायगी।

माँ रसोई घर में बैठी खाना पका रही थी। चेतन उसके सामने मोढ़े पर बैठा था। भाई साहब तभी बाहर से आये थे और यह जान कर कि उनकी ससुराल से पत्र आया है, चेतन के ऊपर झुके हुए (जब वह पत्र पढ़ कर माँ को सुना रहा था तो) उससे भी आगे-आगे, उसे मन-ही-मन बाँच रहे थे। उनकी प्रशंसा में जो दो-चार सटीक वाक्य पत्र में उनके साले साहब ने लिखे थे, उन्हें बाँच कर आगे पढ़ने अथवा चेतन के मुँह से सुनने का सारा चाव और औत्सुक्य भाई साहब का समाप्त हो गया और वे सीधे खड़े हो कर सिर कुरेदने लगे थे।. . . चेतन ने सारा पत्र पढ़ कर माँ को सुना दिया और वह बमकने लगा—
'ठीक है, वह अपनी बहन को नहीं भेजना चाहता। मत भेजे। ज़िन्दगी

भर उसे वहाँ रखे। अब वह आयेगी तो अपने-ही-आप आयेगी। यहाँ से उसे न बुलाया जायगा, न कोई लेने जायगा।'

भाई साहब चुप खड़े सिर कुरेदते रहे थे। उनके मन में क्षण भर को यह बात आयी थी और वे कहना भी चाहते थे (जैसा कि उन्होंने बहुत दिन बाद चेतन को बताया था) कि यह पत्र चम्पा ने नहीं लिखा; उसके भाई ने लिखा है; हो सकता है, बिना उससे पूछे उसने लिख दिया हो। पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। वे कुछ कहना अथवा प्रतिवाद भी करना चाहते तो चेतन उन्हें बोलने न देता। भाई साहब की आवारगी और बेकारी के कारण चेतन ने छोटा होते हुए भी घर में बड़े भाई की-सी स्थिति बना ली थी। भाई साहब यूँ भी पत्र लिखने में चोर थे। उन्हें अपनी शतरंज, चौपड़ और पतंगबाज़ी से फ़ुर्सत ही न मिलती थी कि इन घरेलू कामों की ओर ध्यान दें। इसीलिए चेतन ही माँ की तरफ़ से पत्र लिखता था और मुखिया के कर्त्तव्य निभाता था।

माँ ने पत्र सुन कर जो कुछ कहा, उसका यह तात्पर्य था कि बहू की मति तो मारी ही गयी है, पर साथ ही उसके भाई को अकल भी घास चरने चली गयी है। लड़कियों का स्थान उनके पति का घर होता है। जब बड़े-बड़े राजे-महराजे लड़कियों को अपने घर नहीं बैठा सके तो वे लोग किस बाग़ की मूली हैं। बैठाना चाहते हैं, ज़िन्दगी भर बैठायें अपनी बहन को घर।

और चेतन ने उसी दिन माँ की ओर से भाई साहब की ससुराल पत्र लिख दिया था कि ठीक है, आप अपनी बहन को अपने ही घर रखिए। हमें कोई आपत्ति नहीं। अब यहाँ से न कोई उसे बुलायेगा, न लेने जायगा।

तब इस अपमान की कोई प्रतिक्रिया भाई साहब के मन पर हुई हो तो घर वालों को पता नहीं चला। वे ताश, शतरंज, पतंगबाज़ी और सरदार नन्दासिंह की सोडावाटर फ़ैक्टरी में मस्त रहे।. . .

वहीं अपने कमरे में चारपाई पर लेटे-लेटे चेतन को याद आया कि

तब भाभी डेढ़ साल तक मायके रही थी। इसलिए नहीं कि वह रहना चाहती थी, वरन इसलिए कि फिर उसे बुलावा नहीं गया। इस बीच में उसके ड्राइवर भाई की बीवी का पागलपन दूर हो गया था। उसकी कृश देह फिर भर आयी थी। वह फिर हट्टी-कट्टी हो गयी और ननद की वहाँ कुछ वैसी ज़रूरत न रह गयी। ननद-भौजाई में फिर पुराने 'मधुर सम्बन्ध' स्थापित हो गये और दोनों में आये दिन तकरार और 'मधुरतम वचनों' का आदान-प्रदान होने लगा। जब साल भर तक ससुराल से किसी ने उसकी ख़बर न ली और इधर चेतन ने अपने डेण्टिस्ट मित्र डॉक्टर सत्त प्रकाश वर्मा की मिन्नत-समाजत कर के अपने बड़े भाई को उनकी शागिर्दी में दे दिया और वे भावी डेण्टिस्ट की अदा से सूट-बूट पहन और घुटी पगड़ी बाँधे रोज़ क्लिनिक जाने लगे, तभी सहसा एक दिन उन्हें भाभी का पत्र मिला। भाई साहब पढ़ कर हँसे और उन्होंने पत्र चेतन को दे दिया। टेढ़े-सीधे और ग़लत-सलत अक्षरों में (कि भाभी दो-तीन जमात ही पढ़ी थी) उसने शिकायत की थी कि पूरे एक बरस से उन्होंने उसकी कोई ख़बर नहीं ली। वे बड़े निर्मोही हैं। वह अपनी भाभी के हाथों तंग आ गयी है। उसने किसी से सुना है कि वे डॉक्टर बन गये हैं। उसका मायके में जी नहीं लगता। इसलिए अब वे उसे अविलम्ब बुला लें।

जब चेतन ने पत्र पढ़ लिया था तो हँस कर भाई साहब ने कहा था, 'इसने मुझे अभी से डॉक्टर बना दिया है। इस अकलमन्द का भी कोई जवाब नहीं।'

'जभी तो आपकी याद भी आयी है।' चेतन ने तिक्त स्वर में कहा, 'आप इस सिलसिले में क्या कहते हैं?'

'किस सिलसिले में?' भाई साहब ने पूछा था।

'भाभी को लाने के सिलसिले में।'

'अब वह बे-समझ औरत है, उसे क्या कहा जाय।' और भाई साहब ने लम्बी साँस को अन्दर-ही-अन्दर दबा लिया था।

यद्यपि चेतन का विवाह नहीं हुआ था, पर वह भाई साहब की तकलीफ़ समझता था। तो भी उसने साल भर पहले आये हुए उस अपमानजनक पत्र का हवाला दे कर घर की, माता-पिता की, और पति के नाते स्वयं उनकी इज़्ज़त का वास्ता दिलाया था और कहा था कि उन्हें इसका कोई उत्तर नहीं देना चाहिए। उत्तर देना भी होगा तो वह स्वयं दे देगा। वे फ़िक्र न करें और काम सीखने में मन लगायें।

और पत्र ले कर वह माँ के पास आया था और उसने उसे भाभी का पत्र सुनाया था। माँ को पत्र सुन कर प्रसन्नता हुई थी। वास्तव में जब पिछले पत्र-व्यवहार के छै महीने बाद तक भाभी की ओर से कोई पत्र न आया था तो माँ ने शिकायत की थी कि कैसी कठकरेज औरत है और कैसा कठकरेज उसका भाई है! वह पत्नी कैसी, जो पति की तकलीफ़ में साथ न दे! सुख के साथी तो सभी होते हैं, दुख का साथी जो हो, वही सच्चा साथी है।. . .इसके बाद भी अपनी बड़ी बहू को ले कर माँ कभी उसके ज़िद्दी स्वभाव की, कभी उसकी जड़-बुद्धि की, कभी उसके कठकरेजपन की शिकायत करती थी और कहती थी कि वह भी देखेगी, कितने दिन भाई के द्वारे पड़ी रहती है और भाई-भाभी उसे राज कराते हैं!. . .यह पत्र सुन कर माँ बड़ी प्रसन्न हुई थी कि आ गयी न राह पर! खिला कर ऊब गये न भाई-भाभी!. . .और जब चेतन ने अपना फ़ैसला सुनाया था कि पत्र का कोई नोटिस न लिया जाय तो माँ ने व्यंग्य से कहा था, 'नहीं लिख दो कि अभी तुम्हारा पति तुम्हारे योग्य नहीं हुआ। जब होगा तो आ कर ले जायगा।'

यद्यपि चेतन ने यह तय किया था कि इस पत्र का उत्तर देने की ज़रूरत नहीं और इसका जवाब एक लम्बी चुप है, लेकिन उस रात देर तक वह सो नहीं सका था और मन-ही-मन कई तरह से भाभी के पत्र का उत्तर देता रहा था। जब दूसरी रात भी उसे नींद न आयी और वह बिस्तर पर लेटा, मन-ही-मन निरन्तर भाभी को तरह-तरह से पत्र लिखता रहा तो तीसरे दिन सुबह उठते ही उसने सबसे पहला काम यह किया

कि भाभी को उत्तर दे दिया।. . .'उत्तर दे दिया' कहना या सोचना जितना आसान है, उतना वास्तव में वह था नहीं। उसने कई पत्र लिखे और फाड़े थे। असल में उसका क्रोध उस पर हावी हो जाता था और वह भाभी को पत्र ही में भाषण देने लगता था—उसके पुराने व्यवहार को ले कर व्यंग्य करने लगता था और उसे पुनः यह समझाने लगता था कि अपने भाई से वह पत्र लिखवा कर उसने अपने पति तथा उसके परिवार का अपमान किया है, लेकिन किसी पत्र में वह मन की पूरी बात न कह पाया था। आखिर जब उसने तीसरी या चौथी बार एक लम्बा पत्र लिखा था और अपने जाने अपना सारा आक्रोश, सव्यंग्य उसमें व्यक्त कर दिया था तो उसे सुन कर माँ हँस दी थी। 'बेटा अन्धे के आगे रोना अपने नयन खोना है।' उसने कहा था, 'वह अकलमन्द यदि तुम्हारी इन बातों को पल्ले बाँधने की समझ रखती तो यह नौबत ही क्यों आती ?'

चेतन को लगा, माँ ठीक कहती है और तब उसने इतने श्रम से लिखा हुआ वह पत्र भी फाड़ दिया था और माँ ने पहले दिन जो बातें कही थीं, वे ही कुछ और व्यंग्यपूर्ण बना कर लिख भेजी थीं।

पत्र लिख कर वह डाकखाने में डाल आया था। इसके बाद अगले छै महीने में न केवल भाभी के, वरन उसके पिता की ओर से भी पत्र आये थे। माँ और चेतन का रुख बदस्तूर तना रहा था। उनका ख़याल था कि यदि उसे आना है तो अपने आप आ जाय, यह उसका घर है, उसे यहाँ से कोई निकालेगा नहीं, पर लेने अब उसे कोई नहीं जायगा।. . . लेकिन चेतन ने यह भी देखा था कि जब उनके ससुराल से चिट्ठी आती है तो भाई साहब बड़े उत्साहित हो जाते हैं और उसे पढ़ने के लिए भी पहले की अपेक्षा कहीं ज़्यादा व्यग्र दीखते हैं। एक बार उन्होंने दबी ज़बान से कहा था, 'बहुत अकड़ती थी, अब उसे अपनी ग़लती अच्छी तरह समझ में आ गयी है।'

'ठीक है, ग़लती समझ में आ गयी है तो भाई को ले कर चली आये, उसे कोई निकालेगा नहीं। पर लेने भी उसे अब कोई नहीं

जायगा ।' चेतन ने कहा था, 'उसने आपका इतना अपमान किया है, मैं आपकी जगह होता तो ज़िन्दगी भर ऐसी औरत की शक्ल न देखता ।' (मन में उसने कहा—मैं होता तो ऐसी नौबत ही क्यों आने देता कि मेरी पत्नी को मेरी योग्यता में सन्देह हो ।)

भाई साहब का मुँह उतर गया था । जब दो-तीन बार उनकी ओर से उसे ऐसे ही संकेत मिले तो फिर जब उनकी ससुराल से पत्र आया, शाम को क्लिनिक से उनके लौटते ही चेतन उनके साथ डेवढ़ी की सीढ़ियों पर अँधेरे ही में बैठ गया और उनके मन की बात करते हुए उसने कहा था, 'आज फिर आदमपुर से पत्र आया है । मेरा ख़याल है, भाभी को काफ़ी सज़ा मिल गयी है । आप चाहें तो जाइए, जा कर उसे ले आइए । मैं माँ से कहे देता हूँ ।'

भाई साहब प्रसन्न हो गये थे । लेकिन उन्होंने कहा था, 'नहीं मैं नहीं जाऊँगा । लाने की सोचते हो तो तुम्हीं जा कर ले आओ ।'

'यूँ तो भाई साहब यदि आप छै महीना और सब्र करते,' चेतन ने कहा था, 'तो आपको ज़िन्दगी भर के लिए आराम हो जाता । भाभी के घर वाले उसे झख मार कर छोड़ने आते और फिर न कभी वह ऐसी बात करती, न माँ को और आपको तंग करती । पर ठीक है, काफ़ी हो गया है । मैं जा कर ले आऊँगा ।'

और चेतन ने माँ से सलाह की थी । यद्यपि वह स्वयं अपनी बड़ी बहू के हाथों तंग थी तो भी डेढ़ वर्ष बाद उसका रवैया बड़ा नर्म हो गया था । माँ को अपने वड़े लड़के की भावनाओं का भी ख़याल था और 'छड़े उठाई पूँछड़ी गया सौदाई हो'—(अविवाहितों अथवा पत्नी-विहीनों के बारे में) अपना यह तकिया कलाम उसने दोहरा दिया था । माँ को भय था कि सारा दिन डॉ० वर्मा के क्लिनिक में काम करने के बाद पत्नी की अनुपस्थिति में उसका वह बड़ा बेटा कोई ख़ुराफ़ात न करे । इसलिए माँ ने चेतन से कहा कि वह ठीक सोचता है । बहू मूर्खता कर सकती है, पर हमें तो समझदारी से काम लेना चाहिए । देर ही से हो,

पर यदि उसे समझ आ गयी है तो उसे बुला लेना चाहिए।. . .

और कुछ दिन बाद चेतन जा कर भाभी को ले आया था।

०

वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे, न सिर्फ़ यह सारी-की-सारी घटना चेतन के दिमाग़ में घूम गयी, वरन वे कुछेक अवसर भी, जब वह भाभी को लेने या छोड़ने आदमपुर दोआबा गया था। अजीब बात है कि एक बार भी उसने भाभी की माँ के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं की, कि वह किस बीमारी से मरी थी अथवा परिवार में किसी को कोई ऐसी-वैसी बीमारी तो नहीं थी। चेतन को विश्वास हो गया कि ज़रूर भाभी की माँ को यक्ष्मा था और उसी से यह बीमारी भाभी को लगी है।

चेतन इस सोच में ग़र्क था और याद करने की कोशिश कर रहा था कि जितनी बार वह आदमपुर गया, कभी कोई ऐसी भनक उसके कान में पड़ी या नहीं और माँ इस चिन्ता में लीन थी कि टी० बी० के रूप में यह जो विपत्ति उसके घर पर आयी थी, कैसे उससे अपने बच्चों की रक्षा करे? यदि बड़ी बहू लाहौर रहती है तो उसके बड़े दोनों लड़कों और छोटी बहू को ख़तरा है। जालन्धर रहती है तो तीन छोटे लड़के वहाँ स्कूल में पढ़ते हैं (केवल चेतन से छोटा नौकर हो कर धर्मशाला चला गया था) और उसे अपने इन सभी लड़कों की चिन्ता थी।. . .तो भी जालन्धर के घर में बहुत से कमरे थे और बहू को एक कमरे में अलग रखा जा सकता था, इसलिए वह कुछ समय के लिए उसे जालन्धर ले जाने को तैयार थी, पर उसे भय था कि उसकी यह ज़िद्दी बड़ी बहू कभी जालन्धर जाने को तैयार न होगी।

दोनों माँ-बेटे इस एक ही समस्या पर चुपचाप सोच रहे थे कि चेतन को खिड़की में से बाहर गली में भाई साहब साइकिल से उतरते दिखायी दिये। जिस दिन से चन्दा आयी थी और उसने रसोई-घर का काम सँभाल लिया था, भाई साहब दोपहर का खाना खाने घर आ जाते थे।

साइकिल डेवढ़ी में खड़ी कर भाई साहब चेतन के कमरे में आये

और उन्होंने उत्सुकता से पूछा कि डॉक्टर ने क्या बताया ?

चेतन ने सविस्तार उनसे डॉक्टर की बात कही। (रिपोर्ट देख कर उसके माथे पर जो तेवर बन गये थे, उनका उल्लेख करना भी वह नहीं भूला।) तब भाई साहब क्षण भर के लिए चुप खड़े रहे। फिर उन्होंने कहा, 'बड़ी मुश्किल से यह मकान मिला था। ऊपर वालों को इस बात का पता चला तो वे लोग कमरे खाली करने का नोटिस दे देंगे। तुम मकान-मालिक से ज़िक्र न करना।'

इतना कह कर वे फिर चुप हो गये। कुछ क्षण बाद फिर बोले, 'यहाँ तो इसका रहना नहीं हो सकता। इसका इलाज और देख-भाल यहाँ कौन करेगा ? चन्दा खाना पकायेगी, स्कूल जायगी या इसकी तीमारदारी करेगी। मैं सुबह आठ का गया शाम आठ बजे घर आता हूँ। तुम खाली हो, पर अगर तुम्हें कहीं दिन की नौकरी मिल गयी तो इसकी तीमारदारी कैसे होगी ? मैं इसके भाई को लिखता हूँ कि इसे आ कर ले जाय।'

अब माँ ने होंट खोले, 'मैं तो चाहती थी कि मैं ही इसे ले जाऊँ, पर बहू मेरे साथ जायगी नहीं।'

'चलो खाना खा लें,' सहसा भाई साहब ने कहा, 'फिर मैं उससे पूछता हूँ। जालन्धर में तो नीचे अथवा ऊपर की बैठक में, निचले अथवा ऊपर वाले पिछले कमरे में—कहीं भी इसे रखा जा सकता है, पर यहाँ तो एक ही कमरा है, जिसमें यह भी सोयेगी, मैं भी सोऊँगा और यदि सुरेश (भाई साहब का छै वर्षीय बड़ा लड़का) कभी आया तो वह भी यहीं सोयेगा।'

माँ ने कहा, 'यही मैं सोचती थी। यह बीमारी तो घर-का-घर खा जाती है। खई (क्षय) रोग वाले को अलग कमरे में तो रखना ही चाहिए। कश्मीरी लाल की बात तो तुम जानते ही हो। अपनी भाभी से उसका बड़ा प्रेम था। भाभी को यह रोग हुआ, वहाँ से कश्मीरी को हुआ, फिर उसके बाद उससे छोटे पन्ने को हुआ। एक भी नहीं बचा।

आजकल पन्ने की बहू पड़ी खाँसती रहती है ।'

तभी चन्दा ने आ कर कहा कि खाना परस दिया है ।

चेतन उठा और दोनों भाई जा कर रसोई-घर में बैठ गये ।

खाना खाते समय कोई नहीं बोला । पिछले कमरे में भाभी खाँसती रही और चेतन के सामने कश्मीरी लाल की बीमारी का चित्र चलता रहा—कितना होनहार कवि था, कितना मेधावी, चेतन की रचनाओं को कितना पसन्द करता था और उसकी मृत्यु से उसे स्वयं कितना धक्का लगा था—उसकी बीमारी और मौत उसके मन पर कैसे अमिट नक्श छोड़ गयी थीं !. . .

बी
स

कश्मीरी लाल 'दाग़' उनके मुहल्ले ही के झमान (ब्राह्मण) युवक थे। वे चेतन के बड़े भाई से दो कक्षा आगे पढ़ते थे और चेतन से चार। उम्र में भी वे चेतन से चार-पाँच वर्ष बड़े थे। नज़ाकत और नफ़ासत पसन्द!—नोकदार नाज़ुक जूता, लट्ठे का उटुंग पायजामा, गबरून की धारी-दार कमीज़, चारखाना मोटी खादी का कोट और लटकेदार पगड़ी—रंग गोरा, शरीर लम्बा और छरहरा; होंट पतले; आँखों में अजीब-सी चमक और होंटों पर उदास मुस्कान।—जिन दिनों चेतन ने छठी जमात पास की, वे मैट्रिक पास कर चुके थे।

चेतन जिस माहौल में पैदा हुआ और पला, उसमें बड़ा भाई-पिता तुल्य समझा जाता था। उसके सामने बात करने में अदब का लिहाज़ रखना ज़रूरी था। उसी प्रकार मुहल्ले के बड़े लड़के बड़े भाई के समान होते थे और उनसे बात करने में भी आदर का भाव आवश्यक समझा जाता था। फिर मुहल्ले में लड़कों की श्रेणीबद्ध टोलियाँ होती थीं और वयस्क लड़के अपनी-अपनी टोलियों ही में

घूमते थे। एकाध कक्षा ऊपर-नीचे के लड़के आपस में मिल-जुल भी लेते थे, पर चौथी कक्षा का लड़का आठवीं कक्षा के लड़कों के साथ घूमता फिरे, ऐसा अपवाद-स्वरूप ही होता था। इस स्थिति में कश्मीरी लाल की सन्निकटता पाना चेतन के लिए लगभग असम्भव था। जिस व्यक्ति का सत्कार उसके बड़े भाई करते थे, उससे तो बात तक करने में चेतन को संकोच होता था। लेकिन कुछ ऐसे कारण हुए कि उन दोनों में दूरी अनायास कम हो गयी और एक बार तो चेतन को कुछ महीने उनके सम्पर्क में बिताने का भी अवसर मिला।

०

पहला कारण तो यह हुआ कि छठी श्रेणी ही से चेतन ज़ोर-शोर से कविता करने लगा। कश्मीरी लाल उर्दू में शेर कहते थे और 'दाग़' उपनाम रखते थे। यद्यपि चेतन उन दिनों पंजाबी में कविता करता था, पर इतना ही ज्ञान कि वे शायर हैं, उनके प्रति उसके हृदय में विशेष श्रद्धा उत्पन्न करने को पर्याप्त था। जिस दिन चेतन को अपने बड़े भाई से उनके शायर होने का पता चला था, उसी दिन से न केवल उनके प्रति चेतन के सहज आदर-भाव में श्रद्धा का समावेश हो गया था, वरन उनकी गति-विधि में भी उसकी दिलचस्पी बढ़ गयी थी। वे जहाँ खड़े होते, किसी-न-किसी बहाने चेतन भी वहाँ जा खड़ा होता। उनकी बातों को सुनने का प्रयास करता और उनका कोई-न-कोई काम कर देने का सौभाग्य पाने की प्रतीक्षा किया करता।

इसके बावजूद उस वातावरण और संस्कृति में कश्मीरी लाल और चेतन के बीच की दूरी बदस्तूर बनी रहती, यदि आठवीं कक्षा में जाते ही चेतन सचमुच बीमार और कमज़ोर न हो जाता; और हवा-पानी बदलने के लिए उसे अपने पिता के पास दुसूआ न जाना पड़ता—और उन्हीं दिनों कश्मीरी लाल भी वहाँ न पहुँच जाते।

०

जब चेतन आठवीं कक्षा में होमवर्क न कर पाने के कारण भूतना के

भय से बीमारी का बहाना बना कर घर रह जाता और माँ जो दवाई देती, वह चुपचाप खा जाता, तो पहले उसका पेट ख़राब हुआ, फिर पेचिश हुई, फिर संग्रहणी और वह बेहद कमज़ोर हो गया। तभी उसे सर्दी दे कर ताप आने लगा, जो लगातार महीनों आता रहा। पहले तो उसने कुछ दिन हकीम नबी जान की दवा की। जब उससे आराम न आया तो सत्त-गिलो खाता रहा। फिर कोट पश्का के डॉक्टर ज़ीवाराम की शरण पहुँचा (जो मेयो हस्पताल के रिटायर्ड कम्पाउण्डर थे और डॉक्टरी प्रैक्टिस करते थे।) उस ज़माने में इन्जेक्शन और कैप्स्यूल्ज़ कोई जानता न था। मलेरिया आम था और उसके लिए फ़ीवर-मिक्स्चर और कुनीन-मिक्स्चर आम दवाएँ थीं। उन्हीं दोनों से चेतन का पाला पड़ा। ज्वर ने ऐसा तूल खींचा कि महीनों कुनीन-मिक्स्चर पीते-पीते वह परेशान हो गया। कुनीन-मिक्स्चर की कटोरी देख कर ही उसका जी मतलाने लगता और कई बार माँ और दादा की आँख बचा कर वह उन्हें गिरा देता।

०

खाना खाते-खाते चेतन के सामने अपनी बीमारी के कई चित्र आ गये।

०

. . .शाम का वक्त है। वह अपनी बैठक में बैठा है कि उसे ज़ोर की कँपकँपी छिड़ती है। वह लोई ले लेता है, पर उसकी सर्दी दूर नहीं होती। वह उठ कर अन्दर दालान में बिस्तर पर जा लेटता है। माँ उसके ऊपर रज़ाई ओढ़ा देती है। उसका सिर दर्द से फटने लगता है और कँपकँपी है कि बन्द ही होने में नहीं आती। माँ दूसरी रज़ाई उसके ऊपर डाल देती है और उसकी दोनों कनपटियाँ दबाती है। उसे ज़ोर का बुख़ार हो आता है। माँ उसे फ़ीवर-मिक्स्चर की ख़ुराक पिलाती है। दवाई से उसका मुँह बेतरह कड़वा और बेमज़ा हो जाता है। भूख उसे बिलकुल नहीं लगती। माँ उसे दूध-चावल देती है। किसी तरह वह चन्द चम्मच खाता है। उसका जी थोड़ा अचार खाने को होता है, पर उसे कोई

अचार नहीं देता। सारी रात वह बुखार से जलता-झुलसता रहता है।
. . .रात के पिछले पहर उसे ज़ोर का पसीना आता है। उसके कपड़े
भीग जाते हैं। माँ रज़ाई के अन्दर हाथ डाल, खादी के धुले साफ़े से
उसका पसीना पोंछती है और रज़ाई के अन्दर ही उसे कपड़े बदलवा
देती है। सुबह उसका माथा देखती है। उसे बुखार नहीं है। उसका
माथा भी ठण्डा है। पेट भी ठण्डा है। माँ उसे कुनीन-मिक्स्चर की
ख़ुराक कटोरी में डाल कर देती है। चेतन पीने के बदले ज़ोर से कटोरी
बाहर आँगन में फेंक देना चाहता है, पर वह कुछ नहीं कर पाता।
आँखें बन्द कर वह दवा पी जाता है और कटोरी धरती पर फेंक देता
है। माँ उसे पानी का गिलास देती है। वह दो-तीन कुल्ले वहीं फ़र्श पर
करता है और बेपनाह थकान से लेट जाता है।. . .

. . .कोट पक्का के डॉक्टर जीवाराम की दवा से जब कुछ आराम
नहीं आता तो पिता उसे ले कर इमाम नासरुद्दीन के आगे नौहरिया
बाज़ार में डॉक्टर मोती राम के यहाँ जाते हैं। इस बाज़ार में मारवाड़ी
सेठों की दुकानें हैं और उन्हीं में से एक सेठ के नाम पर बाज़ार का नाम
पड़ गया है। खुला, चौड़ा और कम भीड़-भरा बाज़ार! अपेक्षाकृत
शान्त! चेतन जब वहाँ से गुज़रता है, सेठ नौहरियाराम की दुकान पर
उनके मोटे-मुटल्ले बदसूरत पोते को बही पर झुके देखता है। आधे
बाज़ार की दुकानों का वह अकेला मालिक है, शहर के बाहर डी० ए०
वी० कॉलिज के आगे उनका बाग़ीचा है, जिसमें सेठ नौहरियाराम की
मूर्ति उन्हीं दिनों प्रस्थापित हुई है और चेतन दो-एक बार मुहल्ले के
लड़कों के साथ उनके रँहट में नहा आया है. . .नौहरिया सेठ की दुकान
के काफ़ी आगे डॉक्टर मोतीराम बैठते हैं। उनके बारे में प्रसिद्ध है कि
पुराने रोगों का इलाज करने में माहिर हैं। मोती वे ज़रूर हैं, लेकिन
अनबिंधे और टेढ़े-मेढ़े! चेतन उन्हें देखता है—पचास-साठ की उमर,
सूखा-सड़ा शरीर, पायजामा-कमीज़ और कोट, नंगा सिर, कैंची से कटे
छोटे-छोटे खिचड़ी बाल—चेतन को वे सनकी लगते हैं। वे उसकी नब्ज़

देखते हैं और कहते हैं कि आज-कल के लौण्डे मुश्तज़नी (हस्त मैथुन) में अपनी शक्ति नष्ट कर देते हैं, बीमारियाँ उन्हें न घेरें तो क्या हो। और वे उसके लिए वही फ़ीवर-मिक्स्चर और कुनीन-मिक्स्चर तजवीज़ करते हैं। खट्टे तथा मिर्च आदि से परहेज़ बताते हैं और बड़ी रुखाई से कहते हैं कि उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

चेतन को बहुत बुरा लगता है। उसे डॉक्टर मोतीराम निहायत असभ्य और फूहड़ दिखायी देते हैं। लेकिन यद्यपि दवा के तौर पर वे डॉक्टर जीवाराम वाला वही फ़ीवर और कुनीन-मिक़्स्चर तजवीज़ करते हैं और कोई नयी दवा नहीं देते, चेतन के पिता उनके कायल हो जाते हैं और वे रास्ते भर उसे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने पर भाषण देते चले आते हैं।

. . .डॉक्टर मोतीराम की दवा से भी उसे कोई लाभ नहीं होता। बुख़ार कुछ दिन बन्द हो जाता है, फिर बारी दे कर आने लगता है। परहेज़ करते-करते चेतन ऊब जाता है। हर सातवें दिन उसे डॉक्टर को दिखाने जाना पड़ता है। वह इमाम नासरुद्दीन को जाते हुए लाल बाज़ार से गुज़रता है तो फलों की दुकानों के पास उसका मन बेतरह ललचा उठता है। दीवाली की मिठाइयों की तरह टोकरों में लाल रंग के काग़ज़ बिछा कर दुकानों में सीढ़ी-दर-सीढ़ी लगभग छतों तक फल लदे हुए हैं। एक दिन वह डॉक्टर के पास से घर आ कर माँ से कहता है कि डॉक्टर ने कहा है: थोड़े अंगूर खाया करो। माँ उसे रोज़ एक आने के छटाँक अंगूर मँगा देती है और नमक-काली मिर्च लगा कर खिलाती है।—पहली बार चेतन को अपनी बीमारी कुछ अच्छी लगती है।

. . .चेतन फलों की दुकानों के सामने से गुज़रता है तो हर बार उसकी निगाहें ऊपर की सीढ़ियों पर छोटी-छोटी तश्तरी-नुमा सुबक टोकरियों पर चली जाती हैं, जिनमें रुई बिछी है और हर एक में चन्द स्ट्रॉबेरी के लाल-लाल दाने रखे हैं। चेतन को वह फल बहुत लुभाता है। उसने कभी किसी हिन्दुस्तानी को वह फल लेते नहीं देखा। निक्करें और सफ़ेद

कमीज़ें पहने हुए गोरे साहब और स्कर्ट पहने हुए गोरी मेमें अपने बेयरों और खानसामों के साथ आती हैं और वे ही ये टोकरियाँ ले जाती हैं. . . और एक दिन वह माँ से कहता है, डॉक्टर ने कहा है, तुम बहुत कमज़ोर हो, 'शटाबरी' खाया करो। शटाबरी कौन-सा फल है, माँ को मालूम नहीं। वह भाई साहब को 'शटाबरी' लाने भेजती है। आठ आने की टोकरी आती है—चन्द दाने—चेतन एक दाना खाता है। अजीब-सा खटमिट्ठा स्वाद है। उसे अच्छा नहीं लगता। सिवा इस गर्व की अनुभूति के कि उसने वही फल चखा, जिसे अंग्रेज़ लोग ही खाते हैं, उसे कोई लुत्फ़ नहीं आता और वह मन-ही-मन सोचता है—इन अंग्रेज़ों का भी कोई टेस्ट है ? यह शटाबरी भी कोई खाने की चीज़ है ? केला, आम, अंगूर, अनार तो फल हुए, यह 'शटाबरी' कैसा फल है ? चार आने में पाव भर अंगूर आ जाते हैं और ये आठ आने में आठ दाने। वे भी खट-मिट्ठे ! कैसा टेस्ट है और कैसी लूट है. . .वह टोकरी परे हटा देता है। भाई साहब सब-के-सब दाने खा जाते हैं और कहते हैं कि बुखार ने उसकी ज़बान सीठी कर दी है। 'शटाबरी' के ज़ायके की क्या बात है !. . . और वे चटखारा लेते हैं।

. . .वह कुनीन-मिक्स्चर पीते-पीते उकता गया है। उसका मन अचार खाने को है। वह दिन को मर्तबान से आम के अचार की एक काश काग़ज़ में छिपा कर रख लेता है। रात को बैठक में जा कर उसे चूसता है। सहसा बाहर आँगन में माँ पूछती है कि वह अँधेरे में क्या कर रहा है। वह अचार को बाहर चौक में फेंक देता है और नाली पर बैठ जाता है, जैसे पेशाब करने आया हो. . .

. . .माँ को डर है कि कहीं उसे पुराना बुखार न हो। मुहल्ले में लाला मुकन्दीलाल की लड़की पूरो आयी हुई है। वह माँ को सलाह देती है कि नकोदर के बाबा मल्ल की मन्नत माँगे। माँ मन्नत माँगती है। चेतन का बुखार टूट जाता है।—प्रकट ही दवाओं का प्रभाव हुआ है, पर माँ इसे बाबा मल्ल ही की कृपा मानती है। चेतन पूरो के साथ

नकोदर जाता है। बरसात के दिन हैं, बाहर झींसी पड़ रही है। वह अन्दर कमरे में चौखट के पास ज़मीन पर सोता है। रात भर उसे मच्छर काटते हैं। सवेरे वह रँहट पर जाता है। वहीं नहाता है। बाबा मल्ल की समाधि पर सवा रुपया चढ़ाता है और बदले में गुड़ का प्रसाद और राख की चुटकी ले आता है।

. . .पिता एक दिन को आते हैं। उनके साथ मोटा, ठिगना, चपटी नाक और साँवले रंग का एक व्यक्ति कोट-पतलून पहने है। पिता उसे डॉक्टर कह कर पुकारते हैं। (बाद में उसे माँ से मालूम होता है कि वह दुसूआ के नये सिविल सर्जन हैं) पिता चेतन को उसे दिखाते हैं। डॉक्टर उसकी नब्ज़ देखते हैं, आँखों के पपोटे नीचे ऊपर करके देखते हैं। उसकी बीमारी का अहवाल सुनते हैं और राय देते हैं कि बच्चे को सिर्फ़ कम-ज़ोरी है। उसकी जल-वायु बदल दी जाय। वे चेतन के पिता को परा-मर्श देते हैं कि वे उसे दुसूआ बुलवा लें, वहाँ की जल-वायु बहुत अच्छी है। दवाई वे दे देंगे, बच्चा ठीक हो जायगा। पिता माँ को आदेश देते हैं कि उसे ले कर दुसूआ पहुँच जाय। और उसकी सेहत ठीक होने के बाद वापस चली आये।

और माँ उसे वहाँ ले जाती है।

०

०

चेतन की आँखों में सामने दुसूआ के वे दिन घूम गये और उनके साथ ही वहाँ कश्मीरी लाल से अचानक भेंट पर अपना आश्चर्य !

०

०

दुसूआ यद्यपि बड़ा स्टेशन है, पर नगर से डेढ़-दो मील दूर होने के कारण तब उस पर अधिक रौनक न थी। गाड़ी आने के समय काफ़ी भीड़ हो जाती थी। तभी चेतन स्टेशन पर जा पहुँचता और साधारणतः जब कोई अफ़सर न आ रहा होता और टिकट बाबू कहीं व्यस्त होते तो वह

गेट पर खड़ा हो कर उतरने वाले मुसाफ़िरों से टिकट लेता। टिकट बाबू स्वयं टिकट ले रहे हों तो चेतन बे-टिकट यात्रा करने वालों को पकड़ा करता। स्टेशन मास्टर उस ज़माने में स्टेशन का बादशाह होता था। चेतन के पिता का दबदबा तो लाइन भर में था। हालाँकि चेतन की उम्र बहुत कम थी, पर उसे याद था कि उस वक्त उसके अपने स्वर में कुछ ऐसा रोब होता कि बे-टिकट यात्रा करने वाले सदा घबरा जाते। जाने क्यों बे-टिकट लोगों को पकड़ने में चेतन को बड़ा आनन्द मिलता। पण्डित शादीराम किसी अपराधी को कभी चार्ज न करते। सदा दो-एक गालियाँ दे कर छोड़ देते। फिर भी इस काम में उसकी मुस्तैदी कम न होती और गाड़ी के खड़े होते ही वह प्रायः उसके पिछवाड़े भाग जाता और पीछे से उतरने वालों को जा पकड़ता। कई बार जहाँ इंजिन रुकता, वहाँ पहले से जा खड़ा होता और गाड़ी रुकते ही इंजिन के साथ वाले डिब्बों से उतर कर प्लेटफ़ार्म से बाहर होने वाले बे-टिकटों से टिकट माँगता। फिर कई बार वह गार्ड के डिब्बे की ओर जा खड़ा होता और पीछे से निकलने वालों को जा दबोचता। गाड़ी रुकते ही इंजिन अथवा ब्रेकवैन के साथ वाले डिब्बों से उतर कर प्लेटफ़ार्म के के बाहर हो जाने वाले मुसाफ़िरों में ९५ प्रतिशत बे-टिकट होते।

चेतन अपनी उस मुस्तैदी का कारण ढूँढ़ता (विशेषकर उस सूरत में, जब उसके पिता किसी यात्री को चार्ज न करते) तो उसे लगता कि जालन्धर की रौनक से दूर, उस सूने स्टेशन पर जाने के कारण यह सब मन लगाने का बहाना-मात्र था। या फिर चूँकि चेतन अपने पिता से बहुत डरता था। वे क्रोध में होते तो बेतरह पीटते। शायद इस बहाने वह उन पर अपनी कार्यपटुता का सिक्का जमा देता और उनकी व्यस्तता में उनके सामने बने रह कर फिर कभी सामने न पड़ता।

एक दिन स्टेशन पर गाड़ी आते ही चेतन ने तय किया कि वह थर्ड का टिकट ले कर इण्टर में यात्रा करने वालों को पकड़े। इण्टर के डिब्बे में अत्यन्त साधारण कपड़े पहने एक धान-पान-सा युवक बैठा था। इससे

पहले कि गाड़ी पूरी तरह खड़ी होती, चेतन डिब्बे में चढ़ गया।

'टिकट !' उसने अधिकारपूर्ण स्वर में पूछा।

'मैं. . .मैं. . .मेरे. . .' वह युवक कुछ घबरा कर उत्तर देने ही जा रहा था कि चेतन की दृष्टि उसके मुख पर गयी और उसके होंटों से आश्चर्य-भरे स्वर में निकला—'भरा जी ![1] पैरीं पैणा हाँ।'[2]

वह युवक कश्मीरी लाल 'दाग़' थे। उनका मुख आश्वस्त और प्रफुल्ल हो गया। सचमुच वे बे-टिकट थे। क्यों ? इसका पता चेतन को बाद में लगा।

०

चेतन के मुहल्ले (कल्लोवानी) में ब्राह्मणों और खत्रियों में पुरानी चली आ रही थी। ब्राह्मणों की आर्थिक दशा अच्छी न थी। खत्री उन्हें दबाते थे। और उनका यह जुल्म ऋषियों के नाम-लेवाओं को पसन्द न था। इसलिए खत्रियों से लड़ाई-झगड़े के समय ब्राह्मण इकट्ठे हो जाते थे। यजमानों की नाराज़गी से यदि कोई खुला विरोध न करता तो भी सहानुभूति उसकी सदैव अपनी जाति वालों के साथ रहती। चेतन के दादा, परदादा पटवारी थे, पर उसका वंश ब्राह्मणों का ऊँचा वंश था। पुरखे भारद्वाज के आश्रम में शिक्षा पाये हुए थे। पण्डित शादीराम ने उस हीनावस्था में मैट्रिक तक संस्कृत पढ़ी थी और अपने बेटों के नाम शुद्ध संस्कृत में रखे थे। यद्यपि जहाँ तक कर्मों का सम्बन्ध है, उनमें ब्राह्मणों की-सी कोई बात न थी। वे खूब पीते और खूब उड़ाते थे। धर्म-कर्म की कोई बात उन्होंने कभी जानी न थी और जाति-पाँति का बन्धन माना न था, लेकिन उनकी सहानुभूति सदा मुहल्ले के विपन्न और दुर्बल ब्राह्मणों के साथ रहती। मुहल्ले के ब्राह्मण युवकों को वे सदा पुरोहिताई को गिड़गिड़ाहट छोड़ कर, दूसरे धन्धे अपनाने और स्वाभिमान से जीवन बिताने का उपदेश दिया करते। रिलीविंग के अपने दौरों

---

१. भाई साहब। २. प्रणाम करता हूँ।

पर जाते हुए जब भी वे घर आते, ब्राह्मण युवकों की कुश्तियाँ कराते, उन्हें खिलाते-पिलाते और इनाम देते और छै बेटों से सन्तुष्ट न हो कर किसी-न-किसी को अपना सातवाँ पुत्र घोषित कर जाते।

कश्मीरी लाल मैट्रिक कर चुके थे। घोर मन्दी का ज़माना था। नौकरी उनकी कहीं लगी न थी। भावुक और भावप्रवण थे। बेकारी और इश्क का घुन उन्हें अन्दर-ही-अन्दर खाये जाता था। हलका-हलका ज्वर भी रहने लगा था। उन्हीं दिनों कहीं पण्डित शादीराम जालन्धर गये। वे कश्मीरी लाल को बहुत मानते थे। वे उन्हें मुहल्ले के ब्राह्मण युवकों में सबसे योग्य और सुशील समझते थे। उनकी यह दशा देख पण्डितजी ने स्नेह से दो-चार गालियाँ दीं, उन्हें अपना सातवाँ पुत्र घोषित किया और दुसूआ आने का निमन्त्रण दे दिया। कहा कि टिकट लेने की ज़रूरत नहीं, कोई टिकट चेकर टिकट माँगे तो कह देना कि पण्डित शादीराम का लड़का हूँ और उनके पास दुसूआ जा रहा हूँ। मैं तुम्हें तार देना सिखा दूँगा। तार देना आ जाय तो सिगनेलरी की परीक्षा में बैठ जाना।

और पण्डितजी के परामर्शानुसार कश्मीरी लाल बे-टिकट चले आये थे।

चेतन के प्रणाम के उत्तर में 'जिउन्दे रहो!' कह कर और उसकी पीठ को हलके-से थपथपाते हुए वे नीचे उतरे।

चेतन अपने उल्लास में लगभग उनके आगे-आगे चलता हुआ उन्हें दफ़्तर में ले आया। पण्डित शादीराम लाइन क्लीयर दे चुके थे। कश्मीरी लाल ने उनके पाँव छुए। पण्डितजी ने आशीर्वाद दिया और वहीं बैठने के लिए कह कर गार्ड के साथ चले गये। उनके वापस आने पर कश्मीरी लाल ने बताया कि उनकी तबीयत कुछ ज़्यादा खराब रहने लगी थी, इसलिए उनके आदेशानुसार वे चले आये हैं।

०

कश्मीरी लाल वहाँ दो महीने रहे। आये तो उनका रंग कालिमा लिये हुए पीला-पीला था। होंट सूखे और कल्ले धँसे हुए थे। हाँ, आँखों में

वही चमक थी और होंटों पर वही उदास-उदास मुस्कान ! दूसरे दिन स्टेशन पर दातौन करते-करते उन्होंने बलग़म थूकी तो उसमें रक्त की बारीक लकीर थी । लेकिन वहाँ दो महीने के प्रवास ही से उनका रंग निखर आया था, कल्ले भर आये थे और गोरे गालों पर सुर्ख़ी दौड़ गयी थी ।

दुसूआ बहुत प्राचीन कस्बा है । चेतन ने सुना था कि राजा विराट वहीं राज्य करते थे और पाण्डव अपने बनवास का तेरहवाँ वर्ष पूरा करने वहीं आये थे । कश्मीरी लाल के साहचर्य में चेतन ने कस्बे का चप्पा-चप्पा देख डाला । कस्बा स्टेशन के सामने की दिशा में लाइन के पार, एक-डेढ़ मील की दूरी पर, एक विशाल पहाड़ी नाले के किनारे काफ़ी ऊँचाई पर बसा था । राजा विराट के समय का एक टूटा-फूटा पुराना दुर्ग भी वहीं नाले के तट पर खड़ा था । दुर्ग के खँडहरों से नगर के मकानों, नाले की गहराई तथा रेतीले विस्तार का बड़ा मनोहर दृश्य दिखायी देता था । वहीं एक तरफ़ सरकारी हस्पताल था, जहाँ डॉक्टर ख़ुशीराम नये-नये सिविल सर्जन नियुक्त हो कर आये थे ।

स्टेशन के मुसाफ़िरख़ाने के बाहर टाण्डा उड़मड़ से आने और मुकेरियाँ को जाने वाली चौड़ी सड़क थी, जिसके दोनों ओर शीशम के सायेदार पेड़ खड़े थे । इसी सड़क पर स्टेशन से दो-तीन फ़र्लांग आगे, बायीं ओर, पहले कांजी हाउस, फिर थाना और तहसील थी । आगे दायीं ओर कचहरी । यहीं सड़क पर दोनों ओर बड़ी रसीली रा-जामुनों के ऊँचे गगनचुम्बी पेड़ थे । कचहरी के पीछे आमों का एक बाग़ और उसके परे एक विशाल गहरा अठकोना तालाब था । वहाँ के लोगों का कहना था कि उसे पाण्डवों ने बनवाया है । तालाब इतना विशाल था कि एक किनारे खड़े हो कर चेतन सामने देखता तो दूसरे किनारे पर शहतूत के विशाल गगनचुम्बी पेड़ छोटे-छोटे दिखायी देते । सारा-का-सारा तालाब कमल के पत्तों से अटा पड़ा था । केवल दो-एक जगह नहाने के लिए थोड़ा-सा स्थान ख़ाली था, जहाँ कस्बे के मनचले नहाते, तैरते

श्रौर किनारे बने मन्दिर के चबूतरों पर चढ़ कर छलाँगें लगाते । बहार का मौसम था श्रौर तालाब में बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे । पत्ते श्रौर कमल—बस उनके सिवा उस मील-डेढ़. मील की परिधि में श्रौर कुछ दिखायी न देता ।

श्रनाज की बड़ी मण्डी होने कारण दुसूश्रा के स्टेशन पर खूब माल चढ़ता-उतरता । इसलिए चेतन के पिता की श्राय यथेष्ट थी । दो गायें श्रौर एक भैंस उन्होंने पाल रखी थी । दूध, घी, दही श्रौर छाछ का बाहुल्य था । खाने-पीने श्रौर घूमने के सिवा कोई काम न था । चेतन कश्मीरी लाल के साथ तालाब पर चला जाता, कभी मण्डी, कभी हस्पताल श्रौर कभी शहर । पण्डितजी ने प्लेटलेयर से कह कर कश्मीरी लाल के लिए तार का एक देशी यन्त्र बनवा दिया था जिसे वे सदा साथ रखते श्रौर श्रभ्यास के लिए 'गट, गर-गट' करते रहते ।

०

पहले-पहले कश्मीरी लाल से बात करने में चेतन को संकोच रहा । वे घूमने जाते तो वह यूँही साथ हो लेता । फिर जब उन्हें पता चला कि चेतन को भी कुछ शेर-ो-शायरी का शौक है तो वे कभी-कभी उसे शेर सुनाने लगे । शेरों का श्रर्थ पूरे तौर पर चेतन की समझ में न श्राता, लेकिन कश्मीरी लाल धीमे स्वर में बड़ी दर्द-भरी लय में गाते श्रौर उसे उनका स्वर बहुत श्रच्छा लगता ।

पंजाबी में कविता करते-करते चेतन को उर्दू में शेर कहने का जो शौक हो गया, उसमें दूसरे कारणों के श्रलावा कश्मीरी लाल के उस दर्दीले स्वर का भी हाथ था । उन दो महीनों में कई बार उसने उन्हें उस दर्द-भरी लय में उर्दू के शेर गाते सुना । स्कूल की पुस्तकों में उर्दू नज़्में पढ़ कर चेतन का मन कई बार उर्दू में शेर कहने को होता था, लेकिन पंजाबी में कविता करना उसे सुगम लगता । कश्मीरी लाल के मुँह से शेर सुन कर उसके मन में स्वयं शेर कहने की प्रबल साध उत्पन्न हो गयी ।

दुसूआ का वह विशाल अठकोना तालाब कश्मीरी लाल को ज़्यादा पसन्द न था। चेतन को अच्छी तरह याद था, एक बार किनारे के चबूतरे पर आम की छाया में लेटे-लेटे उन्होंने कहा कि उस तालाब में यदि कमल न होते तो वह विशाल जल-राशि आँखों को बहुत भाती।

उनकी बात बहुत हद तक ठीक थी। यद्यपि तालाब में बेगिनती कमल खिले हुए थे, पर वह दृश्य, जैसा कि चेतन को अब तक याद था, कुछ वैसा सुन्दर न था। सारा तालाब कमल के बड़े-बड़े गोल पत्तों से अटा पड़ा था। शायद वर्षों से, कौन जाने सदियों से, उसकी सफ़ाई न हुई थी। बेशमार पत्ते सड़ रहे थे, मील-डेढ़ मील के घेरे के उस तालाब में कहीं पानी दिखायी न देता था। कमल के पत्तों में कहीं जगह थी भी तो हरी-हरी काई छायी हुई थी। कवि कश्मीरी लाल को यह दृश्य कुछ वैसा सुन्दर न लगता था। उनका विचार था कि यदि अनगिनत कमलों की अपेक्षा सारे तालाब में आँखों को ठण्डक पहुँचाने वाला नीला-नीला जल होता, उसकी सफ़ाई होती रहती तो किनारे के आम और शहतूत के पेड़ों में उसकी छटा निराली ही होती। इतने अनगिनत फूलों और पत्तों के बदले यदि तालाब के बीचोंबीच कुछेक फूल खिले होते तो कितने चित्ताकर्षक लगते! उनको पाने के लिए मन कितना लालायित रहता! लोग तैर-तैर कर वहाँ जाते और फूल लाने में गर्व और सुख पाते। अब कमल खिलते, मुरझाते और सड़ जाते। कोई उन्हें न पूछता। कभी सुबह-शाम कुछ लोग अवश्य आते और डुबकी लगा कर ताल के कीचड़ और गढ़ों में पैठ, कमल की जड़ें काट कर ले जाते। उनकी तरकारी बनती। मुरब्बा और अचार बनता। अजीब-सा नाम दे रखा था पंजाबियों ने उन जड़ों को—भें! 'भेड़ की 'भें' 'भें' से कमल की जड़ का क्या सम्बन्ध ?' कश्मीरी लाल कहते और वही व्यंग्यमयी दर्दीली मुस्कान उनके होंटों पर फैल जाती।

कश्मीरी लाल को तालाब में नहाना और तैरना ज़रा न रुचता। पर किनारे के आमों और शहतूतों की छाया में लेटना उन्हें बहुत अच्छा लगता। कभी-कभी वे बाग़ की घनी छाया में छोटी-सी दरी बिछा कर

बैठते। पके हुए आमों की सुगन्ध वातावरण में बसी होती। वे एक ढेरी टपके आम ले आते। उन्हें चूसते और फिर बैठे अथवा अध-लेटे वे अनायास शेर गुनगुनाने लगते।

चेतन को उन शेरों की याद न थी। कश्मीरी लाल मैट्रिक पास थे और पंजाब के अधिकांश हिन्दू छात्रों की तरह छठी तक उर्दू और मैट्रिक तक हिन्दी पढ़े थे। उर्दू शायरी से उनका परिचय अधिक न था। ग़ालिब की एक ग़ज़ल—वह भी शायद किसी से सुनी हुई—उन्हें याद थी :

दिल ही तो है न संग-ो-ख़िश्त दर्द से भर न आये क्यों
रोयेंगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों।

और इस दर्द-भरी ग़ज़ल को वे बड़े ही सोज़-भरे स्वर में गाया करते।

कुछ वर्ष बाद चेतन को अपने भाई से मालूम हुआ था कि वे एक असफल प्रेमी थे। एक जगह उनकी सगाई हुई थी। वे लड़की को चोरी से देख भी आये थे। वह उन्हें बड़ी सुन्दर लगी थी और कदाचित दृष्टि-विनिमय के अतिरिक्त एक-आध बार बात-चीत भी हुई थी, लेकिन जब मैट्रिक पास किये उन्हें दो वर्ष हो गये और नौकरी उन्हें कहीं न मिली तो लड़की वालों ने रिश्ता तोड़ दिया। यह बात कश्मीरी लाल को खा गयी। जीवन में उन्हें कुछ उत्साह ही न रहा। माँ ने दो-तीन बार उनकी दूसरी सगाई करने का भी प्रयास किया, पर कश्मीरी लाल लड़की वालों को सूरत तक दिखाने को तैयार न हुए। जब लोग उन्हें देखने आते, वे घर से खिसक जाते।

उनके शेरों में यही बात और यही ग़म किसी-न-किसी तरह आ जाता। उन दिनों दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में 'आ'सी'[1] गयावी की बहुत ग़ज़लें छपा करती थीं। कश्मीरी लाल को 'आ'सी' के शेर बेहद पसन्द थे। एक शेर वे बराबर गुनगुनाया करते थे। चेतन को उसका पहला मिसरा भूल गया था, पर चूँकि उसे मतलब याद था,

---

१. आ'सी = गुनाहगार।

इसलिए उसने स्वयं मिसरा बना लिया था :

रीत है इश्क के दरिया की अनोखी कैसी
डूबते हैं वही जो पार उतर जाते हैं।

शेर कोई बहुत अच्छा न था, पर कश्मीरी लाल को यह अपनी मनोदशा का पूरा चित्रण करता दिखायी देता।—इश्क के दरिया के पार उतरना इश्क के लिए कुर्बान हो जाने का ही दूसरा नाम है। इश्क के लिए कुर्बान होने का मतलब है इश्क के ग़म में खत्म हो जाना। जो पार उतरते हैं, वे ही डूब जाते हैं। कैसी नाज़ुक-खयाली है! कश्मीरी लाल सिर धुना करते।

चेतन को कभी जब कश्मीरी लाल की याद आती, उसे लगता कि यही शेर उन्हें खा गया। वे उन धान-पान युवकों में से थे, जिनकी जीवनी-शक्ति सदा किसी सहारे की मोहताज रहती है। जिनमें पुरुषो-चित दृढ़ता, इच्छा-शक्ति और मुसीबतों और असफलताओं को झेल जाने की चट्टानी क्षमता नहीं होती, बल्कि सहारे की नारी-सुलभ आकांक्षा होती है। कश्मीरी लाल बड़े मेधावी, ज़हीन और भावुक युवक थे। यदि उन्हें अपने पहले प्रेम में असफलता न मिलती तो वे निश्चय ही उस स्नेहमयी की छाया में नयी स्फूर्ति पा कर जीवन में अपना मार्ग ढूंढ़ निकालते। लेकिन जवानी के प्रभात में जब नयी वय सपने देखती है, रोमानी इश्क करती है और पंजाब की हर युवती हीर और हर युवक राँझा बन जाता है, उस पहले प्रेम की असफलता कश्मीरी लाल को ले डूबी।

चेतन उन दिनों कहानी लिखने का भी असफल प्रयास किया करता था। उसे कहानी लिखते देख कर कश्मीरी लाल ने स्वयं भी कहानी लिखने अथवा लिखवाने (क्योंकि वे चेतन को कहानियाँ लिखवाते थे) का प्रयास किया। वे कहानियाँ कभी सिरे नहीं चढ़ीं। उनकी शुरू की कहानियों के आरम्भिक वाक्य ले कर चेतन ने बाद में कहानियाँ लिखीं।

पहली कहानी जो उन्होंने चेतन को लिखवायी, उसके आरम्भिक

वाक्य चेतन को तब भी याद थे। वह कुछ यों शुरू होती थी :

'कल जो शख्स तरक्की के सातवें आसमान पर सिर उठाये हुए धन-दौलत और मान-सम्मान में अपना सानी न रखता था, वही आज तनज़्ज़ुली[1] के गहरे गढ़े में गिरा हुआ गुमनामी के धुँधलकों में खो गया है। कल जो फूल महारानी की आरामगाह में नर्म गदेलों पर मज़े से आराम कर रहा था, आज सख्त राह पर पड़ा कुम्हला कर, आने-जाने वालों के पैरों-तले रौंदा जा रहा है। कल जो तारा आसमान की ऊँचाइयों में सिर उठाये दिप-दिप कर रहा था, वही आज टूट कर खला[2] में गुम हो रहा है'. . .आदि. . .आदि।

इस प्रकार की उपमाओं से कापी का पहला पृष्ठ भरा था और कहानी का आधारभूत विचार वही था, जो शेर का :

डूबते हैं वही जो पार उतर जाते हैं।

एक लड़के की सगाई एक जगह होती है। वह भेस बदल कर लड़की को देखता है। दोनों में प्रेम हो जाता है। लड़की की शादी कहीं दूसरी जगह हो जाती है। लड़का घुल-घुल कर मर जाता है।

जहाँ तक चेतन का सम्बन्ध है, उसने छठी कक्षा में हाली की नज़्म पढ़ी थी :

ऐ इश्क तूने अकसर कौमों को खाके छोड़ा
जिस घर से सर उठाया उसको बिठा के छोड़ा

और उसके मन में इश्क के प्रति एक अनाम भय था और इसीलिए कश्मीरी लाल के प्रति उसके मन में दया का भाव भी था।

एक और शेर था, जो कश्मीरी लाल बड़ा पसन्द करते थे। (बाद में तो चेतन को वह शेर बड़ा हास्यास्पद लगता और उसकी याद आते ही उसके होंटों पर मुस्कान फैल जाती, पर कश्मीरी लाल को न जाने उस शेर में क्या लगता था कि वे उसे पढ़ कर एक लम्बी साँस भर

---

१. अवनति। २. शून्य।

लिया करते थे। शेर उन्हीं 'आ'सी' गयावी का था)

एक 'आ'सी' ही नहीं तालिबे-दीदार तिरा
तालिबे अब्रे-करम 'नरबदा परशाद' भी है

अर्थात तेरे दर्शकों का अभिलाषी केवल 'आ'सी' ही नहीं, वरन तेरी कृपा की वर्षा का आकांक्षी नर्बदा प्रसाद भी है।

(नर्बदा प्रसाद उर्दू में नरबदा परशाद ही लिखा जाता है, जो श्री 'आ'सी' का असली नाम था। वे गया के रहने वाले थे, इसलिए गयावी कहलाते थे। उपनाम 'आ'सी' रखते थे, जिसका अर्थ होता है—गुनह-गार!)

शायर को यदि शेर पर गर्व हो (चेतन नहीं जानता था कि उसे था या नहीं) तो इसका यही कारण हो सकता है कि उन्होंने एक ही शेर में न केवल अपना उपनाम दिया था, वरन पूरा नाम भी रख दिया था। लेकिन जहाँ तक अर्थ का सम्बन्ध है, चेतन को इसमें किसी तरह का चमत्कार दिखायी न देता था। किसी शेर में नरबदा परशाद नाम ही उसे बड़ा हास्यास्पद लगता था। चेतन को वह शेर अब तक याद था, लेकिन चमत्कार के कारण नहीं, अपनी हास्यास्पदता के कारण। उसे किसी पार्टी अथवा दावत में किसी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना होता तो वह कहता कि 'हुजूर, तालिबे-अब्रे-करम नरबदा परशाद भी है!' याने एक नजर इधर-भी अथवा एक पूरी इधर डाल जाइए. अथवा चाय का एक प्याला हमारे लिए भी बना दीजिए।

लेकिन चेतन को याद था कि कश्मीरी लाल इस शेर को बड़े दर्द से पढ़ते थे। चेतन कश्मीरी लाल के भावों का विश्लेषण करता तो सोचता कि पहली पंक्ति में 'आ'सी' को वे अपना रकीब अथवा प्रतिद्वन्द्वी समझते होंगे और दूसरी पंक्ति में 'नरबदा परशाद' अपने को। नर्बदा प्रसाद जब नरबदा परशाद हो जाता है तो उस पर खासी यतीमी बरसने लगती है। लगता है जैसे अपनी स्थिति की निराशा, दुख और बेबसी उन्हें इस नाम में मूर्तिमान लगती थी और शायद मन-ही-मन अपनी

प्रेयसी को सम्बोधित कर, वे पुकार उठते थे।

'तालिबे अब्रे करम नरबदा परशाद भी है।'

०

दो महीने बाद कश्मीरी लाल स्वस्थ हो कर लौट गये। चेतन की माँ पहले चली गयी थी। चेतन कुछ महीने बाद लौटा। डुसूम्रा के जलवायु ने उसे भी बड़ा लाभ पहुँचाया था। ज्वर तो उसका पहले ही टूट गया था। डॉक्टर खुशीराम ने दवाइयाँ दे कर उसकी तन्दरुस्ती बहाल कर दी। उस साल तो चेतन परीक्षा न दे सका था। नया सत्र शुरू हो गया था, सो वह आठवीं कक्षा में पुनः प्रवेश पाने के लिए जालन्धर पहुँचा। पहली बात जो उसने माँ से सुनी, वह यह थी कि कश्मीरी लाल को यक्ष्मा हो गया है।

'लेकिन वे तो बिल्कुल ठीक थे।' चेतन ने कहा

'जैसे बिल्ली चूहे को खेला कर खाती है, ऐसे ही यह बीमारी आदमी को खाती है।' माँ ने कहा था, 'बाहर से आदमी अच्छा-भला लगता है, पर अन्दर-ही-अन्दर यह उसे खा जाती है।'

'उनका तो चेहरा लाल हो गया था।' चेतन ने जैसे अपने-आप-से कहा था।

'भले लाल हो जाय, पर इस बीमारी से भाग्य वाला ही बचता है।'

चेतन को जालन्धर पहुँचते ही कश्मीरी लाल से मिलने का शौक था। उसने उर्दू में ग़ज़ल लिखी थी और वह उसे कश्मीरी लाल को सुनाना चाहता था। उनकी बीमारी का और यक्ष्मा की-सी बीमारी का सुन कर उसे बड़ा दुख हुआ।

उन दिनों यक्ष्मा के सम्बन्ध में चेतन कुछ ज्यादा न जानता था, लेकिन मुहल्ले में हर वर्ष एक-दो मौतें इस बीमारी से हो जाती थीं और इसकी भयानकता उस पर सुस्पष्ट थी। फिर वह यह भी जानता था कि जिस घर में इस बीमारी का रोगी हो, वहाँ ज्यादा न जाना चाहिए। मन में वह उनसे प्रतिदिन मिलना चाहता, पर घर वालों के

डर से उनके यहाँ जाने का साहस उसे न होता था और उन में और चेतन में जो दूरी कम हो गयी थी, वह अनायास इस बीमारी के कारण और भी बढ़ गयी। दो-चार बार उसने कश्मीरी लाल को बाजार में अथवा हकीम के यहाँ आते-जाते देखा—रंग उनका काला पड़ता जा रहा था, शरीर सूख रहा था और मुस्कान की तिक्तता बढ़ रही थी। वह उनके घर न जाता, पर बाज़ार या गली में मिलने पर प्राय: उनके साथ हो लेता। अपने जोश में अपनी कविताएँ सुनाता। वे दाद भी देते, लेकिन प्राय: चुप रहते। कभी मन होता तो वही एक पंक्ति गाते :

डूबते हैं वही जो पार उतर जाते हैं।

उनका स्वर क्षीण हो गया था। आवाज़ का दर्द बढ़ गया था। वह सोज-भरा दर्दीला स्वर किसी तीक्ष्ण छुरे की तरह अप्रयास चेतन के हृदय को भेदता चला ज ाता।

वह तब छोटा था। प्रेम के लिए कोई व्यक्ति अपने जीवन को यों नष्ट कर सकता है, यह बात उसे रूमानी तो लगती थी, पर उसकी समझ से परे थी। उसके अपने अन्दर तो अपर-सेक्स के लिए प्रेम भी नहीं जगा था। सुन्दर लड़के उसे अच्छे लगते थे, लेकिन किसी के लिए वह जी-जान से गुज़र सकता है, अपने अन्दर टटोलने पर उसे यह असम्भव लगता था। उसे प्रेम की वह बात समझ में भले ही न आये, लेकिन उसे कश्मीरी लाल के साथ सहानुभूति थी। उसे यह भी लगता था कि शायद प्रेम की चिन्ता के साथ बेकारी का ग़म भी उन्हें अन्दर-ही-अन्दर खाये जा रहा है।

धीरे-धीरे कश्मीरी लाल ने बाहर निकलना बन्द कर दिया और वे बिस्तर के बन्दी हो गये।

०

चेतन स्कूल से आ कर खाना खा रहा था कि उसने माँ को पड़ोसिन से कहते सुना, 'थोड़े ही दिन का मेहमान है। अब बिस्तर तो धरती पर कर दिया है बसन्ती ने।'

बसन्ती कश्मीरी लाल की माँ का नाम था। चेतन के लिए भोजन करना मुश्किल हो गया। मुँह का स्वाद कड़वा गया। किसी-न-किसी तरह चार कौर निगल कर वह उठा। माँ से बिना पूछे उस गली में गया, जिसे 'भुवाड़ा' कहते थे और जिसके अन्त में कश्मीरी लाल का मकान था। कश्मीरी लाल का मकान. . .लेकिन वह मकान नहीं था, एक पुराने, अँधेरे, सीले दुमंज़िले मकान का एक खण्ड था। एक कोठरी निचली मंज़िल में अँधेरे कुएँ-से आँगन में थी। रसोई-घर तथा उसके पीछे एक कोठरी दूसरी मंज़िल पर और एक चौबारा छत पर। इन तीनों कोठरियों में सारा कुटुम्ब रहता था। माँ-बाप, बड़े भाई की बीवी, एक बच्ची और दो छोटे-भाई—सब वहीं गुज़र करते थे। ऐसे ही दो हिस्से उस मकान में और थे, जिनमें उनके शरीक रहते थे—कश्मीरी लाल के पिता के दोनों भाइयों के परिवार। तीन तरफ़ से उस मकान की दीवारें दूसरे मकानों से जुड़ी थीं। न कहीं कोई झरोखा था, न खिड़की और चौथी ओर दरवाज़ा उसी छोटी-सी गली में खुलता था। तीनों तरफ़ से बन्द होने के कारण वह तीन मंज़िला मकान आँगन के मोघे[1] के बावजूद ऐसे अँधेरे कुएँ-सा लगता था, जिसमें कबूतरों के काबुक बने हुए हों। उस अँधेरे मकान और कुएँ में कुछ ज्यादा अंतर नहीं था, न उन कोठरियों और काबुकों में और न उस मकान के वासियों और निरीह कबूतरों में। गली भी अँधेरी थी और सीढ़ियों में टटोल कर चढ़ना पड़ता था। नीचे आँगन में कश्मीरी लाल के चाचा की भैंस बँधी रहती थी, जिसके गोबर की बू आँगन के मोघे से ऊपर के सभी कमरों में व्याप्त हो जाती थी।

चेतन एक-दो बार पहले भी माँ से बिना पूछे कश्मीरी लाल को देख आया था। दूसरी मंज़िल में रसोई-घर के पीछे जो कोठरी थी, उसमें एक पलँग बिछा रहता था। उसी पर वे लेटे रहते थे। सिरहाने

---

१. रोशनी के लिए आँगन के बीचोंबीच बना लोहे का जंगला।

की ओर मिट्टी का एक प्याला राख से भरा रहता था, जिसमें वे थूकते थे। कोठरी में पलँग से ज़्यादा जगह न थी। बस इतनी ही जगह थी कि आने वाला खड़ा रह सके।

चेतन वहाँ पहुँचा तो देखा कि पलँग उठा दिया गया है। कच्चे फ़र्श पर बिस्तर बिछा है और उस पर कश्मीरी लाल का कंकाल लेटा है।

कश्मीरी लाल पहले भी कोई मोटे न थे, पर उनका कद लम्बा था। बिस्तर पर जिस व्यक्ति को चेतन ने लेटे देखा, लगता था जैसे दो बित्ते का है।

चेतन को देख कर मुस्कान की अत्यन्त क्षीण-सी रेखा कश्मीरी लाल के होंटों पर फैल गयी थी। उस आकृति पर वह मुस्कान चेतन को बड़ी भयानक लगी। उसने प्रणाम में सिर झुका कर हाथ जोड़े और वहीं दहलीज़ पर उकड़ूँ बैठ गया। कुछ क्षण ठहर कर यूँ ही कुछ बात करने को चेतन ने पूछा था, 'कैसा जी है भराजी ?'

कश्मीरी लाल बोले नहीं। हड्डी-सा हाथ तनिक उठा कर उन्होंने हवा में बहा दिया कि चल रहा हूँ। फिर कुछ रुक कर तिक्त-क्षीण मुस्कान के साथ उन्होंने कहा :

डूबते हैं वही जो पार उतर जाते हैं।

चेतन वह पंक्ति उनके मुँह से कई बार सुन चुका था, इसलिए समझ गया कि उन्होंने यह पंक्ति कही है। कोई दूसरा होता तो कभी न समझ पाता कि उन्होंने क्या कहा है। ऐसी क्षीण आवाज़ थी उनकी।

चेतन के कण्ठ में कुछ गोला-सा उभर आया। सान्त्वना देने की कोई बात न थी, रुकना और चुपचाप बैठे उनके कंकाल को दया-भरी निगाहों से मुटर-मुटर तकना उसे असह्य लगा। वह उठा। दोनों हाथ मस्तक पर ले जा कर उसने उन्हें प्रणाम किया।

'तुम महान लेखक बनोगे !' उन्होंने आशीर्वाद दिया और मुस्कान उनके होंटों पर फैल गयी। चेतन ने देखा—उसमें तिक्तता का लेश न

था। चेतन के मन में पाँचवीं कक्षा ही से कवि तथा लेखक बनने की आकांक्षा थी। कश्मीरी लाल से आशीर्वाद पा कर उसे लगा कि उसके महान लेखक बनने के मार्ग में अब कोई बाधा नहीं।

तीसरे दिन उनका देहान्त हो गया।

०

०

अपनी और कश्मीरी लाल की बीमारी, दुसूआ में उनके साथ बिताये कुछ दिनों की सुखद और उनके अन्तिम दिनों की दुखद स्मृतियों में उलझा चेतन कब खाना खत्म करके उठा, कब उसने नल पर हाथ धोये, पोंछे और कब वह अपने कमरे में आ कर बिस्तर पर लेट गया, उसे मालूम नहीं हुआ। भाई साहब खाना खाते ही भाभी से बात करने पिछले कमरे में चले गये और दोनों भाइयों के खाना खाने के बाद चन्दा ने अपने और माँ के लिए खाना परस लिया।

बिस्तर पर लेटे-लेटे चेतन की आँखों के सामने कश्मीरी लाल का कंकाल आ गया और धीरे-धीरे उस कंकाल पर एक दूसरी सूरत बनने लगी और चेतन ने देखा कि उसकी हृष्ट-पुष्ठ गोरी भाभी कश्मीरी लाल ही की तरह हड्डियों का महज़ दो बित्ते का पिंजर बनी, धरती पर बिछे एक मैले-गन्दे बिस्तर पर लेटी है और वह इतनी कमज़ोर हो गयी है कि उसे खाँसने तक में कष्ट हो रहा है। यद्यपि इस भाभी से चेतन को रंच-मात्र भी स्नेह न मिला था; जालन्धर में भी उसने माँ का जीना मुहाल कर दिया था और जब-जब लाहौर आयी थी, उसके हठ और कर्कशता के मारे दोनों भाई परेशान रहे थे। लेकिन इसके बावजूद टी० बी० के चंगुल में फँस कर देर-सबेर मृत्यु के मुँह में उसके चले जाने की सम्भावना से चेतन एक बार अपने अन्तरतम तक काँप गया। बिस्तर पर लेटे रहना उसके लिए कठिन हो गया। वह उठा और कमरे में घूमने लगा। फिर वह खिड़की में जा खड़ा हुआ और गली तथा टाल के बराबर की खुली जगह के पार रत्नचन्द रोड पर आते-जाते

लोगों को देखने लगा। आँखें उसकी वहीं थीं, पर दिमाग़ में अभी तक वही, भाभी का कंकाल था। तभी सड़क पर देखते-देखते भीड़ इकट्ठी हो गयी और चेतन को लगा कि साम्प्रदायिक दंगा हो जायगा।

हुआ यूँ कि मच्छी हट्टा की ओर बड़ी तेज़ी से साइकिल चलाता एक पगड़ी वाला साइकिल सवार एक बच्चे को बचाने की कोशिश में, सामने से आते हुए एक मुसलमान बुड्ढे से जा टकराया और बुरी तरह अपनी साइकिल के ऊपर गिर पड़ा। बुड्ढा भी चारों खाने चित गिरा और वहीं सड़क पर लेटा-लेटा, बिना उठने का प्रयास किये, बेतहाशा गालियाँ बकने लगा। साइकिल सवार के बायें कूल्हे पर चोट आयी थी, वह कुछ बड़बड़ाता और लँगड़ाता हुआ उठा। उसने साइकिल उठायी हैण्डल उसका टेढ़ा हो गया था। उसे दोनों जाँघों में ले कर वह उसे ठीक करने लगा। तभी पीछे से एक युवक आया। जाने वह बुड्ढे का लड़का था, या भतीजा, कोई अन्य सम्बन्धी या महज़ राह चलता मुसाफ़िर, जिसे यह देख कर क्रोध आ गया था कि साइकिल सवार युवक ने चोट खा कर गिरे हुए बुड्ढे को उठाया क्यों नहीं। उसने आव देखा न ताव एक रैपटा साइकल सवार की गुद्दी पर जड़ दिया। साइकिल सवार की पगड़ी सड़क पर गिर गयी और साइकिल छोड़ कर वह उस युवक से गुँथ गया। तभी रत्नचन्द की सराय और सामने की दुकानों से कुछ हिन्दू लाले साइकिल सवार की मदद को दौड़े और बाँस के टालों से मुसलमान उस युवक की मदद को पहुँचे और हवा में गालियाँ और घूँसे उछलने लगे।

तभी बच्चे के साथ वाले खाँ साहब ने, जो लगता था किसी दफ़्तर में आला अफ़सर थे, आगे बढ़ कर उन दोनों को अलग-अलग हटाया और उस मुसलमान युवक और उस बुड्ढे को समझाया कि साइकिल सवार का कसूर नहीं। उनका बच्चा उनका हाथ छोड़ कर सड़क पर बढ़ गया था, जिसे बचाने की कोशिश में वह बेचारा उनसे जा टकराया।

यद्यपि वे लोग उस साइकिल सवार को यूँ सस्ता छोड़ने को तैयार

न थे और उनकी शिकायत थी कि वह साइकिल बहुत तेज़ चला रहा था, लेकिन उन ख़ान साहब की आवाज़ में कुछ ऐसा रौब और मतानत[1] थी कि मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया। बुड्ढा और वह लड़ाका युवक मच्छी हट्टा की ओर बढ़ गये और साइकिल सवार ने पहले ज़मीन से पगड़ी उठा कर उसे झाड़ा और सिर पर बाँधा, फिर वह साइकिल के अगले पहिए को जाँघों में कस कर उसका हैण्डल ठीक करने लगा।. . .

यह घटना पंजाब के गली-बाज़ारों की साधारण घटना थी। वर्षों से साम्प्रदायिक नेताओं और समाचार-पत्रों ने हिन्दू-मुसलमानों के दिलों में इतना ज़हर भर दिया था कि ज़रा-ज़रा-सी बात पर दोनों तरफ़ के लोग मरने-मारने पर तुल जाते थे।. . .वहीं खिड़की में खड़े-खड़े चेतन के सामने बचपन के दिन घूम गये, जब मुहर्रम के दिनों में ताज़िये निकलते थे और वे दादी (पड़दादी गंगादेई—जिसे अपने पिता के अनुकरण में चेतन और उसके भाई भी दादी ही पुकारते थे) के साथ चौक कादेशाह में उन्हें देखने जाते। दादी बच्चों के साथ ताज़ियों की परिक्रमा करती, उनके नीचे से स्वयं गुज़रती और बच्चों को गुज़ारती और उन पर कौड़ियाँ चढ़ाती और जिन बाज़ारों से ताज़िये निकलते, उनमें हिन्दू दुकानदार मीठे शर्बत और लस्सी की सबीलें लगाते और साल में एक बार गुग्गे नवमी को मुसलमान भराई बड़े-बड़े ढोलक गले में लटकाये, उनसे कपड़े बाँधे, उन्हें बजाते और गुग्गे पीर के गीत गाते हुए आते। पड़दादी देग भर कर दलिया पकाती, भराइयों को खिलाती, मुहल्ले में बाँटती और उन्हें कपड़े दे कर विदा करती। चेतन को याद था कि वसन्त का त्योहार मुसलमान भी उतने ही शौक से मनाते, जितना कि हिन्दू। पीली पगड़ियाँ बँधती और कनकौए उड़ते।. . .लेकिन १६२१ के बाद इधर स्वतन्त्रता आन्दोलन ने जोर पकड़ा, उधर अंग्रेज़ों ने दोनों जातियों के बीच नफ़रत का बीज बोना शुरू किया। पहले मुस्लिम लीग

---

१. संजीदगी।

की हिमायत की, फिर हिन्दू महासभा की—दोनों सरकार-परस्त संस्थाएँ, दोनों स्वतन्त्रता-विरोधी, दोनों साम्प्रदायिकता फैलाने वाली और वही डॉक्टर इकबाल, जिन्होंने कभी लिखा था :

मस्जिद तो बना दी शब भर में ईमाँ की हरारतवालों ने।
दिल अपना पुराना पापी है बरसों में नमाज़ी बन न सका।

'सर' का खिताब पा कर कट्टर मुसलमान हो गये और साम्प्रदायिकता के ज़बरदस्त स्तम्भ बन गये और हफ़ीज़ जालन्धरी, जिन्होंने प्रीत के गीत लिखे थे, शाहनामा इस्लाम लिखने और मस्जिदों में जा कर पढ़ने और दाद पाने लगे. . .'इस देश का क्या बनेगा ?' चेतन मन-ही-मन सोचने लगा।. . .

तभी भाई साहब अन्दर के कमरे से आये और माँ भी उनके पीछे-पीछे आ गयी। चेतन खिड़की से पलटा।

'वह जालन्धर जाने को तैयार नहीं।'

भाई साहब ने जैसे यह किसी एक को न सुना कर सारे कमरे को सुनाते हुए कहा। क्षण भर वे रुके फिर बोले, 'वह आदमपुर जाने के लिए भी तैयार नहीं।' वे फिर चुप हो गये। लेकिन प्रत्युत्तर में जब न माँ ने कुछ कहा और न चेतन ने, तो उन्होंने बायाँ पैर चारपाई के पाये पर टिकाया और बायाँ हाथ घुटने पर रखते हुए कहा, 'वह कहती है कि अब वह यहीं रहेगी और यहीं इलाज करायेगी।'

अब चेतन ने ज़बान खोली, 'हस्पताल से दवाई लाने का ज़िम्मा तो मैं ले सकता हूँ।' उसने सोत्साह कहा।

भाई साहब ने उसकी ओर (शायद इन वर्षों में पहली बार) ऐसे देखा, जैसे उसने निहायत बेवकूफ़ी-भरी बात कही हो और वह भोला-भाला बच्चा हो। फिर वे बोले :

'हस्पताल कोई सेनेटोरियम नहीं और न लाहौर कोई पहाड़ी जगह है। यहाँ उसका इलाज कैसे हो सकता है ? दवा तो तुम हस्पताल से ला दोगे, बाकी उसकी देख-भाल कौन करेगा ?' और फिर उन्होंने

निश्चयात्मक स्वर में कहा, 'यहाँ उसका इलाज नहीं हो सकता। उसे अपने भाई के यहाँ आदमपुर अथवा अपने पिता के पास फ़िरोज़पुर जाना होगा। मैं आज ही दोनों जगह अर्जेण्ट पत्र लिखता हूँ।'

और चलने के लिए तैयार हो, उन्होंने चारपाई से पैर नीचे रख लिया।

'अब अगर चम्पा को मेरे साथ नहीं जाना तो मैं कल जालन्धर चली जाऊँगी।' सहसा माँ ने कहा, 'बच्चे वहाँ अकेले हैं, उन्हें खाना पकाने में तकलीफ़ होती होगी।'

और वह उठी।

जब इस पर दोनों भाई चुप रहे तो माँ ने चेतन के कन्धे पर हाथ रख कर कहा कि वह उसे शाम को ग्वालमण्डी में ज़रा मोहनलाल वैद्य के घर ले चले। वह चेतन की मौसी पूरनदेई का सन्देश भी दे आयेगी और रामरक्खी से मिल भी आयेगी। वैद्य की मौत के बाद वह उससे एक बार भी नहीं मिली।

'ठीक है माँ, शाम को चलेंगे।' चेतन ने इतना कहा और अपने भाई को मेयो हस्पताल के चौरस्ते तक छोड़ आने के विचार से वह उनके साथ ही बाहर निकल गया।

माँ ने वहीं खड़े-खड़े मुड़ कर खिड़की से दोनों भाइयों के सिर साथ-साथ जाते देखे।

इक्कीस

'मोहन दग्धहरण मरहम' के ग्राविष्कारक, मोहन फ़ार्मेसी के संचालक स्व० वैद्य मोहनलाल का घर कृष्णा गली से दो ही फ़र्लांग दूर, ग्वालमण्डी में था।

ग्वालमण्डी की ग्राबादी भी कृष्णा गली ही की तरह नयी थी। इसके तीन तरफ़ तीन सड़कें थीं—चेम्बरलेन रोड, उसी में गन्दे नाले पर जा निकलने वाली ग्वालमण्डी रोड ग्रौर तीसरी ग्रोर निस्बत रोड ! चौथी तरफ़ एक चौड़ी गली थी। बीच में समानान्तर गलियों में यह ग्राबादी बसी थी। यद्यपि यह ग्राबादी कृष्णा गली से कुछ पुरानी थी तो भी ग्रभी तक इसकी ग्रन्तिम गली में मकान बन रहे थे। श्री वेदव्रत का तिमंज़िला मकान ग्रभी-ग्रभी बना था, जिसका ग्रगवाड़ा निस्बत रोड पर था ग्रौर पिछवाड़ा ग्वालमण्डी की ग्रन्तिम गली में। ग्वालमण्डी रोड से ग्राबादी के ग्रन्दर को जाने वाली चौड़ी गली के कोने पर स्वर्गीय मोहनलाल वैद्य का मकान था।

उन्हें मरे साल भर हो गया था। उनके घर को जाते-जाते चेतन की माँ ने बताया कि उनकी शत्रुता किसी

वैद्य से थी, जिसने उन पर मूठ चलवा दी और वे एक दिन खड़े-खड़े गिर पड़े और फिर नहीं उठे। माँ की बात पर चेतन को हँसी आ गयी थी, क्योंकि उसने अखबार में भी पढ़ा था और कविराज रामदास के सहयोगी कविराज त्रिलोकचन्द अग्रवाल ने भी उसे सविस्तार बताया था कि वैद्य मोहनलाल की मृत्यु दिल के दौरे से हुई है। वे अपने प्रतिस्पर्धी वैद्य गोपालदास से झगड़ रहे थे कि सहसा चक्कर खा कर गिर पड़े और फिर नहीं उठे।. . .चूँकि अन्तिम समय उनके होंटों पर अपने प्रतिद्वन्द्वी के लिए गाली थी और उनका प्रतिद्वन्द्वी अभी जीवित था, इसलिए चेतन ने सोचा कि या तो उनकी आत्मा ने अभी कहीं जन्म नहीं लिया और वह प्रेत योनि में पड़ी वैद्य गोपालदास के मरने की बाट जोह रही होगी कि वे मरें तो इकट्ठे कहीं एक ही मुहल्ले में जन्म लें, प्रतिस्पर्धी बनें और अपनी इस लोक की लड़ाई उस लोक में भी जारी रखें अथवा यदि उसने कहीं जन्म ले लिया है, वह वैद्य गोपालदास की प्रतीक्षा कर रही है कि वे मर कर जन्म धारण करें तो अपना बदला चुकाये।

जादू-टोने में चेतन का विश्वास नहीं था। उसे पूरा यकीन था कि वैद्यजी की मृत्यु दिल के दौरे से हुई थी। चूँकि दिल की बीमारी तब आम नहीं थी। याने लोग दिल के दौरे से मरते थे, पर उनके सगे-सम्बन्धी नहीं जानते थे कि दिल की हरकत बन्द हो जाने से मरने वाले की आत्मा इहलोक से विरक्त हो, परलोक सिधार गयी है, इसलिए जब कोई हृष्ट-पुष्ठ, हँसता-खेलता व्यक्ति अचानक गिर पड़ता, बेहोश हो जाता और दूसरे क्षण चल बसता तो लोग प्रायः यही समझते कि उसके किसी शत्रु ने मूठ चलवा दी है अथवा टोना कर दिया है। वे मरने वाले के शत्रु का नाम, शत्रुताई के कारण और अन्य सारे ब्योरे ढूँढ़ निकालते। एक से दूसरे के कान तक पहुँचते-पहुँचते उनमें वृद्धि होती रहती और कहानी की त्रुटियाँ धीरे-धीरे दूर हो जातीं, नोक-पलक दुरुस्त हो जाती और वह ऐसी बन जाती कि सुनने वालों को विश्वास हुए बिना न रहता. . .लेकिन वैद्य मोहनलाल की मृत्यु चाहे दिल की बीमारी से

हुई हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके पुराने मेहरबान और मित्र तथा बाद के प्रतिस्पर्धी और शत्रु वैद्य गोपालदास का हाथ उसमें ज़रूर था ।

०

वैद्य मोहनलाल और वैद्य गोपालदास, जिनकी फ़ार्मेसियाँ सूत्र मण्डी बाज़ार में आमने-सामने चौबारों पर थीं, किसी आयुर्वेदिक कॉलेज के डिग्री-याफ़्ता वैद्य नहीं थे । वे दोनों बचपन और लड़कपन में बच्छोवाली की एक गली में आमने-सामने घरों में रहने वाले, एक ही स्कूल में पढ़ने वाले और बाद में एक ही दफ़्तर में क्लर्की करने वाले मित्र थे । मोहनलाल तो वैद्य के बेटे थे, इसलिए वैद्य हो गये, लेकिन एक छोटी-सी बात ने न केवल गोपालदास को वैद्य बना दिया, बल्कि उनका घोर प्रतिद्वन्द्वी बना कर उनके सामने फ़ार्मेसी खोलने पर विवश कर दिया ।

०

मोहनलाल के पिता नारायणदास वैद्य तो थे, लेकिन वैद्यक से उन्हें इतनी आय न थी कि वे अपने लड़के को भी वैद्य बनाने की सोचते । वे तो चाहते थे कि उनका लड़का पढ़-लिख कर कहीं बड़ा अफ़सर बने, पर जब अपने पिता के इस इकलौते पुत्र ने थर्ड डिवीज़न में मैट्रिक पास करने के बाद आगे पढ़ने अथवा औषधालय में बैठ कर औषधियाँ खरल करने से इनकार कर दिया तो वैद्य नारायणदास ने बच्छोवाली में अपने सामने वाले पड़ोसी लाला दयालदास सुपरिंटेण्डेण्ट जलकल विभाग, नगर-पालिका, लाहौर की सिफ़ारिश से अपने सुपुत्र को उनके दफ़्तर में क्लर्क रखवा दिया । मोहनलाल की इस मुलाज़मत में चाहे प्रकट रूप से दयाल-दास के घर जा कर उनके पिता राजवैद्य पण्डित नारायणदास की प्रार्थना और लाला दयालदास की उदारता का हाथ था, किन्तु परोक्ष रूप में मोहनलाल के लड़कपन के साथी और मित्र तथा लाला दयालदास सुपरिंटेण्डेण्ट जलकल विभाग के सुपुत्र गोपालदास का ज़ोर भी कम

नहीं था, जिन्होंने अपने बेकार मित्र को यह राह सुझायी थी कि एक ओर वह अपने पिता को उनके पिता के पास भेजे, दूसरी ओर वे अपने पिता पर ज़ोर देंगे। बाहर-भीतर की इस दोहरी नाकेबन्दी के आगे सुपरिंटेण्डेण्ट महोदय कहाँ टिकते। हालाँकि उनके दफ़्तर की हर रीती कुर्सी भरने और यूँ गर्म होने के उपलक्ष्य में उनकी जेब गर्म कर जाती थी, पर इस मामले में उन्होंने अपनी जेब को रीती और ठण्डी रहने दिया। यह और बात है कि वैद्यराज ने इस कृपा के लिए अपने औषधालय में स्वयं अपने हाथों तैयार किये अव्वल दर्जे के सिद्ध मकरध्वज की पूरी एक शीशी उन्हें चुपके से थमा कर उनकी सारी सर्दियाँ गर्म कर दीं।

यद्यपि मोहनलाल और गोपालदास साथ-साथ ही खेले और पढ़े थे, लेकिन मोहनलाल उनसे उम्र में एक वर्ष बड़े थे, इसलिए वे अपने आप को (बड़े भाई के नाते) ज़रा ऊँचा समझते थे और ज़रा ऊँचाई से बात करते थे। लेकिन गोपालदास ने उन्हें नौकरी दिलायी थी। उनकी खातिर अपने पिता का जीना मुहाल कर दिया। उन्होंने मोहनलाल को यह जता भी दिया था कि यदि वे लगातार अपने पिता पर ज़ोर न देते तो घोर बेकारी के उस ज़माने में कभी उन्हें वह नौकरी न मिलती। गोपालदास चाहते थे कि मोहनलाल न केवल उनके पिता की खुशामद करें, बल्कि उन्हें भी थोड़ा-बहुत मस्का लगायें और सिद्ध मकरध्वज न सही तो लवणभास्कर या हिंग्वाष्टक चूर्ण ही उन्हें अपने औषधालय से ला कर दें।

०

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने बचपन और लड़कपन के मित्र और सहपाठी और कृपालु की इच्छापूर्ति के लिए पण्डित मोहनलाल ने औषधालय में आना-जाना शुरू किया, लेकिन एक दूसरे ही कारण से उनकी रुचि धीरे-धीरे उधर बढ़ गयी।

०

बात यह हुई, उनकी नौकरी लगे मुश्किल से दो वर्ष भी न हुए होंगे, जब उनके पिता ने होशियारपुर के मिश्रा मुहल्ले के एक ब्राह्मण परिवार में उनकी शादी कर दी। (मायके के घरों में साथ-साथ रहने के कारण ही चेतन की माँ लाजवती, मोहनलाल की पत्नी रामरक्खी और चेतन के मुहल्ले में झमानों की पूरनदेई सहेलियाँ थीं।) जब शादी के बाद सात वर्ष तक मोहनलाल के यहाँ कोई बच्चा न हुआ तो वैद्य नारायणदास को चिन्ता हुई और तभी मोहनलाल का मन आयुर्वेद की ओर झुका और वे दफ़्तर से आ कर शाम को औषधालय में जाने लगे। यद्यपि अपनी माँ को, और यों माँ के द्वारा अपने पिता को, उन्होंने यही कहा कि वे इतनी जल्दी बच्चा नहीं चाहते, पर मन में उन्हें बच्चे की बड़ी लालसा थी।

मोहनलाल स्वयं ही औषधालय न जाते, वरन गोपालदास को भी ले जाते। बे-ज़ायका दवाइयों को तो वे छूते भी नहीं, पर ज़ायकेदार और स्वादिष्ट चूरन गोपालदास चख कर देखते और 'चन्द्रवटी' की एक-दो गोलियाँ ज़रूर चूसते। मोहनलाल अपने पिता को औषधियाँ बनाने में मदद देते, औषधियाँ तैयार होती देखते, पर चोरी-चोरी वे आयुर्वेदिक ग्रन्थों का अध्ययन करते और कई बार आँख बचा कर कुछ माशा शक्ति-वर्धक औषधियाँ गोल भी कर देते—लेकिन ऐसे कि उनके पिता को आभास तक न हो। इस दौरान मोहनलाल ने शिलाजीत भी खायी, कामिनी विद्रावण भी और सिद्ध मकरध्वज भी। लेकिन उन शक्तिवर्धक औषधियों के प्रयोग से उनकी नसों में तनाव भले आ गया हो और उन्होंने बार-बार अपनी पत्नी को परेशान किया हो, पर वे उसे गर्भवती बनने का सुख प्रदान नहीं कर पाये। तब उन्होंने माँ को संकेत दिया कि वह उनके पिता से कह कर पत्नी का इलाज कराये। (उन्हें पूरा विश्वास था कि दोष उनकी पत्नी ही में था।) माँ ने पति से कहा और पति ने दोनों की नाड़ी देखी। पत्नी द्वारा बहू से कुछ जानकारी प्राप्त की और इधर मूसली पाक और बंग भस्म दे कर अपने पुत्र का वीर्य पुष्ट किया और

उधर शिवलिंगी और अशोकारिष्ट आदि के प्रयोग से अपनी बहू के योनि-दोष दूर किये। पूरे तीन महीने तक बहू को उसकी सास के पास सुलाया और स्वयं अपने पुत्र के कमरे में सोये।. . .यूँ एक वर्ष के भीतर मोहनलाल के यहाँ उनकी एकमात्र सन्तान कमला ने जन्म लिया।

कमला के बाद मोहनलाल के यहाँ कोई बच्चा नहीं हुआ, लेकिन आयुर्वेद में उनकी आस्था सुदृढ़ हो गयी। उन्हीं दिनों लाहौर में कविराज रामदास का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने ऐसी विज्ञापनबाज़ी की कि लगा जैसे सारे लाहौर में कविराज रामदास के अलावा दूसरा कोई वैद्य नहीं है। मोहनलाल चाहते थे कि उनके पिता, जिनके पास अद्वितीय औषधियाँ थीं, कविराज रामदास की तरह अपने औषधालय का प्रचार करें, लेकिन वैद्य नारायणदास पुराने ज़माने के आदमी थे और उनके मरीज़ उनके यजमानों के समान थे, जिनका इलाज वे पूरी निष्ठा से करते और अपने श्रम के लिए जैसे दान-स्वरूप कुछ पा जाते। वैद्यक को वे बनियागीरी नहीं बनाना चाहते थे। उनके यजमान स्वस्थ और प्रसन्न रहें, इससे ज़्यादा उन्हें कुछ दरकार न था। उनके मरीज़ (यजमान) उन्हें श्रद्धा से वैद्यराज अथवा राजवैद्य कह कर पुकारते थे, लेकिन सूत्र-मण्डी बाज़ार में उनके औषधालय पर जो बोर्ड टँगा था, उस पर केवल नारायणदास वैद्य लिखा रहता था। विज्ञापनबाज़ी से उन्हें चिढ़ थी। मोहनलाल के मन में आता कि यदि वे वैद्यक करें तो औषधालय के साथ फ़ार्मेसी भी चलायें; कूटने-पीसने की आधुनिक मशीनें लगायें और कवि-राज रामदास की तरह विज्ञापनबाज़ी करें।

उन्हीं दिनों मोहनलाल को कण्ठमाला और जले की दवाइयों के दो अचूक नुस्खे मिल गये। उन्होंने अपने पिता को बताये बग़ैर वे दवाइयाँ बनायीं और आज़मायीं। इस बीच वे अपने पिता के काम में खूब मदद करते रहे और आखिर एक दिन उन्होंने अपने पिता से आज्ञा ले ली और ऊपर औषधालय को चढ़ने वाली सीढ़ियों पर अपने नाम की छोटी-सी पट्टी भी लगा दी।

उन्होंने छोटे-छोटे हैण्ड-बिल छपवाये कि शाम को छै से आठ तक वैद्य मोहनलाल कण्ठमाला और जले हुए की औषधियाँ बाँटते हैं। जो दे सकते हैं, उनसे केवल खर्च भर लेते हैं, वरना मुफ़्त दवा देते हैं। एक कम्पाउण्डर से उन्होंने घाव धोना और पट्टी बाँधना सीख लिया। शाम को छै से आठ तक वे औषधालय में बैठते और दवाइयाँ बाँटते। शुरू-शुरू में तो इक्का-दुक्का मरीज़ आते और मोहनलाल खाली समय में आयुर्वेद का अध्ययन करते अथवा अपने पिता की सहायता करते, पर धीरे-धीरे उनका नाम और उनके 'कण्ठमाला नाशक' और 'दग्धहरण मरहम' की ख्याति फैलने लगी और स्वयं उनके पिता को आश्चर्य हुआ, जब उनके बेटे के पास उनसे ज़्यादा मरीज़ आने लगे और इसी कारण उनका अपना काम भी किंचित बढ़ गया।

०

'कण्ठमाला नाशक' का नुस्खा तो वैद्य मोहनलाल को अपने दफ़्तर ही में मिल गया था। उनके एक सहयोगी थे शम्भुनाथ। उनकी पत्नी एक बच्चा छोड़ कर यक्ष्मा से मर गयी थी। उसकी मृत्यु से साल भर बाद ही उनके बच्चे को, जो ढाई-तीन वर्ष का था, कण्ठमाला निकल आयी। पहले एक मोटी-सी गिल्टी बायें कान के नीचे निकली। वह अपनी नानी के पास अबोहर मण्डी गया हुआ था। वहाँ हस्पताल के डॉक्टर ने बिना निदान किये, उसे चीरा दे दिया। जब फोड़ा ठीक न हुआ और सारे गले में गिल्टियाँ निकल आयीं तो लड़के के मामा ने उसके पिता को लिखा। शम्भुनाथ बच्चे को लाहौर ले आये। वहाँ उसे मेयो हस्पताल में दिखाया तो मालूम हुआ, कण्ठमाला है। ऑपरेशन होगा। शम्भुनाथ ऑपरेशन कराने की सोच रहे थे कि एक दूसरे मित्र ने रोका—'अरे कहीं ऑपरेशन न कराना। मेरे बड़े लड़के को कण्ठमाला निकल आयी थी। मैंने उसका ऑपरेशन कराया। वह फिर निकल आयी और लड़का हाथ से जाता रहा।'

शम्भुनाथ डर गये। किसी ने लाहौरी मण्डी के एक जर्राह का

पता दिया। शम्भुनाथ बच्चे को जर्राह के दिखाने ले गये। जर्राह ने कहा कि छै महीने लगेंगे और १०० रु० खर्च होंगे। सौ रुपये की बात न थी, पर शम्भुनाथ को लगा कि जर्राह ने ज़्यादा फ़ीस और लम्बी अवधि बता कर अपनी अक्षमता ही सिद्ध की है। लड़के को बड़ी तकलीफ़ थी। उसे हलका-हलका बुखार रहने लगा था। वे बड़े परेशान थे। तभी एक दिन उनकी माँ ने कहा कि बेटे तुम आजकल के लड़के पुरानों को मूरख समझते हो। छींक आ जाय तो डॉक्टर के भागते हो, वरना मैं तुम्हें गुरदासपुर से एक नुस्खा ला देती और महीने भर में बच्चा ठीक हो जाता। गुरदासपुर शम्भुनाथ की ननिहाल थी।

'कैसा नुस्खा ?' शम्भुनाथ ने पूछा।

'कण्ठमाला का। वहाँ डाकखाने मुहल्ले में एक रिटायर्ड तहसीलदार नुस्खा देते हैं। हज़ारों को लाभ हुआ है।'

ऑपरेशन से लाभ के बदले हानि की सम्भावना थी और जर्राह ने टाल दिया था। शम्भुनाथ निराश हो गये थे। उन्होंने माँ से कहा कि वह जाय और अपने मायके से नुस्खा ला दे। माँ गयी और नुस्खा ले आयी। मामूली-सा सस्ता नुस्खा! चार चीज़ें। दवा शुरू करने से पहले वे मुहल्ले ही के वैद्य के पास गये। उसने कहा, कि देने में हर्ज नहीं। कण्ठमाला को लाभ होगा, यह तो वह नहीं कह सकता, पर खून साफ़ करने वाली चीज़ें हैं। सो शम्भुनाथ ने अपनी माँ से कहा कि वह बच्चे को दवाई देना शुरू करे।

'माँ ने कहा था कि हफ़्ते में लाभ दिखायी देगा।' शम्भुनाथ ने एक दिन लंच टाइम में मोहनलाल, गोपालदास तथा अन्य मित्रों को यह किस्सा सुनाते हुए बताया, 'हफ़्ते में तो नहीं, पर हाँ पन्द्रह दिन बाद लगा कि कुछ लाभ हुआ है और तीन-साढ़े तीन महीने में एक भी गिल्टी न रही।'

सहसा मोहनलाल ने पूछा, 'वो चार चीज़ें क्या थीं ?'

'मुण्डी बूटी, रत्नजोत की जड़, जल नीम और काली मिरच।'

'मिकदार[1] क्या थी ?'

'मैंने तो पाव-पाव भर चारों चीज़ें माँ को ला दी थीं।'

'देने की विधि क्या थी ?'

'छै-छै माशे चारों चीज़ें ले कर रात को भिगो दी जातीं। सवेरे कुंडी-सोटे से रगड़ कर कपड़छान कर, कटोरी में पिला दी जातीं। दवा कड़वी है। लेकिन छोटे भाई के डर से बबलू पी लेता था।'

'परहेज़ ?'

'बस यही मुश्किल है।' शम्भुनाथ ने कहा, 'मीठा-नमक बन्द। खाने को फीकी चूरी[2]। दवा बड़ी ख़ुश्क है ना ?'

मोहनलाल ने तत्काल डायरी में नुस्ख़ा नोट कर लिया। फिर बोले, 'लेकिन वह एक गिल्टी को डॉक्टर ने चीरा दे दिया था। उसका क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं। हम उस पर स्पिरिट का फाहा रख कर बाँध देते थे। धीरे-धीरे बाकी गिल्टियों की तरह वह भी अन्दर-ही-अन्दर बैठ गयी. . .।' फिर कुछ क्षण रुक कर उन्होंने स्वयं ही कहा, 'एक खास बात देखी कि जब गिल्टी सूखती तो ख़शख़ास के दाने-ऐसी सफ़ेद-सी कुछ चीज़ गिल्टी पर उभर आती और झड़ जाती और गिल्टी अन्दर को दब जाती।'

'अब कैसी हालत है बबलू की ?' गोपालदास ने पूछा था।

'एकदम ठीक है। कण्ठमाला ठीक होती है तो निहायत भद्दे निशान गले पर छोड़ जाती है, पर तुम बबलू को देखना। कहीं निशान तक नहीं।'

लेकिन मोहनलाल ने सुनी-सुनायी बात पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने एक बार अपने मुहल्ले ही में कण्ठमाला के एक रोगी को यह

---

१. मात्रा २. गर्म-गर्म रोटी को शुद्ध घी में गूंथ लिया जाता है। उसे चूरी कहते हैं।

दवा खिलायी और जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि नुस्खा अचूक है तो उन्होंने अपने पिता को बताया। वैद्य नारायणदास ने कोई ख़ास उत्साह प्रकट नहीं किया। उन्होंने बेटे को बताया कि आयुर्वेद में कांचनार गुग्गुलू कण्ठमाला की बढ़िया दवा है।. . .जब उनके बेटे ने उनकी बात पर कान नहीं दिया और अपने नाम की पट्टी लगाने के बाद दवाई देने लगा तो उन्होंने सलाह दी कि बेटे, 'नगंदबाँवरी' उसमें और मिला ले, पर उनके बेटे ने उनके परामर्श को सुन कर भी अनसुना कर दिया। वह चारों चीज़ें सेर-सेर भर ले आया। उसने उन्हें छान-फटक कर रख लिया और दो-दो तोले की पुड़ियाँ बना कर वह दवा बाँटने लगा। मरीज़ धनी-मानी होता तो वह कुछ दान-दक्षिणा भी ले लेता, वरना मुफ़्त बाँटता।

जब कोई खाता-पीता मरीज़ दवा ले कर पूछता कि क्या सेवा करे तो मोहनलाल कहते, 'जो आप की श्रद्धा हो! आप जो भी देंगे, उससे ग़रीबों को दवा बँटेगी। मैं दवा का कुछ नहीं लेता। अभी चाहे कुछ न दीजिए। आराम आने पर दे जाइएगा।'

और मरीज़ जो भी देता, वे ले लेते और बड़े ठहराव से उसे दवा लेने की विधि तथा पथ्य बताते।

०

'दग्धहरण मरहम' के नुस्खे का पता उन्हें अपनी एक दूर की चचेरी बहन की शादी पर मिला था। उसके गुण-प्रभाव को देख कर तो वे दंग रह गये थे और जिस दिन उनकी चाची ने उन्हें वह नुस्खा बताया था, उन्हें आभास हो गया था कि उनके हाथ सोने की खान आ गयी है।

०

बात उन दिनों की है, जब पण्डित मोहनलाल को नगरपालिका में काम करते हुए पाँच-सात वर्ष हो गये थे, उनके कोई बच्चा न हुआ था, आयुर्वेद में नयी-नयी उनकी आस्था जगी थी और अपने मित्र और सहयोगी लाला गोपालदास के साथ वे औषधालय में जाने लगे थे। सहसा उनके पिता के

नाम उनके चचेरे भाई का पत्र आया कि सुलेखा की शादी है और वे अपने परिवार के साथ शादी के सात दिन पहले वनीके पहुँच जायँ और इस शुभ कार्य में हाथ बटायें।

अपने भाई से वैद्य नारायणदास की कुछ ज़्यादा नहीं पटती थी। वैद्यजी के निकट वे ब्राह्मण नहीं, बनिया थे। मोहनलाल को अपने उस चाचा के प्रति अपने पिता के क्रोध का कारण सिवा इसके कोई नज़र न आता था कि वैद्यजी की अपेक्षा वे सफल थे। वनीके में उनकी एक दुकान थी, जिस पर वे स्वयं बैठते थे। अन्य कई दुकानें थीं, जिनके वे मालिक थे। गाँव के पास ही दस एकड़ में सन्तरों का एक बाग़ उनका था। वे साहुकारा भी करते थे और गाँव की दो-चार पक्की हवेलियों में एक उनकी भी थी।

भाई से चाहे वैद्य नारायणदास की न पटती हो, पर भाभी को वे पसंन्द करते थे। साल में दो-तीन बार वे गाँव से ज़रूर लाहौर आती थीं। तब, मोहनलाल ने देखा था, उनके पिता आयुर्वेद की मोटी किताबों, भस्मों, पर्पटियों, आसवों, अरिष्टों, वटियों, चूर्णों, सुर्मों और घृतों को छोड़ कर, कुछ दिन अपनी इस भाभी के संग गुज़ारते। उसे और उसके बच्चों को अपने बीवी-बच्चों के साथ चिड़िया-घर और लॉरेंस बाग़ दिखाने ले जाते। अनारकली की सैर कराते और जब वह वापस जाती तो कुछ-न-कुछ उपहार स्वरूप उसे भेंट करते। मोहनलाल ने यह भी देखा था कि उसके पिता ही नहीं, माँ भी वनीके की अपनी देवरानी को पसन्द करती है। वे जब लाहौर आतीं, अपने साथ काफ़ी तोहफ़े लातीं। आमों के मौसम में आमों का टोकरा। सन्तरों के मौसम में सन्तरों की पेटी। फिर गुड़ और बादाम मिली राव, सरसों का साग और गन्नों का गट्ठा; सफ़ेद शक्कर और शुद्ध घी का डिब्बा। जाने कितनी चीजें गाँव से नित्य आया करतीं। चाची का आना कभी न अखरता।. . .इसलिए वैद्यजी का बस चलता तो वे शादी में स्वयं शामिल होते, पर वे पक्षाघात के एक रोगी यजमान का इलाज कर रहे

थे, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी को मोहनलाल के साथ भेज दिया। ससुर और बहू पीछे रह गये।

इसी विवाह में एक ऐसी दुर्घटना हो गयी कि यदि मोहनलाल ने उसे अपनी आँखों न देखा होता तो उन्हें कभी विश्वास न होता।

०

वनीके, अटारी और चौगाँवा के रास्ते में है। सड़क के किनारे! चाचा की बड़ी हवेली में खूब रौनक थी। चूंकि बरात अमृतसर से आने वाली थी, इसलिए अमृतसर से हलवाई बुलाये गये थे ताकि समधी को भोजन और मिठाइयों से किसी तरह की शिकायत न हो। फ़रवरी का महीना था। हवा में काफ़ी ठण्डक थी। बड़े, चौड़े, खुले आँगन में एक ओर बरात के भोज का प्रबन्ध था, दूसरी ओर ऊपर को जाने वाली सीढ़ियों के निकट, एक कनात लगा कर, हलवाई को बैठा दिया गया था, जो एक बड़े कड़ाह में शुद्ध घी के कनस्तर उँडेल कर बीदाना, बून्दी, इमृतियाँ, शीरनी और शकरपारे तल रहा था। पन्द्रह दिन पहले से ढोलक रख दी गयी थी और दिन-रात सारे-का-सारा गाँव व्याह के गीतों से गूंजता रहता। मोहनलाल जब अपनी माँ के साथ इक्के पर पहुँचे थे तो सड़क ही से उन्हें ढोलक पर व्याह के गीत सुनायी दिये थे।

लेकिन बरात आने और भाँवरे पड़ने के दूसरे दिन ही वह सारी गहमागहमी और गीत-गाने एक भयावह सन्नाटे में बदल गये, जिसे चाची का दबा-दबा रोना भंग कर जाता।

बरात आने के दूसरे दिन दोपहर को बरात खाना खा चुकी थी और ऊपर छत पर स्त्रियाँ सिट्ठिनियाँ[1] दे रही थीं। अन्दर दालान के पीछे कमरे में दुल्हन बनी सुलेखा, उन्हें सुन कर अनायास मुस्करा देती थी। आधे बराती जूते पहन कर आँगन से निकल चुके थे और बाहर

---

१. व्याह में लोक-गीतों के माध्यम से दूल्हे और उसके परिवार वालों को दी जाने वाली गालियाँ।

बैण्ड बजने लगा था। तभी सहसा कुछ लड़कियाँ दूल्हे को छन्द सुनाने के लिए रोकने अथवा उसका जूता छिपाने के लिए तेज़-तेज़ छत से उतरीं। उनके पीछे-पीछे सुलेखा का दस वर्षीय छोटा भाई गोचू भी दूसरे छोकरों के साथ उतरा। जाने उसे ठोकर लगी अथवा दूसरे बच्चे ने धक्का दिया, वह घी के जलते कड़ाह में जा गिरा, चीखा और दूसरे क्षण तड़प कर आँगन के फ़र्श पर जा गिरा और बे-तरह छटपटाने लगा।

'मैं नहीं गिरा, मुझे कूकी ने धक्का दिया है।' बार-बार वह यही कहे, रोये और तड़पे जाता था।

हलवाई के हाथ-पाँव फूल गये। घी के छींटे उसके अपने शरीर पर कई जगह पड़े थे और उसे बेहद दर्द था, पर अपनी परवाह न करके उसने बच्चे की कमीज़ फाड़नी चाही।

'मेरी नयी कमीज़ न फाड़ो।' गोचू ने कहा और बेहोश हो गया।

हलवाई ने जल्दी से कमीज़ पलट कर उतार दी, पर साथ ही चमड़ी उतर आयी और जगह-जगह सफ़ेद चर्बी, जिसमें नसें तक नज़र आ रही थीं, दिखायी देने लगी।

तब जाने कौन भाग कर कैंची ले आया। पायजामे का नाड़ा काट दिया गया। लेकिन पायजामा टाँगों के साथ चिपक गया था। उसे उतारने के प्रयास में चूतड़ों से ले कर टाँगों तक जगह-जगह चमड़ी उतर गयी। किसी ने पाँत के लिए बिछी चादर वहाँ से उठा कर फ़र्श पर बिछा दी और बच्चे को उस पर लिटा दिया गया। मोहनलाल हाथ में तरकारियों का डोंगा लिये अन्दर जा रहे थे कि चीख सुन कर भागे। पलक झपकते जैसे सब हो गया और मोहनलाल जब आपे में आये तो सब तरफ़ हाहाकार मचा हुआ था।. . . चाची ऊपर से भागी आयीं और स्वयं कड़ाह में गिरती-गिरती बचीं। वे चाहती थीं, बच्चे को गोदी में ले लें। पर उसकी उतरी चमड़ी देख कर वहीं छाती पीटने लगी थीं। स्वयं मोहनलाल की माँ ज़ोर-ज़ोर से रो रही थी।. . .बराती जाते-

जाते पलट आये और ऊपर झुके पड़ते थे।. . .'जगह छोड़ो, जगह छोड़ो !'. . .'हवा आने दो !'. . .'शोर न मचाओ !'. . .'डॉक्टर मुन्शी-राम को बुलाओ !' 'डॉक्टर मुन्शीराम को बुलाओ !'. . .लोग एक साथ चिल्लाये जा रहे थे. . .मोहनलाल ने देखा—लड़के के पैर, टाँगें, चूतड़, पीठ—सब बुरी तरह जल गये हैं। दायीं बाँह कोहनी के ऊपर तक झुलस गयी है। कुछ छींटे उसके नथुनों पर भी पड़े हैं और वहाँ छाले पड़ गये हैं—हाँ, आँखें बच गयी थीं और वे बेहोशी में बन्द थीं।

तभी, जब हर जगह बेपनाह शोर बरपा था और लगता था कि सारा गाँव पण्डित भगवानदास की हवेली की ओर भागा आ रहा है, आँगन में क्षण-क्षण भीड़ बढ़ रही थी, मोहनलाल ने अपने चाचा की गरजदार आवाज़ सुनी। पहले उन्होंने बरातियों से कहा, 'महाराज आप डेरे पर जाइए ! यहाँ भीड़ न कीजिए।' फिर उन्होंने औरतों को डाँटा कि वे एकदम चुप हो जायें। न रोयें, न चिल्लायें। फ़िलहाल सब अपने-अपने घर चली जायें। पत्नी और भाभी (मोहनलालजी की माँ) को उन्होंने आदेश दिया कि जा कर दालान ख़ाली करें और उस पर एक नर्म बिस्तर बिछा दें, और किसी दुर्गादास को उन्होंने साइकिल पर डॉक्टर मुन्शीराम के यहाँ जाने के लिए कहा।

उस आवाज़ में कुछ ऐसी गरज और दबदबा था कि बराती चुपचाप सिर झुकाये चले गये। बाजे वाले (जिन्होंने पहली चीख़ के साथ ही वाजा बजाना बन्द कर दिया था) अपने बाजे लटकाये, चुपचाप उनके पीछे हो लिये। यद्यपि औरतें आँगन ख़ाली न करना चाहती थीं, पर मर्दों ने ज़बरदस्ती उन्हें वहाँ से खदेड़ दिया। बच्चे को बड़े हलके हाथों उठा कर अन्दर आँगन में लिटा दिया गया। और चाचा भगवानदास ओसारे में खड़े हो गये कि कोई आदमी अन्दर न आये।

किसी का इस ओर ध्यान न गया कि गहनों-कपड़ों में लदी दुल्हन अन्दर से भाग आयी है और चारपाई के पाये से सिर लगा कर और

अपने भाई के शरीर को देख सकने की ताब न ला कर, चुपचाप रो रही है।

तभी डॉक्टर मुन्शीराम आ गये और उन्होंने पानी उबलवा कर और उसे एकदम ठण्डा कर के उसमें दो-तीन रंग-बिरंगी दवाइयाँ मिलायीं और रूई के हलके-से फाहे से उन्हें बच्चे के सारे शरीर पर पोत दिया। बाद में पूछने पर डॉक्टर मुन्शीराम ने बताया कि जेनशियन वायोलेट, ब्रिल्येण्ट ग्रीन—दो रंगों तथा एक्रेफ़्लेविन ½ प्रति सहस्र का लोशन था।

पूरे पन्द्रह दिन पण्डित मोहनलाल अपनी माँ के साथ वनीके रहे थे। लड़की के भाँवरे तो पड़ गये थे और यद्यपि वह जाना न चाहती थी, पर बड़े कड़े दिल के साथ चाचा ने और चाची ने रोती-बिलखती लड़की को डोली चढ़ा दिया—और शेष सारा काम निबटा दिया था। गोचू इतना जल गया था कि किसी को आशा नहीं थी, वह दो-तीन दिन से ज़्यादा बचेगा। लेकिन डॉक्टर मुन्शीराम रोज़ आते और वही रंगीन लोशन लगा जाते। हफ़्ते बाद लगा कि कुछ आराम आ रहा है। सुलेखा न केवल तीसरे दिन वापस आ गयी, बल्कि दामाद अमृतसर से एक बड़े डॉक्टर को लाया। डॉक्टर मुन्शीराम वहीं थे। उसने डॉक्टर साहब द्वारा लगायी जाने वाली दवाओं का समर्थन किया। कैथीटर से पेशाब खारिज करने को कहा। पन्द्रहवें दिन लड़के ने ज़रा गर्दन हिलायी। उसी शाम पण्डित मोहनलाल अपनी माँ के साथ वापस लाहौर आ गये।

०

मोहनलाल ही को नहीं, उनकी माँ और पिता को भी इस बात का विश्वास था कि किसी दिन भी गोचू के देहान्त की खबर आ जायगी। वास्तव में वनीके में जो पन्द्रह दिन रह गये तो इसका कारण भी यही सन्देह था कि शायद दो-चार दिन बाद गोचू के देहान्त पर फिर आना पड़े, क्यों न कुछ दिन और रह कर शादी और मौत दोनों से छुट्टी पा कर ही घर जायें।

वैद्य नारायणदास को इस बात का भी अफ़सोस था कि उन्हें किसी

ने पूछा ही नहीं। 'अलसी के तेल में यदि चूने का पानी काँसे के वर्तन में फेंटा जाता और राल पीस और कपड़-छान करके उसमें घोंट दी जाती तो ऐसा लेप तैयार हो जाता कि गोचू को न केवल उससे शान्ति मिलती, वरन निश्चित रूप से आराम भी आ जाता।' उन्होंने फ़तवा दिया था, 'लेकिन भगवानदास के पास पैसा आ गया है, डॉक्टरों के बिना उनका काम नहीं चलता। इतने जले हुए को बचा लेना डॉक्टरों के बस का रोग नहीं।'

जब एक महीना बीता, दो महीने बीते, तीन महीने बीते और गोचू के मरने की ख़बर न आयी तो मोहनलाल ने चाचा को ख़त लिखा और इधर-उधर की बातें लिखने के बाद गोचू की बीमारी का उल्लेख किया और उसके स्वास्थ्य के वारे में चिन्ता प्रकट करते हुए उसका हाल-चाल पूछा। उत्तर चाची ने दिया कि डॉक्टर की दवाई से कुछ आराम तो है, पर घाव अभी भरे नहीं, बड़ी तकलीफ़ है। मोहनलाल ने अपने पिता द्वारा बताया हुआ लेप लिख भेजा।...

उत्तर में चाची ने लिखा कि वह उनका भेजा लेप का नुस्ख़ा आज़-मायेगी। वह इतना लिख भेजे, कितने अलसी के तेल में कितने चूने का पानी मिलाना है और राल का अनुपात क्या है? मोहनलाल ने अपने पिता से पूछ कर तीनों चीज़ों की मात्राएँ लिख भेजीं। एक महीने बाद चाची का पत्र आया कि लेप लगाया है, लेकिन उससे कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। गोचू की हालत ख़राब हो गयी है। जाने भगवान उस वेचारे को कितना कष्ट देना चाहते हैं।...

फिर तीन महीने बीत गये। तभी वनीके से आने वाले एक सम्बन्धी से पता चला कि गोचू अभी तक चारपाई से लगा है। खाल उसकी भैंस की तरह काली हो गयी है। ऊपर से तो सख्त है, पर अन्दर से पस पड़ गयी है। बहुत कमज़ोर हो गया है। तब माँ ने कहा कि बेटा मौत भी क्या अपने चाहे से आती है। जाने उस बच्चे अथवा उनके माता-पिता ने पिछले जन्म में कौन कुकर्म किये हैं, जब तक उनका रत्ती-रत्ती भुग-

तान नहीं हो जाता, इस शरीर से मुक्ति नहीं मिल सकती।

०

लेकिन सहसा तीन महीने बाद, एक दिन चाची उनके मकान के आगे ताँगे से उतरी तो उसके पीछे निक्कर और कमीज़ पहने छलाँग लगा कर गोचू भी उतरा। तब हठात न मोहनलाल को अपनी आँखों पर विश्वास आया, न उनकी माँ को। वे ऊपर बालकनी में खड़े थे और उन्हें ताँगे से उतरते देख कर भागते हुए नीचे उतरे थे। गोचू का रंग पहले की तरह गोरा-चिट्टा था और निक्कर के नीचे उसकी टाँगों को देख कर लगता ही न था कि वे कभी जली भी थीं या कभी भैंस-ऐसी काली थीं।

उस वक्त दोनों ने गोचू के ठीक हो जाने पर चाची को ढेर-सी बधाइयाँ दीं। लेकिन जब खाना खा-पी कर चाची आराम करने को लेटीं तो मोहनलाल ने उत्सुकता प्रकट की कि किस दवा से गोचू को उस भयानक कष्ट से मुक्ति मिली।

'अरे बेटा, मैं तुम्हें बताऊँगी तो तुम्हें यकीन नहीं आयेगा।'

'यकीन क्यों नहीं आयेगा, जब सामने गोचू मौजूद है। प्रत्यक्ष को प्रमाण कैसा?'

'मीठे तेल, लौंग, छत्ते के मोम और सिन्दूर से!' चाची ने कहा, 'इतना रुपया हमारा खर्च हो गया और इतना कष्ट बच्चे ने और हमने पाया और जब आने को हुआ तो इसी मामूली दवा से आराम आ गया।'

'किस वैद्य-हकीम ने बताया यह नुस्खा?' मोहनलाल ने पूछा।

'वैद्य-हकीम ने नहीं, गाँव के हलवाई ने।'

'हलवाई ने?'

'वो गाँव का हलवाई है न, रुल्दू,' चाची ने सविस्तार बताना शुरू किया, 'वह हमसे नाराज़ था कि हमने लड़की के ब्याह में उसे न बुला कर, अमृतसर से हलवाई मँगाया। जाने उसकी बीवी गोचू को देख कर गयी और उसने उसे बताया अथवा तुम्हारे चाचा ने बाज़ार में बात

की कि डॉक्टर की दवा से कुछ आराम नहीं आया और जाने बच्चे को अभी कितना दुख भोगना बदा है। तब रुल्दू ने कहा कि जी, आपने इतना इलाज किया है। एक इलाज हमारा भी कर देखिए। हमारे काम में तो जलना-जलाना रोज़ की बात है। हमारे उस्ताद ने एक मरहम बता रखा है। सख़्त-से-सख़्त जले को ठीक कर देता है और जिल्द पर दाग़ तक नहीं पड़ने देता।

'हम तो बेटा निराश हो चुके थे। एक रुपया उसने माँगा और तीन पाव-आध सेर मरहम बना कर दे गया। तीन-चार दिन लगाने के बाद ही लगा कि लाभ हो रहा है। जहाँ-जहाँ घाव रह गया था, वहाँ पीप निकलने लगी और उस काली चमड़ी के नीचे माँस आने लगा। सात दिन बाद मैंने उसे बुलाया कि भाई वह मरहम तो खत्म हो गया, तुम और बना दो। एक रुपया वह और ले गया और फिर मरहम बना कर दे गया। पर इतने-से मरहम से क्या होता, सारे शरीर पर लगाना पड़ता था।. . .जब तीसरी बार फिर उससे और मरहम के लिए कहा तो वह बोला, 'अरे बीबीजी, आपको सेरों मरहम चाहिए। मैं आपको नुस्खा ही बता देता हूँ। मैं तो आपसे उतना ही पैसा लेता रहा हूँ, जितना दवाइयों पर लगा है। आप स्वयं चीज़ें खरीदिए और अपनी ज़रूरत के मुताबिक मरहम बना लीजिए।

'बस मैंने नुस्खा ले लिया। चीज़ें मँगायीं और मरहम बना लिया। और देख लो, तीन महीने में गोचू ठीक हो गया है। कोई इसे देख कर कह सकता है कि यह उबलते घी के कड़ाह में जल गया था।'

उस मरहम में न केवल चीज़ें सस्ती थीं, वरन उसके बनाने की विधि भी बड़ी आसान थी। एक सेर मीठा तेल ले कर आग पर चढ़ा दिया जाता, फिर जब वह गर्म हो जाता तो उसमें एक छटाँक लौंग डाल दिये जाते। लौंग जल जाते तो झरने से उन्हें अलग कर लिया जाता और उसमें एक पाव छत्ते का मोम डाल दिया जाता। मोम घुल जाता तो तेल को नीचे उतार लिया जाता और उसमें आध पाव

बढ़िया सिन्दूर डाल कर उस वक्त तक घोंटा जाता, जब तक वह ठण्डा हो कर गाढ़ा मरहम न बन जाय।

मोहनलाल ने न केवल नुस्खा चाची से ले लिया, वरन उन चीज़ों का अनुपात और उन्हें बनाने की विधि भी लिख ली। शाम को जब वे गोपालदास के साथ अपने पिता के औषधालय में गये तो उन्होंने अपने पिता को उस चमत्कारी मरहम की बात बतायी, जिसने गोचू की ज़िन्दगी बचा दी थी, उसमें पड़ने वाली चीज़ों के नाम और बनाने की विधि भी बतायी। दोनों मित्र इस बात पर आश्चर्य प्रकट करते रहे कि कैसी अचूक औषधियाँ शहरों और देहातों में आम लोगों के पास हैं, जो जानने वालों के साथ ही विस्मृति के गर्त में चली जाती हैं। यह दवा यदि किसी अंग्रेज़ के पास होती तो वह इसे पेटेण्ट करा के बढ़िया डिब्बियों में बन्द करके बेचता अथवा किसी कम्पनी को बेच देता और वह मरहम बनाती, लाखों कमाती और लाखों लोगों को लाभ पहुँचाती।

०

इस घटना के दस-बारह साल उपरान्त जब वैद्य नारायणदास के देहावसान के बाद मोहनलाल नगरपालिका की नौकरी छोड़ कर पूरा वक्त औषधालय में बैठने लगे, उन्होंने पत्नी के ज़ेवर बेच कर कूटने-पीसने और गोलियाँ बनाने की मशीन लगा ली और फ़ार्मेसी खोल ली। तब कण्ठमाला की दवाई का नाम 'मोहन कण्ठमाला नाशक' और मरहम का नाम 'मोहन दग्धहरण मरहम' रख कर उन्होंने दोनों को रजिस्टर्ड करा लिया और धड़ल्ले से बेचने लगे। 'कण्ठमाला नाशक' तो नहीं, लेकिन 'दग्धहरण मरहम' खूब चला और उसी के बल पर उन्होंने ग्वाल-मण्डी में नया मकान बनवा लिया, एक फ़िटन रख ली और उनका नाम प्रान्त ही नहीं, देश भर में प्रसिद्ध हो गया।

लेकिन इसमें भी शक नहीं कि इसी मरहम के कारण उनके पुराने मित्र गोपालदास नाराज़ हो गये और अन्ततोगत्वा यह मरहम ही उनकी उस दुखद मृत्यु का कारण बना।

०

गोपालदास तरक्की करते-करते इस बीच अपने विभाग के सुपरिंटेण्डेण्ट हो गये थे। उनके रिटायर होने में कुछ ही वर्ष शेष थे और रिटायर होने के बाद कुछ काम करने और अपने बड़े परिवार को पालने की समस्या उनके सामने थी। इसलिए रिटायर होने से कुछ वर्ष पहले ही अपने मित्र के अनुकरण में उन्होंने भी कुछ महत्वपूर्ण औषधियाँ तैयार कीं और वैद्य कहाने लगे। उनके पिता का देहान्त कुछ वर्ष पहले हो चुका था, लेकिन अपने जीवन-काल में ही उन्होंने कृष्णा नगर की नयी आबादी में एक मकान बनवा लिया था। वहीं गोपालदास अपने दो लड़कों और चार लड़कियों के साथ रहते थे। एक लड़के और एक लड़की की शादी वे कर चुके थे और शेष की शादियाँ उन्हें करनी थीं। दो लड़कियाँ तो अभी बहुत छोटी थीं। अपने कृष्णा नगर ही के मकान की बैठक में उन्होंने 'गोपाल आयुर्वेदिक औषधालय' का बोर्ड लगा दिया और सुबह-शाम बैठने लगे।

कुछ वर्षों से उन्होंने आयुर्वेद की ओर उतना ध्यान नहीं दिया था, पर रिटायरमेण्ट सामने दिखायी देते ही उन्होंने आयुर्वेद की पुरानी किताबें निकालीं, जो उन्होंने कभी मोहनलाल की संगति के कारण खरीदी थीं। उनकी धूल-गर्द झाड़ी, उनका अध्ययन शुरू किया और कुछ ऐसी शक्तिवर्धक दवाइयाँ तैयार कीं, जिनकी ज़रूरत जवान और बुड्ढों को बराबर रहती है—रस सिन्दूर, सिद्ध मकरध्वज, मूसली पाक, बादाम पाक, छुहारा पाक आदि। साथ ही लवण भास्कर, हिंग्वाष्टक आदि चूर्ण और वटियाँ बना लीं। इसके अलावा एक दवा उन्होंने काली खाँसी की तैयार की और एक सोखे की और धीरे-धीरे कृष्णा नगर और उसके इर्द-गिर्द की बस्तियों और गाँवों के लोग उनका नाम पूछते हुए उनके यहाँ आने लगे।

तभी उनके एक रोगी की लड़की बुरी तरह जल गयी। गोपालदास ने आयुर्वेद में पढ़े के अनुसार कुमारी (घीकँवार) का गूदा निकाल कर

उसका लेप कियां, पर वह कुछ इतना जल गयी थी कि उससे ज़्यादा लाभ न हुआ। तब उन्हें अपने पुराने मित्र मोहनलाल की याद आयी। वे सूत्रमण्डी पहुँचे। इधर अर्से से दोनों मित्रों में भेंट न हुई थी। गोपालदास ने कहा, 'मेरे एक रोगी की लड़की जल गयी है, तुम ज़रा मुझे मरहम का वो नुस्खा बता दो, मैं मरहम बना कर उसका इलाज कर दूँ।'

मोहनलाल भूल गये कि बारह-पन्द्रह वर्ष पहले उन्होंने गोचू के बुरी तरह जल जाने और उस मरहम से उसके ठीक होने की बात स्वयं उन्हें बतायी थी और यह भी बताया था कि किस प्रकार गाँव के हलवाई ने वह नुस्खा उनकी चाची को दिया और कैसे उन मामूली चार चीज़ों से उस बच्चे की जान बच गयी। वे भूल गये कि उन्होंने नुस्खा तक गोपाल-दास को बताया था। अब नुस्खा बताने के बदले उन्होंने अपने पुराने मित्र को वही गढ़ी-गढ़ाई कहानी सुना दी, जो वे आम मरीज़ों को बरसों से सुनाते आ रहे थे कि उस वक्त, जब उनके चचाज़ाद भाई की जान खतरे में थी, उत्तर काशी से चाचा के यहाँ आये हुए एक संन्यासी ने १७ जड़ी-बूटियों से मरहम तैयार कर दिया, विशेष पूजा और मन्त्रों से उसे परिशोधित किया, जिससे बच्चे की जान बच गयी और परम आस्तिक जान कर वह नुस्खा वे उनको दे गये। 'तुम नास्तिक आदमी ठहरे,' उन्होंने गोपालदास से कहा, 'इसे बना पाना तुम्हारे बस की बात नहीं। तुम चार-पाँच डिबिया मरहम की ले जाओ!'

गोपालदास को अपने पुराने मित्र के इस झूठ पर बड़ा क्रोध आया, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। अपने मित्र को याद नहीं दिलाया कि उसने स्वयं उन्हें हलवाई द्वारा मरहम दिये जाने की बात बतायी थी। उन्होंने चुपचाप डिबिया ले ली और एक रुपया दे दिया।

वैद्य मोहनलाल ने रुपया वापस कर दिया कि यार क्यों शर्मिन्दा करते हो, लेकिन गोपालदास ने उसे वापस नहीं लिया और बोले कि भाई तुम्हारा तो व्यवसाय है, अपने पिता की तरह तो तुम वैद्यक करते

नहीं। यदि हलवाई अपने मित्रों को ही मिठाई बाँटने लगेगा तो कमायेगा क्या और खायेगा क्या!. . .

मोहनलाल ने जैसे विवश हो, रुपया रख लिया। गोपालदास को उनकी कृतघ्नता पर बड़ा क्रोध आया और जब उन्हें याद आया कि अपने इस मित्र को नगरपालिका की नौकरी दिलाने में उन्होंने अपने पिता पर कितना ज़ोर दिया था तो मोहनलाल के इस झूठ पर उनके मुँह का ज़ायका कड़वा गया। घर आ कर उन्होंने सभी पुराने काग़ज़ छाने, लेकिन उन्हें वह नुस्खा नहीं मिला। वच्छोवाली से कृष्णा नगर घर बदलने में शायद वह काग़ज़ कहीं गुम हो गया था। लेकिन उन्हें चारों चीज़ों के नाम याद थे। उनका अनुपात याद नहीं था। तब उन्होंने विभिन्न अनुपातों में थोड़ा-थोड़ा मरहम तैयार किया। वे एक डिबिया मोहन मरहम लगाते और एक डिबिया अपने बनाये हुए एक अनुपात वाली। फिर कुछ ठीक होने पर दूसरे अनुपात वाली। इस तरह उन्होंने ठीक मरहम तैयार कर लिया—ऐन-मैन उसी रंग का और उन्हीं गुणों वाला। यही नहीं, जब उन्होंने कई रोगियों पर आज़मा कर देख लिया और उन्हें विश्वास हो गया कि उनका तैयार किया मरहम उतना ही अचूक है, जितना वैद्य मोहनलाल वाला तो उन्होंने 'गोपाल संजीवनी मरहम' के नाम से उसे रजिस्टर्ड करा लिया। और 'गोपाल संजीवनी' के नाम से धीरे-धीरे उसकी प्रसिद्धि भी होने लगी। कुछ ही वर्षों में लाहौर के हर बाज़ार-मुहल्ले और गली में 'गोपाल संजीवनी' का बोर्ड लगा दिखायी देने लगा, जिसमें बड़े-बड़े अक्षरों में 'गोपाल संजीवनी' और छोटे अक्षरों में 'मरहम' लिखा रहता। इसीलिए मरहम के बदले 'गोपाल संजीवनी' घर-घर प्रसिद्ध हो गयी।

इधर गोपालदास नगरपालिका से रिटायर हुए, उधर संयोग से सूत्रमण्डी में ऐन मोहन फ़ार्मेसी के सामने उनके एक मित्र के मकान का एक पोर्शन खाली हो गया। उस मित्र का वे इलाज करते रहे थे और वह उनका बहुत आभारी था। गोपालदास ने तत्काल वह पोर्शन

कराये पर ले कर 'गोपाल फ़ार्मेसी' का बोर्ड लगा दिया ।

यही नहीं, अपनी आधी पेंशन कम्यूट करा के उन्होंने सभी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में पूरे-पूरे पृष्ठ का विज्ञापन दिया । वैद्य मोहनलाल के भाई के जलने का किस्सा बदल कर स्टोव जलाते हुए बुरी तरह जल जाने वाली अपनी भांजी का किस्सा गढ़ा और संन्यासी वाले लटके में यह विशेषता रखी कि संन्यासीजी ने शिवजी की पूजा करके भभूत में से एक चुटकी मरहम में डाल दी, जिससे उसकी शक्ति कई गुना अधिक बढ़ गयी । गोपालदास ने जो विज्ञापन दिया, उसने मरहम को एकदम दैवीय वरदान का पद दे दिया और भगवान शंकर की भभूत ने उसे चमत्कारक महत्व प्रदान कर दिया ।

वैद्य मोहनलाल के सामने चूँकि प्रतिद्वन्द्विता नहीं थी, उनका नाम भी पहले काफ़ी प्रसिद्ध हो गया था, इसलिए उन्हें इतने लम्बे विज्ञापन देने की आवश्यकता न पड़ी थी । राख की चुटकी ने धर्म-भीरु, अन्ध-विश्वासी निम्नमध्यवर्गीयों तथा अपढ़ देहातियों पर विशेष प्रभाव डाला और प्रायः कहा जाने लगा कि 'मोहन दग्धहरण' से 'गोपाल संजीवनी' बेहतर है ।

जिस दिन गोपाल फ़ार्मेसी का बोर्ड मोहन फ़ार्मेसी के ऐन सामने बाज़ार की दूसरी तरफ़ लगा, दोनों मित्रों में 'नमस्कार' का आदान-प्रदान भी खत्म हो गया । गोपालदास ने तो प्रयास किया, लेकिन मोहनलाल ने सनद नहीं दी । जैसे-जैसे गोपाल फ़ार्मेसी की ख्याति फैलने लगी, मोहनलाल की छाती पर मूँग दले जाने लगे । तभी उनके हित-चिन्तकों ने बताया कि गोपालदास ने कुछ एजेण्ट ऐसे भी रखे हैं, जो बाज़ार के दोनों सिरों पर खड़े रहते हैं और मोहन फ़ार्मेसी में आने वाले लोगों को बहकाते हैं । मोहनलाल आग-बबूला हो गये और अपने इस पुराने मित्र से हिसाब साफ़ करने का अवसर ढूंढ़ने लगे ।

अभी एक वर्ष पहले गोपालदास को न जाने क्या सूझी । उन्होंने अपनी फ़ार्मेसी की एक नयी दवा का बोर्ड बाज़ार के बीचोंबीच टाँगना

चाहा। बोर्ड पर दृष्टि पड़ते ही मोहनलाल को ज़बरदस्त धक्का लगा। यह बोर्ड गोपाल फ़ार्मेसी की नयी औषधि 'कण्ठमाला विनाशक' का था। प्रकट ही गोपालदास ने शम्भुनाथ से नुस्खा ले लिया था। विशेषता यह कि उन्होंने चारों बूटियों के अर्क निकलवा लिये थे और औषधि बोतलों में बेचते थे। बोर्ड पर दायीं ओर 'कण्ठमाला विनाशक' की बोतल भी बनी थी। गोपालदास ने मोहनलाल के मकान-मालिक से इजाज़त ले ली थी और उसे एक रुपया महीना बोर्ड टाँगने के खाते देना स्वीकार कर लिया था।

मोहनलाल के क्रोध का वार-पार न रहा। उन्होंने बोर्ड की तार को कटवा दिया। और अपनी बालकनी में जा कर उनको गालियाँ देने लगे।

गोपालदास के मन में भी न जाने कब से ज़हर इकट्ठा हो रहा था। वे भी अपनी बालकनी में मुकाबले पर आ डटे और दोनों ओर से भीषण 'मधुर वचनों' की वर्षा होने लगी। उस वक्त, जब दोनों पुराने मित्र एक दूसरे को मल्लाहियाँ सुना रहे थे और जैसा कि अंग्रेज़ी में कहते हैं—एक दूसरे की अलमारियों से निकाल-निकाल कर कंकाल बाहर फेंक रहे थे, मोहनलाल के सीने में बायीं ओर ज़ोर का दर्द उठा, जो उनके बायें कन्धे के नीचे बाँह तक सरकता चला गया। उन्हें अपना दम घुटता मालूम हुआ। वे एक बार खाँसे और दूसरे क्षण औंधे मुँह जँगले पर गिर पड़े। क्षणांश के लिए वहीं आधे अन्दर, आधे बाहर लटके रहे। फिर सहसा उनके पाँव ऊपर उठ गये और दूसरे क्षण वे निचली दुकान के बोर्ड पर से कलाबाज़ी खाते हुए अपने भारी-भरकम शरीर के साथ नीचे बाज़ार में चित जा पड़े।

इससे पहले कि कोई उन्हें उठाता, वे इस मित्रघाती संसार को छोड़ कर परलोक सिधार गये थे।

बा
ई
स

चेतन ने जा कर दरवाज़ा खटखटाया तो सादी शलवार-कमीज़ पहने एक गोरी-गोरी गम्भीर और संकोची लड़की ने किवाड़ खोले।

'तूं की जमना ऐं ?'[1] सहसा चेतन की माँ ने पूछा।

उत्तर में लड़की ने स्वीकार में ज़रा-सा सिर हिलाया पर इतने ही से वह लाल हो आयी।

'जा के अपनी मासी नूं आक्ख, जालन्धरों लाजवती आयीऐ।'[2] चेतन की माँ ने कहा।

'आओ आओ मौसीजी, अन्दर आ जाओ!' और जमुना आगे-आगे, वैठक पार कर, सामने के दरवाज़े से आँगन में निकल गयी। चेतन ने आँगन से उसकी आवाज़ सुनी, 'मौसी, जालन्धर से लाजवती मौसी आयी हैं।'

क्षण भर के लिए चेतन अपनी माँ के पीछे बैठक में रुका रहा। तभी उसकी दृष्टि सामने की दीवार में अँगीठी पर लगे वैद्य मोहनलाल के तैल-चित्र पर चली गयी। चित्र के नीचे यद्यपि उनका नाम नहीं लिखा था, पर उसने वैद्य त्रिलोकचन्द अग्रवाल से उनके बारे में

---

१. क्या तू जमुना है ? २. जा कर अपनी मौसी से कह कि जालन्धर से लाजवती आयी है।

इतना कुछ सुन रखा था—विशेषकर अपने प्रतिद्वन्द्वी से झगड़ते हुए उनकी मृत्यु हो जाने के बारे में—कि निगाह पड़ते ही वह उन्हें पहचान गया था—दोहरा शरीर, चौड़ा माथा, तीखी रोमन नाक, नुकीली ठोड़ी भरे-भरे कल्ले, बन्द गले का कोट और घुटी हुई महाशयी पगड़ी। चित्र ही से वे किसी कॉलेज के प्रिंसिपल, कोई प्रसिद्ध वैद्य अथवा आर्य समाज या सनातन धर्म सभा के नेता लगते थे। रंग उनका गोरा था या काला, यह चित्र को देख कर जान पाना कठिन था।

चेतन वैद्यजी का चित्र अच्छी तरह देख न पाया था कि माँ आँगन के दरवाज़े तक बढ़ गयी और दूसरे क्षण एक दोहरे बदन की मोटी-लम्बी औरत ने आँगन से आ कर दरवाज़े ही में चेतन की माँ को बाँहों में भर लिया।

उस मोटी स्त्री की बाँहों में माँ को भिंचे देख कर पहली बार अपनी माँ के अत्यधिक पतले-दुबले शरीर का एहसास चेतन को हुआ। उसके पिता की मद्यपता, विलासिता, उद्दण्डता और घर की बेगिनती चिन्ताओं ने उसकी माँ को सुखा कर कैसा तिनका-सा बना दिया था!

जब दोनों सहेलियाँ गले मिल चुकीं तो रामरक्खी (कि वह मोटी स्त्री स्व॰ वैद्य मोहनलाल की विधवा पत्नी के सिवा कोई और न थी) उन दोनों को अन्दर आँगन में ले गयी।

शाम का वक्त था और यद्यपि उमस काफ़ी थी, पर पक्का आँगन पानी से खूब धुला होने के कारण ठण्डा था। बैठक से आँगन में प्रवेश करते ही बायीं ओर स्नानागार और शौचालय था, दायीं ओर बरामदा था, जिसमें खाने की मेज़ लगी थी। बरामदे में दायीं ओर रसोई-घर था। सामने दरवाज़ा था, जो अन्दर कमरों को जाता था।

बरामदे की तरफ़ को आँगन में चार आराम कुर्सियाँ और उसके बीच एक गोल मेज़ सजी थी और ज़रा परे एक तिपाई पर टेबल-फ़ैन रखा था। मौसी रामरक्खी ने उन दोनों को कुर्सियों पर बैठाया और स्वयं भी चेतन की माँ के साथ वाली कुर्सी पर प्रतिष्ठित हो गयीं।

कुर्सी पर बैठते ही मौसी ने जमुना से पंखे का स्विच ऑन करने के लिए कहा और दूसरे क्षण पंखा इतने ज़ोर से घरघरा उठा कि तिपाई ज़ोर-ज़ोर से हिलने लगी। जमुना ने उसकी गति किंचित मन्द की। तब मौसी ने उसे आदेश दिया कि अपनी 'मासी' लाजवन्ती तथा अपने भाई के लिए ताज़ा शिकंज्वी[1] बनाये।

चेतन की माँ ने धीमे स्वर में, लेकिन किंचित दृढ़ता से इनकार किया और कहा कि वे घर से लस्सी पी कर चले हैं। लेकिन उसकी सहेली ने जैसे यह बात नहीं सुनी और जमुना से, जो वहीं ठिठकी खड़ी थी, कद्रे तुर्शी से कहा कि खड़ी क्या देखती है, जा कर मनोहर को बाज़ार से बर्फ़ लाने के लिए भेज !

जमुना अन्दर चली गयी। चेतन ने लक्ष्य किया कि उसके संकोच में थोड़े भय और सहम का समावेश है और यद्यपि चेतन को उसका कारण मालूम नहीं था, उसके मन में जमुना के लिए कुछ अजीब-सी सहानुभूति उमग आयी।

चेतन की दृष्टि जमुना का अनुसरण करती हुई बरामदे के पार अन्दर कमरे की चौखट तक हो आयी। तभी अनायास उसे उमस का एहसास हुआ। यूँ कहा जाय कि जमुना की उपस्थिति में उमस की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया था। यद्यपि माँ-बेटा कृष्णा गली ही से आये थे, पर उमस के कारण उनके कपड़े पसीने से तर थे। चेतन ने कालर का बटन खोल दिया। पंखे की हवा के साथ ठण्डी सरसराहट उसके शरीर में दौड़ गयी।

तभी एक पतला-छरहरा युवक कमीज़ और पायजामा पहने अन्दर से निकला और चेतन और उसकी माँ को 'नमस्कार' करता हुआ सिर को ज़रा बायीं ओर झुकाये बग़ल काट कर तेज़-तेज़ बाहर निकल गया।

पहली नज़र में चेतन को लगा कि वह जमुना का भाई है और

---

१. ताज़े नींबू का शर्बत।

उसका अनुमान ग़लत नहीं था, क्योंकि जब उसने उधर से ध्यान हटा कर अपनी माँ और उसकी सहेली को देखा तो दोनों अपनी साड़ियों के आँचल से आँखें पोंछ रही थीं। चेतन की माँ अपनी सहेली की तारीफ़ कर रही थी, जिसने अपनी विधवा बहन के मरने पर उसके अनाथ लड़के-लड़की को अपने यहाँ आश्रय दिया और पढ़ाया-लिखाया। रामरक्खी अपनी बहन निक्की[1] की प्रशंसा कर रही थी कि वह कितनी नेक थी, अपने बहन-भाइयों से कितना प्यार करती थी और अपने पति के मरने पर उसने कितने दुख पाये। 'निक्की' की बातें करती हुई दोनों सहेलियाँ इस परिणाम पर पहुँचीं कि भगवान सदा भले लोगों की परीक्षा लेता है और उन्हें दुख देता है।. . .तब रामरक्खी ने बताया कि किस प्रकार जब निक्की का काल आ गया तो वह उसके पास ही थी और कैसे उसने अपने दोनों बच्चों का हाथ उसके हाथ में दे कर उससे कहा कि अब से तू ही इनकी माता है और तू ही पिता है। इन अनाथों का अब तेरे सिवा कोई नहीं है।. . .और यह कहते-कहते उसका कण्ठ भर आया और वही नहीं, चेतन की माँ भी रोने लगी और दोनों बारी-बारी जा कर नाली पर नाक साफ़ कर आयीं।

उन दोनों की बातें सुनते हुए चेतन का अपना मन उदास हो आया, क्योंकि उनकी बातों से चेतन को जमुना के उस सहम-भरे संकोच के कारण का पता चल गया था। अपनी मरणासन्न माँ की चारपाई से लगी उस लड़की के दुख की उसने कल्पना की और यह भी सोचा कि अपनी उस दबंग मौसी के यहाँ उसे कितना दबना और सहना पड़ता होगा—चेतन ने देखा था कि जमुना के गोरे चेहरे पर किसी तरह के पाउडर और क्रीम का निशान न था और उसके होंट सूखे थे और उन पर सुर्ख़ी तो दूर, दन्दासे का रंग तक नहीं था। दातौन भी वह बबूल अथवा पलाश ही की करती होगी। दन्दासा नहीं मलती होगी। यद्यपि

---

१. निक्की = छोटी, नन्हीं।

उसकी चोटी लम्बी थी, पर उसके केश रूखे-सूखे और उदास थे।

हलका-सा ठहराव, संकोच और गाम्भीर्य चेतन को मनोहर के यहाँ भी दिखायी दिया था। लेकिन मनोहर लड़का था और पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति. . .लेकिन जमुना तो लड़की थी—उसका भाग्य अपनी मौसी की प्रसन्नता के साथ जुड़ा था। तभी वह सहानुभूति, जो उस मातृ-पितृ-विहीन लड़की के लिए उसके दिल में पैदा हुई थी, और भी गहरे उतर गयी।

जमुना की मौसी और चेतन की माँ फिर कुर्सियों पर जा बैठीं और बात स्वर्गीय वैद्यजी और उनकी उदारता तथा सहृदयता को ले कर होने लगी। आँखों को फिर-फिर भर लाते हुए मौसी रामरक्खी बताने लगीं कि किस प्रकार बिना उनसे पूछे, बिना उनकी आज्ञा लिये वे अपने अनाथ भांजे और भांजी को घर ले आयीं तो वैद्यजी ने एक बार भी नहीं टोका। अपनी बच्ची की तरह उन दोनों को गले लगा लिया। मनोहर को तो वे अपने लड़के ही की तरह मानते थे, अपने साथ औषधालय में भी बैठाते थे। 'अब यही फ़ार्मेसी का काम देखता है,' मौसी कह रही थीं, 'जमुना 'रत्न' और 'भूषण' करके केवल अंग्रेज़ी में एफ़० ए० कर चुकी है। अब चाहती हूँ कि किसी तरह इसके हाथ पीले कर दूँ। वे रहते तो दोनों को पढ़ाते-लिखाते, लेकिन अब. . .'

और मौसी रामरक्खी ने आँचल का कोना आँखों को लगा लिया। उनकी आँखों में तो पानी नहीं था, पर चेतन की माँ की आँखें भर आयीं।

'अभी उनकी कोई जाने की उम्र थी?' चेतन की माँ ने कहा, 'पूरनदेई ने बताया था कि किसी शत्रु ने मूठ चला दी और वे एक दिन खड़े-खड़े गिर गये और फिर नहीं उठे।'

तब बराबर आँखें पोंछते, सिसकते और एक बार फिर उठ कर नाली पर नाक साफ़ करते हुए रामरक्खी ने बताया कि डॉक्टरों ने तो कहा था कि उन्हें दिल का दौरा पड़ा है, पर वे एकदम हृष्ट-पुष्ट थे,

कभी उन्हें दिल-विल की कोई तकलीफ़ नहीं हुई थी। गोपाल वैद्य से पुरानी दुश्मनी थी, उसी ने कुछ कर दिया।. . .

०

मौसी रामरक्खी गोपाल वैद्य और उनके पुरखों को भयंकर बददुआएँ दे रही थीं, जब मनोहर बाज़ार से लौट आया। उनके पास से गुज़र कर बरामदे में गया। उसने बर्फ़ अपनी बहन को दी और दूसरे क्षण जमुना ट्रे में शिकंज्वी के गिलास रखे आ गयी और पूर्ववत फ़र्श पर निगाहें गाड़े, ट्रे उसने चेतन के आगे रख दी।—गिलास उठाते समय क्षणांश को उसने ज़रा-सी आँखें उठायीं और वह निगाह, जिसे ग़ालिब ने निगाह से कम कहा है, चेतन की आँखों से मिली और उसके अन्तर में जा कर गड़ गयी। जमुना ने निगाह झुका ली और चेतन ने जब गिलास उठा लिया तो वह उसकी माँ की ओर मुड़ गयी—वह सीधा-सादा, पाउडर-सुर्ख़ी-क्रीम-विहीन, रूखा-सूखा, गोरा, संकोच-भरा चेहरा चेतन की आँखों में हमेशा के लिए खुब गया। उस मातृ-पितृ-विहीन चेहरे के लिए चेतन के हृदय में अपार ममता उमड़ आयी। ममता और चुभन. . .तेरे तीरे-नीम-कश को कोई मेरे दिल से पूछे[1]. . .चेतन के मन में ग़ालिब का शेर कौंध गया। 'किसी ऐसी ही संकोच-भरी निगाह को देख कर ग़ालिब ने यह शेर लिखा होगा,' उसने सोचा।

तभी बाहर दस्तक हुई। मनोहर ने जो बरामदे के स्तम्भ से लगा खड़ा था, बैठक की ओर को बढ़ते हुए कहा, 'कमला है।'. . .और उसने जा कर दरवाज़ा खोल दिया।

दूसरे क्षण एक लम्बी, साँवली, स्वस्थ लड़की दायीं बाँह के नीचे लाल-नीले ग़िलाफ़ में बन्द सितार दबाये खट-खट करती आयी।

'कमला, देखो तुम्हारी मौसी लाजवती आयी है!' आँगन में उसके

---

१. कोई मेरे दिल से पूछे तेरे तीरे-नीम कश को।
यह ख़लिश कहाँ से होती, जो जिगर के पार होता।

कदम रखते ही मौसी रामरक्खी ने कहा।

और सितार वाला हाथ ज़रा-सा उठा, उसे दूसरे हाथ से मिला कर लड़की ने नमस्ते की। फिर वह सितार अन्दर रख कर आयी और चेतन के साथ वाली ख़ाली कुर्सी पर निःसंकोच बैठ गयी।

चेतन ने उसे निगाह भर कर देखा! कमला सुन्दर नहीं थी, पर साँवले रंग के बावजूद उसके चेहरे पर दर्प-भरी चमक और ठस्सा था। उसकी चाल-ढाल में कुछ ऐसी चीज़ थी, यद्यपि चेतन उस पर उँगली नहीं रख पाया, जो पुरुषोचित थी।

'किस क्लास में पढ़ती है ?' सहसा चेतन की माँ ने पूछा।

'प्रभाकर में !' मौसी रामरक्खी ने कहा, 'साथ-साथ ग्वालमण्डी के एक विद्यालय में संगीत भी सीखती है।'

'यहाँ कोई संगीत-विद्यालय भी है ?' सहसा चेतन ने प्रश्न किया।

'हाँ बराबर ही की गली में।' उत्तर कमला ने दिया, 'एक दक्षिणी गायक चलाते हैं। बहुत अच्छा सिखाते हैं।'

चेतन को उसके स्वर में आत्म-विश्वास और व्यवहार में निःसंकोचता लगी।

'फ़ीस कितनी है ?' उसने पूछा।

'पाँच रुपये।. . .क्यों किसी को दाखिल कराना है ?'

'मेरी पत्नी का स्वर अच्छा है, उसे गाने का भी शौक है। सोचता हूँ, दाखिल करा दूँ।

'ज़रूर कराइए। शास्त्रीय संगीत सिखाते हैं। बहुत अच्छे गुरु हैं।'

'मैं एक दिन अपनी पत्नी को यहाँ लाऊँगा। फिर आप उसे दाखिल करा दीजिएगा।'

'हाँ-हाँ ज़रूर लाइएगा।

'उसने हिन्दी 'रत्न' भी पास कर लिया है। मैं सोचता हूँ, 'भूषण' के चक्कर में न पड़ कर उसे सीधे 'प्रभाकर' में दाखिल करा दूँ।'

'किस विद्यालय में करा रहे हैं ?'

'कृपाल देवी विद्यालय में ।'

'वहीं तो कमला पढ़ती है ।' सहसा मौसी रामरक्खी ने कहा ।

'क्या दाखिला खत्म हो चुका है ?' चेतन ने कमला से पूछा ।

'हो ही चुका है, पर लड़कियाँ तो सितम्बर तक आती रहती हैं ।'

'मैं दो-एक दिन में आऊँगा । आप लोगों का साथ हो जायगा तो उसका भी मन लगा रहेगा ।'

'ज़रूर, ज़रूर ! आप जिस दिन भाभी को लाइएगा, उसी दिन साथ जा कर मैं दाखिल करा दूँगी ।

'बहुत-बहुत धन्यवाद ।' चेतन ने कहा और उठने की कोशिश की, लेकिन उसकी माँ मासी पूरनदेई का सन्देश दे रही थी कि बच्चे की बीमारी के कारण वह घी तैयार नहीं कर सकी । आती सर्दियों में वह घी तैयार करेगी और कनस्तर भर घी उन्हें भेजेगी ।. . .और दोनों सरगोशियों में मासी पूरनदेई की बातें करने लगी थीं ।. . .विवश हो कर चेतन फिर कुर्सी से चिपक गया ।

कमला बड़े ठस्से से बैठी रही । बाहर से आयी थी, इसलिए जमुना ने उसके लिए भी शर्बत बनाया । उसने एक छोड़ दो गिलास शिकंज्वी के पिये । चेतन जब तक बैठा रहा, वह कमला से उसकी तुलना करता रहा । वे इतनी देर से बैठे थे, जमुना एक बार भी वहाँ आ कर नहीं बैठी । न उसने कोई बात ही की । जब वे लोग नींबू का शर्बत पी चुके तो वह परे बरामदे में चली गयी । उसने अपने भाई को शर्बत का एक गिलास दिया, पर स्वयं उसने पिया हो तो चेतन ने नहीं देखा । कमला आयी तो उसने उसे शर्बत पिलाया । स्वयं फिर भी नहीं पिया । न मौसी ने उसे पीने के लिए ही कहा ।

जब काफ़ी देर बाद चेतन की माँ उठी और वह भी चलने को उद्यत हुआ और उसने हाथ जोड़ कर 'नमस्ते मौसी जी,' 'नमस्ते कमला' कहा, तब वह 'नमस्ते जमुना' भी कहना चाहता था । उसने बरामदे की ओर देखा । इससे पहले कि वह कुछ कहता, जमुना ने नीचे सिर झुकाये-

झुकाये उसकी ओर देखा और दोनों हाथ जोड़ दिये। 'नमस्ते' यदि उसने कहा तो चेतन ने सुना नहीं। हाँ, उसके होंट जरूर हिले और उसकी आँखों में चेतन को मुस्कान की एक अत्यन्त क्षीण रेखा का आभास मिला, जो क्षणांश के लिए उसके होंटों पर भी उतर आयी।

लेकिन चेतन को वह अपना भ्रम ही लगा। हाँ, जब वह वैद्य मोहन लाल के घर से चला तो वह संकोच-भरा सहमा-सहमा चेहरा उसके साथ-साथ आया—और वह निगाह भी, जो निगाह से कम थी और वह तीर, जो नीम-कश था और जिगर में गड़ गया था और वह मन-ही-मन गुनगुना उठा :

'तेरे तीरे-नीम कश को कोई मेरे दिल से पूछे।'

ते
इ
स

'कल शाम भाभी चली गयी—अपने मेल ट्रेन ड्राइवर भाई के साथ और आज पूरे दो हफ़्ते बाद मैं नोट-बुक को हाथ लगा रहा हूँ।

'भाभी चली गयी, लेकिन इन पन्द्रह-बीस दिन के कयाम[1] ही में अपनी बदगुमानी, हसद,[2] डाह, हिमाकत, ज़िद और बीमारी की निहायत तल्ख़ याद हमेशा के लिए मन पर छोड़ गयी।

'मैं चन्दा की बात नहीं जानता। वह भोली-भाली, हँसमुख औरत है और किसी के लिए मन में हसद पालना उसके बस में नहीं। मैं भाई साहब के मन की बात भी नहीं जानता। हालाँकि जब मैं भाभी को स्टेशन पर छोड़ कर आया तो उन्होंने बड़ी तल्ख़ी से कहा था, 'मैं अब कभी इस गधी का मुँह नहीं देखूँगा!' उनमें कुछ अजीब-सी बेनियाज़ी[3] है। बेनियाज़ी लफ़्ज़ शायद उनके सिलसिले में मौज़ूँ[4] नहीं, अंग्रेज़ी शब्द कैलसनेस (callousness) उनकी इस बेहिसी और बेरहमी को ठीक-ठीक बयान करता है, जो दूसरों के लिए उनके यहाँ दिखायी देती है।

---

१. प्रवास। २. ईर्ष्या। ३. निरपेक्षता। ४. उपयुक्त।

अपनी फ़ौरी[1] ग़रज़ के आगे कुछ भी देखना उनके 'सुभाव' में नहीं। भाभी के लिए उनके मन में ठीक-ठीक क्या जज़्बा है, मैं नहीं जानता। . . .मैं तो अपनी बात जानता हूँ। उस तमाम भाग-दौड़ के बावजूद, जो मुझे पिछले दिनों करनी पड़ी और उस सारी ज़ेहनी और जिस्मानी तकलीफ़ के बावजूद, जो उसकी वजह से मुझे उठानी पड़ी (और शायद आगे भी उठानी पड़े, क्योंकि अगर माँ की बात ही सच निकले तो चन्दा को और मुझे भयानक नतीजे भुगतने पड़ सकते हैं।) जब मैं भाभी के बारे में सोचता हूँ तो मुझे उस पर दया आती है। क्योंकि अपनी ज़बरदस्त हिमाकत के सबब एक भयानक ग़लतफ़हमी का शिकार हो कर उसने चन्दा को अपनी बीमारी देने की ही कोशिश नहीं की, मेरा दिमाग़ी तवाज़ुन[2] ही नहीं बिगाड़ दिया, ख़ुद भी अपने साथ कम ज़ुल्म नहीं किया।—अपना कुन्दन-सा जिस्म उसने ख़ाक कर लिया है और दिक जैसे मोहलक[3] मर्ज़ को गले लगा लिया है। . . .'

क्षण भर के लिए नोट-बुक को घुटनों पर खुला छोड़ कर चेतन ईज़ी चेयर पर पीछे को लेट गया और पाँव उसने चारपाई पर टिका लिये। धीरे-धीरे गत पखवाड़े की घटनाएँ एक के बाद एक उसके सामने आने लगीं।

०

वह माँ के साथ पण्डित मोहनलाल वैद्य के घर से आया था तो उन्होंने देखा था कि भाभी किचन के आगे आँगन में चारपाई पर लेटी है और चन्दा उसके कन्धे और पीठ दबा रही है।

चेतन को लगा कि डेवढ़ी में दाखिल होते ही यह देख कर माँ की भृकुटि तन गयी है। वह अपने कमरे को मुड़ा तो माँ भी उसके पीछे-

---

१. तात्कालिक। २. मानसिक सन्तुलन। ३. घातक।

पीछे उसके कमरे में चली गयी और उसने धीरे से अपनी उसी अनगढ़ पंजाबी में कहा था, 'तुम बहू को समझा दो। वह उसके इतना निकट न बैठा करे। यह रोग तो उड़ कर लगता है।'

चेतन को अपनी पत्नी का यूँ अपनी जेठानी की सेवा करना अच्छा लगा था। वह झल्ला गया, 'तो क्या उसे चुपचाप मरने के लिए छोड़ दें। तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि तुम्हारी छोटी बहू बड़ी की इतनी सेवा कर रही है।'

'लेकिन तुम तो जानते हो उसे कैसी बीमारी है।'

चेतन और भी झल्ला गया :

'कल अगर यही रोग मुझे हो जाय तो क्या मेरे निकट कोई नहीं आयेगा ?'

चेतन का खयाल था कि उसने माँ को निरुत्तर कर दिया है। लेकिन माँ हतप्रभ नहीं हुई। बोली, 'मैंने तुमसे पहले नहीं कहा, पर मुझे लगता है कि तुम्हारी पत्नी बच्चे से है और ऐसी हालत में इन बातों का और भी खयाल रखना चाहिए। स्त्री का शरीर इन दिनों बहुत कमज़ोर हो जाता है।'. . .

चेतन कुछ नहीं बोला। दीवार से लगी खड़ी बन्द ईज़ी चेयर खींच कर उसने खोली और उसमें धँस गया।

माँ गयी नहीं। उसके निकट ही चारपाई पर बैठ गयी और वहीं बैठे-बैठे वह अपने पहले लड़के के जन्म का दुखद प्रसंग ले बैठी, जो शैशव में ही चल बसा था।

'मैं जिन दिनों बच्चे से थी,' माँ ने उसी धीमे स्वर में कहना शुरू किया, 'अनन्त की बड़ी बहन तोषो के बच्चा हुआ था। उसका सिर जन्म ही से फोड़ों और छालों से गला हुआ था। वह उसे ले कर मेरे यहाँ आ जाती थी। पड़दादी की आँखें तब उतनी खराब न हुई थीं। जब वह दो-तीन बार आयी तो पड़दादी ने चेताया कि मैं उसके पास न बैठूँ। पर मैं जहाँ भी होती, वह वहीं चली आती और मेरे साथ बैठ

कर बतियाने लगती। मैं नयी-नयी ब्याही आयी थी, कैसे उसे टोकती? आखिर एक दिन पड़दादी खूब बोली-बकी। तब उसने आना छोड़ा। लेकिन टोना तो वह उतने ही से कर गयी थी। जब मेरे बच्चा हुआ तो उसके सिर पर ऐन-मैन वैसे ही फोड़े थे। तोषो का लड़का तो बच गया, लेकिन मेरा जाता रहा।'

और अपने उस मृत ज्येष्ठ शिशु की दुखद याद में माँ की आँखें भर आयीं।

चेतन क्षण भर तक कुछ न कह सका। जादू-टोने में उसका ज़रा भी विश्वास न था। माँ को भ्रम हुआ है अथवा उसने चन्दा को भाभी के पास बैठने से बरजने के लिए झूठी बात गढ़ी है, यह भी चेतन को नहीं लगा, क्योंकि अपने उस मृत ज्येष्ठ भाई के शैशव में ही जन्म जात रोग से ग्रसित होने की बात वह पहले भी सुन चुका था। कैसे उस शिशु का सिर जन्म ही से उसी तरह गला हुआ निकला, जैसे अनन्त के भांजे का, यह बता पाना चेतन के लिए कठिन था। हो सकता है अनन्त के बड़े जीजा और चेतन के पिता को कोई एक-सी बीमारी हो, जिसका असर नवजात शिशुओं पर पड़ा हो। उनमें न सही, पुरखों में से किसी में वैसा रोग हो। चेतन ने कविराज रामदास के लिए शिशुओं के लालन-पालन पर पुस्तक लिखते हुए कहीं पढ़ा था कि ऐसी बीमारियाँ हैं, जो सात पीढ़ियों तक मार करती हैं—सूज़ाक, उपदंश आदि. . .हो सकता है वैसी ही किसी बीमारी का प्रताप हो।. . .लेकिन उसके बाद चेतन की माँ के छै बेटे हुए, किसी को फिर वैसी बीमारी क्यों नहीं हुई? सहसा इस प्रश्न का उत्तर दे पाना उसके लिए कठिन था। उसने माँ से सिर्फ़ इतना ही कहा, 'टी० वी० के बारे में मैं कुछ ज़्यादा नहीं जानता, पर जितना कुछ मैंने सुना है, वह जन्म से नहीं लगती।'

'बेटा घर-के-घर इसने साफ़ कर दिये।' माँ बोली, 'हमारे परिवार में यह किसी को नहीं हुई, चम्पा इसे अपने साथ ले आयी है। ज़रूर

इसकी माँ को होगी। मैं तो तुम्हारे ही भले के लिए कहती हूँ, तुम्हें अपनी बीवी को समझाना चाहिए।'

चेतन को माँ से बहस करना बेकार लगा। विशेषकर उस वक्त, जब वह दूसरे ही दिन वापस जालन्धर जा रही थी। उसने सिर्फ़ इतना कहा, 'अच्छा माँ, मैं चन्दा को समझा दूँगा।'

०

माँ सन्तुष्ट हो कर रसोई में चली गयी तो चेतन के जी में आया कि वह अपनी पत्नी को बुला कर पूछे—क्या सचमुच वह बच्चे से है ?—लेकिन उसने आवाज़ नहीं दी। वह ईज़ी चेयर से उठा। कमरे में दो-एक चक्कर उसने लगाये और फिर चारपाई की पट्टी पर आ बैठा। उसके दफ़्तर जाने का समय हो रहा था, उसने वहीं से चिल्ला कर चन्दा को आदेश दिया कि वह उसके खाने का प्रबन्ध करे और वहाँ से उठ कर वह आब-नूस की उसी सेकेण्ड हैण्ड मेज़ के साथ लगी सेकेण्ड हैण्ड कुर्सी पर जा बैठा, जो चंगड़ मुहल्ले और अनारकली होती हुई वहाँ आ पहुँची थी। कोहनियाँ उसने मेज़ पर रख लीं और दोनों हाथों पर ठोड़ी टिका ली।

अजीब बात है कि पिता बनने की सम्भावना से उसके मन में ज़रा भी उल्लास नहीं जगा। इसके विपरीत उसे वहाँ खासे बोझ का आभास हुआ। चन्दा ने उसे बताया क्यों नहीं ? सहसा उसे खयाल आया—इससे पहले भी चंगड़ मुहल्ले के दिनों में, जब उसकी पत्नी 'हिन्दी रत्न' की तैयारी कर रही थी, दो बार उसके दिन ऊपर हुए थे। तब इतनी जल्दी पिता बनने की सम्भावना के विरुद्ध चेतन की इच्छा जान कर एक बार चन्दा ने मेथे उबाल कर पी लिये थे और दूसरी बार चेतन ने उसे कुनीन की कई गोलियाँ एक साथ खिला दी थीं और यद्यपि उस मुसीबत से छुटकारा मिल गया था, पर चन्दा की हालत खस्ता हो गयी थी, उसे चक्कर आने लगे थे, रक्त में लोथड़े निकले थे और वह एकदम पीली पड़ गयी थी। तब चेतन ने तय किया था कि वह अपनी पत्नी के पास नहीं जायगा। उन दिनों में तो बिल्कुल ही नहीं, जब उसके बच्चे

से हो जाने की सम्भावना हो, पर नीला के विवाह के बाद, जालन्धर में उस रात दिन भर की भटकन के बाद जब वह हारा-थका ऊपर बरसाती में अपनी पत्नी के बराबर सोया था और दिन भर की घटनाओं के बारे में सोचते हुए उसकी नींद उड़ गयी थी और लालटेन उठा कर पत्नी का चेहरा देखने के प्रयास में उसे आभास मिला था कि उसने हलका-सा शृंगार कर रखा है और जब उसका जी हुआ था कि वह उन वड़ी-वड़ी मुँदी पलकों को चूम ले तो प्रकट गहरी नींद सोयी हुई उसकी पत्नी ने आँखें खोल दी थीं और उसके सिर को वक्ष से लगा लिया था और तब उसके वक्ष से लगे-लगे चेतन अपनी सारी प्रतिज्ञाएँ भूल गया था। वे सारे भावुकता-भरे आदेश भूल गया था, जो कभी कविराज रामदास ने इस सन्दर्भ में उसे दिये थे. . .और शायद उसकी पत्नी अबके कुनीन नहीं खाना चाहती इसलिए वह अब तक चुप रही है—चेतन ने सोचा—शायद चन्दा अब माँ बनना चाहती है।

लेकिन क्या वह स्वयं भी पिता बनना चाहता है ? चेतन ने अपने मन को टटोला तो उसे वहाँ कुछ अजीब-सी निरपेक्षता महसूस हुई—यदि चन्दा चाहती है तो वह इस बार उसे टोकेगा नहीं, पर यदि उसे कोई पूछे तो वह उस वक्त तक पिता नहीं बनना चाहता, जब तक वह आर्थिक रूप से अपने होने वाले बच्चे के उचित लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के योग्य न हो। अपने बचपन, लड़कपन और जवानी की स्मृतियों ने चेतन के मन में भारी कुण्ठा भर दी थी। अपना ही नहीं, मुहल्ले के सभी बच्चों का लालन-पालन उसे मानवोचित नहीं लगता था। जैसे जंगल में पशु-शावक जन्म लेते हैं, मरते-खपते-पलते और बड़े होते हैं, वैसे मुहल्ले के बच्चे पलते और बड़े होते थे। उनके लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के पीछे कोई योजना नहीं थी। कोई ही घर ऐसा होगा, जिसमें दो-चार बच्चे जन्मते ही अथवा जन्म से कुछ महीने या वर्ष बाद मर न गये हों। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, अधिकांश दो-चार जमात पढ़ कर पैतृक काम-धन्धों में लग जाते थे। कई, उमर भर आवारा

और गुण्डे बने घूमते थे। मैट्रिक तक पहुँचने वालों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती थी और शिक्षा उन्हें वही मिलती थी, जो ज़्यादा-से-ज़्यादा क्लर्क बना सकती थी। एक अमींचन्द था, जो पी० सी० एस० बना था, पर चेतन की दृष्टि में डिप्टी क्लेक्टर एक ऊँचे दर्जे का ग़ुलाम था, जो अपने भाई-बन्धुओं को ग़ुलाम रखने में फ़िरंगी को मदद देता था और डिप्टी कलेक्टर बनते ही उसने जैसे आँखें सामने रख के चलना और मुहल्ले वालों को पहचानने से इनकार करना शुरू कर दिया था, उससे चेतन के मन में उसके प्रति तीव्र घृणा पैदा हो गयी थी।. . . चेतन चाहता था, उसके कोई बच्चा हो तो शैशव ही से उसे कोई अभाव न हो। कविराज के लिए पुस्तक लिखते समय चेतन ने पढ़ा था कि उसी वक्त से, जब बच्चा माँ की कोख में गर्भ धारण करता है, उसकी देख-रेख शुरू हो जानी चाहिए और विज्ञान ने वे साधन जुटा दिये हैं, जिनसे बच्चा न केवल स्वस्थ पैदा हो, वरन जन्मोपरान्त भी उसे किसी तरह की तकलीफ़ न हो। न उसकी आँखें आयें न पेचिश और अतिसार उसे परेशान करें; न दाँत निकालते वक्त उसे दस तरह के कष्ट हों, और न बाद ही अनजानी बीमारियाँ उसे परेशान करें। वह स्वस्थ और सुन्दर दीखे, उसे गोद में लेने को प्यार करने को जी चाहे. . .

चेतन चाहता था, उसकी आर्थिक स्थिति कम-से-कम ऐसी हो कि वह अपने बच्चे को शुरू ही से कोई तकलीफ़ न होने दे और बाद में भी उसे ऐसी शिक्षा-दीक्षा दे कि वह कोई मामूली क्लर्क अथवा शोषक होने के बदले विद्वान और स्वतंत्र विचारों का बने और बिना ग़ुलामी किये हर परिस्थिति में ज़िन्दगी से अपना दाय प्राप्त कर सके।. . .लेकिन वह केवल पार्ट टाइम नौकरी करता था और तीस रुपये मासिक पाता। तीस रुपल्ली में अपना ही पेट पालना उसके लिए मुश्किल था, बच्चे के पालन-पोषण की तो बात ही दूर रही।. . .लेकिन चन्दा चाहती है तो वह बाधा नहीं देगा।. . .

चेतन उठा और बाहर डेवढ़ी में घूमने लगा। उसने मन-ही-मन हिसाब लगाया—यदि वह चन्दा को अभी विद्यालय में दाखिल करा देगा तो आठवें महीने ही में वह 'प्रभाकर' की परीक्षा दे लेगी। एक-दो वर्ष वह जालन्धर में आराम कर लेगी और वह कोई जुगाड़ कर के एम० ए० कर लेगा। किसी कॉलेज में अध्यापक हो जायगा और तब अपने बच्चे को अपनी इच्छा के अनुसार बढ़िया शिक्षा-दीक्षा दे सकेगा।

वह डेवढ़ी में घूम रहा था, जब चन्दा ने उसे खाना खाने के लिए आवाज़ दी।

दूसरे दिन जब चेतन माँ को स्टेशन पर छोड़ कर घर आया था और उसने अपनी पत्नी को फिर अपनी जेठानी के कन्धे और कूल्हे दबाते देखा था तो उसने उसे बहाने से बुला कर माँ से जानी हुई बात का समर्थन चाहा था। चन्दा लजा गयी थी। और उसके लाल हो आये गालों और झुकी पलकों ने उसके मन का चोर बता दिया था। चेतन ने अतिरिक्त उत्साह दर्शाते हुए उसकी पीठ थपथपा दी थी और कहा था कि वह तो उर्दू ही नहीं जानती, ज्योंही कविराज रामदास की पुस्तक छपी, वह एक प्रति लायेगा और उसे पढ़ कर सुनायेगा ताकि उसे जब माँ बनना है तो उन सब बातों को वह अच्छी तरह जान ले, जो नवशिशु के सन्दर्भ में माँ के लिए जाननी ज़रूरी हैं. . .और तब उसने चन्दा को माँ की चेतावनी दी थी और कहा था कि यद्यपि उसे अपनी जेठानी की सेवा करते हुए देख कर चेतन को प्रसन्नता होती है, पर चन्दा को अपने होने वाले बच्चे का ही नहीं, अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना चाहिए और अपनी जेठानी के निकट सम्पर्क से यथा सम्भव बचना चाहिए।

चन्दा चली गयी थी तो उसने तय किया था कि वह भाई साहब पर ज़ोर देगा कि जैसे भी हो, वे जल्दी-से-जल्दी भाभी को मायके भिजवायें।

०

भाई साहब ने बिना उसके कहे एक के बाद एक तीन पत्र अपनी ससुराल लिखे थे। एक अपने ससुर को—कोयटा, एक अपने साले को—फ़ीरोज़पुर और एक चम्पा के चाचा को—आदमपुर ! चाचा को उन्होंने लिखा कि यदि पण्डित गिरधारीलाल के परिवार से कोई भी अपने घर के मकान में हो तो उन्हें सूचना दे दें कि चम्पा सख़्त बीमार है, उसे तत्काल बुला लिया जाय; कि डॉक्टरों का परामर्श है, उसे पहाड़ अथवा गाँव की खुली स्वच्छ हवा में रखा जाय। चेतन के कहने पर भाई साहब ने एक-एक और अर्जेण्ट पत्र तीनों पतों पर छोड़ दिया।

उसके बाद चेतन ने इस बात का ख़याल रखा था कि वह चन्दा को भाभी के निकट कम-से-कम जाने दे। जब भाभी उसे सिर, कन्धे या पिण्डलियाँ दबाने के लिए कहती, चेतन किसी-न-किसी बहाने उसे बुला लेता और स्वयं भाभी की सेवा करने को जा प्रस्तुत होता, लेकिन अतीव थकान के बावजूद, पैर और पिण्डलियाँ तो दूर, भाभी उससे सिर या कन्धे तक दबवाने को तैयार न होती और झख मार कर उसकी सख़्त कमज़ोरी को देखते हुए उसे चन्दा को अपनी जेठानी की सेवा-शुश्रूषा की इजाज़त देनी पड़ती। तो भी चेतन ने प्रयास किया कि ऐसे अवसर कम-से-कम आयें। दवा वह भाभी के लिए हस्पताल से स्वयं लाता था, लेकिन भाभी के कपड़े चन्दा को धोने पड़ते। वास्तव में अगस्त की भयानक गर्मी के बावजूद भाभी को ठण्डे पसीने आते थे, रात को उसके कपड़े एकदम ग़च हो जाते और दो-दो बार वह कपड़े बदलती। चूँकि धोबी को उतने कपड़े देने की सकत उनमें नहीं थी, इसलिए पहले महीने ही के वेतन के खाते पेशगी पाँच रुपये ले कर चेतन पीतल की एक बड़ी इस्त्री खरीद लाया था। चन्दा कपड़े धो देती। वह उन्हें अच्छी तरह निचोड़, बड़ी बाल्टी में भर कर ऊपर छत पर ले जाता और फटक कर उन्हें रस्सी पर डाल आता। कभी जब ऊपर रस्सी खाली न होती तो वह फिर बाल्टी नीचे ले आता और कपड़े बाहर धूप में टाल की लकड़ियों पर डाल देता, कुर्सी डेवढ़ी में खींच कर उनकी निगरानी करता, सूख

जाते तो बड़ी निष्ठा से उन्हें इस्त्री करता। लड़कपन में चेतन ने पापड़ियाँ बाज़ार के धोबी को रेशमी कपड़े इस्त्री करने से पहले अपने मुँह में पानी भर कर उसकी फ़ुहार से उन्हें गीला करते देखा था। रेशमी कपड़े हलके-से सीले हों और पूरी तरह सूखे न हों तो उन पर इस्त्री बहुत अच्छी होती है। चेतन प्रायः ऐसे कपड़ों को तभी उठा लाता, जब वे पूरी तरह सूखे न हों, पर यदि कोई ब्लाउज़ या साड़ी सूख जाती और तुड़-मुड़ जाती तो चेतन मुँह में पानी भर कर दायें हाथ की ओट कर के बढ़िया फ़ुहार से कपड़े सीले कर लेता और जब वह उन पर इस्त्री करता तो अपनी दक्षता पर वह अपनी पीठ आप ही ठोंक लेता। जब से उसकी शादी हुई थी, रेशमी कपड़ा तो दूर, वह एक मामूली धोती तक अपनी पत्नी के लिए न ला सका था; पर उसे मायके से जो रेशमी कपड़े मिले थे, वही वह पहनती थी। जहाँ तक भाभी का सम्बन्ध है, बीमारी के बावजूद भाभी रेशमी कपड़े पहन लेती थी, जो पसीने से ग़च हो जाते। चन्दा सनलाइट के चूरे से कपड़े धो देती। चेतन सूती-रेशमी—सब कपड़े बड़ी दक्षता से इस्त्री कर देता।

चन्दा को इन सब कामों में लगाने के अलावा चेतन ने यह भी कोशिश की कि वह उसके साथ खाना खा लिया करे। एक दिन उसने भाभी को सुना कर कहा कि वह पहले भाभी को खिला कर फिर उसके साथ खाना खाया करे। लेकिन भाभी ने पहले खाना खाने से इनकार कर दिया। अपनी देवरानी को उसने यह शुभ उपदेश दिया कि वह दोनों भाइयों को एक साथ खाना खिलाया करे और वे दोनों बाद में साथ-साथ खाना खाया करेंगी। हिन्दू पत्नी का यह पहला कर्त्तव्य है कि पति को खिला कर तब खाये। चेतन ने सुना तो उसे बड़ा गुस्सा आया, पर वह जानता था कि भाभी को समझा पाना भगवान के लिए भी कठिन है, इसलिए वह कोई दूसरी तरकीब सोचने लगा।

दोनों भाइयों को खाना खिला कर चन्दा चाहती थी कि वह अपनी जेठानी को कमरे ही में खाना खिला दिया करे। लेकिन भाभी गर्मी का

बहाना बना कर आँगन में आ जाती और चन्दा के साथ बैठ कर खाना खाती । एक दोपहर चेतन ने देखा कि वह जान-बूझ कर चन्दा की कटोरी में से सालन खा रही है । यद्यपि चन्दा ने उधर ध्यान नहीं दिया, पर वैसा करते हुए भाभी की आँखों में कुछ ऐसा भाव था कि चेतन का दिल दहल उठा और माँ की चेतावनी उसके कानों में गूँज गयी । उसने तय कर लिया कि चाहे उसे सख्ती ही क्यों न करनी पड़े, वह अपनी पत्नी को उसके साथ खाना नहीं खाने देगा ।

नोट-बुक घुटनों पर रखे-रखे चेतन की आँखों के सामने भाभी का सूखा-सड़ा, बड़ी-बड़ी आँखों और लम्बी-सी नाक वाला सँवलाया चेहरा और उन आँखों की वह चमक आ गयी।. . .चेतन डेवढ़ी में था और भाभी ने घूँघट उठा रखा था और उसे नहीं मालूम था कि कोई उसे देख रहा है । जब वह अपनी थाली से खाना खाते-खाते चन्दा की थाली से सालन या दाल लेने लगती तो उसकी आँखों में कुछ ऐसी चमक आ जाती, जो शरारत की द्योतक न थी । उनमें कुछ अजीब-सा उल्लास था— चेतन को उन चमकती आँखों और उस सूखे बीमार चेहरे पर प्रकट होने वाले उल्लास और सन्तोष को देख कर किसी ऐसी प्रेतात्मा का गुमान हुआ था, जो अपने शिकार का रक्त चूसने में सफल हो गयी हो ।— भाभी उसे चुड़ैल-ऐसी लगी थी, जो उसकी भोली पत्नी को ग्रस लेना चाहती थी । और उसने चन्दा को आवाज़ दी थी कि वह अपनी थाली ले कर ज़रा कमरे में आ जाय, उसे एक ज़रूरी बात करनी है । जब चन्दा आ गयी तो उसने कहा था—'वहाँ मेज़ पर बैठ कर खाना खाओ,' —और यह कह कर वह बिना कुछ कहे लगातार घूमता रहा था ।

चन्दा खाना खा चुकी तो उसने कहा—'अभी जाओ, मैं फिर बताऊँगा ।'

वह जूठे बर्तन लिये हुए हैरान वापस रसोई-घर को चली गयी थी । भाभी अपने कमरे में जा चुकी थी । वह बर्तन समेटने लगी ।

०

भाई साहब को पत्र लिखे सात दिन हो गये थे और कोई उत्तर न आया था और चेतन जानता था कि भाभी अपने हठ से बाज़ नहीं आयेगी, तब सोच-सोच कर उसने भाई साहब से कहा, 'मालूम नहीं कोई वहाँ से भाभी को लेने आता है या नहीं, मैं यदि चन्दा को इसी महीने 'प्रभाकर' में दाखिल नहीं कराता तो उसका यह साल व्यर्थ जायगा। वह सवेरे खाना पका कर चली जाया करेगी। मैं आपको और भाभी को खिला दिया करूँगा। मैं तो सारा दिन घर ही पर रहता हूँ। इसलिए भाभी को किसी तरह का कष्ट नहीं होगा।'

भाई साहब ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि परम उदारता से यह प्रस्ताव किया कि जितने दिन चम्पा लाहौर में है, वे दोपहर का खाना वहीं सिन्धी होटल अथवा पुरानी अनारकली के ढाबे में खा लिया करेंगे।. . .भाई साहब ने तो शाम का खाना भी वहीं से खा कर आने की बात कही, पर चेतन को यह स्वीकार नहीं हुआ।

दूसरे दिन चेतन अपनी पत्नी को ले जा कर 'कृपाल देवी हिन्दी विद्यालय' में दाखिल करा आया। चन्दा ने यद्यपि 'हिन्दी रत्न' की परीक्षा प्राइवेट तौर पर पढ़ाई कर के ही पास की थी, पर फ़ार्म वग़ैरा 'कृपाल देवी हिन्दी विद्यालय' की ओर ही से भरा था। पहले विद्यालय ग्वालमण्डी में कुमारी कृपाल देवी के मकान की बैठक में ही था, लेकिन अब विद्यालय में 'रत्न,' 'भूषण' और 'प्रभाकर' की क्लासों के साथ-साथ अंग्रेज़ी में मैट्रिक, एफ़० ए० और बी० ए० की पढ़ाई भी होती थी, इसलिए विद्यालय निस्वत रोड पर एक बिल्डिंग में चला आया था। चंगड़ मुहल्ले से चन्दा के लिए वहाँ पढ़ने के लिए आना कठिन था, पर अब तो विद्यालय निकट ही निस्वत रोड पर आ गया था, और चन्दा अकेली भी वहाँ आ-जा सकती थी, इसलिए चेतन बड़े उत्साह से उसे विद्यालय में दाखिल करा आया था।

चेतन तो चाहता था कि दूसरे दिन अपनी पत्नी को ग्वालमण्डी के संगीत विद्यालय में भी दाखिल करा दे, पर चन्दा ने उसे समझाया कि

एकाध महीने की बात है, उसकी जेठानी चली जायगी तो वह संगीत विद्यालय में दाखिल हो जायगी, वरना वह किसी दिन कह देगी कि मैं तो मर रही हूँ, इनको गाने-बजाने की पड़ी है।

विद्यालय से आ कर चन्दा कपड़े बदल रही थी और चेतन चारपाई पर सुस्ता रहा था, जब चन्दा ने अपनी बात कही थी। चेतन क्षण-भर को अपनी पत्नी की ओर अपलक देखता रह गया था। किसी तरह का भय अथवा संत्रास उन भोली आँखों में नहीं था। वह अपनी सास की तरह नहीं सोचती थी। माँ की चेतावनी के उत्तर में चेतन ने झल्ला कर जो कहा था, वही उसने एकान्त में पत्नी के सामने दोहरा दिया था। और अब, जब सात-दस दिन बीत जाने पर भाभी के व्यवहार से वह स्वयं घबरा उठा था और उसने चन्दा को भी थोड़ा बचने के लिए कहा था, उसकी पत्नी के व्यवहार में किसी तरह का परिवर्तन न आया था। यदि समय की कैद न होती तो वह 'प्रभाकर' में भी जेठानी के चले जाने के बाद ही प्रवेश लेती। जब चेतन ने कृपाल देवी विद्यालय में दाखिल होने का प्रस्ताव किया था तो उसकी पत्नी ने एक बार धीरे से कहा भी था : 'कुछ दिन और रुक जाते तो अच्छा था। मैं विद्यालय चली जाया करूँगी तो बहनजी अकेली रह जायेंगी और उन्हें कौन देखेगा, कौन उन्हें दवा पिलायेगा, कौन खाना खिलायेगा ?'. . .अपनी पत्नी के उस भोले निर्विकार विश्वासी चेहरे को देखते हुए चेतन के मन में आया था कि वह उसे माँ की सारी शंकाएँ बता दे। यही नहीं, भाभी के व्यवहार के प्रति उसके अपने मन में जो शंकाएँ पिछले चन्द दिनों से उठ रही थीं, वे सब उसके सामने रख दे। लेकिन सोचने पर चेतन को लगा कि उसे अपनी पत्नी का विश्वास नहीं तोड़ना चाहिए, उसके मन में विद्वेष नहीं भरना चाहिए। उसने तय किया कि वह उसे बिना बताये, ऐसा प्रबन्ध करेगा कि यदि भाभी के मन में सचमुच कुछ वैसी बुरी बात हो तो वह कुछ भी न कर पाये। उसने कहा था, 'मैं सारा दिन घर में

रहता हूँ। उसे समय से दवा भी पिलाऊँगा, उसकी देख-भाल भी करूँगा, तुम चिन्ता न करो।'

और सचमुच चन्दा के विद्यालय चले जाने के बाद चेतन ने भाभी की सारी सेवा-शुश्रूषा अपने ज़िम्मे ले ली थी। वह रात को दो बजे दफ़्तर से आता, इसलिए सुबह कुछ देर से उठता। चन्दा उससे पहले उठ कर नित्य कर्म से निबट, रात के बर्तन मलती, फिर खाना पकाती और स्वयं खा कर चेतन और भाभी के लिए सहेज कर विद्यालय चली जाती। चेतन ही भाभी को दवा पिलाता और खाना खिलाता। फिर स्वयं खा कर सारे बर्तन मलता, उन्हें टोकरे में सजा कर रसोई धोता और पिछले दिन के धोये कपड़े प्रेस करता। फिर वह सो जाता। वह तो भाभी का सिर अथवा पैर भी दबाना चाहता था, पर भाभी तो उससे घूँघट काढ़ती थी। जब चेतन ने उसके कन्धे दबाने चाहे थे तो भाभी ने उसका हाथ झटक दिया था। चेतन को बुरा लगा था, पर उसकी इस हरकत को भाभी के हठ और रोग-जनित चिड़चिड़ाहट का परिणाम समझ कर वह चुप लगा गया।

वह सोया होता, जब चन्दा विद्यालय से वापस आती। और आते ही वह काम में जुट जाती। सबसे पहले उस दिन के मैले कपड़े धोती। इस बीच चेतन उठ जाता। वह चाय बनाती और वे दोनों चाय पीते। चूँकि चन्दा दस बजे की विद्यालय गयी होती, इसलिए उस वक्त एकाध बासी रोटी ले लेती। लेकिन कई बार चेतन उठ चुका होता, जब वह आती। तब वे पहले चाय और नाश्ता करते। फिर कपड़े धोते। समय होता तो चन्दा अपनी जेठानी की सेवा-शुश्रूषा करती, वरना रात के खाने की व्यवस्था में जुट जाती। चेतन तो खाना खाते ही दफ़्तर चला जाता। चन्दा पहले अपने जेठ को खाना खिलाती, फिर अपनी जेठानी के साथ स्वयं खाती। फिर बर्तन वग़ैरह उठा कर अपने कमरे में आ जाती और पढ़ते-पढ़ते सो जाती।

लेकिन चेतन इस स्थिति से सन्तुष्ट नहीं था। दो-तीन दिन बाद

ही उसने भाई साहब से कहा, 'भाई साहब चन्दा सुबह दस बजे खाना खा कर विद्यालय जाती है। शाम को उसे जल्दी भूख लग आती है। आप बुरा न मानें तो वह मेरे साथ ही खाना खा लिया करे।'

'हाँ हाँ, इसमें बुरा मानने की क्या बात है ?'

और उसी शाम चेतन ने अपनी पत्नी से कहा कि विद्यालय से आ कर चाय के साथ बासी रोटी खाने के बदले, खाना जल्दी पका ले। वह स्वयं भी ज़रा जल्दी खाना खा लेगा। वह भी उसी के साथ खाना खा ले और फिर भाई साहब और भाभी को इकट्ठे परोस दिया करे।

लेकिन यद्यपि इस व्यवस्था से चेतन को सन्तोष हुआ, भाभी रुष्ट हो गयी। पहली बात तो यह कि भाई साहब ने अपनी पत्नी के साथ इकट्ठें खाना खाने से इनकार कर दिया। अपनी पत्नी से उन्होंने दुकान से आते ही निहायत रुखाई से कहा, 'तुम्हें किचन में आ कर खाना खाने की ज़रूरत नहीं। चन्दा तुम्हें तुम्हारे बिस्तर पर ही खाना दे देती है।' और चन्दा से बोलें, 'तुम पहले चम्पा को खाना खिला दो। मैं इतने में नहा लेता हूँ। फिर मैं खा लूँगा।'

भाभी को यह बात पसन्द नहीं आयी। उसने पति से पहले खाना खाने से इनकार कर दिया। चन्दा ने भाई साहब से कहा तो वे चुप रहे और चौके में बिछे मूढ़े पर चन्दा के सामने जा बैठे।

जब चन्दा ने जेठ को खाना खिला दिया तो वह अपनी जेठानी की थाली ले कर गयी। भाभी ने थाली परें ठेल दी और कहा कि मेरा जी ठीक नहीं।

दूसरे दिन भी भाभी ने अनशन रखा। सिर्फ़ इतना किया कि चेतन से दो लिफ़ाफ़े ले कर अपने पिता और भाई को पत्र लिखे और चेतन से कहा कि उन्हें डाक में डाल आये। और उसी शाम भाभी ने ऐसी बात कह दी और ऐसा तनाव पैदा हो गया कि भाई साहब ने अपनी ससुराल अर्जेण्ट तार दिये और भाभी का ड्राइवर भाई तीसरे दिन पहुँच गया और उसे ले गया।

०

चेतन ईज़ी चेयर पर पीछे को लेटे-लेटे पिछले दिनों की स्मृतियों में खो गया था। सहसा उस घटना के याद आने पर वह उठ कर बैठ गया, उसने गिरेबान में लगा कलम खींचा और नोट-बुक पर ध्यान जमाये बैठा रहा, लेकिन उसने कुछ लिखा नहीं। कापी को उसी तरह घुटनों पर रखे हुए और कलम को हाथ में लिये-लिये वह पीछे को लेट गया और तीन दिन पहले की वह घटना अपनी तमाम कटुता और हास्यास्पदता के साथ उसके दिमाग़ में घूम गयी।

०

इतवार की शाम थी। भाई साहब प्रायः इतवार को दोपहर बाद दुकान नहीं खोलते थे और शाम को पिक्चर देखने जाया करते थे। लेकिन जब से भाभी आयी थी, वे प्रायः इतवार को भी क्लिनिक खोल लेते थे। चेतन प्रकटतः समझता था कि वे अपनी पत्नी के नैकट्य से जितना भी हो सके, दूर रहना चाहते हैं और चेतन को उनकी इस निठुरता पर खेद भी होता था। वे उसके पति थे और चेतन की दृष्टि में पत्नी की बीमारी में उसके पास बैठना, उसकी दवा-दारू, सेवा-सुश्रूषा करना; उसका मन बहलाना उनका कर्त्तव्य था। जब देवर होते हुए, भाभी से अवहेलना पाने के बावजूद, वह उसकी देख-भाल करता था (उसने पहले दिन चन्दा के थके होने के कारण भाभी के कपड़े तक धो दिये थे) तो वे पति हो कर क्यों उससे दूर भागते थे? चेतन ने दबी ज़बान से इस बात की शिकायत भी की थी, पर भाई साहब झल्ला उठे थे :

'वह कुछ बोलती ही नहीं। सीधे मुंह किसी बात का जवाब नहीं देती—दुन्न वट्टा[1] बनी रहती है। मैं क्या करूँ उसके पास बैठ कर।' उन्होंने जल कर कहा था। और चेतन चुप हो गया था।

लाहौर में सिनेमा हॉल तो भाटी दरवाज़े के बाहर भी थे, पर भाई

---

१. मूक पत्थर

साहब कभी उधर न जाते। वे मैक्लोड रोड के 'कैपिटल' अथवा निस्बत रोड पर लक्ष्मी इन्श्योरेंस कम्पनी के आगे शिमला पहाड़ी की तरफ़ को नये खुले 'निशात' सिनेमा में पिक्चर देखते थे। ये दोनों सिनेमा हॉल कृष्णा गली से काफ़ी दूर पड़ते थे। दुकान से आ कर वे नहाते, चेतन के साथ खाना खाते, फिर चेतन दफ़्तर चला जाता और भाई साहब छड़ी हाथ में लिये खरामाँ-खरामाँ टहलते हुए पैदल रात को शो देखने चल देते।. . .भाभी की बीमारी में उनका क्रम नहीं रुका। पिछले इतवार भी वे सिनेमा देखने गये थे। वे तो चाहते थे कि चेतन भी साथ जाय, पर उसका समाचार-पत्र सण्डे के बदले मण्डे संस्करण निकालता था और उसे छुट्टी इतवार के बदले सोम को होती।

भाई साहब प्रायः रोज़ दुकान से आ कर औपचारिक रूप से अपनी पत्नी की तबीयत का हाल-चाल पूछते, कपड़े उतारते, नहाते, खाते और सोने से पहले छड़ी उठा कर सैर को निकल जाते। सैर से आ कर वे कपड़े बदलते और बाहर जा कर सो जाते। भाभी जब से श्रीरामपुर से आयी थी, पति-पत्नी में कोई बात हुई है, चेतन को इसमें सन्देह था।

बहरहाल, इस इतवार को भाई साहब रोज़ की अपेक्षा जल्दी आये थे। उन्होंने चन्दा से पूछा कि चम्पा ने सुबह कुछ खाया है या नहीं। चन्दा ने बताया कि मूँग की पतली दाल के साथ एक फुल्का खाया है और वह भी उसने बड़ी मिन्नत-समाजत से खिलाया है।

भाई साहब कुछ नहीं बोले। उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा कि चन्दा उसे खाना खिला दे। यह आदेश दे कर वे अन्दर गये। उन्होंने कपड़े बदले और नहाने चले गये। चन्दा ने जा कर जेठानी से पूछा कि उसका मन हो तो लौकी से फुल्का खा ले अथवा वह बाज़ार से डबलरोटी मँगा देती है और उसे दूध-डबलरोटी बना देती है।

उसकी जेठानी ने पहले तो कोई उत्तर ही नहीं दिया। वह पूर्ववत 'दुन्न वट्टा' बनी लेटी रही। जब चन्दा ने बहुत ज़ोर दिया तो उसने

सिर्फ़ इतना कहा कि उसे वह तंग न करे और जा कर अपने जेठ ही को खाना खिलाये।

चन्दा ने आ कर पति से कहा तो चेतन गया। उसने जा कर उसे समझाया कि इस तरह फ़ाके करने से उसकी रही-सही शक्ति भी जाती रहेगी। जब उसके लाख समझाने पर भाभी ने मुँह नहीं खोला और घूँघट काढ़े मौन बैठी रही, चेतन उस कमरे में है और कुछ कह रहा है, इसकी सनद भी उसने नहीं दी तो न चाहते हुए भी चेतन अपना सन्तुलन खो बैठा और चिल्ला कर उसने कहा कि उसे भूख-हड़ताल ही करनी है तो जा कर अपने मायके में करे। वे दिन-रात काम करते हैं, उनके पास उसके नखरे सहने को वक्त नहीं।

जब इसका भी कोई उत्तर उस नेकबख्त ने नहीं दिया तो बड़बड़ाता और पैर पटकता हुआ चेतन बाहर आया। भाई साहब बाथरूम में नहा रहे थे, दरवाज़े पर आ कर चेतन ने उन्हें बताया कि भाभी ने फिर भूख-हड़ताल कर दी है।

भाई साहब ने कोई जवाब नहीं दिया। वे इतमीनान से नहाते रहे। फिर जब वे निकले तो क्षण-भर बाथरूम के बाहर खड़े रहे। फिर उन्होंने वहीं से चन्दा को आदेश दिया कि वह अपना, चेतन का और उनका खाना परस दे। चन्दा ने कहा, 'आप खा लीजिए। हम ज़रा ठहर कर खायँगे।'

(वास्तव में उसे यह अच्छा नहीं लगा कि उसकी जेठानी भूख-हड़ताल किये बैठी रहे और वे तीनों मज़े से इकट्ठे मिल कर खाना खायँ।)

तब भाई साहब ने कहा, 'अच्छा मेरा खाना परस दो।' और चेतन को उन्होंने आदेश दिया कि वह भाग कर ग्वालमण्डी से डेढ़ पाव दूध और छोटी डबलरोटी ले आये। 'मैं उसे खुद दूध-डबलरोटी खिला दूँगा। तुम चिन्ता न करो।' उन्होंने चन्दा से कहा और रसोई-घर में बिछे मूढ़े पर जा बैठे।

चन्दा ने खाना परसते हुए कहा, 'इनका दूध पड़ा है वही ले लीजिए।'

'नहीं,' भाई साहब बोले, 'इसका दूध रहने दो। यह भाग कर ले आयेगा। डबलरोटी भी तो लानी है।'

जितने में चेतन दूध-डबलरोटी ले आया, भाई साहब ने खाना खत्म कर लिया। दूध यद्यपि गर्म था, फिर भी चन्दा ने उसे गर्म किया। एक बड़े कटोरे में डबलरोटी के टुकड़े और चीनी डाल कर गर्म-गर्म दूध डाला। चम्मच से मिलाया और एक पतीले के ढक्कन पर कटोरा रख कर भाई साहब को दे दिया।

भाई साहब चले गये तो चन्दा ने अपने पति के लिए खाना परस दिया।

चेतन ने कहा कि वह अपने लिए भी परस ले तो चन्दा ने कहा कि आप खा लीजिए, मैं बाद में खा लूँगी। तब चेतन ने थाली और पानी का गिलास उठा कर कहा कि मैं इधर कमरे में खाता हूँ, तुम साथ-साथ मुझे अपना निबन्ध सुनाती जाओ।

वह खाना खा रहा था, चन्दा निबन्ध सुना रही थी कि भाई साहब पैण्ट-कमीज़ पहने एक हाथ में छड़ी और दूसरे में दूध-डबलरोटी से भरा वही कटोरा (जिसे लगता था कि भाभी ने छुआ तक नहीं) लिये हुए आये और कटोरा उन्होंने चन्दा की ओर बढ़ा दिया।

'इसे रख आओ। वह नहीं खाती।'

चन्दा अभी चौखट ही में थी कि भाई साहब बमके, 'जानते हो इस गधी ने क्या किया है?'

चेतन ने खाना खाते-खाते केवल आँखें उठा दीं।

'उसने अभी मुझे उलाहना दिया है कि मैं अपनी छोटी भाभी को पसन्द करता हूँ। उसी के साथ बैठ कर खाना, सैर-तमाशे जाना और उसी के साथ रहना पसन्द करता हूँ। उसके जालन्धर जाने के बाद इसीलिए मैंने घर छोड़ दिया था ताकि वह श्रीरामपुर में पड़ी सड़ती रहे।

२६

इसीलिए उसने फ़ाके करके यह बीमारी लगा ली है। और वह इसी तरह फ़ाके करके, मेरे सामने प्राण दे देगी।'

भाई साहब चुप हो गये। चेतन क्या कहे, वह समझ नहीं पाया। तभी उसकी निगाह अपनी पत्नी पर गयी। वह हाथ में डबलरोटी का कटोरा लिये, वहीं चौखट में अवाक खड़ी थी। उसका मुख रुलाई में विकृत हो गया था और उसकी फटी-फटी आँखों में अनायास आँसू बह रहे थे।

चेतन हँसा, (उसे अपनी हँसी स्वयं कृत्रिम लगी) 'दत्त पगली!' दायें हाथ में रोटी का ग्रास पकड़ा होने के कारण उसने बढ़ कर बायें से उसकी पीठ थपथपायी, 'भाभी अगर बेवकूफ़ी करती है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि तुम भी बेवकूफ़ी करो।'

'मैं सिनेमा जाने की सोच रहा था,' 'भाई साहब ने सहसा व्यस्त होते हुए कहा, 'लेकिन मैं अब सीधा जनरल पोस्ट ऑफ़िस जाऊँगा और पण्डित गिरधारीलाल और सतपाल (भाभी का ड्राइवर भाई) को अर्जेण्ट तार दे कर आऊँगा कि चम्पा चन्द दिन की मेहमान है, वे जल्दी पहुँचें।'

और छड़ी उठा कर, जैसे वह डाकखाने पर आक्रमण करने जा रहे हों, भाई साहब बाहर निकल गये थे।

चेतन की समझ में न आया था कि वातावरण में जो तनाव आ गया था, उसे कैसे दूर करे। उसने शेष खाना किसी तरह जल्दी-जल्दी निगला था और चन्दा की कापी ले कर बैठ गया और उसे सामने बैठा कर उसका निबन्ध ठीक करने लगा। उसने फिर भाभी की बात का ज़िक्र तक नहीं किया और अपने जोश में उसने निबन्ध में इतने परिवर्तन कर दिये कि उसमें चन्दा का एक भी पूरा वाक्य नहीं बचा।

'इसे दोबारा लिखो।' कापी मेज़ पर रख कर दफ़्तर जाने के लिए जल्दी-जल्दी कपड़े पहनते हुए चेतन ने कहा था, 'पाँच निबन्ध तुम इस तरह मेरे साथ लिख लोगी तो तुम्हें निबन्ध लिखना आ जायगा।'

उसकी पत्नी का चेहरा अभी तक उदास था। उसकी स्वाभाविक

उत्फुल्लता उस पर नहीं लौटी थी। चलते-चलते उसकी पीठ फिर थपथपाते हुए चेतन ने माँ द्वारा सुनी हुई कहावत दोहराई थी, 'अपनी श्रोड़ निभाइए श्रोहदी श्रोह जाने—।'[1] हमें अपना कर्त्तव्य करना चाहिए, दूसरे की चिन्ता हम क्यों करें। तुम खाना खा लेना और जी हो तो थोड़ा-बहुत निबन्ध दोबारा लिखने की कोशिश करना।' और पत्नी की पीठ एक बार और थपथपा कर वह दफ़्तर चला गया था।

चन्दा जा कर खाना खाने बैठी तो उससे दो कौर भी न निगले गये। वह दूध-डबलरोटी का कटोरा ले कर फिर जेठानी के कमरे में गयी थी। उसने लाख मिन्नत-समाजत की थी पर भाभी ने सनद नहीं दी थी। वह मौन लेटी रही थी और फिर मुर्दा बोलेगा तो कफ़न फाड़ेगा के अनुसार जब उसने ज़बान खोली तो यही कहा था, 'अभी तुम्हारा जेठ आयेगा तो उसी को खिलाना।'

और चन्दा रुलाई को बरबस रोकती हुई बाहर आ गयी थी। अपना खाना भी उसने उठा दिया था। किचन बन्द करके वह कमरे में चली गयी थी और निबन्ध लिखने लगी थी। वह लगभग पूरा निबन्ध लिख चुकी थी जब एक-डेढ़ के करीब भाई साहब लौटे थे। यद्यपि उन्होंने कहा था कि वे अब पिक्चर नहीं देखेंगे, पर पोस्ट ऑफ़िस में अपनी ससुराल अर्जेण्ट तार देने के बाद उन्होंने घड़ी पर निगाह डाली थी तो पौने नौ ही बजे थे, तब वे चुपचाप 'कैपिटल' की ओर बढ़ गये थे।

आ कर उन्होंने चेतन के कमरे ही में कपड़े उतारे थे और जा कर बाहर अपनी चारपाई पर सो गये थे। चेतन जब दफ़्तर से ढाई बजे लौटा था तो उसकी पत्नी अभी जाग रही थी।

•

चेतन उठ कर फिर सीधा बैठ गया। उसने एक नज़र नोट-बुक पर

---

१. अपना फ़र्ज़ पूरा करो; दूसरे का दूसरा जाने। (दूसरा शब्द यहाँ भगवान के लिए भी आता है और अन्य व्यक्ति के लिए भी।)

लिखे हुए पैरों पर डाली, फिर आगे लिखना शुरू किया :

'सोचता हूँ तो मुझे इसमें भाभी की ज़बरदस्त हिमाकत के साथ-साथ भाई साहब का कसूर भी कम दिखायी नहीं देता। भाई साहब ने जब काम शुरू किया था तो भाभी का एक गहना बेच कर वह पुरानी कुर्सी ख़रीदी थी (जिसके बदले चन्दा के मायके के गहने बेच कर नयी कुर्सी लायी गयी है।) उनका काम कितना बढ़ा, उन्हें किन मुश्किलों का सामना करना पड़ा है, उन्होंने कभी भाभी को नहीं बताया। उसे कभी अपने भेद का साझीदार नहीं बनाया।

'ख़त लिखने में वे बड़े चोर हैं। भाभी को श्रीरामपुर छोड़ कर फिर उन्होंने तीन महीने तक उसकी खोज-ख़बर नहीं ली। कभी वहाँ नहीं गये। कभी उसे नहीं बताया कि क्यों वे सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) का मकान छोड़ने को मजबूर हुए। चन्दा के खुलेपन को ले कर—उनके सामने घूँघट न करने के कारण—पहले भी भाभी के मन में शक था। अगर भाई साहब ने अपने ख़ामोश और रूखे व्यवहार से उसको यक़ीन में बदल दिया और भाभी ने फ़ाके कर-कर के दिक मोल ले लिया, तो क्या इसमें साहब का कोई कसूर नहीं था? शायद बीवी को यह बताना उनकी अना[1] को मंजूर नहीं हुआ कि अपने छोटे भाई और भाभी की मदद करने के बदले, वे उनसे मदद लेते हैं। अगर उन्होंने अपनी बीवी को अपना भेद बता दिया होता तो इतनी बड़ी ट्रैजिडी क्यों होती?'

०

चेतन इतना लिख कर फिर ईज़ी चेयर पर पीछे को लेट गया। सहसा उसके मन में दूसरा विचार आया—। यदि वह शिमले से अपने बड़े भाई को दुकान का किराया भेज देता, यदि कविराज चालीस रुपये

---

१. अहं।

पेश्गी दे देते, तब क्या भाई-साहब सरदार जगजीत सिंह का वह खुला हवादार मकान छोड़ने को विवश होते ? तब क्या वे भाभी को श्रीराम-पुर से न ले आते ? तब क्या भाभी के मन में भ्रम का वह बीज विष-वृक्ष बनता और तब क्या वह अपने हाथों यों अपने प्राण लेने को तैयार होती ?. . .कविराज ने कहा था, 'तुम देख लेना, तुम्हारे भाई कोई-न-कोई रास्ता निकाल लेंगे और फिर तुम्हें तंग नहीं करेंगे।'. . .अच्छा रास्ता निकाला उन्होंने ! चालीस रुपये की एक निकम्मी रकम के लिए एक औरत की जान पर बन गयी. . .।

चेतन का दम घुटने लगा। वह उठा। नोट-बुक को उसने मेज़ पर रखा और कमरे में घूमने लगा। उसे कविराज की उस कृपणता पर बेहद क्रोध आया। उस एक छोटी-सी घटना ने उनकी ज़िन्दगियों में कितनी बड़ी ट्रैजिडी उपस्थित कर दी थी।

. . .चेतन की आँखों के सामने स्टेशन पर गाड़ी के डिब्बे में बैठी, बुरी तरह खाँसती हुई अपनी भाभी का पतला-दुबला, यक्ष्मा का मारा, एकदम सियाह पड़ जाने वाला चेहरा आ गया. . .इस एक पखवाड़े में उसका शरीर और भी सूख गया था। गाड़ी के डिब्बे में ज़रा-सा घूँघट खींचे बैठी, वह बहुत छोटी-सी लगती थी। चेतन के सामने भाई साहब की शादी और स्वास्थ्य और सौन्दर्य से दग-दग करती अपनी भाभी का रूप घूम गया। उसके सामने वह चित्र भी आया, जब भाई साहब अपनी पहली और अन्तिम नौकरी की तनख्वाह के पन्द्रह रुपये लाये थे। घर में आटा नहीं था; माँ ने दो रुपये माँगे थे और भाई साहब ने भाभी को आदेश दिया था कि वह दो रुपये माँ को दे दे। भाभी माँ के सामने मेज़ के कोने पर आ बैठी थी (माँ दालान के दरवाज़े में पीढ़े पर बैठी सूत अटेर रही थी) और उसने ऐसा रौद्र रूप धारण किया था और वो-वो गड़े मुर्दे उखाड़े थे कि माँ रोने लगी थी. . .वही उसकी भाभी गाड़ी के डिब्बे में बैठी कितनी छोटी-सी, कितनी असहाय और निरीह-सी लगती थी—किसी ऐसे ठठरी अड़ियल पशु-सी, जो हठ कर के बैठ जाता

है, खाना-पीना छोड़ देता है और चुपचाप मर जाता है. . .चेतन का मन हुआ था, उसकी पीठ थपथपा कर उसे तसल्ली दे कि वह जल्दी ही स्वस्थ हो कर पहले की तरह दग-दग करती हुई वापस लौटेगी। पर उससे झूठ नहीं बोला गया। उसके मन में कचोट उठती रही और वह चुप खड़ा रहा था। जब उससे वैसे चुप खड़ा न रहा गया तो भाग कर वह दो पैसे की सुराही ले आया। नल पर जा कर उसने उसे अच्छी तरह धोया। एक-दो बार भर कर और खाली कर के (ताकि उसमें से मिट्टी की गन्ध चली जाय) फिर तीसरी बार भर कर वह ले आया था और उसने उसे भाभी की सीट के नीचे रख दिया।

गाड़ी चलने को थी और इंजिन ने सीटी दे दी थी, सहसा भाभी ने वैसे ही खाँसते हुए, ज़रा-सा साँस रोक कर केवल इतना पूछा था :

'तुम्हारे भाई साहब नहीं आये क्या? उन्होंने कहा था कि स्टेशन पर पहुँचेंगे।'

चेतन जानता था, भाई साहब नहीं आयेंगे। इसीलिए तो उन्होंने उसे भेजा था। पर उससे सच्ची बात नहीं कही गयी। उसने न चाहते हुए भी झूठ बोल दिया, 'आने को उन्होंने कहा होगा, पर ऐन वक्त पर कोई पेशेण्ट आ गया होगा।'

भाभी ने इस पर कुछ नहीं कहा। चेतन बाहर प्लेटफ़ार्म पर आ गया। गाड़ी ने सीटी दी तो भाभी ने खिड़की से सिर ज़रा बाहर निकाल कर, घूँघट को बायें हाथ की अनामिका और अँगूठे से ज़रा उठा कर दूर प्लेटफ़ार्म के गेट तक निगाह डाली। गाड़ी सरकने लगी थी। उसने सिर अन्दर कर लिया और अपनी सीट पर झुक कर खाँसने लगी। चेतन ने ज़ोर से 'नमस्कार' किया। भाभी ने कोई उत्तर दिया हो तो चेतन ने नहीं सुना।

०

वहीं कमरे में घूमते हुए चेतन की आँखों में खिड़की के बाहर सिर निकाल कर ज़रा-सा घूँघट उठाये प्लेटफ़ार्म पर दूर तक भटकती हुई

उसकी भाभी की वे बड़ी-बड़ी घायल आँखें घूम गयीं—लम्बी-सी नाक और काले-काले गड्ढों में धँसी हुई वे उदास, निराश, घायल आँखें. . . वह चेहरा उस प्रतिशोध-भरे चेहरे से कितना भिन्न था, जिसकी झलक चन्दा के साथ खाना खाते हुए चेतन ने देखी थी। चेतन को लगा—वे आँखें और उनकी वह सूनी, मर्माहत, घायल दृष्टि हमेशा के लिए उसके मन पर अंकित हो गयी है।. . .उसे अफ़सोस हुआ, वह क्यों उस पर ग़ुस्से हो आया था, क्यों उसके मुँह से झल्लाहट में कटु शब्द निकले थे। बे-दिमाग़ अड़ियल पशु में और उसकी भाभी में कोई अन्तर नहीं—यही सब सोचता हुआ वह स्टेशन से बाहर निकल कर ताँगे पर आ बैठा था और शाह आलमी के अड्डे पर आ उतरा था।

चेतन ने मेज़ से नोट-बुक उठायी। वह फिर ईज़ी चेयर पर आ बैठा। कापी उसने घुटनों पर फैला दी। एक बार उसने शुरू से अन्त तक अपने लिखे को पढ़ा। फिर थोड़ी-सी जगह छोड़ कर वह लिखने लगा :

'इस ट्रैजिडी की ठीक वजह क्या है, मैं तय नहीं कर पाता। कुछ भी साफ़-साफ़ समझ में नहीं आता। क्या इसके पीछे चन्दा से मेरे उस इसरार[1] का हाथ नहीं, जो मैंने उससे भाई साहब के सामने घूँघट उठा देने के लिए किया था और जिसके सबब वह उनके सामने खुले मुँह आने और हँसने-बोलने लगी।

'या इस ट्रैजिडी का सही कारण कविराज का वह शातिर, अपने मुलाज़िमों का नाजायज़ फ़ायदा उठाने वाला, खबीस और कंजूस सुभाव है, जिसके बस उन्होंने मुझे चालीस रुपये पेश्गी देने से इनकार कर दिया था और भाई साहब ने भाभी को श्रीरामपुर सड़ने भेज दिया।

'लेकिन भाई साहब के इस रूखेपन और खामोशी का क्यों

---

१. अनुरोध।

नहीं, जिसने भाभी के शक को यकीन में बदल दिया। जिस खामोश तबीयत के कारण उन्हें भाभी को यह बताना मंजूर नहीं हुआ कि वो अपने भाई को खिलाते-पिलाते नहीं, बल्कि खुद उससे मदद लेते हैं।

'लेकिन शायद सबसे बड़ी वजह भाभी की अपनी बदगुमानी और ग़लतफ़हमी है, जिसके बस हो कर उसने मौत का रास्ता अपना लिया।

'इस दर्दनाक ट्रैजिडी की वजह जो भी हो, लेकिन इससे यह तो पता चलता है कि शक के ज़हरीले बीज को अगर फूटते ही सख्ती से कुचल न दिया जाय तो वह इतना बड़ा पेड़ बन जाता है कि अपने भयानक साये से ज़िन्दगी को एकदम सुखा डाले।'

चेतन रुका। सहसा उसके मन में आया—शायद भाई साहब ने भाभी को बता दिया हो कि उन्होंने अपने छोटे भाई से ले कर अपनी छोटी भाभी के दस तोले सोने के गहने बेचें हैं और भाभी ने अपनी कूढ़मग्ज़ी में इसका यही अर्थ लगाया हो कि चन्दा भाई साहब पर मरती है, तभी तो उसने इतने भारी गहने उनके लिए दे दिये. . .

यह खयाल आते ही चेतन ने मन-ही-मन एक विद्रूप-भरा ठहाका लगाया। फिर हठात उसका मुँह कड़वा गया। उसने एक लम्बी साँस ली और कापी में लिखा :

'जाने तकदीर दिखायी न देने वाले किन तारों के
ज़रिये ज़िन्दगी को चलाती है और मौत किन ग़ैरमरई[1]
हाथों से आ कर उसे दबोच लेती है !'

०

चेतन ने नोट-बुक बन्द कर दी और उठ खड़ा हुआ। उसे तब क्या मालूम था कि तीन महीने बाद ही उसी पृष्ठ पर उसे लिखना पड़ेगा :

---

१. अदृश्य।

> 'आज पण्डित गिरधारीलाल का खत आया है (शायद पाँचवाँ या छठा) कि चम्पा बस चन्द ही दिन की मेहमान है और उसके प्राण अपने पति के दर्शनों के लिए ही अटके हुए हैं. . .लेकिन भाई साहब ने पहले के खतों की तरह इसका भी कोई जवाब नहीं दिया।'

और भाभी की मृत्यु के छै महीने बाद उसी पृष्ठ पर लिखना पड़ेगा :

> 'अभी-अभी भाई साहब मुझे बता कर गये हैं कि रात अचानक सपने में उन्हें भाभी दिखायी दी और वो बेतरह डर गये कि यह चुड़ैल कहाँ से आ गयी और उठ कर बैठ गये और बहुत देर तक नहीं सो सके।'

चौबीस

भाभी को गये हुए एक पखवाड़ा हो गया था। चेतन की पत्नी 'कृपालदेवी हिन्दी विद्यालय' जाने लगी थी और चेतन अपने कमरे के काग़ज़-पत्रों को व्यवस्थित कर एक नयी कहानी लिखने की सोचने लगा था तभी एक सुबह उसके मन में न जाने क्या आयी कि पत्नी के स्कूल जाने के वाद, उसने नहा-धो कर कपड़े बदले, अपनी कहानियों का मसौदा तथा प्रकाशित रचनाओं की फ़ाइल उठायी और प्रकाशक की तलाश में चल पड़ा।

०

उर्दू साहित्य के अधिकांश प्रकाशक उन दिनों लोहारी गेट के अन्दर थे। यों कहा जाय कि जिन प्रकाशकों के यहाँ चेतन की पुस्तक छपने की रंचमात्र भी सम्भावना थी, उन सब की दुकानें लोहारी गेट के अन्दर थीं। तीन उनमें प्रसिद्ध थे—'सन्तसिंह बुक डिपो,' 'नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़' तथा 'लखनपाल ब्रदर्ज़ !'

'सन्तसिंह बुक डिपो' वाले सस्ती पुस्तकें छापने के लिए प्रान्त भर में ख्यात थे। चेतन पाँचवीं कक्षा ही से

उनके नाम से परिचित था क्योंकि न केवल उन्होंने उर्दू के शेक्सपियर, आग़ा 'हश्र' कश्मीरी से ले कर उस ज़माने के लॉरेंस ऑलिवियर, प्रसिद्ध रूमानी अभिनेता मास्टर रहमत तक के नाटक छाप रखे थे, वरन मिल्खीराम, मोतीराम, टी० सी० गुजराती और उस्ताद हमदम जैसे लोकप्रिय पंजाबी कवियों के किस्से भी वही छापते थे। चेतन ने स्कूल के दिनों ही में इस सारे-के-सारे साहित्य का पारायण कर लिया था और इसीलिए यह बात उससे छिपी न रही थी कि उनकी पुस्तकों का प्रकाशन निहायत रद्दी होता है। उनका काग़ज़ और छपाई ही नहीं, मुखपृष्ठ भी घटिया होता था। सस्ते आर्ट पेपर पर लाल अथवा नीली रोशनाई में लेखक का जो भौंडा-सा फ़ोटो उन पर छपा रहता था, वह चेतन की सौन्दर्यानुभूति को बड़ी ठेस पहुँचाता था। सन्तसिंह बुक डिपो की किसी पुस्तक पर कभी कपड़े अथवा गत्ते की जिल्द उसने नहीं देखी। किस्से तो प्रायः अख़बारी काग़ज़ पर छपे होते थे—न कटे, न सिले—लेकिन पुस्तक का नाम धराने वाली रचनाएँ भी पेपर कवर और फ़्लैश-कट में, नितान्त रद्दी काग़ज़ और उससे भी रद्दी लिखाई-छपाई के साथ मार्केट में बिकती थीं। ऐसे घटिया प्रकाशकों के यहाँ अपना कथा-संग्रह देना चेतन के अहं को स्वीकार न था। हालाँकि उसके उस्ताद भाई, कवि टीकमचन्द 'अख़्तर' ने जालन्धर के दिनों में ही 'तनवीरे-अख़्तर' के नाम से अपना दीवान वहाँ से छपवा लिया था, लेकिन चेतन के मन में एक बार भी वहाँ से अपनी पुस्तकें छपवाने की इच्छा नहीं हुई। आदमी को भूख लगेगी तो क्या मैला खा लेगा, उसने मन-ही-मन उपेक्षा से कहा था और तय किया था कि चाहे उसे देर लग जाय, पर अच्छे प्रकाशक के यहाँ से ही अपनी पुस्तक छपवायेगा।. . .लाहौर आ कर दैनिक पत्र की नौकरी करने के बाद महज़ उत्सुकतावश वह एक-दो बार सन्तसिंह बुक डिपो के आगे से गुज़रा था। लेकिन अन्दर निहायत ही प्राचीन काल के जीर्ण-जर्जर लोगों को, और भी पुरानी-धुरानी मेज़-कुर्सियों पर बैठे देख

कर, दुकान के अन्दर जाने अथवा उनका परिचय पाने की भी इच्छा उसे नहीं हुई।

'नारायण दत्त सहगल एण्ड सन्ज़' के यहाँ से तीर्थराम फ़ीरोज़पुरी की बड़ी मोटी-मोटी पुस्तकें छपती थीं, जिन्हें आठवीं कक्षा से वह बराबर पढ़ता आ रहा था। वे सब-की-सब जासूसी थीं। उनके रचयिता सर आर्थर कानन डॉयल तथा रेनाल्ड्स आदि प्रसिद्ध लेखक थे, जिनका अनुवाद तीर्थराम फ़ीरोज़पुरी ने बड़े श्रम और कौशल से किया था। इनमें सर आर्थर कानन डॉयल द्वारा रचित शर्लाक होम्ज़ की सारी-की-सारी ग्रन्थ-माला उर्दू में अनूदित हो चुकी थी। रेनाल्ड्स का प्रसिद्ध उपन्यास—'मिस्ट्रीज़ ऑफ़ द कोर्ट ऑफ़ लण्डन'—'इसरारे दरबारे लन्दन'[1] के नाम से कई जिल्दों में छपा था। इनके अतिरिक्त जासूस सेक्स्टन ब्लेक के कारनामों की कई पुस्तकें भी छपी थीं, जिनका अनुवाद केदारनाथ खुर्शीद नाम के किन्हीं महानुभाव ने किया था। नारायणदत्त सहगल इन सभी लोकप्रिय पुस्तकों के प्रकाशक थे। लेकिन चेतन की कहानियाँ जासूसी नहीं थीं। कभी आठवीं कक्षा में जासूस ब्लेक के कारनामों की तर्ज़ पर उसने ज़रूर एक जासूसी उपन्यास लिखना शुरू किया था पर अभी वह उसे खत्म भी नहीं कर पाया था कि महाशय देवदर्शन और मुन्शी चन्द्रशेखर की तर्ज़ पर आदर्शोन्मुख समाजवादी कहानियाँ लिखने लगा था। मुन्शी चन्द्रशेखर का वास्तविक नाम तो कामताप्रसाद था। वे यू० पी० के कायस्थ थे। अपना जीवन उन्होंने स्कूल-अध्यापक के रूप में शुरू किया था और उन्नति कर, स्कूल इन्स्पेक्टर हो गये थे। कहानियाँ वे बी० ए० पास करते ही लिखने लगे थे और तभी अपना साहित्यिक नाम उन्होंने चन्द्रशेखर रख लिया था। स्वतन्त्रता संग्राम में उन्होंने सरकारी मुलाज़मत छोड़ दी थी। वर्षों उर्दू में लिखने के बाद वे हिन्दी में लिखने लगे और उस समय वे उर्दू-हिन्दी के प्रमुखतम कथाकार

---

१. लन्दन-दरबार के रहस्य।

और उपन्यास लेखक थे । चेतन की कहानियों को न केवल महाशय देवदर्शन ने सराहा और अपने कहानी मासिक 'मन्दिर' में छापा था, वरन मुन्शी चन्द्रशेखर ने भी उनकी प्रशंसा की थी । इसलिए जासूसी पुस्तकों, उनके लेखकों और इसी कारण उनके प्रकाशकों के लिए चेतन के मन में उपेक्षा और दया का हलका-सा भाव था ।. . .लाहौर आने पर वह 'नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़' के यहाँ भी गया था, अपनी कहानियाँ छपवाने के ख़याल से नहीं, अपने स्कूली दिनों के प्रिय लेखक (अनुवादक) तीर्थराम फ़ीरोज़पुरी का पता लेने । सहगल साहब स्वयं दुकान पर बैठे थे । वे काफ़ी बुढ़ा गये थे । उनका रंग भले ही कभी गोरा रहा होगा (क्योंकि उनका गोरा-चिट्टा लड़का दुकान पर बैठा उसकी गवाही देता था) अब काफ़ी सँवला गया था । उनके चेहरे पर बेगिनती झुर्रियाँ थीं और उनके कन्धे किंचित झुक आये थे । चेतन ने उनसे अपने संग्रह के प्रकाशन की बात नहीं की । सिर्फ़ तीर्थराम फ़ीरोज़पुरी का पता पूछा था । उसे यह जान कर दुख हुआ था कि लड़कपन के उसके प्रिय लेखक (अनुवादक) श्री तीर्थराम फ़ीरोज़पुरी का देहान्त कुछ ही दिन पहले हो गया था । न जाने उस व्यक्ति ने इन मोटी-मोटी पुस्तकों का अनुवाद करने में कितना श्रम किया है, चेतन ने दुकान की तरफ़ चलने से पहले मन-ही-मन सोचा था, 'जब मौलिक पुस्तकों पर रायल्टी का चलन नहीं तो अनुवाद पर उन्हें क्या मिला होगा ?' और उसने तय किया था कि यदि वे लाहौर ही में निवास कर रहे होंगे तो वह उनसे भेंट करेगा और अपने दैनिक के साप्ताहिक अंक के लिए सर आर्थर कानन डॉयल के उपन्यासों अथवा अंग्रेज़ी भाषा से अनुवाद की समस्या और उसकी कठिनाइयों पर उनके इन्टरव्यू लेगा (कि उस ज़माने में वह रिपोर्टर था और लाहौर के तूल-अर्ज़ में इन्टरव्यू लेता घूमा करता था ।) उनकी मृत्यु का समाचार सुन कर अपनी हसरत दिल ही में लिये, वह चुपचाप दुकान से उठ आया था ।

जहाँ तक 'लखनपाल ब्रदर्ज़' का सम्बन्ध है, चेतन के मन में उस

प्रकाशक के प्रति प्रबल पूर्वाग्रह था। मुन्शी चन्द्रशेखर और महाशय देव-दर्शन की कुछ पुस्तकें उनके यहाँ से छपी थीं, इसलिए जब वह महाशय देवदर्शन के यहाँ, उनके 'मन्दिर' के लिए कहानी देने गया था तो बातों-बातों में उसने 'लखनपाल ब्रदर्ज़' के बारे में उनकी राय जाननी चाही थी कि वे कैसे प्रकाशक हैं और लेखकों के प्रति उनका कैसा व्यवहार है? तब महाशय देवदर्शन ने हँसते हुए जो किस्सा सुनाया था, उसने न केवल चेतन की सभी आशाओं पर पानी फेर दिया था, वरन उसके मन में घोर वितृष्णा भर दी थी। 'तुर्गनेव के प्रसिद्ध उपन्यास 'नेस्ट ऑफ़ द जेण्ट्री' का एक-एक परिच्छेद उन्होंने विभिन्न लेखकों को बाँट दिया था कि वे अपने-अपने अनुवाद की बानगी दिखायें,' महाशय देवदर्शन ने चेतन को बताया था। और यों पूरी-की-पूरी पुस्तक, किसी को एक भी पैसा दिये बिना, उन्होंने अंग्रेजी से उर्दू में उल्था करवा ली थी। महाशयजी क्षण भर चुप रहे थे, फिर हँस कर बोले, 'पहला परिच्छेद मैंने ही किया था। जब वह पुस्तक छप कर बाज़ार में आ गयी तो एक शाम 'फ़ज़ल बुक डिपो' पर मैंने उसे उठा कर देखा। पहला चैप्टर वही था, जिसका अनुवाद मैंने किया था। बाद में मालूम हुआ कि पण्डित रत्न, वकार अम्बालवी, दीनानाथ ज़ुत्शी, राजा मेहदी अली खाँ आदि कितने ही लोगों ने उसका एक-एक परिच्छेद किया था। तब मैं लाला लखनपाल के सिर पर जा सवार हुआ और उनका टेंटुआ दबा कर मैंने बड़ी मुश्किल से अपने पैसे वसूल किये। लेकिन और किसी को एक भी पैसा उन्होंने दिया हो तो मैंने नहीं सुना।'

चेतन कॉलेज में पढ़ता था तो उसके मन में लखनपाल ब्रदर्ज़ के यहाँ से अपनी पुस्तकें छपवाने की बड़ी साध थी। लेकिन लाहौर आ कर इस प्रसिद्ध प्रकाशक के सम्बन्ध में भी उसका भरम खुल गया था और यद्यपि लोहारी दरवाज़े के अन्दर थोड़ी ही दूर पर बायीं ओर को उनकी दुकान थी और पण्डित रत्न के साथ घूमता हुआ वह प्रायः उसके सामने

से गुज़रता था, लेकिन एक बार भी उसके मन में उसके अन्दर जाने की इच्छा नहीं हुई थी।

०

सो, चेतन जब अपने कहानी-संग्रह का मसौदा और पत्र-पत्रिकाओं में छपी कहानियों के तराशों की फ़ाइल बग़ल में दबाये कृष्णा गली से निकला तो उसके मन में इन तीनों प्रसिद्ध प्रकाशकों में से किसी के यहाँ जाने का ख़याल नहीं था। उसकी मंज़िल 'चमन बुक डिपो' थी और उसका सहज-ज्ञान कह रहा था कि यदि वह टैक्ट से काम लेगा तो उसका काम निश्चय ही बन जायगा।

०

इधर कुछ ही महीने पहले नगरपालिका ने लोहारी दरवाज़े के बाहर दायीं तरफ़ को आठ-दस बड़ी-बड़ी दुकानें बनवा दी थीं और उनमें से तीन में प्रकाशक आ गये थे। 'अन्दरून लोहारी'[1] की तंग छोटी-छोटी दुकानों की अपेक्षा 'बीरून लोहारी'[2] की ये दुकानें आँखों को बहुत भली लगती थीं। इनमें से पहली दुकान पर एक आयताकार बोर्ड बाहर के तख़्ते के छज्जे के नीचे लटक रहा था और एक बहुत बड़ा जहाज़ी बोर्ड छज्जे के ऊपर लगा था। निचले बोर्ड पर 'उर्दू बुक स्टाल' लिखा था, ऊपर 'मकतबा जामिया दिल्ली।' उर्दू बुक स्टाल का मालिक चौधरी ज़हीर चेतन ही की उम्र का नौजवान था—खुले गले की रेशमी कमीज़, घेरदार शलवार और पैरों में पेशावरी चप्पल पहने, वह चेतन को बहुत अच्छा लगता था। उसका कद मँझला, रंग गेहुआँ, नाक-नक्शा तीखा और शरीर के अंग खुले और गठे-गठे थे। प्रकट ही उसकी शिराओं में पठानी रक्त था। उसने दो-एक पुस्तकें भी छापी थीं, लेंकिन घाटे की सम्भावना से उसने दिल्ली के 'मकतबा जामिया' से कुछ ऐसा सौदा कर

१. लोहारी दरवाज़े के अन्दर की। २. लोहारी दरवाज़े के बाहर की।

लिया था, जिससे दुकान का किराया 'मकतबा जामिया' वहन करता था और 'उर्दू बुक स्टाल' लाहौर में मकतबा का सोल एजेण्ट बन गया था। चूँकि मकतबा वाले पसन्द नहीं करते थे कि चौधरी ज़हीर अपना प्रकाशन भी करे, इसलिए फ़िलहाल उसने अपना प्रकाशन स्थगित कर दिया था। चेतन ने ज़हीर से राह-रस्म बढ़ा ली थी और उसे मालूम था कि पाँव जम जाने के बाद चौधरी ज़हीर धड़ल्ले से अपना प्रकाशन करने की सोचता है।

परले कोने में लोहारी दरवाज़े के साथ 'नारायण दत्त सहगल' अन्दरून लोहारी से उठ आये थे। दुकान नयी थी, पर पकवान पुराने और बासी थे। उन दोनों के बीच 'चमन बुक डिपो' नयी-नयी खुली थी। चेतन ने 'चमन बुक डिपो' अमृतसर का नाम सुन रखा था। वहाँ से प्रकाशित एक-दो पुस्तकें भी देखी थीं, जो बहुत अच्छी छपी थीं। कभी-कभी वह उसके प्रोप्राइटर से मिलने के लिए अमृतसर जाने की भी सोचा करता था। उस बोर्ड को देख कर एक दिन उसने पण्डित रत्न से पूछा था कि क्या यह नयी दुकान 'चमन बुक डिपो' अमृतसर की ब्रांच है? तब पण्डितजी ने बताया था कि नहीं, लाला चमनलाल अपनी दुकान अमृतसर से उठा कर राजधानी में ले आये हैं। तब लाला चमनलाल से राह-रस्म बढ़ाने के पहले, चेतन दो-चार बार यूँ ही दुकान के आगे से गुज़रा था। हर बार उसने कमीज़-पायजामा पहने, सिर पर गोल क्रिस्टी टोपी लगाये, शक्ल ही से लाला दीखने वाले एक तीस-पैंतीस वर्ष के गोरे-चिट्टे बबुआ-से व्यक्ति को वहाँ बैठे देखा था और जब उसे मालूम हुआ था कि ये ही लाला चमनलाल हैं तो उसके सहज-ज्ञान ने उससे कहा था कि दाल यहाँ गल सकती है।

चेतन घोर परिश्रमी, प्रबल महत्वाकांक्षी और इस्पाती इच्छा-शक्ति का स्वामी था—इस पर भी सहज विश्वासी, भावुक और भावप्रवण! उसके पिता ने अपनी तमाम मद्यपता, बेपरवाही और अत्याचारों के बावजूद अपने इस लड़के को बड़े-बड़े सपने देखना और उन्हें पूरा करने के

लिए अथक परिश्रम करना सिखा दिया था। लेकिन इन तमाम गुणों के अलावा एक गुण उसे प्रकृति से मिला था और वह था—जन्म ही से विकसित उसका सहज-ज्ञान। किसी सुबह यदि अचानक उसके मन में कोई इरादा उठता अथवा कोई काम करने का उद्रेक होता तो यदि वह सुस्ती न कर जाता और उस काम को पूरा करने का बीड़ा उठा लेता (और वह प्रायः ऐसा करता) तो हमेशा उस इरादे में अथवा उस काम में उसे सफलता मिलती।

चमनलाल को देखते ही उसके मन ने कहा था, यह व्यक्ति प्रकाशक होते हुए भी भोला है। तब चेतन ने दुकान में जा कर अपना परिचय दिया था और लाला चमनलाल से राह-रस्म बढ़ा ली थी। दिन में एक-न-एक बार जब वह उधर से गुज़रता तो चौधरी ज़हीर और चमनलाल से मिलना न भूलता और यद्यपि इस बीच उसने 'चमन बुक डिपो' की दो पुस्तकों के प्रूफ़ पढ़ दिये थे—बिना एक भी पैसा लिये—लेकिन अपने कहानी-संग्रह का ज़िक्र तक न किया था। हाँ, मन-ही-मन उसने योजना बना ली थी कि मामला कैसे पटायेगा।

०

कविराज का जो यथार्थ रूप उसने शिमला में तथा बाद में लाहौर आ कर देखा था, उसने उसके अन्तर में किसी पवित्र चीज़ को हमेशा-हमेशा के लिए तोड़ दिया था। उसका सहज विश्वासी मन उनके प्रति अनायास शंका से भर उठा था—शंका से और क्रोध से—और उसने तय किया था कि वह अपना कथा-संग्रह छपवाने में उनसे किसी तरह की सहायता नहीं लेगा। उसने क्रोध के उस आवेग में वह समर्पण भी फाड़ दिया था, जो आरम्भिक श्रद्धा के आवेग में उसने लिखा था।

समर्पण पढ़ते हुए निमिष भर को उसके सामने अपने उस कथा-संग्रह के कहीं भी छप न पाने की सम्भावना भी आयी थी, लेकिन समर्पण फाड़ने के लिए बढ़ा हुआ अपना हाथ उसने रोका नहीं था। और मन-ही-मन उसने तय कर लिया था कि चाहे उसका संग्रह अनछपा रह

जाय, पर वह उस ढोंगी की सहायता नहीं लेगा ।

पर उसका संग्रह सचमुच अनछपा रह जायगा, इसका चेतन को पल भर के लिए भी विश्वास नहीं था। उसी क्षण से उसका अवचेतन मन इस समस्या पर सोचने लगा था। प्रकट अपनी घरेलू परेशानियों में उलझा, भाभी की बीमारी का इलाज-उपचार करता हुआ भी वह अपने संग्रह को छपवाने के सम्बन्ध में निरन्तर सचेत था।

जिस क्षण चमनलाल को देखते ही उसके मन ने कहा था कि यहाँ मामला पट सकता है, तभी उसने मुन्शी चन्द्रशेखर को लिख दिया था कि यदि वे उसके संग्रह के लिए दो-तीन पृष्ठों की भूमिका लिख दें तो वह ज़िन्दगी भर उनका एहसान मानेगा। उन्होंने वापसी डाक उत्तर दिया था कि वह संग्रह भेज दे, वे यथासम्भव जल्दी भूमिका लिख देंगे। उसकी तीन-चार कहानियाँ तो उन्होंने पढ़ रखी हैं, पर भूमिका लिखने से पहले एक नज़र उन्हें फिर से देख लेंगे। और न केवल उसने अपनी कहानियाँ भेज दी थीं, वरन वे कहानियाँ मँगा कर अपनी व्यस्तता में भूमिका लिखना भूल न जायें, इस खयाल से 'फ़ज़ल बुक डिपो' के मालिक से मिल कर उनकी मासिक पत्रिका 'वीणा' और साप्ताहिक 'जागृति' की एजेन्सी उसे दिलवा दी थी।

पंजाब में हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं की खपत नहीं थी और जब तीन-चार दिन बाद उसने देखा कि 'जागृति' के सब अंक वैसे ही पड़े हैं तो एक शाम उसने सब अंक उठाये थे और आवाज़ लगा कर अनारकली के एक चक्कर में ही उन्हें बेच आया था। 'वीणा' की पाँचों प्रतियाँ अपने आप बिक गयी थीं। दो सप्ताह उसने यह किया था और अपने काम की रिपोर्ट वह मुन्शी चन्द्रशेखर को भेजना नहीं भूला और यों महीने भर के अन्दर उसने अपने कहानी-संग्रह पर उनसे भूमिका लिखवा ली थी।. . .घर से निकलते वक्त उसकी बग़ल में जो मसौदा था, उसमें लाइनदार काग़ज़ों पर बड़े ही सुन्दर अक्षरों में लिखी कहानियों के ऊपर 'वीणा' के लेटरपैड के डेढ़ पृष्ठ पर मुन्शी चन्द्रशेखर के हाथ से लिखी

हुई भूमिका थी, जिसके सिलसिले में उसने शब्द गिन कर देख लिये थे कि पुस्तक के पूरे तीन पृष्ठों पर आयेगी।

यद्यपि इस बीच उसने चमन भाई को (उसने चन्द मुलाकातों ही में उनसे यह रिश्ता कायम कर लिया था) अपनी साहित्यिक सरगर्मियों के सिलसिले में बता रखा था, पर सावधानी के लिए उसने साथ में वह फ़ाइल भी ले ली थी, जिसमें उसने अपनी तमाम प्रकाशित रचनाओं के तराशे लगा रखे थे। चेतन जानता था कि सुन कर जिस बात का विश्वास नहीं होता, आँखों से देख कर तत्काल उस पर विश्वास हो जाता है। उसे यकीन था कि जब लाला चमनलाल स्वयं अपनी आँखों से देखेंगे कि उसकी कहानियाँ 'देश,' 'समाज,' 'बन्दे मातरम,' 'भीष्म' और 'वीर भारत' जैसे दैनिक पत्रों के रविवासरीय अंकों और 'बहार' और 'गुरु घण्टाल' जैसे साप्ताहिकों में ही नहीं छपीं, बल्कि महाशय देवदर्शन के 'मन्दिर' तक में स्थान पा चुकी हैं तो निश्चय ही उन पर रौब पड़ेगा और जब वह मुन्शी चन्द्रशेखर की अपनी लेखनी में लिखी भूमिका दिखायेगा तो फिर लाला चमनलाल को पटा लेना कठिन न रहेगा।

'मन्दिर' उच्चकोटि का मासिक था और महाशय देवदर्शन पंजाब के मुन्शी चन्द्रशेखर कहलाते थे और चेतन को 'मन्दिर' में छपी तीनों कहानियों का बड़ा मान था। सच्ची बात यह है कि उन्हीं में से एक को ले कर मुन्शी चन्द्रशेखर से उसका पत्र-व्यवहार शुरू हुआ था और उसने मुन्शीजी को अपना गुरु मान लिया था।

हुआ यह कि महाशय देवदर्शन के आदेश पर उसने 'मन्दिर' के लिए जो पहली कहानी लिखी थी, उस पर स्थानीय फ़ॉर्मन क्रिश्चियन कॉलिज की किन्हीं दो छात्राओं ने महाशयजी को एक सख़्त पत्र लिखा कि ऐसी आदर्शहीन कहानी 'मन्दिर' में छपने योग्य नहीं। कहानी यद्यपि नितान्त काल्पनिक थी, पर उसमें एक यथार्थ नुक्ता था, जिसका निभाव चेतन ने अपने जाने बड़ी चतुराई से किया था। उसकी थीम और उसके ट्रीटमेण्ट

की दाद महाशय देवदर्शन ने भी दी थी।

०

उस कहानी की याद आते ही भरे बाज़ार में चेतन नितान्त अकेला हो गया और अपनी कहानी उसके दिमाग़ में ऐसे आ गयी कि वह स्वयं उसका नायक हो गया।

०

कहानी का नायक एक फ़िल्मी अभिनेता था, जिसकी नयी शादी हुई थी। तभी उसने एक दिन पत्रिका में पढ़ा कि नारी अपने संगी को बेहद प्यार कर सकती है, पर यदि उसका पति उससे निरन्तर उपेक्षा का व्यवहार करे तो वह अपने प्यार के लिए कोई दूसरा आश्रय ढूँढ़ लेती है—फिर चाहे वह दूसरा पुरुष हो अथवा कोई निरीह पशु-पक्षी। जड़ हो अथवा जंगम!

अभिनेता को जाने क्या सनक सवार होती है कि वह लेख में दिये गये उस सत्य की परीक्षा करने का फ़ैसला करता है। वह अकारण अपनी पत्नी से दुर्व्यवहार करता है, उसे डाँटता है, फिर घर से ग़ायब रहने लगता है। स्टूडियो के काम से उसे दिन में जो कुछेक क्षण मिलते हैं, उन्हें घर में गुज़ारता है, लेकिन शाम को कभी नहीं आता। अपने फ़्लैट के सामने वह एक फ़्लैट किराये पर ले लेता है और भेष बदल कर वहीं रहने लगता है।

उसकी पत्नी अपने अकेलेपन को भरने के लिए सितार बजाने लगती है। वह उधर की खिड़की खोल कर बैठ जाता है। सुन्दर तरशी हुई दाढ़ी-मूँछों और कन्धों पर लहराते लम्बे बालों के कारण उसकी नव-परिणीता पत्नी उसे पहचान नहीं पाती। एक दिन जब उसकी पत्नी सितार बजाती है तो वह गीत गुनगुनाने लगता है। फिर यह रोज़ का क्रम बन जाता है और अन्ततोगत्वा एक दिन गाते-गाते वह नीचे उतर आती है। वह दीवार फाँद, उसके पास आ जाता है और जब वह उसकी गोद में बैठी होती है, वह दाढ़ी-मूँछें उतार देता है और हँस कर कहता

है—'देखा हमारा बहुरूप उर्मिला !'

लेकिन पत्नी उसे पहचान कर भाग जाती है और दूसरे क्षण पश्चाताप के आवेग में कपड़ों पर तेल छिड़क कर जल मरती है।

कहानी इतनी ही थी—नितान्त काल्पनिक, मेलोड्रैमैटिक और लगभग असम्भव, पर तब ऐसी ही कहानियों का प्रचलन था और चेतन इसे अपना मास्टरपीस समझता था। जब महाशय देवदर्शन ने उसे सुना था तो थीम के अनोखेपन की प्रशंसा की थी। जब उसके छपने के बाद कॉलेज की लड़कियों ने उन्हें पत्र लिखा तो महाशयजी ने अगले ही अंक में उस पत्र के हवाले से कहानी पर नोट दिया।

लड़कियों के पत्र का पूरा उद्धरण दे कर उन्होंने लिखा : 'इस कहानी में लेखक ने मर्दों को बताया है कि अगर तुम औरत की ओर से वेपरवाही बरतोगे तो वह भी इन्तकाम[1] को तैयार हो जायगी और जिस तरह वह रोती है, तुम भी अपनी ग़फ़लतों का मातम करोगे।

'यह कहानी मर्दों को वेदार[2] करती है। उन्हें दोनों कन्धों से पकड़ झँझोड़ती है और उनको ठीक रास्ते पर चलने के लिए मजबूर करती है। और फिर कहानी का आखिरी हिस्सा औरत के किरदार[3] को किन ऊँचाइयों पर पहुँचा देता है ? जब उसे मालूम होता है, वह ग़लत रास्ते पर चलती रही है तो वह दुनिया की हर दिलफ़रेब शै को अपने ऊपर हराम कर लेती है और अपनी ज़िन्दगी का अपने हाथों खात्मा कर लेती है—उसके सामने उसका शौहर खड़ा सोचता है—औरत ज़िन्दगी को हेच[4] समझती है। शौहर महज़ सोचता है—यहाँ लेखक ने औरत के मुकाबले में मर्द का कैरेक्टर कितना हलका और काबिले मलामत[5] दिखाया है।'

'मन्दिर' का अंक जब चेतन को मिला था और उसने यह नोट पढ़ा

---

१. प्रतिशोध। २. जगाती है। ३. चरित्र। ४. हेय। ५. भर्त्सना-योग्य।

था तो वह अत्यन्त उद्वेलित हो उठा था। उसके मन में कहीं शंका उठी थी कि पत्र-वत्र किसी लड़की ने नहीं लिखा (क्योंकि उर्दू पत्रिका कोई हिन्दू लड़की पढ़ती होगी और 'मन्दिर' नाम की पत्रिका मुसलमान लड़कियों में मकबूल होगी, इसका विश्वास चेतन को नहीं था।) उसका खयाल ही नहीं, पूरा विश्वास था कि उनकी पत्नी ने कहानी पढ़ कर उसके बारे में उनसे शिकायत की है। वे उर्दू पढ़ लेती थीं, पक्की आर्य-समाजिन थीं और ऊपर से तानाशाह! चेतन को लगा, उन्होंने महाशय जी को डाँटा है कि ऐसी आदर्शच्युत कहानियाँ 'मन्दिर' जैसी उच्चकोटि की सामाजिक पत्रिका में आप क्यों छापने लगे हैं. . .और महाशयजी ने अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए क्रिश्चियन कॉलिज की लड़कियों के हवाले से कहानी की निन्दा भी कर दी और फिर लेखक के नाते चेतन के आँसू भी पोंछ दिये थे।

चेतन उन दिनों महाशयजी की सिफ़ारिश से 'बन्दे मातरम' में काम करने लगा था। रात को डेढ़-दो बजे जब वह दफ़्तर से आ कर लेटा तो उसे नींद न आयी थी। तब जाने उसके मन में क्या उबाल उठा था, उसने एक पत्र मुन्शी चन्द्रशेखर को लिखा था। उसी अंक में उसकी एक और कहानी छपी थी। साथ ही मुन्शीजी की भी एक कहानी थी। चेतन ने उसकी प्रशंसा की थी, फिर अपनी कहानी के सम्बन्ध में उनकी राय माँगी थी। साथ ही उसने 'मन्दिर' के पिछले अंक की अपनी कहानी का उल्लेख किया था और कॉलिज की लड़कियों की आलोचना और महाशय देवदर्शन के नोट का हवाला दे कर उसने उस कहानी के बारे में मुन्शीजी की राय माँगी थी—क्या वह कहानी आदर्शच्युत है? क्या उसकी थीम में कुछ भी यथार्थता नहीं? और अन्त में उसने लिखा था:

'रात बहुत हो गयी है, पर यह सब सोच-सोच कर मुझे नींद नहीं आ रही। मैं जानता हूँ, आप बहुत मसरूफ़[1] होंगे, पर अगर एक नये

---

१. व्यस्त।

लेखक की हौसला-अफ़ज़ाई[२] और दिमाग़ी शान्ति के लिए आप अपनी सच्ची राय देंगे तो मुझे बहुत खुशी और इतमीनान होगा। आपकी इस मेहरबानी के लिए मैं ज़िन्दगी भर आपका एहसानमन्द रहूँगा।'

चेतन को ज़रा भी विश्वास नहीं था कि उसके पत्र का कभी उत्तर मिलेगा। लेकिन जब वापसी डाक उसे मुन्शी चन्द्रशेखर का एक कार्ड मिला, जिसमें न केवल उन्होंने उसकी दोनों कहानियों की तारीफ़ की थी, बल्कि यह भी लिखा था कि वे तो उसे कोई कोहना-मश्क अदीब[३] समझते थे और कहानी की प्रशंसा करते हुए अन्त में लिखा था—'मेरे खयाल में कोई नयी चीज़ कहने से कहीं बेहतर है कि फ़ितरत[४] का सच्चा खाका खींच दिया जाय!'

चेतन ने पहली बार पत्र पढ़ा था तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास न आया था। डाकिये से पत्र लेने के बाद वहीं खड़ा-खड़ा वह कई बार कार्ड पढ़ गया था. . .'मुझे दोनों कहानियाँ बेहद पसन्द आयीं. . .मैं तो तुम्हें कोई कोहना-मश्क अदीब समझता था'. . .'मेरे खयाल में कोई नयी चीज़ कहने से कहीं बेहतर है कि फ़ितरत का सच्चा खाका खींच दिया जाय'. . .मुन्शीजी के कार्ड का एक-एक वाक्य उसके कानों में गूँज रहा था। कुछ भी करना उसके लिए असम्भव हो गया था। तब उसने साइकिल उठायी थी और लाहौर के तूल-अर्ज़ में अपने तमाम मित्र-परिचितों को मुन्शीजी का पत्र कुछ इस अन्दाज़ में दिखाता फिरा था, जिसके बारे में ग़ालिब ने लिखा है: कोई पूछे कि यह क्या है तो छुपाये न बने।

मुन्शी चन्द्रशेखर की इस प्रशंसा पर उसने उन्हें धन्यवाद दिया था और अपनी आगामी कहानियों के सिलसिले में उनका पथ-निर्देश चाहा था। और इसके बाद मुन्शीजी के साथ निरन्तर चलते रहने वाले पत्र-व्यवहार का यह परिणाम हुआ था कि न केवल उन्होंने उसके कहानी-संग्रह की भूमिका लिखना स्वीकार किया था, वरन सचमुच लिख भी दी थी।

---

२. प्रोत्साहन। ३. प्रौढ़ लेखक। ४. प्रकृति।

०

चेतन की बग़ल में अपनी कहानियों के मसौदे पर सबसे ऊपर मुन्शी चन्द्रशेखर की भूमिका थी; फिर हर कहानी का सार उसने एक-एक ऐसे गद्य गीत में दिया था, जो न सिर्फ़ अपने में एक छोटी-सी कहानी था, वरन जिसे कहानी के फ़्लाई लीफ़ पर दिया गया था और जो उस कहानी का सार भी प्रस्तुत करता था। उसने अपनी कहानियों के ये गद्य गीत इतने परिचितों-अपरिचितों को सुनाये थे कि उसी तरह वे उसे कण्ठस्थ हो गये थे, जैसे कभी अपने पंजाबी बैत और उर्दू ग़ज़लें बार-बार सुनाने पर उसे याद हो जाती थीं।

वह कृष्णा गली से निकल कर शाह आलमी से होता हुआ शीतला मन्दिर के पास से गुज़र रहा था और मन-ही-मन उन गद्य गीतों का चुनाव कर रहा था, जो वह 'चमन भाई' कहाने वाले उस लाला को सुनाने की सोचता था—जो इतना मूर्ख था कि अपने पिता अथवा माता के नाम पर प्रकाशन का नाम रखने के बदले अपने ही नाम से उसे चला रहा था। 'यह भोला-भाला दिखायी देने वाला लाला कहीं घोर अहं-वादी है'—चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'वह उसे पहला ही गद्य गीत सुनायेगा, जो उसने पाठकों, आलोचकों, मित्रों और स्नेहियों को सम्बो-धित करते हुए लिखा है और उसके अर्थ समझायेगा और जब उसका दिल गर्म लोहे की तरह उदारता की ऊष्णता से फैल जायगा तो वह चोट करेगा—और उसने मन-ही-मन वह गद्य गीत दोहराया :

प्यासा मुसाफ़िर तेरा दरवाज़ा खटखटा रहा है।
उसे अपने ठण्डे कमरे में बुला ले, जो
ख़स की टट्टियों से आने वाली हवा के कारण
जाँफ़िज़ा और सरूर-अंगेज़[1] बन गया है। और
जहाँ बर्फ़ में बियर की बोतलें लगी

---

१. सुखद और नशीला।

हैं और पानी यख़[1] हो गया है।
और जहाँ ठण्डे शर्बत
किसी पाक दिल के नेक ख़यालात की तरह
ख़ूबसूरत बोतलों में बन्द पड़े हैं।
तू उसे बुला और अगर अपनी कीमती
शराब और शर्बतों से दो बूँद नहीं दे सकता
तो तसल्ली के दो अलफ़ाज़ के साथ
खाली पानी पिला दे। बटोही
प्यासा न रहेगा। नदी अपने पहलू में
फ़राख़[2] दिल लिये
उसकी प्यास बुझा देगी। और
तेरा यह सामाने-राहत
मिट जायगा। और तेरी ख़ाली झोली
मुसाफ़िर की दुआ तक से महरूम[3]
आसमान की ओर ताकेगी।

चेतन मन-ही-मन अपने इस गद्य गीत पर झूम गया। उसे विश्वास हो गया कि इसका पर्याप्त प्रभाव लाला चमनलाल, प्रोप्राइटर 'चमन बुक डिपो' पर पड़ेगा।. . .

अपनी कहानियों और भूमिका स्वरूप उनके फ़्लाई लीफ़ पर दिये गये गद्य गीतों में रमा चेतन, मंज़िल पर पहुँच गया था। चौखट में लगे चित्र की तरह लाला चमनलाल अपनी बुक डिपो में सजे हुए थे। चेतन ने बढ़ कर 'आदाब अर्ज़ चमन भाई' कहा और उनके सामने कुर्सी पर जा डटा।

०००

---

१. हिम। २. उदार। ३. वंचित।

प
च्
ची
स

लेकिन जितनी बातें लाला चमनलाल से करने के लिए चेतन ने रास्ते भर में सोची थीं, उनमें से वह एक भी नहीं कर पाया।

जब उसके 'आदाब' के उत्तर में खीसें निपोरते हुए 'चमन भाई' ने 'तस्लीम', 'तस्लीम,' कहा तो न जाने चेतन ने उनकी आँखों में क्या देखा कि सिर को ज़रा-सा उनके निकट ले जाते हुए वे सब बातें भूल कर बड़े भेद-भरे स्वर में उसने कहा, 'चमन भाई एक ज़रूरी सलाह के लिए मैं आपके पास आया हूँ!'

चमन भाई की आँखें यह सम्मान पा कर एकदम फैल गयीं और उन्होंने अपने सारे वुजूद को जैसे उसकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए कहा, 'कहिए कहिए, क्या हुक्म है?'

'बात यह है चमन भाई कि मुझे कहानियाँ लिखते हुए लगभग छै बरस हो गये हैं और लाहौर का कोई भी रोज़नामा, हफ़्तावार या माहाना[1] ऐसा नहीं, जिसमें मेरी कहानियाँ न छपी हों। आप ही देखिए (इस मरहले पर

---

१. मासिक पत्रिका।

चेतन ने फ़ाइल खोल कर अपनी कहानियों के तराशे उनके सामने रख दिये और एक-एक को उलट कर दिखाते हुए बोला :) कोई भी ऐसा अहं पर्चा नहीं, जिसमें मेरे अफ़साने नहीं छपे, लेकिन आज तक मेरा एक भी मजमूआ मंज़रे-आम पर नहीं आया।'[1]

लाला चमनलाल की आँखों में शंका की हलकी-सी सिकुड़न पैदा हुई कि चेतन कहीं उन्हीं से तो संग्रह छापने को नहीं कहने जा रहा। चेतन ने उस शंका को लक्ष्य किया और उसने बिना रुके अपनी बात आगे बढ़ायी।

'मैं कविराज रामदास के साथ इस बार शिमला गया था। मुझ पर उनकी बड़ी इनायत[2] है। उनके लिए मैंने बच्चों की देख-रेख पर किताब लिखी है। उन्होंने मुझ पर ज़ोर दिया कि मैं अपने चुने हुए अफ़सानों का एक मजमूआ तरतीब दूँ और वे उसे छपवा देंगे।'

यहाँ चेतन क्षण भर को रुका कि यह बात लाला चमनलाल के उस ठस दिमाग़ में घर कर जाय। फिर बोला :

'आप तो जानते हैं कि कविराज अपने दवाखाने से एक माहनामा निकालने लगे हैं, जिसमें उन्होंने कुछ सफ़हात[3] अदब के लिए भी वक्फ़[4] कर रखे हैं और उस सिलसिले में मैं ही उनकी मदद करता हूँ। छोटे-छोटे अफ़साने और मज़मून लिखता हूँ। कविराज को मेरे मज़मून और अफ़साने बेहद पसन्द हैं। उन्होंने पिछले महीने यह पेशकश की कि वे काग़ज़ ले देंगे और मजमूआ[5] छपवाने में मेरी मदद करेंगे। बदले में उतने की किताबें मैं उन्हें दे दूँगा। वो अपने पर्चे के नये ग्राहकों को इनाम के तौर पर अपने 'विवाहित आनन्द' और मेरी कहानियों के मजमूए की एक-एक किताब देंगे।'

चेतन फिर यहाँ क्षण भर रुका। तब अपने स्वर को कुछ और

---

१. एक भी संकलन आम लोगों के देखने में नहीं आया। २. कृपा। ३. पृष्ठ। ४. नियत। ५. संग्रह।

धीमा करके उसने कहा, 'अब मेरे सामने मसला यह है चमन भाई कि अपने रुपये के बदले वो तो किताबें ले लेंगे और अपने ग्राहकों में बाँट देंगे। मैं उन छपी हुई किताबों का क्या करूँगा ? (और इससे पहले कि चमन भाई कुछ कहें, उसने आगे कहा) यूँ मैं जानता हूँ कि मैं आपको दे दूँगा तो आप मेरा खर्च और रायल्टी निकाल ही देंगे, लेकिन जो बात मेरे मन में खटकती है, वो यह है कि जो किताब मुफ़्त बँटती है, उसकी कोई अहमियत नहीं रह जाती।'

'हाँ यह तो आप ठीक कहते हैं।' चमन भाई ने कहा।

'अब मेरे चुने हुए अफ़सानों की किताब है। इसमें तीन तो महाशय देवदर्शन के 'मन्दिर' ही में छपे हैं, जिनमें पहले ही पर खूब हंगामा मचा है।'

और चेतन ने फ़ाइल खोल कर न केवल फ़ॉर्मन क्रिश्चियन कॉलेज की लड़कियों का पत्र पढ़ कर सुनाया, वरन महाशय देवदर्शन का नोट और मुन्शीजी का कार्ड भी उन्हें दिखाया।

सहसा चमनलाल की आँखें फैल गयीं, 'मुन्शीजी ने कहानी की तारीफ़ की है ?'

'पढ़ लीजिए !' और चेतन ने फ़ाइल अपनी ओर कर के पूरा कार्ड चमनलाल को पढ़ कर सुनाया। फिर बोला, 'यही नहीं, तब से मुन्शी जी के साथ बाकायदा मेरी खतो-किताबत है। महाशय देवदर्शन ने मेरी कहानियों की सिफ़ारिश 'लखनपाल ब्रदर्ज़' से की थी। उन्होंने कहा कि अगर महाशय देवदर्शन या मुन्शीजी उसका दीबाचः[1] लिख दें तो वे छाप देंगे और १५ प्रतिशत रायल्टी देंगे।' (प्रकट ही चेतन झूठ बोल रहा था और यह भी भूल गया कि महीना भर पहले ही एक सुबह उसने फिर कभी झूठ न बोलने का प्रण किया था।)

वह क्षण भर चुप रहा। फिर उसने कहा, 'महाशयजी तो चाहते

---

१. भूमिका।

ही थे कि भूमिका लिखें, मैं एक बार कहता तो वे लिख देते, पर मैं मुन्शीजी को लिख चुका था।'

'क्या मुन्शीजी भूमिका लिखने को तैयार हो गये हैं?' लाला चमनलाल ने उत्साह से कहा। प्रकट ही चेतन की योजना सफल हो रही थी और उसके कहानी-संग्रह में लाला चमनलाल की दिलचस्पी बढ़ रही थी।

'लिखने को तैयार होने की बात नहीं,' चेतन ने सोल्लास कहा, 'उन्होंने लिख दी है और हक यह है कि बहुत अच्छी लिखी है। लेकिन मेरे मन में शक पैदा हो गया है और इसीलिए मैं आपसे राय लेने आया हूँ।'

और यहाँ चेतन ने लखनपाल ब्रदर्ज़ का वह किस्सा सुनाया, जो उसने महाशय देवदर्शन से सुना था कि कैसे उन्होंने एक भी पैसा दिये बिना तुर्गनेव के उपन्यास का अनुवाद बानगी-बानगी ही में करवा लिया था।

'जो प्रकाशक इतना बददयानत है चमन भाई, उसके यहाँ अपनी किताब देने को मेरा जी नहीं होता। मुझे रायल्टी की फ़िक्र नहीं, पर कोई कहे कि रायल्टी देंगे और न दे तो मैं उसे ज़िन्दगी भर माफ़ नहीं कर सकता।'

'ज़रा मुन्शीजी का दीबाचः तो दिखाइए!' लाला चमनलाल ने कहा।

'उन्होंने इस पर उन्वान[1] दिया है—तआरुफ़[2],' चेतन ने कहा और फ़ाइल लाला चमनलाल के आगे कर दी। लाला चमनलाल भूमिका पढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों उनकी निगाहें सतरों पर फिसलती जातीं, चेतन के सामने वे शब्द, वाक्य और पंक्तियाँ मूर्तिमान होती जातीं। मुन्शीजी के पत्र की तरह उनकी भूमिका भी उसे कण्ठस्थ थी:

---

१. शीर्षक। २. परिचय।

'दीगर असनाफ़े सुखन[1] की तरह अफ़साने की कामयाबी का राज़ भी उसकी तासीर[2] में है।' मुन्शीजी ने लिखा था। 'और तासीर क्या है? जब दिलचस्पी कमाल का दर्जा हासिल कर लेती है तो वह तासीर बन जाती है। दिलचस्पी के कई अरकान[3] हैं—मसलन ज़बान की नमकीनी और ज़राफ़त,[4] ख़यालात की जिद्दत-ो-नुदरत,[5] मशाहदात की वाकईयत और असलीयत[6]—और वह ख़ुदादाद मलका,[7] जिससे मुसन्नफ़[8] इन्सान के जज़्बात की गहराई तक पहुँचता है. . .'

और यूँ 'तासीर' के विभिन्न अवयवों का उल्लेख कर, मुन्शीजी ने लिखा था कि इन सब के साथ अभिव्यक्ति में अनायासता और सादगी का होना ज़रूरी है। जिस प्रकार कोई नाज़ुक शेर आँखों के सामने आते ही दिल में हलचल मचा देता है, इसी तरह कहानी भी वही प्रिय होती है, जिसको पढ़ कर हमारे दिल में एक मीठा दर्द, एक सरूर-भरी बेचैनी पैदा हो जाय, जैसे हमारी कोई प्यारी चीज़ खो गयी हो,जैसे हम किसी स्वर्गिक घाटी में गुम हो गये हों!

प्रभाव की इस प्रकार व्याख्या करके मुन्शीजी ने आगे लिखा था कि चेतन उनके प्रिय मित्र हैं। वे बराबर उनकी कहानियों को शौक और रग़बत[9] से पढ़ते रहे हैं और उन्हें चेतन की अधिकांश कहानियों में तासीर का एहसास हुआ है।

चेतन नया कथाकार था। उसकी कहानियों में न वह प्रभाव था, न वे सारे गुण, जो मुन्शीजी ने प्रभाव के अंग बताये थे। उन्होंने लिख दिया था तो उसे अपनी कहानियों के इन गुणों में पूरा यकीन हो गया था। भूमिका पढ़ते हुए चमनलाल की आँखों में जो भाव पैदा हो रहे थे, वह पूरी एकाग्रता से मन-ही-मन उनका विश्लेषण कर रहा था। उसे

---

१ विधाओं। २. प्रभाव। ३. अंग, अवयव। ४. हास्य। ५. मौलिकता और नवीनता। ६. अनुभूतियों की यथार्थता और सच्चाई। ७. दैवीय सामर्थ्य। ८. लेखक। ९. दिलचस्पी और लगाव।

लगा कि भूमिका को पढ़ते हुए चमनलाल पर पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है।

तासीर की व्याख्या करके और चेतन के कथाकार की प्रशंसा करके मुन्शीजी ने एक-एक कहानी के गुण बताये थे। उनकी याद करके सहसा चेतन के मन में थोड़ी-सी चुभन हुई। अपने पहले कार्ड में जिन दोनों कहानियों की प्रशंसा मुन्शीजी ने की थी और लिखा था कि वे मानव-स्वभाव का सच्चा खाका खींचती हैं, उन्हीं की आलोचना उन्होंने भूमिका में कर रखी थी। 'मन्दिर' में छपने वाली पहली कहानी के बारे में उन्होंने लिखा था कि उसमें यथार्थता तो है, पर उनके विचार में लेखक ने उसे बेदर्दी से, कहा जाय कि बेज़रूरत रौंद डाला है। जिस कहानी का अन्त उस यथार्थता की सुखद स्वीकृति में होना चाहिए था, उसे दुखद दुर्घटना बना दिया गया है और दूसरी कहानी के बारे में उन्होंने लिखा था कि उसमें एक दुश्चरित्र और पत्थर-दिल पति की आत्मा तो है, पर आवश्यकता से कहीं ज़्यादा भयानक और डरावनी; कि यथार्थ जगत में पश्चाताप का कोई मोल भले ही न हो, पर कहानी के जगत में हम उसे असफल नहीं देखना चाहते!

प्रकट ही मुन्शीजी ने जब पहला कार्ड लिखा था तो नये लेखक का प्रोत्साहन उनका ध्येय था, पर जब भूमिका की ज़िम्मेदारी उन्हें निभानी पड़ी तो जिन कहानियों की उन्होंने प्रशंसा की थी, उनकी एक-एक त्रुटि भी उन्होंने दिखा दी।

लेकिन चेतन उस उम्र से गुज़र रहा था, जब नये लेखक को आलोचना सह्य नहीं होती। जब उसकी अनुभवहीनता और आत्म-विश्वास की कमी उसे मरकहे बछेरे-ऐसा बना देती है और वह पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देता। चेतन ने मन-ही-मन तय कर लिया था कि यदि उसके कथा-संग्रह की छपाई का डौल कहीं बैठा तो वह 'तासीर,' 'हफ़ीज़' जालन्धरी, 'तबस्सुम,' हरिचन्द 'अख्तर' अथवा किसी अन्य सशक्त कवि अथवा आलोचक से उन दोनों कहानियों के सिलसिले में अपने पक्ष का समर्थन करवायेगा। कोई तैयार न हुआ तो वह पण्डित रत्न ही से

कहेगा कि इस सन्दर्भ में कुछ पंक्तियाँ लिख दें।

लाला चमनलाल जब भूमिका पढ़ रहे थे तो चेतन को भय था कि मुन्शीजी के कार्ड की पंक्तियाँ और भूमिका की पंक्तियों में उन्हें कुछ विसंगति लगेगी, लेकिन जब लाला ने भूमिका पढ़ कर फ़ाइल उसकी ओर बढ़ायी तो उनके चेहरे पर किसी तरह की शंका अथवा शुबहे का आभास न था। तब चेतन ने स्वयं ही कहा :

'मुन्शीजी ने उन्हीं दो कहानियों की तनकीद[1] की है, अपने कार्ड में उन्होंने जिनकी तारीफ़ की थी। शायद दीबाचः लिखते वक्त उन्हें लगा कि एकदम नये लेखक की उन्हें इतनी तारीफ़ नहीं करनी चाहिए, इसलिए उन्होंने वहाँ भी खामियाँ दिखा दीं, जहाँ वे नहीं हैं। मैंने ये कहानियाँ अपने चन्द दोस्तों को सुनायी हैं और मेरे दोस्त उर्दू के मशहूर अदीब और शायर हैं। उनका खयाल है कि वे एकदम मुकम्मल हैं। मजमूए के छपने की बात तय हो जाय तो मैं इस पर एक और मज़मून लिखवाऊँगा, जिनमें इन शाहकार (मास्टरपीस) कहानियों पर मुफ़स्सल[2] बहस रहेगी।'

लेकिन लाला चमनलाल ने जैसे चेतन की कोई बात नहीं सुनी, क्योंकि जब वे बोले तो जो बात उन्होंने की, उसमें चेतन की कहानियों अथवा मुन्शीजी की भूमिका का कहीं ज़िक्र नहीं था। उन्होंने बताया कि जब अपने वालिदे-बुज़ुर्गवार[3] से उन्होंने चमन बुक डिपो की ज़िम्मेदारी ली थी तो उसमें कच्चा माल छपता था। जन्त्रियाँ, पंचांग, किस्से और धार्मिक पुस्तकें ! उनके पिता ने यही सब कच्चा माल छाप कर अमृतसर में बिल्डिग खड़ी कर ली थी, जिसका तीन सौ रुपया महीना किराया उन्हें आ रहा था। लेकिन लाला चमनलाल को शुरू से ही कुछ शेर-ो-शायरी का शौक था। अमृतसर के प्रसिद्ध उर्दू शायर, उस्ताद सादिक

---

१. आलोचना। २. सविस्तार। ३. समादरणीय पिता।

के सामने उन्होंने ज़ानु-ए-तलम्मज़ तह किया[1] और ऐसी ग़ज़लें लिखीं, जिनकी दाद सभी हमअसरों[2] ने दी (और यह सब सुनाते हुए लालाजी ने उठ कर रैक से बहुत ही खूबसूरत गेट-अप में आवृत्त एक पुस्तक चेतन के हाथ में ला कर रखी—चमनिस्ताँ—)। 'मेरी ग़ज़लों और नज़्मों का यह पहला मजमूआ छपा है,' उन्होंने कहा, 'जिसकी तम्हीद[3] हज़रत नूह नारवी ने लिखी है और दीबाचः सीमाब अकबराबादी ने !'

चेतन ने कहा कि उसने यह मजमूआ देख रखा है और इसी से प्रभावित हो कर वह उनकी ओर आकर्षित हुआ था (मन में उसने कहा कि उसकी लिखाई-छपाई, काग़ज़ और गेट-अप के कारण ही वह प्रभावित हुआ था, वरना ग़ज़लें तो जैसी हैं, वैसी ही हैं और शायर से पारिश्रमिक ले कर ही उनकी दाद दी जा सकती है—पर अपने ये भाव उसने अपने चेहरे पर नहीं आने दिये और लाला चमनलाल प्रसन्न हो गये।)

'पिताजी की वफ़ात[4] के बाद मैंने चमन बुक डिपो का काम सँभाला,' लाला चमनलाल ने गर्व-स्फीत स्वर में कहा, 'तो मैंने यह किया कि जन्त्री-फन्त्री, पंचांग-वंचांग और रद्दी किस्से छापने के बजाय मैं ऊँचे दर्जे का अदब छापूंगा और उर्दू पब्लिशिंग में एक इन्क़लाब बरपा कर दूँगा।'

चेतन ने दाद देते हुए कहा कि उन जैसे दो-एक पब्लिशर मैदान में आ जायें तो उर्दू पुस्तकों के प्रचार-प्रसार में अभूतपूर्व उन्नति हो। यह उन्होंने अच्छा किया कि अपने प्रकाशन को अमृतसर से लाहौर ले आये। उनके लिए उचित मैदान यहीं है।

और तब सहसा लाला चमनलाल ने वह बात कही, जिसकी प्रतीक्षा चेतन इतनी देर से कर रहा था। उन्होंने कहा, 'आपने लखनपाल ब्रदर्ज़

---

१. शागिर्दों का घुटना टेका। २. समकालीनों। ३. भूमिका। ४. देहान्त।

से बात कर ली है, वरना आप चाहते तो आपका यह मजमूआ मैं छाप देता !'

सहसा चेतन का दिल ज़ोर से धड़क उठा। उसके हृदय का रक्त उसके चेहरे की ओर दौड़ चला, लेकिन पूरे संयम से अपनी प्रसन्नता पर अधिकार पा कर, अपने शब्दों को अतिरिक्त उल्लास से बचाते और इस प्रयास में स्वर को और भी धीमा करते हुए उसने कहा, 'चमन भाई, आप मेरी किताब छापें तो इससे बढ़ कर ख़ुशी की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है। मैंने तो जब से आपको देखा है, आपकी शख़्सियत[1] से मुतासिर[2] हुआ हूँ और आपके हुस्ने-सुलूक[3] ने तो मेरा मन मोह लिया है। लखनपाल-ब्रदर्ज़ की बात महाशय देवदर्शन ने कही थी और सच्ची बात है कि मेरा मन भी था, पर उनकी बददयानती की बात सुन कर मेरा हौसला पस्त हो गया है। मुझे रायल्टी-वायल्टी की फ़िक्र नहीं। नौकरी मेरी लग गयी है, काम चलने लगा है। बस आप किताब बढ़िया छाप दीजिए . . .'

'उस तरफ़ से आप निशाख़ातिर रहें ! मैं इसका गेट-अप इतना बढ़िया दूँगा कि आपकी और आपके दोस्तों की तबियत ख़ुश हो जायगी। डस्ट-कवर बढ़िया आर्टिस्ट से बनवाऊँगा और इसरार कदीमी प्रेस में छपने को दूँगा। लेकिन रायल्टी का आप ज़रूर तय कर लीजिए। मैं अपने किसी दोस्त को शिकायत का मौका नहीं देना चाहता। पन्द्रह नहीं, मैं दस फ़ीसदी रायल्टी दूँगा, लेकिन जो कहता हूँ, वह दूँगा ज़रूर !'

'अरे चमन भाई, आप इसकी फ़िक्र न करें।' चेतन का सारा तनाव ख़त्म हो गया और वह ढीला हो कर कुर्सी पर पीछे को पसर गया।' रायल्टी के खाते में मुझे अपने यहाँ की कुछ किताबें दे दीजिएगा। यदि एक फ़ीरोज़ुल्लग़ात दे दें तो क्या बात है। उर्दू डिक्शनरी

१. व्यक्तित्व। २. प्रभावित। ३. सद्व्यवहार। ४. उर्दू शब्दकोश

की मुझे बड़ी ज़रूरत है। रही बाकी पैसों की बात, तो आप उतने की मेरी ही किताब की कापियाँ दे दीजिएगा। वादा करता हूँ कि बेचूंगा नहीं, न ऐसे दोस्तों में बाटूँगा, जो किताब ख़रीद सकते हैं।'

'नहीं, नहीं आप बेच भी सकते हैं, मुझे इसमें कोई एतराज़ नहीं। किताबें लेना चाहें, किताबें ले लीजिएगा; रायल्टी लेना चाहें, रायल्टी!'

और औदार्य की परम अनुभूति के साथ फूल कर लाला चमनलाल भी कुर्सी पर फैल गये।

'तो यह बात पक्की हो गयी?' चेतन ने उठ कर हाथ बढ़ाते हुए कहा, 'मैं अपने दोस्तों को बता दूँ—पण्डित रत्न और महाशय देवदर्शन चाहते हैं कि मेरे अफ़सानों का मजमूआ जितनी जल्दी हो, छप जाय!'

लाला चमनलाल ने अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया। 'आप शौक से एलान कर दीजिए। आप मसौदा मुझे दीजिए, मैं आज ही कातिब के हवाले करता हूँ।'

'लेकिन मैं चाहता था, मुन्शीजी के 'तआरुफ़' के साथ एक तम्हीद भी रहे।' चेतन ने कहा, 'मैं पण्डित रत्न, तबस्सुम साहब, अख्तर साहब—किसी से भी लिखवा लूंगा। थोड़ा वक्त लगेगा। जब आप छापने ही लगे हैं तो ज़रा ढंग से छपे।'

'उस सब के लिए कुछ वरक छोड़ देते हैं और कहानियों की किताबत शुरू करा देते हैं। आपके पास अपनी कहानियों के तराशे तो हैं ही। उनकी मदद से आप तम्हीद लिखवा लीजिए।'

चेतन ने मसौदा चमन भाई की ओर बढ़ा दिया और उठा, 'अच्छा तो अब इजाज़त दीजिए। आज ही से मैं इसकी तम्हीद के पीछे पड़ता हूँ और इंशाअल्लाह हफ़्ते-पखवाड़े में लिखवा लूँगा!'

चमन भाई ने उसके बढ़े हुए हाथ को बड़े तपाक से अपने दोनों हाथों में दबा लिया। उनके हाथ को आभार से दबा कर और हिला कर चेतन पलटा और दुकान की सीढ़ियाँ उतर आया।

०००

छ
ब
बी
स

हालाँकि सीढियों से उसके पैर नीचे बाज़ार की ठोस धरती पर ही पड़े, लेकिन चेतन वास्तव में इतना हलका-फुलका महसूस कर रहा था कि जैसे वह चल नहीं रहा, उड़ रहा हो। 'चमन बुक डिपो' से निकलते ही उसके जी में आयी, पण्डित रत्न के जाय और उन्हें बताये कि उसका कहानी संग्रह छप रहा है, जिस पर स्वयं मुन्शीजी ने भूमिका लिखी है। 'लेकिन पण्डितजी तो दफ़्तर में होंगे,' उसने सोचा। दफ़्तर में वह उनसे बहुत कम मिलता था। फिर उसने चाहा कि भाई साहब को जा कर यह सुसमाचार दे। वह 'चमन बुक डिपो' से चन्द कदम ही अनारकली की ओर आया होगा कि सहसा उसकी नज़र वायीं ओर 'उर्दू बुक स्टाल' के बोर्ड पर गयी। उसने उधर को निगाह दौड़ायी तो दुकान के तख्ते पर रखे बुक-केस के ऊपर से उसने देखा—अन्दर चौधरी ज़हीर कुछ लोगों में घिरा है। सूट-बूट में लैस एक व्यक्ति पर उसकी निगाह गयी। तब बिना कुछ सोचे-समझे वह दुकान के तख्ते पर चढ़ गया और वहीं से उत्साह और उल्लास-भरे स्वर में चिल्लाया :

'लो भई ज़हीर, मेरी कहानियों का मजमूआ तो छप रहा है।'

उस सूट-बूट धारी व्यक्ति ने पलट कर उसकी ओर देखा तो चेतन ने दोनों हाथ माथे की ओर ले जाने का संकेत-सा करते हुए होटों ही में 'नमस्कार' किया।

यद्यपि गर्मी के बावजूद सूट-बूट में कैद उस व्यक्ति ने उसके 'नमस्कार' के उत्तर में ज़रा-सा सिर हिला दिया, पर उसने चेतन को पहचाना है, इसका कोई आभास उसकी आँखों में नहीं मिला। अथवा यों कहा जाय कि उन आँखों में पहचान लेने की नहीं, पहचान सकने की कोशिश भर थी।

उसका संग्रह कहाँ छप रहा है अथवा कौन छाप रहा है?—चेतन को ज़हीर से किसी ऐसे ही प्रश्न की अपेक्षा थी, लेकिन ज़हीर ने जैसे उसकी बात नहीं सुनी, उसके बढ़े हुए हाथ को तनिक औपचारिकता से दबा कर वह उसे अपने सामने खड़े लोगों का परिचय देने लगा।

'ये हैं मौलाना चिश्ती—अंजुमन जमीअतुल-उलमा-ए-हिन्द के सेक्रेटरी। ये हैं मिस्टर मणि भाई गोबिल, इंजीनियर हैं। अंजुमन की तरफ़ से उर्दू का लाइनो टाइप ईजाद करने आये हैं।' और ज़हीर ने तीसरे व्यक्ति की ओर संकेत किया—'ये हैं मिस्टर धर्मदेव वेदालंकार—मिस्टर गोबिल के मेज़बान! हिन्दी के बहुत बड़े अदीब हैं और यहीं हस्पताल रोड पर इनका इदारा (प्रकाशन) है. . .लेकिन इन्हें तो तुम जानते होगे।'

'हाँ मैं जानता भी हूँ और इनसे मिला भी हूँ।' कहते हुए चेतन ने उनकी ओर हाथ बढ़ाया।

औपचारिक गर्मजोशी से चेतन के हाथ को अपने हाथ में लेते हुए वेदालंकार जी ने साश्चर्य पूछा, 'मुझसे? कहाँ?' और उनकी आँखें निरन्तर उसे पहचानने का प्रयास करती रहीं।

चेतन ने उनसे हाथ मिलाते हुए कहा, 'छोड़िए उस मुलाकात को।

लेकिन मैंने आपकी कहानियाँ भी पढ़ी हैं और मैं आपको अर्से से जानता हूँ।'

तब वेदालंकारजी ने उसका परिचय जानने की ग़रज़ से पूछा, 'और आप ?'

'मैं एक मामूली उर्दू अफ़साना-निगार हूँ।' चेतन ने कहा। पर जैसे उसने कहा, उससे लगता था कि वह मामूली नहीं, ख़ासा ग़ैरमामूली कथाकार है।

तब चौधरी ज़हीर ने जैसे चेतन के उस भाव को अभिव्यक्ति देते हुए कहा, 'मामूली नहीं, चेतनानन्द उर्दू के मुमताज़ (प्रतिष्ठित) अफ़साना-निगार हैं। रोज़नामा 'वीर भारत' में असिस्टेण्ट ऐडीटर हैं। अभी इनकी कहानियों का पहला मजमूआ छपने जा रहा है और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसका दीबाचः लिखा है।'

श्री धर्मदेव वेदालंकार ने जैसे चेतन को नये सिरे से देखा और बड़े तपाक से फिर उससे हाथ मिलाते हुए कहा, 'आप से मिल कर बहुत ख़ुशी हुई।'

०

चेतन ने उनकी उस ख़ुशी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। क्षणांश में उसके सामने वह घटना घूम गयी, जब वह उनसे मिलने गया था और उन्हें मिल कर न केवल उसे घोर निराशा हुई थी, वरन उसके मुँह का स्वाद कड़वा गया था और हिन्दी-लेखकों के लिए उसके मन में पूर्वाग्रह बन गया था।

०

साल भर हुआ होगा। मुन्शी चन्द्रशेखर से उसका सम्पर्क घनिष्ट हो गया था। उसने उन्हें दो-एक कहानियाँ भेजी थीं, जिन पर उन्होंने उसे सुधार के लिए कुछ परामर्श दिये थे। तभी उन्होंने उससे कहा था कि वह उनके साप्ताहिक 'जागृति' के लिए कुछ भेजे। चेतन ने एक छोटा-सा अफ़साना भेजा था, जिसे उस ज़माने में अफ़सानचा या लघुकथा कहा जाता

था। रूसी लेखक सोलोगब की तर्ज़ पर महाशय देवदर्शन ने कुछ अफ़सानचे लिखे थे। उनकी देखा-देखी चेतन ने भी कई छोटे-छोटे अफ़सानचे लिख डाले थे। उनमें से एक उसने मुन्शीजी को भेजा, जिसे उन्होंने स्वयं हिन्दी में कर के 'जागृति' में दे दिया था। तब चेतन ने एक बड़ी कहानी भेजी। मुन्शीजी ने लिखा कि भाई हिन्दी में कर के भेजो। उर्दू में ले कर मैं क्या करूँ। इतनी लम्बी कहानी हिन्दी में करने का मेरे पास कहाँ समय है ? तब चेतन ने सोचा कि लाहौर-निवासी किसी हिन्दी लेखक से सम्पर्क बढ़ाये और उसकी सहायता से अपनी शाहकार कहानियों को हिन्दी का लिबास पहनाये। तभी 'विशाल भारत' में पण्डित धर्मदेव वेदालंकार की एक कहानी उसने पढ़ी। नीचे पता लिखा था—'विश्व साहित्य प्रकाशन, हस्पताल रोड, लाहौर !' चेतन रोज़ हस्पताल रोड से गुज़रता था। इधर आत्माराम पुरी से आगे हस्पताल रोड पर दो हिन्दी पुस्तकों की दुकानें खुल गयी थीं। एक गैराज को परिवर्तित कर 'हिन्दी पुस्तक भण्डार' खुल गया था; उससे कुछ आगे एक नयी दुकान-नुमा बिल्डिंग पर 'विश्व साहित्य-प्रकाशन' का बोर्ड लगा था। चेतन दूसरे ही दिन वहाँ पहुँचा। मालूम हुआ कि वेदालंकार जी वहाँ नहीं बैठते, नीला गुम्बद में 'लॉ रिपोर्टर' के दफ़्तर में बैठते हैं। दुकान से पता ले कर चेतन नीला गुम्बद की ओर चल दिया था।

चेतन पण्डित धर्मदेव के नाम से वर्षों पहले से परिचित था। यद्यपि वह आठवीं कक्षा ही से उर्दू में लिखने लगा था, पर वह हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ भी पढ़ता था। पंजाब में उन दिनों (अंग्रेज़ी सरकार की सोची-समझी नीति के अनुसार ही) पंजाबियों की मातृभाषा पंजाबी का कहीं भी प्रवेश न था। न कचहरियों में, न सरकारी दफ़्तरों में, न स्कूल-कॉलेजों में। लोग बोलते पंजाबी थे, पढ़ते-लिखते उर्दू या अंग्रेज़ी थे। पंजाबी भाषा सिक्खों की गुरुवाणी तथा ग्रामीण जाटों के पत्र-व्यवहार की भाषा थी। आम स्कूलों में पहली से पाँचवीं तक अनिवार्यतः उर्दू पढ़ायी जाती थी, बाद में सरकारी स्कूलों में तो लड़के अगली कक्षाओं

में भी उर्दू-फ़ारसी पढ़ते, पर आर्य समाजी या सनातनी स्कूलों में, विशेष-कर हिन्दुओं को, पण्डित लोग हिन्दी-संस्कृत लेने पर विवश करते। कॉलिज में हिन्दी केवल पचास नम्बर की थी और उसे लेना, न लेना छात्रों की इच्छा पर निर्भर था। उसके नम्बर डिवीज़न में शामिल न होते थे। चेतन ने भी दूसरे हिन्दू छात्रों की तरह छठी तक उर्दू, फिर हिन्दी-संस्कृत ली थी, पर वह आठवीं से ही उर्दू में ग़ज़लें और कहानियाँ लिखने लगा था और हिन्दी लिखने का उसे अभ्यास नहीं था। हाँ वह पढ़ता खूब था। जालन्धर में दोआबा आर्य समाज अड्डा होशियारपुर के पुस्तकालय में जा कर वह हिन्दी की मासिक पत्रिकाएँ पढ़ता था। जिन दिनों वह लाहौर आया, 'विशाल भारत' में पण्डित धर्मदेव वेदालंकार की कहानियाँ छपने लगी थीं—सीधी-सादी, सरल और रूमानी! प्रकट ही वेदालंकारजी पर रूसी उपन्यासकार तुर्गनेव का प्रभाव था। लेकिन चेतन ने तब तक तुर्गनेव को ज्यादा नहीं पढ़ा था और वेदालंकारजी की कहानियाँ उसे बहुत अच्छी लगती थीं।. . .जब वह नीला गुम्बद के पास पहुँचा तो मन-ही-मन उसने उनकी कुछ कहानियों को याद कर लिया। उसकी बग़ल में अपनी उर्दू कहानियों के तराशों की फ़ाइल थी और उसने तय किया था कि उनकी कहानियों की प्रशंसा कर के वह अपनी कहानियों का उल्लेख करेगा। महाशय देवदर्शन और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसकी जो प्रशंसा की है, उसका ज़िक्र करेगा। मुन्शीजी से अपने पत्र-व्यवहार की बात कहेगा। यदि वेदालंकारजी ने रुचि प्रकट की तो उन्हें अपनी दो-एक कहानियाँ सुनायेगा और उन्हें हिन्दी का लिबास पहनाने में उनकी सहायता चाहेगा। चूँकि उनके नाम के साथ वेदालंकार लगा था, जिससे प्रकट था कि वे गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) के स्नातक हैं, इसलिए चेतन ने खादी के धोती-कुर्ते या कुर्ते-पायजामे में सुशोभित, लम्बे-लम्बे बालों वाले, अपने से उम्र में बड़े किसी युवक की कल्पना की थी।

'लॉ रिपोर्टर' का दफ़्तर नीला गुम्बद के पीछे एक बड़े-से हॉल में

था। पार्टीशन के पीछे एक तरफ़ प्रेस था। दूसरी तरफ़ कई कैबिन बने हुए थे। पण्डित धर्मदेव के पार्टनर प्रो० ज्योतिस्वरूप बहुत विद्वान, बहुधन्धी आदमी थे। वे संस्कृत और इतिहास में एम० ए० थे। दोनों बार उन्होंने टॉप किया। फिर कानून में दाखिल हो गये तो उसमें भी डिस्टिंकशन ले कर पास हुए थे। तभी उनका विवाह हाईकोर्ट के एक जज की सुपुत्री से हो गया था और अपने ससुर की सहायता से प्रो० ज्योतिस्वरूप ने प्रेस कायम किया था और लॉ-रिपोर्टर निकालते थे। वे लॉ-कॉलेज में एक पीरियड भी लेते थे और पण्डित धर्मदेव के साथ मिल कर उन्होंने प्रकाशन भी खोल रखा था और उनकी लिखी पुस्तकें मैट्रिक के पाठ्यक्रम में स्वीकृत थीं और लाखों बिकती थीं।

गले में कमीज़, कमर में तहमद और पैरों में पेशावरी चप्पल पहने और बग़ल में बड़ी-सी फ़ाइल दबाये, किंचित घबराहट में अपने लम्बे, घुंघराले बालों पर हाथ फेरता हुआ जब चेतन लॉ रिपोर्टर के दफ़्तर पहुँचा तो हॉल के बड़े दरवाज़े में स्टूल पर बावर्दी चपड़ासी को बैठे देख कर ठिठक गया। बाहर सड़क से ही अन्दर भव्य हॉल में बर्मा टीक से बनी पार्टीशन और कैबिन तथा उनका नया चमचम करता पालिश हॉल के रोब को द्विगुणित करता था। चेतन घर से चला था तो बड़े जोश में था, पर हॉल की भव्यता और बड़े दरवाज़े पर बैठे हुए चपड़ासी को देख कर उसका वह जोश हवा हो गया। वह क्षण भर खड़ा हॉल को देखता और अपने घुंघराले बालों पर हाथ फेरता रहा। फिर साहस बटोर कर उसने चपड़ासी से कहा कि वह पण्डित धर्मदेव वेदलंकार से मिलना चाहता है।

बिना स्टूल से उठे, चेतन पर सिर से पैर तक एक दृष्टि डाल कर और उसकी बग़ल में दबी फ़ाइल पर निमिष भर घूरते हुए, चपड़ासी ने पूछा, 'क्या काम है, कोई नौकरी चाहिए ?'

'नहीं, मैं 'वीर भारत' में असिस्टेण्ट ऐडीटर हूँ, ज़रा वेदालंकारजी से मिलना है।'

चपड़ासी को उसकी बात का यकीन नहीं आया। उसने कहा, 'ज़रा चिट पर अपना नाम और काम लिख दीजिए !'

चेतन ने किसी कारोबारी संस्था में मुलाकात पर इस तरह का प्रतिबन्ध पहले कभी नहीं देखा था। कई वर्ष बाद उसे मालूम हुआ था कि बाह्य ठस्से और शान-शौकत के बावजूद अन्दर से प्रो० ज्योतिस्वरूप का हाल पतला था, उन्हें जगह-जगह का कर्ज़ देना था। 'विश्व साहित्य प्रकाशन' को भी लेखकों, कर्मचारियों, काग़ज और प्रेस वालों का काफ़ी पैसा देना था और यह सावधानी वे दोनों पार्टनर इसलिए बरतते थे कि लेनदारों का नाम पहले ही पता चल जाय और वे उन्हें टाल सकें अथवा उनसे मिलने को तैयार हो सकें।. . .लेकिन तब चेतन इस स्थिति से अनभिज्ञ था और उसे चपड़ासी का यूँ चिट पर नाम और काम लिखने के लिए कहना बुरा लगा। पहले उसके मन में आया कि वह वापस चला जाय, लेकिन फिर उसने एक चिट पर अपना नाम और उसके नीचे अंग्रेज़ी में 'स्टोरी राइटर एण्ड जरनलिस्ट' लिख दिया।

चपड़ासी चिट ले कर अन्दर गया और दूसरे क्षण बाहर आ कर वहीं स्टूल पर बैठते और चेतन को अन्दर जाने की इजाज़त देते हुए, उसने तर्जनी से अन्तिम कैबिन की ओर संकेत कर दिया कि वेदालंकारजी वहाँ बैठते हैं।

चेतन जब कैबिन में पहुँचा तो अपने प्रिय कथाकार को सूट-बूट पहने छोटी-सी कैबिन में बड़ी-सी मेज़ के पीछे बैठे देख, उसे बड़ी निराशा हुई। उसके सामने सूट-बूट में लैस चौकोर मुँह पर मोटी-सी नाक लिये जो व्यक्ति बैठा था, वह यद्यपि असुन्दर न था, पर कहीं से भी कवि अथवा कथाकार न लगता था। वह तो किसी सरकारी दफ़्तर का सचिव अथवा उप-सचिव दिखायी देता था। नथुने की दायीं ओर गाल पर एक छोटा-सा मस्सा, जो किसी युवती के गाल पर होता तो ब्यूटी-स्पॉट कहलाता, उनके मुँह पर चेतन को बेहदा भद्दा लगा था।. . .चेतन जब उनके सामने मेज़ के पास जा कर खड़ा हुआ तो एक उड़ती निगाह

पण्डित धर्मदेव वेदालंकार ने उस पर डाली। न वे अपनी जगह से उठे, न उन्होंने हाथ बढ़ाया, न उसे कुर्सी पर बैठने को कहा। उसके 'नमस्कार' के उत्तर में सिर को ज़रा-सा हिला कर उन्होंने आँखें उठा दीं कि क्या काम है ?

चेतन घर से चला था तो हिन्दी के अपने इस प्रिय कथाकार से पहली मुलाकात का बहुत ही सुखद चित्र उसके मन में था। रास्ते भर वह उनसे बात-चीत करने की रूप-रेखा बनाता आया था, लेकिन सामने मेज़ पर उस नौकरशाह किस्म के व्यक्ति को आँखें उठाये देख कर सारे सम्वाद उसके दिमाग़ से उड़ंछू हो गये। उनकी कहानियों तक के नाम उसे भूल गये। उस क्षणांश में उसने उन्हें याद करने की लाख कोशिश की, पर उसे एक भी कहानी का नाम याद नहीं आया। तब जल्दी-जल्दी होटों-ही-होटों में वह जो मिनमिनाया, उसका कुछ यही अभिप्राय था कि वह दैनिक 'वीर भारत' के सम्पादक मण्डल का एक अहम सदस्य है। उर्दू में कहानियाँ लिखता है। उसकी कहानियाँ महाशय देवदर्शन के 'मन्दिर' में छपी हैं और मुन्शी चन्द्रशेखर ने भी उनकी प्रशंसा की है।. . . (चूँकि पण्डित धर्मदेव की कहानियों के नाम तक वह भूल गया था, इसलिए उनकी प्रशंसा करना भी वह भूल गया।). . . वेदालंकारजी ने उसकी मिनमिनाहट का कोई नोटिस नहीं लिया। अपनी आँखें उन्होंने झुका लीं, और व्यस्त भाव से सामने पड़ी फ़ाइल में लगे मसौदे पर एक दृष्टि डाल (जिसमें शायद कुछ संशोधन वे कर रहे थे) उन्होंने बड़े औपचारिक लहजे में पूछा, 'मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ ?'

कुर्सी पर उसे बैठने के लिए उन्होंने फिर भी नहीं कहा।

तब न जाने चेतन के मन में क्या बगूला-सा उठा, उसने कहा, 'मैं केवल आपके दर्शन करने आया था ! नमस्कार !' और दोनों हाथ माथे की ओर ले जाने का उपक्रम-सा करते हुए वह पलटा और तेज़-तेज़ कैबिन के बाहर निकल गया। उसी तेज़ी से चप्पल फटफटाता हुआ वह हॉल के बाहर निकला और सड़क पर पहुँच कर उसने सुख की साँस

ली। तब क्षण भर रुक कर बड़े ज़ोर से एक गाली वेदालंकारजी के लिए हॉल की ओर फेंक कर वह चप्पल फटफटाता हुआ घर की ओर चल दिया।

०

"चमन बुक डिपो' से वापसी पर उर्दू बुक स्टाल के तख्ते पर चढ़ते हुए वहीं से चिल्ला कर उसने ज़हीर को जो अपने संग्रह के छपने की सूचना दी थी तो वह वास्तव में वेदालंकारजी के कानों के लिए ही थी और जब उसकी आवाज़ पर पलट कर उन्होंने उसकी ओर देखा था और उनकी आँखों में अजीब-सा परिचय-अपरिचय का भाव आया था, उससे चेतन प्रसन्न हुआ था। लेकिन जब चौधरी से उसका परिचय पा कर उन्होंने उससे पुनः हाथ मिलाते हुए खुशी प्रकट की तो चेतन ने किसी तरह की प्रतिक्रिया न व्यक्त करते हुए श्री गोबिल से अंग्रेज़ी में पूछा, 'डिड यू सक्सीड इन इन्वेंण्टिग लाइनो-टाइप फ़ॉर उर्दू स्क्रिप्ट !'[१]

'आई डोंट थिंक इट पॉसिबल टु मेक अ डाई फ़ॉर नस्तलीक स्क्रिप्ट !' मिस्टर गोबिल ने उसके उत्तर में कहा, 'ऑफ़ कोर्स इट इज़ पॉसिबल टु मेक इट फ़ॉर द अरेबिक स्क्रिप्ट !'[२]

तब चेतन ने अंग्रेज़ी में फिर अपना परिचय दिया और उन इंजीनियर महोदय को बताया कि वह उर्दू के प्रसिद्ध दैनिक 'वीर भारत' का असिस्टेण्ट ऐडीटर है और उसने इच्छा प्रकट की कि इस सन्दर्भ में वह अपने दैनिक के लिए उनके विचार जानना चाहेगा और उनसे इन्टरव्यू के लिए समय माँगा।

यह विचार भी चेतन को उसी समय आया और इसका उद्देश्य भी

---

१. क्या आप उर्दू लिपि में लाईनो टाइप ईजाद करने में सफल हुए ! २. मैं नहीं समझता कि उर्दू की नस्तलीक लिपि के लिए लाइनो टाइप बन सकती है। हाँ, उर्दू की अरबी लिपि के लिए उसे बनाना सम्भव है।

पण्डित धर्मदेव को अपना महत्व जताना था। तभी सहसा पण्डितजी को उस क्षणिक भेंट की स्मृति हो आयी और जैसे अपने उस व्यवहार का प्रतिकार करने के विचार से अथवा अपने मेहमान के द्वारा अपना महत्व जताने के लिए आगे बढ़ कर उन्होंने अंग्रेज़ी ही में कहा।

'आज शाम साढ़े पाँच बजे मैंने अपने यहाँ कुछ मित्रों को बुला रखा है। वहाँ मिस्टर गोबिल लिपि-सम्बन्धी अपने विचार रखेंगे। आप भी पधारिए।'

'शाम को मुझे दफ़्तर जाना होता है,' चेतन ने कहा, 'लेकिन मैं आऊँगा। आप मुझे ज़रा अपने घर का पता दे दीजिए।'

'ब्रैंडलों हॉल के पहले ही गली है—टैप रोड, उसी में १८-ए प्रोफ़ेसर गुलबहार सिंह का मकान है। वहीं पिछले फ़्लैट में रहता हूँ। किसी से भी पूछ लीजिएगा। आपको दिक्कत नहीं होगी।' और क्षण भर रुक कर उन्होंने कहा, 'डेवढ़ी के बाद आँगन है, उसके परे बायीं ओर को ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ती हैं, जो मेरे ही फ़्लैट को जाती हैं।' फिर कुछ संकोच से उन्होंने कहा, 'प्रोफ़ेसर गुलबहार के लड़के को अनोखे शौक हैं। एक कुतिया, एक घोड़ी और एक भैंस उन्होंने पाल रखी है और ये तीनों आँगन में बँधी रहती हैं। जरा बायीं दीवार के साथ हो कर जाइएगा तो दिक्कत नहीं होगी।'

'मैं ज़रूर आने की कोशिश करूँगा,' चेतन ने कहा, फिर वह ज़हीर की तरफ़ पलटा, 'अच्छा चौधरी, तुम इस वक्त बिज़ी हो, फिर हाज़िर हूँगा।'

और सब के साथ हाथ मिला कर विदा लेने के बदले, उसने आदाब अर्ज़ के लिए दायाँ हाथ माथे की ओर बढ़ाया और सिर को सब की तरफ़ घुमाते और 'आदाब अर्ज़' में बार-बार हाथ माथे से लगाते हुए वह पलट कर दुकान से नीचे उतर आया।

०००

स
ता
ई
स

सुबह उसे जो प्रेरणा हुई थी, वह ग़लत नहीं थी। न केवल उसके संग्रह के प्रकाशन की समस्या हल हो गयी थी, वरन पण्डित धर्मदेव के यहाँ उसका परिचय लाहौर के तमाम हिन्दी साहित्यकारों से हो गया, जिनमें बहुतों के नाम से भी वह अपरिचित था। साथ ही अपनी सरगर्मियों के लिए सहसा एक नया और विशाल क्षेत्र चेतन के सामने खुल गया।

o

हालाँकि चेतन वेदालंकारजी के यहाँ दस मिनट ही लेट पहुँचा था, लेकिन उन के माथे के तेवर और चेहरे के किंचित विकुंचन से उसे लगा जैसे वह एक घण्टा देर से पहुँचा हो।

वेदालंकारजी कमरे के बाहर छते बरामदे में खड़े थे। नीचे आँगन में बँधे पशुओं से जान बचा कर पसीने में लथ-पथ, जब चेतन ऊपर पहुँचा तो भारतीयों में टाइम-सेन्स के नितान्त अभाव पर घोर वितृष्णा के कारण वेदा-लंकारजी के चेहरे पर जो सलवट आ गयी थी, उसे सायास

हमवार करते हुए उन्होंने कहा, 'आप ही की प्रतीक्षा है। मणि भाई को सात बजे फिर मीटिंग में जाना है, उनके भाषण के बाद चाय होगी। चलिए चलिए !'

और दायें हाथ से कमरे का पर्दा उठा कर, बायें से उन्होंने जैसे उसे ड्राइंग-रूम में धकेल दिया। स्वयं वे बाहर दरवाज़े पर ही खड़े रहे। शायद वही देर से नहीं पहुँचा था, और भी किसी की उन्हें प्रतीक्षा थी।

क्षण भर के लिए ड्राइंग-रूम की भव्यता देख कर चेतन वहीं खड़ा रह गया। फिर दायीं ओर की दीवार के साथ ख़ाली स्थान देख कर, चप्पल उतार और पैर पायदान पर अच्छी तरह झाड़ कर वह जा बैठा।

ड्राइंग-रूम आयताकार था। सारे कमरे में एक बड़ा ग़ालीचा बिछा था। जहाँ चेतन जा कर बैठा था, उसकी बायीं ओर मैण्टलपीस के नीचे एक भारी कौच का सेट पूरी दीवार को घेरे था। लेकिन उस पर कोई बैठा नहीं था। प्रकट ही आगत अतिथियों के लिए ग़ालीचे पर बैठने की व्यवस्था थी। इतने सारे लोग कौच पर नहीं बैठ सकते थे, इसलिए उसे दीवार के साथ खिसका दिया गया था। मैण्टलपीस पर बड़े सुन्दर फ़ोटो रखे थे। उनके ऊपर एक बड़े सुन्दर चौखटे में साड़ी के पल्लू से सिर और वक्ष को पूरी तरह ढँके एक युवती का फ़ोटो था, जिसके बारे में चेतन को बाद में मालूम हुआ कि वेदालंकारजी की दिवंगत पत्नी का फ़ोटो है। मैण्टलपीस के दोनों ओर चेतन के पीछे और बायीं दीवार में शीशे की अलमारियाँ थीं, जिनमें पुस्तकें करीने से सजी थीं। छत पर पंखे के दोनों ओर बिल्लौरी फ़ानूस थे। चेतन ने दीवार के साथ टेक लगायी और तहमद के उल्टे छोर से पसीना पोंछा। अच्छा हुआ वह कमीज़ और तहमद धो कर इस्त्री कर लाया था, नहीं उसको वहाँ बैठने तक में संकोच होता।

चौधरी ज़हीर के यहाँ पण्डित धर्मदेव वेदालंकारजी से मिल कर

जब वह घर पहुँचा था तो क्षण भर के लिए उसने सोचा था, दो घड़ी को भाई साहब से अपना सूट माँग ले, जो उसे दो वर्ष पहले शादी पर मिला था और जो उसने भाई साहब को दे दिया था; लेकिन फिर उसके सामने 'लाँ रिपोर्टर' के दफ़्तर में पण्डित धर्मदेव वेदालंकार से अपनी भेंट का चित्र आ गया। शायद तहमद-कमीज़ में होने के कारण ही उन्होंने उससे बात करना पसन्द न किया था। चेतन ने चित्रों में देखा था कि बर्मी और दक्षिण भारतीय प्रायः तहमद पहनते हैं और बड़े-बड़े जज, वकील, बैरिस्टर और मिनिस्टर उन्हें पहनने से नहीं हिच-किचाते। यह अलग बात है कि बर्मा में तहमद को सारोंग और दक्षिण भारत में मुण्डू कहा जाता है, पर था तो वह तहमद ही। फिर उसे यह बात समझ में नहीं आती थी कि पंजाबी पढ़े-लिखों को अपनी उस राष्ट्रीय भूषा से क्यों चिढ़ थी। उसने सिक्ख जाटों को तहमद-कुर्ते और वॉस्केटों में देखा था और वह भूषा सदा उसे पंजाबी खुलेपन का प्रतीक लगती थी। गर्मियों में तो वह भूषा इतनी आरामदेह थी कि और कुछ भी पहनना उसे खलता था; लेकिन पण्डित धर्मदेव वेदालंकार को, जो गुरुकुल कांगड़ी में पढ़े होने के बावजूद, रंग-ढंग और बोल-चाल में अंग्रेज़ों के कान काटते थे, कदाचित वह भूषा गँवारू लगती थी और चेतन ने तय किया कि वह जायगा तो अब भी उसी भूषा में जायगा। उसने एक नज़र तहमद और कमीज़ पर डाली थी। वह सात दिन बाद इतवार-के-इतवार कपड़े धोता था, लेकिन इधर चूँकि उसका सारा दिन ख़ाली रहता था, इसलिए हफ़्ते में दो बार उन्हें धो कर घर ही में नील दे कर इस्त्री कर लेता था। लेकिन गर्मियों के दिन थे। लाहौर की आधी सड़कें तब कोलतार-विहीन थीं। दिन भर धूल उड़ती। शाम होते-होते आसमान का नीला रंग मटमैला हो जाता और कपड़े एक दिन में मैले हो जाते। हालाँकि चेतन ने एक दिन पहले ही कपड़े धोये थे और उस दिन धोने की बारी नहीं थी, लेकिन घर जाते ही उसने दोनों कपड़े उतार कर उन्हें धोया, नील दिया और फिर

सुखा कर इस्त्री किया था और नहा-धो कर समय से चल पड़ा था।

उसने पसीना पोंछ कर सफ़ेद तहमद का वह कोना देखा। मैला हो गया था। चेतन ने ज़रा परे से फिर अच्छी तरह चेहरा और गर्दन पोंछी। पहले मैले धब्बे के साथ एक और धब्बा बन गया। उसने कोना फिर उलट दिया और इतमीनान से बैठ गया।

तभी दरवाज़े से दूध-धुले खादी के धोती-कुर्ते में सुशोभित गोल-मटोल चेहरे वाले, मँझले कद के, न पतले, न मोटे एक महानुभाव प्रकट हुए और फीकी-सी मुस्कान से उन्होंने अपने देर से आने पर अस्फुट शब्दों में क्षमा माँगी, पर उनकी आवाज़, 'आइए चातकजी!' 'आइए कविजी!' में गुम हो गयी।

चेतन ने देखा, कवि की मुखाकृति गर्मी के कारण किंचित लाल हो आयी है और होंट सूख गये हैं। उन पर ज़बान फेरते हुए उन्होंने सभी को समवेत 'नमस्कार' किया और यद्यपि बहुत से लोग उनके लिए जगह बना रहे थे, पर वे चेतन के पास खाली जगह में आ कर बैठ गये और जैसे थकन से अभिभूत, धोती के पल्लू से चेहरा और गर्दन का पसीना पोंछते हुए उन्होंने दीवार से पीठ लगा ली।

तभी पण्डित धर्मदेव वेदालंकार अन्दर आ गये। उन्होंने बैरे से आगत अतिथियों के लिए शर्बत लाने को कहा और जब कमरे में उप-स्थित लोगों में से अधिकांश ने एक के बदले दो-दो गिलास पी लिये तो वेदालंकारजी ने सब को मुख्य अतिथि का परिचय दिया कि मणि भाई गोविल यूँ तो गुजराती हैं, पर उनके पुरखे सौ वर्ष पहले कलकत्ता में बस गये थे, बंगालियों में शादी-ब्याह हुए और वे पूरे बंगाली हो गये हैं। इंजीनियर हैं, विदेश हो आये हैं। लिपियों के सम्बन्ध में उनका अध्ययन गहरा है और लाइनो टाइप के माहिर हैं। यह सूचना दे कर उन्होंने उर्दू के नस्तलीक टाइप के आविष्कार के सन्दर्भ में उनके लाहौर आने का उल्लेख किया और बताया कि मणि भाई का विचार है, नस्तलीक लिपि में—(यहाँ पण्डित धर्मदेव ने इस कठिन शब्द के अर्थ उपस्थित

लोगों को समझाये—उस लिपि में, जिसे कातिब लिखते हैं, जो लिथो प्रेस में छापी जाती है और जिसमें साधारण उर्दू पुस्तकें छपती हैं)—लाइनो टाइप नहीं बन सकता। वेदालंकारजी ने यह भी बताया कि श्री गोबिल कई प्रान्तीय भाषाओं के लिए लाइनो टाइप ईजाद कर चुके हैं और आज वे उनके अनुरोध पर देश में प्रचलित लिपियों के सम्बन्ध में अपने विचार उपस्थित सज्जनों के सम्मुख रखेंगे।

मणि भाई गोबिल चेतन के सामने बैठे थे। वे उठे और उन्होंने सब को 'नमस्कार' किया। यद्यपि चेतन ने सुबह ज़हीर के बुक स्टाल पर उन्हें एक नज़र देखा था, पर तब उसका ध्यान पण्डित धर्मदेव वेदालंकार की ओर ज़्यादा था और सिवा इसके कि श्याम रंग का एक लम्बा-तगड़ा आदमी आस्तीनें चढ़ाये कमीज़-पैण्ट में खड़ा है, मणि भाई का और कुछ भी उसने नहीं देखा। लेकिन अब चातकजी के साथ ज़रा-सा दीवार से पीठ लगाये उसने उन पर नख-से-शिख तक निगाह डाली। मणि भाई लम्बे ही न थे, काफ़ी लम्बे थे। छै फ़ुट से निकलता हुआ कद, हृष्ट-पुष्ट गठा हुआ दोहरा बदन, गोल चेहरा, श्याम वर्ण, कमीज़ की आस्तीनें पूर्ववत चढ़ी हुई, जिनसे लम्बी पुष्ट बाँहें और बालों-भरी मज़बूत कलाइयाँ उनकी शक्ति का पता देती थीं।

इससे पहले कि मणि भाई अपनी बात शुरू करते, वेदालंकारजी ने आगत अतिथियों का परिचय देना शुरू किया। चेतन के लिए लगभग सभी चेहरे नये थे। वह बड़े ध्यान से हरेक का परिचय हृदयंगम करता रहा। कुछ अध्यापक थे, कुछ अंग्रेज़ी पत्रकार थे, कुछ अफ़सर थे, अधिकांश हिन्दी के साहित्यकार थे। चेतन मन-ही-मन नोट करता रहा कि उनमें से कौन-कौन ऐसा है, जिससे वह सम्पर्क स्थापित कर सकता है। जब उसकी बारी आयी तो वेदालंकारजी ने बताया कि चेतनानन्द 'वीर भारत' के सम्पादन विभाग में काम करते हैं, उर्दू के समर्थ कथाकार हैं और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उनके कथा-संग्रह की भूमिका लिखी है। तब अपने आपको अधिकांश लोगों की निगाहों का केन्द्र पा कर चेतन को

बड़ी प्रसन्नता हुई । प्रकट ही ज़हीर के स्टाल से उसके चले आने के बाद वेदालंकारजी ने उसके बारे में ज़हीर से पूछा था और चौधरी ने यह सब उन्हें बताया था और वेदालंकारजी ने किंचित बढ़ा-चढ़ा कर उसका परिचय दिया था । उसकी कोई कहानी उन्होंने कभी पढ़ी होगी, इसकी कोई सम्भावना नहीं थी । लेकिन वेदालंकारजी जिस तरह आगत अतिथियों का परिचय देते थे, उससे लगता था, जैसे वे मुख्य अतिथि पर अपने विशाल सरकल का रोब डाल कर अपना महत्व बढ़ा रहे हैं । तो भी चेतन को बड़ा अच्छा लगा और उसने मन-ही-मन उन्हें उस पहले अपमान के लिए क्षमा कर दिया ।

इस परस्पर परिचय के बाद मणि भाई ने अपना भाषण शुरू किया । उनका स्वर गम्भीर और भारी था । वे अंग्रेज़ी में बोल रहे थे और उनके उच्चारण में बंगला लहजे का मिश्रण था । उनका भाषण सुनते हुए चेतन के सामने जैसे एक नयी दुनिया खुल गयी । अपने तमाम साथियों की तरह वह भी समझता था कि उर्दू सारे भारत में बोली और समझी जाती है और यदि भारत की राष्ट्र-भाषा बनने की शक्ति और सामर्थ्य किसी भाषा में है तो वह उर्दू है, जिसे सौ वर्षों तक उस्तादों ने माँझ-धो कर निखार दिया है । लेकिन मणि भाई गोबिल के भाषण से चेतन ने जाना कि देश के चार बड़े प्रान्तों—विहार, यू० पी०, मध्य भारत और राजस्थान में हिन्दी और हिन्दी की प्रादेशिक बोलियाँ बोली जाती हैं, जो सब-की-सब देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं । पंजाब, दिल्ली के साथ लगने वाले भाग और कांगड़ा आदि पहाड़ी प्रदेशों में भी हिन्दी बोली और समझी जाती है । उर्दू लिपि के मुकाबले में देवनागरी लिपि देश की अधिकांश लिपियों के निकट है, क्योंकि वे भाषाएँ हिन्दी ही की तरह संस्कृत से निकली हैं । ग्यारह प्रान्तों में से (उस समय भारत के ग्यारह प्रान्त थे) केवल दो प्रान्तीय भाषाएँ उर्दू लिपि में लिखी जाती हैं—पश्तो और सिन्धी । और यद्यपि कश्मीरी रियासत में भी वहाँ की भाषा उर्दू लिपि में लिखी जाती है, पर कश्मीरी भाषा जिस दक्षता से

अपनी मौलिक शारदा लिपि में लिखी और समझी जा सकती है, वैसी उर्दू में नहीं और शारदा की लिपि देवनागरी है। फिर चारों बड़े हिन्दी प्रान्तों के अतिरिक्त, जहाँ हिन्दी का प्रचलन है, अन्य प्रान्तों की लिपियाँ भी देवनागरी के निकट हैं।—मराठी की लिपि देवनागरी है, केवल एकाध अक्षर का अन्तर है, गुजराती और बंगला, गोरखाली और गुरुमुखी लिपियाँ भी देवनागरी के निकट हैं। कुछ अक्षरों के अंतर से वर्णमाला भी वही है। इस प्रकार देश के बड़े भू-भाग में देवनागरी समझी जा सकती है। इस सब से मणि भाई गोबिल ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि देश की स्वतंत्रता के बाद कोई भाषा राष्ट्रभाषा हो सकती है तो वह हिन्दी ही है।

यह सब बताते हुए उन्होंने भारत का एक नक्शा खोल कर दीवार पर फैला दिया और पेंसिल से बताया कि देवनागरी अथवा उसकी सहोदरा लिपियाँ देश के कितने बड़े भाग पर फैली हैं। अन्त में उन्होंने कहा, 'प्रायः यह समझा जाता है कि दक्षिण की भाषाएँ और लिपियाँ भिन्न हैं, लेकिन मलयालम और तेलुगु भाषाएँ संस्कृत के एकदम निकट हैं और तमिल और कन्नड़ भाषाओं में चालीस प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं।'

इतना कह कर लिपि-विशेषज्ञ के नाते उन्होंने एक ऐसा सुझाव दिया, जो चेतन को बहुत अच्छा लगा। उन्होंने कहा कि अंग्रेज़ी लिपि तीन-चार तरह लिखी जाती है और उसमें चित्रात्मकता है, जिससे उसके शीर्षक बहुत सुन्दर हो जाते हैं। यदि गुजराती और बंगला लिपियों के कुछ अक्षर देवनागरी लिपि में ले लिये जायें तो देवनागरी की चित्रात्मकता बढ़ जायगी। 'उदाहरण के लिए,' उन्होंने कहा, 'देवनागरी का 'अ' दो तरह लिखा जाता है—अ, अ। अब यदि गुजराती और बंगला लिपि के 'अ' भी ले लिये जायें तो वे दोनों 'अ' लिपि की चित्रात्मकता बढ़ा देंगे। शीर्षकों तथा पैरों के पहले अक्षरों की सुन्दरता के काम आ

सकेंगे। ऐसे ही उन प्रान्तीय लिपियों के कुछ अन्य अक्षर भी उपयोगी रूप से लिये जा सकते हैं।'

और सहसा नक्शा गोल कर के हाथ जोड़ कर वे बैठ गये और ड्राँइंग-रूम तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। तब वेदालंकारजी ने नौकर को चाय लाने का आदेश दिया।

०

चेतन मणि भाई के मुख से निकले हुए हर शब्द को जैसे पी रहा था और नक्शे के आगे खड़ा वह छै फ़ुट लम्बा हृष्ट-पुष्ट इंजीनियर उसे किसी औलिये[1] से कम न लगा था। उसकी बात सुनते-सुनते मन-ही-मन उसने तय किया था कि वह जितनी जल्दी हो सके, निरन्तर अभ्यास से, हिन्दी में पर्याप्त क्षमता प्राप्त कर लेगा; अपनी तमाम कहानियों को हिन्दी का लिबास पहनायेगा और इस भाषा में इतनी निपुणता प्राप्त कर लेगा कि तमाम समकालीन लेखकों से लोहा ले सके। वह लाहौर की तंग परिधि से निकल कर भारत के करोड़ों हिन्दी भाषियों तक अपनी आवाज़ पहुँचायेगा।. . .और जितने में नमकीन-मीठे की तश्तरियाँ और चाय की ट्रे रखी जाती रहीं, वह उस परिगोष्ठी में उपस्थित स्थानीय हिन्दी साहित्यिकों का जायज़ा लेता रहा।

०

सबसे पहले उसने पण्डित धर्मदेव वेदालंकार को जैसे नये सिरे से देखा। वह जब से आया था, एक-एक व्यक्ति का—उसकी हर भंगिमा और हर बात का—गहरी दृष्टि से अध्ययन कर रहा था। पण्डित धर्मदेव के बारे में वह ज्यादा नहीं जानता था, पर इतने में उसने उनका जो रूप देखा, उससे चेतन को लगा कि यह व्यक्ति घोर अहंवादी है, पर इसका-अहं झूठा है, दिखावटी है और उसे आसानी से पटाया जा सकता है। चूँकि वह कलकत्ते की प्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका के उतने ही प्रसिद्ध सम्पादक

---

१. वली, ऋषि।

के अन्तरंग गुट में था, इसलिए चेतन ने मन-ही-मन तय किया कि वह उसे पटायेगा।

फिर उसकी दृष्टि आचार्य देशबन्धु पर गयी—वे अपने छोटे-से पतले-दुबले शरीर को लिये हुए चुपचाप कोने में बैठे थे। उस गर्मी के वावजूद उन्होंने बन्द गले का कोट और चूड़ीदार पायजामा पहन रखा था। उनकी दाढ़ी और मूँछें सफ़ाचट थीं और उनके सिर पर घुटी हुई आर्य समाजी पगड़ी बँधी थी। उनके चेहरे पर उस अपार मेधा और विद्वत्ता का कोई लक्षण नहीं था, जिसके लिए वे प्रसिद्ध थे। केवल उनकी आँखों में गहराई, गम्भीरता और चमक थी। वेदालंकारजी ने उनका परिचय देते हुए उनकी खूब प्रशंसा की थी।—वे बाल ब्रह्मचारी थे। आर्य समाज के आजीवन सदस्य थे। वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनके अधीन एक पूरे-का-पूरा विभाग वेदों पर शोध-कार्य कर रहा था और उनके कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे। यद्यपि वे जाति से वनिया थे, लेकिन वेदालंकारजी ही की तरह कर्मणा: पण्डित कहलाते थे। आर्य समाज (कॉलेज सेक्शन) के पिछले वार्षिक अधिवेशन में जब उन्होंने घोषणा की थी कि वेदों का अवतरण किसी दैवीय शक्ति द्वारा नहीं हुआ, वरन ऋषियों ने उनमें आर्यों के गीत, प्रार्थनाएँ, आदर्श और उनकी विजय का इतिहास संकलित कर दिया है तो उनकी इस मान्यता पर घोर वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ था। चेतन ने वह सब वृत्तान्त पत्रों में पढ़ा था और उस सत्यान्वेषी पण्डित के प्रति उसके मन में सहज श्रद्धा थी। यद्यपि उस दिन से पहले उसने उन्हें देखा-जाना न था, उनके बारे में सुना और पढ़ा ही था, पर उन्हें देख कर उसे लगा कि उसे कभी-कभी उनसे मिलना चाहिए।

आचार्य देशबन्धु के बाद उसकी दृष्टि नीरवजी पर रुकी, जो अपने पाँच फ़ुट आठ-दस इंच लम्बे दोहरे बदन पर खादी का कुर्ता-धोती पहने, सिल्क का तहाया साफ़ा कन्धे पर रखे, बायों ओर की पंक्ति में ऐन बीचोंबीच, कौच से कोहनी टिकाये बैठे थे।—गोरा मुख, तीखी नाक,

प्रशस्त ललाट, पान के रस से सिक्त होंट और उनके दायें कोने पर एक स्थायी मुस्कान ! वेदालंकारजी ने बताया था कि वे मॉडर्न स्कूल के हिन्दी अध्यापक हैं । उच्चकोटि के कवि और नाटककार हैं । उन्होंने प्रसाद की नाट्य परम्परा को आगे बढ़ाया है और उनके नाटक पंजाब विश्वविद्यालय की कक्षाओं में पढ़ाये जाते हैं. . .चेतन ने वहीं बैठे-बैठे उन्हें ध्यान से देखा तो स्थायी मुस्कान के बावजूद, जो उनके होंटों के दायें कोने पर जमी हुई-सी थी, उसे उनके चेहरे पर जैसे 'यह आम रास्ता नहीं है' का बोर्ड लगा हुआ दिखायी दिया । इस बात के अलावा कि वे उम्र में उससे सात-दस वर्ष बड़े थे, उसे लगा कि उस व्यक्ति में कुछ ऐसी सायास ओढ़ी गम्भीरता है कि वह कभी उनके निकट नहीं हो पायगा ।

उनके साथ लम्बाई में उनसे कुछ सिर निकालते हुए तपे हुए ताँबे-से रंग के तीखे नाक-नक्शे वाले एक व्यक्ति बैठे थे, जो मणि भाई के भाषण के दौरान लगातार एकटक दीवार की ओर देखते रहे थे । मणि भाई की बातें वे सुन भी रहे थे, इसका ज़रा भी आभास चेतन को उनके चेहरे से नहीं मिला था । उसे लगा था, तमाम वक्त वे अन्तर ही में होते किसी नाटक अथवा वार्तालाप के भागीदार रहे थे । वेदालंकारजी ने उनके परिचय में कहा था कि वे अध्यापक रामेश्वर 'करुण' हैं । दोहे लिखने में सिद्ध और अभी-अभी उन्होंने 'करुण सतसई' नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ पूरा किया है, जो छप गया तो करुणजी देव, वृन्द, रसखान और बिहारी की पंक्ति में जा बैठेंगे । डील-डौल से 'करुणजी' ज़रा भी करुण नहीं लगते थे, लेकिन जाने बचपन के संघर्षों अथवा संस्कारों ने या फिर उनके मन की अत्यधिक भावप्रवणता ने उन्हें 'करुण' बना दिया था । देखने पर लगता कि यह आदमी सारी दुनिया से रुष्ट है और चेतन को नहीं लगा कि उस करुण कवि से उसका सम्पर्क कभी घनिष्ट हो सकता है ।

उनके साथ ही, चेतन से कुछ ही परे बैठे थे शुक्लाजी (एम० डी०

शुक्ल) । वे एक स्थानीय सनातनी हिन्दी साप्ताहिक के सम्पादक थे । पाँच-सवा-पाँच फ़ुट के छरहरे व्यक्ति । मैल-खोरे गहरे जोगिया रंग का कुर्ता और खादी की धोती उन्होंने पहन रखी थी और खैनी खाने के शौकीन थे । जब वे किसी बात पर मुस्कराते तो उनकी मुस्कान में अनजानी कुटिलता झलक उठती, जो उनके होंटों से कहीं ज़्यादा उनके नथुनों की फड़कन में दिखायी देती । कविराज रामदास के सम्पर्क में रहने के कारण यद्यपि कुटिल, चतुर, चालाक और बद लोगों के लिए चेतन के मन में अज्ञात-सा घृणा का भाव था, पर जाने क्यों इधर वह ऐसे व्यक्तियों को चुनौती के रूप में स्वीकार करने लगा था । एक बार उसके विश्वास का अनुचित लाभ कविराज ने उठा लिया था, लेकिन उन्होंने उसे ऐसी आँखें दे दी थीं, जो व्यक्ति के अन्दर-बाहर देखने की क्षमता रखती थीं और ऐसी सतर्कता कि कोई फिर उसे उल्लू बना सकता है, इसका उसे विश्वास नहीं था । इसीलिए कुटिल अथवा शातिर व्यक्ति उसे आकर्षित करता था और चेतन ने मन-ही-मन सोचा कि वह उनसे ज़रूर मिलेगा । उनके साथ दो-तीन युवक थे, जिनमें एक दुबले-पतले 'किसलयजी' थे, एक रूखड़-से 'कण्टक' थे और एक, जो ऐंचाताने थे, कवि थे और 'भारती' उपनाम रखे थे—ये सब शुक्लाजी के गुट के लोग थे ।. . .सभी उपस्थित लोगों में जिस व्यक्ति ने सर्वाधिक उसका ध्यान खींचा, वे उसके पास बैठे कवि चातक थे ।

शिमला से लौटने के बाद चेतन जब-जब हस्पताल रोड से गुज़रा था, 'हिन्दी पुस्तक भवन' के ऊपर दो-मंज़िले पर उसे 'मंजरी' का खूबसूरत बोर्ड लटकता दिखायी दिया था, जिस पर पत्रिका के नाम के नीचे लिखा था - साहित्य और संस्कृति का हिन्दी मासिक । चेतन में मन में यूँही औत्सुक्य-वश कई बार सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर दफ़्तर में जाने और सम्पादक से मिलने की इच्छा हुई थी, पर शिमला से वापस आने पर घर और बाहर के घोर संघर्ष के कारण वह हमेशा अपनी इच्छा को मन-ही-मन दबा गया था । मणि भाई की बातें सुनने के बाद हिन्दी सीखने

का पूरा इरादा कर के जब उसने गोष्ठी में उपस्थित हिन्दी साहित्यकारों का जायज़ा लिया तो उसने तय किया कि वेदालंकारजी के साथ-साथ उसे चातकजी से भी सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। उनके चेहरे पर उसे कुछ ऐसा भाव दिखायी दिया था, जिसमें शिशु-सुलभ भोलापन और किंचित मूर्खता की झलक थी। वेदालंकारजी ने उनके बड़े सरस कवि होने की भी घोषणा की थी। सरस का मतलब चेतन ने प्रकट ही रूमानी कवि लगाया और उसने मन-ही-मन तय किया कि वह इसी गोष्ठी में उनसे सम्पर्क बढ़ायेगा।

०

और मणि भाई के भाषण के बाद चाय पीते-पीते उसने बातचीत का सिलसिला शुरू कर दिया।

०

यद्यपि वेदालंकारजी ने भरी गोष्ठी में उसका परिचय दे दिया था तो भी उनकी ओर झुक कर अपना संक्षिप्त परिचय देते हुए चेतन ने कहा कि वह हमेशा उनके दफ़्तर के नीचे से गुज़रता हुआ उनसे मिलने की इच्छा रखता रहा है। उसके मन में हिन्दी क्षेत्र में उतरने की प्रबल साध है और वह इस सिलसिले में उनसे सहायता की अपेक्षा रखता है। वे सहृदय और सरस कवि हैं और उसे पूरा विश्वास है कि वे उसकी मदद करेंगे।

बस उसने इतना ही कहा। फिर उसे कुछ और कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी। चाय पीते और मीठा-नमकीन टूंगते हुए चातकजी लगातार पंजाब के उस अहिन्दी क्षेत्र में 'मंजरी' के नाम से जो नन्हा-सा पौधा लगा था, उसे वट वृक्ष बनाने के अपने सपनों का उल्लेख करते रहे। कैसे उस नन्हें-से पौधे को पाल-पोस कर वे इतना बड़ा कर देंगे कि पंजाब के सभी उदीयमान कवि-कथाकार और नाटककार ही नहीं, हिन्दी क्षेत्र के नये लेखक और कवि भी उसकी शीतल-सुखद छाया में त्राण पा सकें, इसका सविस्तार उन्होंने उल्लेख किया। और उसे आश्वासन दिया कि

वह जब चाहे, उनसे दफ़्तर अथवा घर पर मिले । उनके घर के दरवाज़े ही नहीं, उनके दिल के दरवाज़े भी उसे सदैव खुले मिलेंगे ।

०

चाय खत्म हो गयी । सात बजा ही चाहते थे और चेतन को पता था कि मणि भाई को एक मीटिंग में जाना है, पर तभी उसने एक ऐसी बात की, जो कवि चातक का हृदय जीत लेने के लिए काफ़ी से ज़्यादा थी ।

चाय के बाद पण्डित धर्मदेव, मुख्य अतिथि और आगत अतिथियों को धन्यवाद देने जा रहे थे, जब चेतन ने अपनी जगह उठ कर कहा कि वेदालंकारजी के परिचय से मालूम हुआ है, उपस्थित सज्जनों में एक सरस और सहृदय कवि भी हैं । बंगाल तो कविता और कला का प्रांगण ही है । क्या यह अच्छा न होगा कि मणि भाई को दो-एक सरस कविताएँ सुनायी जायें । वह वेदालंकारजी से प्रार्थना करेगा कि वे चातकजी से अपनी सरस कविताएँ सुनाने का अनुरोध करें ।

इस पर गोष्ठी में कई लोगों ने उसके प्रस्ताव का समर्थन किया । एक कोने से आवाज़ आयी कि 'नीरवजी' भी अपनी नयी रचना से आगत सज्जनों को विमुग्ध करें । तब शुक्लाजी ने, जो चाय के बाद बायें हाथ की तली पर खैनी फटक रहे थे, सहसा रुक कर खैनी को मुट्ठी में बन्द कर, नथुनों और मूँछों में मुस्कराते हुए कहा कि उनके बीच आधुनिक युग को वाणी देने वाले सशक्त कवि-अध्यापक रामेश्वर करुण भी हैं और वे चाहेंगे कि वे अपने कुछ दोहे सुना कर युग की सम्वेदना को वाणी दें ।

चेतन ने तो चातकजी को प्रसन्न करने के लिए वह प्रस्ताव किया था, लेकिन उसकी प्रतिक्रिया में यह जान कर कि इस छोटे-से हिन्दी-संसार में भी तीन गुट हैं, उसका बड़ा मनोरंजन हुआ और वह तरह-तरह के काव्य का रसपान करने की आशा से चौकन्ना हो कर बैठ गया ।

शुक्लाजी ने अपनी बात कह कर खैनी को एक बार फिर फटक कर

निचले होंट में रख लिया और परम सन्तोष से उसका रसपान करने लगे।

चेतन ने देखा कि उनके प्रस्ताव से वेदालंकारजी के माथे पर हलके-से तेवर बन आये हैं। उन्होंने कलाई की घड़ी पर एक उड़ती-सी निगाह डाली और बोले, 'आप सज्जनों के प्रस्ताव नितान्त उचित और समीचीन हैं। किसी गोष्ठी में तीन-तीन कवि हों और वहाँ कविता-पाठ न हो, यह कुछ अटपटा-सा लगता है, लेकिन समय बहुत हो गया है और मुख्य अतिथि को सात बजे एक मीटिंग में जाना है।'. . .यह कह कर उन्होंने घोषणा की कि वे फिर एक गोष्ठी का आयोजन करेंगे, जिसमें कविता-पाठ होगा और उन्होंने मणि भाई और आगत अतिथियों को धन्यवाद दिया।

तब सहसा कवि चातक अपनी जगह उठ खड़े हुए। उन्होंने मणि भाई का स्वागत और समर्थन किया और बंगाली होते हुए हिन्दी का पक्ष लेने के लिए उनके साहस, दयानतदारी और उदारता की प्रशंसा की। उन्होंने आगत सज्जनों को याद दिलाया कि राष्ट्रभाषा पर बंगाल का बड़ा एहसान है। हिन्दी की दो प्रमुख पत्रिकाएँ बंगालियों के हाथों निकल रही हैं और कहा कि मणि भाई का सपना एक दिन सच होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसके बाद चातकजी ने पण्डित धर्मदेव वेदालंकार की साहित्य-सेवा और उनके अतिथि-सत्कार की प्रशंसा की, जिन्होंने मणि भाई जैसे विद्वान को सुनने का अवसर दिया; इतनी अच्छी चाय पिलायी और इस सब के लिए सभी आगत साहित्यकारों की ओर से उन्हें धन्यवाद दिया। साथ ही उन्होंने आशा प्रकट की कि वेदालंकार जी इस अहिन्दी प्रान्त के हिन्दी वालों की बिखरी शक्तियों को एक स्थान में संगठित करने में पहल करेंगे और किसी ऐसी स्थायी गोष्ठी का प्रबन्ध करेंगे, जिसके अन्तर्गत वे सब लोग महीने में एकाध बार मिल बैठें, साहित्य-चर्चा भी करें और.उसका आस्वादन भी। और वे एक बार फिर उन्हें धन्यवाद दे कर बैठ गये।

चातकजी के प्रस्ताव पर खूब करतल-ध्वनि हुई और सभी ने उनका अनुमोदन किया और गोष्ठी समाप्त हो गयी।

०

हालाँकि गोष्ठी में कवि चातक ने कविता नहीं पढ़ी, लेकिन चेतन के प्रस्ताव का प्रभाव उसकी गणना के अनुकूल ही हुआ।

वेदालंकारजी से विदा ले कर सभी हिन्दी साहित्यकार लगभग एक साथ नीचे उतरे। नीरवजी तो अपने चेले के साथ डेवढ़ी ही से प्रोफ़ेसर गुलबहार सिंह से मिलने चल दिये (जिनके फ़्लैट की सीढ़ियाँ डेवढ़ी से ही चढ़ती थीं। प्रोफ़ेसर साहब हिन्दी बोर्ड के महत्वपूर्ण सदस्य थे। उनके मकान के पिछले फ़्लैट में आयें और प्रोफ़ेसर साहब के दरबार में हाज़िरी न दें, यह उनके मज़हब में कुफ़ था।) शेष सभी खरामाँ-खरामाँ चल दिये। गली के बाहर निकलते ही शुक्लाजी ने मणि भाई गोबिल की प्रशंसा की कि उन्होंने बहुत पते की बात कही है। तब कवि चातक ने उन्हें बताया कि यह बात तो वे शुरू ही से जानते हैं कि हिन्दी के भाग्य में इस देश की राष्ट्रभाषा का गौरव लिखा है। इसीलिए वे मालवा की उर्वर भूमि को छोड़, इस मरु में आये हैं। और यह कर वे पंजाब की उस मरुभूमि में हिन्दी के उद्यान खिलाने के सिलसिले में अपने सपनों और संकल्प का उल्लेख करने लगे। शुक्लाजी उनकी हाँ में हाँ मिलाते रहे। कवि करुण पूर्ववत अपने ध्यान में मग्न रहे। तभी घोड़ा हस्पताल आ गया। सब-के-सब अनायास रुक गये, क्योंकि यहाँ से उनके रास्ते अलग होते थे।

सहसा शुक्लाजी ने प्रस्ताव किया कि चातकजी उन लोगों के साथ गोपाल नगर चलें और एक-एक गिलास ठण्डाई पी कर वापस लौटें।

चातकजी चेतन से बातें करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि उन्हें ज़रा चेतन से काम है। इतवार को वे पहुँचेंगे और हमेशा की तरह काव्य और विजया की दोहरी छानेंगे। इस पर शुक्लाजी और उनके साथियों ने उन्हें अभिवादन किया और वे सब-के-सब ऋषिनगर की ओर

को मुड़ गये, जहाँ से गोपाल नगर को सीधा रास्ता जाता था। दूसरा दिन होता तो चातकजी उनके साथ जाते अथवा शुक्लाजी उन्हें ठण्डी सड़क तक छोड़ने आते और वहाँ से चक्कर दे कर गोपाल नगर को पलट ते, लेकिन चेतन के कारण चातकजी उनके साथ नहीं गये और कवि को साथी मिल गया है, यह सोच कर शुक्लाजी अपने साथियों के साथ वहाँ से विदा हो गये।

जब वे कुछ दूर निकल गये तो किसी आत्मीय की तरह चातकजी ने चेतन का हाथ अपने हाथ में ले लिया और पूछा कि वह कहाँ रहता है।

चेतन ने कहा कि वह रहता तो कृष्णा गली में है, पर उसे देर हो गयी है, इसलिए वह सीधा हस्पताल रोड पर अपने दफ़्तर जायगा और उसने बताया कि उसका दफ़्तर 'मंजरी-कार्यालय' सामने की गली—लायन प्रेस रोड—में है।

चातकजी ने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की और बताया कि वे भी कृष्णा गली में ही रहते हैं। उन्होंने घोषणा की कि वे उसे उसके दफ़्तर में छोड़ कर आगे जायेंगे और किसी पुराने मित्र की तरह वे उसके हाथ को धीरे-धीरे झुलाते हुए चलने लगे।

•

पूर्णमासी की शाम थी। आकाश में गर्मियों की साँझ का हलका-सा उजेला अभी शेष था, पर नीचे सड़क पर बत्तियाँ जल उठी थीं। ऊपर गर्द-भरे आकाश में चाँद की पूरी थाली (जिसकी किरणों को आसमान में चढ़ी धूल और गर्द ने ग्रस लिया था) किसी सहारे के बिना निश्चल लटकी दिखायी दे रही थी। नीचे सड़कों पर नगरपालिका की मोटर छिड़काव कर रही थी। गोल बाग़ के पेड़ों से हो कर आने वाली गर्म हवा हलकी-सी खुनकी लिये हुए थी, जो पसीने से तर उनके शरीरों में सुखद-सी सिहरन दौड़ा जाती थी।

कवि चातक ने चेतन से उसका हाल-चाल जाना था। वह कब

लाहौर आया; उसने कहाँ-कहाँ काम किया; उसने क्या-क्या लिखा और वह कहाँ-कहाँ छपा—सब उन्होंने चेतन से सुना था। चेतन भी सविस्तार उन्हें सुनाता चला गया था। जब चातकजी को मालूम हुआ कि वह कथाकार ही नहीं, कवि भी है तो उन्होंने उससे अपनी कोई कविता सुनाने का अनुरोध किया।

'मैं तो दो-एक वर्ष पहले तक उर्दू में ग़ज़लें और नज़्में कहता था,' चेतन ने कहा, 'पर इधर ग़ज़ल लिखना मैंने एकदम छोड़ दिया है। एक-दो गीत अपने दैनिक पत्र के लिए ज़रूर लिखे हैं, लेकिर हिन्दी गीतों के मुकाबले में वे आपको क्या जचेंगे!'

वे दोनों, बातें करते हुए गोल बाग़ पार कर माल पर आ गये थे। तभी कवि चातक ने प्रस्ताव किया कि वे अनारकली के सिरे पर बाइबल सोसाइटी और सड़क के बीच कोने के लॉन में कुछ पल बैठें। यद्यपि चेतन को देर हो रही थी, उसे अभी खाना भी खाना था, पर उसने मन-ही-मन तय किया कि वह अपने दफ़्तर के साथ खालसा होटल में खाना खा लेगा और वह कवि चातक के साथ लॉन में जा बैठा। कवि के अनुरोध पर उसने एक गीत सुनाया। लेकिन गीत सुनाना शुरू करने के पहले वह ज़रा-सी भूमिका बाँधना नहीं भूला। 'मेरे उस्ताद से चातकजी, मेरा झगड़ा हो गया था,' उसने कहा, 'इसलिए ग़ज़ल लिखना छोड़, मैं कहानियाँ लिखने लगा, वरना आज मेरी ग़ज़लों और नज़्मों की घूम सारे पंजाब में होती। यह तो अपने सम्पादक के ज़ोर देने पर मैंने खास त्योहारों पर गीत लिखे हैं, वरना मैं अपने समाचार-पत्र के सण्डे ऐडीशनों में कहानियाँ ही लिखता रहा हूँ। इसी पिछले बसन्तोत्सव पर मैंने 'बसन्त ऐडीशन' के लिए एक गीत लिखा था। आप यह देखिए कि उर्दू में लिखने के बावजूद मैंने कैसे हिन्दी के कठिन शब्द उसमें नगीनों की तरह जड़ दिये हैं।. . .गीत का शीर्षक है—'बिरहन की बसन्त!'

और यों भूमिका बाँध कर उसने गीत सुनाना शुरू किया :

पतझड़ बीती, मौसम बदला, सब ओर है शोर बसन्त आयी
मन बाँवरे देखने लायक है यह छटा निराली सरसों की
उठ देख ज़रा पगले मन तू, संसार है पीताम्बर ओढ़े
आँखों में खुबती है सूरत यह भोली-भाली सरसों की
देहात के बाहर सब सखियाँ मस्ती से झूला झूलती हैं
कुछ तोड़ती हैं फूलों को और कुछ अपने मन में फूलती हैं

गीत खासा लम्बा, भावुकता-भरा और बचकाना था। चेतन ने बड़े हाव-भाव के साथ सुनाया और अन्तिम पंक्तियाँ सुनाते हुए उसका कण्ठ लगभग आर्द्र हो आया। कवि चातक ने कहा कि गीत बहुत सुन्दर है। 'निराली' और 'भोली-भाली' तुकों के बाद लगातार चार बार 'डाली' की तुक आने पर उन्होंने आपत्ति की और बोले कि यदि वे गीत लिखते तो उसमें 'काली' की तुक किसी तरह ज़रूर बैठाते और चमत्कार पैदा करते। तो भी उन्होंने उसकी पीठ को थपथपाते हुए घोषणा की, 'तुममें महान कवि बनने की पूरी सम्भावनाएँ हैं और यदि तुम हिन्दी लिखने का अभ्यास कर लो और मुझे ज़रा अपनी कविताएँ दिखाते रहो तो थोड़े ही दिनों में तुम बहुत आगे आ जाओगे।'

चेतन इतना उत्साहित हो आया कि उसका जी हुआ, अपनी सारी ग़ज़लें और नज़्में कवि चातक को सुना डाले, लेकिन कवि चातक स्वयं अपनी नयी कविता सुनाना चाहते थे और इसीलिए उन्होंने पहले उससे कविता सुनाने का अनुरोध किया था। हिन्दी और उर्दू छन्दों का भेद उसे बताते हुए और यह समझाते हुए कि खड़ी बोली के काव्य में शब्द पूरे-के-पूरे आते हैं, उर्दू की तरह शब्द के अन्त का 'आ' या 'ई' या 'ए' या 'ह' नहीं मरता। 'मेरे,' मेरे ही पढ़ा जायगा, मिरे नहीं। 'बाँवरे' को पूरा बाँवरे पढ़ा जायगा, बाँवर नहीं। इसी तरह 'झूलती हैं' में भी 'ई' की मात्रा मरेगी नहीं, पूरी-की-पूरी आयेगी।. . .और यह सब बता कर उदाहरणार्थ वे अपनी कविता सुनाने लगे। छोटी-सी भूमिका देना उन्होंने भी उचित समझा।

'हिन्दी काव्य में चातक स्वाति की बूंद का प्यासा कहा जाता है,' उन्होंने कहा, 'स्वाति की प्यास मानव-जीवन में स्नेह की तृषा का प्रतीक है। मेरा तो उपनाम ही चातक है और मैं प्रेम के गीत लिखता हूँ। मेरे गीत हृदय से आते हैं और हृदयों को छूते हैं।'

और माथे से बालों की लट को पीछे हटा, मखमली घास पर इतमीनान से पाँव फैला और यह घोषणा करके कि जो कविता वे सुनाने जा रहे हैं, वह उनकी नितान्त नयी कविता है, चातकजी बड़े तन्मय भाव से कविता सुनाने लगे :

मुझे बुलाया देवि भला क्यों, तुमने अपने स्वर्ण-महल में
सुख के अनजाने अम्बर में, मैं उड़ चला तभी उस पल में
तुम अग-जग का आकर्षण, मैं दीन दुखी हूँ एक भिखारी
पैरों की ज़ंजीर बन गयी इसीलिए लज्जा बेचारी

प्राण लिये लेते हैं मेरे
प्राण, तुम्हारे मौन इशारे
कभी बढ़ाता पैर, हटाता,
प्रेम नदी, मैं खड़ा किनारे

कवि चातक आत्म-विभोर हो कर कविता पढ़ रहे थे कि सहसा चेतन उचक कर उठा। लॉन में कहीं परे नगरपालिका के माली ने नल खोल रखा था और लम्बी घास में धीरे-धीरे अदृश्य बढ़ता हुआ पानी उन तक आ पहुँचा था। चेतन ने बैठते वक्त गर्मी के कारण तहमद घुटनों के ऊपर उठा लिया था, इसीलिए ज्यों ही पानी ने उसकी पिण्डली को छुआ, वह उचक कर उठा, पर कवि चातक तब चेते, जब उनकी सारी धोती गीली हो चुकी थी। वे उठे तो वह बोरे-सी नीचे लटक गयी।

उनका बस चलता तो वे इसके बावजूद उसे कविता सुनाये जाते, पर चेतन ने कहा कि उसे दफ़्तर को देर हो रही है, वह फिर उनके घर आयेगा और पूरे इतमीनान से उनकी कविता सुनेगा। कवि ने सोचा

था कि वे अनारकली से होते हुए हस्पताल रोड पर चेतन को उसके दफ़्तर छोड़ कर अपने घर जायेंगे, पर अपने कुर्ते के दामन और भीगी धोती की दशा देख कर उन्होंने बाइबल सोसाइटी के सामने माहीराम स्ट्रीट में से हो कर मेयो हस्पताल रोड की तरफ़ से घर जाने का निश्चय किया।

चेतन ने उन्हें गली के सिरे पर विदा दी और वह भागता-हुआ-सा अपने दफ़्तर की ओर चल दिया।

अट्ठाईस

चेतन जब दफ़्तर के बाद रात को घर पहुँचा तो उसे तत्काल नींद नहीं आयी। यद्यपि रात का तीसरा पहर शुरू हो चुका था, लेकिन गर्मी और उमस में ज़रा भी कमी न आयी थी। इसके अलावा चेतन के दिमाग़ को दिन भर के इम्प्रेशन घेरे हुए थे—कभी लाला चमनलाल के साथ अपनी बातचीत; कभी पण्डित धर्मदेव वेदालंकार के साथ अपनी पहली मुलाकात; कभी चौधरी का बुक स्टाल और वहाँ अचानक वेदलंकारजी का साक्षात्कार; कभी १८, टैप रोड में उनके मकान की गोष्ठी और मणि भाई गोबिल का भाषण; कभी कवि करुण का सुता हुआ आत्म-केन्द्रित मुख; कभी चातकजी की प्रोत्साहन-भरी बातें और उनके अत्यन्त सुकोमल, लगभग बेजान से, बे-हड्डी-के-से लिजलिजे हाथ का संस्पर्श—सब कुछ, कभी आगे-पीछे, कभी पीछे-आगे और कभी गडमड हो कर उसके दिमाग़ को परेशान किये हुए था। अजीब बात है कि चातकजी के सन्दर्भ में उनके हाथ की अपार कोमलता, हड्डी-विहीन-सा लिजलिजापन ही उसके दिमाग़ में आता।

जब तक वे उसके हाथ को अपने हाथ में लिये रहे थे, उसे उनके हाथ की उस निर्जीवता का वैसा एहसास नहीं हुआ था, पर जब माहीराम स्ट्रीट पर खड़े हो कर उसने उनसे हाथ मिलाया था तो उसे लगा था जैसे एक बेजान माँस का लोथड़ा-सा उसके हाथ में आ गया है। चेतन ज़ोर से हाथ मिलाने और उसे झटका दे कर हिलाने का आदी था। जिसे उर्दू में गर्मजोशी से मिलाना कहते हैं, वह कुछ उसी तरह मित्र-परिचितों से हाथ मिलाता था। लेकिन उस बेजान-से हाथ को ज़ोर से दबा कर हिलाना उससे नहीं हुआ। अपनी गर्मजोशी को उसने कुछ संयत कर लिया और हुनर साहब की तरह उसने अपना दूसरा हाथ भी उस पर रख दिया था और फिर दोनों हाथों से ज़रा-सा अपनी ओर खींच कर छोड़ दिया था। हुनर साहब की तरह दाँत उसने नहीं निपोरे, पर उस तरह हाथ मिलाते समय कुछ वैसा भाव उसके चेहरे पर ज़रूर आ गया होगा।. . .लेकिन किसी बेजान चीज़ को हाथ में लेने का वह एहसास उसके साथ दफ़्तर तक आया था और खबरों का अनुवाद करते और शीर्षक तथा उप-शीर्षक जमाते हुए रह-रह कर उसे उस संस्पर्श की अनुभूति हो आती थी।. . .

०

चेतन इस बीच दो बार उठ कर पानी पी चुका था। जब दिन ने रात में भी उसका पीछा न छोड़ा तो वह चुपचाप उठा। तकिये के नीचे से उसने चाबी उठायी और डेवढ़ी में जा कर बैठक का दरवाज़ा खोला। उसकी पत्नी गर्मी के बावजूद आँगन में बेसुध सोयी थी। एक नज़र उस पर डाल कर वह बैठक में चला गया। कमरा बेहद गर्म था। उसने बत्ती जलायी। तहमद के उल्टे छोर से गर्दन और सीने का पसीना पोंछा। फिर वह मेज़-कुर्सी पर बैठ गया और अपनी छपी हुई उर्दू कहानियों के तराशों की फ़ाइल उसने निकाली। उसमें से अपनी ताज़ी लिखी और काफ़ी पसन्द की जाने वाली कहानी—'कुर्बानगाहे-इश्क' छाँटी। सामने पड़ी तख्ती पर काग़ज़ लगाये। पसीने से सीज न जायें

और सियाही फैलने न लगे, इस खयाल से उसने कलाई के नीचे एक साफ़ मोटा काग़ज़ रखा और एकाग्र चित्त हो कर कहानी का अनुवाद करने लगा।

वह कहानी उसे विशेष प्रिय थी। उसकी थीम और उसके निभाव पर वह मुग्ध था। कहानी नितान्त रूमानी, अयथार्थ और काल्पनिक थी। लेकिन पण्डित रत्न वैसी ही कहानियाँ 'स्ट्रैण्ड,' 'कोलियर्ज़ वीकली,' 'ट्रू स्टोरीज़' आदि अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं से रूपान्तरित करते थे और उन्होंने इसकी थीम की खूब दाद दी थी। जब उसने लिखी थी और उन्हें सुनायी थी तो वह उन्हें इतनी पसन्द आयी थी कि उन्होंने 'बहार' के सम्पादक महाशय धर्मचन्द से उसे छापने की विशेष सिफ़ारिश की थी और स्वयं सम्पादक की ओर से कहानी पर विशेष नोट दिया था। कहानी इतनी लोकप्रिय हुई थी कि दो-तीन स्थानीय तथा निकटस्थ नगरों की पत्र-पत्रिकाओं में भी उद्धरित हुई थी और चेतन अपनी उस कहानी को न केवल मास्टरपीस समझता था, वरन उसे विश्व-साहित्य की कोटि की गिनता था। कहानी कुछ यों थी :

दो संन्यासी शाम के वक्त एक पहाड़ी पगडण्डी पर चले जा रहे हैं। आगे एक पहाड़ी नाला आता है। वहाँ एक तरफ़ गगनचुम्बी पहाड़ खड़ा है। उसके नीचे भयानक गहरा खड्ड है। पुल के बराबर पहाड़ की एक चट्टान खड्ड की ओर को बढ़ गयी है, जिस पर एक युवक और युवती बैठे हैं। वह स्थल इतना खतरनाक और उस चट्टान के नीचे इतना भयानक खड्ड है कि सहसा उनका ध्यान उधर चला जाता है। संन्यासी थक गये हैं। बराबर ही में एक गाँव है। वे पुल के ज़रा आगे पगडण्डी के किनारे बैठ जाते हैं और तभी दोनों में जो बूढ़ा है, अपने युवा साथी को खड्ड की ओर बढ़ी हुई चट्टान के बारे में बताता है :—उधर के लोगों में उसके सम्बन्ध में यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि वह हर दस वर्ष बाद दो प्रेमियों की बलि लेती है। संन्यासी वर्षों वहाँ रहता

रहा है और वह अपने युवा साथी को उस चट्टान के सम्बन्ध में एक घटना सुनाता है :

दस वर्ष पहले—वह कहता है—इस गाँव में एक युवा ग्वाला रहता था। उसका नाम था माधो। उसका बड़ा भाई उसे बहुत चाहता था और उसकी छत्र-छाया में मस्त माधो दिन-दिन भर गायें चराता और बाँसुरी बजाता घूमता था। उसे गाँव ही की एक लड़की मिन्नो से प्यार हो गया। उन्हीं दिनों गाँव का धनी ज़मींदार बीमार हो कर उस पहाड़ी गाँव के अपने बँगले में स्वास्थ्य-लाभ के लिए आ गया। उसके साथ उसकी ग्रेजुएट लड़की राजरानी भी आयी। ज़मींदार बीमारी से मुक्त नहीं हो सका और उसका देहान्त हो गया। लेकिन उसकी लड़की वापस लाहौर नहीं गयी। वह वास्तव में माधो को चाहने लगी थी। माधो मिन्नो से विवाह करना चाहता था, पर वह कोई काम-धन्धा न करता था और मिन्नो के घर वाले उसे एक बेकार आवारा लड़के के हाथ सौंपने को तैयार नहीं थे। तभी राजरानी ने माधो को अपने यहाँ नौकर रख लिया और देखते-देखते माधो बड़ी शान से रहने लगा। मिन्नो बड़ी प्रसन्न हुई, क्योंकि अब उसके घर वालों को उसके विवाह में आपत्ति न थी। लेकिन माधो का मन तो कहीं और लग गया था। जब मिन्नो माधो से मिली और माधो ने उसे बताया कि राजरानी उससे प्यार ही नहीं करती, शादी भी करना चाहती है, तब उसने माधो से एक दिन की भीख माँगी। उसने कहा कि तुम एक दिन मेरे साथ गुज़ारो, उसके बाद तुम्हें राजरानी से शादी करने की छूट होगी। माधो मान गया और दिन भर दोनों घूमते रहे। उन ठिकानों पर गये, जो उनके प्रेम के साक्षी थे और जब शाम तक माधो पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई और वह पत्थर-सा बना रहा तो डूबते सूरज के साथ मिन्नो उसे इस चट्टान पर ले आयी और वहाँ उसने माधो से एक बार जुदाई की शाम का वह प्रसिद्ध लोकगीत सुनाने का अनुरोध किया, जो न जाने कब से उन पहाड़ों में गाया जाता था। माधो ने बाँसुरी होंटों से लगायी। गीत की

तान से शाम का सन्नाटा गूँज उठा। मिन्नो बाँसुरी की तान पर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगी। गीत का मतलब कुछ यों था :

हमने कई सुनहरी सुबहें इकट्ठे जा कर सूरज का स्वागत करने में बितायीं।

और कई रूपहली शामें साथ-साथ उसे विदा करने में गुज़ारीं।

प्रेम की दुनिया भी कैसी अजीब दुनिया है।

जिसमें रात और दिन क्षण बन जाते हैं और साँझ-सबेरे उनकी सीमाएँ।

हमने ये क्षण उल्लास से बिताये हैं

इस छोटे से अर्से में इन घाटियों की सैर की है।

बाँसुरी बजाते रहे हैं।

गायें चराते रहे हैं।

और अब प्रेम के सुखद-मधुर क्षण बीत गये हैं और जुदाई की लम्बी दुखद घड़ियाँ शुरू होंगी।

यह तो मौत है, यह तो मौत है। आओ हम असली मौत का स्वागत करें!

और जब माधो यह गीत गा चुका तो मिन्नो ने अनायास उसे बाँहों में भींच लिया और फिर ज़रा परे हट कर बोली :

'माधो मालूम है तुम्हें इस गीत के साथ कौन-सी कहानी जुड़ी है?'

माधो ने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल उसके साथ कुछ और सट कर बैठ गया।

मिन्नो बोली :

दस वर्ष पहले की बात है, यहाँ रणिया नाम का एक ग्वाला रहता था। वह सुन्दर और सजीला था और उसके कण्ठ में अमृत था। गाता था तो जादू जगाता था। वह गाँव की एक लड़की गिरिजा से प्यार

करने लगा था, पर गिरिजा उसकी ओर देखती भी न थी। वह स्वयं बड़ी सुन्दर थी और उसके घर वाले उसे किसी बड़े जमींदार के यहाँ ब्याहने की बात सोचते थे। रणिया शहर चला गया। वहाँ वह एक सरकस में भरती हो गया। कुछ वर्ष बाद वह गाँव वापस आया तो गाँव वालों को उसने ऐसे खेल दिखाये कि लोग चकित रह गये। तभी गिरिजा ने भी उसे निकट से देखा और वह उस पर मोहित हो गयी। रणिया उस पर मर मिटा। वह वापस शहर नहीं गया। महीनों दोनों एक-दूसरे के प्यार में मदहोश रहे, लेकिन तभी कागी नाम की एक सुन्दर धनी विधवा युवती ने रणिया को अपने जाल में फाँस लिया और एक दिन ससंकोच रणिया ने गिरिजा को बता दिया कि वह कागी से शादी करने जा रहा है। तब हमेशा के लिए अलग होने से पहले गिरिजा उसे इस चट्टान पर ले आयी और उसने उससे वही गीत सुनाने के लिए कहा, जो वे दोनों प्रायः साथ-साथ गाया करते थे।

रणिया ने गीत गाया। अन्तिम पंक्ति पर गिरिजा ने अपनी बाँहें उसके गले में डाल दीं और उसके स्वर-में-स्वर मिला कर गाने लगी :

'और अब प्रेम के सुखद मधुर क्षण बीत गये हैं. . .

और इससे पहले कि रणिया चौंकता, वह उसे ले कर खड्ड के अन्धकार में कूद गयी।'

मिन्नो अपनी कहानी समाप्त करके बोली, 'तभी से यह गीत इतना लोकप्रिय हो गया है और यह चट्टान प्रेमियों का तीरथ।'

और मिन्नो विसुध हो कर गीत का अन्तिम बन्द गाने लगी और इससे पहले कि माधो चौंकता, उसने गीत के अन्तिम बोल के साथ उसे बाँहों में भींच लिया और खड्ड में लुढ़क गयी।'

संन्यासी अभी मुश्किल के अपनी कहानी खत्म कर पाया था कि एक चीख फ़िज़ा में गूँजी। उन्होंने मुड़ कर देखा—चट्टान पर बैठा जोड़ा एक दूसरे के आलिंगन में बँधा खड्ड में लुढ़का जा रहा था। केवल जुदाई की शाम का वह प्रसिद्ध गीत वायु मण्डल में गूँज रहा था :

और अब प्रेम के सुखद मधुर क्षण बीत गये हैं. . .

०

चेतन एक घण्टे तक बिना रुके कहानी का अनुवाद करता रहा। उसे उर्दू से हिन्दी अनुवाद करने में खासी कठिनाई पेश आ रही थी। चूँकि उर्दू का उसे अभ्यास हो गया था इसलिए उसकी उर्दू खासी मुश्किल थी। कठिन उर्दू शब्दों के उपयुक्त हिन्दी पर्याय उसे मिल नहीं रहे थे। फिर हिन्दी लिखने का उसे ज़रा भी अभ्यास न था। कई शब्दों के सन्दर्भ में उसके मन में शंका थी कि शायद वह हिज्जे ठीक नहीं लिख रहा, पर वह रुका नहीं। बराबर अनुवाद करता रहा। जहाँ उसे हिन्दी शब्द नहीं सूझा, उसने उर्दू ही रहने दिया। हिज्जों के लिए उसने शब्दकोश नहीं देखा (उसके पास था भी नहीं)। वह बिना रुके निरन्तर लिखता गया। लगभग एक घण्टा अनुवाद करने के बाद उसे लगा कि उसका दिमाग़ एकदम खाली हो गया है। उसकी आँखें झपने लगीं। वह उठा। उसने बत्ती बन्द की। कमरे को ताला लगाया और सुराही से पानी का गिलास पी कर अपने बिस्तर पर जा लेटा। दूसरे क्षण वह गहरी नींद सो गया।

०

सबेरे उठा तो सबसे पहले उसे खयाल आया कि अपनी कहानियों के तराशों की फ़ाइल ले कर चातकजी के पास जाय, उन्हें उर्दू में छपी अपनी दो-तीन बढ़िया कहानियाँ सुनाये और पूछे कि अनुवाद के लिए उसने जो कहानी चुनी है, वह हिन्दी के लिए उपयुक्त है या नहीं, लेकिन फिर क्षण भर सोच कर उसने तय किया कि वह उस कहानी को हिन्दी में परिवर्तित करके ही चातकजी के पास जायगा। वह उन्हें पहले दो-तीन उर्दू कहानियाँ ही सुनायेगा और यदि उन्होंने भी 'कुर्बानगाहे-इश्क' ही पसन्द की और उसे हिन्दी में अनूदित करने का परामर्श दिया तो वह दूसरी फ़ाइल से अनुवाद निकाल कर उन्हें दे देगा कि ज़रा इसकी हिन्दी ठीक कर दीजिए, बहुत ग़लतियाँ हुई हों तो वह उसे पुनः कापी

करके उन्हें दे जायगा और कहेगा कि यदि वे 'मंजरी' के ताज़ा अंक में उसे छाप देंगे तो वह अत्यन्त आभारी होगा ।

यह ठीक है कि मुन्शी चन्द्रशेखर ने उससे हिन्दी में कहानियाँ माँगी थीं, पर वह उन्हें तब कहानी भेजना चाहता था, जब उसे हिन्दी में लिखना अथवा अच्छी तरह अनुवाद करना आ जाय । फिर चेतन ने सोचा कि 'मंजरी' में एक-दो रचनाएँ छप जायँ तो मुन्शीजी पर उसकी प्रतिभा का रोब भी पड़ेगा और वे सहर्ष 'वीणा' में उसकी कहानी छाप देंगे । 'मंजरी' इस सिलसिले में उसे पहली सीढ़ी-ऐसी दिखायी दी । पहला ही पैर उसका ओछा न पड़े, यही प्रयास वह करना चाहता था ।

'मंजरी' का अंक उसने अनारकली के चौरस्ते पर 'फ़ज़ल बुक डिपो' में देखा था । सुन्दर काग़ज़, बढ़िया टाइप, निर्दोष छपाई और आकर्षक मुखपृष्ठ । सामग्री का चयन देख कर उसे कलकत्ता की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिकाओं—'विशाल भारत' और 'विश्वामित्र' की याद हो आयी थी । प्रकट ही चातकजी ने उसी आदर्श को सामने रखा था । यदि उसकी कहानी 'मंजरी' में छप जाय तो कितना अच्छा हो । 'चातक जी प्रेमी जीव हैं,' उसने सोचा, 'मेरी इस प्रेम-कहानी को वे ख़ूब पसन्द करेंगे ।'. . .और नित्य कर्म से निवट, लस्सी का गिलास पी कर, वह मेज़ पर बैठ गया और एक-डेढ़ बजे तक उसने पूरी-की-पूरी कहानी हिन्दी में कर डाली । फिर उसने स्नान किया । चन्दा खाना पका कर रख गयी थी । (भाभी के जाने के बाद उसने फिर खाने का पुराना क्रम बना लिया था) । उसने खाना खा कर पतली लस्सी का डेढ़ गिलास पिया और बैठक में ज़मीन पर चटाई बिछा कर सो गया ।

पत्नी के पैरों की चाप के साथ ही वह उठा । चन्दा ने मुँह-हाथ धो कर दूध की लस्सी बनायी । पी कर उसने चन्दा को अपनी कारगुज़ारी सुनायी और बोला, 'मैं यह सोचता हूँ कि यदि बहन कृपालदेवी मेरी कहानी के हिन्दी हिज्जों की ग़लतियाँ ठीक कर दें तो मैं उसे फिर से साफ़ लिख कर चातकजी के पास ले जाऊँ । हिन्दी शब्दों की ग़लतियाँ

तो वे सुधार देंगे, पर यदि उन्हें हिज्जे भी ठीक करने पड़ें तो शायद उन्हें उलझन हो और मेरी कहानी पड़ी ही रह जाय।'

'जैसा आप कहें,' चन्दा ने कहा, 'मैं कल इसे ले जाऊँगी।'

लेकिन चेतन को इतनी ताब कहाँ! उसने कहा, 'तुम नहा कर कपड़े बदल लो, अभी दे आते हैं। मैं स्वयं इस सिलसिले में उनके यहाँ जाऊँगा तो उन पर और भी असर पड़ेगा। हो सकता है, वे इसे आज ही देख रखें। तब तुम कल उनसे ले आना। मैं परसों कहानी ले कर चातकजी से मिलने जाऊँगा! यदि वह 'मंजरी' के ताज़ा अंक में छप जाय तो क्या बात है!'

और जैसे उसकी कहानी सचमुच 'मंजरी' में छप रही हो, वह उत्साह से कमरे में घूमने लगा और बिना किसी चेतावनी के उसने खुली खिड़कियों और खुले दरवाज़े अपनी पत्नी को बाँहों में भर कर चूम लिया, 'मेरी जान, तुम जल्दी तैयार हो जाओ। अभी चलते हैं और यह काम निबटा आते हैं।'

चन्दा सिर से पैर तक लाल हो आयी, पर उसने न कोई विरोध किया, न अपने पति को इस बदतमीज़ी पर डाँटा। वह चुपचाप तैयार होने चली गयी।

०

जैसा कि चेतन ने सोचा था, बहन कृपालदेवी सचमुच उसके आने से प्रसन्न हुई। वे आर्य समाज अड्डा होशियारपुर (जालन्धर) के प्रधान की बेटी थीं। चेतन कॉलिज के दिनों में समाज के पुस्तकालय में हिन्दी-उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने नित्य जाता था। कुन्ती की खिड़की में एक नज़र झाँकता हुआ और यदि उसके दर्शन हो जाते तो उस पुलक के कारण धरती से कुछ ऊपर ही चलता हुआ, वह आर्य समाज की लायब्रेरी तक एक गति से चला जाता था। कई बार कोट किशनचन्द में रजत के यहाँ चला जाता, पर जाते अथवा आते हुए वह पुस्तकालय में सदा एकाध घण्टा पत्र-पत्रिकाएँ देखता। गर्मियों में हर वर्ष आर्य समाज के वार्षिक अधि-

वेशन के दिनों में स्वामी सत्यदेव की कथा होती, जिसे चेतन ज़रूर सुनता (यह और बात है कि स्वामीजी की कथा से ज़्यादा उसकी दृष्टि का केन्द्र कुन्ती ही होती।) बहन कृपालदेवी के पिता को उसने कई वार देखा था। वे लम्बे, ऊँचे, गोल-मटोल चेहरे वाले, दोहरे बदन के गम्भीर, लेकिन हँसमुख व्यक्ति थे। उनके ऊपर के दाँत ज़रा वाहर को निकले हुए थे। यह अजीव बात है कि उनकी चारों वेटियाँ पिता पर गयी थीं—चारों मोटापे की ओर को मायल थीं। चारों के दाँत ज़रा वाहर को निकले हुए थे और चारों का रंग साँवला था; जबकि उनके दोनों वेटे (जो प्रकट ही माँ पर थे) पतले, छरहरे और सुन्दर थे। चेतन कॉलिज ही में पढ़ता था, जव उनकी मँझली लड़की दयालदेवी का अन्तर्जातीय, अन्तरप्रान्तीय विवाह लाहौर के एक अंग्रेज़ी पत्रकार से हो गया था। वह एम० ए० पास कर के लाहौर के एक कॉलिज में पढ़ाने लगी थी, जव उस पत्रकार से उसका प्रेम हो गया। पिता ने कोई अड़चन नहीं डाली और बड़ी धूमधाम से विवाह हो गया। लेकिन तभी दिल के दौरे से पिता की मृत्यु हो गयी। बहन कृपालदेवी पर छोटे भाई-बहनों की लिखाई-पढ़ायी का वोझ आ पड़ा। पिता की मृत्यु के बाद वे लाहौर आ गयीं। उन्होंने वहाँ 'हिन्दी विद्यालय' कायम किया (जो बाद में उन्हीं के नाम से जाना जाने लगा।) छोटे भाई को उन्होंने प्रेस फ़ोटोग्राफ़र बनाया। जीजा की सहायता थी ही, उसका काम चल निकला था। उसकी शादी भी उन्होंने कर दी थी, पर अभी दो छोटी बहनों और एक भाई का भविष्य उनके सामने था। यद्यपि उनकी अपनी उम्र कब की विवाह योग्य हो चुकी थी, पर चूँकि माँ पहले ही दिवंगत हो गयी थीं, इसलिए अपने भाई-बहनों के प्रति माता-पिता—दोनों के कर्त्तव्यों को निभाने में वे उसे भूली हुई थीं। वे पढ़-लिख जायँ, उनके शादी-व्याह हो जायँ तो वे अपनी भी देखें!. . .जालन्धर के नाते से चेतन उन्हें बड़ी बहन-सा मानता था। उसके मन में उनके त्याग और बलिदान के लिए अव्यक्त श्रद्धा थी। जब वह अपनी पत्नी के साथ उनके यहाँ

पहुँचा तो वे अपने सुरुचिपूर्ण ड्रॉइंग-रूम में कौच पर अधलेटी-अधबैठी कापियाँ देख रही थीं। चेतन के साथ चन्दा को देख कर उन्होंने समझा कि वह शायद उसकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछने आया है और बिना उसे बात करने का अवसर दिये, उन्होंने चन्दा की पीठ थपथपाते हुए उसके सरल, हँसमुख स्वभाव और तीक्ष्ण बुद्धि की प्रशंसा की। 'इसे छोटी-छोटी लड़कियों में बैठने में संकोच था,' उन्होंने अपने सारे-के-सारे दाँत दिखाते हुए कहा, 'आज कल तो बालिश्त भर की लड़कियाँ 'प्रभाकर' में पढ़ने आती हैं। पर मैं इसे सदा अपने निकट बैठाती हूँ, मुझे तो यह बिलकुल अपनी छोटी बहन-सी लगती है।'. . .और उन्होंने उसे बाँह में ले कर अपने साथ कौच पर बैठा लिया। चेतन सामने बैठा तो उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया। जब उन्हें मालूम हुआ कि चेतन 'म्लेच्छ भाषा' त्याग कर 'मातृभाषा' में लिखना चाहता है तो वे बड़ी प्रसन्न हुईं।. . .चेतन को उर्दू काव्य और उर्दू भाषा बड़ी अच्छी लगती थी और उर्दू के सन्दर्भ में 'म्लेच्छ भाषा' का प्रयोग बुरा लगता था, पर बहन कृपालदेवी आर्य समाजी बाप की बेटी थीं। चेतन स्वयं आर्य समाजी संस्था में पढ़ा था और उर्दू के लिए अपने पण्डितों के मुँह से उसने प्रायः यह शब्द सुना था और वह बहन कृपालदेवी का मनोविज्ञान समझता था। वह हिन्दी को भी अपनी मातृभाषा नहीं मानता था। पंजाबियों की मातृभाषा उसके मत से केवल पंजाबी थी। उसे कभी-कभी यह सोच कर दुख होता था कि वे लोग घर में जो भाषा बोलते हैं, वह लिखते नहीं। लेकिन अंग्रेज़ों ने पंजाबियों पर उर्दू लाद दी थी और चूँकि सिक्ख गुरुमुखी को केवल गुरुवाणी बनाये थे और उसके प्रचार-प्रसार के लिए कोई प्रयास न करते थे, इसलिए उर्दू की प्रतिक्रिया में पंजाबी हिन्दुओं ने, चाहे वे आर्य समाजी हों अथवा सनातनी, हिन्दी को मातृभाषा बना लिया था। हिन्दी के प्रति मातृभाषा के मोह ने चेतन को हिन्दी की ओर प्रवृत्त न किया था, वह तो देश की विशाल जनता तक अपनी रचनाएँ पहुँचाना चाहता था और मणि भाई

गोबिल के भाषण और मुन्शी चन्द्रशेखर के परामर्श से प्रभावित हो कर उसने तय कर लिया था कि वह हिन्दी में लिखना सीखेगा । लेकिन भाषा के सम्बन्ध में उसने बहन कृपालदेवी के साथ किसी तरह की बहस में उलझना उचित नहीं समझा । उसने उनके त्याग और बलिदान के लिए अपनी श्रद्धा प्रकट की और कहा कि जैसे वे अपने छोटे भाइयों की सहायता कर रही हैं, वैसे ही अपना छोटा भाई समझ कर (जालन्धर के नाते इतना तो अधिकार उसका है ही) वे उसकी कहानी की हिन्दी ठीक कर दें ।

'मंजरी के सम्पादक मेरी कहानी चाहते हैं ।' उसने रद्दा जमाया, 'यदि आप इसे आज ही देख दें तो मैं कल इसे फिर से कापी कर के उन्हें दे आऊँ । (यहाँ चेतन को खयाल आया कि जाने कहानी चातक जी को पसन्द आये, न आये, वे 'मंजरी' में छापें, न छापें, इसलिए उसने इतना और बढ़ा दिया) हो सकता है, उन्हें पसन्द आ जाय और वे इसे 'मंजरी' के लिए स्वीकार कर लें ।'

यह कहते हुए चेतन ने कहानी का मसौदा उन्हें दिया और बोला, 'हिन्दी में यही मेरी पहली कहानी है । यूँ कहूँ कि यही पहली कहानी मैंने उर्दू से हिन्दी में की है, क्योंकि अभी सीधे हिन्दी में लिखने के लिए मुझे बहुत अभ्यास करना होगा । मुझे हिन्दी में लिखने की आदत नहीं । इसे उर्दू से हिन्दी में करते हुए मुझे लगा है कि जो थोड़ी-बहुत हिन्दी मैंने सीखी थी, उसे भी भूल गया हूँ । आप ज़रा मेरे हिज्जे ठीक कर दीजिएगा । हो सकता है, मैंने छोटी की जगह बड़ी और बड़ी की जगह छोटी मात्रा लगा दी हो । लघु-गुरु मात्राओं का ज्ञान मुझे वैसा नहीं रहा । मिश्रित अक्षरों में भी ग़लती हो सकती है । आपको कष्ट तो होगा, पर यदि आप मेरी दो-एक कहानियाँ ठीक कर देंगी तो मैं चल निकलूंगा । एक बार जो ग़लती आप ठीक कर देंगी, वह दोबारा नहीं होगी, इसका मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ ।'

बहन कृपालदेवी ने कहानी सोत्साह ले ली और बोलीं कि उन्हें

कापियाँ तो देखनी हैं, पर सोने से पहले वे उसकी कहानी एक नज़र देख लेंगी और वह कल दस के करीब उसे विद्यालय से ले ले।

तब चेतन ने कहा कि यदि किसी शब्द की जगह उन्हें अच्छा शब्द सूझे तो वह भी हाशिये में लिख दें। और वह उठा।

लेकिन बहन कृपालदेवी इतनी प्रसन्न हो गयी थीं कि उन्होंने अपनी छोटी बहन को शर्बत बनाने के लिए कहा और स्वयं उठ कर दो तश्त-रियों में मीठा-नमकीन ले आयीं। चेतन ने लाख कहा कि वे घर से लस्सी पी कर चले थे, लेकिन उन्होंने बिना नाश्ता किये उन्हें उठने नहीं दिया।

उ
न
तो
स
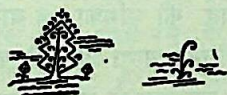
दूसरे दिन चेतन सुबह ज़रा जल्दी उठ गया। बहन कृपाल-देवी ने दस बजे आने को कहा था। तब सहसा उसके मन में आया कि क्यों न वह पण्डित रत्न के जाय और अपने उर्दू कहानी-संग्रह की भूमिका के बारे में उनसे परामर्श कर आये! विचार आया कि उसे कार्य रूप में परिणत करने को वह उतावला हो उठा! जल्दी-जल्दी नित्य कर्म से निबट, वह पैदल ही शीशमहल रोड की तरफ़ चल पड़ा। पण्डित रत्न के घर पहुँचा तो वे दफ़्तर को जाने की तैयारी कर रहे थे। उनके सामने उसने सारी स्थिति रखी। पण्डितजी ने उसे सलाह दी, वह 'हफ़ीज़,' 'तासीर' और 'तवस्सुम' आदि बड़े नामों के फेर में न पड़े। वे लोग निहायत मसरूफ़ हैं। उसका मसौदा रख लेंगे और महीनों सनद नहीं देंगे। वे उसे पण्डित हरिचन्द 'अख्तर' के नाम चिट्ठी दे देते हैं। वे बहुत अच्छे कवि और निबन्ध-कार हैं। उन्हीं ने 'हफ़ीज़' जालन्धरी के काव्य-संग्रह की भूमिका लिखी है। वे पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल के पुस्तकालयाध्यक्ष हैं। उनके पास काफ़ी समय है। चेतन

यदि उन्हें चिट्ठी दे देगा तो वे उसका काम कर देंगे !

और चेतन उनसे चिट्ठी ले कर उलटे पाँव वापस फिरा। यद्यपि गर्मी में तीन-चार मील का चक्कर पैदल तय करने से वह थक गया था, पर वह घर में रुका नहीं। पत्नी उसकी विद्यालय चली गयी थी। मकान-मालकिन से अपने पोर्शन की चाबियाँ ले कर (जिन्हें वे एक-दूसरे की अनुपस्थिति में ऊपर दे आते थे) चेतन नीचे आया। रसोई-घर खोल कर उसने पानी का गिलास पिया। पण्डितजी की चिट्ठी को सँभाल कर दराज़ में रखा और कमरा बन्द कर के निस्बत रोड 'कृपालदेवी विद्यालय' गया। बहन कृपालदेवी ने उसकी कहानी देख रखी थी। वे कथाकार तो थीं नहीं, शब्दों में उन्होंने अधिक संशोधन नहीं किया था। हिज्जों की अशुद्धियाँ उन्होंने ठीक कर दी थीं। उन्हें हार्दिक धन्यवाद दे कर चेतन वापस आया। रास्ते में वह मसौदा देखता आया था। ग़लतियाँ ज़्यादा नहीं थीं। (चेतन को इस बात का सन्तोष हुआ।) पहले उसने सोचा कि इसी तरह उसे चातकजी के पास ले जाय, पर वह किसी काम को बेदिली से करने में विश्वास नहीं रखता था। घर आ कर बैठक खोल, कमीज़ और बनियान उतार, वह मेज़ पर बैठ गया। सामने उसने तख्ती रखी और कलाई के नीचे काग़ज़ रख कर कहानी को सुन्दर अक्षरों में साफ़-साफ़ कापी करने लगा।

दो बज गये थे, जब वह अन्तिम पंक्ति लिख कर उठा। पहले उसने सोचा कि नहा-धो और खाना खा कर सो जाय। पर वह चाहता था कि उसकी कहानी यदि चातकजी को पसन्द आ जाय और वे 'मंजरी' के ताज़ा अंक में छाप दें तो उसका श्रम सफल हो जाय। इसलिए दोपहर को सोने का लोभ उसने सम्वरण किया। नहा कर हलका खाना खाया ताकि उसे नींद न आये। नये कपड़े बदले। कहानी का मसौदा और तराशों की फ़ाइल उठायी और कमरे से बाहर निकला। वह डेवढ़ी ही में था कि उसे ख़याल आया, यदि चातकजी दफ़्तर में न मिले, उसकी दोपहर ही बर्बाद हो जायगी। तब फिर बैठक का दरवाज़ा खोल

उसने मेज़ की दराज़ से पण्डित रत्न की चिट्ठी निकाली कि चातकजी से भेंट न होगी तो वह पण्डित अख्तर के दफ़्तर चला जायेगा और अपने कहानी-संग्रह की दूसरी भूमिका वाला काम निबटा आयेगा ।

०

लेकिन चेतन को यह मालूम नहीं था कि अगर वह जल्दी में है तो यह ज़रूरी नहीं कि सारी दुनिया भी जल्दी में हो। वह 'हिन्दी पुस्तक भवन' पहुँचा और उसने ऊपर 'मंजरी' के दफ़्तर की ओर निगाह डाली तो खिड़की खुली थी। वह खटखट सीढ़ियाँ चढ़ गया। सामने खिड़की के आगे दूध-धुली खादी के कुर्ते-धोती में सुशोभित कवि चातक मेज़-कुर्सी सजाये बैठे काम में रत थे। उसने अभिवादन किया तो उन्होंने बैठे-बैठे और पूर्ववत सामने रखा मसौदा देखते हुए कहा, 'आओ, आओ! मैं कल ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था, तुम आये नहीं तो मैंने समझा कि भूल गये।'

'दिन को मैं काम करता रहा,' चेतन ने कहा, 'रात की ड्यूटी है। दोपहर को सो जाता हूँ। आज तो केवल आपसे मिलने के लिए सोने का मोह छोड़ कर चला आया हूँ। आपका घर देखा होता तो ऐसी शिखर-दोपहरी में नहीं आता।'

'अरे भाई,' चातकजी ने मसौदे से निगाह उठा कर उसकी ओर देखा, 'मेरा घर तो तुम्हारे घर के बिल्कुल पास है। शाह आलमी से रत्नचन्द रोड की ओर चलो तो जहाँ कृष्णा गली के मकान शुरू होते हैं, वहीं दो मकान आमने-सामने बने हैं। उधर बाकी गलियों में अभी कोई मकान नहीं बना। दायें वाले मकान के ऊपर हम रहते हैं।'

'मैं आज ही आपके साथ जा कर देख आऊँगा,' चेतन ने कहा। फिर क्षण भर रुक कर उसने अपना मन्तव्य प्रकट किया, 'यह मेरी प्रकाशित उर्दू कहानियों की फ़ाइल है, मैं आपको दिखाने के लिए लाया था।'

और बिना उनका उत्तर सुने अथवा उनके चेहरे की ओर देखे,

उसने फ़ाइल उनके सामने मेज़ पर रखी और उनके बराबर खड़े हो कर वह एक-एक कहानी दिखाता गया कि कौन कहाँ छपी है और किस पत्र अथवा पत्रिका का कितना महत्व है।. . .(कहानियाँ उर्दू में थीं। उर्दू की पत्र-पत्रिकाओं में छपी थीं। चातकजी उर्दू नहीं जानते थे, पर चेतन का उद्देश्य केवल उन्हें अपने कथाकार का महत्व जनाना था। मुन्शी चन्द्रशेखर ने जिन कहानियों की प्रशंसा की थी, उन्हें दिखाना और उनके बारे में मुन्शीजी की सम्मति का उल्लेख करना भी वह नहीं भूला।). . .फ़ाइल दिखा कर उसने कहा, 'यदि आप थोड़ा समय दें तो मैं अपनी एक-दो उर्दू कहानियाँ सुनाऊँ। जो कहानियाँ आपको पसन्द होंगी, उन्हें मैं हिन्दी में कर दूँगा।' और बिना रुके उसने इतना और जोड़ दिया, 'दरअसल एक कहानी तो मैंने हिन्दी में कर भी ली है! आप समय देंगे तो वह भी सुनाऊँगा।'

अपनी ही रौ में जब चेतन इतना कह चुका और फ़ाइल खोल कर उनके सामने कहानी सुनाने को उद्यत बैठ गया तो उसने सुना, वे अपने सामने रखे मसौदे की ओर संकेत करते हुए कह रहे थे :

'कल इतवार है, लेकिन प्रेस खुलेगा, मुझे कम-से-कम चार फ़र्मों का मैटर आज प्रेस को दे देना है। दो का मैं दे चुका हूँ, लेकिन अभी दो का शेष है। मैं तो खाना खाने भी घर नहीं गया। तुम अभी बैठो। दो-तीन घण्टे में इस काम से छुट्टी पा लेता हूँ, फिर घर चलेंगे।'

और वे उसका उत्तर सुने बिना मसौदे पर झुक गये।

चेतन का सारा उत्साह मन्द हो गया। तीन घण्टे चुपचाप बैठना उसके अत्यन्त क्रियाशील मस्तिष्क के लिए घोर यातना के बराबर था। तब उसने सोचा कि क्यों न वह इस बीच कौंसिल की लायब्रेरी जा कर कहानी-संग्रह की भूमिका का डौल बैठा आये। पण्डित अख्तर मिल जायें तो उनको वे दोनों विवादास्पद कहानियाँ सुना आये और फ़ाइल से उन कहानियों के तराशे भी निकाल कर दे आये, जो उसने कहानी-संग्रह में संकलित की हैं। साथ ही मुन्शीजी की भूमिका भी उन्हें सहेज दे,

जिसकी एक प्रतिलिपि सावधानी के लिए उसने कर ली थी। तब जेब में उसने टटोल कर देखा, पण्डित रत्न की चिट्ठी मौजूद थी।

(इस तेज़ी और तत्परता पर उसने मन-ही-मन अपनी पीठ ठोंक ली।)

चातकजी पूर्ववत मसौदे पर झुके हुए थे। उस कमरे में अपना व्यक्तित्व चेतन को एकदम बेकार और निरर्थक लगा। वह उठा, 'मैं ज़रा कौंसिल की लायब्रेरी हो आऊँ।' उसने कहा, 'आप इतने में अपना काम खत्म कर लीजिए।'

क्षण भर को उन्होंने कलम रोकी। सिर उठाया, 'ठीक है। मैं पाँच-एक बजे तक काम खत्म कर लूँगा। तब तक तुम आ जाना। फिर इकट्ठे घर चलेंगे और सुने-सुनायेंगे।'

चेतन ने उन्हें 'नमस्कार' किया और फ़ाइल को बग़ल में दबा कर सीढ़ियाँ उतर गया।

०

लेकिन जब पाँच के बदले वह चार ही बजे नितान्त असफल, थका और पसीने से तर 'मंजरी' के कार्यालय में वापस आया तो चातकजी मेज़ पर नहीं थे। कुछ क्षण वह इस आशा में कुर्सी पर बैठा रहा कि शायद प्रेस गये हों और कुछ देर बाद आ जायें। जब वह दस-पन्द्रह मिनट तक बैठा रहा और चातकजी के आने की उसे कोई सुन-गुन न मिली तो वह उठ कर प्रेस गया। मालूम हुआ कि चातकजी सभी फ़ार्म दे गये हैं और वहाँ किसी को पता नहीं, कहाँ गये हैं। तब चेतन 'हिन्दी-पुस्तक भवन' गया। वहाँ मैनेजर से उसने चातकजी के बारे में पूछा। पता चला कि शुक्लाजी आये थे और एक ज़रूरी काम से उन्हें साथ ले गये हैं।

'क्या वे दफ़्तर वापस आयेंगे ?' चेतन ने भरी हुई आवाज़ में सूखे गले से पूछा।

'शुक्लाजी के साथ गये हैं। उम्मीद तो नहीं।' मैनेजर ने कहा।

चेतन को विश्वास नहीं हुआ कि उसे आश्वासन देने के बावजूद

चातकजी बिना उसकी प्रतीक्षा किये चले गये हैं। पहले उसने सोचा कि वह पाँच बजे तक उनकी प्रतीक्षा करे, लेकिन जब भरी दोपहरी में मील-डेढ़-मील चल कर कौंसिल के पुस्तकालय पहुँच और पण्डित 'अख्तर' के साथ मिल कर भी उसके हाथ निराशा ही लगी तो उसे हठात यह इलहाम हुआ कि आज उसका काम नहीं होगा। वह बेकार बैठा झींखता रहेगा। वह ऊपर 'मंजरी' के दफ़्तर को जाने वाली सीढ़ियों के पास क्षण भर को रुका, फिर चातकजी की प्रतीक्षा करने का खयाल छोड़, सिर झुकाये भारी कदमों से घर की ओर चल पड़ा।

०

चेतन का मन बेहद खिन्न और उदास था। उसकी आँखों के सामने गर्म तवे की तरह तपता ठण्डी सड़क का वह टुकड़ा घूम गया, जिस पर उस भरी दोपहरी में उसे जाना-आना पड़ा था।

चातकजी से छुट्टी ले कर जब वह नीचे आया था तो क्षण भर हस्पताल रोड पर खड़े-खड़े उसने सोचा था—वह कौंसिल की लायब्रेरी न जाय। महीने का अन्तिम शनिवार है, हो सकता है, 'अख्तर' साहब चले गये हों। इतनी तेज़ धूप में उसका जाना बेकार हो जायगा। वह वापस 'मंजरी' के दफ़्तर चला जाय, चातकजी का काम खत्म होने की प्रतीक्षा करे और आज यही काम निबटाये!—उसे अफ़सोस हुआ कि वह दोपहरी को दो घण्टे सो कर चातकजी से मिलने क्यों नहीं आया। नींद भी खराब की और काम भी नहीं हुआ।. . .लेकिन काम कुछ तो होना चाहिए! उसकी जेब में पण्डित रत्न की चिट्ठी थी। क्यों न वह एक चांस ले ले! 'मंजरी' के दफ़्तर में बैठा चातकजी के बबुओं-ऐसे मुख की ओर देखता हुआ वह क्या करेगा? नींद तो उसकी खराब हो ही गयी है, क्यों न वह इस समय का उपयोग कर ले!. . .और वह चल दिया था।

गनपत रोड पार कर, एस० पी० एस० के० हॉल की भारी बिल्डिंग के बराबर से सरक्युलर रोड पर होता हुआ वह मोहनलाल रोड पर आ

गया था। किताबों की दुकानों पर सन्नाटा था। धूप से बचने के लिए अधिकांश दुकानदारों ने बाँसों की सहायता से टाट के पर्दे फैला रखे थे। चेतन अपने ध्यान में मग्न पण्डित 'अख़्तर' से अपनी भेंट और बात-चीत के बारे में सोचता हुआ ठण्डी सड़क पर आ गया। उसी सड़क पर लगभग आध मील के फ़ासले पर, जहाँ माल रोड ठण्डी सड़क से मिलती थी, कौंसिल हाउस का बड़ा फाटक था। चेतन अनारकली पार कर लोअर माल और गोल बाग़ से होता हुआ भी जा सकता था, पर वह रास्ता लम्बा था, इसलिए वह मोहनलाल रोड से हो कर आया था। ठण्डी सड़क का यह भाग वास्तव में ग्रैण्ड ट्रंक रोड का हिस्सा था। शाम को नगरपालिका की मोटर उस पर पानी का छिड़काव कर जाती थी और रात होते-न-होते कोलतार की वह सड़क सचमुच ठण्डी हो जाती थी, लेकिन उस वक्त तो वह जलते तवे-सी गर्म थी। जगह-जगह तपिश के कारण कोलतार पिघल गया था। एक जगह चेतन की चप्पल उसमें चिपक गयी और उसका नंगा पैर उसमें से निकल कर जलती सड़क पर जा पड़ा, झुलस गया और जलन की एक लहर उसकी रीढ़ की हड्डी से होती हुई उसकी गर्दन के पीछे तक दौड़ गयी। एक पैर के बल खड़े हो, झुक कर उसने हाथ से चप्पल खींची और उठे हुए पैर में डाल दी। लेकिन उसके बाद भी पैर का तलुआ चप्पल में देर तक जलता रहा। जब कुछ दूर तक चलने के बाद दूसरी बार फिर उसका पैर चप्पल से निकल गया तो चेतन ने अपने ध्यान को सब बातों से हटा कर सड़क पर लगा दिया और इस बात का ख़ास ख़याल रखा कि जहाँ कोलतार फूला हो, वहाँ उसका पाँव न पड़े।

बरसात के मौसम में आम तौर पर पंजाब में दो-एक झड़ियाँ कस कर लग जाती हैं, लेकिन पूरा मौसम बीत चला था, बादल उमड़-घुमड़ कर ख़ुश भी कर गये थे, पर दो-एक घड़ी को भी किसी दिन जम कर पानी न बरसा था और गर्मी में सारा शहर, बाग़-बगीचे और सड़कें बेतरह झुलसने लगी थीं। चेतन की आँखों के सामने शून्य में लहरिये-से

बनते नज़र आ रहे थे। कभी दूर सड़क पर पानी बिछा दिखायी देता था, लेकिन वहाँ पहुँचने पर मालूम होता कि सड़क तो वैसी ही जलती-तपती है और पानी का वह आभास तो मरीचिका था। रेगिस्तान में यात्रियों को ऐसे ही पानी दिखायी देता होगा—चेतन ने मन-ही-मन सोचा और एक दीर्घ-निश्वास अनायास उसके होंटों से निकल गया।

सड़क पर जगह-जगह फूला कोलतार, शून्य में बनते लहरिये और हमेशा दूर-दूर होता पानी का लिश्कारा देखते हुए चेतन कौंसिल हाउस के निकट पहुँच गया था। दो खूबसूरत लेकिन मज़बूत स्तम्भों के बीच बड़े ऊँचे जालीदार गेट के दोनों ओर सन्तरी सख्त धूप के बावजूद, चाक-चौबन्द खड़े पहरा दे रहे थे। चेतन ने किंचित दूर ही से कुर्ते के दामन की उल्टी तरफ से मुँह और गर्दन का पसीना पोंछा। फिर आगे बढ़ कर सन्तरी से कौंसिल लायब्रेरी का पता पूछा। सन्तरी के पूछने पर उसने अपना परिचय दिया और पण्डित हरिचन्द 'अख्तर' से मिलने की इच्छा प्रकट की। सन्तरी ने उसे अन्दर जा कर बायीं ओर पहली बिल्डिंग में जाने के लिए कहा और समझाया कि बरामदे में दायीं ओर के कमरे में 'अख्तर' साहब बैठते हैं।

बरामदे में मोटे सरकण्डों से बनी और एक ओर नीली मारकीन से मढ़ी चिकों के पर्दे लगे थे, जो गरारियों की मदद से खोले और गोल किये जा सकते थे। चेतन वहाँ पहुँचा तो पसीने से तर उसके शरीर में ठण्डक की प्यारी-सी सरसराहट दौड़ गयी। कुर्ते के उल्टे दामन से उसने फिर मुँह और गर्दन का पसीना पोंछा। बरामदे में स्टूल पर बैठे चपरासी से उसने 'अख्तर' साहब का कमरा पूछा तो उसने बायीं ओर संकेत कर दिया। चेतन ने उधर निगाह डाली। उस दरवाज़े पर भी नीले कपड़े से मढ़ी बाँस की चिक लटक रही थी। चेतन ने बढ़ कर, एक तरफ़ से उसे ज़रा-सा उठा, अंग्रेज़ी में अन्दर आने की इजाज़त चाही।

पण्डित अख्तर बड़ी-सी मेज़ के पीछे खड़े कोई काग़ज़ ढूँढ़ रहे थे। बिना उसकी ओर देखे सिर के इशारे से उन्होंने उसे अन्दर आने के लिए

कहा और पूर्ववत् काग़ज़ ढूँढ़ते रहे ।

लम्बे और छरहरे । चौकोर मुख, कल्लों की हड्डियाँ किंचित उभरीं । उनके चेहरे से उनकी मेधा और वाकपटुता का ज़रा भी अनुमान न होता था । मित्रों की महफ़िलें उनके चुटकुलों, लतीफ़ों, हाज़िर-जवाबी, और शेरों की पैरोडीज़ के कारण गुलज़ार रहती थीं । वे बहुत कम लिखते थे, लेकिन उनके कुछ शेर बड़े प्रसिद्ध थे और वे बड़े अच्छे आलोचक माने जाते थे । जब वे सीधे किसी की ओर देखते तो उनकी आँखों में हलकी-सी चमक उस शरारत की चुगली खाती, जो उनकी गम्भीर मुखाकृति के नीचे कहीं छिपी रहती थी । उनका एक प्रयोग लाहौर के अदबी हलकों में बड़ा प्रसिद्ध था :

कहा—ऊँट पे चढ़ जायें
कहा—ऊँट पे चढ़ जाओ ।
कहा—कोहान का डर है
कहा—कोहान तो होगा ।।

कहा—सरहद पे जा बैठें
कहा—सरहद पे जा बैठो ।
कहा—अफ़ग़ान का डर है
कहा—अफ़ग़ान तो होगा ।।

कहा—चीन को जायें
कहा—चीन को जाओ ।
कहा—जापान का डर है
कहा—जापान तो होगा ।।

कहा—लेडी को चूमें
कहा—लेडी को चूमो ।
कहा—चालान का डर है
कहा—चालान तो होगा ।।

पण्डित रत्न से उसने यह प्रयोग सुना था। बाद में जब कोई मित्र कोई काम करना भी चाहता था और साथ ही शंका भी प्रकट करता तो चेतन कहता कि भाई कोहान तो होगा! और साथी के चकित होने पर 'अख्तर' साहब की यह कविता सुना देता था और अन्तिम बन्द के खत्म होते-न-होते दोनों ठहाका मार कर हँस पड़ते। इस तरह अख्तर साहब की कविता का 'कोहान' संकट का पर्याय बन गया था। लोग इस कविता में अपनी इच्छा और ज़रूरत के अनुसार और बन्द जोड़ लेते थे।. . .लेकिन अख्तर साहब ने कुछ बहुत अच्छे शेर भी कहे थे और चेतन को उनके दो शेर :

मैं अपने दिल का मालिक हूँ मेरा दिल एक बस्ती है
कभी आबाद करता हूँ, कभी बरबाद करता हूँ !

मुलाकातें भी होती हैं मुलाकातों के बाद अक्सर
वो मुझको भूल जाते हैं, मैं उनको याद करता हूँ !

बहुत अच्छे लगे थे।

लेकिन वहाँ बड़ी-सी कुर्सी और मेज़ के बीच क्रीम रंग के सूट में जो लम्बा-सा व्यक्ति खड़ा था, वह कवि नहीं, दफ़्तर का कोई उप-सचिव ऐसा लगता था।

आखिर अख्तर साहब को वह काग़ज़ मिल गया। तब उसे एक नज़र पढ़ कर उसे हाथ में लिये हुए वे चल पड़े। प्रकट ही अपनी तन्मयता में वे चेतन के अस्तित्व तक को भूल गये थे।

चेतन वहीं दरवाज़े के अन्दर खड़ा था कि उनसे नज़रें मिलें तो 'आदाब' कहे और आगे बढ़ कर उन्हें चिट्ठी दे। वह उनसे अपरिचित नहीं था, वे भी उसे जानते थे। दो-तीन बार महाशय धर्मचन्द के यहाँ पण्डित रत्न के साथ वह गया था तो उनसे भी भेंट हुई थी, लेकिन उस समय पुस्तकालयाध्यक्ष के उस कमरे की भव्यता और वहाँ बसी हुई नौकरशाही की बू अथवा अपनी हीन ग्रन्थि के कारण चेतन आगे बढ़ कर कुर्सी पर नहीं बैठा था।. . .जब वे दरवाज़े की ओर को आये तो अचा-

नक उनकी निगाह उस पर पड़ी, और उनके मुँह से अचानक निकला . . .। 'अरे आप. . .'

तब चेतन ने उन्हें 'आदाब' किया और चिट्ठी दी।

बिना उसके 'आदाब' का जवाब दिये, जल्दी में चिट्ठी खोल कर उस पर एक सरसरी दृष्टि डाल, उन्होंने कहा, 'मैं इस वक्त बहुत जल्दी में हूँ। मुझे कौंसिल हाउस से बुलावा आया है। आप फिर किसी वक्त आइए! बात करेंगे।'

और बिना उसका उत्तर सुने उसे काटते हुए वे तेज़-तेज़ दरवाज़े से निकल गये।

चेतन वहीं निश्चल खड़ा रहा। बाहर क्षण भर को बरामदे में उनके जूतों की खटखट सुनायी दी, फिर बरामदे के पर्दे के हटाये जाने की आवाज़ आयी और सन्नाटा छा गया।

छत पर लगा हुआ पंखा पूरे ज़ोर से चल रहा था। शायद उसके बॉल-बेयरिंग घिस गये थे और अजीब-सी 'खुटर-खुट्ट,' 'खुटर-खुट्ट' की आवाज़ निकल रही थी।. . .मोटी चिकों के कारण ठण्डे उस बरामदे में पैर रखते ही चेतन ने सोचा था कि वह पण्डित अख़्तर के साथ कम-से-कम दो घण्टे बितायेगा और सारी थकन मिटा कर फिर वापस 'मंजरी' में दफ़्तर की ओर पलटेगा। लेकिन अख़्तर साहब चले गये थे और उनके कमरे का पंखा जैसे उसका मज़ाक उड़ा रहा था। चेतन का जी हुआ मेज़ पर से शीशे का मोटा-सा पेपरवेट उठा कर ज़ोर से पंखे को दे मारे और उसकी वह 'खुटर-खुट्ट' बन्द कर दे। लेकिन उसने कोई ऐसी हरकत नहीं की थी। हलका-सा झोल दे कर चलते हुए उस पंखे पर एक तेज़ निगाह डाल कर वह बाहर निकल आया था। क्षण भर वह बरामदे में रुका रहा था—तपती-जलती 'ठण्डी सड़क' पर बनते हुए लहरिये उसकी आँखों में घूम गये थे—लेकिन फिर सिर को झटका दे कर, पर्दा उठा, बरामदे की सीढ़ियाँ उतर, वह आग-बरसाती धूप में तेज़-तेज़ वापस चल पड़ा था।

०

कृष्णा गली को वापस आते हुए वह सारा-का-सारा दृश्य उसकी आँखों में घूम गया। उसका कण्ठ बेतरह सूख रहा था और मुँह का ज़ायका कड़वा गया था। मेयो हस्पताल के पँचरस्ते पर पहुँच कर वह रत्नचन्द रोड की ओर मुड़ गया कि ऊपर कृष्णा गली नम्बर-१ से हो कर जाने के बदले बाँसों के टाल के बराबर खुली जगह से हो कर सामने से घर जाय !

अभी वह सड़क पर ही था कि उसे सामने डेवढ़ी में चन्दा खड़ी दिखायी दी। उसका ध्यान सामने नहीं था, वह बायीं ओर गली में देख रही थी। चेतन को यह देख कर सन्तोष हुआ कि चन्दा ने उसकी बात पर ध्यान दिया है। इसके आने के दूसरे या तीसरे दिन जब चेतन एक सुबह सब्ज़ीमण्डी से तरकारी ले कर आया था तो उसने उसे नंगे सिर ब्लाउज़ और पेटीकोट में परम देहातिनों की तरह डेवढ़ी के दरवाज़े में खड़े देखा था। उसके ब्लाउज़ का ऊपर का हुक टूटा हुआ था और उसे अपना होश नहीं था। तब चेतन का दिमाग़ ख़राब हो गया था। वह बहुत बोला-बका था और उसने डाँटा था कि फिर कभी उसने चन्दा को नंगे सिर और उघड़े तन डेवढ़ी में खड़े देख लिया तो वह ख़ून कर देगा। चन्दा ने आँखें भर ली थीं और वह चुप हो गया था। फिर उसने उसे समझाया था कि मेरी जान, यह बस्ती ग़ज़ाँ की बेरी वाली गली का तुम्हारा चौक नहीं। यह लाहौर की कृष्णा गली है और सामने चलती सड़क है। डेवढ़ी की चौखट में जब जाओ तो पूरी तरह तन ढाँक कर जाओ !

चन्दा ने कपड़े तो ठीक पहने थे, पर वे उतने साफ़ नहीं थे। 'जब यह कॉलेज में जाने लगेगी, तभी इसे ठीक से पहनना-ओढ़ना आयेगा,' चेतन ने मन-ही-मन सोचा और क्षण भर को वहीं रुक कर उसने अपनी पत्नी के चेहरे पर निगाह डाली। गोल-मटोल, पर ध्यान-मग्न होने के कारण कुछ सुता हुआ आभाहीन मुख, लेकिन सौन्दर्य की उस कमी को

उस चेहरे पर अनायास खिले भोलेपन ने पूरा कर दिया था। चेतन आगे बढ़ा। तभी चन्दा की निगाह उस पर पड़ी। उसकी पूरी बत्तीसी खिल गयी। मोतियों की उन दो पंक्तियों ने क्षण भर पहले आभाहीन दीखने वाले उस मुख को कुछ अजीब-सी द्युति से उद्भासित कर दिया और उन निर्जीव-सी दीखने वाली बड़ी-सी आँखों में अचानक चमक आ गयी। लेकिन चेतन जब डेवढ़ी में पहुँचा तो उसके थके-चिढ़े, उतरे मुख को देख कर अचानक चन्दा का चेहरा उतर गया।

वह उसके पास से निकल कर बैठक में गया। फ़ाइलें उसने मेज़ पर रखीं, कुर्ता-बनियान उतार कर कुर्सी पर फेंक दी और धरती पर चटाई बिछा कर चित लेट गया।

चन्दा भाग कर सिरहाना ले आयी। उसके सिर के नीचे सिरहाना रख कर वह वहीं फ़र्श पर बैठ गयी और उसके पसीने से तर घुँघराले बालों में हाथ फेरते हुए उसने पूछा कि क्या बात है, वह दोपहर को सोया क्यों नहीं, कहाँ गया था। खाना भी लगता है, उसने नहीं खाया।

'मेरा गला सूख रहा है, तुम मुझे ज़रा लस्सी या शिकंज्वी पिलाओ!'

'नींबू तो नहीं है, मैं लस्सी बनाती हूँ।' और चन्दा उठ कर भाग गयी और दो मिनटों में दूध की लस्सी का बड़ा-सा गिलास ले आयी। लगभग एक ही साँस में गिलास ख़त्म करके उसे वापस देते और फिर लेटते हुए चेतन ने पूछा, 'इसमें तो बर्फ़ थी। कहाँ से आयी?'

'मैं विद्यालय से आते-आते लेती आयी थी।' चन्दा ने मोतियों की लड़ियाँ बिखेरते हुए कहा, 'गल रही थी, तभी मैं चौखट में खड़ी आप की राह देख रही थी।'

चेतन की सारी थकन और खीझ हवा हो गयी। उसने वहीं चटाई पर लेटे-लेटे पत्नी का सिर अपने सीने पर रख लिया और धीरे-धीरे दिन भर की अपनी सारी बेकार भटकन की गाथा उसे कह सुनायी।

'सुबह से ले कर अब तक सात-आठ मील का चक्कर तो हो ही गया होगा।' बात ख़त्म कर के उसने कहा, 'दोपहर तो इसी फ़िराक में

सोया नहीं। दोनों जगह नाकाम रहा। पिण्डलियाँ और टखने वेतरह दुख रहे हैं और मन में बड़ी झल्लाहट हो रही है।'

चन्दा धीरे से उठी। 'आप बहुत उतावले हैं,' उसने पति की पिण्डली दबाते हुए कहा, 'नाहक कौंसिल हाउस गये। एक काम आज हो जाता, दूसरा फिर हो जाता। धूप में इतनी दूर जाने की क्या जरूरत थी! कल इतवार है, आराम से जाइएगा और कहानी चातकजी को दे आइएगा।'

चेतन हँसा, 'मैं अपनी आदत से मजबूर हूँ।' और उसने करवट बदल ली।

चन्दा धीरे-धीरे उसकी पिण्डलियाँ दबाने लगी। दोनों पिण्डलियाँ दबा कर उसने टखने और पैर दबाये और यद्यपि पाँच बज गये थे तो भी चेतन गहरी नींद सो गया।

पैर दबाते हुए चन्दा की उँगलियों में कोलतार लग गया था। पहले उसने सोचा, जा कर रगड़ कर उतार दे। फिर वह उठ कर पंखा लायी और चुपचाप अपने पति के पास बैठी पंखा करने लगी।

ती
स

यद्यपि चेतन ने भी कहा था और चन्दा ने भी तय किया था कि वह इतवार को जा कर चातकजी को अपनी कहानी दे आयेगा, लेकिन उस इतवार की बात तो दूर रही वह उसके अगले इतवार भी उनके यहाँ नहीं जा सका।

०

शाम को घण्टा भर सोने के बाद जब वह उठा था तो उसकी सारी चिन्ता दूर हो चुकी थी। आसमान पर इस बीच जाने किधर से बादल घिर आये थे और ठण्डी-ठण्डी हवा रमकने लगी थी। चेतन के लिए घर में बैठे रहना कठिन हो गया था। उसने चन्दा से तैयार होने को कहा था और स्वयं नहाने चला गया था। नहा कर और कपड़े बदल कर वह चन्दा के साथ बाहर निकला। तय हुआ कि वे निस्बत रोड पर सैर को जायेंगे, 'क्रिस्टल' में रोज़ की एक-एक बोतल पीयेंगे और वापसी पर अगर मन हुआ, तो कुछ क्षण को कमला के जायेंगे।

यह कमला के यहाँ जाने का प्रस्ताव उसकी पत्नी ने रखा था। जब वे घर से निकले थे और मेयो हस्पताल के

चौक में आ गये थे तो पँचरस्ते पर क्षण भर रुक कर चेतन ने पूछा था, 'किधर चलोगी चन्दा ?'

'आपका मन उदास है, चलिए ज़रा दो घड़ी कमला के यहाँ हो आयें !'

माँ के जाने के बाद वे दो-चार बार मौसी रामरक्खी के यहाँ हो आये थे। चूँकि कमला भी कृपालदेवी विद्यालय में पढ़ती थी, इसलिए चन्दा के लिए वह घर कमला का हो गया था। लेकिन कमला के यहाँ उसके पति के आकर्षण का केन्द्र जमुना है, यह चन्दा से छिपा न था और जब उसने कमला के यहाँ जाने की बात कही तो उसका अभिप्राय जमुना के यहाँ जाने ही से था। जमुना उसे अच्छी लगती है और उसके मन में उस अनाथ के लिए स्नेह और सहानुभूति है, यह बात चेतन ने अपनी पत्नी से छिपायी भी नहीं थी।. . .कमला के यहाँ जाने की बात सुनते ही चेतन ने एक तेज़ निगाह चन्दा के मुख पर डाली। लेकिन व्यंग्य का उस भोले चेहरे पर आभास तक न था। उसके बदले एक बड़ी मीठी, त्यागमयी मुस्कान वहाँ खेल रही थी।. . .चेतन ने क्षणिक आवेश में अपनी पत्नी को बाँह में भर लिया। वे उस पँचरस्ते पर न खड़े होते तो वह उसे चूम भी लेता। फिर उसने कहा, 'नहीं, क्रिस्टल से लक्ष्मी मैन्शन्ज़ तक तो जायेंगे, फिर समय रहा तो कमला के जायेंगे।' (मन-ही-मन उसने तय कर लिया कि कमला के नहीं जायेंगे।)

कृष्णा गली से निकल कर ख़रामाँ-ख़रामाँ टहलते हुए दोनों क्रिस्टल पहुँचे थे। निस्बत रोड उन दिनों पूरी नहीं बनी थी। बीच-बीच में दुकानों के लिए काफ़ी प्लॉट ख़ाली पड़े थे और दिनों-दिन उनकी कीमतें आसमान छू रही थीं। लगभग आधे रास्ते पहुँच कर दायीं ओर पाँच दुकानों का एक ब्लॉक बना था, जिनमें क्रिस्टल रेस्तराँ नया-नया खुला था और अपनी आधुनिक बनावट तथा प्रकाश-व्यवस्था के कारण (जो उस ज़माने में कहीं-कहीं ही देखने को मिलती थी) अनायास आँखों को आकर्षित करता था। चेतन जब उधर से गुज़रता, उसके मन में वहाँ जाने की इच्छा

होती थी, लेकिन वह कभी चन्दा को साथ ले कर वहाँ आयेगा, यह सोच कर वह अपनी उस इच्छा को मन-ही-मन दबा लेता। इसीलिए उस शाम जब वे बहुत दिनों के बाद इकट्ठे सैर को निकले थे, चेतन ने क्रिस्टल चलने का प्रस्ताव किया था।

मेयो हस्पताल के सामने से वे निस्बत रोड की ओर को मुड़े तो चेतन अपनी पत्नी को उन सभी हिन्दी-साहित्यकारों के बारे में बताने लगा, जिनसे उसका नया-नया परिचय हुआ था। लॉ रिपोर्टर के दफ़्तर और उर्दू बुक स्टाल में धर्मदेव वेदालंकार से अपनी दोनों मुलाकातों का ब्योरा दे कर उसने उनके घर होने वाली गोष्ठी का सविस्तार (अपनी ओर से नमक-मिर्च लगा कर कमेण्ट करते हुए) वर्णन किया। जब उसने माल और अनारकली के चौरस्ते पर दायीं ओर के लॉन में चातकजी के कविता सुनाने, उनकी धोती के भीग कर बोरी-ऐसी लटक आने और उनके सारे उत्साह के यकसर काफ़ूर हो जाने की बात कही तो चन्दा अनायास हँस दी—'बेचारे!' उसने सिर्फ़ इतना कहा।

तब जाने चन्दा के स्वर में ही कुछ ऐसा था अथवा चेतन के अपने मन के किसी गहरे स्तर के नीचे अभी तक अपनी दिन भर की भटकन और विफलता की खिन्नता मौजूद थी या चातकजी की बात सुनाते हुए उसे सहसा अपनी मूर्खता का ध्यान हो आया था और चन्दा का वह रिमार्क उसे अपने लिए भी उपयुक्त लगा था, कारण जो भी हो, उस पर आत्म-भर्त्सना का मूड सवार हो गया।

'चातकजी की बात नहीं,' सहसा उसने कहा, 'हम सभी लेखक और कवि एक-जैसे हैं। घोर अहंवादी और इसके बावजूद अन्तर में कहीं निहायत बच्चे। अपनी रद्दी रचनाएँ भी हमें अच्छी लगती हैं और दूसरों की उत्कृष्ट भी रद्दी। अपनी रचनाएँ सुनाने और उनकी दाद पाने का मोह हमसे न जाने कैसी-कैसी बचकानी हरकतें करा देता है!. . . अब मैं सुबह से ले कर क्यों इतना परेशान रहा हूँ। मैं चातकजी को अपनी उर्दू कहानियाँ सुनाना चाहता था। उनके पास समय नहीं था

तो तपती धूप में कौंसिल-हाउस जा पहुँचा। यह महज़ बचपना नहीं तो क्या था!'

चन्दा ने महसूस किया, उसका पति फिर ग़लत राह पर मुड़ गया है। वह फिर उदास हो जायगा। उसने चेतन की बात बीच ही में काट दी, 'पर आप कहानियाँ सुनाने तो इसलिए गये थे कि आपको अनुवाद के लिए कहानी चुननी थी और अख़्तर साहब को आपके संग्रह पर भूमिका लिखनी थी।'

लेकिन चेतन उस डगर पर दूर तक निकल गया था और रुकना या पलटना उसके लिए मुश्किल था। 'कहानी तो मैंने चुन ही ली थी,' उसने लगभग आक्रोश-भरे स्वर में कहा, 'उसका अनुवाद भी कर लिया था। मैं तो चातकजी को कहानियाँ 'सुनाना' चाहता था कि उन पर मेरा कुछ रोब पड़े। वे उनकी प्रशंसा करें। फिर अख़्तर साहब तो उर्दू पढ़ सकते हैं। लेकिन मेरे मन में तो उन्हें भी सुनाने ही की इच्छा थी। तब चाहे न सही, पर अब तो मैं अपनी नीयत की जाँच-परख कर ही सकता हूँ। मैं चाहता था—मुन्शीजी ने मेरी कहानियों की जो आलोचना की है, अख़्तर साहब उन्हें सुन कर उससे उलट बात कह दें! (चन्दा उसकी बात काट कर कुछ कहने जा रही थी कि चेतन ने आवाज़ को और तेज़ कर दिया) हाँ. . .हाँ. . .यही इच्छा मेरे मन में थी। अख़्तर साहब उन कहानियों की वैसी तारीफ़ न करते तो मैं उन्हें अपनी बात समझाता और उनसे अपने कहानी-संग्रह की भूमिका उसी ऐंगल से लिखवाता।. . . चिलचिलाती धूप में ठण्डी सड़क पर चलते हुए मैं यही सब सोच रहा था। तभी मेरी चप्पल गर्मी से फूले हुए कोलतार में चिपक गयी और मेरा पैर जल गया था।'

चन्दा क्या कहे, अपने पति को कैसे तसल्ली दे, वह समझ नहीं पायी। कुछ क्षण दोनों चुपचाप चलते रहे। फिर सहसा चेतन फट पड़ा :

'हम सारे लेखक और कवि जो दूसरों के मनोविज्ञान को जानने

और उकेरने का दम भरते हैं, दूसरों की मूर्खताओं का मज़ाक उड़ाते हैं और उन पर ठहाके लगाते हैं, खुद कैसी हिमाकतें करते हैं, यह तुम नहीं जान सकतीं।'

आत्म-भर्त्सना के उस दुर्वार मूड में चेतन और न जाने क्या-क्या कहता कि वे क्रिस्टल पहुँच गये।

o

उन नयी बनी दुकानों की कुर्सी काफ़ी ऊँची थी। उनके सामने ऊँचा चौतरा था, जिस पर जाने के लिए अलग-अलग सीढ़ियाँ बनी थीं। चौतरा चार फ़ुट से ज़्यादा नहीं था, उसके बाद एक-एक बड़ा कमरा था। क्रिस्टल के मालिक ने बाहर के चौतरे पर दोनों ओर लकड़ी की पार्टीशन लगा कर ऊपर से छत लिया था और बाहर स्लाइडिंग दरवाज़े लगा दिये थे। यह चौतरा एक छोटा-सा आयताकार कमरा बन गया था, जिसके दायीं ओर काउण्टर बना था और बाकी हिस्से में फ़र्श पर रंगीन टाट बिछा था। एक छोटा-सा पंखा काउण्टर पर और दो अन्दर के कमरे में लगे थे। तीनों नये थे। रोशनी का इतना बढ़िया प्रबन्ध था कि बाहर से देखने वाले को सब कुछ लक-दक, चाक-चौबन्द, सुन्दर और आकर्षक लगता था। चूँकि अन्दर के कमरे में उतनी जगह नहीं थी और यूँ भी सख़्त गर्मी और उमस थी, इसलिए रेस्तराँ के मालिक ने फ़ुटपाथ और दुकान के बीच की जगह में खूब छिड़काव करा दिया था और वहाँ छोटी मेज़-कुर्सियाँ लगवा दी थीं।

रेस्तराँ पर एक निगाह डालते ही चेतन का मूड बदल गया। पहले उसका मन हुआ कि बाहर ही सड़क के किनारे खुले में बैठें, लेकिन जब-जब वह उधर से गुज़रा था, उसके मन में अन्दर जा कर बैठने की इच्छा हुई थी, इसलिए वह अपनी पत्नी के आगे-आगे अन्दर बढ़ गया और एक कुर्सी पर बैठते और अपनी पत्नी को सामने मेज़ की दूसरी ओर बैठने का आदेश देते हुए मस्ती से उसने बैरे से पूछा, 'क्यों भाई कुछ ठण्डा-वण्डा है ?'

साफ़ वर्दी पहने बैरे ने तत्काल मीनू उसके हाथ में दे दिया। चेतन घर से चला था तो उसने तय किया था कि दोनों पति-पत्नी रोज़ (rose) की एक-एक बोतल पियेंगे, लेकिन जब उसने देखा कि रोज़ में दूध मिला कर मिल्क-रोज़ लेने में दो ग्राने ही ज्यादा लगते हैं तो उसने बड़ी उदारता से उसी के लिए ग्रॉर्डर दे दिया।

लेकिन जितने में मिल्क-रोज़ बन कर ग्राता, उसे ग्रन्दर कमरे में ग्रपना दम घुटता-सा लगा। नफ़ासत ग्रौर सजावट चाहे वहाँ जितनी हो, पंखे भी चाहे फ़ुल स्पीड से चल रहे हों, लेकिन ज्यादा रोशनी के कारण उमस ग्रौर गर्मी बढ़ गयी थी ग्रौर चेतन ने मन-ही-मन तय किया कि उन्हें बाहर चल कर खुले में बैठना चाहिए।

तभी बैरा ट्रे पर दो गिलास रखे हुए ग्राया। चेतन को गिलासों का दूधिया गुलाबी पेय देखने में बहुत ग्रच्छा लगा। उसने एक गिलास ग्रपनी पत्नी को दिया, एक स्वयं लिया ग्रौर बोला, 'यहाँ बहुत उमस है, चलो बाहर चल कर बैठते हैं।'

ग्रौर यह कहते ही वह उठा ग्रौर गिलास में रखी नली से गुलाबी पेय सिप करता हुग्रा बाहर की तरफ़ चल दिया।

उसकी पत्नी भी उठी, गिलास ग्रौर ग्रपना ग्राप सँभालते हुए वह उसके पीछे चल दी।

दोनों बाहर एक मेज़ के दाये-बायें पड़ी दो कुर्सियों पर ग्रा बैठे।

वहाँ ताज़े छिड़काव के कारण धरती से मिट्टी की सोंधी-सोंधी खुशबू ग्रा रही थी। ग्राकाश पर एक बड़ा-सा बादल का टुकड़ा झूल रहा था ग्रौर ठण्डी-ठण्डी हवा रमक रही थी। दोनों धीरे-धीरे मिल्क-रोज़ सिप करने लगे।

चेतन का मूड बिल्कुल बदल गया था। वह ग्रपनी पत्नी को भविष्य की ग्रपनी योजनाएँ सुनाने लगा। 'मैं कल सुबह ही चातकजी के जाऊँगा।' उसने कहा, 'उर्दू कहानियाँ उन्हें सुनाने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं उन्हें 'कुर्बानगाहे-इश्क' का हिन्दी वर्शन दूँगा कि वे ज़रा पढ़ कर

देखें। यदि कहानी उन्हें पसन्द हो और भाषा वे ठीक कर दें तो मैं उसे कापी कर के उन्हें दे आऊँगा और यदि वे 'मंजरी' के लिए स्वीकार कर लें तो फिर क्या बात है !'

कुछ क्षण चुपचाप मिल्क-रोज़ सिप करने के बाद उसने कहा, 'मुझे मुन्शीजी ने लिखा है कि वे उर्दू में कहानी ले कर क्या करेंगे; कि मैं उन्हें अपनी कहानी हिन्दी में कर के भेजूँ, लेकिन हिन्दी मेरी अभी अच्छी नहीं और अनगढ़ भाषा में उन्हें कहानी भेजने में मुझे संकोच होता है।'

तभी चन्दा ने प्यारी-सी मुस्कान से कहा (जिसके बारे में चेतन का ख़याल था कि ऐसे प्यारेपन से केवल चन्दा ही मुस्करा सकती है और उस मुस्कान में भी वह मोती बिखरा देती थी।) 'लेकिन बहनजी ने आपकी कहानी देख तो दी है। उसे ही मुन्शीजी को भेज दीजिए।'

चेतन क्षण भर अपनी पत्नी की ओर देखता रहा। उसकी निगाह की तेज़ी से चन्दा का मुख लज्जारुण हो गया और उसने आँखें झुका लीं।

चेतन हँसा। उसकी पत्नी कितनी भोली थी !

'तुम्हारी बहनजी ने कहानी ठीक तो कर दी है, पर वे लेखक या आलोचक नहीं हैं। उन्होंने ज़्यादा-से-ज़्यादा हिज्जे ठीक कर दिये हैं, लेकिन भाषा केवल शुद्ध हिज्जों से तो नहीं बनती। भाषा मुनासिब शब्दों से बनती है। उर्दू शब्दों की जगह ठीक प्रचलित हिन्दी शब्द हों तो कहानी हिन्दी की लगेगी, वरना अनूदित मालूम होगी। मैंने हिन्दी में कहानी पढ़ी है। उसमें वह ज़ोर और रवानी नहीं, जो उर्दू में है। इसी-लिए मैं चाहता हूँ कि दो-एक कहानियाँ चातकजी ठीक कर दें और उन्हें 'मंजरी' में छाप दें। जैसी कहानियाँ मैं आजकल लिख रहा हूँ, मुन्शीजी के पत्र में तो वैसी एक भी नहीं छपती। वे आदर्शवादी कहा-नियाँ छापते हैं और पण्डित रत्न कहते हैं कि ज़रूरी नहीं, अच्छी कहानी आदर्शवादी हो। उनका कथन है कि कहानी वही अच्छी है, जिसमें कोई अछूता ख़याल कला की पूरी बारीकी और चतुराई के साथ निभा दिया

जाय । पण्डितजी को 'क़ुर्बानगाहे-इश्क' बेहद पसन्द है । पर ये हिन्दी वाले दाल-भाती लोग हैं, उन्हें एग्रेसिव इश्क की यह कहानी जाने पसन्द आती है या नहीं ?'

चेतन ने इस बात की चिन्ता नहीं की कि उसकी पत्नी को उसकी बात समझ आयी है या नहीं । वह क्षण भर तक मिल्क-रोज़ सिप करता रहा । फिर उसने कहा, 'दो-एक कहानियाँ 'मंजरी' में छप जायें तो तुम देख लेना हिन्दी की कोई ऐसी पत्रिका नहीं होगी, जिसमें मेरी कहानियाँ न छपें । उर्दू पत्रिकाएँ सिर्फ़ लाहौर में छपती हैं, एकाध दिल्ली या लखनऊ से भी निकलती हैं, लेकिन हिन्दी पत्रिकाएँ लाहौर ही से नहीं, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, कलकत्ता और इन्दौर से निकलती हैं, लेकिन वक्त आयेगा कि वो देश के हर प्रान्त से निकलेंगी और तब देश का कोई ऐसा कोना न होगा जो मेरे नाम या मेरी रचनाओं से अपरिचित रह जाय !'

चेतन हवा के घोड़े पर सवार था और जाने अपनी पत्नी को और क्या-क्या योजनाएँ सुनाता कि सहसा एक चंचल-सी युवती ने पीछे से आ कर चन्दा की आँखें बन्द कर लीं ।

गोरा रंग, गदराया बदन, लेकिन कमर का खम सुस्पष्ट, माथे पर बड़ी-सी बिन्दी, ढेर से गहने और गहरे नीले रंग की तारों-टँकी मुकैश की साड़ी । वे लोग चेतन के सामने परे कोने में बैठे थे । लड़की की पीठ चन्दा की पीठ की तरफ़ थी और उसका पति चेतन के सामने बैठा था । चेतन ही की उमर का था, पर उसकी अपेक्षा कहीं ज्यादा हृष्ट-पुष्ट । उसके चेहरे पर चेचक के हलके-से दाग़ थे और ऊपर के होंट पर पम्प-शू की बो-ऐसी मूँछें थीं । चेतन ने उसको पहले कभी नहीं देखा था, लेकिन उस युवती को देख कर उसे लगा कि यह चेहरा उसने पहले कहीं देखा है । उस क्षण जब वह चन्दा की आँखें दबाये थी और चन्दा विवश-सी उसके हाथों पर हाथ फेरती हुई उसे पहचानने का प्रयास कर रही थी, चेतन सोचता रहा कि उसने इस सुन्दर लड़की को कहाँ देखा

है। तभी जब अपने हाथ हटाते, चन्दा के हाथों को अपने दोनों हाथों में लेते, हँसते और आँखें नचाते हुए उसने कहा, 'क्यों री चन्दो, दो ही साल में अपनी सहेली की छोह[1] भूल गयी !' तो सहसा चेतन को बिजली के कौंधे की लपक-सा खयाल आया कि यह तो वही लड़की है, जो गहनों में लदी और व्याह के लाल जोड़े में सजी चेतन की शादी के दिन पण्डित वेणीप्रसाद के आँगन में आयी थी, जिसने दरवाज़े ही से आँखें नचा कर चेतन के इर्द-गिर्द बैठी अपनी सहेलियों को सुना कर कहा था, 'आया नी पुत्त नटनी दा' और जब चेतन ने ऐन-मैन उसकी भंगिमा और स्वर की नकल उतारते हुए वही वाक्य दोहरा दिया था तो वह लजा कर उल्टे पाँव भाग गयी थी—मोहिनी !—चेतन को हठात उसका नाम भी याद हो आया।. . .अपनी पत्नी से वह उस चंचला का नाम पूछना नहीं भूला था और यद्यपि उसके विवाह को दो वर्ष हो गये थे और मोहिनी कुछ मोटी हो गयी थी, पर वह उसे पहचान गया था, क्योंकि वह घटना अपने नन्हें-से-नन्हें ब्योरे के साथ उसके दिमाग़ में सुरक्षित थी। मोहिनी यदि मुँह न खोलती और शरीर को बल देती हुई आँखें न नचाती तो शायद चेतन उसे पहचान न पाता, पर ज्योंही आँखें और शरीर मटकाते हुए उसने वह बात कही, चेतन के दिमाग़ में उसका नाम कौंध गया।

०

दोनों सहेलियाँ ज़रा परे हो कर वतिया रही थीं। चेतन वहीं बैठा अपने ध्यान में मग्न था। गिलास उसने खाली कर दिया था और सिर्फ़ स्ट्रॉ मुँह में लिये हुए बर्फ़ का पानी चूस रहा था कि उसने देखा—मोहिनी का पति हाथ बढ़ाये उसके पास आ गया है और अंग्रेज़ी में कह रहा है—'मैं लेखराज भाटिया हूँ—मोहिनी का पति !'

चेतन ने घबराहट में गिलास बायें हाथ में लिये-लिये उठ कर अपनी

---

१. स्पर्श।

स्वाभाविक गर्मजोशी से लेखराज भाटिया से हाथ मिलाया। तब उन्होंने बताया कि वे लोग गुरदासपुर में थे। इधर उनके भाई लक्ष्मी इन्श्योरेंस कम्पनी के हेड ऑफ़िस में मैनेजर हो गये हैं। सो वे भी इन्सपेक्टर हो कर यहीं आ गये हैं और निकट ही ग्वालमण्डी में रहते हैं! श्री लेखराज भाटिया ने जेब से अपना विज़िटिंग कार्ड निकाला, उस पर अपने घर का पता लिख कर चेतन को दिया और कहा कि वे कभी उसके यहाँ भी दर्शन दें।

चेतन उनसे कार्ड ले रहा था कि उसकी दृष्टि परे, मोहिनी से बातें करती हुई अपनी पत्नी के चेहरे पर गयी—उसने देखा कि चन्दा का मुस्कराता-हँसता मुख सहसा अजीब तरह से भयाक्रान्त और विवर्ण हो कर रुलाई में विकृत हो रहा है। विज़िटिंग कार्ड जेब में रखते हुए चेतन उधर बढ़ा। चन्दा दोनों हाथों से मुँह ढाँपे सुबक-सुबक कर रोने लगी थी।

'क्या हुआ मोहिनी?' चेतन ने चिर-परिचित की तरह तीखे, शंका-भरे स्वर में पूछा।

'मैंने तो कुछ नहीं कहा।' मोहिनी ने पश्चाताप-भरे स्वर में कहा, 'मैंने तो सहज-स्वभाव पूछा था कि तुम्हारे पिता की अब कैसी तबियत है? मैं लाहौर आने के पहले बस्तीग़ज़ाँ गयी थी। मुहल्ले में काँव-काँव हो रही थी कि चन्दा का पिता पागल हो गया और आप दोनों में से कोई वहाँ खबर लेने नहीं पहुँचा। मैंने यही बात दोहरा दी। पर इसे तो पता ही नहीं।'

चेतन के दिल में कुछ धक् से हुआ। जब वह बोला तो उसका स्वर लड़खड़ा गया।

'कौन पागल हो गया! प. . .प. . .पण्डित दीनबन्धु?' और फिर मोहिनी की आँखों में स्वीकार का भाव देख कर उसने कुछ और तीखे और ऊँचे स्वर में पूछा—'कब?. . .कैसे?'

'नीला की शादी के बाद ही।' मोहिनी ने कहा, 'उन्हें तो चन्दा के

ताऊ लाहौर के पागलखाने में दाखिल करा गये हैं और इसकी माँ यहीं अमृतधारा के पीछे गोविन्द गली में सेठ वीरभान सर्राफ़ के यहाँ रसोई का काम देखती है।'

'माँ ने न चिट्ठी लिखी, न यहीं आ कर मिली।' चेतन ने अपनी पत्नी की तरफ़ से सफ़ाई दी। 'किसी ने भी तो हमें कुछ नहीं बताया।' फिर उसने बढ़ कर चन्दा की पीठ थपथपायी। उसे तसल्ली दी कि वह घबराये नहीं। वे अभी सीधे गोविन्द गली जा कर माँ से मिलेंगे और ठीक हालत का पता लगायेंगे। उसके पिता पागलखाने में होंगे तो भी उन्हें कष्ट न हो और उनका पूरा इलाज-उपचार हो सके, वह इस सब का भरसक प्रयास करेगा। शहर का कोई बड़ा नेता नहीं, जिसे वह नहीं जानता और जिस तक उसकी पहुँच नहीं। उप-सम्पादक है तो क्या हुआ, उसके मित्र तो सम्पादक हैं और पत्रकार आर्थिक रूप से भले ग़रीब हो, पर रुसूख के लिहाज़ से ग़रीब नहीं होता है।

चन्दा चुप हो गयी। तब उसने पलट कर हाथ का गिलास तिपाई पर रखते हुए मिस्टर लेखराज भाटिया की तरफ़ हाथ बढ़ाया और उनसे छुट्टी चाही। उन्होंने लाख कहा कि कुछ पल उनके साथ भी बैठें, पर चेतन ने कहा कि पता तो उनका उसने ले ही लिया है, ज़रा शान्ति से आयेगा। उसने उनसे गोविन्द गली की लोकेशन मालूम की। भूल न जाय, इसलिए उन्हीं से पेन ले कर उसी कार्ड पर वीरभान सर्राफ़ का पता नोट किया, काउण्टर पर जा कर पैसे चुकाये और एक बार फिर उन पति-पत्नी को 'नमस्कार' कह कर चल दिया। चन्दा उसके पीछे-पीछे घिसटती-सी चलने लगी।

०

निस्बत रोड पार कर वे महाशय वेदव्रत की कोठी के बराबर से चेम्बर लेन रोड को मुड़े। उनका खयाल था कि ग्वालमण्डी बाज़ार की ओर से गोविन्द गली को जायेंगे, लेकिन वे मुश्किल से फ़र्लांग भर बढ़े होंगे कि बारिश आ गयी। तब वे ज़रा आगे बढ़ कर सब्ज़ीमण्डी के चौरस्ते से

रेलवे रोड की ओर को—अपने घर की तरफ़—मुड़ गये।

चेतन अकेला होता तो भाग कर घर पहुँच जाता, क्योंकि वहाँ से उनका घर एक फ़र्लांग से ज़्यादा दूर नहीं था, पर चन्दा उसके साथ थी और हमेशा की तरह तेज़ न चल पा रही थी। वह पीछे रह जाती। अपनी खीझ में चेतन चिल्लाता। वह भरसक कदम बढ़ाती। चेतन फिर आगे हो जाता और वह घिसटती हुई पीछे चली जाती! घर पहुँचे तो दोनों के कपड़े ग़च्च हो गये थे।

यद्यपि कपड़े बदल कर उन्होंने कुछ देर प्रतीक्षा की कि पानी थम जाय तो वे हो आयें, लेकिन बादल का वह बड़ा-सा टुकड़ा, जो निस्बत रोड पर क्रिस्टल के बाहर बैठे उन्हें आकाश पर झूलता-सा लगता था, बढ़ कर सारे आसमान पर छा गया था। पानी धारासार बरस रहा था। चेतन को दफ़्तर भी जाना था। तब उसने तय किया, कल इतवार है, सबसे पहला काम वे यही करेंगे कि सेठ वीरभान के जा कर माँ से मिल आयें। तब चन्दा ने कपड़े बदले और रसोई के प्रबन्ध में जुट गयी।

रास्ते भर चेतन ने उस सिलसिले में पत्नी से कोई बात न की थी। पानी की बौछार कमरे में न आये, इसलिए उसने खिड़कियाँ बन्द कर दीं। कमरे में भयानक उमस हो गयी। वह बाहर डेवढ़ी में आ कर घूमने लगा। कभी-कभी हवा के साथ फुहार के बहुत बारीक कण उसके मुँह को भिगो जाते। लेकिन चेतन ने उनकी परवा नहीं की। वह निरन्तर घूमता रहा। खाना पक गया तो उसने चुपचाप रसोई में जा कर खा लिया। एक-डेढ़ घण्टा ज़ोर से बरस कर पानी थम गया था, लेकिन आकाश पूर्ववत मेघाच्छन्न था। चेतन ने नेकर-कमीज़ पहनी, छाता लिया और दफ़्तर के लिए चल दिया।

इकतीस

जब रात को दो बजे के करीब भीगता हुआ चेतन वापस घर पहुँचा तो चन्दा जाग रही थी।

चेतन दफ़्तर के लिए चला था तो पानी रुक गया था और काफ़ी देर तक रुका रहा, लेकिन जब एक बजे काम खत्म कर के वह चलने की तैयारी करने लगा तो फिर मूसलाधार बरसने लगा। वह दफ़्तर में काफ़ी देर रुका रहा, लेकिन जब पानी के थमने का कोई आभास नहीं मिला तो अनिच्छापूर्वक वह दफ़्तर की सीढ़ियाँ उतरा।

गली में टखनों तक पानी था। यही ग़नीमत है कि वह तहमद-कमीज़ की बजाय नेकर-कमीज़ में दफ़्तर आया था। उसने पैर से चप्पलें उतार कर दायें हाथ में ले लीं, छाता खोल कर बायें में थामा और गली में उतर गया। जिस रास्ते को पार करने में उसे केवल दस मिनट लगते, उसे बड़ी मुश्किल से वह आध घण्टे में पार कर पाया।

हमेशा की तरह मूसलाधार वर्षा होते ही नगर-पालिका की बत्तियाँ बुझ गयी थीं। घुप्प अँधेरा था। उसका चश्मा फुहार से भीग गया था। चेतन ने उसे उतार

कर कमीज़ की जेब में रख लिया। उसे दिखायी देना लगभग बन्द हो गया। तब नितान्त अन्धों की तरह पैर से टटोल-टटोल कर कदम-कदम चलता हुआ, जैसे एक युग के बाद, उस छोटी-सी गली को पार कर, वह चौड़ी पक्की हस्पताल रोड पर आया। जब उसने चौड़ी सड़क पर कदम रखा तो मूसलाधार वर्षा के बावजूद, सख्त तनाव और भय के कारण, उसकी कमीज़ अन्दर पसीने से तर हो चुकी थी।

चेतन कुछ क्षण वहीं रुका रहा। खुलेपन के एहसास के बावजूद उसे तब भी कुछ दिखायी न दे रहा था। तभी पानी का ज़ोर कम हो गया। वर्षा हलकी-हलकी बूँदियों में बरसने लगी। ऊपर आकाश में बादल हलके हो गये। चेतन ने सन्तोष की साँस ली। जेब से चश्मा निकाल कर कमीज़ के सूखे कालर से उसे पोंछा और नाक पर रख लिया, चप्पलें पहनीं और आश्वस्त हो कर वह धीरे-धीरे चलने लगा। कुछ दूर चलने पर वह बायीं ओर अथवा बीच सड़क चलने के बदले दायीं ओर हो गया। हस्पताल की फ़सील दायीं तरफ़ लगातार रत्नचन्द रोड के चौरस्ते तक चली गयी थी। चेतन नें दायें हाथ से उसका सहारा ले लिया और उसका दिमाग़, जो गली के घुप्प अँधेरे में परम एकाग्र हो कर उसकी आँखों और पैरों की मदद कर रहा था, जानी-पहचानी सड़क के खुलेपन और हस्पताल की दीवार से मिलने वाली सुरक्षा के कारण फिर उसी लीक पर चल दिया, जिसे उसे अपने ससुर के पागल होने की बुरी खबर सुनने के बाद क्षण भर को भी नहीं छोड़ा था। दफ़्तर में वह बरबस काम करता रहा था, लेकिन, बीच-बीच उसका दिमाग़ भटक जाता था और कई ख़बरों का अनुवाद उसे दोबारा करना पड़ा था। ज़ख्मी साहब ने उससे पूछा भी था। चेतन ने इतना ही कहा था कि उसने एक बुरी खबर सुनी है और उसका दिमाग़ हाज़िर नहीं और वे उसकी ख़बरों को एक नज़र देख कर ही कातिब को दें। जैसे इतना कह देने से उसे कुछ एकाग्रता मिल गयी थी और वह ठीक से काम करने लगा था। तो भी ख़बरों को बार-बार पढ़ कर और अनुवाद के

बाद दोबारा देख कर ही वह जख्मी साहब को देता रहा था।

. . .वह स्टेशन मास्टर का लड़का, एक प्रतिष्ठित समाचार-पत्र का उप-सम्पादक, रिपोर्टर के नाते शहर के सभी गण्यमान्य लोगों से परिचित और कथाकार के नाते छोटी-मोटी ख्याति का स्वामी, उसकी सास वहीं लाहौर में एक सेठ की रसोई करती है और बर्तन-भाँडे मलती है, बार-बार यही बात उसे कोंच रही थी। उसका ससुर पागल है और लाहौर के पागलखाने में बन्द है, यह उसे वैसा भयानक न लगता था। पागलपन तो बीमारी है, किसी को भी हो सकती है। चेतन ने बचपन से पागलों को देखा था। उसका अपना छोटा दादा (उसके सगे दादा का छोटा भाई चुन्नी) पागल था। चुन्नी का लड़का भी पागल था। फिर गली-बाज़ार नंगे-उघड़े घूमने की बजाय यदि उसका ससुर शहर से तीन-चार मील दूर पागलखाने में बन्द, डॉक्टरों की देख-रेख में है तो यह और भी अच्छा है कि वह किसी के लिए न्यूसेंस तो नहीं बनता—पर उसकी सास—उसकी पत्नी की माँ—वहीं निकट ही किसी सेठ के यहाँ चौका-बर्तन करती है और खाना पकाती है, यह चेतन के लिए लगभग असह्य था। उसके किसी मित्र-परिचित को पता चलेगा तो क्या होगा! वह कैसे मित्रों से आँख मिला पायेगा! इस स्थिति से समझौता करना उसे एकदम असम्भव लगता था। वह क्या करे? क्या करे?. . .वह सोच न पाता था। और तब फिर-फिर अपने पिता की बेपरवाह, फक्कड़, मनमौजी और लाउबाली तबियत पर उसे क्रोध आता था, जो यार-दोस्तों में खाने-पीने और उड़ाने के सिवा अपने बीवी-बच्चों के वर्तमान और भविष्य के बारे में ज़रा भी नहीं सोचते थे। भला यह भी कोई बात हुई कि बाज़ार शेखाँ से आते हुए चौक सूदाँ में उन्हें पण्डित वेणीप्रसाद अपने भाई के साथ मिल गये। उन्होंने चन्दा के लिए उनके वेटे का हाथ चाहा और नशे की तरंग में उसके पिता शगुन का एक रुपया लेते आये। आदमी लड़की के बारे ही में नहीं, उसके माता-पिता, घर-द्वार, नाते-रिश्तेदारों के बारे में सौ पूछ-ताछ

करता है। इसी तरह उन्होंने भाई साहब की ज़िन्दगी बरबाद की, इसी तरह उसकी। क्यों नहीं उन्होंने सोचा कि शादी ज़िन्दगी भर का रिश्ता है। उन्हें सोच-समझ कर, देख-भाल कर करना चाहिए। लेकिन उसके विरोध के बावजूद उन्होंने उसे वहीं शादी करने पर विवश किया, पत्नी के रूप में मोटी-मुटल्ली, गँवार उसके गले में बाँध दी, जिसे दो वर्ष में वह ठीक से कपड़े पहनना और सफ़ाई से रहना ही सिखा पाया। (क्रोध और विक्षोभ के उस क्षण में चेतन अपनी पत्नी के तमाम गुण भूल गया, जो उसे बहुमूल्य लगते थे।) ख़ैर, पत्नी को सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनाने की उसने लम्बी योजना बना ली थी और उसे विश्वास था कि वह अपने उद्देश्य में देर-सवेर सफल हो जायगा. . .लेकिन अब उसकी माँ निकट ही आ कर किसी सेठ के यहाँ चौका-बर्तन करने लगी है। उसने तो उसे किसी के सामने मुँह दिखाने योग्य नहीं रखा। उसे झख मार कर पत्नी को विद्यालय से उठा लेना पड़ेगा और दूर कहीं सन्तनगर, ऋषिनगर या गोपालनगर जा कर बसना पड़ेगा।

बरसती बूँदियों में दीवार के सहारे चलते-चलते उसके सामने गत दो वर्ष का जीवन घूम गया।

. . .विवाह के पहले ससुराल के सम्बन्ध में, वहाँ के स्नेह और उत्साह-भरे व्यवहार के सम्बन्ध में उसने कितनी मधुर कल्पनाओं के गढ़ बनाये थे—सास का माँ से भी अधिक गहरा, स्निग्ध, खुला प्रेम, अपने दामाद की प्रशंसा करते समय गर्व से खिला मुख, खाते-खिलाते समय के अनुरोध, मीठी झिड़कियाँ और सहज हँसी-मज़ाक—कैसी सुखद कल्पनाओं में वह बसा करता था। पर कितनी जल्दी उसके वे हवा-महल हवा हो गये। विवाह के दिन ही उसे लगा था कि वातावरण कुछ कठिन-कठिन-सा है। बारात को खाना अच्छा खिलाया गया था; दान-दहेज़ भी (यद्यपि चेतन ने उसके दिखावे की मनाही कर दी थी) अच्छा दिया गया था; पण्डित वेणीप्रसाद के व्यवहार में कोई त्रुटि नहीं थी और नीला ने उसका मन लगाये रखा था। लेकिन उसके सास-ससुर ने दो पल को भी उससे

बात नहीं की थी और यद्यपि नीला की उपस्थिति ने उसे महसूस न होने दिया था, पर उसे लगा था कि वातावरण में कुछ बोझीलापन-सा ज़रूर है और व्यवहार में शिष्टाचार और औपचारिकता ज़्यादा है। सास को उसने देखा—दबी-दबी, घुटी-घुटी, डरी-डरी और ससुर को उसने पाया गुप-चुप, गम्भीर, सहमा-सहमा और भावना-विहीन। बस एक बार जब विदाई का समय आया था और चन्दा ऊँचे स्वर में रोती हुई अपने पिता के गले चिमट गयी थी तो उसने अपने ससुर के चेहरे पर एक करुण हँसी देखी थी और सुना था—'हैं. . .हैं! बचपना न करो! बस. . .बस . . .चलो अब बैठो ताँगे में!'

इसके बाद दो-एक बार जब वह गया तो पण्डित वेणीप्रसाद ही के घर में ऊपर चौबारे में ठहरा था और सिवा जाते और आते समय प्रणाम करने और आशीर्वाद पाने के, सास-ससुर से और कोई बात नहीं हुई थी।

फिर जब वह मामा चिरंजीतलाल की पोती कान्ता की शादी में शामिल होने के लिए इलावलपुर जाने से पहले बस्ती ग़ज़ाँ एक रात को रुका तो उसे मालूम हुआ कि उसके सास-ससुर दूसरे घर में उठ गये हैं। रात वह उसी दूसरे घर में ठहरा था। तब उसे मालूम हुआ था कि बेरी वाली गली के जिस मकान को वह अपने ससुर और उसके बड़े भाई का साझा मकान समझता था, उसमें उसके ससुर का कोई हिस्सा नहीं। वे किराये के उन दो कमरों में रहते थे। अपने ससुर को उसने दीवार का सहारा लिये, ज़मीन पर ही चुपचाप उकड़ूँ बैठे देखा था। उसके प्रणाम के उत्तर में उन्होंने करुणा से मुस्करा कर जो कहा था, वह चेतन को सुनायी नहीं दिया था। यद्यपि उसकी सास ने उसे अण्डे की तरकारी बना कर खिलायी थी, पर दामाद के आने पर जो खुशी होती है, उसका वहाँ लेश भी न था, और तब काठिन्य तथा बोझीलेपन का वह एहसास, जो उसे अपनी शादी में हुआ था, और भी गहरा हो आया था।. . .शादी के पहले उसे बताया गया था, उसके ससुर का ईंटों का

भट्ठा है, लेकिन अँगनाई की दीवार का सहारा लिये, मैली-सी खादी के तहमद और बण्डी में ससुर नाम का जो व्यक्ति खामोश, खोया-खोया-सा बैठा था, वह उसे किसी भट्ठे का मालिक न लगा था। उसने एक भी बात अपने दामाद से नहीं की थी। उसके चेहरे पर चेतन को अजीब-सी करुणा-मिश्रित मूकता दिखायी दी थी। सच्ची बात यह है कि वह तभी उसे कुछ पागल-ऐसा दिखायी दिया था—बाद में उसकी पत्नी ने रुँधे गले से चेतन को सब कुछ बता दिया था और कहा था कि वह उसके माता-पिता को क्षमा कर दे। उसने अपने पिता के अच्छे दिनों का चित्र खींचते हुए उसे बताया था कि जो कुछ उनके पास था, उन्होंने अपनी लड़की के विवाह में लगा दिया है और अब उनके पास न मकान अपना है, न दुकान। भट्ठे पर भी अब उन्हें कोई अधिकार नहीं, इसलिए वे अब अपने दामाद से बात करते शरमाते हैं।. . .और तभी चेतन ने तय कर लिया था कि वह कभी ससुराल नहीं जायगा और उन्हें उलझन में नहीं डालेगा। उसने अपनी पत्नी को भी कभी नहीं भेजा था। उन्होंने कभी लिखा भी नहीं था और चन्दा ने भी कभी मायके जाने की उत्कण्ठा न प्रकट की थी।

उसके ससुर तब भी ज़रूर पागल होंगे—चेतन ने सोचा—कविराज के लिए पुस्तक लिखते हुए इस पागलपन के बहुत-से कारणों का उसे पता चल गया था और बरसती बूँदियों में घर को जाते हुए उस पर प्रकट हो गया कि चन्दा के सिवा (जिसे गूजरी ने पाला था) क्यों उनके पाँचों लड़के जन्म के बाद मर जाते रहे थे—चेतन के सारे पुराने सपने कब के धराशायी हो गये थे, लेकिन उसने जो नये सपने बनाये थे, उनकी जड़ें भी उखड़ जायँगी और वह भी उसके सास-ससुर के हाथों—यह उसने कभी न सोचा था. . .मौसी रामरक्खी को, कमला को, जमुना को पता चल जायगा कि उसकी सास यहीं निकट ही चौका-वर्तन करती है. . . तब वह कैसे उनके यहाँ जा पायेगा, कैसे अपनी पत्नी को विद्यालय में पढ़ा पायेगा, कैसे कृष्णा गली में रह पायेगा. . .और अपने पिता;

अपने ससुर, अपनी सास और अपनी पत्नी के विरुद्ध एक दुर्वार क्रोध और झुँझलाहट से उसके मन-प्राण सुलग उठे थे—उसे पता नहीं चला, कब उसने मेयो हस्पताल की दीवार का सहारा छोड़ा और कब रत्त-चन्द रोड पार कर कृष्णा गली में दाखिल हुआ। वह तब चौंका जब वह अपने घर के सामने खड़ा था।

रोज़ तो उसकी पत्नी आँगन में सोती थी और वह भाई साहब के साथ टाल के बराबर खुली जगह में, लेकिन उस रात पानी पड़ रहा था। भाई साहब अपने कमरे में सोये होंगे और चन्दा अन्दर बैठक में। वह बड़ी गहरी नींद सोती थी। चेतन के सामने चंगड़ मुहल्ले के वे दिन घूम गये जब वह सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) के मकान में रहता था और रात को डेढ़-दो बजे आता था, सीढ़ी के किवाड़ों पर दस्तक देता था और जब वह न जागती थी तो पीछे गली में जा कर उसकी खिड़की के नीचे आवाजें देता था। गली जग जाती थी, पर उसकी नींद न खुलती थी। चेतन ने डेवढ़ी में जा कर छाता बन्द किया। उसे दीवार के साथ खड़ा कर वह ज़ोर से किवाड़ खटखटाना और आवाज़ देना चाहता था कि तभी अन्दर बत्ती जल उठी।

चन्दा जाग रही थी।

दूसरे क्षण दरवाज़े की सिटकनी खुलने की आवाज़ आयी। चेतन ने छाता उठा कर उसकी नोक से दरवाज़ा खोला। उसकी दृष्टि अपनी पत्नी पर गयी। उसका चेहरा उदास और सुता हुआ था और आँखें लाल थीं। लगता था जैसे वह काफ़ी रोती रही है। चेतन को अपनी पत्नी का उदास चेहरा कभी अच्छा न लगता था और उस वक्त तो वह उसे कद्रे कुरूप ही लगी। लेकिन न उसका अपना वैसा मूड था, न अवसर कि वह कोई मज़ाक करता, चन्दा की हँसी मोती बिखेरती और उसके चेहरे को उद्भासित करती हुई खिल पड़ती और उसे कुछ अजीब-सा भोला सौन्दर्य प्रदान कर जाती।... चेतन ने किवाड़ बन्द किये। छाते को वहीं दरवाज़े के कोने में रख कर सिटकनी

चढ़ा दी। फिर पलट कर उसने अपनी पत्नी के कन्धे को हलके से थप-थपाया —'क्यों, सोयी नहीं ?'

अजीब है कि उसके स्वर में उस क्रोध का लेश तक न था, जो कुछ ही क्षण पहले उसके दिल-दिमाग़ को खौला रहा था।

एक उदास मुस्कान चन्दा के चेहरे पर फैल गयी, 'बत्ती बुझा कर सोने जा रही थी कि आपके पैरों की चाप सुनायी दी।'

चेतन ने देखा —रसोई-घर वाली दीवार की तरफ़ दो चारपाइयाँ साथ-साथ बिछी हैं और उनके बिस्तरों पर सिलवट भी नहीं।

'क्या लेटी भी नहीं ?'

'नहीं पढ़ने लगी थी।'

'लेकिन दो बजने को आये हैं।'

चन्दा ने इसका जवाब नहीं दिया। क्षण भर रुक कर उसने कहा, 'कपड़े बदल डालिए। भीग गये हैं।'

और उसने बिस्तर से तहमद उठा कर अपने पति को दे दिया।

तहमद पहन और नेकर-कमीज़ उतार कर कुर्सी पर फैलाते हुए चेतन ने फिर अपनी पत्नी की पीठ थपथपायी, 'तुम बेकार चिन्ता करती हो, सब ठीक हो जायगा।'

चन्दा जैसे उस थपकी ही की राह देख रही थी। वह बेआवाज़ आँसू बहाने लगी।

लेकिन चेतन का ध्यान उधर नहीं था। वह देख रहा था कि खिड़कियाँ बन्द हैं और अन्दर उमस है। उसने बढ़ कर दोनों खिड़कियाँ खोल दीं और पर्दे गिरा दिये। वर्षा-भीगी हवा पुरानी धोती के उन पर्दों को फड़फड़ाती हुई उसके शरीर में ठण्डी सरसराहट दौड़ा गयी। चेतन जा कर चारपाई पर ढह गया और भीगी नेकर से पिण्डलियाँ और पैर अच्छी तरह पोंछ कर उसने टाँगें बिस्तर पर फैला दीं।

तभी उसका ध्यान चन्दा की ओर गया। वह उसी तरह खड़ी चुप-चाप रोये जा रही थी। चेतन ने उसे अपने पास बुलाया। उसका सिर

अपने ससुर, अपनी सास और अपनी पत्नी के विरुद्ध एक दुर्वार क्रोध और झुँझलाहट से उसके मन-प्राण सुलग उठे थे—उसे पता नहीं चला, कब उसने मेयो हस्पताल की दीवार का सहारा छोड़ा और कब रत्न-चन्द रोड पार कर कृष्णा गली में दाखिल हुआ। वह तब चौंका जब वह अपने घर के सामने खड़ा था।

रोज़ तो उसकी पत्नी आँगन में सोती थी और वह भाई साहब के साथ टाल के बराबर खुली जगह में, लेकिन उस रात पानी पड़ रहा था। भाई साहब अपने कमरे में सोये होंगे और चन्दा अन्दर बैठक में। वह बड़ी गहरी नींद सोती थी। चेतन के सामने चंगड़ मुहल्ले के वे दिन घूम गये जब वह सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) के मकान में रहता था और रात को डेढ़-दो बजे आता था, सीढ़ी के किवाड़ों पर दस्तक देता था और जब वह न जागती थी तो पीछे गली में जा कर उसकी खिड़की के नीचे आवाज़ें देता था। गली जग जाती थी, पर उसकी नींद न खुलती थी। चेतन ने डेवढ़ी में जा कर छाता वन्द किया। उसे दीवार के साथ खड़ा कर वह ज़ोर से किवाड़ खटखटाना और आवाज़ देना चाहता था कि तभी अन्दर वत्ती जल उठी।

चन्दा जाग रही थी।

दूसरे क्षण दरवाज़े की सिटकनी खुलने की आवाज़ आयी। चेतन ने छाता उठा कर उसकी नोक से दरवाज़ा खोला। उसकी दृष्टि अपनी पत्नी पर गयी। उसका चेहरा उदास और सुता हुआ था और आँखें लाल थीं। लगता था जैसे वह काफ़ी रोती रही है। चेतन को अपनी पत्नी का उदास चेहरा कभी अच्छा न लगता था और उस वक्त तो वह उसे कद्रे कुरूप ही लगी। लेकिन न उसका अपना वैसा मूड था, न अवसर कि वह कोई मज़ाक करता, चन्दा की हँसी मोती बिखेरती और उसके चेहरे को उद्भासित करती हुई खिल पड़ती और उसे कुछ अजीब-सा भोला सौन्दर्य प्रदान कर जाती।... चेतन ने किवाड़ बन्द किये। छाते को वहीं दरवाज़े के कोने में रख कर सिटकनी

चढ़ा दी। फिर पलट कर उसने अपनी पत्नी के कन्धे को हलके से थप-थपाया —'क्यों, सोयी नहीं ?'

अजीब है कि उसके स्वर में उस क्रोध का लेश तक न था, जो कुछ ही क्षण पहले उसके दिल-दिमाग़ को खौला रहा था।

एक उदास मुस्कान चन्दा के चेहरे पर फैल गयी, 'बत्ती बुझा कर सोने जा रही थी कि आपके पैरों की चाप सुनायी दी।'

चेतन ने देखा —रसोई-घर वाली दीवार की तरफ़ दो चारपाइयाँ साथ-साथ बिछी हैं और उनके बिस्तरों पर सिलवट भी नहीं।

'क्या लेटी भी नहीं ?'

'नहीं पढ़ने लगी थी।'

'लेकिन दो बजने को आये हैं।'

चन्दा ने इसका जवाब नहीं दिया। क्षण भर रुक कर उसने कहा, 'कपड़े बदल डालिए। भीग गये हैं।'

और उसने बिस्तर से तहमद उठा कर अपने पति को दे दिया।

तहमद पहन और नेकर-कमीज़ उतार कर कुर्सी पर फैलाते हुए चेतन ने फिर अपनी पत्नी की पीठ थपथपायी, 'तुम बेकार चिन्ता करती हो, सब ठीक हो जायगा।'

चन्दा जैसे उस थपकी ही की राह देख रही थी। वह बेआवाज़ आँसू बहाने लगी।

लेकिन चेतन का ध्यान उधर नहीं था। वह देख रहा था कि खिड़कियाँ बन्द हैं और अन्दर उमस है। उसने बढ़ कर दोनों खिड़कियाँ खोल दीं और पर्दे गिरा दिये। वर्षा-भीगी हवा पुरानी धोती के उन पर्दों को फड़फड़ाती हुई उसके शरीर में ठण्डी सरसराहट दौड़ा गयी। चेतन जा कर चारपाई पर ढह गया और भीगी नेकर से पिण्डलियाँ और पैर अच्छी तरह पोंछ कर उसने टाँगें बिस्तर पर फैला दीं।

तभी उसका ध्यान चन्दा की ओर गया। वह उसी तरह खड़ी चुप-चाप रोये जा रही थी। चेतन ने उसे अपने पास बुलाया। उसका सिर

अपने सीने से लगा कर वह प्यार से बार-बार उसे थपथपाने लगा।

'क्या कहा मोहिनी ने,' उसने बड़े स्नेह से, लगभग पुचकार में उसे चूमते हुए पूछा। 'मोहिनी की बात सुनते ही मैं इतना परेशान हो गया कि फिर तुमसे बात नहीं कर सका। क्या कहा था मोहिनी ने ?' उसने दोहराया, 'कैसे वे पागल हो गये ? कैसे उन्हें इतनी जल्दी पागलखाने भेज दिया गया ?'

चन्दा कुछ नहीं बोली। बस बेआवाज़ आँसू बहाती रही।

चेतन ने प्यार से आँखों के नीचे उसके गाल चूम लिये। उसके मुँह का स्वाद नमकीन हो गया। लेकिन उसकी परवाह न कर वह बार-बार उसे सीने से लगा कर चूमता और उससे सब कुछ बताने का अनुरोध करता रहा।

चन्दा के आँसू थम गये। वह उसके साथ सट गयी और मोहिनी ने उसे जो बताया था, वह सब उसने चेतन को बता दिया।—मोहिनी ने कहा था मुहल्ले में कुछ लोगों का खयाल है, चन्दा के पिता सचमुच पागल हैं, लेकिन दूसरे ऐसे भी हैं, जो इससे सहमत नहीं और उनका कहना है कि उनके भाई-भतीजों ने ज़बरदस्ती उन्हें पागलखाने में बन्द करवा दिया है।

'लेकिन हुआ यह सब कैसे ?' सहसा चेतन ने पूछा।

'मोहिनी कहती है कि एक सुबह वे तायाजी के घर गये और उन्होंने तायाजी को गालियाँ देनी शुरू कीं, अपने सभी कपड़े फाड़ डाले और मरने-मारने पर तैयार हो गये। इतना ज़ोर उनमें आ गया कि चार-छै आदमियों ने बड़ी मुश्किल से उन्हें पकड़ कर बाँधा। लेकिन शाम को छूट कर उन्होंने फिर वही सब किया और सारे बाज़ार में उपद्रव मचाते दौड़े। जब दो-तीन दिन तक यही हुआ तो तायाजी ने अपने मित्रों और कुछ मुहल्ले वालों की मदद से थाने में रपट लिखायी और पुलिस की सहायता ले कर उन्हें पागलखाने दाखिल करा गये।'...

वह क्षण भर चुप रही। फिर उसने कहा :

'लेकिन दूसरे लोग कहते हैं कि बड़े भाई ने औने-पौने में जो मकान का हिस्सा उनसे लिया है और भट्ठा मामा के लड़के हरमोहन की मार्फ़त हथिया लिया है, उसी के दुख से वे पागल हो गये हैं।'

और चन्दा फिर सिसकने लगी।

'मेरे पिता तो चींटी तक पर हाथ नहीं उठाते। किसी ने उन्हें ऊँची आवाज़ से बोलते नहीं सुना। जाने सचमुच उन्होंने गालियाँ दीं और तायाजी पर हाथ उठाया या लोगों ने यूँ ही उड़ा दिया। मुझे तो न इस पर विश्वास आता है कि पिताजी ने तायाजी को गालियाँ दीं और न इस पर कि तायाजी या रणवीर ने वैसी ज्यादती की। मैं तो वहीं पली हूँ और तायाजी को पिता-समान और उनके बेटे-बेटियों को अपने सगे भाई-बहनों से बढ़ कर मानती रही हूँ।'

चेतन ने उसी की धोती के छोर से चन्दा की आँखें पोंछीं और बोला, 'यहाँ उनसे कोई मिला है?'

'माँ हफ़्ते में दो बार जाती है। उसका ख़याल है कि अब वे ठीक हो गये हैं।'

'तब फिर घबराने की क्या बात है?' सहसा अपनी पत्नी को दोनों बाँहों में भर कर उसे अपने सीने से लगाते और प्यार करते हुए चेतन ने कहा, 'हम उन्हें पागलख़ाने से ले आयेंगे। मैं डॉ० सत्यपाल और डॉ० गोपीचन्द भार्गव से चिट्ठियाँ ले लूँगा। कोशिश करूँगा कि डोगरा की मदद से सर छोटूराम अथवा गोकुलचन्द नारंग से वहाँ के इन्चार्ज डॉक्टर के नाम चिट्ठी ले लूँ। हम उन्हें छोटी-सी दुकान खोल देंगे। तुम्हारी माँ को किसी के यहाँ चौका-बर्तन करने की ज़रूरत नहीं होगी। मैं ग्राहक लाने में, उनकी दुकान का प्रचार करने में उनकी सहायता करूँगा। मेरा दिन ख़ाली रहता है। मैं स्वयं दुकान पर बैठूँगा। उन्हें किसी तरह की तकलीफ़ न होने दूँगा। मैंने अपने भाई की प्रैक्टिस जमा दी है तो उनकी जमाने में मुझे क्या देर लगती है! तुम क्यों घबराती हो, सब ठीक हो जायेगा।'

उसके सीने से लगे-लगे, झलमलाती आँखों से चन्दा ने अपने पति की ओर देखा और जैसे कृतज्ञता से अभिभूत हो कर उससे लिपट कर उसने रोते-रोते उसे ज़ोर से चूम लिया—'आप कितने अच्छे हैं !' उसने रुँधे गले से कहा और उसके सीने पर सिर रख कर बेआवाज़ सुबकने लगी।

दो वर्ष में यह पहली बार था कि चन्दा ने अपने पति को चूमा था। चेतन को रोमांच हो आया। उसने दोनों बाँहों में उसे बेतरह भींच लिया।

०

सबेरे इतवार था। भाई साहब आधे दिन के लिए दुकान खोलते थे। जब आठ बजने को आये और चेतन के कमरे का दरवाज़ा न खुला तो दुकान को जाते हुए उन्होंने ज़ोर से उसके दरवाज़े पर दस्तक दी।

चेतन हड़बड़ा कर उठा। उसने दस्तक का उत्तर दिया, पर उठ कर दरवाज़ा नहीं खोला।

'आठ बजने को आये हैं और तुम लोग अभी सोये हो। मैं दुकान को जा रहा हूँ। उधर का कमरा खुला है।'

'रात भाई साहब दो बजे लौटा था, देर से सोये, अभी उठते हैं।'

भाई साहब चले गये तो उस सुख की अव्यक्त अनुभूति से अभिभूत हो कर, जो रात गहन दुख से उस करुण क्षण में अपनी पत्नी के साहचर्य में उसे मिला था, चेतन ने अपनी सोयी हुई पत्नी के बासी होंटों को प्यार से चूम लिया।

'चन्दी उठो। हमें अभी तुम्हारी माँ से मिलने गोविन्द गली जाना है।'

ब
त्ती
स

सात दिन बाद इतवार ही को—निहायत तपती दोपहरी में नया सूट-बूट और हैट पहने और नयी टाई लगाये चेतन अपनी पत्नी और सास के साथ पैदल ही अपने ससुर को देखने पागलखाने जा रहा था।

उसकी जेब में न केवल कांग्रेस के प्रधान, डॉक्टर सत्यपाल, पीपल्ज़ सोसाइटी के मन्त्री डॉक्टर भार्गव की चिट्ठियाँ थीं, वरन उसने डोगरा की सहायता से (जो 'भीष्म' के बन्द होने पर 'देश' में आ गया था और हास्य-रस का अत्यन्त लोकप्रिय कॉलम लिखता था) हेल्थ मिनिस्टर डॉक्टर नारंग के सचिव से भी एक चिट्ठी ले ली थी कि पण्डित दीनबन्धु के सिलसिले में उनके दामाद की दरख्वास्त पर हमदर्दी से विचार किया जाय और जो भी मदद हो सकती हो, इस सम्बन्ध में उसे दी जाय!

०

उन दिनों बड़ी सरकारी संस्थाओं के इंचार्ज या तो अंग्रेज़ होते अथवा इंग्लिस्तान-पलट अंग्रेज़ी-ज़दा[1] हिन्दुस्तानी। ऐसे किसी डॉक्टर से तहमद-कमीज़ या कुर्ते-पायजामे में

---

१. अंग्रेज़ी के काटे हुए।

मिलना चेतन को ठीक न लगा था। हफ़्ते के अन्दर-अन्दर निरन्तर दौड़-धूप करके, न केवल उसने सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ प्राप्त कर ली थीं, वरन कुछ वेतन दफ़्तर से पेशगी ले कर और चार कहानियों के अनुवाद 'गुरु घण्टाल' के लिए करके दरम्याने दर्जे के कपड़े का एक सूट सिलवा लिया था, और एक टाई, हैट और नया जूता भी ख़रीद लिया था।

दो वर्ष पहले शादी पर उसे जो सूट मिले थे, वे उसने भाई साहब को दे दिये थे, क्योंकि उन्हें प्रैक्टिस करनी थी और उनके पास कपड़े नहीं थे, जबकि वह स्वयं राष्ट्रीय उर्दू दैनिक में काम करता था और सूट की उसे कोई वैसी ज़रूरत न थी। हाँ, रेशमी रूमाल उसके पास दहेज़ का पड़ा था, जो उसने तह कर के कोट के बाहर की जेब में रख लिया था और मोज़े भाई साहब से माँग लिये थे। वह यह बात अच्छी तरह जानता था कि यह नया सूट भी वह ज़्यादा पहन नहीं सकेगा। आख़िर उसे ट्रंक की शोभा ही बढ़ानी होगी अथवा भाई साहब के शरीर पर सजना होगा, पर इस अवसर के लिए अंग्रेज़ी पोशाक उसे निहायत ज़रूरी लगी थी, ताकि हस्पताल के डॉक्टर पर उसका पर्याप्त रोब पड़े और उसके ससुर पागलख़ाने की क़ैद से आज़ाद हो जायें।

उसकी पत्नी गर्मी के बावजूद रेशमी साड़ी पहने हुए थी। अपने संघर्ष में चेतन कभी इतने पैसे नहीं बचा पाया कि उसके लिए साधारण साड़ियाँ ख़रीद सके और वह वक्त-बेवक्त दहेज़ में मिली कीमती साड़ियाँ पहने रहती थी। अपने बढ़िया सूट और पत्नी की बढ़िया साड़ी के कारण चेतन चाहता था कि वे पागलख़ाने ताँगे में जायें। इस काम के लिए उसने रुपये भी बचा रखे थे और एक ताँगे वाले से आने-जाने के ढाई रुपये तय भी कर लिये थे, लेकिन उसकी सास ताँगे में बैठने को तैयार न हुई थी। उसे चेतन के इस प्रस्ताव पर हैरत हुई थी। वह लड़की का कोई पैसा कैसे छू सकती है अथवा अपने ऊपर ख़र्च करवा सकती है। जब किसी तरह भी उसकी सास ताँगे पर बैठने के लिए न मानी तो चेतन ने सोचा कि वह पत्नी को ले कर ताँगे पर पागलख़ाने चला जाय

और वहाँ अपनी सास की प्रतीक्षा करे। लेकिन उसे अपना यह विचार ख़ासा क्रूर लगा। वह जानता था, उसकी पत्नी नहीं मानेगी, वह उसे ताँगे पर जाने को कहेगी और स्वयं अपनी माँ के साथ पैदल ही आयेगी और ताँगे पर अकेले जाने पर वह स्वयं अपने आप को कभी क्षमा नहीं कर पायेगा।. . .हफ़्ता पहले ही तो उसकी पत्नी उसकी अच्छाई से अभिभूत हुई थी। अब उसकी आँखों में क्रूर और कैलस (callous) दीखना चेतन के अहं को स्वीकार न हुआ। विवश हो, नये सूट और रेशमी साड़ी की चिन्ता छोड़, (जिनके कारण वे दोनों उस गर्मी और भयानक उमस में बेहाल हो रहे थे) वे पैदल ही चल पड़े थे।

चल तो वे पड़े थे, पर जैसे वे चल रहे थे, उसे चलना नहीं कहा जा सकता, घिसटना ही कहा जा सकता है। गर्मी और धूप के बावजूद चेतन अपनी आदत के अनुसार तेज़-तेज़ चलता, लेकिन उसकी सास और पत्नी बहुत पीछे रह जातीं। किसी पेड़ की छाया में दम लेने लगतीं और चेतन अपनी गति पर रोक लगा कर उनकी प्रतीक्षा करता। उनके साथ-साथ चलता, फिर वह अपने ध्यान में मग्न आगे बढ़ जाता और वे पूर्ववत घिसटती हुई पीछे चली आतीं।

लॉरेंस रोड तक वे इसी तरह आये थे, आगे चौड़ी सड़क पर कोई पेड़ नहीं था। केवल बँगलों की फ़सीलें थीं। लेकिन वे छायादार तो थीं नहीं। धूप में चलते-चलते तीनों बेहाल हो गये थे। चेतन की गति भी अपेक्षाकृत मन्द हो गयी थी। वह भी उनसे चन्द कदम आगे घिसटता चल रहा था। अचानक उसकी सास एक बँगले की अपेक्षाकृत ऊँची चहारदीवारी की छाया में जा खड़ी हुई। चेतन और उसकी पत्नी भी उसके पास चले गये। कुछ पल दम ले कर तीनों फिर कड़कती धूप में चल पड़े।

चेतन अपने विचारों में गुम हो गया। पिछले हफ़्ते की भाग-दौड़ और घटनाएँ एक-एक कर उसके सामने आने लगीं।

०

यद्यपि गत शनि की भीगती रात चेतन ने अपनी पत्नी से वादा किया था कि इतवार सुबह उठते ही वे गोविन्द गली जायेंगे, लेकिन वे सुबह जा नहीं सके थे। उठने में उन्हें बहुत देर हो गयी थी। फिर चेतन ने सोचा था कि उसकी सास तो घर भर की रोटी पकाती और चौका-बर्तन करती होगी, सुबह-सुबह जाने से उसे असुविधा होगी और उसके काम में बाधा पड़ेगी, इसलिए दोपहर का खाना खा कर दोनों घर से चले थे। रेलवे रोड पर (जो सब्ज़ीमण्डी के बाद अमृतधारा रोड भी कहलाती थी) अमृतधारा बिल्डिंग के दोनों तरफ़ चौड़ी गलियाँ थीं। पहली ग्वालमण्डी बाज़ार में जा कर मिल जाती थी, दूसरी नयी बसी आबादी में से होती हुई गन्दे नाले पर जा कर निकलती थी। श्री लेखराज की सूचना के अनुसार चेतन अपनी पत्नी के साथ पहली गली के अन्दर को मुड़ा तो उसने देखा, काफ़ी खुली और चौड़ी गली है। इस गली से अमृतधारा के पीछे बसी ऊँची-ऊँची बिल्डिगों वाली पुरानी आबादी को काफ़ी खुली-चौड़ी गलियाँ जाती थीं। दूसरी गली पर गोविन्द गली की पट्टी लगी थी। चेतन ने वहीं गली के अन्दर से आने वाले एक व्यक्ति से सेठ वीरभान के मकान का पता पूछा। उसने गली के बीचोंबीच बनी एक तिमंज़िली लाल हवेली की ओर इशारा कर दिया।

दोनों क्षण भर को वहाँ जा कर हवेली के सामने रुक गये थे। सड़क से हवेली की कुरसी काफ़ी ऊँची थी। तीन सीढ़ियों के बाद पुराने शीशम का नक्काशीदार बड़ा ऊँचा (कदाचित डेवढ़ी में खुलने वाला) दरवाज़ा था। दरवाज़े के बाहर सीढ़ी के दोनों ओर लाल सिमेण्ट के चबूतरे बने थे। डेवढ़ी के दोनों ओर दो बड़े-बड़े कमरे थे, जिनकी नीले रंग की बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ बन्द थीं। ऊपर भी ऐसे ही कमरे थे, जिनमें से दायीं ओर के कमरे की खिड़कियाँ खुली थीं।

क्षण भर दरवाज़े पर नीचे की बन्द और ऊपर की खुली खिड़कियों पर दृष्टि डाल कर चेतन ने अपनी पत्नी से कहा कि वह नहीं जायेगा। वह उधर गली के सिरे पर खड़ा रहेगा। वह जाय और अपनी माँ को

बुला लाये। वहीं वे उससे बात करेंगे।

चन्दा जब मकान की सीढ़ियाँ चढ़ी और उसने बड़े दरवाज़े पर दस्तक दी तो चेतन चुपचाप वापस आ कर गली के किनारे अमृतधारा से आने वाली गली में आ खड़ा हुआ, ऐसे कि गोविन्द गली की उस हवेली पर उसकी नज़र रहे। किसी को किसी तरह की जिज्ञासा न हो, इसलिए वह मकानों की छाया में टहलने लगा और यों टहलता हुआ वह गली के सिरे पर जा कर देख लेता कि दरवाज़ा खुला है या नहीं ?

एक युग के बाद—ऐसा चेतन को लगा—हवेली का दरवाज़ा खुला। लेकिन उसकी पत्नी अन्दर नहीं गयी। क्षण भर बात कर के वह सीढ़ियाँ उतरी। उसके पीछे हवेली का दरवाज़ा बन्द हो गया। चेतन उतावली में अपनी पत्नी से मिलने चल दिया। वह सीढ़ियाँ उतर कर गली में आ गयी थी।

'क्या हुआ ?' चेतन ने उसके निकट जा कर पूछा।

'माँ पिताजी से मिलने पागलखाने गयी हुई है। वह हर वृहस्पत और इतवार को जाती है।'

'कब आयेगी ?'

'पागलखाना चार बजे खुलता है। बहुत दूर जेल रोड पर है। माँ पैदल आती-जाती है। दिया-जले लौटती है।'

'यथा विधाता विधीयते तदैव शुभाय।' चेतन ने हितोपदेश की वही उक्ति मन-ही-मन दोहरा ली जो वह ऐसे अवसरों पर दोहराया करता था और उसमें 'मेरे लिए' (मह्यम) उसने अपनी ओर से जोड़ लिया। उसे दिन के उजाले में गली में खड़े हो कर भी अपनी सास से बात करने में संकोच था। उसका कोई मित्र-परिचित ही उसे अपनी सास से बातें करते देख सकता था। पूछने पर वह क्या जवाब देता ! व्यर्थ में उसे झूठ बोलना पड़ता। वे शाम को छै बजे के करीब आयेंगे और माँ को गली ही में मिल लेंगे। हवेली पर दस्तक देने या सेठ अथवा सेठानी से मिलने के अस्वस्ति-बोध से मुक्ति मिलेगी और गली के नीम

अँधेरे में चन्दा की माँ से बात करना भी आसान होगा।

और दोनों चुपचाप वापस चल दिये। पहले उन्होंने सोचा कि दो-तीन घण्टे वे कमला के यहाँ गुज़ारें और वापस अमृतधारा की ओर पलटने के बदले वे सीधे ग्वालमण्डी की तरफ़ चल दिये। लेकिन वैद्य मोहनलाल के मकान पर पहुँच कर चेतन ने फिर अपना इरादा बदल दिया।

'इतवार है, गर्मियों की दोपहरी है,' चेतन ने कहा, 'वे लोग खा-पी कर आराम कर रहे होंगे। उन्हें दोपहर में जा कर बोर करना अच्छा नहीं। रात भर के जगे हैं, चल कर एकाध घण्टा सो लेते हैं।'

लेकिन घर जा कर लेटने के बावजूद वे सो नहीं सके थे और बातें करते रहे थे। चेतन अपनी पत्नी को समझाता रहा था कि किस प्रकार वह उसके पिता की दुकान जमा देगा। 'पंसारी की दुकान का काम बड़ा झंझटिया है।' उसने कहा था, 'चाहिए यह कि रोज़ाना ज़रूरत की ऐसी चीज़ें रखी जायें जिनके रखने-रखाने में दिक्कत न हो—साबुन, तेल, क्रीम, पाउडर, टुथब्रश, डेण्टल क्रीम, माचिस, सिगरेट और बीसियों ऐसी चीज़ें हैं, जिनके बिना किसी का काम नहीं चलता और जिन्हें बेचने में आसानी होती है। यदि मौके की छोटी-सी दुकान मिल जाय तो मैं सब कर दूँगा। लोगों के घरों में जा कर आर्डर लाऊँगा, बाज़ार से दो पैसे सस्ता दूँगा और तुम देख लेना कि मैं छै महीने के अन्दर-अन्दर दुकान जमा दूँगा।'

और उसने उस ज़रूरी सामान की एक लम्बी लिस्ट बना डाली थी, जो वह शुरू-शुरू में दुकान में रखना चाहता था।

'इसके बाद यह जानना ज़रूरी है,' उसने चन्दा को समझाया था, "कि ये सारी चीज़ें थोक में कहाँ मिलती हैं और किन थोक-फ़रोशों के पास इनकी एजेंसियाँ हैं।—तुम्हारे पिता को देख आयें, घर ले आयें तो मैं एक हफ़्ते के अन्दर-अन्दर सारी सूचना प्राप्त कर लूँगा और कोशिश करूँगा कि ज़्यादा रुपया खर्च न करना पड़े और चीज़ें उधार

मिल जायें। लोगों को उनका रुपया उनकी दुकानों पर मिल जाय तो साख बढ़ती है और साख जेब में रुपये के बराबर होती है।'

यूँ अपनी पत्नी को कारबार की बुनियादी बातें समझाने और स्कीमें बनाने में लेटे-लेटे, बिना ज़रा भी पलक लगाये, उसने दोपहर गुज़ार दी थी और सचमुच जब चन्दा की माँ छै-सात मील की मंज़िल पार कर थकी-हारी हस्पताल से वापस आ रही थी, वे उसकी प्रतीक्षा में गोविन्द गली के सिरे पर खड़े थे। चेतन ने दूर से अपनी सास को आते देखा—मैली-सी धोती और ब्लाउज़, पैरों में घिसे हुए स्लीपर, धूल-भरे रूखे-सूखे बाल, नीम अन्धी आँखें, ढलकते हुए पपोटे, ढीली-लटकती झुर्रियाँ, खुरदरे हाथ और जैसे दुख और मेहनत, धूल और पसीने से काला पड़ा हुआ चेहरा—(उसके कवि-मन में अपनी सुन्दर पत्नी के साथ गर्वीली, रोबीली और सम्भ्रान्त सास के बारे में कैसी-कैसी सुखद कल्पनाएँ थीं!)—उसने अपनी पत्नी से कहा कि वही बढ़ कर उससे बातें करे। चन्दा ने सुबह वाली ही रेशमी साड़ी पहन रखी थी। वह भाग कर अपनी माँ से लिपट गयी।

चेतन ने ज़रा दूर ही से अपनी सास को 'नमस्कार' किया और वहीं खड़ा रहा।

दोनों माँ-बेटियाँ देर तक रोती और बातें करती रही थीं (और चेतन ज़रा परे घूमता रहा था। फिर चन्दा अपनी माँ को पति के पास ले आयी थी और चन्दा की माँ ने अपने दामाद को बताया था कि उसका ससुर पागल-वागल कुछ नहीं, 'उनके सिर को कुछ खुश्की चढ़ गयी थी, बेटा,' उसने कहा, 'इसी कारण उन्होंने बड़े भाई से झगड़ा कर लिया और उन सब ने मिल कर उन्हें पागलखाने में डाल दिया।' यह सब बता कर उसने कहा कि उसका बस चलता तो वह पागलखाने ही में रहती। वह लाहौर आ कर पागलखाने गयी भी थी, पर उसे वहाँ रखने को कोई तैयार नहीं हुआ। सो उसने इन बेचारे सेठ का आसरा ले लिया। अब वह हफ़्ते में दो बार बादाम की गिरियाँ और दूध ले कर जाती है, अपने

पति को खिला कर आती है और अब वे ठीक हो गये हैं।

तब चेतन ने कहा था, 'माँ, तुम नौकरी करना छोड़ दो। हमारे पास चल कर रहो।'

चन्दा की माँ ने उसकी तरफ़ ऐसे देखा जैसे वह बड़ी ही मूर्खता-भरी बात कर रहा हो। फिर उसने कहा था कि यह कैसे हो सकता है! लड़की के घर का तो वह पानी भी नहीं पी सकती। हाँ पण्डितजी पागलखाने से आ जायें, कोई काम कर लें तो वह नौकरी छोड़ देगी।

तब चन्दा ने रुँधे गले से पूछा था, 'माँ, तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ़ तो नहीं?'

'नहीं बेटी, यह सेठ और सेठानी बड़े भले हैं,' उसकी माँ ने उसे तसल्ली दी, 'बच्चा-वच्चा कोई है नहीं। इतनी बड़ी हवेली भायँ-भायँ करती है। कुछ दिन पहले अपनी बहन की लड़की को उन्होंने गोद में लिया है। पन्द्रह-सोलह वर्ष की गुटकनी-सी लड़की है—कृष्णा! मुझे माँ-ऐसा मानती है। भगवान सेठानी की गोद भर दे, जिसने मुझ ग़रीब को मुसीबत में सहारा दिया है।'

और चन्दा की माँ ने अनायास भर आने वाली आँखों को आँचल से पोंछ लिया था।

लेकिन चेतन ने जैसे अपनी सास की कोई बात नहीं सुनी। उसने कहा, 'लेकिन तुम इन सेठ के यहाँ आ कैसे गयीं?'

'अरे बेटे, इनके मुनीम की ससुराल बस्ती ग़ज़ाँ में है। मेरा वहाँ आना-जाना है। उसे मेरी विपद का पता चला तो अपने साथ ले आया। सेठानी के घर कोई दूसरी औरत नहीं। शरीर उसका काम नहीं देता। बरसों पहले बच्चे से हुई थी तो कुछ गड़बड़ हो गयी। बच्चा मरा हुआ जन्मा। तब से शरीर फूल गया। उससे कुछ होता नहीं। नौकर के हाथ का खाना सेठ खाता नहीं। उसको खाने की तकलीफ़ थी। उस बेचारे ने तो कुछ नहीं कहा, पर उन्होंने मुझे आसरा दिया तो मैंने रसोई-घर का काम अपने ज़िम्मे ले लिया। दो रोटियाँ अपने लिए पकाती थी,

चार उनकी पका देती हूँ। मेरे क्या हाथ घिसते हैं। ऊपर से सेठानी सात रुपये महीना देती है।'

और यह कहते हुए चन्दा की माँ बढ़ कर हवेली की निचली सीढ़ी पर बैठ गयी। प्रकट ही वह बहुत थक गयी थी और वह ज़्यादा देर खड़ी-खड़ी बातें न कर सकती थी।

चेतन और उसकी पत्नी उसके निकट हो गये। चेतन ने कहा :

'माँ, हम पण्डितजी को पागलखाने से ले आयेंगे। उन्हें दुकान खुलवा देंगे। तुम विश्वास रखो, मैं छै महीने के अन्दर-अन्दर उनकी दुकान चलवा दूँगा। कहीं दूसरी जगह कमरा ले कर रहना और यह नौकरी छोड़ देना।'

'अरे बेटा, नौकरी काहे की है।' चन्दा की माँ ने कहा था, 'वो लोग तो मुझे घर ही की मानते हैं। हर बात में मेरी सलाह लेते हैं।'

'नहीं, पण्डितजी की दुकान चल गयी तो तुम नौकरी छोड़ देना,' चेतन ने हठ से कहा था।

'क्यों नहीं छोड़ दूँगी बेटा,' चन्दा की माँ ने कहा था, 'आते बृहस्पत या इतवार को हम चलेंगे। तुम किसी तरह डॉक्टर से मिल-मिला कर उन्हें उस जेल से निकलवाओ। वे कोई काम कर लें तो मुझे और क्या चाहिए। काम शुरू करने के लिए मैं सेठानी से कुछ रुपये उधार ले लूँगी।'

'वह सब हो जायेगा। मैं कल ही से इसके लिए कोशिश करूँगा। बृहस्पत नहीं, अगले इतवार को चलेंगे। इस बीच मैं पूरी तैयारी कर लूँगा। यहाँ के बड़े-बड़े नेताओं से मेरा परिचय है। डॉक्टर के नाम सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ लेने में कठिनाई नहीं होगी। मैं खुद जा कर पागल-खाने के डॉक्टर से मिलूँगा और हम उन्हें ले आयेंगे।'

और वह वापस चलने को तैयार हुआ। चन्दा की माँ घुटनों पर हाथ रख कर उठी। उसने बहुतेरा कहा कि वे ज़रा ऊपर चल कर बैठें। आये हैं तो पानी-वानी पी कर जायें। सेठानी कई बार उनको

पूछ चुकी है। उन्हें मिल कर वह खुश होगी, पर चेतन ने उसकी बात नहीं सुनी। सहसा उसने कद्रे सख़्ती से पूछा, 'पर तुमने हमें पता क्यों नहीं दिया ? इतनी बड़ी घटना हो गयी। तुमने अपनी लड़की तक को दो शब्द नहीं लिखे !'

'बेटा, मुझे तुम लोगों का पता मालूम नहीं था। नहीं मैं यहाँ आ कर तुमसे न मिलती ! फिर मुनीम ने साथ ही चलने को कहा तो मैं कल्लोवानी से भी पता न कर सकी।'

'पर भाई साहब का पता तो वहाँ था। रणवीर तो दुकान पर आ चुका है। तुम सीधी दुकान पर आ जातीं।'

'मैं तो उन लोगों को बता कर नहीं आयी। जब इनके दिमाग़ को खुश्की चढ़ी और जेठ इन्हें यहाँ छोड़ गये तो उन्होंने मुझसे कहा था कि चन्दा की माँ, तुम किराये का मकान छोड़ दो और अपने घर आ कर रहो। तुम्हारे ही बच्चे हैं। तुम्हीं ने उन्हें पाला-पोसा है। कोई तकलीफ़ न होगी। पर जिन्होंने इतना ज़ुल्म तोड़ा। ज़रा झगड़ा करने पर उन्हें पागलखाने पहुँचा दिया, मैं उनकी और उनके बच्चों की ग़ुलामी करती ! बहुत कर ली मैंने ग़ुलामी ! छोटा नरिन्दर गोद में था जब जेठानी मर गयी थी। मैंने ही छोटे-छोटे बच्चे पाले और बड़े किये। अब मुझसे और ग़ुलामी नहीं होती। दस उँगलियों से मेहनत करती हूँ, किसी का दिया क्यों खाऊँ—फिर वहाँ रहती तो इनको कैसे देखती !'

चेतन पण्डित वेणीप्रसाद की बड़ी इज़्ज़त करता था। सच्ची बात यह है कि उन्हीं के कारण वह चन्दा से विवाह करने को तैयार हो गया था। वह उन्हीं को अपना ससुर मानता था। क्षण भर के लिए भी उसे विश्वास न होता था कि उन्होंने अपने छोटे भाई के साथ कोई ज़ुल्म किया है। चन्दा से उसने सुना था कि देवरानी-जेठानी की कभी नहीं पटी। हो सकता है अपने बड़े लड़के-लड़की के कारण उन्होंने वैसा किया हो, यद्यपि नीला और रणवीर ऐसा कर सकते हैं, उसका मन न मानता

था। यह भी हो सकता है कि शरीकों ने उसकी अपढ़ सास के कान भरे हों। वह बस्ती ग़ज़ाँ में होता, पण्डित वेणीप्रसाद से मिलता तो उसे वास्तविक स्थिति का पता चलता। वह उनके पक्ष में कुछ कहना चाहता था, लेकिन वह चुप बना रहा।

चन्दा की माँ उन्हें गली के सिरे तक छोड़ने आयी। सहसा चेतन ने पूछा, 'माँ सेठ की दुकान कहाँ है?'

'डिब्बी बाज़ार में!'

'कब तक आते हैं?'

'पहले तो नौ-साढ़े-नौ बजे तक आते थे, पर आजकल उनकी तबियत ठीक नहीं। आते ही होंगे।'

तब, यद्यपि चन्दा अपनी माँ से कुछ और बातें करना चाहती थी, चेतन के लिए वहाँ खड़े रहना कठिन हो गया। अपनी सास को उसने तसल्ली दी कि जो हो गया, सो हो गया, उसे वापस नहीं लाया जा सकता। पीछे की छोड़, उन्हें आगे की चिन्ता करनी चाहिए। भगवान ने चाहा तो सब कुछ ठीक हो जायेगा।. . .और उसने छुट्टी चाही। चन्दा माँ से फिर लपक कर गले मिली। और दोनों पलट कर तेज़-तेज़ ग्वालमण्डी की ओर से निकल आये थे।

०

धूप के बावजूद चेतन काफ़ी आगे निकल गया था। लॉरेंस रोड खत्म हो गयी थी। जेल रोड शुरू हो गयी थी। एक बँगले के गेट पर बिगन बेलिया अन्दर लगे पेड़ पर चढ़ गयी थी और उसके लाल-लाल फूलों के गुच्छे जैसे सूरज को चुनौती देते हुए भरपूर खिले थे। सड़क पर गेट के पास छाँह का एक बड़ा-सा चकत्ता बन गया था। चेतन वहाँ जा खड़ा हुआ। उसका नया जूता धूल से भर गया था। पहले उसने सोचा कि रूमाल निकाल कर उससे जूता झाड़ ले, लेकिन अभी पूरी जेल रोड पड़ी थी। जूते तो फिर धूल से भर जायेंगे। तब उसने सोचा कि डॉक्टर से मिलने को जाने से पहले वह उन्हें साफ़ कर लेगा। लेकिन पसीने से

उसका बुरा हाल था। उसने रूमाल निकाल कर मुँह और गर्दन का पसीना पोंछा। फिर हैट उतार कर, इस बात का ध्यान रखते हुए कि बाल बिगड़ न जायें, उसने उन पर रूमाल फेरा। हैट के अन्दर बुर्जी काग़ज़ पर पसीने के कतरे चमक रहे थे। उसने हैट को अन्दर से साफ़ किया। रूमाल एकदम गीला हो गया। उसने हैट का बैण्ड खोल कर उसे कलाई में डाल लिया और रूमाल हाथ के उल्टी तरफ़ फैला कर उसे सुखाने के लिए हिलाने लगा।

उसकी सास और पत्नी चुपचाप घिसटती हुई चली आ रही थीं, 'ये कुछ सोच भी रही हैं या बेज़बान जानवर की तरह चुपचाप चली आ रही हैं'—चेतन ने मन-ही-मन कहा। लेकिन नहीं, वे बोलती चाहे ज़्यादा न हों, पर सोच से खाली नहीं थीं।

उसकी सास सोचती आ रही थी—संसार में किसके दिन एक-जैसे रहे हैं, जो उनके रहते। चढ़ना—गिरना—यह तो मनुष्य के साथ लगा ही है। फिर चढ़ने-गिरने वाला मनुष्य कौन ? यह तो वह सर्व-व्यापक, सर्वशक्तिमान खिलाड़ी है,जो चाहता है तो अपने खिलौनों को सिंहासन पर बैठा देता है, चाहता है; तो दर-दर की ठोकरें खिलवाता है। फिर दुख कैसा ? जो उसे मंज़ूर होगा,वह करेगा। उसकी इच्छा के आगे सर नवाने के सिवा कोई चारा नहीं।

और बार-बार यही सोचती हुई, वह अपने मन को धीरज बँधाती, घिसटती चली जा रही थी। प्रायः ऐसा होता था। प्रायः वह इसी तरह अपने दुखी मन के उद्वेगों को शान्त करने का प्रयास किया करती थी। लेकिन उस वक्त, उस चिलचिलाती धूप में, जब सर का पसीना पैरों से बह रहा था, सड़क पर कहीं कोई पेड़ नहीं था और आगे कठिन मंज़िल बाकी थी, उसके मन में कई तरह के विचार उठ रहे थे—खिलाड़ी को सुख-दुख का यह खेल देखना है तो शौक से देखे, पर वह दुख के बाद सुख दे कर भी यह खेल देख सकता है। पहले सुख देने के बाद फिर दुख के कोल्हू में पीस डालना कितनी बड़ी सज़ा है। ऐसा करने के बदले वह आदमी को

उठा ही क्यों नहीं लेता। पर यहीं जैसे उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल जाता। यदि वह आदमी को उठा ले तो पिछले जन्म में उसने जो कर्म किये हैं, उन्हें कौन भोगे? कई बार दुख से परेशान हो कर उसने मौत को बुलाया था। पर मौत किसी के बुलाये तो आती नहीं। जब तक पिछले जन्म के कर्मों का शतांश भी बाकी है, कोई नहीं मर सकता। तो फिर उसे ही कैसे मौत आ जाती!—पाँच-पाँच लड़कों को जन्म दे कर उसने अपने हाथों श्मशान की ठण्डी गोद में जा सुलाया। बढ़ा-चढ़ा कारबार अपने सामने बरबाद होते देखा। जेठ के जिन बेटे-बेटियों को अपना खन सुखा कर पाला था, उनके तानों के डंक सहे और बेघर-बेदर होने के बाद पति की यह दुर्दशा!—जाने अभी क्या कुछ देखना बदा है, किन कर्मों का फल भोगना बाकी है—एक लम्बी साँस उसके हृदय की गहराई से निकल गयी। चेतन के पास पहुँच कर वह धम् से धूल में बैठ गयी। दूध का लोटा उसने एक ओर रखा और बादामों की पोटली दूसरी ओर, और धोती के छोर से गर्दन और सीने का पसाना पोंछ कर, वह उसी से हवा करने लगी।

चन्दा को लेकिन माँ पर ग़ुस्सा था—बहुत ग़ुस्सा था! पिता पागल हो जाय और लड़की को पता न दिया जाय। यह भी कोई बात हुई। उसका पति ठीक ही तो कहता है। यह और बात है कि पिछले सात दिनों में उसने अपने पति को कई तरह से समझाया है—'दुखों और तकलीफ़ों ने माँ को भला-बुरा सोचने लायक नहीं रखा। उसका दिमाग़ ठीक नहीं। उसकी ग़लती पर ध्यान न दीजिए!'. . .'माँ मुझे बहुत प्यार करती है। पाँच लड़कों के बाद सिर्फ़ मैं ही बची हूँ और उसने कभी मुझे दुख नहीं पहुँचने दिया। इसीलिए उसने बताया नहीं होगा।' . . .'उसे संकोच होता है। क्या वह नहीं जानती कि लाहौर में ही, जहाँ हम रहते हैं, ऐसी नौकरी करने में हमारी हेठी होती है। इसी-लिए शायद वह चुपचाप आ कर नौकरी करने लगी। अगर सहसा मोहिनी से हमारी भेंट न हो जाती तो हम महीनों इस बात का पता न

पा सकते और पिताजी इस बीच स्वस्थ हो कर लौट भी गये होते।'
. . .उसने पति को ऐसी ही दलीलों से समझा-बुझा दिया, पर वह स्वयं अपने आप को नहीं समझा सकी। उसकी माँ ने उसे क्यों नहीं बताया ?. . .क्यों नहीं बताया ? यदि वह गूजरी के दूध पर पली है तो क्या अपने माँ-बाप की बेटी नहीं ! उनके दुख से उसे दुख नहीं होता !
. . .और उसकी आँखें झलमला आतीं, पर वह बरबस आँसुओं को बहने से रोक लेती—बचपन के उल्लास-भरे दिन—जिनमें केवल उसके पिता का अपार स्नेह, उसकी याद के आकाश पर शुक्र तारे की तरह चमकता था—उसके सामने घूम जाते. . .भोगपुर में उसके पिता का ईंटों का भट्ठा था। खूब चलता था। गाँव में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। वह बहुत छोटी थी, इतने बच्चों के बाद तरस-तरस कर पायी गयी इकलौती सन्तान ! उसके पिता उसे गोद में उठाये फिरते। तब भोगपुर के 'चो'[1] पर रेलवे लाइन का पुल न बना था। बरसात में पहाड़ों पर वर्षा होती, तब 'चो' जैसे अपनी खोयी हुई जवानी पा कर उन्मत्त हो उठता और प्रायः रेलवे लाइन को वहा ले जाता। उसके मदमस्त नर्तन को देख कर चन्दा मुग्ध हो जाती। (वह खेतियाँ और गाँव बर्बाद भी कर देता है, तब यह बात वह नहीं जानती थी।) फिर ट्रांसमिशन देखने में तो उसे बड़ा मज़ा आता। जब भी लाइन बह जाती, वह अपने पिता को 'चो' पर चलने के लिए विवश कर देती। लाइन के नीचे से पत्थर और मिट्टी बह गये होते और लटकती हुई रेलवे लाइन पानी के थपेड़े खाती या कभी टूट कर दोनों किनारों से टेढ़ी लटक रही होती। चन्दा बड़े चाव से देखती कि किस तरह एक किनारे खड़ी गाड़ी से उतर कर यात्री सिर पर गठरियाँ, बिस्तर या ट्रंक उठाये, पायजामे और धोतियाँ कमर में खोंसे, एक दूसरे के सहारे परले किनारे खड़ी गाड़ी पर सवार होते।. . . दोपहर को शीशम के पेड़ की घनी छाया में बैठे वे हिसाब-किताब देख

१. पहाड़ी नाला।

रहे होते । वह खेलती-खेलती आ जाती, उनके रजिस्टर बन्द कर देती, कई बार उठा कर फेंक देती । उनकी गोद में चढ़ जाती और मचल उठती कि ठण्डी-ठण्डी हवा में, शीशम के पेड़ों की घनी छाया में, उसके साथ खेला जाय । उसके पिता चुपचाप उसके साथ जा कर लम्बी सड़क पर दोनों ओर लगे पेड़ों की छाया में खेलने लगते । ऐसे मौकों पर सदा उनके होंटों पर एक गम्भीर मुस्कान खेल जाती और हँस कर वे सिर्फ़ एक ही वाक्य दोहराते—'तुम बहुत तंग करती हो चन्दो !'

इसके बाद उनकी आर्थिक स्थिति यद्यपि बदलती गयी, चन्दा के पास उन्होंने दुख की छाया भी नहीं फटकने दी । उसे याद था, जब वह पाठ-शाला जाती थी तो उसके पास इतने गहने होते, जितने बड़ी लड़कियों के पास भी नहीं थे । छोटी उम्र से ही माँ उसके दान-दहेज़ की व्यवस्था करने लगी थी ।. . .फिर उसे वे दिन भी याद थे, जब कारबार में उसके पिता को घाटा आ गया और उसके वे गहने एक-एक कर के ग़ायब हो गये और उसने पाठशाला जाना बन्द कर दिया । उन्हीं दिनों उसके पिता को पैतृक मकान का हिस्सा बड़े भाई के हाथ बेचना पड़ा था. . .तभी से उसके पिता खोये-खोये से रहने लगे थे । उन्हीं दिनों उसकी ताई का देहान्त हो गया । उसकी माँ उसे ले कर बस्ती ग़ज़ाँ आ गयी और तभी ताया ने उसे स्कूल में दाखिल करा दिया था ।. . .उसे अपने विवाह की भी याद थी, जब उसके पिता ने सस्ते में अपना भट्ठा ममेरे भाई हरमोहन के हाथ बेच दिया था और उसकी शादी में दान-दहेज़ की कमी नहीं होने दी थी और स्वयं उस बुढ़ौती में बेकारी के अजगर का शिकार होना स्वीकार कर लिया था. . .

वही उसके स्नेही पिता जब इतने बीमार हुए कि होश-हवास तक खो बैठे तो उसे पता न दिया गया । वह अपने पति के साथ लाहौर की दिलचस्पियों के मज़े उड़ाती रही. . .चन्दा का गला भर आया और आँखें छलछला आयीं. . .

(उसने वाकई लाहौर की दिलचस्पियों के मज़े लिये हों, ऐसी बात

न थी। इतने दिन तो वह अपनी बीमार, कर्कशा और ईर्ष्यालु जेठानी की देख-भाल और तीमारदारी ही करती रही थी, पर अपने माता-पिता की दुखद स्थिति की तुलना में लाहौर में अपना वह अभाव-भरा जीवन भी उसे कहीं बेहतर लगता था—विशेषकर अपनी भावुकता की उस अतिरंजित स्थिति में।)

चन्दा अपनी माँ के पास ही गेट की छाया में आ कर खड़ी हो गयी। आँचल से उसने अपनी भर आने वाली आँखों को पोंछा। क्षण भर वह इसी दुविधा में खड़ी रही कि बैठे या न बैठे। उसे चलने का वैसा अभ्यास न था—विद्यालय से घर और घर से विद्यालय, और कभी जब उसके पति का मूड हो, तो ज़्यादा-से-ज़्यादा लक्ष्मी मैन्शन्ज़ या शिमला पहाड़ी या फिर साम्राज्ञी विक्टोरिया की मूर्ति अथवा लॉरेंस बाग़ तक—लेकिन वह भी शाम के वक्त। ऐसी चिलचिलाती और उमस-भरी दोपहरी में वह कभी इतना नहीं चली थी और बेहद थक गयी थी। उसका जी हुआ—माँ ही की तरह धम् से धूल में बैठ जाय, पर उसका पति खड़ा था और उसके शरीर पर कीमती साड़ी थी—उसे माँ की तरह बैठने का साहस नहीं हुआ। तो भी वह खड़ी न रह सकी। अच्छी तरह साड़ी को समेट, वह पैरों के बल चहारदीवारी के साथ सट कर बैठ गयी और पुनः आश्वस्त होने के लिए उसने अपनी माँ से वही प्रश्न किया, जो वह पिछले हफ़्ते में न जाने कितनी बार कर चुकी थी :

'माँ, सच कहो, अब पिताजी को बिलकुल होश है ?'

चेतन की सास जैसे सोते-सोते जगी।

'हाँ बच्ची, पिछले बृहस्पत को जब मैं गयी थी तो तुम्हारे पिता सब को पहचानते थे। चौकीदार और सन्तरी के साथ हँस-हँस कर बातें कर रहे थे।'

चन्दा ने फिर पूछा, 'माँ उनसे मशक्कत तो नहीं करायी जाती ?'

'नहीं बेटा, वे काम करते ही नहीं। चौकीदार ही उस दिन कह रहा था कि और सब काम करते हैं, पण्डितजी नहीं करते।'

'और माँ उनकी सेहत कैसी है ?'

'पहले से तो अच्छे ही दीखे बेटी !'

और चन्दा फिर अपने विचारों में गुम हो गयी। तीनों चुपचाप अपने-अपने ध्यान में मग्न सुस्ताते रहे। फिर चेतन की सास लम्बी साँस भर कर और घुटनों पर हाथ रख कर उठी। उसने दूध का लोटा और बादामों की पोटली उठायी और तीनों चल पड़े।

०

सामने पागलखाने का मज़बूत सीखचों वाला, बड़ा ऊँचा, मेहराबदार गेट अभी बन्द था। चेतन ने अपनी सास और पत्नी को वहीं एक पेड़ की छाया में रुकने को कहा और स्वयं जा कर सन्तरी से पूछा तो मालूम हुआ कि अभी उसके खुलने में देर है। तब उसने डॉक्टर का पता किया। सन्तरी ने बताया कि लंच के बाद अभी तक नहीं आये। चार बजे के बाद आयेंगे। चेतन वापस आ गया और तीनों दरवाज़े के सामने पागलखाने के विशाल अहाते में बने छोटे-से बाग़ीचे में आ कर बैठ गये।

दिन ढल रहा था। हलकी-सी हवा बहने लगी थी। पेड़ों की घनी छाया और घास का मखमली लॉन। वहाँ जाते ही पसीने से तर उनके शरीरों में ठण्ड की हलकी-सी सिरहन दौड़ गयी।

चेतन की सास ने दूध का लोटा एक ओर रखा, बादामों की पोटली दूसरी ओर और वह घास में लेट गयी। चेतन ने बैठने से पहले जेब से रूमाल निकाला। पहले उससे मुँह, गर्दन, बालों और हैट के अन्दर बुर्जी काग़ज़ का पसीना पोंछा, फिर उसे ज़रा हवा में सुखा कर उससे जूते झाड़े। तब उसे घास पर बिछा कर वह उस पर बैठ गया और हाथ उसने पीछे टिका लिये। उसके बराबर ही चन्दा साड़ी समेट कर बैठ गयी।

चेतन की सास चुपचाप आम के पेड़ पर लगे हरे-पीले, कच्चे-पके आमों को देखती हुई भविष्य की कल्पनाओं में डूब गयी—यदि सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख का नियम है तो इतना दुख भोगने के

बाद सुख के दिन अवश्य आयेंगे। हफ़्ते में दो बार उसे अपने पति से मिलने की आज्ञा थी। तब नौकरी कर के जो वह बचा पाती, उससे बादाम खरीद, उनकी गिरियाँ निकाल, दूध और मिश्री ले कर दोपहर की कड़ी धूप में पैदल इतनी लम्बी, सपाट, तपती-जलती सड़कें पार कर आती थी और बड़े प्रेम तथा श्रद्धा से अपने पति को बादाम खिला, दूध में मिश्री घोल कर पिलाती थी (चीनी की अपेक्षा मिश्री की तासीर ठण्डी होती है, इसलिए वह सस्ती चीनी के बहले महँगी मिश्री खरीद कर लाती।) अच्छे पौष्टिक भोजन की कमी और निकट सम्बन्धियों के दुर्व्यवहार के कारण उसके पति के दिमाग़ को खुश्की चढ़ गयी है, इस बात का उसे पक्का विश्वास था। जिन्हें सदा दूध, मलाई, दही और छाछ मिली हो, उन्हें इतने दिन फ़ाकों से रहना पड़े, बेघर-बेदर हो कर, किसी दूसरे काम में सफलता न पा सकने के कारण सगे-सम्बन्धियों की बदली हुई आँखों और व्यवहार के अपमान की निरन्तर सुलगती आग में तन-मन जलाना पड़े—वे पागल न होते तो आत्महत्या कर लेते। वह उन्हें पाव-पाव भर गिरियाँ खिला कर, सेर-सेर भर दूध पिला जाती और कल्पना करती कि जब से अच्छे हो कर बाहर आ जायेंगे तो कुछ रुपया बचा कर उन्हें पंसारी की दुकान खुलवा देगी और ज़िन्दगी के जो थोड़े दिन शेष हैं, आराम से गुज़र जायेंगे. . .इन लगभग दो महीनों में अपनी तपस्या के फलस्वरूप उसे पूरा यकीन हो गया था कि उसके पति को आराम आ रहा है। पिछली बार जब वह आयी थी तो उन्होंने उसे पहचान लिया था और जब उसने बताया था कि उनकी लड़की और दामाद आते इतवार को उनसे मिलने आयेंगे तो वे बड़े खुश हुए थे। . . .और वहाँ पाग़लखाने के बाग़ीचे में आम की घनी छाया के नीचे घास पर लेटे-लेटे वह कल्पना कर रही थी कि आज वे उनको घर ले जायेंगे। उसने सेठानी से बात कर रखी थी। सेठानी ने उसे विश्वास दिलाया था कि दुकान खोलने के लिए वह रुपये से सहायता करेगी। सेठ ने कहा था कि जब तक दुकान नहीं शुरू होती, वे उन्हें अपने साथ

दुकान पर ऊपर के काम के लिए रख लेंगे और चेतन की सास सन्तुष्ट थी। उसने यह बात अपने दामाद को नहीं बतायी थी। उसे वह कुछ सनकी लगता था। वह उससे बहुत डरती थी। वह रास्ते में पल भर को भी नहीं बैठा और मखमली घास के बावजूद इतनी दूर से चल कर आने के बाद भी नहीं लेटा। हाथ पीछे टिकाये, आसमान में निगाहें गाड़े न जाने वह क्या सोच रहा था। एक बार पण्डितजी बाहर आ जायें, फिर जैसे होगा, वह उसे समझा लेगी। वह सेठ-सेठानी का आश्रय नहीं छोड़ेगी। न जेठ की सहायता लेगी, न दामाद का पैसा खर्च करायेगी। वह उन्हें दे नहीं सकती तो क्या ऐसी भी गयी-गुज़री हो गयी कि धी-जमाई[1] के सामने हाथ पसारे. . .

इससे ज़रा परे अपनी पत्नी के बराबर टाँगें पसारे, हाथ पीछे टिकाये बैठा हुआ चेतन मन-ही-मन उस सम्वाद को दोहरा रहा था, जो वह अपने ससुर को देखने के बाद हस्पताल के इन्चार्ज डॉक्टर से करना चाहता था। उसके पास सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ तो थीं, इस पर भी वह जानता था कि उसे डॉक्टर को बताना होगा, क्यों पण्डितजी को पागल-खाने से निकाल कर घर ले जाना ज़रूरी है और वह कई तरह की युक्तियाँ, अंग्रेज़ी के चुस्त वाक्य अपने मन में दोहरा रहा था। जब कई बार और कई तरह, अपने मन में काट-छाँट कर, उसने अन्तिम वर्शन तैयार किया और फाटक तब भी न खुला तो उसका मन पिछले हफ़्ते की घटनाओं और परेशानियों में भटक गया। उसने और सब प्रबन्ध कर लिया था, लेकिन वह अपने ससुर के लिए मौके की जगह कोई दुकान नहीं खोज पाया था—पाँच-सात रुपये महीने के किराये की दुकान! उसका ससुर उसके साथ रहेगा, इसका उसे ज़रा भी भरोसा नहीं था। उसके रहने-खाने का क्या प्रबन्ध होगा, यह वह तय न कर पाया था। सहसा सीधे बैठ कर उसने दायीं ओर लेटी अपनी सास ने पूछा, 'माँ,

---

१. लड़की और दामाद।

आज हम चन्दा के पिताजी को ले जायेंगे तो वे रहेंगे कहाँ ?'

'तुम चिन्ता न करो बेटा। सेठ की बड़ी हवेली है। बाल-बच्चे हैं नहीं, बहुत से कमरे खाली पड़े हैं। सेठानी ने एक कमरा मुझे दे रखा है, उन्हें कोई तकलीफ़ नहीं होगी।'

चेतन आश्वस्त हो गया और जाने कैसे पिछले दिनों की स्मृतियों में उसकी याद उस बरसाती भीगी रात पर अटक गयी, जब शाम को उसने अपने ससुर के पागल होने का समाचार सुना था; वह रात के दो बजे बरसते पानी में घर पहुँचा था और इससे पहले कि वह दस्तक देता, अन्दर बत्ती जल उठी थी। उसकी पत्नी जाग रही थी। जब वह रोते-रोते उससे लिपट गयी थी तो एक अपार करुणा, जिसे वह सिवा प्यार के दूसरा नाम न दे पाता था, चेतन के अणु-अणु में भर गयी थी और दो वर्षों में पहली बार अपनी पत्नी के संसर्ग में उसने उस शारीरिक पुलक का आभास पाया था, जिसका संकेत कविराज ने शिमला छोड़ते समय उसे अपने उपदेश में दिया था और जो शब्द चेतन के दिमाग़ में हमेशा के लिए अंकित हो गये थे।

'हमारे देश में अस्सी प्रतिशत स्त्री-पुरुष पाँच-पाँच बच्चे पैदा करने पर भी नहीं जान पाते कि वैवाहिक जीवन का यथार्थ आनन्द क्या है और स्त्री-पुरुष का सफल संसर्ग किस सुख और पुलक की सृष्टि कर सकता है। सफल वैवाहिक जीवन सफल यौन-सम्बन्ध पर निर्भर है और सफल यौन-सम्बन्ध स्वस्थ शरीर और पति-पत्नी के संगी भाव पर !'

और शिमला से चलते वक्त चेतन ने तय किया था कि वह अपनी पत्नी के साथ उस पुलक और आनन्द की अनुभूति पायेगा, जिससे वह दो वर्षों के वैवाहिक जीवन के बावजूद वंचित था।

'हमारे देश के अधिकांश वासी उस आनन्द को नहीं जानते,' कविराज ने कहा था—'भावनाहीन मशीन के पुर्ज़ों की तरह, वासना की करेण्ट से प्रचालित, वे उस सम्बन्ध को निभाये जाते हैं।'

और चेतन के सामने अपनी पत्नी के निकट संसर्ग में बिताये कई

अवसर घूम गये। कहाँ था उस सम्बन्ध में संगी भाव! वह तो अपनी पत्नी के शरीर तक को नहीं जानता था, क्योंकि दिन की रोशनी अथवा लैम्प या बिजली के प्रकाश में उसने उसे देखा ही नहीं था। उसकी पत्नी ने कभी उसका साथ नहीं दिया था। प्रतिरोध नहीं किया था, यह ठीक है, लेकिन पलट कर उसने कभी उसे प्यार नहीं किया था।... और उसका अपना प्यार—वह कभी करुणाजन्य रहा था, कभी क्रोध के बाद पश्चाताप से जनित और कभी वासना की करेण्ट से परिचालित। उसकी पत्नी सदैव लज्जालु और निरपेक्ष बनी रही थी।

लेकिन यदि पत्नी निरपेक्ष न हो, लज्जालु भी न हो, उसका कुछ भी न छिपा हो और वह पहल करने की भी क्षमता रखती हो, तब क्या वैसा संगी भाव उत्पन्न हो सकता है, जो अपार पुलक की सृष्टि कर सके? चेतन को इसमें सन्देह था। शरीरों के साथ दिलों और दिमाग़ों का एकाकार होना भी अनिवार्य है। तन का तन से और मन का मन से एकाकार हो जाना—वही सम्मिलन उस सुख की सृष्टि कर सकता है, जिसकी अनुभूति उस रात चेतन ने पायी थी और जिसकी स्मृति से वहाँ बाग़ में अध-बैठे, अध-लेटे उसे रोमांच हो आया था।

अजीब बात है कि उनके तन और मन का यह सम्मिलन उतना काम-वश नहीं था, जितना एक ओर उस बुरी ख़बर से उपजने वाले दुख और भय और दूसरी ओर उस स्थिति से उत्पन्न होने वाली अपार करुणा तथा सहानुभूति के कारण—और उस रात के तीसरे पहर जब बाहर केवल टपटपाती बूँदियों के सिवा कोई आवाज़ नहीं थी, और अन्दर अपार करुणा और स्नेह से भर कर उसने अपनी पत्नी के आँसू अपने होंटों से पोंछ दिये थे और उसके पिता की ओर से उसे आश्वस्त कर दिया था और दो वर्षों में पहली बार चन्दा ने कृतज्ञता से अभिभूत हो कर उसे बाँहों में भर कर चूम लिया था तो उसके बाद उसकी पत्नी का जो रूप उसके सामने आया था, वह उसके लिए एकदम नया था। न उसने बत्ती बुझाने पर ज़ोर दिया था, न वह लज्जा से निस्पन्द बनी रही

थी। कभी वह उसे ठहरे-निथरे पानी की बेकिनार झील-ऐसी लगी थी, जिसमें वह डूब कर अपने उत्तप्त मन को शान्त कर लेता था। लेकिन उस रात चन्दा उसे उत्तरी ध्रुव के उस बर्फ़ानी घर ऐसी लगी, जो चर्बी की बत्ती से रोशन और गर्म हो और बाहर की ठण्ड में अजानी ऊष्णता देता हो। जो धीरे-धीरे पिघलता हुआ उसे अपने में समो लेना चाहता हो।. . .

यह फ़िनॉमिना चेतन की समझ से परे था कि चन्दा के पिता के पागल होने की ख़बर, जो उन्हें अन्तरतम तक हिला गयी थी—उन दोनों के शरीरों को—उनके हृदयों और आत्माओं तक को कैसे एकदम मिला गयी। और यह उस वक्त, जब चन्दा का पिता पागलख़ाने में था, उसकी माँ एक सेठ के यहाँ बर्तन मलने पर विवश थी, उसका मायका उससे छिन गया था, वह भयाक्रान्त और दुखी थी!. . .तो क्या दो शरीरों के उत्कट आकर्षण के अलावा, वासना अथवा प्रेम के अलावा दुख और उसमें भागीदारी भी उस संगी भाव को पैदा कर उस पुलक की सृष्टि कर सकती है?. . .चेतन कुछ भी समझ नहीं पा रहा था—केवल उस रात की सुखद स्मृति में वह उस क्षण अपने इर्द-गिर्द से कहीं बहुत दूर चला गया था।

उसके पास ही आलथी-पालथी मारे बैठी उसकी पत्नी की निगाहें फाटक पर टिकी थीं, जिस पर एक सन्तरी पहरा दे रहा था और वह सोच रही थी—इसके अन्दर न जाने कितनी बेगिनती कोठरियाँ हैं और न जाने कौन-सी कोठरी में उसका पिता पागल बना कर बन्द कर दिया गया है। न जाने किस तरह इस भयानक गर्मी में अपनी कोठरी में लेटा वह अपने बीते दिनों की याद कर रहा है! उसे ज़रूर ही अपनी लड़की की याद आती होगी। वह ज़रूर उसे कठकरेज समझता होगा। इतने दिनों से पिता पागलख़ाने की जेल में बन्द है और बेटी उसे देखने तक नहीं आयी!. . .और बेटी को इस सब का पता भी नहीं। किसी ने उसे ख़बर ही नहीं दी।. . .चन्दा का गला भर आया और वह आँचल में

मुँह छिपा कर चुपचाप रोने लगी।

०

तभी पागलखाने के घण्टे में चार का गजर वजा। बड़ा फाटक खुल गया। पागलों की एक टोली, मोटे, खुरदरे कपड़ों की लम्बी-ढीली कमीजें और टखनों से ऊँचे तंग पायजामे पहने निकली—कोई अपने आप से बातें कर रहा था, कोई हवा में कत्ले-आम मचा रहा था, कोई यूँ ही अपने आप हँसता अथवा बातें करता जा रहा था। उनके साथ एक सन्तरी था, जिसने उन्हें एक जगह से गमले उठाने का आदेश दिया। सब ने एक-एक गमला उठा लिया और वह सन्तरी उन्हें दूसरी जगह रखवाने के लिए चला गया। फिर दूसरी टोली निकली और सन्तरी के आदेश पर गमलों की निराई करने लगी। दो पागल क्यारियों में पानी देने लगे। . . .सब-के-सब पागल थे। अजीब-अजीब हरकतें करते थे। फिर भी हिले हुए पशुओं की तरह सब काम किये जाते थे। देखते-देखते चन्दा विह्वल हो उठी। उसका हृदय जैसे कण्ठ में आ गया। उसके पिता को भी ज़रूर काम करना पड़ता होगा. . .और ये ज़ालिम सन्तरी—जाने कैसे मार-मार कर इन पागलों को काम पर लगाते हैं?—बिल्कुल ऐसे ही, जैसे जंगली जानवरों को—जो दिमाग़ से काम नहीं ले सकते, फिर भी दण्ड के भय से काम सीख जाते हैं।. . .वह अपने पिता को एक पल भी यहाँ नहीं रहने देगी।. . .यह सोचते ही, पीछे हाथ टिकाये, आकाश में मुटुर-मुटुर तकते हुए किसी गहरी सोच में तल्लीन अपने पति का कन्धा हिला कर उसने कहा, 'सन्तरी से कहिए, हमें ज़रा उनसे मिला दे।'

चेतन चौंक कर उठा। उसने नीचे घास पर पड़ा रूमाल उठाया, जिसमें बैठने के कारण एक गढ़ा-सा बन गया था। झाड़ कर उसने फिर उससे अपने जूते पोंछे और अकारण ही उसे झाड़ कर और तह कर पत न की जेब में रख लिया। अपना कालर और टाई ठीक कर, उसने स र पर हैट रखा, ऊपर की जेब से रेशमी रूमाल निकाल कर हाथ में

लिया और उससे अपने चेहरे का पहले से सूखा हुआ पसीना सुखाने का उपक्रम-सा करता हुआ पागलखाने के फाटक तक गया। उसने सन्तरी को अपना परिचय दिया और कहा कि उसे पण्डित दीनबन्धु से मिलना है। यह कहते हुए तनिक ओट में हो कर उसने एक रुपया सन्तरी के हाथ में थमा दिया।

चार दीनबन्धु उस समय पागलखाने में थे। सन्तरी ने सूची देख कर चौकीदार को बताया कि जालन्धर वाले पण्डित दीनबन्धु को बुला लाये। इस बीच कुछ अन्य पागलों के रिश्तेदार भी आ गये थे और सन्तरी दूसरे पागलों को बुलवा रहा था। रिश्तेदारों को गेट के अन्दर जाने की इजाज़त नहीं थी। सीख़चों के बाहर से वे अपने सम्बन्धी पागलों को देख या उनसे बातचीत कर सकते थे। पर चेतन, उसकी पत्नी और उसकी सास को सन्तरी ने ज़रा-सा गेट खोल कर अन्दर कर लिया। चेतन अपनी पत्नी के साथ एक बेंच पर बैठ गया। उसके लाख ज़ोर देने के बावजूद उसकी सास वहाँ धरती पर पैरों के बल सहमी-सी बैठ गयी। तभी चौकीदार के साथ उन्होंने पण्डितजी को आते देखा। चेतन ने मार्क किया—उसके ससुर ने भी दूसरे पागलों-ऐसे मोटे, खुरदरे कपड़े पहन रखे हैं। कई दिन से हजामत न बनी होने के कारण उनके चेहरे पर दाढ़ी बढ़ आयी थी। दूर से वे उसे पहले-ऐसे ही स्वस्थ लगे। उनके चेहरे पर वही मूकता थी और उनकी आँखें शून्य में टिकी थीं।

चन्दा का जी हुआ अपने पिता से जा कर लिपट जाय। पर जब उसे देख कर भी उन्होंने नहीं देखा तो जाने क्या गोला-सा अन्दर से उठ कर उसके गले में आ गया और उसने आँचल से आँखें ढाँप लीं।

जब पण्डितजी निकट आ गये तो चौकीदार ने कहा, 'बैठ जाओ!'

वे उन लोगों के सामने दीवार के साथ ज़मीन पर पैरों के बल बैठ गये और चूतड़ उन्होंने फ़र्श पर टिका दिये। फिर चौकीदार तथा उन तीनों की ओर देख कर वे अकारण हँस दिये।

चेतन की सास ने बादामों की पोटली खोल कर गिरियों का काग़ज़ उनकी ओर बढ़ाया।

तब चेतन ने उन्हें ध्यान से देखा और उसने जाना कि उसके ससुर पहले से आधे भी नहीं रहे। उनका चेहरा, जो बढ़ी हुई दाढ़ी के कारण दूर से भरा-भरा लगता था, चेतन को एकदम पीला और विवर्ण लगा। उनके दाँतों पर पीली-पीली मैल चढ़ी हुई थी और जब उसकी सास ने बादामों की पोटली उनके आगे बढ़ायी तो चेतन ने देखा—बादाम लेते हुए उसके ससुर का हाथ काँप रहा है।

पण्डितजी ने दो-तीन फंकों ही में मकई के भुने हुए दानों की तरह गिरियाँ चबा डालीं। तब चेतन की सास आँचल से मिश्री की डली खोल कर दूध में घोलने लगी।

लेकिन चन्दा चुप न रह सकी। हृदय में अनायास उठ आने वाले आवेग को दबा कर और आँखें पोंछ कर, उसने अपनी माँ से पूछा, 'माँ क्या ये हमें पहचानते नहीं ?'

अपनी नीम-अन्धी आँखों से अपने पति को देख कर चेतन की सास ने कहा, 'क्यों नहीं बेटी !' और फिर सिर का पल्ला तनिक नीचे कर उसने चन्दा की ओर संकेत करते हुए अपने पति से पूछा, 'क्यों इसको पहचानते नहीं ?'

'पहचानता क्यों नहीं।' हँसते हुए पण्डितजी ने कहा।

'भला कौन है यह ?'

'मेरी बीवी, और कौन है !'

चन्दा ने फिर आँचल से मुँह ढाँप लिया और चेतन ने उसकी सिसकी सुनी।

तब चेतन की सास ने उसकी ओर संकेत किया और पूछा, 'भला यह कौन है ?'

'हमारे भाई ही तो हैं।' यह कह कर पण्डितजी ने सब की तरफ़ इस तरह देखा, जैसे कह रहे हों, क्या तुम लोगों ने मुझे पागल समझ लिया

है। और बोले, 'यही तो मुझे यहाँ पागलखाने में छोड़ गये हैं।'

रोनक्खी-सी हो कर चेतन की सास ने कहा, 'क्या मुझे भी नहीं पहचानते ?'

'वाह !' चेतन के ससुर अपने पीले दाँत दिखाते हुए कुछ अजीब-सी करुणा से हँसे, 'अपनी माँ को भी न पहचानूँगा, जो मुझे रोज़ बादाम खिलाती और दूध पिलाती है।'

यह कहते हुए उन्होंने ज़ोर से ठहाका लगाया और दूध का बर्तन अपनी पत्नी के हाथ से लगभग छीन कर गट-गट पीने लगे।

पाँचवाँ खण्ड

तैंतीस

दूसरे दिन चेतन नोट-बुक में लिख रहा था :

'मैं क्या करूँ ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। स्थिति वहीं है, जहाँ मोहिनी से मुलाकात की शाम थी। मेरा ससुर धुत्त पागल है, मेरी सास नज़दीक ही सेठ वीरभान के घर चौका-बर्तन कर, सात रुपये महीना पा रही है और मैं स्टेशन मास्टर पण्डित शादीराम का बेटा ही नहीं, लाहौर का प्रसिद्ध जर्नलिस्ट और अफ़सानानिगार हूँ। मेरी सास कभी मेरे यहाँ न आयेगी और न ही मैं इस सूरते-हाल[1] से समझौता कर सकूँगा। मैं क्या करूँ। मुहल्ला छोड़ दूँ ? शहर छोड़ दूँ ? मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ !'

कापी को वहीं घुटनों पर रखे चेतन ईज़ी चेयर पर पीछे को लेट गया। उसके दिमाग़ में तूफ़ान मचा था और उसे शान्त करने का कोई उपाय उसे सूझ न पा रहा था।

यूँ तो अपने ससुर को देख कर ही उसे पता चल गया था कि वह एकदम पागल है और उसके ठीक होने की

१. वस्तुस्थिति।

बात उसकी सास की कल्पना में चाहे हो, यथार्थ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और पागलखाने के बड़े मेहराबदार सीखचों वाले गेट से बाहर निकलते ही चेतन के जी में आया था कि टाई को उतार, जेब में रख ले; कमीज़ के कालर का बटन खोल दे; कोट को उतार कर कन्धे पर डाल ले; हैट को बाँह में लटका ले; मोज़े उतार कर पतलून की जेबों में ठूँस ले; जूतों के तस्मे ढीले कर ले और कमीज़ को पतलून से बाहर निकाल कर शाम की अपेक्षाकृत ठण्डी हवा का आनन्द लेता हुआ वापस लौटे ! लेकिन ऐसा करने से पहले, महज़ अपनी तसल्ली के लिए, वह उसी तरह सूट-बूट कसे और बड़ी नफ़ासत से हैट दो उँगलियों और अँगूठे की मदद से थामे इंचार्ज डॉक्टर से मिला था। उसने सब चिट्ठियाँ नहीं, केवल हैल्थ मिनिस्टर के सचिव की चिट्ठी (जो उसने सावधानी के लिए बाहर की जेब में रख ली थी) डॉक्टर को दी थी और कहा था कि वह घर से तो यह तय कर के चला था कि अपने ससुर को पागलखाने से ले जायेगा, पर शायद अभी उनकी बीमारी दूर नहीं हुई, क्योंकि वे अपनी पत्नी और बेटी तक को पहचान नहीं सके।

तब डॉक्टर ने कहा था कि वे ठीक होते तो बिना किसी सिफ़ारिश के उन्हें डिस्चार्ज कर दिया जाता।

'मेरी सास का खयाल था कि बड़े भाई ने दुश्मनी करके उन्हें पागलखाने में दाखिल करा दिया है ?'

'दाखिल तो किसी को यहाँ कराया जा सकता है, पर वह पागल न हो तो उसे रखा नहीं जा सकता। आपके ससुर का मर्ज़ ला-इलाज है। वे सिफ़्लेटिक[1] ही नहीं हैं, उनका दिमाग़ भी डैमेज्ड[2] है। उन्हें बहुत सेडेटिव्ज़[3] दिये गये हैं, वरना वे वायोलेण्ट[4] हो जाते।'

सुन कर चेतन ने डॉक्टर से प्रार्थना की थी—जैसे भी हो, उन्हें

---

१. उपदंश के रोगी। २. क्षत-विक्षत। ३. नसों को सुलाने वाली दवाइयाँ। ४. उग्र।

इस काबिल कर दिया जाय कि उनकी पत्नी उन्हें वापस उनके घर जालन्धर ले जाय। उसने डॉक्टर को बताया कि उसकी सास जालन्धर से आ कर लाहौर बैठी है। वे कोई धनी-मानी लोग नहीं हैं। खर्च चलाने के लिए उसे परेशानी का सामना करना पड़ रहा है। वह पुराने ख़याल और ऊँचे ब्राह्मण कुल की है। इसी कारण अपने दामाद से किसी तरह की आर्थिक सहायता नहीं ले सकती और वह बहुत परेशान है। उसका ससुर कुछ भी ठीक हो जाय तो वह अपनी सास के साथ उसे फ़ौरन जालन्धर भेज दे।

डॉक्टर ने भरसक प्रयास करने का वचन दिया था। कुछ नयी औषधियों के प्रयोग की बात भी की थी, लेकिन कुल मिला कर उसे यही समझाया था कि पण्डितजी के जल्दी ठीक होने की सम्भावना नहीं, हस्पताल से जाने के बाद वे फिर वायोलेण्ट हो सकते हैं और किसी का सिर फोड़-फोड़वा सकते हैं, इसलिए उनकी मानसिक अथवा शारीरिक स्थिति में प्रकट कुछ सुधार भी दिखायी दे तो डॉक्टर की हैसियत से वे उन्हें हस्पताल से ले जाने की राय नहीं देंगे। 'आप डॉक्टर नारंग के सेक्रेट्री की चिट्ठी लाये हैं,' उन्होंने कहा था, 'इसलिए मेरी ज़िम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। मैं डिस्चार्ज कर दूँगा तो दस दिन बाद आपको फिर पुलिस की सहायता से उन्हें यहाँ लाना पड़ेगा। आने-जाने का खर्च और परेशानी ऊपर से होगी। फिर अगर कोई मर्डर-वर्डर हो गया तो पुलिस आपको ही नहीं, हमें भी परेशान करेगी। हमारा जवाब-तलब होगा कि यदि केस ठीक नहीं था तो हमने डिस्चार्ज कैसे दे दिया।'

चेतन ने डॉक्टर की इस राय के लिए उसे बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और फिर कभी आने, हस्पताल और उसकी कार्य-प्रणाली देखने और उस पर एक सुन्दर लेख अपने पत्र में लिखने की बात कह कर, हैट को ज़रा-सा सिर से छुलाता हुआ, वह चला आया था।

चन्दा और उसकी माँ वहीं आमों के नीचे उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उसे वापस आते देख कर वे पार्क से बाहर सड़क पर आ गयीं और

जब वह निकट आ गया तो उसकी सास ने पूछा, 'क्या कहा डॉक्टर ने ?'

चेतन का मन हुआ, कहे कि वे नितान्त पागल हैं और उनका मर्ज़ ला-इलाज है। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा और चुपचाप उनके आगे-आगे चलने लगा।

चन्दा समझ गयी कि डॉक्टर ने कोई उत्साहवर्धक बात नहीं कही, इसीलिए उसका पति खामोश और खिन्न है, लेकिन चेतन की सास ने आगे बढ़ कर उसके कन्धे को छूते हुए फिर वही प्रश्न दोहरा दिया।

तब अपने क्रोध और खीझ पर बरबस संयम रखते हुए चेतन ने, सिर्फ़ इतना कहा, 'डॉक्टर उन्हें अभी घर वापस भेजने के खिलाफ़ है। अभी काफ़ी दिन उनका इलाज होगा।'

'पर वे पहले से ठीक तो हो रहे हैं। क्या कहा डॉक्टर ने ?'

चेतन ने इसका कोई जवाब न दिया था और कदम बढ़ा लिये थे।

उसकी सास पीछे घिसटती हुई, उत्तर की प्रतीक्षा में कुछ क्षण तेज़-तेज़ चलती रही थी, फिर ढीली पड़ गयी थी और दोनों माँ-बेटी साथ-साथ चलने लगी थीं।

०

चेतन का मन इतना खिन्न था कि डॉक्टर से मिल कर आने के बाद उसने न टाई खोली, न मोजे उतारे, न जूते ढीले किये, न कमीज़ पतलून के बाहर निकाली। उसी तरह कसा-कसाया तेज़-तेज़ चलता, अपनी सास और पत्नी के लिए रुकता और उनके निकट आने पर फिर कदम बढ़ाता हुआ, उनसे एक भी बात किये बिना वह चला आया था। दयालसिंह कॉलेज के पास से उसकी सास गन्दे नाले को मुड़ गयी थी कि उधर से गोविन्द गली को चली जायेगी। तब उसने एक जाते हुए ताँगे को आवाज़ दी थी। ताँगा रुक गया था तो उसने कृष्णा गली तक के पैसे तय कर अपनी पत्नी को उसमें बैठने का आदेश दिया था। जब चन्दा बैठ गयी थी तो वह उचक कर अगली सीट पर जा बैठा था और कृष्णा गली नम्बर-१ के बाहर आ कर उतर गया था। ताँगे वाले को पैसे

दे कर विना अपनी पत्नी से एक भी बात किये, वह तेज़-तेज़ चलता घर पहुँचा था। बैठक का दरवाज़ा और खिड़कियाँ खोल, विना कपड़े बदले वह बिस्तर पर ढह गया था।

उसकी पत्नी ने अन्दर कमरे में जा कर रेशमी साड़ी उतार, काम-काज की एक मैली-सी धोती पहन ली थी। फिर चुपचाप वह बैठक में आयी थी। उसने अपने पति के जूते और मोज़े उतारे थे। कोट उतारने लगी तो चेतन ने चुपचाप बाँहें पीछे को फैला दी थीं और उसने कोट खींच लिया था। फिर चन्दा ने उसकी टाई खोली थी और दोनों को खूँटी पर टाँग दिया था। तब धीरे से उसने कहा था, 'आप बहुत थक गये हैं, गर्मी भी है, यह कसी हुई पतलून उतारिए, नहाइए और तहमद पहन, फिर आराम कीजिए।'

चेतन ने कोई जवाब न दिया था। पत्नी थकी होने के बावजूद मुँह-हाथ धो कर रसोई में जुट गयी थी और चेतन ने पतलून के बटन ढीले कर, टाँगें ऊपर कर ली थीं और ठीक से लेट गया था। फिर क्षण भर बाद उसने दीवार की ओर करवट बदल ली थी।. . .उसकी खिन्नता कई गुना बढ़ कर उसके मन-प्राण पर छा गयी थी। उसने अपने ससुर के ठीक होने को ले कर कैसी-कैसी योजनाएँ बनायी थीं; कितने दिन से भाग-दौड़ करता फिरा था, बेकार ही सूट पर पैसे खर्च किये थे। यदि उसे पहले ही से पता होता कि उसके ससुर का मर्ज़ ला-इलाज है तो वह इतना क्यों परेशान होता. . .उसकी सारी योजनाएँ, सारे सपने, यथार्थ स्थिति के एक हलके-से स्पर्श से हवा हो गये थे और समस्या वहीं-की-वहीं थी और उसकी तोप साहित्यकारी और पत्रकारी किसी काम न आ रही थी, बल्कि उसके मार्ग की बाधा बनी हुई थी। यदि वह शहर का छोटा-मोटा (यों वह अपने आप को खासा बड़ा समझता था) कथाकार और पत्रकार न होता, कोई छोटा-मोटा क्लर्क या दुकानदार होता तो शायद वह यों परेशान न होता। वह क्या करे, कौन-सी सूरत निकाले! उसकी समझ में कुछ न आ रहा था। उसका

दिमाग़ एक दलदल-सा बना हुआ था, जिसमें कोई भी विचार स्थिर न हो रहा था। और वह उदास, परेशान, खीझा और थका हुआ लेटा था। जाने कितनी देर वह उसी तरह लेटा रहा। पसीने से उसके कपड़े तर हो गये थे। बाहर अँधेरा उतर आया था। बत्तियाँ जल आयी थीं। कमरे में भी गहरा अँधेरा छा गया था, पर बिना रोशनी जलाये चेतन उसी तरह दीवार की ओर को मुँह किये निस्पन्द लेटा पड़ा था।

तभी चन्दा ने आ कर बत्ती जलायी थी, कहा था कि खाना तैयार है, दफ़्तर का समय हो गया है, वह उठे, नहा कर खाना खा ले।

चेतन चुपचाप उठा था। उसने पतलून उतार कर तहमद पहन ली थी। नहाने को उसका जी न हुआ था। वैसे ही वह रसोई में जा बैठा था और खाना खा कर दफ़्तर चला गया था।

०

रात जब वह लौटा था तो आकाश पर बादल घिरे हुए थे, तेज़ ठण्डी हवा झोंके-दर-झोंके बह रही थी। चेतन ने डेवढ़ी में पाँव रखा था तो बूँदियाँ बरसने लगी थीं। दिन की थकी-हारी उसकी पत्नी गहरी नींद सो गयी थी। उसने दो-एक बार दस्तक दी तो वह उठी। उसने दरवाज़ा खोला। अन्दर जा कर चेतन ने चिटखनी लगायी, बत्ती बन्द की और चुपचाप बिस्तर पर जा लेटा।

लेट गया, लेकिन बेहद थका होने के बावजूद उसे नींद नहीं आयी। चन्दा प्रायः पड़ते ही सो जाती थी। लेकिन कुछ देर तक अपने बिस्तर पर लेटे रहने के बाद चेतन को लगा कि वह भी जाग रही है। एक-दो बार चेतन ने उसके करवट लेने और लम्बी साँस खींचने की आवाज़ सुनी। लेकिन वह अपने विस्तर पर निस्पन्द पड़ा कमरे के अँधेरे में तकता रहा। एक-दो बार उसके जी में आया, अपनी पत्नी को इस तरह छुए कि वह उसके बिस्तर पर आ जाय, लेकिन वह निश्चल पड़ा रहा। पड़ा रहा और टुकुर-टुकुर अंधेरे में तकता रहा। सात दिन पहले बरसती रात के उस करुणा-भरे क्षण में उसकी पत्नी उसके कितने

निकट आ गयी थी । वे दोनों एक दूसरे में जैसे विलीन हो कर एक हो गये थे और अब सात दिन बाद ही वह उससे कितनी दूर हो गयी थी ! वह नहीं हो गयी थी, चेतन ही दूर खिच आया था, जैसे उसके पिता के पागल होने और सेठ वीरभान के यहाँ उसकी माँ के नौकरी करने में सभी दोष चन्दा का हो । पागलखाने से आने के बाद वह एकदम पत्थर बन गया था । सान्त्वना का एक शब्द भी उसने पत्नी से न कहा था । . . .चन्दा ने भी उस सिलसिले में ज़बान न खोली थी । वह पूछती तो वह बक-बका कर नार्मल हो जाता । लेकिन वह चुप रहा था तो उसने भी होंट सी लिये थे । अपने पिता की हालत तो उसने देख ही ली थी, वह क्या पूछती ? फिर अपने पति की तकलीफ़ वह समझती थी ।

आँखें बन्द किये दोनों देर तक जागते रहे थे । करवटें बदलते रहे थे और फिर बिना एक भी बात किये सो गये थे ।

०

लम्बी साँस भर कर चेतन फिर सीधा हो कर बैठ गया । उसने घुटनों से नोट-बुक उठायी । लिखा हुआ पैरा पढ़ा और फिर नये पैरे से लिखने लगा :

'घर में मेरा मन नहीं लगता । बीवी से बात करने को जी नहीं होता ।. . .यथा विधाता वधीयते तदैव शुभाय ।. . .लेकिन इस सूरते-हाल में शुभ क्या है ? मेरा क्या भला होगा ? मैं इस सूरते-हाल से क्या फ़ायदा उठा सकता हूँ ?. . .

'मैं समझता हूँ, मुझे अपने आपको काम के समन्दर में ग़र्क कर देना चाहिए । मेरे पास न वक्त होगा, न मैं सोचूँगा । मैं अपनी उर्दू किताब छपवाऊँगा । अपनी कहानियाँ हिन्दी में करूँगा । हिन्दी वालों की गोष्ठियों में जाऊँगा । जिस्मानी तौर पर मैं चाहे घर से बँधा रहूँ, पर मन से बहुत दूर चला जाऊँगा । शायद विधाता को यही मंजूर है । शायद इसी में कोई बेहतरी हो । इसके सिवा कोई

चारा नहीं । मैं इसी मसले पर सोचता रहूँगा तो पागल हो जाऊंगा ।'

पागल. . .और चेतन की आँखों के सामने उसके ससुर की सूरत घूम गयी और एक ठण्डी झुरझुरी-सी उसकी रीढ़ की हड्डी में होती हुई चली गयी ।

उसने नोट-बुक बन्द की और घर से बाहर निकल गया ।

चौंतीस

पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर अनथक परिश्रम से न केवल चेतन ने अपने मन मुताबिक पण्डित हरिचन्द 'अख्तर' से अपने संग्रह की भूमिका लिखवा ली, वरन पुस्तक छपवा भी डाली। यूँ तो उसे रॉयल्टी के बदले पुस्तकें ही लेनी थीं, पर वह इतनी पुस्तकें घर ले जा कर कहाँ रखेगा, यह सोच कर उसने लाला चमनलाल से केवल पच्चीस पुस्तकें लीं और जैसे आसमान में उड़ता हुआ-सा घर आया।

'लो मेरी जान, किताब का पहला 'नुस्खा'[१]। तुम्हारी ही नज़र करता हूँ।'[२] घर पहुँच कर उसने किताब पर अपनी पत्नी के लिए एक पंक्ति लिखने को होल्डर उठाते हुए कहा।

पिछले पन्द्रह दिन में यह पहला अवसर था, जब वह चन्दा से सीधे मुँह बोला था, वरना पागलखाने से आने के बाद से वह लगातार घर से बाहर रहा था। कभी-कभार दोपहर को सोने के लिए वह घर आ जाता (और घर आता तो साथ में ढेर-सा काम लाता) वरना दोपहर को एक-दो घण्टे के लिए सोना भी, जो रात की ड्यूटी

---

१. प्रति। २. भेंट करता हूँ।

देने के कारण उसके लिए बहुत ज़रूरी था, वह गोल कर जाता।

०

पन्द्रह दिन पहले नोट-बुक बन्द कर के जब वह घर से बाहर निकला था तो क्षण भर गली में खड़ा सोचता रहा था—वह किधर जाय ? कवि चातक के जाय, पण्डित रत्न के, पण्डित अख्तर के अथवा चमन बुक डिपो। उसने तय किया था कि उसे बारी-बारी से अपने सारे काम साधने चाहिएँ और पागलों की तरह हर तरफ़ नहीं भागना चाहिए। 'एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाय !' अपनी माँ से सुनी हुई कहावत उसके ज़ेहन में घूम गयी थी और यद्यपि पहली तरंग में वह चातकजी के दफ़्तर की ओर जाने को मुड़ा था, पर यह सोच कर कि हिन्दी में कहानियाँ करने से पहले उसे अपना उर्दू संग्रह छपवा लेना चाहिए, वह मुड़ कर चमन बुक डिपो की ओर चल दिया था।

वहाँ कुछ कहानियों के प्रूफ़ आये हुए थे। चेतन ने वहीं बैठ कर बड़े ध्यान से उन्हें पढ़ा और लाला चमनलाल से कातिब का पता ले, वह उसकी बैठक पर पहुँचा और सब ग़लतियाँ उसने उसे समझायीं और वहीं बैठ कर अपने सामने ठीक करवायीं। तब वह प्रूफ़ ले कर वापस आया और एकाध घण्टा पीठ सीधी कर के अपनी कहानियों की फ़ाइल ले, पण्डित अख्तर के यहाँ पहुँचा। सौभाग्य से उन्हें फ़ुर्सत थी। उसने उन्हें कहानियाँ सुनायीं और दफ़्तर बन्द होने के बाद उनके साथ बातें करता हुआ (उनके संस्मरण, चुटकुले और लतीफ़े सुनता हुआ) उनका घर देख आया।

और यों लगातार पन्द्रह दिन तक दौड़-धूप कर के, न केवल उसने अपने कहानी-संग्रह की भूमिका लिखवायी, कातिब से कहानियों की किताबत करायी, प्रेस में किताब छपवायी और नईम जिल्दसाज़ के यहाँ धरना दे कर जिल्द बँधवायी, बल्कि एक प्रति चमन बुक डिपो ही में बैठ कर पत्र के साथ मुन्शी चन्द्रशेखर को भी भिजवायी थी। पत्र में उसने और बातों के अलावा यह भी लिखा था कि उसने अपनी एक

कहानी हिन्दी में लिखी है, वह उन्हें भेजेगा और उनकी राय के लिए शुक्रगुज़ार होगा।

दो-तीन बार इधर-उधर भागते हुए कवि चातक से उसका साक्षात्कार हुआ था। पहली बार कवि मिले थे तो उन्होंने पूछा था कि वह फिर आया क्यों नहीं। उन्होंने सफ़ाई दी थी कि उस शाम शुक्लाजी आ गये थे और सिर्फ़ आध घण्टे के लिए वे उनके साथ गये थे, जब आये तो मालूम हुआ था कि वह आया था। वे शुक्लाजी के साथ छै बजे तक दफ़्तर में बैठे उसकी बाट देखते रहे थे, लेकिन फिर वह नहीं आया। जब इतने दिन गुज़र गये तो उन्हें विश्वास हो गया कि वह नाराज़ हो गया है।

चेतन ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि ऐसी बात नहीं है। वह कई घरेलू कारणों से परेशान रहा है, इसके अलावा उसकी उर्दू कहानियों का संग्रह छप रहा है, जिसकी वजह से वह बेहद व्यस्त है। ज्यों ही वह छप गया, वह उनके यहाँ आयेगा।. . .फिर जब-जब वे मिले थे, उसके संग्रह की गतिविधि के बारे में उन्होंने पूछा था और उनकी जिज्ञासा शान्त करके और जल्दी ही आने का वादा करते हुए चेतन अपने काम पर बढ़ गया था।. . .उस वक्त, जब अपनी पुस्तक की पच्चीस प्रतियाँ उसके पास थीं, उसने तय किया था कि भले ही वे पढ़ न पायें, एक प्रति वह चातकजी को ज़रूर भेंट करेगा।

०

पहले चेतन ने

अपनी प्यारी चन्दो के लिए

या

अपनी चन्दो के लिए पहला नुस्खा

या

चन्दा के लिए, जो झील की तरह वसीअ[1] और गहरी है
और धरती की तरह बुर्दबार[2]

या

अपने दुख-सुख की रफ़ीक[3] चन्दा के लिए

एक-के-बाद-एक ऐसी ही कई रूमानी पंक्तियाँ सोची थीं, लेकिन दो-एक वाक्य सोचते-न-सोचते पुस्तक प्रकाशन के उल्लास में वह अपनी जिस कठिन स्थिति को भूले हुए था, (जिसका कारण उसकी यही संगिनी थी) वह उसके ज़ेहन में लौट आयी। तब रफ़ीक से वह रफ़ीका-ए-हयात[4] तक पहुँच गया और उसने एक निहायत ग़ैर-रूमानी रूखा-फीका वाक्य लिखा :

अपनी रफ़ीका-ए-हयात चन्दा के लिए

पहला नुस्खा

और दस्तखत कर के उसने पुस्तक अपनी पत्नी को दे दी।

लेकिन चन्दा शायद उसके इसी उल्लास के क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। किताब ले कर उसकी लिखाई-छपाई की प्रशंसा करते हुए उसने चेतन से कहा कि वह उसे भी उर्दू पढ़ा दे ताकि वह भी उसकी कहानियों को पढ़ सके।

चेतन उत्साहित हो आया और उसने अपनी पत्नी को उर्दू पढ़ाने की योजना बना डाली। तभी चन्दा ने धीरे से कहा कि वह अपनी माँ से मिलने जाना चाहती है।

चेतन का सारा उत्साह भंग हो गया और इतने दिनों से दबा हुआ उसका क्रोध फिर उभर आया। 'मैं वहाँ जाना पसन्द नहीं करता और न यही पसन्द करता हूँ कि तुम वहाँ जाओ,' उसने रुखाई से कहा, 'अपनी माँ से कहो कि वह तुम्हें यहीं आ कर मिल जाया करे।' और क्षण भर रुक कर उसने कहा, 'जाने हमको यह मकान भी छोड़ देना पड़े

---

१. विशाल। २. सहिष्णु। ३. संगिनी। ४. जीवन-संगिनि।

और दूर कहीं ऋषिनगर या गोपालनगर घर ढूँढ़ना पड़े।'

चन्दा ने जैसे अन्तिम बात नहीं सुनी। उसने आँखें फ़र्श में गाड़े सिर्फ़ इतना ही कहा, 'मेरी माँ ने यह घर नहीं देखा, नहीं वह कब की आ कर मिल जाती।'

'ठीक है!' चेतन ने और भी रुखाई से कहा, 'आज तो देर हो गयी है, कल उसे ला कर घर दिखा देंगे।' और फिर सहसा अकारण झुँझलाते हुए उसने चन्दा की मैली-सी धोती की ओर संकेत करते हुए कहा, 'यह कैसी मैली-चीकट धोती तुमने पहन रखी है। क्या तुम्हारे हाथ टूट गये हैं, जो तुमसे अपने कपड़े भी साफ़ नहीं होते।'

और क्रोध का एक उबाल-सा उसके अन्दर उमड़ पड़ा। उसे विश्वास था, वह घर पर रहेगा तो उसका सारा क्रोध उसकी पत्नी पर बरस पड़ेगा। दफ़्तर जाने में अभी काफ़ी समय था। उसने अपने कहानी-संग्रह की कुछ प्रतियाँ उठायीं और अपने उर्दू साहित्यकार मित्रों में बाँटने के लिए चल पड़ा। दूसरी प्रति वह पण्डित रत्न को देगा, यह उसने तय किया और तीसरी महाशय देवदर्शन को। मन-ही-मन अपने मित्रों की सूची बनाता हुआ, वह शीशमहल रोड की ओर चल पड़ा कि दफ़्तर से आते ही पण्डित रत्न को पकड़ ले, उन्हें एक प्रति दे और फिर उनके साथ जा कर महाशय देवदर्शन, ज़ख्मी साहब, लाला जीवनलाल कपूर आदि को प्रतियाँ दे आये। एक प्रति उर्दू बुक स्टाल के मालिक चौधरी ज़हीर के लिए भी उसने ले ली।

०

महाशय देवदर्शन तो उसके निकट रेलवे रोड पर ही रहते थे। पण्डित रत्न को पुस्तक दे कर वह उनके साथ उनके यहाँ गया। जब उन्हें पुस्तक दे कर वे उनके मकान से नीचे उतरे तो चेतन ने कहा कि यदि दो मिनट उसके घर रुकें तो वह खाना खा कर उनके साथ ही दफ़्तर चल दे। उसे पण्डितजी के घर देर हो गयी थी। उर्दू बुक स्टाल जाने का ख़याल उसने छोड़ दिया था। कपूर साहब शायद 'वीर भारत' के

दफ़्तर ही आ जायें, उसने सोचा था, वे प्राय: सिनेमा का शो देख कर ज़ख्मी साहब से मिलने आते थे, वहीं उनको और ज़ख्मी साहब को किताबें देगा। पण्डित रत्न मान गये थे। वह उनके साथ घर आया था। पाँच मिनट में खाना खा कर वह ज़ख्मी साहब और कपूर साहब के लिए पुस्तकें ले कर दफ़्तर चला गया था। पण्डित रत्न कुछ देर बैठे थे, तभी महाशय जीवनलाल कपूर आ गये थे और पण्डित जी के यार की पहली पुस्तक को उलट-पलट देखते और बाँछें खिलाते हुए उन्होंने पण्डितजी को बधाई दी थी और चेतन की पीठ पर ज़ोर से शाबाशी का हाथ जमाया था। 'पीर जिन्हाँ दे टप्पने, चेले जान छड़प्प,'[1] पंजाबी कहावत दोहराते हुए उन्होंने ज़ोर से ठहाका लगाया था और पण्डित जी को साथ ले कर चले गये थे।

०

रात सोने से पहले चेतन ने नोट-बुक में चन्द पंक्तियाँ लिखीं :

'आज चन्दा ने अपनी माँ से मिलने की बात कही तो अचानक मेरा दिमाग़ खराब हो गया। पन्द्रह दिन से लगातार मैं अपने आपको दूसरे कामों में लगाये रहा हूँ, लेकिन मन के किसी पोशीदा गोशे[2] में अपनी सूरते-हाल पर एक नामालूम झुँझलाहट दबी रहती है। अगर मेरी सास वहाँ से नौकरी छोड़ दे तो कितना अच्छा हो! कल मैं उसे घर दिखाने के लिए लाऊँगा और एक बार फिर कोशिश करूँगा, अगरचे मुझे उम्मीद नहीं कि वह मानेगी।'

०

दूसरे दिन दस बजे के करीब चेतन अपनी पत्नी को ले कर गोविन्द गली गया। चन्दा से उसने कह दिया कि वह पहले की तरह गली में

---

१. जिनके उस्ताद कूदने वाले होते हैं, उनके चेलों को छलांग लगाने में दिक्कत नहीं होती। पलक झपकते वे छलांग लगा देते हैं।
२. छिपे कोने में।

खड़ा रहेगा और वह भी ऊपर न जाय। अपनी माँ को बुला कर समझा दे कि आध घण्टे की छुट्टी ले कर आये और घर देख जाये!

वह गली में खड़ा रहा था और चन्दा जा कर अपनी माँ को ले आयी थी! घर तक चेतन अपने आपको किसी तरह रोके रहा था, लेकिन घर पहुँच कर अभी वह आराम से बैठी भी न थी कि चेतन ने बात शुरू कर दी थी।

हालाँकि बात करने से पहले भी उसे लगता था कि इस सन्दर्भ में बात करना, बात गँवाने के बराबर है, लेकिन कह कर वह मन का बोझ हलका कर लेना चाहता था।

उसकी सास पूर्ववत फ़र्श पर बैठ गयी थी, चन्दा चारपाई पर बैठी थी और चेतन कुर्सी पर। बात उसने सीधे नहीं रखी। घुमा कर उसने कहा :

'अम्मा मैंने डॉक्टर से पूछा था। पण्डितजी को अभी पागलखाने में बहुत दिन लगेंगे। तुम्हारी उमर अब मेहनत-मशकत करने की नहीं? तुम क्यों वहाँ इतनी तकलीफ़ सहती हो। नौकरी छोड़ कर यहाँ आ जाओ। दामाद और बेटे में आखिर क्या फ़र्क होता है। मैं तुम्हारे बेटे के बराबर ही तो हूँ...'

लेकिन उसकी अनपढ़ और भोली सास उसका मन्तव्य नहीं समझी। उसे तसल्ली देते हुए बोली, 'नहीं बेटे, कोई वैसी मेहनत-मशक्कत मुझे वहाँ नहीं करनी पड़ती। सेठ, सेठानी और कृष्णा तीन ही तो जने हैं। जहाँ अपने लिए दो रोटियाँ पकाती हूँ, चार उनके लिए भी उतार देती हूँ। सेठ बहुत सीधा-सादा खाना खाते हैं। मुझे वहाँ कोई तकलीफ़ नहीं, तुम चिन्ता न करो।'

अब चेतन उसे कैसे समझाता कि तकलीफ़ तुम्हें नहीं, मुझे है। तुम्हारे वहाँ काम करने से मेरा अहं आहत होता है। मेरी प्रतिष्ठा पर आँच आती है। सो उसने फिर घुमा कर कहा, 'अम्मा डॉक्टर ने बताया है, पण्डितजी के इलाज को अभी बहुत देर लगेगी। इलाज तो

उनका वहाँ हो ही रहा है। तुम वापस बस्ती ग़ज़ाँ चली जाओ और अपने घर, अपने सगे-सम्बन्धियों, जेठ-जेठीयों[1] में रहो. . .'

लेकिन उसकी सास ने उसकी बात काट दी और कहा, 'बेटा, मेरा घर वहीं है, जहाँ मेरा पति है। जेठ और उनके बेटे-बेटियों की ग़ुलामी मैंने बहुत कर ली है। उनकी ग़ुलामी करने और बदले में दो 'टुक्कर' और दस ताने-मेहने पाने के बदले दस उँगलियों से कमाती हूँ, अपना पेट पालती हूँ और चन्दा के पिता की सेवा करती हूँ। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। भगवान यही चाहता है तो मैं इसी में खुश हूँ। मैं उनकी कोई मदद नहीं कर सकती, पर हफ़्ते में दो बार उन्हें देख तो आ सकती हूँ और कौन जानता है, मेरी सेवा से भगवान खुश हो जाय और उन्हें ठीक कर दे। उनके दिमाग़ की खुश्की दूर हो जाय. . .'

चेतन चिल्ला कर कहना चाहता था—'उनके दिमाग़ में खुश्की नहीं। वे पागल हैं। धुत्त पागल हैं!'

लेकिन वह चीखा न चिल्लाया। उसने अपनी उर्दू कहानियों की फ़ाइल, अपने नये उर्दू कहानी-संग्रह की एक प्रति और 'कुर्बान-गाहे-इश्क' का हिन्दी अनुवाद उठाया और माँ-बेटी को बातें करता छोड़ घर से निकल गया।

---

१. जेठ तथा जेठ के बच्चों।

पैं
ती
स

चातकजी खाना खाने के लिए घर जाने को दफ़्तर की सीढ़ियाँ उतर रहे थे, जब चेतन ने नीचे खड़े-खड़े उन्हें 'नमस्कार' किया।

मुस्करा कर और बायें हाथ से बालों की लट हटाते हुए चातकजी ने वहीं से उसके 'नमस्कार' का उत्तर दिया।

वे अभी सीढ़ी पर ही थे कि चेतन ने कहा, 'मैं आपको कहानी सुनाने के लिए आया था।'

नीचे आ कर उसके कन्धे को थपथपाते हुए चातकजी ने हँस कर कहा, 'चलो घर चलते हैं और वहीं सुनते-सुनाते हैं। खाने का समय हो गया है और मैं सुबह आठ बजे से दफ़्तर में बैठा हूँ। भूख लग आयी है।'

तब चेतन ने अपना उर्दू संग्रह उनकी खिदमत में पेश किया :

'यह मेरी उर्दू कहानियों का संग्रह है। कल ही छप कर बाहर आया है। मुन्शी चन्द्रशेखर ने इसकी भूमिका लिखी है।'

चातकजी ने चलते-चलते रुक कर संग्रह लिया। क्षण

भर जिल्द पर छपे नाम को देखते रहे। उर्दू की वे अबजद[1] तक नहीं जानते थे।

'क्या नाम है ?' उन्होंने पूछा।

'सीरत की पुतली !'

तब उन्होंने मुख-पृष्ठ पलटा। अन्दर पोस्तीन पर चेतन ने लिखा था : 'अपने प्यारे मेहरबान दोस्त चातकजी के लिए
मुहब्बत और खुलूस के साथ'

उसने दोनों पंक्तियाँ पढ़ कर सुनायीं।

चातकजी खुश हो गये। किताब बन्द कर के उन्होंने उसकी पीठ थपथपाते हुए उसे बधाई दी। फिर चलते हुए बोले :

'तुम खाना खा कर चले थे या अभी फिर घर जाओगे।'

'खा कर तो नहीं चला,' चेतन ने उनके साथ चलते-चलते कहा, 'पर मुझे भूख नहीं और मैं खाना गोल कर जाने का आदी हूँ।'

'खाना गोल करोगे तो क्या लिखोगे। भूखे भजन न होई गोपाला ! भोजन और चोदन इन्हीं दो पर तो दुनिया का सारा कारोबार निर्भर है। भोजन ही नहीं करोगे तो लिखोगे क्या ?'

और कवि अपनी इस फूहड़ उक्ति पर आत्मतोष से हँसे, 'हम तो भाई दोनों का भरपूर रसास्वादन करते हुए लेखनी हाथ में लेते हैं। संसार की महान रचनाएँ पेट और सेक्स की भूख ही से निःसृत हुई हैं।'

'लेकिन चातकजी, ताॅल्स्ताॅय को न तो पेट की वैसी चिन्ता थी, न सेक्स की।' चेतन ने कहा, 'काउण्ट थे। हर तरह की उन्हें सहूलियत थी। मजे से दूसरे काउण्टों की तरह ज़िन्दगी गुज़ार देते। तब वह कौन-सी शक्ति थी (प्रकट ही पेट या प्रेम की नहीं थी) जिसने उनसे वर्षों के लगातार श्रम से 'युद्ध और शान्ति' जैसा महान उपन्यास लिखवाया।

---

१. उर्दू वर्ण माला के आरम्भिक अक्षर—अलिफ़-बे-जीम-दाल ! अर्थात् उर्दू का क-ख-ग।

संसार के इतिहास में दसियों ऐसी मिसालें मिल जायेंगी, जब पेट और प्रेम की भूख से भी किसी बलवती भूख ने लोगों को प्राणों का मोह छोड़ कर अजाने खतरों का सामना करने को मजबूर कर दिया।'

कवि केवल मैट्रिक पास थे। ताॅल्स्ताॅय का नाम तो उन्होंने सुना था, पर उनकी कोई रचना नहीं पढ़ी थी। ताॅल्स्ताॅय का महान उपन्यास चेतन ने भी नहीं पढ़ा था, पर उसने अनन्त से उसके बारे में सुन रखा था और उसके सपनों में एक सपना यह भी था कि जब उसको सुविधा मिलेगी, वह विश्व के महान ग्रन्थ खरीदेगा, अपनी निजी लायब्रेरी बनायेगा, और उन महान ग्रन्थों को मनोयोग से पढ़ेगा। उनसे लिखना सीखेगा और साहित्य-क्षेत्र में बहुत ऊँचे उठेगा। वह जिन पुस्तकों को पढ़ना चाहता था, उनकी सूची में ताॅल्स्ताॅय का उपन्यास सब से ऊपर था।

'हम भाई ताॅल्स्ताॅय-फाॅल्स्ताॅय नहीं पढ़ते,' माथे पर की लट को दायें हाथ से पीछे हटाते हुए कवि ने कहा, 'लोग विदेशी साहित्य पढ़ कर उसका अनुवाद कर देते हैं और समझते हैं कि बड़ा तीर मार रहे हैं। हमारे गुरु ने हमें यह नहीं सिखाया। हम जो महसूस करते हैं, वही लिखते हैं, इसीलिए मौलिक लिखते हैं! हमारी कविताएँ स्वानुभूति से जन्म लेती हैं, इसलिए वे किसी दूसरे की नहीं, हमारी और केवल हमारी हैं।'

चेतन कहना चाहता था कि बी० ए० में हमारे टीचर कहते थे, पढ़ने-लिखने से आदमी का दृष्टि-फलक विस्तृत होता है। वह अपनी सोच के तंग घेरे से निकलता है, अपने और दूसरों के कृतित्व के पीछे झाँकना और उसका विश्लेषण करना सीखता है।. . .कि मौलिकता अपने में कोई वैल्यू नहीं। यदि रचना मौलिक होते हुए भी कूड़ा है तो उसका क्या महत्व है? फिर कौन-सी ऐसी अनुभूति है, कौन-सा ऐसा सुख-दुख है, जो हमसे पहले हज़ारों-लाखों इन्सानों ने नहीं भोगा? अपनी अनुभूतियों को युग और उसकी समस्याओं के परिपार्श्व में रख कर ही हम उनका सफल चित्रण कर सकते हैं और जब हमारी दृष्टि गहरी, सूक्ष्म और अणुवीक्षक होती है, तभी हमारी चीज़ मौलिक बनती है। अनुभूति मौलिक नहीं

होती, उसे रखने का, चित्रित करने का ढंग हमारा अपना होता है और इसीलिए मौलिक होता है।

चेतन के दिमाग़ में ये विचार अंग्रेज़ी में आये, क्योंकि यह सुन कर कि वह कविताएँ और कहानियाँ लिखता है, बी० ए० में उसे अंग्रेजी पढ़ाने वाले एक बंगाली टीचर ने (जो नये-नये कलकत्ता से जालन्धर आये थे) यह उपदेश दिया था।

लेकिन चेतन ने कवि चातक को कुछ भी नहीं कहा। वह चुपचाप उनकी बातें सुनता, उनके साथ चलता गया। कवि चातक ने उसकी चुप से यह जाना कि उनकी बातों का उस पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है, इसलिए अपनी रौ में वे कहते गये। 'कवि के लिए सबसे पहले ज़रूरी है—देखने वाली आँख! और फिर महसूस करने वाला दिल! किसी की एक प्यार-भरी दृष्टि अथवा मुस्कान कवि के सामने प्यार का संसार बसा देती है। हम तो किसी को मुस्कराते भर देख लें तो एक लम्बी कविता लिख सकते हैं . . .'

और मन-ही-मन उसे अपना नया चेला मान कर वे उस पर काव्य और कला के भेद खोलते गये और चेतन चुपचाप सुनता गया। तभी उनका घर आ गया।

ऊपर पहुँचते ही कवि ने उसका परिचय अपनी लम्बी-तगड़ी, नितान्त अनपढ़ और अनगढ़ पत्नी को दिया और कहा कि उनके साथ ही चेतन जी के लिए भी खाना परस दे।

चेतन ने एक-दो बार इनकार किया और कहा कि वे उसके खाने की चिन्ता न करें। पर कवि ने पानी का लोटा ले कर उससे कहा कि वह हाथ-मुँह धो ले। चेतन ने हाथ-मुँह धो लिये तो कवि ने स्वयं मुँह पर छींटे मारे और धोती के छोर से मुँह-हाथ पोंछते हुए चौके में आसन पर आ बिराजे। उनके बराबर एक दूसरा आसन बिछा था। उन्होंने चेतन को उस पर बैठने के लिए कहा।

कवि-पत्नी ने दो थालियाँ परोस कर दोनों को दीं। चेतन ने देखा

—थाली में अरहर की दाल से भरी कटोरी, थोड़ा आम का अचार, एक कटा हुआ नींबू, नमक की एक चुटकी और भिण्डी की तरकारी थी। यद्यपि चेतन को बिना अच्छे घी और प्याज़ से छौंकी हुई दाल खाने की इच्छा नहीं हुई, पर उसे बेहद भूख लग आयी थी, इसलिए जब चातकजी की देखा-देखी उसने दाल में नींबू निचोड़ा और पहला ग्रास आम के अचार से छुला कर और दाल में डुबो कर खाया तो उसे वह अच्छी लगी। फिर कवि-पत्नी ने—जो लम्बी-तगड़ी होने के बावजूद नकिया कर कुछ अजीब-सी लटकती आवाज़ में बोलती थी, जिसके श्यामवर्ण, अनगढ़ और असुन्दर सरापे को देख कर चेतन पर कवि के 'चातकपन' का भेद अनायास खुल गया था—चेतन को साग्रह एक-दो रोटियाँ ज़्यादा खिला दीं और यह सोच कर कि उसे बराबर वहाँ आना पड़ेगा, चेतन ने तुरन्त उससे देवर-भाभी का नाता जोड़ लिया। खाने के दौरान वह 'नहीं भाभी और नहीं !' 'बस भाभी मैं चार फुल्कों से ज़्यादा नहीं खाता,' 'भाभी ज़रा पानी दीजिए !' 'भाभी आप तो खिला-खिला कर मार डालेंगी।' जैसे वाक्य बोलता रहा था। कुल मिला कर उसे यूँ चातकजी के साथ रसोई में बैठ कर खाना अच्छा ही लगा था। (खाना खाते हुए उसे एक-दो बार यह ख़याल ज़रूर आया था कि उसकी पत्नी भूखी बैठी रहेगी, पर चन्दा उसकी आदत से अभ्यस्त थी। फिर चेतन ने यह भी सोचा कि वह किसी तरह उसे सन्देश भिजवा देगा कि उसने खाना खा लिया है और वह भूखी न बैठी रहे।)

०

लेकिन जिस कारण उसने खाना वहीं खाना स्वीकार लिया, उसका वह मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। वह उस दिन कवि को अपनी कहानी नहीं सुना सका।

०

खाना खाने के बाद चातकजी उसे अपने कमरे में ले गये थे। कमरा काफ़ी खुला और हवादार था। फिर छत पर पंखा लगा था। यों भी

कई दिन तक वर्षा होने के बाद उतनी गर्मी न रही थी ! सामने फ़र्श पर दरी और जाजम बिछा था और उस पर गोल तकिये लगे थे। भर-पेट खाना खाने के बाद चेतन की आँखें करकरा रही थीं, उनमें गनूदगी उतर आयी थी और उसका जी होता था कि वहीं पसर जाय और दो पल आँख लगा ले। पर उसे अपनी कहानी सुनानी थी, इसलिए वह बरबस बैठा था।

लेकिन इससे पहले कि वह फ़ाइल खोलता और कहानी सुनाता, चातकजी उसे अपना खण्ड-काव्य सुनाने लगे।

अपने खण्ड-काव्य के सम्बन्ध में स्वयं कुछ कहने के बदले उन्होंने उसकी भूमिका चेतन को सुना डाली। खण्ड-काव्य का नाम था— 'मायाविनी !' अपने उत्साह में वे प्रकाशक का वक्तव्य तक पढ़ गये।. . . 'मायाविनी'। का प्रकाशन एक सहयोगी संस्थान की ओर से हुआ था— यह संस्थान पहले ग्वालियर में (जहाँ कवि उन दिनों रहते थे) कायम हुआ था और उसने कवि की एक पुस्तक 'नयनों में' प्रकाशित की थी। फिर वहाँ से कवि जोधपुर चले गये तो सहयोगी संस्थान भी उन्हीं के साथ वहाँ प्रस्थान कर गया। इस स्थानान्तरण के कारण उस संस्थान का नाम बदल गया। प्रकाशकीय वक्तव्य में इसका ब्योरा था और यह सूचना थी कि नयी संस्था की ओर से छपने वाली तमाम पुस्तकों का वितरण दिल्ली के प्रसिद्ध प्रकाशन-गृह, 'साहित्य संस्थान' से होगा (जिसे एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता ने अपने सगे-सम्बन्धियों के हितार्थ और गान्धी साहित्य के प्रचारार्थ खोला था।) और यह सूचना दे कर, घोषणा की गयी थी :

'हमें आशा है कि अब हमारी प्रकाशन संस्था को विविध रुचि के सहायक पाठकों के साथ-साथ विभिन्न विषयों के विद्वान एवं प्रतिभा-शाली लेखकों की सेवा करने का यथेष्ठ अवसर मिलेगा और हम सुरुचि, तत्परता और ईमानदारी के साथ उसके लिए सदा प्रयत्नशील रहेंगे।'

और यह घोषणा करके प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा था :

"'नयनों में' के बाद चातकजी की यह दूसरी और सम्भवतः सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक प्रकाशित करने का हमें अवसर मिल रहा है। हिन्दी में यह अपने ढंग की बिल्कुल नयी चीज़ है!'

और इस 'बिल्कुल नयी चीज़' को स्वयं व्याख्यायित करते हुए चातक जी ने अलग प्राक्कथन लिखा था, जिसमें शुरू में कबीर की वाणी दी थी :

माया महा ठगिनी हम जानी
तिरगुन फांस लिये कर डोले बोले माधुरी बानी

और यह पूरा गीत दे कर उन्होंने लिखा था कि इसी माया को मैंने 'मायाविनी' कहा है और इस जादूगरनी के विविध रूपों को शब्दों द्वारा चित्रित किया है। इसने अपने जादू से सकल ब्रह्माण्ड को मोह लिया है और इस सौन्दर्य का वर्णन करना बुद्धि से परे है।

यह भूमिका बाँध कर कवि ने लिखा था कि यह मायाविनी प्रत्येक घर में नारी बन कर अपनी अभिराम छवि का आलोक बिखेरती रहती है. . .कि माया के इस व्यापक रूप का वर्णन हिन्दी में पहले किसी ने नहीं किया। ब्रजभाषा के कुछ कवियों ने ज़रूर नारी-रूप के वर्णन में अपनी कलम और दिमाग़ का सारा ज़ोर लगा दिया है, लेकिन उन्होंने रस में इतना विष घोल दिया है कि उस विषय का सारा साहित्य ही विकृत हो उठा है। फिर जिन इने-गिने प्राचीन कवियों ने इस विषय में सुरुचि की रक्षा की है, उन्होंने एक ही प्रवाह में इतने विस्तार से नहीं लिखा।

और इस प्रकार अपने खण्ड-काव्य को 'एकदम नयी और सर्वश्रेष्ठ' चीज़ घोषित कर, कवि चातक ने अपने प्राक्कथन में एक व्यंग्य स्वयं अपने अथवा अपने मित्रों द्वारा अपना विज्ञापन कराने वालों पर किया था और कहा था कि वैसी प्रतिष्ठा पाने की न उसके पास शक्ति है, न इच्छा। चूँकि उन्हें अपनी पुस्तक से बेहद सन्तोष हुआ है, इसलिए उन्हें पूरी आशा है कि साहित्य-मर्मज्ञों को भी उससे प्रचुर सन्तोष मिलेगा।

अन्त में उन्होंने दो शब्द अपने प्रान्त के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता के लिए कहे थे, जिन्होंने सदा सरपरस्ती का हाथ उनके सिर पर रखा और उन्हें प्रोत्साहन दिया। पुस्तक उन्होंने एक बड़े मारवाड़ी सेठ को भेंट की थी, जो उनके काव्य के अनन्य प्रशंसक थे। अपने उन अभिभावकों की रस-ज्ञता के सम्बन्ध में उन्होंने सविस्तार चेतन का ज्ञान-वर्धन किया कि किस प्रकार उन्होंने जो लिखा, अपने उन अभिभावकों तथा उनके मित्रों को सुनाया; कैसे वे प्रसन्न हुए और कैसे उन्होंने घोषणा की कि यदि स्वराज्य मिल गया तो निश्चय ही वे प्रान्त के राजकवि के पद पर विराजमान होंगे।

इतना सब कह कर वे नितान्त आत्म-विभोर हो कर काव्य पढ़ने जा रहे थे कि चेतन ने कुछ अप्रकृतिस्थ हो कर उठने का उपक्रम करते हुए कहा कि यदि वे इजाज़त दें तो वह भाग कर पत्नी से कह आये कि उसने खाना खा लिया है और वह उसकी प्रतीक्षा न करे।

लेकिन उस मरहले पर कवि उसे छोड़ने के लिए तैयार न थे। 'अरे कवियों की पत्नियाँ जितनी जल्दी इसकी आदत डाल लें, उतना ही अच्छा है,' उन्होंने कहा, 'बैठो बैठो!'

और जब इस पर भी चेतन अधबैठी-अधखड़ी अवस्था में रुका रहा तो उसी रौ में उन्होंने कहा, 'बैठो भाई, अभी चपड़ासी दफ़्तर से प्रूफ़ ले कर आयेगा तो सन्देश भिजवा देंगे।' और वे काव्य पढ़ने लगे।

चेतन के मन में इस बात का हलका-सा क्षोभ था कि उसकी कहानी न सुन कर, वे अपना पूरे-का-पूरा खण्ड-काव्य सुनाने जा रहे हैं, पर वह लाचार बैठ गया।

०

चातकजी का खण्ड-काव्य वास्तव में चार-चार पंक्तियों के चौदह-चौदह बन्दों में बँधा था। उसके हर बन्द के पहले उन्होंने उस 'मायाविनी' को कुछ ऐसी पंक्तियों से याद किया था :

जब तू करती पागल प्राण
जब तू करती है आह्वान
जब तू छिप कर गाती गान
जब तू देती दर्शन दान
जब तू छिटकाती मुस्कान
जब तू करती है पहचान
जब तू बनती है नादान
जब तू खिलती पुष्प समान
जब तू पल भर होती म्लान
जब तू बनती स्वर्ण विहान
जब बनती अबला अनजान
जब तू झुकती महिमावान

और गुणवान, तूफ़ान, वाण, अम्लान, द्युतिमान, कल्याण, सुजान, महान, अन्तर्धान, आदि सारे तुक उन पहली पंक्तियों पर खर्च कर दिये थे। 'जब' से पंक्ति शुरू कर के और ऐसी ही किसी तुक से उसे खत्म कर कवि शेष बन्द में बताते कि 'तब' क्या होता है। फिर अन्त में वही पंक्ति दोहरा देते। केवल पहला और अन्तिम बन्द उन्होंने 'हे री माया-विनि छविमान' से शुरू और खत्म किया था, शेष सारे बन्द 'जब' से शुरू होते थे।. . .चातकजी बिना रुके, बिना साँस लिये खण्ड-काव्य सुनाते गये। पहले उन्होंने खादी का कुर्ता उतारा, फिर बनियान उतार दी। उनका गोरा शरीर पसीने से तर हो गया और उनके पेट की सिलवटों और नाभि के गर्त्त से होता हुआ पसीना उनकी धोती में समाने लगा। लेकिन वे उस सब से विसुध काव्य सुनाते रहे। कपड़े उतारते समय भी अपनी वाणी पर उन्होंने रोक नहीं लगायी और जहाँ तक पसीने का सम्बन्ध है, वे काव्य-पाठ करते-करते कभी कमर में, कभी पसली पर, कभी कन्धे के पीछे खुजला लेते। काव्य सुनाते हुए उनके होंटों के कोनों पर फिचकू आ गया, कण्ठ सूख गया, पर वे बिना रुके

तन्मय भाव से काव्य पढ़ते रहे. . .चार बजने को आ गये थे, जब काव्य समाप्त हुआ । तब कुर्ता उठा कर उसके दामन से शरीर का पसीना पोंछ वे तकिये पर ढह गये और उसी अवस्था में उन्होंने चिल्ला कर पत्नी को आदेश दिया कि वह नींबू का शर्बत बनाये ।

०

काव्य सुनना शुरू करने के पहले ही चेतन की आँखें करकरा रही थीं। काव्य सुनते-सुनते उसे कई बार झपकी आ गयी । तब उसके सुनने का भरम कवि पर खुल न जाय, इस खयाल से उसने पीठ और सिर दीवार से टेक लिये थे और परम तन्मय भाव से आँखें बन्द कर ली थीं । दो-एक बार उन्होंने पूछा भी था कि वह सुन रहा है ना ? तब पूर्ववत आँखें बन्द किये केवल सिर के इशारे से उसने संकेत किया कि वे पढ़ते जायें, वह दत्त-चित्त हो कर सुन रहा है ।

चातकजी बड़ी सीधी-सरल भाषा में कविता करते थे, लेकिन उनके काव्य ने कहीं भी चेतन के मन को स्पर्श नहीं किया । उसे वह सारा-का-सारा काव्य केवल दिमाग़ी कसरत लगा । इसलिए यद्यपि वह सयत्न जागता, सुनता और कभी-कभी 'वाह !' 'क्या बात पैदा की है !' 'कितने सुन्दर भाव हैं !' आदि वाक्यों में दाद भी देता रहा था, पर वास्तव में वह कई बार ऊँघ भी गया था और कुल मिला कर आह्वान, द्युतिमान, महिमावान, म्लान, स्वर्णं विहान आदि तुकों के अलावा उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा था । मन-ही-मन वह सोचता रहा था कि जब हिन्दी भाषा पर उसका अधिकार हो जायेगा तो वह इन तुकों का बेहतर इस्ते-माल करेगा ।

लेकिन जब कवि ने काव्य समाप्त किया तो उसने भी आँखें खोल दीं । तकिये के सहारे लेट कर और पत्नी को नींबू के शर्बत का आदेश दे कर कवि करवट के बल उसकी ओर हो बैठे । प्रकट ही वे चेतन से प्रशंसा के दो शब्दों की अपेक्षा रखते थे । लेकिन चेतन सचमुच अन्त में

ऊँघ गया था और उसे भय था कि कवि जान न गये हों कि वह काव्य सुनता नहीं, सोता रहा है।

जब चेतन ने दाद नहीं दी तो कवि स्वयं ही बोले, 'इस काव्य को लिखने की प्रेरणा मुझे तब हुई थी, जब मैंने अपनी स्वर्गंगता छोटी-सी दुधमुँही बच्ची स्नेहलता को एक बार गोद में लिया था और किसी अकथनीय आनन्द से मेरा मन विभोर हो उठा था। लेकिन अभी यह काव्य आधा भी न लिखा गया था कि वह मुझे छोड़ कर चली गयी। तब से टूटे हुए दिल की तरह यह मेरा काव्य भी अधूरा पड़ा रहा। फिर मैंने एक दिन अपनी उस स्वर्गंगता बच्ची से आशीर्वाद माँगा कि वह मुझे अपनी इस यादगार को पूरी करने की सामर्थ्य दे और सहसा एक दिन मेरी लेखनी अबाध गति से बह चली और काव्य पूरा हो गया। मैं अपनी बच्ची को इतना प्यार करता था, जितना कोई नहीं कर सकता। इसी तरह मेरी इस 'मायाविनी' को भी मेरे जितना कौन पसन्द कर सकता है।'

'हरगिज़ नहीं!' सहसा चेतन ने कहा।

कवि चौंके और चेतन भी चौंका। लड़खड़ाते शब्दों में अपनी उस उद्धतता को छिपाते हुए उसने कहा, 'आपने. . .दरअसल. . .सच ही कहा। इतने सुन्दर काव्य से प्यार करना खुद उस क्षण को छू लेना है; जब कवि को उसे लिखने की प्रेरणा मिली और ज़ाहिर है कि यह हर किसी के बस की बात नहीं, लेकिन जो भी इसे दोबारा पढ़ेगा, वह इसे आपसे भी ज़्यादा प्यार करने लगेगा। एक साथ दिल और दिमाग़ को झँझोड़ देने वाली चीज़ लिखी है आपने।'

तब कवि के थके म्लान मुख पर हठात बड़ी प्यारी-सी मुस्कान खेलने लगी। चेतन ने एक और रद्दा जमाया :

'यह हमारी बदकिस्मती है,' उसने कहा, 'कि देश ग़ुलाम है, विदेशी लेखकों के सामने हिन्दुस्तान की अहमियत कुछ भी नहीं, वरना क्या

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाद यहाँ एक भी लेखक को नोबल पुरस्कार न मिलता।'

चेतन पूरी तरह प्रकृतिस्थ हो गया था। अपनी इस बात पर वह मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने चातकजी को यह आभास दे दिया कि उनका खण्ड-काव्य विश्व साहित्य के समकक्ष रखा जा सकता है।

चातकजी ने प्रसन्न हो कर कहा कि उनके एक स्नेही ने भी यही बात कही थी। वे इसका अंग्रेजी अनुवाद कराने की सोच रहे हैं।

चेतन ने चाहा कि अपनी भी एक-दो कहानियाँ उन्हें सुना डाले, पर चातकजी इतने उत्साह में थे कि कमरा उन्हें बहुत छोटा-सा लगने लगा। वे उठे। उनकी पत्नी दो गिलास नींबू का शर्बत ले आयी थीं। उन्होंने खड़े-खड़े शर्बत का गिलास पिया और उससे बोले कि वह नये कपड़े निकाल दे। वे इतने में नहा लेते हैं।

चेतन ने पूछा, उन्हें कहीं जाना है क्या ?

'आज इतवार है। शुक्ल साहित्य सदन और करुण काव्य कुटीर में इतवार को छना करती है,' उन्होंने कहा, 'वहीं चलेंगे। नीरवजी भी होंगे और दूसरे हिन्दी साहित्यकार भी। मौज रहेगी।'

चेतन का चेहरा उतर गया, पर अपनी निराशा को बरबस छिपाते हुए उसने कहा, 'मैं आपको अपनी दो-एक कहानियाँ सुनाना चाहता था। एक कहानी मैं हिन्दी में भी कर के लाया था।'

'अरे भाई, तुम्हारी कहानियाँ सुनेंगे, देखेंगे, उन्हें सब पत्र-पत्रिकाओं में छपवायेंगे। घबराते क्यों हो। अभी तो चलो, तुम्हें गोपालनगर ले चलें। एक-दो ठण्डाई के गिलास पिलायें। कुछ कविताएँ सुनायें।'

चेतन पहले ही कविता सुन कर अघा गया था, उसने सिर्फ़ इतना कहा, 'मैं तो कोई नशा नहीं करता !'

'फिर तुम कवि क्या बनोगे ?'

और हँसते हुए कवि स्नानागार में चले गये। चेतन भागा-भागा घर गया। फ़ाइल और कहानी उसने मेज़ पर रख दी। चन्दा को बताया

कि खाना उसने चातकजी के यहाँ खा लिया था और वह चातकजी के साथ गोपालनगर जा रहा है। हो सकता है, उसे कुछ देर हो जाय। फिर मुँह-हाथ धो कर और बालों में कंघी करके वह चातकजी के घर पहुँचा। वे अभी नहा कर नहीं निकले थे। यों ही मन लगाने को उसने उनका काव्य 'मायाविनी' उठाया। (मन में उसने तय किया कि चातक जी से उस छन्द का नाम पूछेगा, जो उन्होंने खण्ड-काव्य में इस्तेमाल किया है और उसे देख कर हिन्दी में कविता लिखने का प्रयास करेगा।) यह सोच कर वह उसका एक छन्द डायरी में नोट करने लगा :

जब तू छिटकाती मुस्कान।

विश्व-रूप-सर के फूलों के
अरुण लोक की आयी रानी,
तेरे एक अधर कम्पन में
बनती दुनिया दीवानी।

अरी परी तू स्वर्ण लोक से
छिटकाती सोने का हास,
तीन लोक रंजित हो उठते
अनुगुंजित होता मधुमास।

प्राणों में झंकृत हो उठते
प्रेम, प्रकाश, मधुरिमा, मोद,
सुधा-सुरभि, मधु-मद, शीतलता
शक्ति, तृप्ति, उल्लास, प्रमोद।

चेतन ने अभी यहाँ तक ही लिखा था कि दूध-धुली खादी के धोती-कुर्ते में लैस, तह किया रेशमी साफ़ा कन्धे पर रखे और बालों की लट माथे पर डाले कवि चातक आ गये। चेतन ने पृष्ठ पलट कर झट से अन्तिम बन्द लिखा :

प्रीति, पुण्य, वरदान, अमृत, सुख
आशा, अभिलाषा, कल्याण
मुक्ति, योग-साधन-सा पावन
दिखता तेरा रूप महान्
जब तू छिटकाती मुस्कान ।

उसने डायरी बन्द की और बोला, 'यों ही आपके खण्ड-काव्य से मैं एक बन्द नोट कर रहा था । मैं भी शायद कभी हिन्दी में कविता करने लगूँ । ज़रा मुझे इसके छन्द और मात्राओं के बारे में बताइएगा ।'

'बतायेंगे. . .बतायेंगे !' कवि ने उल्लास से फूल कर कहा, 'ये छन्द-वन्द तो गौण चीज़ हैं । मुख्य चीज़ है हृदय । हृदय अगर अनुभूति-प्रवण है, उसमें सौन्दर्य और प्रेम की चाह है तो कविता आपसे आप लेखनी से झरती चली जाती है । तुममें लगता है, प्रतिभा है । ज़रा दिल और आँखों के कपाट खोले रखो, कविता का निर्झर अपने आप फूट बहेगा ।'

और वे अपने इस नये चेले को काव्य और कला के राज़ समझाते हुए मस्ती से चल पड़े । चेतन चुपचाप उनकी बातें सुनता, उनके साथ हो लिया । निन्दा हो या प्रशंसा, बात बुरी हो या भली, उसके मन मुताबिक हो या विपरीत, वह उसे ध्यान से सुनता था और फिर एकान्त में उसे तर्क और अनुभव की तुला पर तोल कर निष्कर्ष निकालता था और तय करता था कि कौन बात हितकर है, कौन अहितकर । उसे क्या अपनाना चाहिए और क्या छोड़ना । अपनाने लायक जो लगता था, उसे वह तत्काल अपना लेता था । इसलिए वह चातकजी की बातें भी ध्यान से सुनता रहा था ।

कवि बड़े मूड में थे । उन्हें अपने महाकवि होने का पूरा विश्वास था और महाकवि कैसे बनता है, इस पर वे अपने बहुमूल्य विचार प्रकट करते हुए चल रहे थे । 'साधना-वाधना की बात महाकवियों के लिए नहीं ।' उन्होंने कहा, 'कवि बनता नहीं, पैदा होता है । हम दसवीं कक्षा

में थे जब कांग्रेस आन्दोलन में शामिल हो गये और जेल गये। (यहाँ उन्होंने बताया कि उनके बड़े भाई प्रान्त के बड़े नेता हैं और कभी जब स्वराज्य मिला तो वे निश्चय ही प्रान्त की मिनिस्ट्री में होंगे।) 'लेकिन हमारी प्रकृति राजनीति के अनुकूल नहीं। छल-छन्द हमारे वश का नहीं, कविता स्वयं हमारी कलम की नोक पर आ जाती है।'

और कवि ने चेतन को बताया कि किस प्रकार वे आठवीं कक्षा में थे, जब उनका विवाह हो गया और अपने ससुराल में एक सुन्दरी को देख कर उन्होंने पहले खण्ड-काव्य की रचना की।. . .और यों शुरू करके कवि चातक उसे एक-के-बाद-एक अपने प्रेम-प्रसंग सुनाते रहे।

'लॉर्ड बायरन के बारे में प्रसिद्ध है कि औरतें उस पर बेतरह मरती थीं,' कवि ने कहा, 'हम तो न लॉर्ड हैं, न एरिस्टोक्रैट और न हमारे पास उतनी धन-सम्पदा है, पर हमारे सभी मित्र हमें हिन्दी का बायरन कहते हैं।'

चेतन ने अपने भाई की दुकान के निकट अंग्रेज़ी पुस्तकों के प्रसिद्ध विक्रेता, 'रामाकृष्णा एण्ड सन्ज़' की दुकान पर एक पुस्तक में बायरन की तस्वीर देखी थी। बायरन के जीवन पर बनी एक फ़िल्म भी देखी थी। मन-ही-मन, घुँघराले बालों, प्रशस्त ललाट, नुकीली नाक और एह-सास-भरी आँखों वाले उस सुन्दर व्यक्ति से इस ठिगने-से कद, बबुए-से चेहरे और बेहड्डी के लिजलिजे हाथों वाले 'हिन्दी के बायरन' की तुलना करते हुए चेतन के होंटों पर अनायास एक मुस्कान दौड़ गयी, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।. . .तब कवि ने उसे बताया कि सच्चे कवि की आँखें सौन्दर्य की पहचान रखती हैं और उसका सम्वेदनशील हृदय उससे प्रभावित हो कर अमर काव्यों की सृष्टि करता है।

'हम तो वहाँ भी सौन्दर्य खोज लेते हैं, 'चातकजी ने कहा, 'जहाँ आम आँखों को वह दिखायी नहीं देता। इसीलिए हमारी लेखनी अबाध चलती है।'

०

बातें करते हुए वे नीला गुम्बद, माल रोड, गोलबाग़, ठण्डी सड़क और गोपाल रोड को पार कर गोपालनगर की शिवाजी स्ट्रीट में पहुँच गये थे। शुक्लाजी अपने 'शुक्ल साहित्य सदन' के बाहर ही खड़े खैनी फटक रहे थे। तब कवि चातक ने अपने उस नये चेले की दीक्षा को बीच ही में रोक कर दूर ही से उन्हें 'नमस्कार' किया और शुक्लाजी खैनी को निचले होंट में रख, मूँछों में मुस्कराते हुए दोनों हाथ बढ़ाये उनकी ओर बढ़े।

छ
ती
स

दूसरे दिन चेतन सुबह नोट-बुक में लिख रहा था :

'मेरा ज्योतिष वग़ैरह में कुछ वैसा विश्वास नहीं, पर यदि उस शास्त्र में कुछ सच्चाई है और हमारे दिन अच्छे-बुरे नक्षत्रों के अनुसार बीतते हैं और हम लाख कोशिश करें, होता वही है, जो उन्हें स्वीकार होता है तो कल निश्चय ही मेरा कोई बुरा नक्षत्र टेढ़ी आँख से मेरे भाग्य को देख रहा होगा। काम में सफलता मिली नहीं, उलटे दिन भर बोर होना पड़ा।

'चातकजी ने पूरा-का-पूरा खण्ड-काव्य सुना डाला और करुणाजी ने सतसई। वे सब तो भाँग के गिलास चढ़ा कर नशे में झूमते हुए सुनते रहे। लेकिन मैं तो नशा नहीं करता। बैठा बोर होता रहा। दफ़्तर में छुट्टी न होती तो उसी बहाने उठ आता, पर चातकजी से कह चुका था कि आज छुट्टी है, सो रात दस बजे लौटा और सपने में भी कभी चातकजी की 'मायाविनी' परेशान करती रही, कभी

करुणजी के श्रमिक, कृषक, बेकार और देश की विषम व्यवस्था के मारे कोटि-कोटि दीन-हीन जन !'

०

'शुक्ल साहित्य सदन' और 'करुण काव्य कुटीर' दोनों के बोर्ड वास्तव में एक ही मकान के दायें-बायें हिस्सों पर लगे थे। यह मकान दोमंज़िला था। निम्नमध्यवर्गीय बाबुओं, दुकानदारों और पेटी बुर्जुआ लोगों द्वारा बसायी हुई, ऋषिनगर से गोपालनगर तक फैली, चारों बस्तियों में बने हुए लगभग एक जैसे मकानों में से एक ! उसकी डेवढ़ी से तंग ज़ीना ऊपर को जाता था और दायें-बायें दो छोटे-छोटे रास्ते दो तंग अँगनाइयों को। डेवढ़ी ही में दायें-बायें से एक-एक दरवाज़ा दोनों ओर की बैठकों में भी खुलता था। इन बैठकों का एक-एक दरवाजा बाहर सड़क पर था, जो अभी कच्ची थी और जिसमें अभी नालियाँ भी नहीं बनी थीं और हौदियों का गन्दा पानी सड़क पर फैल कर वातावरण को गँधाया करता था।

दोनों हिस्सों में नीचे की इन बैठकों में पीछे को एक-एक दरवाजा था, जो छोटे-से बरामदे में खुलता था। उसी में एक ओर किचिन था। बरामदे के बाद छोटी-सी अँगनाई और उसके बाद एक-एक छोटा गोदाम और स्नानगृह था। ऊपर की मंज़िल में बैठकों के ऊपर खुली छत थी। बरामदों के ऊपर दो-दो छोटे कमरे बने थे (शौचालय लाहौर के सब निम्नमध्यवर्गीय मकानों की तरह छत के सड़क की ओर वाले कोने पर बने रहते थे, ताकि नाली का पानी सीधा हौदियों में गिरे और चाहे तो प्रेम भाव से सड़क पर फैल जाय।)

शुक्लाजी ने नीचे का पोर्शन अपने पास रखा हुआ था और ऊपर के कमरे अपने ही साप्ताहिक के एक उप-सम्पादक को किराये पर दे रखे थे। उसने अपने साथ एक और मित्र को मिला रखा था और दोनों ढाई-ढाई रुपये माहवार शुक्लाजी की खिदमत में पेश कर देते थे। करुणजी ने नीचे का पोर्शन किराये पर दे रखा था और स्वयं अपनी

अध्यापिका पत्नी के साथ ऊपर एक कमरे में रहते थे और दूसरे में रसोई करते थे। जितना किराया उन्हें मालिक-मकान को देना होता था, उतना वे नीचे के किरायेदारों से ले लेते थे। शुक्लाजी अपने वेतन के अलावा अनुवाद और प्रूफ़ रीडिंग से अतिरिक्त आय कर लेते थे और घर का खर्च चला कर कुछ रुपया बचा भी लेते थे। करुणजी कवि थे। उनकी पत्नी कमाती थीं और वे निरन्तर काव्य-साधना में निरत रहते और मज़दूर-किसानों की मीटिंगों में अपने दोहे सुनाते।

०

'आज गोष्ठी ऊपर करुणजी के यहाँ जमेगी।' शुक्लाजी ने खैनी का पहला रस वहीं गली में फिच् से थूक कर कहा और वे उन दोनों को ऊपर की मंज़िल में बायीं ओर की छत पर ले गये। छत की तपिश को निरन्तर पानी डाल कर कम कर दिया गया था और वहाँ एक मैली-सी बड़ी दरी और कुछ चटाइयाँ बिछी हुई थीं। एक-दो गोल तकिये भी लगे थे। वे दोनों ज़रा देर से पहुँचे थे, क्योंकि नीरवजी अपने होंटों के दायें कोने पर शाश्वत मुस्कान लिये, पान से होंट रँगे बैठे थे। किसलयजी थे, कण्टकजी थे, स्वदेश भारती थे, आकुलजी थे, विकलजी थे। इनमें अधिकांश से मणि भाई गोबिल की गोष्ठी में चेतन का परिचय हो चुका था, लेकिन चार-पाँच ऐसे चेहरे भी थे, जिन्हें उसने पहले कभी नहीं देखा था।

सीढ़ियों से चातकजी के नमूदार होते ही नीरवजी को छोड़ कर शेष सभी उठ खड़े हुए और उन्होंने एक साथ भिन्न-भिन्न स्वरों में 'आइए चातकजी,' 'आइए चातकजी,' 'बड़ी देर कर दी आपने कविवर,' 'आपकी ही प्रतीक्षा है,' आदि वाक्यों से उनका स्वागत किया। (यह गर्म जोशी चातकजी के कवि के लिए कितनी थी और उनके सम्पादक के लिए कितनी, चेतन यह तय नहीं कर पाया।) वह उनके पीछे-पीछे जा कर 'नमस्कार' नीरवजी की ओर फेंक कर दरी पर बैठ गया।

यद्यपि मणि भाई गोबिल को गोष्ठी में पण्डित धर्मदेव वेदालंकार

ने चेतन का परिचय दे दिया था तो भी अपने इस समवेत स्वागत के उत्तर में कुछ कहने से पहले कवि चातक ने उपस्थित सज्जनों को पुनः चेतन का परिचय देते हुए बताया कि वह उर्दू का एक उदीयमान कथा-कार है और उसकी कहानियाँ और कविताएँ प्रसिद्ध उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में छपती हैं और मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसके नव-प्रकाशित कथा-संग्रह की भूमिका लिखी है। इतना सब बता कर उन्होंने कहा :

'चेतनजी बहुत दिनों से आग्रह कर रहे थे कि मैं अपना खण्ड-काव्य 'मायाविनी' इन्हें सुनाऊँ। 'मंजरी' के सम्पादन में उतना समय नहीं मिलता था। आज इन्हें भी छुट्टी थी और मुझे भी। सो जम कर बैठे। इसलिए यहाँ पहुँचने में थोड़ी देर हो गयी!'

और यूँ देर से पहुँचने का कारण बता कर चातकजी ने बेपरवाही से कहा, 'मैं तो अपनी उस कृति से अब उतना सन्तुष्ट नहीं हूँ, पर चेतनजी का कहना है कि उसका शीघ्रातिशीघ्र अंग्रेज़ी में अनुवाद होना चाहिए। यदि अंग्रेज़ी में उसका अनुवाद हो जाय तो लोग देखेंगे कि वह गीतांजलि से आगे की रचना है।'

चेतन को चातकजी के इस सफ़ेद झूठ पर पहले थोड़ा ग़ुस्सा आया, फिर उसे मन-ही-मन हँसी आ गयी। उसने कवि का प्रतिवाद नहीं किया, सिर्फ़ उसके होंटों पर एक व्यंग्य-भरी मुस्कान खेल गयी, लेकिन ठण्डाई की प्रतीक्षा में बैठे उन साहित्यकारों में किसी ने उस मुस्कान के व्यंग्य को नहीं देखा। उनकी चोर नज़रें रह-रह कर रसोई-घर के आगे धोती का लंगोट बनाये, अपने काले भुजंग शरीर को बनियान की कैद से आज़ाद किये, कवि विकल की ओर उठ जातीं, जो नितान्त तन्मय भाव से सिल-बट्टे के साथ जूझ रहे थे। जाने वे कब से इस सत्कार्य में लीन थे, क्योंकि उनके वहाँ पहुँचने के कुछ ही देर बाद उन्होंने आ कर उसी तरह गान्धी-मार्का लंगोट में खड़े-खड़े अपने मैले यज्ञोपवीत को आगे-पीछे से पकड़ उसे ऊपर-नीचे, इधर-उधर खींच, मैल और पसीने के कारण पीठ पर होने वाली खुजली को शान्त करते हुए, परम प्रसन्न

भाव से घोषणा की कि विजया देवी अवतरित हो गयी हैं और भक्तों का मन प्रसन्न करने को अत्युत्सुक हैं।

तब शुक्लाजी ने कहा कि पहले यही योजना थी कि ठण्डाई पीने से पहले करुणजी के काव्य का रस पान किया जाय, पर चूंकि विजया देवी तत्पर हैं और उनकी संगति से भक्तों को ज़्यादा देर वंचित रखना श्रेयस्कर नहीं, इसलिए उनका प्रस्ताव है कि ठण्डाई का एक दौर अभी हो जाय, फिर करुणजी अपनी सतसई के कुछ महत्वपूर्ण खण्ड सुनायें, उसके बाद फिर विजया देवी की संगत की जाय ताकि करुणजी के काव्य की कटुता और तिक्तता कुछ कम हो जाय।

इस मरहले पर शुक्लाजी मूंछों और नथुनों में मुस्कराये और बोले, 'करुणजी इधर पूरे कामरेड हो गये हैं। आप देख ही रहे हैं, धोती-कुर्ते को उन्होंने नमस्कार करके पतलून-कोट पहन लिया है, दाढ़ी-मूंछों का सफ़ाया कर दिया है और उन्होंने पुरानी रीति-कालीन परम्परा को तज कर आधुनिक युग को वाणी देने वाले अत्यन्त सशक्त और तीखे दोहे सृजे हैं। देव और बिहारी के काव्य-रस की मिठास के जो अभ्यासी हैं, उनके मुंह का ज़ायका निश्चय ही कड़वा जायेगा, लेकिन उनकी बात की सच्चाई से कोई विरला ही इनकार कर सकेगा।' यह सब कहते-कहते शुक्लाजी की मुस्कान कुछ और फैल गयी और उन्होंने कहा, 'हमें यही भय है कि हमारे करुणजी कामरेड ज़्यादा हो गये हैं और कवि—याने वैसे कवि, जैसे हमारे चातकजी अथवा नीरवजी हैं—कम! इसीलिए उनके काव्य के तिक्त गरल को पान करने से पहले और पीछे विजया देवी का संसर्ग लाभप्रद ही रहेगा।'

और शुक्लाजी ने परम तत्परता से खड़े विकलजी को एक-एक गिलास ठण्डाई लाने का आदेश दिया।

ठण्डाई के गिलास देख कर उपस्थित सज्जनों में से अधिकांश की आँखों में जो चमक आ गयी, उससे चेतन को साफ़ लगा कि उनके लिए करुणजी का काव्य गौण है और विजया का संसर्ग प्रमुख, लेकिन शुक्ला

जी ने बड़ी बुद्धिमता से करुण-काव्य के पहले और पीछे भाँग के दौर रख दिये थे।

ठण्डाई का गिलास हाथ में थामे नीरवजी ने विकलजी की प्रशंसा की थी कि जिस निष्ठा और प्रीति से और जैसी ठण्डाई वे तैयार करते हैं, वैसी लाहौर में दूसरा कोई तैयार नहीं करता और उनकी तैयार की हुई ठण्डाई मधुर काव्य के समान मीठी और मदिर होती है। फिर उन्होंने होंटों के दायें कोने से मुस्कराते हुए कहा, 'पंजाब के मरु में यह स्थल हमारा शाद्वल है। ये पंजाबी जाने किस मिट्टी से बने हैं, न पान चबाते हैं, न तमाखू खाते हैं, न विजया का सेवन करते हैं। यह शुक्लाजी और करुणजी के दम ही से है कि इस मरु में भी हरी पत्ती के दर्शन हो जाते हैं।'

चातकजी को लगा कि पंजाबियों पर यह चोट उनके नये चेले को अखरेगी। यों भी नीरवजी को वे अपना प्रतिद्वन्द्वी मानते थे और उनका विरोध उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। उन्होंने ठण्डाई के गिलास को एक घूंट में कण्ठ के नीचे उतारा और होंटों पर ज़बान फेर कर बोले :

'भाई, विजया देवी उत्तर प्रदेश के ग़रीबों की देवी है। पंजाबी लोग धन-सम्पन्न हैं। वे सुरा-सुन्दरी का साहचर्य पसन्द करते हैं।'

यह कहते और हँसते हुए उन्होंने समर्थन पाने को चेतन की पीठ पर हाथ मारा और बोले, 'क्यों भाई चेतन ?'

चेतन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने ठण्डाई का गिलास लेने के बदले पानी का एक गिलास माँगा।

नीरवजी ने अपनी ग़लती सुधार ली और बोले, 'ठीक कहते हो !'

करुणजी ने ठण्डाई नहीं पी। उन्होंने कहा कि पहले वे इसे छूते भी नहीं थे। पर पीने-पिलाने और ऐश-आराम का अधिकार सम्पन्न वर्ग को ही नहीं, निम्न वर्ग को भी है। एक समय आयेगा, जब जनता का राज होगा और जिन लोगों ने ह्विस्की, ब्राण्डी का नाम भी नह

सुना, ज़िन्दगी के दूसरे सुखों से जो नितान्त अपरिचित हैं, वे भी उनके आनन्द से वंचित न रहेंगे।'

क्षण भर रुक कर उन्होंने उपस्थित सज्जनों की ओर देखा। इस पर शुक्लाजी ने नथुनों और मूँछों में मुस्कराते और, 'निश्चय. . .निश्चय' कहते हुए उनकी बात का समर्थन किया। तब करुणजी ने बताया कि वे स्वयं पहले धोती-कुर्ता पहनते थे और संन्यासियों की तरह दाढ़ी बढ़ाये थे। अब उन्होंने वह ढोंग छोड़ दिया है। अब वे कोट-पतलून पहनते हैं और पीने-पिलाने को भी गुनाह नहीं समझते, लेकिन चूँकि उन्हें सतसई के कुछ खण्ड सुनाने हैं, इसलिए काव्य-पाठ के बाद ही ठण्डाई का सेवन करेंगे।

'भाई, यद्यपि हमको तुम्हारा कवि-सुलभ पुराना ही वेष अच्छा लगता था,' शुक्लाजी ने अपनी उसी मुस्कान के साथ कहा, 'पर तुम सुन्दर व्यक्ति हो, पतलून-कमीज़ में भी जमते हो, बल्कि हम तो कहते हैं कि हैट भी लगाया करो। तब और भी रोब पड़ेगा।'

इस पर उपस्थित सज्जनों में हलकी-सी नशीली हँसी गूँज गयी।

तभी ठण्डाई पीने के बाद तृप्त हो कर और एक ज़ोर की डकार ले, तकिए पर अधलेटे हो कर नीरवजी ने कहा, 'तो फिर अब करुण जी शुरू कीजिए!'

०

करुणजी अपने लम्बे ऊँचे शरीर के साथ तन कर बैठ गये। उनकी पहले से गम्भीर मुख-मुद्रा और भी गम्भीर हो गयी। काव्य-पाठ आरम्भ करने से पहले उन्होंने दो शब्द शुक्लाजी के उत्तर में कहना ज़रूरी समझा।

'शुक्लाजी ने मेरे काव्य की कटुता और तिक्तता का उल्लेख करते हुए मेरे कामरेड होने पर व्यंग्य किया है। मुझे कामरेड कहलाने में आपत्ति नहीं। मैंने अपने संघर्षमय जीवन में सनातन धर्म सभा, आर्य समाज, देव समाज और कांग्रेस में रह कर देख लिया है और भुक्त-भोगी

के नाते मुझे लगा है कि जो आदमी आज की विषम स्थितियों को बद-लना चाहता है, उनमें आमूल परिवर्तन करना चाहता है, उसके लिए कामरेड होने के सिवा कोई चारा नहीं। मैं तो किसी समाजवादी पार्टी का मेम्बर नहीं, पर विचारों से मैं कामरेड ही हूँ। रही मेरे काव्य के कटु और तिक्त होने की बात, तो यह सच है! मेरा काव्य तिक्त भी है और कटु भी। मैं सिर्फ़ इतना ही कहना चाहता हूँ कि वह तिक्त और कटु इसलिए है कि वह सच्चा और ईमानदार है। यदि कोई सच्ची और ईमानदारी-भरी बात कहेगा तो वह अपने आप तीखी और कटु हो जायगी।'

इस वक्तव्य के बाद करुणाजी ने सतसई का मसौदा उठाया और बोले :

'मैंने इसमें एक छोटी-सी भूमिका भी दी है, मैं उसे न पढ़ता, यदि शुक्लाजी ने मेरे कामरेड होने पर व्यंग्य न किया होता। उस कामरेड का अतीत कैसा है, ज़रा उसे जान लीजिए। वह क्यों तीखा और कटु है और क्यों वह यथार्थ बात कहने का आग्रह करता है, इस भूमिका से आप बन्धुओं पर पूरी तरह स्पष्ट हो जायेगा।' और वे पढ़ने लगे :

'इस सतसई के कवि ने एक अति सामान्य गाँव के एक अति सामान्य हल-बैल-विहीन ब्राह्मण किसान के घर जन्म लिया था। उस खण्डहर को घर इसलिए कहा जा सकता था कि उसमें उस ब्राह्मण किसान का 'बिबिध-कुटुम्बी जिमि धन हीना' की सच्चाई प्रमाणित करने वाला परिवार रहता था, वरना उसकी अवस्था खण्डहर से बदतर थी। चारों ओर की दीवारें वर्षातप के निरन्तर प्रहारों से कहीं आधी, कहीं सारी गिर गयी थीं, जिस कारण कुत्ते-बिल्लियाँ निर्द्वन्द्व उसे अपना आखेट-स्थल बनाये थे। मुख्य द्वार पर दो-तीन तख्ते अपनी टूटी टाँगों के साथ खड़े, किवाड़ों का नाम धराने पर अड़े थे। भीतरी भाग में एक ओर फूस की छानी थी और दूसरी ओर एक अधपटा बरोठा। फूस की छानी अन्न-विहीन मिट्टी के बर्तनों से अटी थी और बरोठा टूटी हुई खाटों और

फटी हुई कथड़ियों का अपूर्व संग्रहालय था। पशु-धन का इस ब्राह्मण परिवार में सर्वथा अभाव था। कभी कोई सूखी-मारी बछिया यदि इस 'बाह्मन परिवार' में आ जाती तो उसे भी बरोठे ही में आश्रय मिलता था।'

करुणजी का स्वर उत्तरोत्तर भावुक और जोशीला होता गया :

'इसी बरोठे में एक दीन-हीन माता की कोख से इस सतसई के मन्दभाग्य कवि ने जन्म लिया था। घर में खाने को दाना तक न था। बालक के पिता उस क्षण घर पर नहीं थे। उनके पधारने पर जब उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति का शुभ समाचार सुनाया गया तो कहने लगे, 'अरे जे तौ रोज जुई स्वाँग बनाये बैठी रहत हैं। हम कहाँ लौं रोज-रोज धनकुन बुलाय बैठारें।'

'बालक के पिता निपट निरक्षर होते हुए भी भावुक ब्राह्मण थे, लेकिन जीवन-संग्राम में सदा पराजित होते रहने पर उनके अन्तर का सोता सूख गया था। अपने जीवन में गिनती के अवसरों पर ही दोनों समय उन्हें भरपेट भोजन प्राप्त हुआ होगा। इस पर कोढ़ में खाज के समान बढ़ती हुई सन्तति अब उनके जी का जंजाल बन गयी थी।

'अपनी विरक्ति के बावजूद समय पर पिता ने नव शिशु का नाम परमेश्वर रखा। पर उन्हीं दिनों एक समीपस्थ गाँव के सम्पन्न ज़मींदार घराने में एक बालक का भी यही नाम रखा गया था। तब उस निर्धन पिता की उस अनधिकार चेष्टा पर उसे इतनी डाँट पिलायी गयी थी कि विवश हो उसे अपने पुत्र का नाम बदल कर रामेश्वर कर देना पड़ा।

'ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में पलने वाले बालक की शिक्षा-दीक्षा कहाँ तक समुचित रूप से हो पाती? जहाँ पाँच-छै व्यक्तियों का भरण-पोषण पिता की दरिद्रता, निष्ठुर समाज की कुव्यवस्था, श्रम-शक्ति और साधनों के असमान विभाजन के कारण बड़ी कठिनाई से हो रहा हो; जहाँ एक सद्य-प्रसूता जननी चक्की पीस, गोबर पाथ और कपास बीन कर अपने पति और पुत्रों का पेट पाल रही हो, वहाँ उस नवागन्तुक

सन्तान की उच्च शिक्षा कहाँ से हो सकती थी। उसके लिए यह सौभाग्य की बात थी कि वह किसी-न-किसी तरह जीवित तो रह सका।'

और उस भूमिका से अपने जन्म और आरम्भिक जीवन का यह वृत्तान्त सुना कर कवि करुण ने कहा :

'वही बालक रामेश्वर, 'करुण सतसई' नाम की इस क्षुद्र कृति के रूप में आज आपके सम्मुख उपस्थित है। उसके शब्द कैसे भी हों, उसके काव्य की भाषा भले ही शुद्ध ब्रज न हो, उसमें अवधी और भोजपुरी के शब्द भी हों, भले ही उसने छोटे मुँह बड़ी बात कही हो, पर उसने जो कहा है, वह है सब बावन तोले पाव रत्ती ठीक। उच्च शिक्षा-दीक्षा के अभाव में केवल अपने ही अनुभव पर एक भुक्त-भोगी ने जो देखा, सुना और समझा, चाहे वह खरा हो या खोटा, प्रिय हो या अप्रिय, सत्य हो या असत्य, सात सौ दोहों द्वारा स्पष्टता और निर्भीकता पूर्वक उसने ईमानदारी और सच्चाई के साथ केवल इस आशा पर रख दिया है कि :

संत हंस गुण गहहिंगे
परिहरि बारि बिकार!'

और यूँ भूमिका से कुछ पन्ने पढ़ कर कवि ने बताया कि उनकी सतसई के पहले शतक में कवि, नेता, रोटी और हरिजन सम्बन्धी और दूसरे शतक में अन्नदाता, उत्तम खेती, कृषिजीवी, श्रमजीवी और भावी शासक वर्ग के बारे में सटीक दोहे हैं। 'मैं चाहता तो यही था,' उन्होंने कहा, 'कि शुरू ही से दोहे सुनाऊँ, लेकिन देर हो गयी है, इसलिए मैं पहले 'बिसमता' और फिर यदि समय रहा तो 'दासता' खण्ड के दोहे सुनाऊँगा।'

चेतन ने डायरी निकाल ली कि यदि कोई दोहा अच्छा लगे तो उसे तत्काल नोट कर ले। उसका खयाल था कि कवि चातक की तरह करुणजी भी धारा प्रवाह पढ़ते जायेंगे, लेकिन उन्होंने पहला दोहा पढ़ा :

बरसावहिं बैसम्य के बारिद दारिद गाज
कबहुँ कि बेल सुमेल की सरसावहिं सुखसाज

और शुक्लाजी के अनुरोध पर दोबारा पढ़ा तो अगला दोहा पढ़ने से पहले उन्होंने मसौदे ही से उसकी व्याख्या भी पढ़ी। पढ़ी कहना ग़लत होगा क्योंकि वह तो उन्हें कण्ठस्थ थी। यों ही वे बीच-बीच में मसौदे पर नज़र डाल लेते थे :

'विषमता कितने जघन्य पापों की जननी है, इसका अनुमान हम में से कम व्यक्ति करते होंगे। हमारे बीच आज जो लड़ाई-झगड़े, मार-काट, लूट-खसोट, मुकदमेबाज़ी तथा जालसाज़ी का बाज़ार गर्म है, इसका एकमात्र कारण यही विषमता राक्षसी है! बात के तथ्य को न समझने की हमारी कुछ ऐसी आदत पड़ गयी है कि हम कभी इसका अनुमान भी नहीं करते कि हमारे दुख-दारिद्र्य का एक-मात्र कारण यही विषमता राक्षसी है। किन्तु ध्यान से देखने पर आपको पता चलेगा कि यह विषमता हमारी अपनी पैदा की हुई है—ईश्वर, धर्म, पुनर्जन्म अथवा कलियुग, आदि का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। ये बातें उन लोगों ने हमें बहकाने के लिए उड़ा रखी हैं, जो हमारी बेवकूफ़ी से सदा अपना उल्लू सीधा करते रहे हैं और जिनके पौ बारह इसी में हैं कि वे बड़े ऊँचे, पूज्य और कुलीन बन कर हमें नीच और नालायक समझते रहें।'

और यूँ लम्बी व्याख्या सुना कर (जो चेतन ने बाद में देखा कि उन्होंने फ़ुटनोट में दे रखी थी और जो उस सीधे-सादे दोहे के सन्दर्भ में चेतन को नितान्त बेतुकी और असंगत लगी थी) कवि करुण ने दो दोहे एक साथ पढ़े :

एक अकेले डील हु गाड़हिं लाख हजार
बिबिध कुटुम्बी एक के घूमहिं अन्न पुकार
एक महा मन्दागि तें मरत अभागे रोय
एकहिं जड़ जठरागि की औषधि लहै न कोय

चेतन का खयाल था, अब करुणजी लगातार दोहे पढ़ते हुए 'विषमता' खण्ड को समाप्त कर देंगे, पर वे रुक गये और उन्होंने फिर एक लम्बा भाषण झाड़ दिया :

'देखते जाइए, विषमता क्या-क्या गुल खिला रही है। क्या यह सच नहीं है कि आज जो इतने ज्यादा वैद्य-हकीम, ऐलोपैथ, होम्योपैथ आदि दिखायी पड़ रहे हैं—जिन्हें सैकड़ों मील से औषधि-निर्माण-कला अथवा चिकित्सा-विधि केवल डाक द्वारा सिखला कर डिप्लोमे दे दिये जाते हैं और जिनके बेगिनती साइनबोर्ड शहरों की गन्दी गलियों में लटके दिखायी दे रहे हैं—इसी विषमता द्वारा फलते-फूलते हैं। सेठजी के पास ऐसा तो काम होता नहीं कि जिसमें उन्हें अपने हाथ-पैर हिलाने पड़ें, उनकी रोटी पच जाय और उनका पेट-पिरामिड पिचका रहे। उनका धन कैसे बढ़े, बस यही चिन्ता उन्हें रहती है। उनकी अट्टालिकाएँ, उनकी मोटर-कारें तथा उनके कारोबार तो उन श्रमजीवियों की कठिन कमाई का अपहरण-मात्र हैं, जो अपना खून-पसीना एक कर, दिन-रात दुख-दारिद्र्य की ज्वाला से जलते रहते हैं। फिर वे भला मन्दाग्नि के शिकार क्यों न हों।'

'वाह वा! विषमता की क्या सच्ची और तथ्यपरक तस्वीर खींची है।' शुक्लाजी ने नथुनों और मूँछों में मुस्कराते हुए ताली बजायी, जिसमें लगभग सभी ने योग दिया।

केवल पीछे बैठे एक युवक ने (जिसे चेतन नहीं जानता था) कहा—'आपने जिस सेठ का चित्र अभी खींचा है, निश्चय ही उसके पिता धन-सम्पदा और व्यापार छोड़ गये होंगे, लेकिन जो लोग व्यापार शुरू करते हैं, वे तो दिन-रात एक कर देते हैं।'

तब उसी के पास बैठे दूसरे युवक ने कहा, 'कुंज भाई, करुणजी का इशारा तुम्हारे सेठ की तरफ़ नहीं है। वह तो सच्चा श्रमजीवी है।'

इस पर गोष्ठी में एक नशीला ठहाका पड़ा।

लेकिन शुक्लाजी की प्रशंसा से करुणजी उदार हो गये थे। उन्होंने मसौदे में कुछ नोट किया और बोले, 'अभी यह पृष्ठ नहीं छपा, मैं प्रेस-कापी में संशोधन कर दूँगा। आपका सुझाव यथार्थ है। मेरी कलम से किसी के प्रति अन्याय हो, मैं इसके पक्ष में नहीं।'

चेतन को वह सब कुछ एक फ़ार्स-सरीखा लग रहा था। करुणजी

के दोहों में न उसे कोई ऐसी पेचीदगी दिखायी दी, न दुरूहता, न गहराई कि उन्हें समझाने के लिए उतनी लम्बी व्याख्याओं से श्रोताओं को बोर किया जाय। सीधे-सरल दोहे थे। उनमें किसी प्रकार का चमत्कार भी नहीं था। न अलंकार, न उपमाएँ, न उत्प्रेक्षाएँ। दो दोहों की व्याख्या ही से वह ऊब गया था। सच्ची बात यह है कि दूसरे भी उबिया गये थे और अतिरिक्त प्रशंसा से कवि करुण का मज़ाक उड़ाने लगे थे। कवि दो-तीन दोहे पढ़ने के बाद भाषण देने लगते और यह भूल जाते कि वे दोहे सुना रहे हैं और श्रोता स्कूली छात्र नहीं, स्वयं कवि और कथाकार हैं। लेकिन वहाँ पर उपस्थित मण्डली उनके स्वभाव से परिचित थी और विजया के सेवन का भरपूर दाम चुका रही थी। वे लोग उनके दोहों और व्याख्याओं की खूब प्रशंसा करते और, 'कितना ठीक कहा है।' 'कटु है, लेकिन यथार्थ है !' 'वाह वा, कैसा सटीक चित्रण किया है !' 'कोई भुक्त-भोगी ही यह सब लिख सकता है!' 'करुणजी, ज़रा यह दोहा फिर पढ़िए, वाह वा, वाह वा !'. . .आदि वाक्यों से उनका उत्साह बढ़ाते एक दूसरे की ओर देख कर आँखें दबाते, और मुस्कराते ! लेकिन कवि करुण, जो सतसई लिख कर मन-ही-मन अपने को महाकवि समझने लगे थे, इन व्यंग्योक्तियों को यथार्थ प्रशंसा समझ कर और भी जोश में आते गये। यहाँ तक कि वे उठ कर खड़े हो गये और न केवल दुगने जोश से दोहे पढ़ने लगे, वरन व्याख्याएँ पढ़ते समय भाषणकर्ताओं की तरह एड़ियाँ उठाने और हाथ से हवा को चीरने अथवा मुक्कों से तहस-नहस करने लगे। वे एकदम ओज से भर गये और अपनी ही वाणी सुनते हुए अपने इर्द-गिर्द से एकदम विसुध हो गये। 'बिसमता' खण्ड के जिन और दोहों की उन्होंने व्याख्याएँ कीं और उनमें से जिन कुछ को चेतन ने डायरी में नोट कर लिया, वे इस प्रकार हैं :

इक एम० ए०, आचार्य इक, कला-कुमार कहाय
कारो अक्षर भैंस सो, एकहिं किन्तु लखाय

('कला कुमार' उन्होंने अंग्रेज़ी शब्द 'बैचलर आफ़ आर्ट्स' के लिए

इस्तेमाल किया है, यह बताते हुए उन्होंने अंग्रेज़ी शब्दों को ज्यों-का-त्यों अपनाने पर लम्बा भाषण दिया और राष्ट्र भाषा का महत्व जताया !)

इक शतरंजन में रमै, मन रंजन के हेत
एकहिं घोर कठोर श्रम, साँसहू लेन न देत

(इस दोहे की व्याख्या में उन्होंने श्रम के समान-विभाजन से श्रमिकों के लिए आराम और मनोरंजन की समान सुविधा पर बल दिया।)

होत पुष्ट एक पुष्टई, कर सेवन हर साल
एक चिकित्सा हीन ह्वै, त्यागहिं प्राण अकाल

(इस दोहे की व्याख्या में, 'क्या आपने कभी दीन हीन ग्रामीण जनों की दुर्दशा उस समय देखी है, जब ग्रामों में हैज़े, प्लेग अथवा चेचक का प्रकोप हुआ हो ! हाय हाय, बेचारों के लिए न कहीं कोई वैद्य होता है, न डॉक्टर, न हस्पताल, न औषधालय,' से भाषण शुरू करके करुणाजी ने इस सन्दर्भ में गाँवों की भयंकर दुर्दशा का बखान किया और अन्त में वहाँ के नीम-हकीम वैद्य-डॉक्टरों के बारे में एक और दोहा पढ़ा : वैद्य अनारी निर्दयी, अनुभवहीन, अशील। नाड़ी देखन जात, लै इक मुद्रा प्रति मील ।।)

फिरत अभय बर पाय इक, करि दुष्कर्म अकूत
करि सेवा हू एक नित, समझे जात अछूत

(इस दोहे की व्याख्या में, 'क्या आप जानना चाहते हैं, ये कौन सज्जन हैं ? वह देखिए महफ़िल लगी हुई है'. . .से शुरू करके उन्होंने शराब के ठेकेदार पण्डित त्रिवेदी के कुकर्मों का सविस्तार पर्दाफ़ाश किया, जिनकी विधवा बहू ने हाल ही में विधवा-आश्रम में पनाह लेते हुए बयान दिया कि मेरे ससुर ने दो बार मेरा गर्भ गिरवा दिया। अब की बार भी गिरवाने वाले थे कि मैं भाग कर आश्रम में चली आयी। और इसके बाद उन्होंने रमल्ला चमार की दुख-गाथा सुनायी, जो सब की सेवा करते हुए भी अछूत समझा जाता है।)

रहैं चिरन्तन लौं न क्यों, दीन मलीन अधीन
इक उद्योग विहीन ह्वै, ह्वै इक साधन-हीन
(की व्याख्या में कवि ने पूरा मार्क्सवाद श्रोताओं को पढ़ा दिया, जिस पर श्रोताओं ने उनका बड़ा उत्साह बढ़ाया।)

एकन के नित श्वान हू, दूध जलेबी खाहिं
अन्न बिना सुत एक के, हा रोटी रिरिआहिं

एकन के सेवहिं सुतन, नित्य अनेकन धाय
दूध विना सूखहिं सदा, एकन के सुत हाय

(सुना कर कवि ने असमानता के राजनैतिक और धार्मिक कारण बताये।)

और ऐसे कितने ही दोहे और व्याख्याएँ सुना कर, (चेतन को लगा, जैसे एक युग के बाद) कवि ने कहा, 'बिसमता खण्ड का अन्तिम दोहा है :

एक 'महा बाम्हन' बनो माल हरामी खाय
करत सुसेवा हू न इक पैसा पूरे पाय'

०

चेतन ने सुख की लम्बी साँस भरी, क्योंकि करुणजी ने इस दोहे की कोई व्याख्या नहीं की। यह भी हो सकता है कि शुक्लाजी ने उन्हें व्याख्या करने की मोहलत नहीं दी और ज़ोर से ताली बजायी, जिसमें सब ने योग दिया। तब इससे पहले कि करुणजी दूसरा खण्ड शुरू करते, शुक्ला जी ने हँस कर कहा, 'कवि महाराज, आप भी थक गये हैं, गला तनि तर कर लीजिए और आपकी इस यथार्थवादिता ने जिन मित्रों का नशा हरण कर दिया है, उन्हें भी ज़रा उसकी पूर्ति का अवसर दीजिए।'

तब करुणजी बैठ कर जेव से एक मैला रूमाल निकाल, उससे मुँह और गर्दन का पसीना पोंछने लगे और शुक्लाजी ने विकलजी से कहा, 'तो विकलजी उठिए और कुछ प्यास बुझाने का प्रबन्ध कीजिए।'

तभी नीरवजी तकिये का सहारा छोड़ कर उठे और आँखें खोल,

उन्हें मुलमुलाते हुए उन्होंने कहा, 'भाई करुणजी, ऐसी दयानतदारी-भरी, सच्ची, खरी बातें लिखना आप ही जैसे भुक्त-भोगी का वश है। लगता है, आपने जो सहा है, सब सतसई के पन्नों में उँडेल दिया है। पुस्तक को बाहर आने दीजिए, यह समाज-सुधारकों, मजदूरों, कृषकों और नेताओं में धूम मचा देगी। इसकी एक प्रति महात्मा गान्धी को ज़रूर भेजिएगा ताकि वास्तव स्थिति उनसे छिपी न रहे।'

तब करुणजी ने गद्गद् हो कर कहा, 'जितने में ठण्डाई आती है, मैं आपको भूमिका की अन्तिम चन्द पंक्तियाँ सुनाना चाहता हूँ, जिनमें मैंने गाँधीजी के पद्-चिह्नों पर चल कर, उन सभी लोगों से क्षमा माँग ली है, जिनका विरोध मैंने सतसई के दोहों अथवा व्याख्याओं में किया है।'

और वे मसौदे के पन्ने उलट कर एक जगह से पढ़ने लगे :

'अब उन साधु-सन्तों, महन्तों, वर्ण-व्यवस्थापकों, समाज के संचालकों, ज़मींदारों, साहूकारों, पूँजीपतियों, सत्ताधारियों तथा मज़हब-परस्तों आदि से विनम्र शब्दों में क्षमा-याचना करना मैं अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ, जिनके कुकृत्यों की ओर मुझे भर्त्सनापूर्ण शब्दों में संकेत करना पड़ा है। अवश्य ही स्थान-स्थान पर उनके कृत्यों की कटुता-पूर्ण आलोचना की गयी है, किन्तु सच्चाई, ईमानदारी और नेकनीयती के साथ, सदाशयपूर्वक—सब की हित-कामना को लक्ष्य में रख कर! यह निश्चय है कि काल-चक्र का तीव्रगामी प्रवाह हमें किसी नये-निराले लक्ष्य की ओर लिये जा रहा है। आज नहीं तो कल, युग बदलने वाला है। तो क्यों न हम समय रहते अपना हृदय-परिवर्तन करें, अपने को बदलें और ऐसे नेक समाज का निर्माण करें, जहाँ न कोई ब्राह्मण हो, न अछूत; न ज़मींदार हो, न पूँजीपति; न शासक हो, न शासित—सब एक समान हों।'

'साधुवाद। साधुवाद!' नीरवजी ने कहा, 'आपने बड़े सुन्दर शब्दों में अपनी बात कही है। महात्मा गान्धी भी हृदय-परिवर्तन में विश्वास

रखते हैं। ये लोग भले ही आपको कामरेड कहें, मैं तो गान्धीवादी ही कहूँगा।'

इस पर करुणजी के संजीदा होंटों पर बड़ी प्यारी मुस्कान खेलने लगी।

विकलजी देर से उनके लिए ठण्डाई के गिलास लिये खड़े थे। नीरव जी ने यह सब कह कर गिलास की ओर हाथ बढ़ाया और एक ही घूँट में पी गये। होंटों पर ज़बान फेरते हुए कवि करुण ने भी गिलास लिया और यद्यपि उनका कण्ठ सूख रहा था, पर वे संयम से घूँट-घूँट पीने लगे।

०

चेतन के सामने पिछली शाम की गोष्ठी अपने नन्हें-से-नन्हें ब्योरे के साथ आ गयी। उसे कवि करुण पर दया हो आयी, जिन्होंने ज़िन्दगी में इतना दुख पाया था और इतना कष्ट सह कर, सात सौ दोहों और लम्बी-लम्बी व्याख्याओं से भरपूर, इतना वृहद ग्रन्थ लिखा था; जिसे छपवाने में उनकी पत्नी की सारी जमा-पूँजी खर्च हो गयी थी; उसका आधा वेतन ऋण-दाताओं की भेंट हो रहा था और उन्हें एक जून खाना पड़ रहा था। (ये सब बातें उसे वापसी पर चातकजी से मालूम हुई थीं।) लेकिन इस सब के बाद चेतन को लगा था कि उस सारे यथार्थ-चित्रण और उन लम्बी, ऊबाऊ व्याख्याओं के बावजूद उनकी सतसई और चाहे जो हो, काव्य नहीं है। एक दोहे ने भी उसके मन को नहीं छुआ था। चेतन के दिमाग़ में रसखान, वृन्द, कबीर, बिहारी के अनेक दोहे गूंज गये, जो उसने बी० ए० में पढ़े थे और उसे आज भी कण्ठस्थ थे। करुणजी का एक भी दोहा उसे वैसा न लगा था।. . .गोष्ठी में उनके मित्र जो रिमार्क कस रहे थे, उससे चेतन को साफ़ लगा था कि उन्होंने भाँग की उस गोष्ठी में करुणजी को विदूषक का दर्जा दे रखा है और वे स्पष्ट ही उनका मज़ाक उड़ाते हैं और यह सब देख कर चेतन को बड़ी तकलीफ़ हुई थी, क्योंकि बातें करुणजी की ठीक थीं। शब्द, छन्द, तुक वगैरह, सब ठीक थे—बस कविता नाम की चीज़ का वहाँ

अभाव था। चातकजी को उनके घर छोड़ कर फिर दूसरे दिन आने और अपनी कहानी सुनाने का वादा करके, जब वह रात को दस बजे के करीब घर लौटा था और खाना खा कर लेटा था तो गयी रात तक यही सब सोचता रहा था।

०

उसने घुटनों पर रखी हुई नोट-बुक उठायी और थोड़ी जगह छोड़ कर लिखा :

'कवि चातक और करुण निश्चय ही अपने आपको महान कवि समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शब्दों और छन्दों पर भी उनका अधिकार है, पर उनके यहाँ वह चीज़ नहीं, जो दिल अथवा दिमाग़ को छू ले और उन्हें बराबर कोंचती रहे और जिसका कोई प्रभाव हमेशा के लिए मन पर रह जाय!

'पता नहीं, मेरी रचनाओं में अभी वह चीज़ आयी कि नहीं। जैसे उन्हें अपनी रचनाएँ पसन्द हैं, वैसे ही मुझे भी हैं, लेकिन कवि की महज़ अपनी पसन्द इस सिलसिले में शायद कोई माने नहीं रखती।

'लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी ये रचनाएँ आरम्भिक रचनाएँ हैं। भाषा और छन्दों पर मेरा अधिकार हो जाय तो इन सभी कवियों को मैं बहुत पीछे छोड़ जाऊँगा। क्योंकि मैं यकीनन अपनी रचनाओं में वह गुण पैदा करूँगा, जो मेरे अनुभव को सब का बनाये और मैं जैसे महसूस करता हूँ, वैसे ही पाठक भी महसूस करें। करुणजी जैसे महसूस करते हैं, यदि उनके दोहे वह सब अभिव्यक्त कर पाते तो उन्हें इतनी लम्बी व्याख्याओं और भाषणों की ज़रूरत न पड़ती।'

कुछ जगह छोड़ कर चेतन ने फिर लिखा :

'मुझे लिखने में जितना सुख मिलता है, उतना किसी चीज़ में नहीं मिलता। दुनिया के तमाम झगड़े-झंझट और दुख-दर्द से भाग कर

मेरा मन साहित्य में पनाह ढूँढ़ता है। मैं लिखता हूँ तो सब कुछ भूल जाता हूँ। मुझे किसी चीज़ में इतना रस नहीं मिलता, जितना अपने भावों को काग़ज़ पर उकेरने में। मैं निश्चय ही अपनी सारी ज़िन्दगी इसके अर्पण कर दूँगा और जैसा कि पिता उपदेश देते थे, इसी फ़न में कमाल हासिल करूँगा और एक दिन महान लेखक और कवि बन कर रहूँगा।'

०

चेतन ने नोट-बुक में इतना ही लिखा था कि चन्दा विद्यालय से आ गयी। चेतन उठा। उसने नोट-बुक दराज़ में रखी। अपनी उर्दू कहानियों की फ़ाइल उठायी। बिना उसकी ओर देखे उसने कहा, 'मैं ज़रा चातकजी को कहानी सुनाने जा रहा हूँ। हो सकता है, मुझे देर हो जाय। तुम फ़िक्र न करना। वे मेरा काम कर नहीं रहे। उनके सिर पर सवार होना ज़रूरी है।'

और इतना कह कर वह बाहर निकल गया।

चन्दा कहना चाहती थी, 'आप चातकजी के यहाँ जितना चाहे धरना दीजिए, पर आप मुझसे क्यों रूठे हैं। आँख तक नहीं मिलाते!'

पर उसने कुछ नहीं कहा। चुपचाप अपने पति को जाते देखती रही। वह उसकी व्यथा समझती थी, पर उसके पास उसका कोई इलाज नहीं था। वह चारपाई की पट्टी पर बैठ गयी और कुछ देर धोती के आँचल से हवा करती रही। फिर लम्बी साँस भर कर उठी और घर के काम-काज में लग गयी।

सैंतीस

कवि चातक पंजाब विश्वविद्यालय की 'हिन्दी रत्न' परीक्षा के लिए एक काव्य-संकलन की भूमिका लिख रहे थे और चेतन परम उत्सुक भाव से उनके पास बैठा था।

काव्य-संकलन 'हिन्दी पुस्तक भवन' से छपने जा रहा था और संकलन सम्पादित करने के लिए चातकजी को ढाई सौ रुपया पेशगी मिला था और ढाई सौ, पुस्तक छपने पर मिलने वाला था। पाठ्य-क्रम में उसके स्वीकृत हो जाने की पूरी उम्मीद थी, क्योंकि कवियों को कुछ देना नहीं था और पुस्तक की सारी रॉयल्टी हिन्दी बोर्ड के एक महत्वपूर्ण सदस्य को मिलने वाली थी। चातकजी को रॉयल्टी का मोह नहीं था। वे उस पर ऐसी भूमिका लिखना चाहते थे, जो उनके कवि को प्रतिष्ठित कर दे। बात यह थी कि पंजाब विश्वविद्यालय में उस वक्त तक जितने काव्य-संकलन पढ़ाये जा रहे थे, उनमें कवि के रूप में उनका नाम नहीं आया था। और भी किसी प्रान्त के काव्य-संकलन में उनका नाम नहीं था, इसलिए बोर्ड के उस महत्वपूर्ण सदस्य ने राय दी थी कि वे अपने सम्पादन

में तैयार होने वाले काव्य-संकलन में अपनी कविता न दें और एक लम्बी भूमिका जमा कर लिखें।

चेतन इसलिए परम औत्सुक्य से उनके पास बैठा था कि चातकजी उसकी एक छोटी गल्प अपनी उस लम्बी भूमिका में जमाने जा रहे थे।

०

चेतन इधर कई दिनों से बाकायदा उनके घर आता था, बल्कि उसके खाली समय का अधिकांश उनकी संगति में गुज़रता था। उन्होंने उसकी उर्दू कहानियाँ सुनी थीं। उसकी हिन्दी कहानी देख भी दी थी, उसकी ग़लतियाँ सुधार दी थीं, लेकिन 'मंजरी' में छापने की बात वे साफ़ टाल गये थे। जब अपने साहित्यकार के अहं को ताक पर रख कर और उन्हें अच्छे मूड में पा कर उसने कहा था कि वे उसकी कहानी 'मंजरी' में क्यों नहीं छाप देते तो उन्होंने उसे समझाया था कि 'मंजरी' अभी नयी-नयी निकली है। अभी उसको उन्हें जमाना है, इसलिए पहले कुछ अंकों में वे पुराने और जमे हुए लेखकों की रचनाएँ ही छापेंगे। उन्होंने उसे सलाह दी थी कि वह अपनी कहानी लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस अथवा कलकत्ता की किसी पत्रिका को भेजे। जब उसकी कहानियाँ कुछ अन्य पत्र-पत्रिकाओं में छप जायेंगी तो फिर वे भी छाप देंगे।

०

चेतन ने मन-ही-मन कहा था—तब छाप कर आप कौन-सा एहसान करेंगे ?—लेकिन प्रकट वह चुप रहा था। अपनी निराशा को उसने कहीं गहरे में दफ़न कर दिया था और चुपचाप कुछ और कहानियाँ हिन्दी में करने लगा था। उसने तय किया था कि वह पाँच-छै कहानियाँ हिन्दी में कर लेगा और बारी-बारी से उन्हें विविध हिन्दी पत्रिकाओं में भेजेगा। एक भी छप गयी तो उसके लिए रास्ता खुल जायगा।

घर में उसका मन न लगता था, इसलिए वह ज़्यादा वक्त चातक जी के ही यहाँ गुज़ारता। भाभी के छोटे-मोटे काम कर देता।

चातकजी की कविताएँ सुन लेता, उनकी लनतरानियाँ सुन लेता, किसी उर्दू शब्द की हिन्दी उसे न आती तो उसका भाव बता कर दो-तीन शब्दों में कौन-सा उपयुक्त है, यह पूछ लेता था। जैसे उसका खाली वक्त कभी पण्डित रत्न के साथ बीतता था, अब चातकजी के साथ घूमने में बीतने लगा था।

इसी बीच उसने उन्हें अपनी कुछ लघुकथाएँ सुनायी थीं, जो उसने रूसी कथाकार 'सालोगब' की एक लघुकथा से प्रभावित हो कर लिखी थीं। उनमें से एक, जिसे स्वयं हिन्दी में करके मुन्शी चन्द्रशेखर ने अपने साप्ताहिक में छापा था, चातकजी को बड़ी पसन्द आयी थी। वे अपने काव्य-संकलन की कविताएँ चुन चुके थे और उस पर एक बहुत लम्बी भूमिका लिख रहे थे। वह लघुकथा सुन कर उन्होंने अचानक कहा था, 'लो मैं तुम्हारी यह गल्प अपनी भूमिका में जमा देता हूँ। लाहौर के हिन्दी बोर्ड के सभी सदस्य और 'हिन्दी रत्न' के सारे परीक्षार्थी तुम्हारे नाम से परिचित हो जायेंगे ?' और उसकी पीठ थपथपाते हुए उन्होंने इतना और जोड़ दिया था, 'तुम घबराओ नहीं, मैं धीरे-धीरे तुम्हें हिन्दी में इन्ट्रोड्यूस कर दूँगा।'

काव्य-संकलन की भूमिका वे बहुत लम्बी लिख रहे थे। रोज़ जितना लिखते, चेतन को सुनाते। उस दिन जो खण्ड वे लिख रहे थे, उसी में उसकी कहानी को वे जमाने जा रहे थे और चेतन यह देखने के लिए उत्सुक था कि वे किस प्रकार उसकी लघुकथा को काव्य-संकलन की भूमिका में जमाते हैं और वह भूमिका के उस खण्ड की समाप्ति का बेताबी से इन्तज़ार कर रहा था।

०

चातकजी ने अपनी भूमिका के अलग-अलग खण्ड किये थे और हर खण्ड के अलग शीर्षक और उप-शीर्षक दिये थे। उस वक्त तक वे—'कविता की परिभाषा,' 'कवि कौन है ?' 'कविता की स्फूर्ति,' 'कविता का विषय,' 'हिन्दी कविता' तथा 'छायावाद' नामक शीर्षकों पर लिख चुके थे।

'छायावाद' शीर्षक के अधीन उन्होंने एक उप-शीर्षक दिया था—'आधुनिक कविता में करुण रस का आधिक्य !' इसी शीर्षक के अन्तर्गत उन्होंने उसकी लघुकथा देने की बात कही थी।

लगभग एक-डेढ़ घण्टा वे धाराप्रवाह लिखते रहे और चेतन प्रकट 'मंजरी' का ताज़ा अंक पढ़ता हुआ परोक्ष रूप से खण्ड के समाप्त होने की बाट देखता रहा। आख़िर कवि ने कलम रखा और बोले, 'लो देखो, कैसी सफ़ाई से तुम्हारी लघुकथा मैंने भूमिका में जमा दी है ?' और वे नये लिखे पन्ने उसे सुनाने लगे।

भूमिका का यह खण्ड उन्होंने कवि पन्त की उक्ति से आरम्भ किया था :

'वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान'

और ये दो पंक्तियाँ लगभग गा कर वे पूरी भावना से आगे पढ़ने लगे :

'कुछ लोगों को हमारे कविता-साहित्य की विकल बाँसुरी से बड़ी घबराहट होती है। वे इसे घातक समझ रहे हैं। साथ ही अस्वाभाविक भी। उनका कहना है कि व्यक्तिगत दुख हाट-बाज़ार में रखने की चीज़ नहीं। वे कबीर के शब्दों में कहना चाहते हैं :

कबिरा निज मन की बिथा मन ही राखो गोय
सुनी इठलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय !

व्यथा उनके निकट मन में छिपा कर रखने की चीज़ है। उनका खयाल है कि सच्चे कवि को रोना नहीं चाहिए ! परन्तु आज तक कोई ऐसा कवि नहीं हुआ, जिसने एक बूँद भी आँसू न गिराया हो। यह हृदय की सात्विक दुर्बलता है। कवि जान-बूझ कर कभी नहीं रोता। वह बेहोशी ही में रोता है। भला यह कौन कह सकता है कि कोई होश में अनमोल हीरों की दुकान लगा कर बैठेगा। कवि दुकान नहीं लगाता। उनका मोल नहीं लेता। लोग उसकी आँखों के आँसुओं को चुरा कर ले जाते हैं। जो लोग आँसुओं की दुकान लगा कर बैठते हैं, वे सच्चे मोती नहीं

दे सकते। उन्हें मोम के मोती अथवा पानी की बूँदें ही समझिए। संसार उन्हें एक दिन अपने आप परख लेता है। हमारे कवियों में किन-किन के आँसू झूठे हैं, यह भविष्य अपने आप बता देगा। परन्तु यह कहना कि रोना अस्वाभाविक है, ठीक नहीं। यह कहना, हृदय के सुकुमार भाव का अपमान करना है।'

और यूँ आँसुओं की महत्ता बतला कर कवि चातक ने तीन पैरे नये कवियों के रोदन की यथार्थता पर लिखे थे और सिद्ध किया था कि ये आँसू कवियों की निर्बलता के नहीं, सबलता के ही द्योतक हैं, क्योंकि सक्षम कवि ही आँसुओं के सच्चे मोती रोल सकता है। अक्षम कवि का रोना किसी के मन पर प्रभाव नहीं डालता।. . .इस सब के बाद उन्होंने लिखा था :

'कविता संसार का हृदय है। कवि का हृदय स्वयं एक विश्व है। जिस प्रकार संसार में दुख-सुख, अवसाद-आनन्द, निराशा-आशा, शूल-फूल, शिशिर-वसन्त—अनेक परस्पर-विरोधी वस्तुएँ मिलती हैं, उसी प्रकार काव्य में 'आह' और 'वाह' दोनों मिलेंगी। कवि प्रेमी है, प्रियतम नहीं। उसका हृदय विश्व है, विश्वपति नहीं। उसकी वाणी प्रेम की बाँसुरी है, हँसी-मज़ाक की सारंगी नहीं। कवि दिल वाला है, हृदय-विहीन नहीं। सौन्दर्योपासक है, सौन्दर्य-निन्दक नहीं। वह हँसता है, रोता भी है।'

और यूँ कवि के रोने की स्वाभाविकता सिद्ध कर, उसका कारण ढूंढते हुए वे 'अतृप्ति' पर आ गये थे, जो कि चेतन की लघु-कथा का शीर्षक था। तब उन्होंने दो-तीन पैरे अतृप्ति पर लिखे थे और अन्तिम पैरे में कहा था :

'न तो हृदय अपने हृदय-धन को पा कर सन्तोष करता है और न खो कर। हमें मिलन में भी विरह का अनुभव होता है। हम जो चाहते हैं, उसे पा कर भी हमें सन्तोष नहीं होता, शान्ति नहीं मिलती, पाये हुए को खो देने का भय अथवा और पाने की इच्छा हमारे साथ लगी

रहती है। यही तो अतृप्ति का उन्माद है। इसी अतृप्ति के कारण हमारे दिलों में अवसाद घर कर लेता है और जब उसका आधिक्य होता है तो आँखों में आँसू उमड़ आते हैं।'

इस प्रकार अतृप्ति की व्याख्या कर कवि चातक ने चेतन की लघु-कथा को जमाया था :

'इसी अतृप्ति और उससे पैदा होने वाली बेचैनी और उन्माद को उर्दू के प्रख्यात गल्पकार श्री चेतनानन्द ने अपनी एक छोटी-सी गल्प में दर्शाया है। शीर्षक है—'अतृप्ति !' लिखते हैं :

'जब पतझड़ का राज्य था और बेलों के गहने हवा में छिपे हुए अज्ञात डाकुओं ने लूट लिये थे। जब पेड़ अपने नंगेपन, अपनी कंगाली को हसरत-भरी निगाहों से ताक रहे थे और बाग़ों में पागल बयार को सुगन्धि के बदले पौधों के दीर्घ निःश्वास मिलते थे, मुझे रूप और प्रेम किसी की तलाश में भटकते नज़र आये।

उनके बाल बेपरवाही के आलम में बिखरे थे, चेहरे ज़र्द थे, होंट ख़ुश्क थे और उनकी आँखों की मस्ती अस्त हो चुकी थी।

मैंने उन्हें रोक लिया और पूछा, 'तुम्हें किस चीज़ की तलाश है ?'

'वसन्त की।' उन्होंने उत्तर दिया और अपनी तलाश में संलग्न हो गये।

|

'जब वसन्त की हुकूमत थी और लताएँ फूलों के गहनों से लदी, झूले झूल रही थीं। जब पेड़ अपनी हरिताभ भूषा को देख कर फूले नहीं समाते थे और बाग़ों में मस्त बयार जी भर सुगन्धि से अपनी झोलियाँ भर रहा था, मुझे रूप और प्रेम फिर दिखायी दिये।

उनके केश सयत्न सँवरे थे। मुख उषा-से लाल थे, अधरों से सुधा टपक रही थी और आँखों में हज़ारों मदिरालय छिपे हुए थे।

लेकिन वे अब भी किसी की खोज में भटक रहे थे।

मैंने उन्हें रोक लिया और पूछा—'अब तुम्हें किस चीज़ की तलाश है ?'

'अनन्त वसन्त की।' उन्होंने उत्तर दिया और अपनी उस अनन्त खोज में चल पड़े !'

०

'क्यों ?' खण्ड सुना कर कवि ने दाद पाने की इच्छा से उसकी ओर देखा।

चेतन को कवियों के रूदन सम्बन्धी उनकी युक्तियाँ कुछ वैसी उपयुक्त न लगी थीं। उन्हें सुनता हुआ वह निरन्तर अपने पिता की नसीहत के बारे में सोचता रहा था। उसके पिता ने उसे हमेशा 'सर्वाइवल ऑफ़ द फ़िटेस्ट' का पाठ पढ़ाया था और वे उसे सदैव शक्ति-सम्पन्न होने का उपदेश देते थे। अव्वल तो उनका यह विश्वास था कि पतला-दुबला व्यक्ति भी यदि चाहे तो सैण्डो जैसा पहलवान बन सकता है, पर यदि किसी में शारीरिक बल न हो तो उनका ख़याल था कि वह दिमाग़ की शक्ति से दुनिया को ज़ेर कर सकता है और वे चेतन को हमेशा यही उपदेश देते थे। उनका यह उपदेश उसके ग्रहणशील मन में बद्धमूल हो कर बैठ गया था और वह सोचता था कि जो शक्तिशाली होगा, वह रोयेगा क्यों ? और उसके सामने अपनी माँ की सूरत आ गयी थी. . . कैसी भी विपत्ति क्यों न टूटे, उसने माँ को कभी रोते नहीं देखा था—और पिता की मद्यपता और दूसरे अत्याचारों के कारण उनके घर पर सदा मुसीबतों के पहाड़ टूटते रहते थे। लेकिन उसकी माँ रोने और हाय-हाय करने की बजाय पूरे सोच-विचार के बाद उस विपदा से जूझने का रास्ता निकाल लेती थी।—चेतन के सामने प्रथम महायुद्ध के वे दिन घूम गये, जब नये मकान के कारण पिता के सिर पर काफ़ी कर्ज़ चढ़ गया था और अतिरिक्त वेतन के लालच में उन्होंने रिलीविंग की ड्यूटी ले ली थी और सुदूर कोयटा डिवीज़न में चले गये थे। उनके वेतन का अधिकांश ऋण-दाताओं की भेंट हो जाता था। घर के खर्च

के लिए बहुत थोड़ा बचता । महीने के अन्तिम दिनों में प्रायः ऐसा होता कि शाम को वे स्कूल से आते तो प्याज़ के छोटे-छोटे कतले काट कर उनमें नमक-मसाला डाल कर उन्हीं से रोटी खा लेते और माँ के उपदेशानुसार :

'दिल वट्ट ज़माना कट्ट, भले दिन आएगे'

गाते-नाचते दालान में कुदकड़े मारा करते ।. . .कुछ वैसे भले दिन कभी नहीं आये, पर समय तो कट गया था और उन्हें शक्ति दे गया था । इसलिए कवियों के रोने और चातकजी द्वारा उस निर्बलता को सबलता बताने की बात चेतन की समझ में नहीं आयी । उसे वह भूमिका अजीब रिगमैरोल[1]-सी लगी । लेकिन इस रिगमैरोल से उन्होंने उसकी कहानी तो अपनी भूमिका में फ़िट कर ही दी थी और इससे न केवल उसे खुशी हुई थी, वरन वह उनका कृतज्ञ भी था ।

'क्या सोच रहे हो ?' कवि ने उसे कोई उत्तर न देते देख कर पूछा ।

चेतन ने अपने भावों का ज़रा भी आभास कवि को नहीं दिया । बोला, 'सोच रहा हूँ कि आपने किस कारीगरी से मेरी यह छोटी-सी गल्प अपनी भूमिका में नगीने-सी जड़ दी है ।'

कवि प्रसन्न और उत्साहित हो आये ।

'भूमिका ही में नहीं,' उन्होंने कहा, 'मैं इसी गल्प की तरह तुम्हें हिन्दी-क्षेत्र में नगीने-सा जड़ दूँगा ।'

कवि कुछ क्षण रुके । फिर उन्होंने आवाज़ को ज़रा धीमा कर के और चेतन को अपने भेद का साझीदार बनाते हुए कहा, 'इस संकलन में मैंने अपने तमाम मित्रों की कविताएँ रखी हैं । नीरवजी तक की दो कविताएँ दी हैं, हालाँकि जहाँ तक हिन्दी काव्य-क्षेत्र का सम्बन्ध है, उन्हें पंजाब, कहें कि विश्वविद्यालय की पाठ्यक्रम-निर्धारिणी-समिति के

---

१. घुमाव-फिराव वाली अललटप्प बात ।

बाहर कोई नहीं जानता । अब यह मेरे मित्रों का कर्त्तव्य है कि मुझे यहाँ जमने में वे मेरी मदद करें ।'

वे सहसा चुप हो गये । चेतन भी इस बात की राह देखता मौन बना रहा कि वे कहना क्या चाहते हैं ।

तब उन्होंने और भी धीरे से, जैसे उसे समझाते हुए, कहा, 'यद्यपि तुम यहाँ के रहने वाले हो और उर्दू-क्षेत्र में तुम्हें सभी जानते हैं, लेकिन यहाँ के हिन्दी वालों के लिए तुम नितान्त अपरिचित हो । इसी तरह हमें अपने प्रान्त के सभी हिन्दी वाले जानते हैं, लेकिन पंजाब का क्षेत्र हमारे लिए एकदम नया है ।'

और वे क्षण भर को रुके । चेतन ने कहा, 'हाँ, यह तो आप ठीक कहते हैं ।'

'हम दोनों ही यहाँ के हिन्दी क्षेत्र के लिए अपरिचित हैं,' कवि ने अपनी बात आगे बढ़ायी, 'नीरवजी पहले से जमे हुए हैं । उनके नाटक 'भूषण' और 'प्रभाकर' में पढ़ाये जाते हैं । हमें इस क्षेत्र में घँसना है । अभी तो मुझे यहाँ आये हुए कुछ ही महीने हुए हैं और मैंने अपने प्रान्त के एक स्नेही नाटककार का नाटक 'हिन्दी रत्न' में भिड़ा दिया है और अपने लिए यह संकलन ले लिया है । लेकिन वह समय दूर नहीं, जब हमारे भी नाटक पंजाब में पढ़ाये जायेंगे ।'

'लेकिन मैं तो नाटक लिखता नहीं ।' चेतन ने कहा ।

हालाँकि जब चातकजी ने 'हमारे' शब्द का प्रयोग किया था तो चेतन उस 'हमारे' में शामिल नहीं था, लेकिन उन्होंने उसका भरम बना रहने दिया । मस्ती से बोले, 'लिखोगे, लिखोगे—सब लिखोगे—कहानी भी, नाटक भी, कविता भी । और अगर मेरे साथ रहोगे तो तुम्हारी रचनाएँ पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ायी भी जायेंगी ।'

०

चेतन के मन में पाठ्य-पुस्तकों में पढ़े जाने की कुछ वैसी आकांक्षा नहीं थी । अपने कोर्स की उर्दू पुस्तकों में उसने जिन मुन्शी सूरजनारायण

'मेहर' की न जाने कितनी कविताएँ पढ़ी थीं, लाहौर आने पर उसे मालूम हुआ था कि उर्दू कवियों में उन्हें कोई भी नहीं जानता। पाठ्य-पुस्तकों की उसे चिन्ता नहीं थी, पर देश की प्रमुख हिन्दी पत्रिकाओं में छपने की उसके मन में बड़ी साध थी। इसीलिए वह चाहता था कि किसी तरह उसकी दो-एक कहानियाँ 'मंजरी' में छप जायें तो विशाल हिन्दी क्षेत्र तक पहुँचना उसके लिए कुछ सुगम हो जाय।. . . लेकिन जब चातकजी ने हामी नहीं भरी तो उसने अपनी कहानी, 'कुर्बान-गाहे-इश्क' का मसौदा मुन्शी चन्द्रशेखर को भेजा था कि यदि उन्हें पसन्द हो तो अपनी मासिक पत्रिका में छाप दें। मुन्शीजी ने कहानी की थीम और उसके निभाव को सराहा था। 'साहबे-किताब'[1] होने पर उसे बधाई दी थी और भविष्यवाणी की थी कि इसी तरह लिखता जायगा तो एक दिन चोटी पर जा पहुँचेगा। 'कुर्बान-गाहे-इश्क' की भी उन्होंने तारीफ़ की थी। उसका शीर्षक काट कर 'प्रेम की वेदी' कर दिया था; एकाध पैरे की भाषा सुधारने की भी कोशिश की थी, लेकिन फिर ज़्यादा कष्टसाध्य काम समझ कर उसे छोड़ दिया था और परामर्श दिया था कि उसे काफ़ी हिन्दी कहानियाँ पढ़नी चाहिएँ और भाषा पर अधिकार पाना चाहिए; कि अभी उसके हिन्दी-अनुवाद में ग़लतियाँ हैं। 'शब्द चाहे उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेजी, हिन्दी—किसी भाषा से भी लो,' उन्होंने लिखा था, 'खयाल सिर्फ़ यह रहे कि विचारों का क्रम और भाषा का प्रवाह न टूटने पाये।' और यह परामर्श दे कर उन्होंने कहान्मी लौटा दी थी और अपने लिए कोई सामाजिक कहानी माँगी थी।. . .

दुर्भाग्य से चेतन ने पण्डित रत्न के संसर्ग में वैसी ही रूमानी कहानियाँ लिखी थीं, जो अन्त में झटका देती थीं और पाठकों को चौंकाती थी। लेकिन चेतन को वे बहुत पसन्द थीं और कोई नयी सामाजिक कहानी लिखने की अपेक्षा वह पहले उन्हीं को पत्र-पत्रिकाओं में

---

१. ऐसा लेखक जिसकी पुस्तक छप गयी हो।

छपवाना चाहता था।

०

लेकिन चातकजी को उसने यह सब नहीं बताया और अपने आप को उनके हवाले करने का फ़ैसला कर लिया। उनके साथ रहने पर हिन्दी क्षेत्र के कुछ लोग तो उसे जान ही जायेंगे—उसने सोचा—और देर-सवेर उसे हिन्दी ठीक से लिखनी भी आ ही जायगी। मुन्शीजी को तो वह उर्दू में पत्र लिखता था, पर अन्य सम्पादकों को उर्दू में लिखने से काम न चल सकता था। कुछ दिन पहले उसने कलकत्ता के एक सम्पादक के नाम हिन्दी में पत्र लिख कर चातकजी को दिखाया था। पहले ही शब्द के हिज्जे ग़लत थे। 'प्रिय' को उसने 'प्रीय' लिख दिया था। चातकजी ने पत्र रख लिया था और कहा था कि वे पत्र लिख देंगे और वह उसे कापी कर के कहानी के साथ उन्हें भेज दे।. . .सो उनकी सहायता और परामर्श हर हाल में उसके लिए ज़रूरी था। इसलिए जब उन्होंने आश्वासन दिया कि वह उनके साथ रहेगा तो वे उसे साहित्य-क्षेत्र में जमा देंगे तब चेतन ने कहा कि वे जैसा कहेंगे, वह करेगा!

तब कवि ने उसे जो समझाया, उसका सार यह था कि उसे नीरव जी से हेल-मेल बढ़ाना चाहिए और बातों-बातों में उन्हें बताना चाहिए कि चातकजी ने 'हिन्दी रत्न' के लिए जो संग्रह संकलित किया है, उसमें उनको हिन्दी के कई नये कवियों से पहले स्थान दिया है और नीरवजी 'हिन्दी भूषण' के लिए जो संग्रह तैयार कर रहे हैं, उसमें उन्हें चातकजी की कुछ कविताएँ ज़रूर रखनी चाहिएँ।

'वे शायद आपत्ति करें,' चातकजी ने उसे समझाया, 'कि चातक की कविताएँ लम्बी और प्रेम-भरी हैं और पाठ्य-पुस्तक के उपयुक्त नहीं। तब तुम उनसे कहना कि 'मायाविनी' के एक-दो वैसे खण्ड उसमें दिये जा सकते हैं, जिनमें कि उस जादूगरनी के प्रकृति-रूप का अद्भुत चित्रण है।'

चेतन उनकी बात भली-भाँति समझ गया और उसने सहर्ष उनका

यह काम अपने ज़िम्मे ले लिया। चातकजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने चेतन को बताया कि शीघ्र ही श्री धर्मदेव वेदालंकार की दूसरी शादी दिल्ली में होने जा रही है। नीरवजी जायेंगे, वे स्वयं भी जायेंगे और वे चेतन को साथ ले जायेंगे ताकि वह न केवल नीरवजी और धर्मजी से घनिष्टता प्राप्त कर सके, वरन दिल्ली के हिन्दी कवियों और कथाकारों से भी हेल-मेल बढ़ा सके।

'लेकिन मैं बिन-बुलाये क्यों जाऊँगा ?' चेतन ने कहा।

'धर्मदेवजी से तुम्हारी घनिष्टता नहीं, पर वह पैदा तो की जा सकती है,' चातकजी ने समझाया, 'अभी तो निमन्त्रण-पत्र हमारे प्रेस में छप रहे हैं। आजकल वहाँ दिल्ली से कथाकार मुनीन्द्रजी आये हुए हैं। वे धर्मजी ही के यहाँ ठहरे हैं। दो-तीन दिन रहेंगे और उनके सम्मान में एक गोष्ठी होगी। सुबह धर्मदेवजी का फ़ोन आया था। उन्होंने मुनीन्द्रजी के आने की सूचना दी है और मुझे बुलाया है। तुम चलो तो हो आयें वहाँ, कुछ तिकड़म भिड़ायें और उनसे तुम्हारे लिए निमन्त्रण-पत्र हथियायें।'

'मेरे पास तो दिल्ली जाने का किराया भी नहीं।'

'किराये की क्या ज़रूरत है ? टिकट वेदालंकारजी लेंगे। ज्यादा बराती यहाँ से जा नहीं रहे। उनके पिता और अन्य सगे-सम्बन्धी सब दिल्ली में इकट्ठे हो रहे हैं। बस यहाँ से तो धर्मदेवजी और कुछ मित्र ही जायेंगे।'

'पर मैं तो उनका मित्र नहीं।'

'सब होगा। इतना जान लो कि हम चलेंगे तो तुम भी चलोगे।' क्षण भर रुक कर उन्होंने कहा, 'तुमने मुनीन्द्रजी की कोई कहानी पढ़ी है ?'

'एकाध देखी है, पर चली नहीं।'

'अत्यन्त शक्तिशाली कल्पना का लेखक है यह मुनीन्द्र।' चातकजी ने कहा, 'बहुत आगे जायेगा। अच्छा होता, तुमने उनकी कोई अच्छी

कहानी पढ़ ली होती और तुम उसका उल्लेख कर देते ।'

'उनकी कोई किताब आपके पास है ?'

'मेरे पास तो नहीं, पर पुस्तक-भवन में एक संग्रह आया है ।'

'मैं कल पढ़ लूँगा ।'

चातकजी कुछ क्षण सोचते रहे, फिर सहसा उनकी आँखें चमक उठीं, 'तुम तो उर्दू में ग़ज़ल-वज़ल कहते रहे हो ।'

'हाँ दो-तीन वर्ष पहले बाकायदा ग़ज़लें लिखता था और मेरे कुछ शेर तो लोकप्रिय भी हुए थे ।'

'तुम धर्मदेवजी की शादी पर एक सेहरा नहीं लिख सकते ?'

'कभी लिखा तो नहीं है और न लिखना अच्छा ही लगता है । शक्ल दूल्हे की बन्दर-जैसी हो तो सूरज और चाँद से तशबीह[1] देनी पड़ती है. . .'

'लेकिन धर्मदेवजी तो सुन्दर व्यक्ति हैं ।'

'सुन्दर तो क्या हैं, हाँ असुन्दर नहीं हैं । सूरत-शक्ल से लेखक तो ज़रा भी नहीं लगते, नौकरशाह लगते हैं । आप कहेंगे तो लिख दूँगा ।'

'तो बस तुम एक सेहरा लिखो और दिल्ली की तैयारी करो !'

'पर सेहरा लिखने के लिए उनके पिता का नाम और दूसरी डिटेल्ज़ चाहिएँ ।'

'अभी चलते हैं धर्मजी के यहाँ, डिटेल्ज़ भी लेंगे और मुनीन्द्रजी के दर्शन भी कर आयेंगे ।'

और चातकजी काग़ज़ समेट कर उठे और मुँह-हाथ धोने और तैयार होने चले गये । उनके जाने के बाद चेतन ने चुपके से वे काग़ज़ उठाये और वह खण्ड फिर से पढ़ा, जहाँ उसके नाम के साथ उसकी लघु-कथा चातकजी ने लिखी थी । एक बार पढ़ कर उसने दूसरी बार उसे पढ़ा—कवियों के रुदन और अतृप्ति के बारे में चातकजी ने विचारों के

---

१. उपमा ।

जो मोती बिखेरे थे, उसमें उसकी दिलचस्पी नहीं थी। उसे तो बस अपने नाम और अपनी कहानी में दिलचस्पी थी। वह खण्ड को तीसरी बार पढ़ने जा रहा था कि चातकजी आ गये।

०

जब दोनों गुरु-चेला खरामाँ-खरामाँ टहलते और भविष्य की स्कीमें बनाते (चातकजी स्कीमें बनाते और चेतन मौन रूप से उन्हें श्रवण करता) १८-ए टैप रोड पर धर्मजी के फ़्लैट में पहुँचे तो शाम गहरी हो आयी थी और बिजली की बत्तियाँ रोशन हो गयी थीं। मुनीन्द्रजी पण्डित धर्मदेव वेदालंकार के ड्रॉइंग-रूम की भव्यता और साज़-सामान की सुरुचि और आभिजात्य से नितान्त बेपरवा केवल खादी की बण्डी और घुटनों तक कच्छा पहने, कौच पर पसरे हुए उनसे बातें कर रहे थे।

ड्रॉइंग-रूम में उनके प्रवेश करते ही मुनीन्द्रजी उठ बैठे, लेकिन पैर उन्होंने कौच से नीचे नहीं किये। दायाँ पैर बायें घुटने पर रख, अर्ध-पद्मासन हो, वे सीधे तन कर बैठ गये और नाक उन्होंने ज़रा-सी झुका ली।

चेतन को उनका यह पोज़ बहुत अच्छा लगा। अपनी उस अदा से जैसे वे उस कमरे, उसके ग़ालीचे और कौच, दूसरे साज़-सामान और अपने सामने बैठे साहित्यकारों से ऊपर उठ गये।

पण्डित धर्मदेव ने चातकजी का परिचय दिया और चातकजी ने अभिवादन में 'नमस्कार' किया तो मुनीन्द्रजी ने बड़ी ऊँचाई से ज़रा-सा सिर झुका कर उनके 'नमस्कार' का उत्तर दिया। जब चातकजी ने चेतन का परिचय दिया तो उन्होंने इतना भी ज़रूरी नहीं समझा। इसके बाद वे तीनों जने बातों में ऐसे रत हो गये कि चेतन नाम का व्यक्ति वहाँ बैठा भी है, इसका उन्हें होश नहीं रहा।

धर्मजी ने बताया कि मुनीन्द्रजी जैन महासभा के वार्षिक अधिवेशन में सियालकोट गये थे, वापसी पर वे उन्हें गाड़ी से उतार लाये हैं। अब वे आये हैं तो वेदालंकारजी चाहते हैं कि लाहौरवासियों को भी

उनके दर्शनों और विचारों का लाभ मिले।

चातकजी ने उनके इन भावों का समर्थन किया और कहा कि लाहौर-वासियों को यह सौभाग्य जरूर मिलना चाहिए।

तब वेदालंकारजी ने सविस्तार बताया कि कितनी मुश्किलों से मुनीन्द्रजी तीन दिन के लिए रुकने को तैयार हुए हैं। 'बात यह है,' वह सब ब्योरा दे कर उन्होंने कहा, 'हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में मुनीन्द्रजी के विचार हमसे बड़े भिन्न हैं। यहाँ गोष्ठी भी हो जायेगी और इनसे सविस्तार विचार-विनिमय भी हो जायेगा। आज काफ़ी देर से हम इसी विषय पर बातचीत कर रहे हैं। ये तो कहानी के शिल्प-इल्प को कुछ मानते ही नहीं और हम समझते हैं कि यूरोप के प्रख्यात कथाकारों ने कथा-शिल्प को ऐसे उन्नत शिखर पर पहुँचा दिया है कि उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।'

'मुनीन्द्र तो अवहेलना की बात नहीं करता।' हठात धर्मजी की बात को जैसे लोक कर मुनीन्द्रजी बोले, 'यह और बात है कि शिल्प उसको बिना छुए रह जाता है। यही मानो कि उसकी पकड़ उस पर नहीं है। वह तो कहानी में सम्वेदना और सम्वेद्य को समझता है। शिल्प उसकी समझ में नहीं आता।'

उसी पोज़ में बैठे हुए हाथ को टेढ़ा कर तर्जनी से हवा को ठकोरते हुए मुनीन्द्रजी कुछ ऐसे लहजे में बोल रहे थे, जो चेतन को महात्मा गान्धी के धीरे-धीरे शब्दों को टिका-टिका कर बोलने की याद दिला गया। 'तो' उनकी बोली में कुछ खिंच कर आता था और उसके बाद क्षणांश को वे रुक जाते थे। फिर वे अपने लिए प्रथम पुरुष का प्रयोग न कर, उत्तम पुरुष का प्रयोग करते थे, जो चेतन ने पहली बार सुना और उसे अजीब लगा।

'पर शिल्प के बिना कहानी की कल्पना कैसे हो सकती है?' वेदा-लंकारजी ने कहा।

'हो सकती है।' मुनीन्द्रजी बोले, 'क्या कोई बच्चा ऐसा होगा,

जिसके अन्दर यह जटिल यन्त्र न हो, जिसे मानवयष्ठि कहते हैं, लेकिन एक अबोधा भी माता बन जाती है। मुनीन्द्र को आप उस अबोधा जैसा ही मानिए !'

वेदालंकार जी बग़लें झाँकने लगे। चेतन को उनकी इस निरुत्तरता पर बड़ा मज़ा आया। चेतन कहना चाहता था कि अबोधा यदि अपने होने वाले बच्चे के जटिल यन्त्र को जान ले; गर्भाधान के बाद, ख़ुराक, आराम और व्यायाम का ख़याल रखे तो वह शिशु उसकी कोख से स्वस्थ और सुन्दर हो कर निकल सकता है। (कविराज के लिए बच्चों पर लिखी गयी पुस्तक के हवाले से वह इस विषय पर युक्ति-युक्त ढंग से बात कर सकता था।) पर वह चुप रहा और वेदालंकारजी की निरुत्तरता का मज़ा लेता रहा। उसे कथाकार मुनीन्द्र अपने तमाम पोज़ और अहं के बावजूद दिलचस्प लगा और उसने मन-ही-मन तय किया कि यदि किसी तरह वह वेदालंकारजी के विवाह में दिल्ली जा सका तो इस व्यक्ति से ज़रूर मिलेगा और सम्पर्क बढ़ायेगा।

'ख़ैर इस सन्दर्भ में कल गोष्ठी में बात करेंगे।' वेदालंकारजी जान छुड़ाते हुए चातकजी की ओर मुड़े, 'क्यों चातकजी अब सौभाग्य से मुनीन्द्रजी हमारे बीच हैं तो क्यों न एक गोष्ठी इनके सम्मान में यहाँ रखी जाय।'

चातकजी ने इस पर प्रसन्नता व्यक्त की और पूछा कि धर्मजी गोष्ठी कहाँ रखना चाहते हैं, अपने यहाँ अथवा कहीं और ?

'आप 'मंजरी' के कार्यालय में रखिए !' उत्तर मुनीन्द्रजी ने दिया। 'आपके पास तो काफ़ी लम्बा-चौड़ा कमरा है।'

'हमें तो ख़ुशी ही होगी,' चातकजी ने कहा, 'मैं शिवजी से कहूँगा।'

चेतन ने देखा—वेदालंकारजी का चेहरा कुछ उतर गया है। वे शायद अपने यहाँ गोष्ठी करने की सोच रहे थे। लेकिन यदि उन्हें निराशा हुई तो उन्होंने उसे प्रकट नहीं होने दिया। बोले, 'ठीक है, एक नोटिस लिख कर नीचे सबके नामों की सूची बना कर चपड़ासी के हाथ

घुमा दीजिए। या मैं अंग्रेज़ी में मज़मून बना देता हूँ, आप टाइप करा लीजिए।'

'हिन्दी की गोष्ठी का निमन्त्रण क्या अंग्रेज़ी में भेजना समीचीन होगा?' मुनीन्द्रजी ने सीधा खड़ा हाथ हवा में आगे बढ़ा कर कहा, 'पचास-सौ निमन्त्रण पत्र छपवा क्यों नहीं लेते? 'मंजरी' का तो अपना प्रेस है।'

'यदि वेदालंकारजी मेरे साथ चलें और ज़रा शिवजी से कह दें,' चातकजी ने कहा, 'तो आज रात ही छप सकते हैं। कल के पूरे और परसों के आधे दिन में बँट जायेंगे। कुछ चेतनजी को दे देंगे, अपने मित्रों में धर्मजी बँटवा देंगे, बाकी प्रेस और पत्रिका के चपड़ासी दे आयेंगे।'

'ठीक है, मज़मून बना लेते हैं।' धर्मजी ने कहा, 'निमन्त्रण-पत्र किसकी ओर से जायगा?'

'आप 'मंजरी' की ओर से भेजिए।' किसी को कुछ भी कहने का मौका दिये बिना मुनीन्द्रजी ने कहा, 'अपना नाम दीजिए, वेदालंकारजी का दीजिए। तीसरा नाम आप शिवजी का दीजिए। लिखिए, मैं मज़मून लिखवा देता हूँ।'

चेतन उन्हें हैरत से देखता रह गया और वे चातकजी को मज़मून लिखवाने लगे, जिसमें उन्होंने अपने ही मुँह से मुनीन्द्र को हिन्दी कथा के नये युग का संवाहक और मुन्शी चन्द्रशेखर का उत्तराधिकारी कहा और लाहौर के हिन्दी भाषियों के सौभाग्य से वेदालंकारजी तथा 'मंजरी'-सम्पादक के अनुरोध पर जैसे उन्होंने लाहौर रुकना स्वीकार कर लिया है और उनके विचार सुनने से लाहौर के हिन्दी भाषियों को जो लाभ होने वाला था, उसका उल्लेख करते हुए, लोगों को गोष्ठी में शामिल होने का निमन्त्रण दिया।

'या तो यह व्यक्ति नितान्त सरल है, अथवा नम्बरी शातिर,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'लेकिन जैसा भी है, है प्रतिभाशाली।'

●

रात सोने से पहले चेतन नोट-बुक ले कर बैठा तो पहले उसने उर्दू में दो एक पंक्तियाँ लिखीं। फिर उसने उन्हें काट दिया। अब, जब वह हिन्दी में लिखने की तैयारी कर रहा है—उसने सोचा—तो उसे नोट-बुक भी हिन्दी में लिखनी चाहिए। तब वह पृष्ठ उसने छोड़ दिया और नये पृष्ठ से धीरे-धीरे सोच-सोच कर हिन्दी में लिखने लगा। उसे कई बार शब्दकोश देखना पड़ा (जो वह अपनी कहानियों को हिन्दी में करने की ग़रज़ से ख़रीद लाया था।) लेकिन उसने उस कष्ट की परवाह नहीं की और हतोत्साह हुए बिना लिखता चला गया :

'हालाँकि चातकजी ने अपने खण्डकाव्य 'मायाविनी' की भूमिका में खुद ही या अपने दोस्तों के जरिये से अपना इश्तेहार करने वालों पर व्यंग्य कर रखा है और अगरचे उन्होंने संकलन में अपनी कोई कविता नहीं रखी, पर उसकी लम्बी भूमिका में उन्होंने अपना इतना प्रचार किया है और अपनी कविताओं से इतने उद्धरण दिये हैं कि लगता है, उनके सिवा बाकी सब कवि घास ही छील रहे हैं। भोलपने और मूर्खता के साथ चतुराई और व्यावहारिकता का कुछ अजीब-सा मेल मुझे चातकजी यहाँ के दिखायी पड़ा। यह शख़्स बहुत दूर तक जा सकेगा, मुझे इसमें शक है। लेकिन खुद चाहे बहुत आगे न जाय, इस सिलसिले में मेरी मदद ज़रूर कर सकता है। धर्मजी से बड़ी सफ़ाई से कवि चातक ने मेरे सेहरा लिखने की बात कर दी और शादी में शामिल होने के लिए उनसे मुझे कहलवा दिया।'

थोड़ी स्पेस छोड़ कर चेतन ने फिर लिखा :

'आज कथाकार मुनीन्द्र के भी दर्शन किये—सुन्दर, सुदर्शन, तेज़; कलाकार का अद्‌भुत पोज़ और ज़बरदस्त अहं—कोई आदमी अपने बारे में इस दबंगई से बात कह सकता है, यह मैंने पहली बार देखा। यह शख़्स अहं के शिखर पर बैठा लगता है। लेकिन है दबंग और प्रतिभाशाली। दिल्ली गया तो इससे ज़रूर मिलूँगा।'

०००

अ
ड़
ती
स

खिड़की के बराबर, जहाँ चातकजी की मेज़-कुर्सी रहती थी, एक बड़ी दरी और उस पर जाजम बिछा था। वहीं तीन गोल तकिये और एक छोटी-सी चौकी लगी थी। चौकी पर लाल रंग का छोटा-सा कढ़ा हुआ मेज़पोश था, जिसके किनारों पर बने हुए फूल जाजम को छूते थे। चातकजी की मेज़-कुर्सियाँ बराबर के कमरे में पहुँचा दी गयी थीं, जहाँ प्रेस के ऊपर बड़े-बड़े तीन कमरों में प्रेस, पत्रिका और 'पुस्तक भवन' के मालिकान—नागपाल ब्रदर्ज़—(महाशय शिवचन्द नागपाल, महाशय कर्मचन्द नागपाल और महाशय विष्णुचन्द नागपाल) का आवास था। चूँकि जाजम दरी जितना बड़ा नहीं था, इसलिए उस के बाद सफ़ेद चादरें थीं, जो सीढ़ियों से आने वाले दरवाज़े तक बिछी थीं। दरवाज़े के सामने दीवार के साथ ख़ाली फ़र्श की एक पट्टी छोड़ दी गयी थी ताकि अन्दर से आने वाले लोगों को कष्ट न हो और आगत सज्जन वहाँ अपने जूते उतार सकें।

चेतन जब पहुँचा तो वह लम्बा-चौड़ा कमरा आधे

से ज़्यादा भर गया था। करुणजी और शुक्लाजी तो थे ही, करुणजी की पत्नी तथा 'करुण काव्य कुटीर' और 'शुक्ल साहित्य सदन' के सभी अन्य सदस्य भी मौजूद थे। नागपाल ब्रदर्ज़ में केवल बड़े भाई महाशय शिवचन्द नागपाल आतिथेय के कर्त्तव्य निभा रहे थे (मँझले पुस्तक भवन में बैठते थे और छोटे प्रेस देखते थे।) गर्मी और उमस के बावजूद शिवजी (कि विद्यालंकार होने के बाद वे इसी नाम से पुकारे जाते थे।) अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहने थे और कभी इस प्रोफ़ेसर के साथ कुछ क्षण बैठते, कभी उस व्यक्ति के पास जा कर खुसर-फुसर करते। वे लम्बे, ऊँचे, पाँच फ़ुट दस इंच के हृष्ट-पुष्ठ व्यक्ति थे। उतने मोटे तो नहीं थे, पर पतले भी नहीं थे—लकीरदार मोटी खादी के अचकन और कुर्ते के कारण दोहरे बदन का आभास देते थे। चेतन जब भी उनके चेहरे की ओर देखता था, उसकी रीढ़ की हड्डी में बे-नाम-सी सिहरन दौड़ जाती। उनका चेहरा अजीब-सा फूला-फूला लगता था और बायीं आँख के नीचे ऐसे उभरा रहता था, जैसे अभी-अभी किसी ने वहाँ घूँसा जड़ दिया हो! इस पर वे सदा मुस्कराते रहते थे। उनका सिर सदा नंगा और रूखे बाल बिखरे रहते थे। उन रूखे और खड़े-खड़े बालों और एक ओर से उभरे उस चेहरे पर उनकी वह ठकुरसुहाती मुस्कान चेतन को सदा सिहरा देती थी। लेकिन वे बड़े व्यवहार-कुशल थे। कांग्रेस कार्यकारिणी से ले कर पीपल्ज़ सोसाइटी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी परिषद् के अधिवेशनों तथा नगर की तमाम साहित्यिक और अर्ध साहित्यिक गोष्ठियों में शामिल होते थे और यह उन्हीं के दम से था कि कुछ ही वर्षों में 'हिन्दी पुस्तक भवन' की पुस्तकें कई प्रान्तों के पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत हो गयी थीं और पुस्तक भवन का अपना प्रेस और मासिक पत्रिका थी।. . .शिवजी बेहद व्यस्त थे। सभी महत्वपूर्ण लोगों के पास जा कर उनकी और उनके परिवार की कुशल-क्षेम पूछ रहे थे और बदले में अपने परिवार के कुशल-मंगल के प्रश्न पर 'हिं हिं,' 'हिं हिं' करते हुए 'आपकी कृपा है,' 'आपका अनुग्रह है,' 'आपका आशीर्वाद

हैं'. . . आदि वाक्य बोलते हुए इधर-से-उधर फिरकी की तरह आ-जा रहे थे। चेतन ने लाहौर में उर्दू साहित्यकारों की किसी भी मजलिस में पान का प्रबन्ध नहीं देखा था, पर नीरवजी, शुक्लाजी, किसलय तथा कण्टक जी और उत्तर अथवा मध्य प्रदेश से आने वाले हिन्दी साहित्यकार पान का शौक रखते थे, इसलिए चाँदी की एक खूबसूरत तश्तरी में पान-तम्बाकू भी था और पंजाबियों के लिए दूसरी तश्तरी में सौंफ़-इलायची और कूज़ा-मिश्री ! नीरवजी मज़े से पान चबाते हुए होंटों के दायें कोने से मुस्करा रहे थे और चातक तथा शुक्लाजी ने भी होंट लाल कर रखे थे।

चेतन ने पहले सोचा था कि वह कोट-पतलून पहन कर गोष्ठी में जाय, पर उसे मालूम था कि बैठक दरी पर होगी, इसलिए उसने धुली हुई तहमद-कमीज़ पहन ली थी। तब पहली बार उसे खयाल आया था कि उसके पास एक जोड़ा धोती-कुर्ता होना चाहिए। वह चातकजी को धोती-कुर्ता पहनते देखता था तो उसे हैरत होती थी कि वे किस प्रकार बिना गाँठ के धोती बाँधते हैं। उसने मन में तय किया था कि जब उसके पास पैसे होंगे तो वह भी धोती-कुर्ता लेगा और चातक जी से धोती बाँधना सीखेगा।. . .जब वह तहमद-कमीज़, पहने मंजरी के दफ़्तर पहुँचा तो उसे कुछ देर हो गयी थी। असल में चातकजी ने उसके ज़िम्मे इस गोष्ठी के कुछ निमन्त्रण-पत्र बाँटने का काम लगा दिया था और वह दोपहर तक साइकिल लिये, इर्द-गिर्द के इलाकों में उन्हें बाँटता रहा था।

जब वह सीढ़ियाँ चढ़ कर कमरे में दाखिल हुआ था तो सामने खिड़की की बायीं ओर बैठे चातकजी पर उसकी नज़र गयी थी, जो नीरवजी के बराबर पान से होंट रँगे बैठे थे। बालों की एक लट हमेशा की तरह उनके माथे पर आ गयी थी।

चेतन ने एक साथ दोनों कवियों को 'नमस्कार' किया। वह सीढ़ियों के पास ही दरी पर बैठने जा रहा था, जब चातकजी ने हाथ के इशारे

से उसे सानुरोध अपने पास बुलाते हुए वहीं से कहा, 'बड़ी देर कर दी। आओ आओ, इधर आओ !'

चेतन बैठ ही गया था कि उनके अनुरोध पर उठा और जा कर उनके और नीवरजी के बीच उस जगह बैठ गया, जहाँ आमने-सामने प्रतिष्ठित लोग बैठे थे।

'मुनीन्द्रजी नहीं आये ?' उसने एक नज़र दायीं ओर चौकी के निकट बैठे लोगों पर डाली।

'वे धर्मजी के साथ आयेंगे,' चातकजी ने कहा।

चेतन का खयाल था कि मुनीन्द्रजी की अनुपस्थिति में उनकी कहानियों पर बातचीत होनी चाहिए। पिछले दिन जब वह निमन्त्रण-पत्र लेने आया था तो दुकान से उनकी किताब निकलवा कर उसने वहीं बैठ कर उनकी दो-तीन कहानियाँ पढ़ डाली थीं और उसका खयाल था, कोई उन पर बात करेगा तो कथाकार के नाते वह उस बातचीत में भाग लेगा। पर वहाँ दो-दो तीन-तीन की टोलियों में बँटे लोग आपस में इधर-उधर की बातें कर रहे थे। चेतन ने इस बीच चातकजी से दो-तीन नये चेहरों का परिचय पाया।—उनमें से एक निहायत पतला-दुबला, लम्बी-सी नाक और काफ़ी बाहर को निकले हुए टेंटुवे वाला व्यक्ति था। सूरत-शक्ल से आँतों के व्रण का मरीज़ लगता था। कोट-पतलून पहने और टाई लगाये हुए था। महत्वपूर्ण लगता था, क्योंकि शिवजी देर से उसके साथ चिपके थे। चेतन को मालूम हुआ कि वह सनातन धर्म कॉलिज का हिन्दी प्रोफ़ेसर है और हिन्दी बोर्ड का नया-नया मेम्बर हुआ है। दूसरा, गोरा-चिट्टा, ठिगना-सा व्यक्ति था। वह भी सूट-बूट पहने था। पतले-दुबले व्यक्ति के पास से उठ कर शिवजी उसके पास चले गये थे। चेतन को मालूम हुआ कि वह फ़ॉर्मेन क्रिश्चियन कालेज का संस्कृत विभागाध्यक्ष है। पहले का नाम प्रोफ़ेसर हरबंसलाल था। दूसरे का प्रो० इन्द्रजीत। दूसरे महाशय यद्यपि संस्कृत पढ़ाते थे, तो भी उन्होंने हिन्दी में दो नाटक लिख रखे थे, जो पाठ्य-क्रम में लगे हुए थे। इस वर्ष वे भी हिन्दी बोर्ड के सदस्य

मनोनीत हो गये थे और इसीलिए उनका महत्व बढ़ गया था। चौकी के निकट ही दीवार की तरफ़ एक सम्भ्रान्त अधेड़ व्यक्ति बैठे थे, जिनका सिर लगभग गंजा था और सामने के दो दाँत टूटे हुए थे और वे बात करते हुए बार-बार जीभ को दाँतों में ले लेते थे। चेतन को मालूम हुआ कि वे ओरियेण्टल कॉलेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं और हिन्दी बोर्ड के भी चेयरमैन हैं।

'ये लोग कथा-गोष्ठी में क्या करेंगे ?' चेतन ने होटों में ही जैसे अपने आप से कहा। चातकजी ने उसकी बात सुन ली, लेकिन इससे पहले कि वे कुछ कहते, सीढ़ियों में पण्डित धर्मदेव वेदालंकार नामूदार हुए।

उनकी साँस फूल रही थी। माथे पर पसीने की बूँदें झलक आयी थीं। आते ही जूते उतारते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें ज़रा देर हो गयी है। डायरेक्टर्ज़ की एक ज़रूरी मीटिंग थी, वे उसी में उलझ गये।

'मुनीन्द्रजी कहाँ हैं ?' सहसा दो-तीन लोगों ने एक साथ पूछा।

'कोई उन्हें लेने नहीं गया !' सहसा धर्मजी ने हैरत से शिवजी की ओर देखा।

'हमारा खयाल था, वे आपके साथ आयेंगे !' शिवजी ने सफ़ाई दी।

'वे आपके मुख्य अतिथि हैं। आपको उन्हें लाना चाहिए था।'

'हम यही समझते रहे कि आप ही अपने साथ उन्हें लेते आयेंगे।'

'लेकिन मैं तो दफ़्तर जाता हूँ,' धर्मजी के स्वर में खिजलाहट थी। 'सुबह उनकी खातिर रह गया था। लंच के बाद उनसे कहा भी था कि साथ ही चलिए। उधर ही से गोष्ठी में चले चलेंगे। लेकिन उन्होंने कहा—आप तो डायरेक्टर्ज़ की मीटिंग में जायेंगे। मैं क्या करूँगा। मैं लंच के बाद थोड़ा आराम कर लूँ !'

तभी शुक्ल साहित्य सदन वाली टोली में से एक लड़के ने कहा, 'उन्हें यहाँ का पता तो मालूम है ?'

वेदालंकारजी कुछ कहने जा रहे थे, लेकिन उनके होंट कुछ खुले

ग्रौर फैले रह गये ग्रौर उनके चेहरे पर क्रोध ग्रौर ग्राश्चर्य मिला हुग्रा ऐसा भाव ग्रा गया, जैसे कह रहे हों—'कैसी वेवकूफ़ी की बात करते हैं ग्राप ?' पर उन्होंने कुछ कहा नहीं। वहीं खड़े-खड़े एक तेज़ चिमाह से जैसे उसे चुप कराके वे महाशय शिवचन्द से बोले कि देख क्या रहे हैं, फ़ौरन ताँगा ले कर जायँ ग्रौर मुनीन्द्र जी को ले ग्रायें !

तब वहीं से शिवजी ने कहा, 'ग्राइए चातकजी !'

वेदालंकारजी ग्रा कर डॉ० घनानन्द के पास बैठ गये थे। उन्होंने लगभग ग्रादेशपूर्ण स्वर में कहा, 'ग्रापको वापस ग्राने में बीस मिनट ग्राध घण्टा लग जायेगा। यहाँ सब लोग ग्रा गये हैं। कुछ कार्यक्रम यहाँ भी होना चाहिए !'

ग्रौर महाशय शिवचन्द विद्यालंकार बिना पीछे की ग्रोर देखे, ग्रकेले ही सीढ़ियाँ उतर गये।

०

चेतन दीवार से पीठ लगाये यह कौतुक देख रहा था। मुनीन्द्रजी के समय पर न ग्राने में सिर्फ़ इतनी ही बात है, उसे इसका विश्वास नहीं हुग्रा। दो दिन पहले चातकजी के साथ वह वेदालंकारजी के यहाँ गया था तो उसने कथाकार मुनीन्द्र का जो पोज़ ग्रौर तेज़ी देखी थी, वह उस क्षण उसकी ग्राँखों में साकार हो उठी। निश्चय ही उनके यहाँ राजनीतिक नेताग्रों-ऐसा कुछ था—स्वयं गोष्ठी रखवा कर, स्वयं उसके बारे में समय ग्रौर स्थान निश्चित करके, स्वयं निमन्त्रण-पत्र का ग्रालेख तैयार कर के, समय पर न पहुँच कर ग्रौर ग्रातिथेय को ताँगा ले कर उन्हें निवास-स्थान से गोष्ठी-स्थल पर लाने को विवश करके उन्होंने ग्रपना महत्व जमाया ग्रौर बढ़ाया था ग्रौर साथ ही ग्रपने ग्रहं को सन्तुष्ट किया था. . .कितना ग्रच्छा होता यदि यह बात महाशय शिवचन्द को स्वयं सूझ गयी होती ग्रौर वे स्वयं ताँगा ले कर उन्हें ले ग्राये होते।. . .यदि गोष्ठी स्वयं उन्होंने रखी होती तो शायद वैसी चूक उनसे होती भी नहीं। लेकिन मुनीन्द्रजी ने एक तरह गोष्ठी रखने के

लिए उन्हें मजबूर किया था, इसलिए उनका समय पर न पहुँचना चेतन को उचित नहीं लगा।. . .उसे पूरा विश्वास था कि मुनीन्द्रजी ने धर्म जी को ताँगा भिजवाने के लिए कहा होगा। चेतन को इस बात का भी यकीन था कि धर्मजी को उनका यह पोज़ बुरा लगा होगा, इसीलिए उन्होंने इस सिलसिले में समय से शिवजी को सूचित नहीं किया और डायरेक्टरों की ज़रूरी मीटिंग में सम्मिलित होने की बात से कमरे में बैठे लोगों पर अपना महत्व जता दिया। लेकिन अपने साथी कथाकार और मेहमान की हेठी न हो, इस ख़याल से उन्होंने महाशय शिवचन्द को ताँगा ले कर उन्हें लाने के लिए भेज दिया और इस आध घण्टे में ताँगे की प्रतीक्षा में मुनीन्द्रजी के मन में ऊहापोह को जन्म दे कर, उन्हें आशा-निराशा के उद्वेलन में छोड़ कर, अपने अहं पर की जाने वाली चोट का प्रतिकार भी कर लिया।. . .वेदालंकारजी ने अपने घर पर गोष्ठी न रखे जाने का बदला चाहे ऐसे चुकाया हो, पर महाशय शिव-चन्द ताँगा ले कर चले गये थे और बात बहरहाल मुनीन्द्रजी की ही रही थी। उस घटना से चेतन को पक्का विश्वास हो गया कि मुनीन्द्र नाम के उस कथाकार ने लाहौर के हिन्दी साहित्यकारों को पूरी तरह अपने काबू में कर लिया है और वे जैसा चाहेंगे, उनका उपयोग करेंगे। गोष्ठी में मुश्किल से तीस-पैंतीस लोग उपस्थित थे, पर उतने भर के लिए प्रेस से निमन्त्रण-पत्र छपा था, तीन प्रतिष्ठित लोगों की ओर से निमन्त्रण दिया गया था और यों कथाकार मुनीन्द्र का महत्व उस अहिन्दी प्रदेश के हिन्दी साहित्यकारों पर पूरी तरह उजागर हो गया था। जो कसर रह गयी थी, वह ताँगा भेज कर बुलाये जाने की फ़रमाइश करके उन्होंने पूरी कर ली थी।

•

शिवजी सीढ़ियाँ उतर गये तो वेदालंकारजी ने चौकी के आस-पास बैठे लोगों से मन्त्रणा शुरू की कि मुनीन्द्रजी के आने तक क्या कार्यक्रम रखा जाय। कहानी पर बातचीत मुनीन्द्रजी के आने पर ही शुरू होनी चाहिए,

ऐसा उनका विचार था। तब तक यदि कविता का प्रोग्राम हो तो कैसा रहे ?

कविता की बात सुनते ही सहसा चेतन चौकन्ना हो गया। वह अपनी जगह उठा और उसने जैसे सभी आगत सज्जनों की ओर से कहा, 'इधर चातकजी ने कुछ बड़ी सरस और भावनापूर्ण कविताएँ लिखी हैं। हम उनसे अनुरोध करेंगे कि जितने में मुनीन्द्रजी आते हैं, वे अपनी दो-एक ताज़ा कविताएँ सुना कर हमें कृतज्ञ करें।'

और यह कह कर वह बैठ गया। मन-ही-मन वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि इतनी बात वह बेझिझक हिन्दी में कह गया।

चातकजी के चेहरे पर प्रसन्नता, संकोच और असमंजस का मिला-जुला भाव आ गया। उन्होंने होंटों पर ज़बान फेरी। बालों की लट को पीछे हटाया और अपनी जगह खड़े हो कर दायें पैर से बायें के टख़ने की खुजली मिटाते हुए उन्होंने कहा कि उनके बड़े भाई के समान कवि नीरवजी सभा में उपस्थित हैं। उन्हें स्वयं तो कविताएँ सुना कर खुशी होगी, पर वे चाहेंगे कि सबसे पहले नीरवजी अपनी कोई नयी कविता सुनायें।

और यह कह कर वे बैठ गये।

'मैं तो कथा-गोष्ठी में आया था, इसलिए कोई कविता साथ नहीं लाया।' नीरवजी ने पान-रँगे होंटों के दायें कोने से मुस्कराते हुए बैठे-बैठे कहा।

'कोई छोटी-सी ही सुना दीजिए।' चेतन ने जैसे चातकजी के अनुरोध में अपना अनुरोध मिला दिया।

वहाँ उपस्थित अधिकांश लोगों के लिए वह नया था। इसलिए दोनों बार जब वह बोला, सब का ध्यान उसकी ओर गया।

नीरवजी शायद तब भी संकोच कर जाते, पर उस वक्त कई तरफ़ से इस सिलसिले में आवाज़ उठो, जिसमें शुक्लाजी का स्वर सबसे ऊँचा

था। तब जैसे विवश हो कर नीरवजी ने बैठे-बैठे ही एक छोटी-सी कविता सुनायी :

देखा सखि जीवन का मेला
एक अनोखा सपना री
आयी छोटा-सा दिल ले कर वह भी हुआ न अपना री
खड़ी उपेक्षा अचल यहाँ पर साहस मेरा भोला है
हाथ लगा अपने तो इस जीवन में सदा कलपना री
एक अनोखा सपना री
देख लिया जीवन का मेला

तीन बन्दों की छोटी-सी कविता पढ़ कर और श्रोताओं के पल्ले 'कलपना' बाँध कर नीरवजी चुप हो गये तो चातकजी उठे। उन्होंने जेब से दस-ग्यारह लम्बी-लम्बी स्लिपों पर लिखी अपनी कविता निकाली। 'मेरी कविता का शीर्षक है—आयी हो मुस्कान लिये तुम—!' उन्होंने कहा और परम तन्मय भाव से कविता पढ़ने लगे।

चेतन वह कविता सुन चुका था, इसलिए दीवार से पीठ लगाये वह अपने विचारों में खो गया।

दो दिन पहले वह शाम को चातकजी के साथ धर्मजी के यहाँ गया था तो उस वक्त जब मुनीन्द्रजी कवि चातक को गोष्ठी के निमन्त्रण-पत्र का मज़मून डिक्टेट कर रहे थे, 'मंजरी प्रिंण्टिग प्रेस' से चपड़ासी वेदालंकारजी के विवाह के निमन्त्रण-पत्र का प्रूफ़ ले कर आया था।

तब चातकजी ने पूछा था, 'कहिए, किस-किस को बरात में ले जा रहे हैं ?'

'हमारे सब लोग तो दिल्ली ही में इकट्ठे होंगे। यहाँ से बस आप चन्द मित्र चलेंगे।'

'नीरवजी से कह दिया है ?'

'बस ये निमन्त्रण-पत्र आ जायें तो स्वयं जा कर दे आऊँगा।'

'ये हमारे चेतनजी उर्दू के बड़े अच्छे शायर हैं। हमने इनको आपका

सेहरा लिखने के लिए तैयार कर लिया है, इन्हें साथ ले चलना है ।'

तब वेदालंकारजी ने पहली बार चेतन की तरफ़ देखा था । 'आप तो मणिभाई गोबिल की मीटिंग में आये थे ना !'. . .उन्होंने कहा और फिर सहसा उत्तर सुने बिना चातकजी से बोले, 'ज़रूर-ज़रूर, ये भी चलेंगे ।'

चेतन के मन में आयी थी, कहे कि वह सेहरा-वेहरा नहीं लिखता । उसने कभी किसी का सेहरा नहीं लिखा । पर चातकजी से उसने वादा कर लिया था, फिर मुनीन्द्रजी से दिल्ली में मिलने और उनके निकट सम्पर्क में आने का उसने तय कर लिया था, इसलिए उसने मन की बात धर्मजी से नहीं कही । बोला, 'मुझे ज़रा अपने पिताजी का तथा उन सम्बन्धियों का नाम बता दीजिए, जिनका ज़िक्र आप खास तौर पर सेहरे में चाहते हैं ।'

'बस पिताजी का नाम दे दीजिएगा ।' वेदालंकारजी ने कहा और काग़ज़ पर नाम लिख कर चिट चेतन के आगे बढ़ा दी—'लाला चूहड़राम ।' चेतन ने मन-ही-मन नाम पढ़ा । तब वेदालंकारजी कह रहे थे, 'उनके नाम के साथ कहीं पण्डित न लगा दीजिएगा । हम तो कर्मणा अपने आपको पण्डित लिखते हैं, पर पिताजी कोट मौदू के साहूकार हैं और लाला ही कहाना पसन्द करते हैं ।'

चेतन क्षण भर चिट पर लिखे नाम को देखता रहा, फिर उसने लाला चूहड़राम के इस सूट-बूट-धारी पुत्र पर एक नज़र डाली । वेदालंकारजी की साहबियत और तुनक-मिज़ाजी का खयाल करके वह मन-ही-मन हँसा ।

तभी कुछ सोच कर वेदालंकारजी ने कहा था, 'आप पूरे नाम के बदले केवल लाला सी० राम लिखिएगा ।'

'जी बहुत अच्छा, मैं रफ़ लिख कर आपको दिखा दूँगा ।'

'तो आप तैयार रहिएगा, आज के पूरे सात दिन बाद चलेंगे ।'

०

चातकजी कविता खत्म करके बैठने लगे तो चेतन ने बड़े ज़ोरों से दाद दी और कहा, 'चातकजी वह 'बेचैनी के बीज' वाली कविता सुनाइए। इधर वर्षों से ऐसी सुन्दर कविता नहीं सुनी।'

बिना इस बात की प्रतीक्षा किये कि कोई दूसरा भी उनसे अनुरोध करता है, चातकजी बोले, 'मेरी यह कविता मेरे मित्रों को बड़ी पसन्द है, कुछ मित्रों ने सुनी भी है, आपका अनुरोध है तो सुनाता हूँ!'

और वे कविता सुनाने लगे :

'बीज बो दिये बेचैनी के
तू ने मन-प्रांगण में बाले
खेल तुम्हारे लिए रहा यह
यहाँ पड़े जीवन के लाले'

और चेतन का मन दिल्ली के लाल किले और कुतुब की सैर करने लगा।

०

चातकजी कविता की अन्तिम पंक्तियाँ पढ़ रहे थे, जब महाशय शिवचन्द हाँफते हुए, पसीने से तर सीढ़ियों में नमूदार हुए। उनके बाल और भी बेतरतीब हो गये थे, बायीं आँख के नीचे गाल का उभार कुछ और बड़ा दिखायी दे रहा था। चेहरे की मुस्कान और भी दयनीय हो गयी थी। आते ही उन्होंने घोषणा की कि वे मुनीन्द्रजी को ले आये हैं।

उनके पीछे धुली खादी के धोती-कुर्ते में सुशोभित, कन्धे पर तह किया साफ़ा रखे, मुनीन्द्रजी एकदम नेताओं की अदा से दाखिल हुए। चातकजी को कविता पढ़ते देख, उन्होंने हाथ से लोगों को इशारा किया कि वे सब अपनी-अपनी जगह बैठे रहें और चातकजी को कविता समाप्त कर लेने दें। स्वयं वे सीढ़ियों की चौखट के पास वहीं कोने में जा खड़े हुए।

दूसरे क्षण चातकजी की कविता खत्म हो गयी और करतल-ध्वनि के मध्य वे बैठ गये तो मुनीन्द्रजी आगे आये और चौकी के पीछे रखे गोल तकिये पर कोहनी टेक कर बैठ गये। तब श्री धर्मदेव ने उठ कर उपस्थित बन्धुओं को उनका परिचय दिया कि किस प्रकार उनके आगमन

के साथ हिन्दी कथा-साहित्य में हवा का एक स्वच्छ झोंका आया है और कैसे बाह्योन्मुख, आदर्शवादी, लेकिन लगभग सपाट कहानियों के स्थान पर अन्तर्मन की गहराइयों का उद्घाटन करने वाली मनोवैज्ञानिक और पेचीदा कहानियों का सूत्रपात मुनीन्द्रजी ने किया है।

'यह हमारा सौभाग्य है,' उन्होंने स्वर को ज़रा ऊँचा करते हुए कहा, 'कि वे जैन सभा के सियालकोट अधिवेशन में भाग ले कर दिल्ली वापस जाते हुए लाहौर से गुज़र रहे थे और उनके एक पत्र से मुझे इस बात का पता चल गया। तब स्टेशन पर पहुँच कर मैंने उन्हें बरबस उतार लिया और मेरे अनुरोध पर वे तीन दिन के लिए रुक गये और उन्होंने गोष्ठी में अपने विचार लाहौर के हिन्दी-वासियों के सम्मुख रखना स्वीकार कर लिया। उनके विचार, जैसा कि आप अभी देखेंगे, बड़े मौलिक हैं। उन्हें रखने का ढंग और भी मौलिक है। यद्यपि सभी उनसे सहमत हों, यह ज़रूरी नहीं। मैं स्वयं उनकी धारणाओं से सहमत नहीं, इसलिए मैं इस विषय पर और कुछ न कह कर आदरणीय डॉ॰ घनानन्द से प्रार्थना करूँगा कि वे सभापति का आसन ग्रहण कर, मीटिंग की कारंवाई शुरू करें।'

सभापति के सन्दर्भ में वेदालंकारजी के प्रस्ताव का समर्थन चातकजी ने तत्काल उठ कर किया और डॉक्टर घनानन्द अपने सामने के टूटे हुए दो दाँतों में जीभ दबाये मुनीन्द्रजी के साथ आ बैठे।

तब प्रधान की आज्ञा से वेदालंकारजी उठ कर बोले, 'चूँकि पहले ही काफ़ी देर हो गयी है, इसलिए और ज़्यादा समय नष्ट न कर, अब मैं मुनीन्द्रजी से प्रार्थना करूँगा कि वे कहानी पर अपने विचार दें। फिर यदि समय रहेगा तो उन पर विचार-विनिमय किया जायेगा।'

इस पर डॉक्टर घनानन्द ने बैठे-बैठे ही मुनीन्द्रजी से प्रार्थना की कि अब वे आगे आयें और उपस्थित सज्जनों को अपने बहुमूल्य विचारों से लाभान्वित करें।

मुनीन्द्रजी बड़े अलस भाव से ज़रा आगे खिसक कर चौकी के पीछे

उसी तरह अर्द्ध पद्मासन हो, सीधे तन कर बैठ गये। नाक उन्होंने ज़रा-सी नीचे कर ली और दोनों हाथ घुटनों पर रख कर उन्हें ज़रा-सा दबाते हुए, वे पूर्ववत शब्दों के अन्तिम अक्षरों पर ज़ोर देते, उन्हें ज़रा लम्बा करते और शब्दों को टिका-टिका कर बोलते हुए कहने लगे :

'अभी जब हम यहाँ आये तो कविता हो रही थी। हमारी चलती तो कविता ही होती और कहानी की बात नहीं भी होती तो कोई हर्ज नहीं होता। रचना छन्दोबद्ध हो, कि मुक्त, कि गद्य, साहित्य की आत्मा सब जगह एक है, मुनीन्द्र तो यही मानता है। संसार को जब कोई अपना दान करने चलता है तो सम्भ्रम से आँखें खोल कर देखता है कि संसार यह है, मैं यह हूँ, किन्तु फिर भी कहीं गहरे प्राणों में वह पाता है कि सब कुछ एक ही है। जब संसार की लीला में उसे आश्चर्य होता है और आह्लाद भी और हठात जब वह उसी की परिभाषा में अपने को देख उठता है, समस्त के साथ अविच्छेद रूप में जड़ित महागान के समारोह में एक जैसा अपने को पाता है, तब सहसा उसके प्राणों में काव्य का उन्मेष होता है। और जब वह उस विश्व से हट कर अपनी इकाई की खोज करता है और देखता है कि यह विश्व है, यह देश है, यह समाज है और यह मैं हूँ। और जब वह अपने इस 'मैं' को गहरे में टटोलना चाहता है—तो उसे अदबदा कर गद्य की शरण लेनी पड़ती है।'

कठिन शब्दों में लपेटे गये इस महादार्शनिक प्रवचन से चेतन के पल्ले कुछ नहीं पड़ा। वह तो मुनीन्द्रजी के सीधे तने शरीर, सुतवाँ झुकी नाक, प्रशस्त ललाट, गहरे विचारों के कारण अधमुँदी आँखें तथा कभी घुटनों को दबाते, कभी चौकी पर आ जाते, कभी धीरे-धीरे आगे को बढ़ते, कभी पीछे को हटते उनके हाथ ही देखता रहा। अपना भाषण देते हुए उन्होंने कई आसन बदले, पर उनके स्वर के सधाव और वाणी के बहाव में अन्तर नहीं आया।

कहानी की बात चला कर उन्होंने कहा—'मुनीन्द्र अपने कहानी-

कार की बात क्या बताये। वह तो कहानी के क्षेत्र में यूँ ही अनजाने, अनचाहे आ गया। न तो उसने कहानी के विधि-विधान को जाना, न शिल्प-विज्ञान को। एफ़० ए० में था कि स्वातन्त्र्यान्दोलन में पढ़ाई छोड़ बैठा, जेल भी हो आया और इस बीच जो पुस्तक हाथ लगी, पढ़ भी ली, पर कहानी लिखेगा, ऐसा मुनीन्द्र ने कभी नहीं सोचा था। तब एक क्लास-फ़ेलो ने हस्तलिखित पत्रिका निकाली। उन्होंने मुनीन्द्र से भी लिखने को कहा, सो लीजिए जैसा भी, जो भी उसके मन में आया, मुनीन्द्र ने लिख कर भेज दिया। तब लोगों को कहते पाया गया कि मुनीन्द्र में तो कहानी लेखक बनने की जन्मजात प्रतिभा है। इसी हस्तलिखित पत्रिका में छपी दो-तीन कहानियों के बल पर, एक मित्र ने, जो एक लोकप्रिय कहानी-पत्रिका निकालते थे, मुनीन्द्र से कहानी का नाम धराने वाली रचना माँगी। अपनी अक्षमता बताते हुए मुनीन्द्र ने कहा कि भाई कहानी-वहानी तो मुनीन्द्र समझता नहीं, हाँ मित्र के आदेश का पालन करने में जो उससे बन पड़ेगा, वह करेगा। और लीजिए जो उसके मन में आया, जैसे-तैसे एक साथी को उसने लिखा दिया और पत्रिका के दफ़्तर में दे आया। रचना छप गयी तो जहाँ-तहाँ सुनने में आया कि मुनीन्द्र तो अद्‌भुत कथाकार है, कि वह तो मुन्शीजी के भी आगे की बात करता है। स्वयं मुन्शीजी ने उसकी रचना को सराहा और आशीर्वाद दिया और लीजिए मुनीन्द्र कथाकार हो गया।'

यहाँ मुनीन्द्रजी क्षरण भर रुके। फिर बोले, 'वेदालंकारजी शिल्प की बात करते हैं। जो आलोचक हैं, रचना का निरीक्षरण-परीक्षरण करना जिनका काम हैं, वे लोग यह सब कर सकते हैं, पर मुनीन्द्र बेचारे को तो आप इस सबसे माफ़ ही रखिए। वह तो इतना जानता है कि जब एका-एकी उसका लिखना शुरू हुआ, वह बहुत बेहाल था। बेकार था। कहीं अच्छी नौकरी मिले, इतना पढ़ा नहीं था। और कभी-कभी आत्म-हत्या तक की भी सोचता था। ऐसे में कोरा तत्व काम नहीं देता। हर तत्व-वाद को सम्वेदन की कसौटी पर उतरना और अपने को खरा साबित करना

होता है। सबसे प्रथम और मूल तत्व है—दुख ! इसी की अनिवार्यता से विचारों को समझिए, कहानी बनना पड़ गया ।. . .रहा शिल्प, तो वह मुनीन्द्र के ऊपर से हो कर गुज़र जाता है। उसके बारे में उसने पढ़ा नहीं है, यह वह नहीं कहता । जो अपनी रचना को शिल्प में बाँधते हैं, उनके प्रति वह अविनयी भी नहीं है, कहें कि उसे उन पर श्रद्धा ही है, पर अपनी वह कह सकता है । उसे शिल्प-इल्प की खबर नहीं कि वह किधर से कहानी में आता है और कैसे उसके शब्द-शब्द को बाँध लेता है । मुनीन्द्र उस शिल्प को नहीं जानता । वह तो बीज को जानता है और जानता है कि बीज अंकुरित होता है और बढ़ कर पेड़ बन जाता है। उसे अंकु-रित होने के लिए कितने माशे खाद और कितने तोले पानी चाहिए और वे दोनों किस अनुपात में और कब उसे मिलें, इसे न बीज जानता है और न धरती ही समझती है। विचार का वह बीज मानस की धरती के अन्दर कब जन्म लेता है, कब तक पकता रहता है और पक चुकता है है तो कब अंकुरित होता है, इसे धरती नहीं जानती । वह तो बस इतना समझती है कि बीज उसकी मिट्टी में कहीं से आ गिरता है। उसके गर्भ में पकता है, अनुकूल खाद, पानी उससे लेता है और एक दिन अंकुरित होता है और पेड़ बन जाता है और धरती उससे मुक्त हो जाती है। लोग जब पेड़ की हरियाली से आँखों की तृषा बुझाते हैं, उसकी छाँह से अपने मन का ताप हरते हैं, तब वे उससे ज्यादा जानने की वांछा क्यों रखते हैं ! वे मान लें कि धरती के पास इसका उत्तर नहीं है । वे उससे यह प्रश्न पूछें तो क्यों पूछें ?'

चेतन के मन में इस प्रश्न के कई उत्तर एक साथ कौंधे, पर वह चुप बना रहा । उसे इस कथाकार का वह आत्म-विश्वास और वह पोज़, जिससे कि वह बोल रहा था, बहुत अच्छा लगा । लगता था, जैसे वह अपनी हर भंगिमा के प्रति सजग है। जैसे वह बोल भी रहा है और दर्शकों में बैठा खुद को बोलते देख और सुन भी रहा है ।. . .पूरे एक घण्टे बीस मिनट के बाद, जब मुनीन्द्रजी ने अपना भाषण समाप्त किया

तो जो करतल ध्वनि हुई, उसमें चेतन की ताली का स्वर सबसे ऊपर सुनायी पड़ता था।

०

मुनीन्द्रजी के भाषण के बाद वेदालंकारजी ने बैठे-बैठे आगत लोगों से पूछा कि कोई कुछ कहना चाहेगा। तब नीरवजी ने उनसे कहा कि हमारे तो आप ही प्रतिनिधि कथाकार हैं। आप ही कुछ कहिए!

वेदालंकारजी अपनी जगह उठे। (पतलून-कोट में बैठे हुए उन्हें कष्ट होता था और यूँ भी भाषण खड़े हो कर ही देना उन्हें पसन्द था) बायाँ हाथ उन्होंने पतलून की जेब में डाला और बड़ी ऊँचाई से बोलना शुरू किया :

'इधर मैंने हिन्दी पाठकों को विश्व साहित्य से परिचित कराने के लिए 'विश्व कथा साहित्य माला' की एक योजना बनायी है, जिसके अन्तर्गत मैं संसार के सभी देशों की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हिन्दी में प्रकाशित करने जा रहा हूँ। इसी सिलसिले में मुझे संसार की सभी विकसित भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियों को पढ़ने और कहानी-कला को जानने-समझने का अवसर मिला है। और यदि आप बुरा न मानें तो मैं कहना चाहूँगा कि कला के वर्ल्ड-स्टैण्डर्ड से देखें तो हिन्दी की अधिकांश कहानियाँ शिथिल और कमज़ोर दिखायी देंगी। यह कमज़ोरी इसलिए है कि हमारे लेखक कहानी के विकसित शिल्प से अनभिज्ञ हैं। अभी पिछले दिनों मुनीन्द्रजी की ही कहानी 'छोटा-सा पिल्ला' छपी है। कहानी वहाँ समप्त हो जाती है, जहाँ बच्ची मालती कुत्ते का नन्हा-सा पिल्ला पा कर छोटे भाई की मृत्यु को भूल जाती है और ज़िन्दगी जीना शुरू कर देती है। पीछे से वह मोटी हो गयी (क्षमा कीजिएगा। मुनीन्द्रजी ने यही लिखा है, कोई पूछ सकता है क्या वह पीछे से ही मोटी हुई, आगे से नहीं, लेकिन मुनीन्द्रजी का मतलब वहाँ शरीर से नहीं, समय से है। 'पीछे से' के बदले 'बाद में' होना चाहिए) हाँ तो पीछे से वह मोटी हो गयी तो बाद में वह चार बच्चों की माँ हो गयी और मर गयी,

इससे किसी को ग़रज़ नहीं, क्योंकि मूल कहानी से इन ब्योरों की कोई संगति नहीं बैठती और अन्तिम बिन्दु के बाद तो ये ब्योरे बेकार और निरर्थक हो जाते हैं।'

वेदालंकारजी धीरे-धीरे जोश में आ रहे थे, पर यह सुन कर न जाने चेतन को क्या हुआ। वह अपनी जगह उठा और बोला, 'क्षमा कीजिएगा। मैंने कल ही वह कहानी पढ़ी है। वह दिल को कहीं बहुत गहरे छू लेने वाली कहानी है। और अन्तिम पैरा रहे न रहे, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। पंजाबी और उर्दू वालों को 'पीछे से' का प्रयोग भद्दा लग सकता है, पर कथाकार जहाँ का रहने वाला है, वहाँ शायद ऐसा ही बोलते होंगे। रहा शिल्प, तो उस लिहाज़ से कहानी में कोई दोष नहीं। आपने संसार की सभी कहानियाँ पढ़ी हैं या अनुवाद किया या छापा है, इससे आप शिल्प के माहिर नहीं हो जाते और आपको यह हक नहीं मिल जाता कि एक निहायत मर्मस्पर्शी कहानी की यूँ खिल्ली उड़ायें।'

वेदालंकारजी का चेहरा सहसा विकृत हो गया। क्रोध से उन्होंने कहा, 'आप बैठिए, आपको कहानी की क्या समझ है।'

चेतन बैठने जा रहा था कि फिर उठते हुए उसने कहा, 'मैं कैसी क़हानी लिखता हूँ, वह तो आप पढ़िएगा जभी जानिएगा, लेकिन मैं आपको आपके सारे विश्व-साहित्य के ज्ञान के बावजूद कहानी लिखना सिखा सकता हूँ। अभी पिछले ही महीने 'विशाल भारत' में मैंने आपकी कहानी 'अ-ई-ऊ' पढ़ी है। क्या है वह ? वैसी कहानियाँ तो. . .'

वह न जाने और क्या-क्या कहता, पर चातकजी ने उठ कर उसके मुंह पर हाथ रख कर उसे बैठा दिया और प्रकट वेदालंकारजी को, लेकिन उस बहाने सभी उपस्थित सज्जनों को सुनाते हुए बोले, 'आपने चेतनजी की कहानियाँ नहीं पढ़ीं। ये बड़े सफल कथाकार हैं। मुन्शी चन्द्रशेखर और महाशय देवदर्शन ने इनकी कहानियों की प्रशंसा की है।' और उन्होंने आगे बढ़ कर वेदालंकारजी के कान में कहा, 'और यह तो

आपके लिए सेहरा लिख रहे हैं, आपको इस तरह किसी का अपमान नहीं करना चाहिए !'

'आय'म सॉरी !'[1] वेदालंकारजी ने चेतन की ओर देख कर होंटों ही में कहा। लेकिन वे क्या बोल रहे थे, वे एकदम भूल गये। अचकचा कर उन्होंने मुनीन्द्रजी को धन्यवाद दिया (जिनके कारण इतनी सुन्दर और महत्वपूर्ण गोष्ठी का आयोजन हो सका) और सभा बरख़्वास्त कर दी।

०

मुनीन्द्रजी लोगों में घिर गये। जब धीरे-धीरे लोग चले गये तो वे स्वयं ही टहलते हुए वहाँ-आ गये, जहाँ चेतन कवि चातक के साथ खड़ा था। चातकजी ने सविस्तार उसका परिचय दिया। चेतन ने कहा कि उसने उनकी ज़्यादा कहानियाँ नहीं पढ़ीं। दो-ही-तीन पढ़ी हैं, पर उसे वे पसन्द आयी हैं। 'छोटा-सा पिल्ला' के अलावा उसे 'बेचारा फनियर' भी पसन्द आयी। उसमें बात तो ज़रा-सी है, लेकिन. . .

मुनीन्द्रजी ने उसकी बात काट कर अधमुंदी आँखों से छत की ओर देखते हुए कहा, 'वह सर्जक ही क्या, जो राई को ले तो पहाड़ न बना दे !'

चेतन मन-ही-मन हँसा। इस व्यक्ति के अहं का भी वार-पार नहीं। पर उसने कहा, 'मेरी भी कहानियों का एक संग्रह छपा है, लेकिन उर्दू में है। मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसकी भूमिका लिखी है। यदि मैं दिल्ली आया तो एक प्रति यहाँ से लेता जाऊँगा और वहीं आपको भेंट करूँगा।'

मुनीन्द्रजी ने कहा कि वह ज़रूर-ज़रूर दिल्ली आये। वे प्रतीक्षा करेंगे।

'आपके भाषण देने के ढंग को देख कर अचानक महात्मा गान्धी की याद आ गयी. . .'

---

१. मुझे अफ़सोस है। क्षमा कीजिए !

उन्होंने उसे बात नहीं खत्म करने दी। बड़ा मोमना-सा मुँह बना कर बोले, 'हाँ—आँ—आँ ! अहमदाबाद में भी किसी ने यही बात कही थी। अपने राम तो परम अज्ञ हैं। न लिखना जानें, न बोलना। जैसे रामभरोसे लिखते हैं, वैसे रामभरोसे बोलते हैं। अब लोग हैं कि कहते हैं कि मुनीन्द्र बोलता है तो महात्मा गान्धी की याद दिला देता है. . .'

तभी वेदालंकारजी डॉक्टर घनानन्द को नीचे छोड़ कर आ गये और बोले, 'ताँगा आ गया है। अब चलें !'

०

घर जा कर चेतन ने नोट बुक में लिखा :

'आज गोष्ठी में मुनीन्द्रजी और धर्मजी के भाषण सुने। दोनों घोर अहंवादी हैं। लेकिन जहाँ वेदालंकारजी का अहं छोटा है, वहाँ मुनीन्द्र का बड़ा है और शायद इसीलिए अपने तमाम ज्ञान के बावजूद वेदालंकारजी छोटे कथाकार हैं और अपने तमाम अज्ञान (?) के बावजूद मुनीन्द्रजी बड़े !'

उनतालीस

पण्डित धर्मदेव वेदालंकार की शादी को केवल तीन दिन रह गये थे, जब चेतन लगभग दस बजे के करीब सुनहरे फ्रेम में जड़ा सेहरा लिये, १८-ए टैम्प रोड पहुँचा।

०

'मंजरी' के दफ़्तर में कथाकार मुनीन्द्र की गोष्ठी के दिन धर्मजी से उसकी जो झोड़ हो गयी थी, उससे सेहरा लिखने के सिलसिले में चेतन का सारा उत्साह मन्द हो गया था और उसने 'मंजरी' के दफ़्तर की सीढ़ियाँ उतरते ही चातकजी से कह दिया था कि वह न उनका सेहरा लिखेगा और न दिल्ली जायेगा। तब चातकजी ने उसे समझाया था कि इतनी छोटी बात पर उसे नाराज़ नहीं होना चाहिए। सेहरा तो उसने लगभग लिख ही लिया है, दो-चार शेर उनके पिताजी के नाम-धाम सम्बन्धी उसमें फ़िट करके, अपने दफ़्तर ही के कातिब से लिखवा कर उसे फ्रेम में जड़वा ले। जब एक प्रोग्राम तय कया है तो उसे क्यों तोड़ता है।

'इधर मेरी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं चातकजी,'

चेतन ने कहा था, 'मेरे सिर पर कुछ कर्ज़ भी चढ़ गया है। फ़ालतू खर्च के लिए मेरे पास एक भी पैसा नहीं।'

'अरे भाई तुम्हारा खर्च क्या होगा ? बरात के साथ तो तुम जाओगे।'

'किराया तो माना नहीं लगेगा। पर दिल्ली जायेंगे। तीन-चार दिन रहेंगे, कुछ रुपये तो दरकार होंगे ही।'

'वहाँ की तुम चिन्ता न करो, वहाँ का खर्च हम पर छोड़ो!'

'चेतन निरुत्तर हो गया, पर उसका मन जाने को नहीं था। वेदालंकारजी के लिए उसके मन में कुछ अव्यक्त-सा विरोध-भाव था। उनके लेखक में अहं था। अपने को बहुत लगाने और दूसरों को नगण्य समझने की जो भावना, ऊपरी टीम-टाम-भरा जो दिखावा था, वह अनायास चेतन के मन में क्रोध और विकर्षण जगाता था। उनका आभिजात्य थोथा और खोखला दिखायी देता था। उसे नहीं लगता था कि उनके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध हो सकता है। चेतन न केवल अपनी आर्थिक स्थिति के कारण तहमद-कमीज़ या कमीज़-नेकर पहनता था, वरन उस लिबास को बेहतर भी समझता था और उसमें बहुत आज़ादी और सुविधा महसूस करता था। वेदालंकारजी हर वक्त सूट-बूट कसे रहते थे और प्रकट ही बाकी सब को असभ्य और गँवार समझते थे, जबकि चेतन को उनकी वेश-भूषा और रहन-सहन ग़ुलामी का प्रतीक लगता था। जब उसने उनके सजे-बजे ड्राइंग-रूम में केवल बण्डी और कच्छा पहने मुनीन्द्रजी को मज़े से बैठे देखा था तो उसे बहुत खुशी हुई थी और केवल इसी एक बात से मुनीन्द्रजी का व्यक्तित्व वेदालंकारजी के मुकाबले उसकी आँखों में उठ गया था। दिल्ली जाने और मुनीन्द्रजी से सम्पर्क बढ़ाने को उसका मन था। अपने तमाम पोज़ के बावजूद वे कहीं अन्तर में उसे सहज लगे थे, लेकिन वह दिल्ली जाना चाहता था तो उसके लिए वेदालंकारजी का सेहरा लिखना ज़रूरी था और सेहरा लिखने को उसका मन ज़रा भी नहीं था।

ग़ज़ल लिखने की आदत उसकी छूट गयी थी और सेहरा लिखने में उसे कोई कठिनाई हो रही थी, यह बात न थी। हुनर साहब ने नीला की शादी पर रंगून के उस अधेड़ कैप्टन की प्रशंसा में जो सेहरा लिखा था, उसकी एक प्रति चेतन के पास सुरक्षित थी और उसमें कुछ फेर-बदल करके वह उस सेहरे को वेदालंकारजी के विवाह पर भी बड़ी आसानी से पढ़ सकता था, उसके कुछ शेर उसने चातकजी को सुनाये भी थे, पर भरी मीटिंग में जिस तरह वेदालंकारजी ने उसे डाँट दिया था, उससे उनके प्रति उसका पहला क्रोध द्विगुणित हो उठा था। इसलिए चातकजी की बात सुन कर उसने न 'हाँ' की, न 'ना' और चुप बना रह गया।

लेकिन चातकजी उसे यूँ छोड़ने वाले नहीं थे। उसमें उन्हें एक आक्रामक सहयोगी के दर्शन हुए थे, जो लाहौर के साहित्यिक संघर्ष में उनका दायाँ हाथ बन सकता था। मुनीन्द्रजी वाली मीटिंग में उनसे कविताएँ पढ़ने का अनुरोध करने में उसने जो भूमिका अदा की थी, उससे वे मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए थे और दिल्ली की यात्रा में वे उसे अपने साथ रखना चाहते थे। इसीलिए जब वेदालंकारजी की शादी के निमन्त्रण छप गये तो चपड़ासी के हाथ भिजवाने के बदले चातकजी उन्हें स्वयं ले कर टैप रोड पहुँचे थे। उन्होंने चेतन के सेहरे की बड़ी प्रशंसा की थी, पर साथ में यह भी कहा था कि वह बहुत सीधा-सादा, भावप्रवण और नितान्त अव्यावहारिक युवक है। उस दिन वेदालंकारजी ने भरी मीटिंग में उस पर जो रिमार्क कस दिया था, उससे वह बड़ा खिन्न है और वेदालंकारजी को निमन्त्रण-पत्र उसे स्वयं जा कर देना चाहिए और एक बार फिर कह देना चाहिए कि बहस के जोश में कही गयी बात को वह दिल में न लगाये।

यूँ तो शायद वेदालंकारजी कभी न जाते, पर एक तो सेहरे का लालच, फिर चातकजी का अनुरोध और सबसे ऊपर चेतन की दबंगई ...उनकी व्यावहारिक बुद्धि ने उन्हें सुझाया कि उस युवक को विरोधी

नहीं बनने देना चाहिए। चातकजी के लाहौर आ जाने से शहर में हिन्दी वातावरण तैयार हो गया था और उन्हें लगता था कि हिन्दी बोर्ड में उनका जो एकाधिकार है, उस पर भी आँच आ सकती है। चेतन को एक भावी विरोधी के बदले मित्र बनाना ही उन्हें श्रेयस्कर लगा था और वे लिफ़ाफ़े में निमन्त्रण-पत्र डाल कर चातकजी के साथ स्वयं चेतन के यहाँ पहुँचे थे। न सिर्फ़ उन्होंने उसे स्वयं कार्ड दिया था और बरात में शामिल होने का अनुरोध किया था, वरन पिछली शाम के रिमार्क के लिए फिर क्षमा माँग ली थी।

और चेतन का भोला अहं उतने से न केवल सन्तुष्ट, वरन अभिभूत हो गया था। उसने मिन-मिन करते हुए कहा था कि वह कई घरेलू कारणों से परेशान है, इसलिए उसके मन में दिल्ली जाने के सिलसिले में दुविधा थी, पर चातकजी भी कह रहे हैं और वेदालंकारजी भी स्वयं कहने आये हैं तो वह ज़रूर बरात में शामिल होगा। सेहरा तो उसने लगभग लिख रखा है, जब वे आये हैं तो ज़रा देख-सुन कर पास करते जायें। फिर वह कातिब से लिखवा कर उसे फ्रेम करवा लेगा।

और उनसे दस मिनट की इजाज़त ले कर चेतन मेज़ पर जा बैठा था। डायरी में लिखे हुए शेर उसने साफ़ काग़ज़ पर नोट किये थे। एक शेर में उनके गाँव कोट मौदू और उसके उदार हृदय साहूकार लाला सी० राम का नाम भी जड़ दिया था और खड़े हो कर वहीं से पूरी भाव-भंगिमा के साथ सेहरा सुनाया था।

वेदालंकारजी को कठिन उर्दू में लिखे हुए शेर पूरी तरह समझ में आ गये हैं, यह बात तो वह जान नहीं पाया, क्योंकि वे पंजाबी होने के बावजूद गुरुकुल में शिक्षा पाये हुए थे और इसीलिए उर्दू से बिल्कुल कोरे थे, लेकिन उस तरह उसके सेहरा पढ़ने से वे बड़े प्रभावित हुए थे। उठ कर उन्होंने उससे हाथ मिलाया था। इतना सुन्दर सेहरा लिखने पर उसे धन्यवाद दिया था और बताया था कि लाहौर से सब मित्र रात को फ्रंटियर मेल से जायेंगे और वह तैयार रहे।

यूँ उसके अहं को सन्तुष्ट कर, उससे बड़ी गर्मजोशी से हाथ मिला कर स्वयं भी प्रसन्न और सन्तुष्ट, वेदालंकारजी कवि चातक के साथ चले गये थे।

चेतन के मन का कलुष घुल गया था। उसकी दुविधा दूर हो गयी थी। उनके जाने के बाद उसने फिर से सेहरे को पढ़ा था। एक-दो शेर काटे, एक-दो जोड़े थे और पूरी तरह सन्तुष्ट हो कर वह गरणपत रोड पर गया था। वहाँ से उसने एक शीट आर्ट पेपर खरीदा था, कातिब के चौबारे पर जा कर लिखवाया था और लोहारी के अन्दर एक फ्रेम मेकर के यहाँ से सुनहरे फ्रेम में उसे जड़वा लिया था। चेतन अपने साथ सिर्फ़ एक छोटी-सी ट्रंकी ले जा रहा था। दरी, खेस और दो चादरें, उसने तय किया था कि चातकजी के बिस्तर ही में रख लेगा। सेहरे का फ्रेम उस ट्रंकी में समा नहीं रहा था। खुला ले जाने में शीशे के तड़क जाने का भय था, इसलिए वह उन्हें सेहरा देने आया था कि वे अपने सामान के साथ सहेज कर उसे दिल्ली ले जायें। वहाँ समय पर उनसे ले कर वह उसे पढ़ देगा।

०

लेकिन जब वह ड्राइंग-रूम में पहुँचा तो उसने वेदालंकारजी को सूट-बूट समेत कौच पर पेट के बल बाँहों में सिर दिये लेटे हुए कराहते पाया।

चेतन क्षरण भर को दरवाज़े में ही स्तम्भित खड़ा रह गया।

'वेदालंकारजी !' उसने धीरे से आवाज़ दी।

वे शायद बड़े कष्ट में थे। हिले तक नहीं। केवल उनकी कराहट का क्षीरण स्वर उसे सुनायी दिया।

चेतन का सारा उत्साह भंग हो गया। उसने बढ़ कर सेहरा बराबर के छोटे कौच की पीठ पर टिका दिया और फिर उन्हें ज़रा-सा छू कर आवाज़ दी :

'वेदालंकारजी, क्या बात है ?'

उन्होंने बड़ी तकलीफ़ से ज़रा-सा हिल कर सिर मोड़ा और ज़ोर से कराहे।

'क्या हुआ ?' चेतन ने बड़ी हमदर्दी से उनके कन्धों को थपथपाया।

वेदालंकारजी की आँखों से अनायास आँसू बहने लगे, 'परसों शादी है और मैं तो हिल भी नहीं सकता।'

'बात क्या हुई ?'

'जाने क्या हुआ। बड़ा ट्रंक एक जगह से उठा कर दूसरी जगह रखने जा रहा था। भारी था, ज़रा झटके से उठाया कि कमर में कुछ कड़क-सा हुआ और मैं वहीं झुका-का-झुका रह गया। बड़ी मुश्किल से घिसट कर यहाँ तक पहुँचा और लेट गया।'

और किसी तरह जेब से रूमाल निकाल कर उन्होंने आँसू पोंछ डाले।

'आपको परसों रात गाड़ी चढ़ना है।' चेतन ने जैसे अपने आप से कहा।

वेदालंकारजी फिर बाँहों में सिर दे कर लेट गये थे।

'आपका कोई सगा-सम्बन्धी यहाँ नहीं आया ?'

'वे सब दिल्ली पहुँच रहे हैं। मैंने तो नौकर को भी आज चार रोज़ के लिए छुट्टी दे दी।'

वे नौकर को शादी में क्यों नहीं ले जा रहे और ऐसे ख़ुशी के मौके पर उन्होंने उसे छुट्टी क्यों दे दी ? सहसा चेतन के मन में यह सवाल उठा। लेकिन उसने उनसे कुछ नहीं पूछा। वेदालंकारजी बड़ी तुनक-मिज़ाज तबियत के आदमी थे और उसने सुन रखा था कि नौकर उनके यहाँ मुश्किल ही से टिकता था। उन्होंने नौकर को छुट्टी न दे दी होती तो क्या उन्हें इतना भारी ट्रंक स्वयं उठाना पड़ता और उनके यूँ 'चुक्क' पड़ जाती ?[१]

---

१. चुक्क पड़ जाना=पठ्ठा या नस चढ़ जाना।

चेतन को पूरा यकीन था कि उनके 'चुक्क' पड़ गयी है। उसने कहा, 'लगता है आपकी नस चढ़ गयी है।'

'शायद !' उन्होंने कराह कर कहा, 'पर यह तो कई दिन में जा कर ठीक होगी और हमें तो परसों जाना है।'

दर्द के मारे उनका चेहरा विकृत हो गया और उनकी आँखों में फिर आँसू आ गये।

चेतन को सदा हवा में उड़ने वाले, शेष सब को अपने सामने हेय समझने वाले उस अहंवादी की बेबसी पर अनायास दया हो आयी। पल भर के लिए उसके मन में यह भाव भी आया कि शायद वे दिल्ली न जा पायें। तब उसकी सारी मेहनत व्यर्थ हो जायेगी। और तत्काल उसने तय कर लिया कि उसे क्या करना चाहिए।

'मैं एक बार कॉलिज में फ़ुटबॉल खेल रहा था,' उसने कहा, 'मैंने बॉल को ज़ोर से किक मारी तो मेरा निशाना चूक गया और मेरी टाँग ऊपर-की-ऊपर रह गयी। नस चढ़ गयी और टाँग को नीचे करने में जो तकलीफ़ हुई, मैं बयान नहीं कर सकता। कॉलेज से घर तक आने में मुझे जैसे कदम-कदम चलना, कहिए कि घिसटना पड़ा, उसकी याद मात्र से आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैं घर आया और किसी तरह सीढ़ियाँ चढ़ कर वहीं आँगन में लेट गया। जब माँ को पता चला तो उसने उसी वक्त अँगीठी सुलगा कर उस पर तवा रखा और घुटने पर नींबू और नमक की टकोर की और रूहड़ रख कर बाँध दिया। दो बार ही की टकोर से दर्द जाता रहा। आप घबराइए नहीं, मैं अभी आपको टकोर कर देता हूँ। एक-आध घण्टा तो लग जायेगा लेकिन भगवान ने चाहा तो परसों शाम आप हँसी-खुशी हमारे साथ दिल्ली जा रहे होंगे।'

वेदालंकारजी कुछ क्षण चुप सोचते रहे।

'यूँ आप कहिए तो मैं डॉक्टर को बुला लाता हूँ,' चेतन ने कहा, 'वे लोग लिनामेण्ट-विनामेण्ट तजवीज़ करते हैं, पर उससे इतनी जल्दी आराम नहीं आता। दस-बीस वर्ष बाद नस या पट्ठा चढ़ने की कोई

फ़ौरी दवा निकल आये तो मैं कह नहीं सकता, लेकिन अभी तो कोई नहीं। आप डॉक्टरों के चक्कर में पड़ेंगे तो दिल्ली जाने से रह जायेंगे। मेरा आज़माया हुआ टोटका है। मैं अभी आपको नींबू की टकोर कर देता हूँ। शाम को दफ़्तर जाने से पहले मैं फिर आऊँगा। शाम तक आराम न आया तो डॉक्टर को बुला लाऊँगा और यदि कुछ आराम आ गया तो एक बार फिर टकोर कर जाऊँगा। कल तक आप एकदम भले-चंगे हो जायेंगे।'

वेदालंकारजी चुप रहे तो उनकी ख़ामोशी को नीम-रज़ा समझ कर उसने उन्हें नींबू की टकोर करने का फ़ैसला कर लिया। वह नींबू बाज़ार से ले आयेगा, यह उसने तय कर लिया था। नौकर की ग़ैर-मौजूदगी में किचन में कोयला वग़ैरह है या नहीं, यह देखने के लिए वह किचन में गया तो वहाँ एक प्लेट में दो रस-भरे नींबू देख कर वह बड़ा खुश हुआ। किचन से एक छोटी अँगीठी और कोयले ले कर उसने बाहर आँगन में आ कर अँगीठी सुलगायी। फिर उसने कमरे में जा कर वेदालंकारजी से पूछा, 'नींबू तो किचन में है, अँगीठी मैंने सुलगा दी है। घर में कुछ रूहड़ होगा ?'

'रूहड़ तो नहीं, पर मेडिकेटेड रूई का पैकेट सोने के कमरे की अलमारी में पड़ा है।' उन्होंने किसी तरह कराहट को रोक कर बताया।

चेतन ने सारी स्थिति को कुशल निर्देशक की तरह अपने हाथ में ले लिया। वह सोने के कमरे में गया। अलमारी खोल उसने रूई का गोल पैकेट निकाला। उसमें से रूई निकाल कर उसके दो पैड बनाये। फिर वहाँ से मेडीकेडेट पट्टी का बण्डल ले कर बाहर आया और ये चीज़ें उसने कौच के पास एक तिपाई खींच कर, उस पर रख दीं। तब वह फिर किचन में गया। एक नींबू बीच से काट कर उसने उसके बीज निकाले। दोनों टुकड़ों में नमक भरा। फिर नमकदानी का ढक्कन खोल कर तीन-चार चुटकी नमक प्लेट में नींबू के दोनों टुकड़ों के साथ रखा और आ कर प्लेट तिपाई पर रख गया। तब उसने किचन से पीतल

का एक थाल निकाला और उसे तिपाई के पास ग़ालीचे पर रख दिया। उस पर उसने अँगीठी ला कर रख दी और अँगीठी पर तवा टिका दिया। अँगीठी के नीचे थाल रखने की सावधानी उसने इसलिए बरती कि कोई चिनगारी नीचे ग़ालीचे को न जला दे।

यह सब तैयारी कर के वह वेदालंकारजी की टाँगों के पास कौच पर बैठ गया। उनकी कमीज़ पतलून से निकाल कर उसने कमर नंगी की। नींबू का एक टुकड़ा उलट कर तवे पर रख दिया। टोह कर देखा कि उनके कहाँ दर्द होता है। जहाँ उँगली रखते ही वे तड़प उठे, वहाँ धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए, उसने तवे से नींबू उठाया, अपने बायें हाथ की पुश्त पर उसे छुला कर देखा कि सहा तो जा सकता है, तब उसने उनकी कमर पर उस जगह छुलाया, जहाँ उन्हें बेपनाह दर्द था। लेकिन शरीर से नींबू लगते ही वेदालंकारजी बेतरह तड़प गये। चेतन ने तो नींबू छुलाया भर था।

'घबराइए नहीं, मैं सहती-सहती टकोर करूँगा!' उसने कहा और धीरे-धीरे छुलाता और फ़ौरन उठाता हुआ वह पूरा नींबू शरीर पर रखने लगा। जब वह दर्द वाली जगह पर एक गोल दायरे में टकोर कर चुका और नींबू का टुकड़ा ठण्डा होने लगा तो उसने रूई का पैड तवे पर रख दिया और हाथ से उसे जलने से बचाते हुए गर्म करने लगा। गर्म हो गया तो बायें हाथ से उसने नींबू का टुकड़ा उठाया और दायें से रूई का पैड उस जगह पर रख दिया। तब उसने नींबू का दूसरा टुकड़ा तवे पर रखा और पहले में चुटकी भर नमक और डाल कर उसे तैयार कर लिया। तवे पर रखा हुआ टुकड़ा गर्म हो गया तो रूई का पैड हटा कर वह उससे टकोर करने लगा।

नमक बारीक नहीं पिसा था। उसका कोई-कोई कण अंगारे की तरह जिल्द पर लगता था और वेदालंकारजी तड़प उठते थे। यूँ तो चेतन हर बार अपने बायें हाथ की पुश्त पर हलका-सा छुला कर देख

लेता था, तो भी नींबू में पड़ा हुआ नमक ज्यादा गर्म हो जाता और वेदालंकारजी तड़प उठते ।

चेतन बड़े सब्र के साथ टकोर और सेक करता गया । एक-दो बार उसने जल्दी में बायें हाथ पर नींबू छुलाये बिना उनकी कमर पर रख दिया । तब वेदालंकारजी कुछ इस तरह तड़पे कि चेतन को अजीब-सी शैतानी खुशी हुई । उसके बाद उसने एक-दो बार जान-बूझ कर ऐसा ही किया और उनके तड़पने का मज़ा लिया ।. . .लेकिन उन्हें प्रकट ही आराम महसूस हो रहा था । उनकी कराहट कब की खत्म हो गयी थी और वे हिलने-डुलने लगे थे । जब चेतन ने दूसरी या तीसरी बार वही हरकत की तो उन्होंने कहा, 'देखिए एक जगह चुभता है, जिल्द जल न जाय !'

'वहीं नस चढ़ी है,' चेतन ने कहा । वह मुस्कराया भी, लेकिन उसकी वह मुस्कराहट उन्होंने नहीं देखी । उस जगह उसने कुछ ज्यादा टकोर शुरू कर दी ! नींबू बहुत रस-भरा था, फिर नमक उसका रस ऊपर भी ले आता था । एक नींबू की टकोर करने में एक घण्टा लग गया । जब वे दोनों टुकड़े सूख गये तो चेतन ने टकोर बन्द कर दी और रूई के फाहे से नींबू और नमक की लेस साफ़ की । तब उसने देखा कि शरारत से जिस जगह वह कभी-कभी कुछ ज्यादा गर्म नींबू लगा देता था, वहाँ चवन्नी बराबर जिल्द काली पड़ गयी थी । चेतन क्षण भर को उसे विमोहित देखता रहा । फिर उसने रूई का दूसरा फाहा गर्म कर उस पर रखा । शायद कुछ ज्यादा गर्म हो गया । वेदालंकारजी उसी से छटपटा गये । लेकिन दूसरे क्षण वे सहज हो आये । चेतन ने रूई के ऊपर पट्टी बाँधी और कमीज़ उसके ऊपर कर के पतलून के अन्दर कर दी । वेदालंकारजी को घण्टे भर के सेक और टकोर ही से इतना आराम आ गया था कि वे चेतन के सहारे उठ कर बैठ गये और उन्होंने स्वयं कमीज़ को अच्छी तरह पतलून के अन्दर करके बटन लगा लिये !

चेतन ने किचन से सड़सी ला कर उससे गर्म तवा उठाया और उसे

सिंक में रख आया। फिर उसने अँगीठी ले जा कर किचन में रखी। फिर वह थाल वहीं रख आया। तब उसने बाहर वाश-बेसिन में जा कर अच्छी तरह हाथ धोये, वहीं पड़े तौलिये से पोंछे और वापस आ कर वेदालंकारजी से छुट्टी चाही।

वेदालंकारजी ने बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और लगभग दयनीय स्वर में कहा कि वह शाम को एक बार ज़रूर आये!

'अव्वल तो अब दोबारा टकोर की ज़रूरत नहीं, पर आप चाहेंगे तो मैं शाम को एक बार और कर जाऊँगा।' और वह हँसा, 'परसों आप हमारे साथ गाड़ी में बैठे होंगे, यह तय है। ट्रंक-वंक अब आप मत उठाइएगा।' फिर क्षण भर रुक कर उसने पूछा, 'आपने नौकर को क्यों छुट्टी दे दी? आपको तकलीफ़ तो नहीं होगी।'

'हो जाती, पर अब नहीं होगी।' और वे दयनीयता से मुस्कराये।

चेतन ने फ्रेम किया हुआ सेहरा कौच से उठा कर उन्हें सौंपा और 'नमस्कार' कर चला आया।

रास्ते भर उनकी वह दयनीय मुस्कान और उनकी कमर पर चवन्नी बराबर बना वह गोल-सा दाग़ उसकी आँखों में आता रहा। 'आदमी का मन कितना पेचीदा है,' वह सोचता रहा, 'क्या उन्हें आराम देने के सारे प्रयास में भी जलते नमक के स्पर्श से उनका तड़पना देख, उसे ख़ुशी न होती थी! और क्या वह इस तरह लॉ-रिपोर्टर के दफ़्तर में उनके द्वारा किये गये अपमान का बदला न चुका रहा था?'

०

लेकिन शाम को वह फिर उनके यहाँ गया। यद्यपि उन्हें काफ़ी आराम था, पर वे लेटे हुए थे। उन्होंने ज़ोर दिया कि एक बार और टकोर कर दे। और यद्यपि वह दिन भर अपनी इस सादियत[1] के लिए अपने आप को कोसता रहा था, पर जब वह उन्हें टकोर करने लगा तो फिर कभी-

---

१. सैडिज़्म।

कभी अनजाने, अनचाहे उससे वही हरकत होने लगी। एक बार टकोर करते-करते उसने नींबू की गर्म बूंद वहाँ टपका दी और वेदालंकारजी एड़ी से चोटी तक तड़फड़ा गये। चेतन का मन उस नौकरशाह लेखक की इस तड़फड़ाहट पर हँसने को हुआ। 'घबराइए नहीं, घबराइए नहीं।' उसने अपने आप पर संयम रखते हुए कहा और फिर वह अपने बायें हाथ की पुश्त से गर्म नींबू छुला कर और कभी उसे फूंक मार कर कद्रे ठण्डा कर के, सहती-सहती टकोर करने लगा।

चेतन के अपने हाथ की पुश्त, जहाँ वह गर्म-गर्म नींबू छुला कर देखता था, लाल हो गयी थी। टकोर खत्म कर के और रूई बाँध कर उसने वेदालंकारजी को हाथ की पुश्त दिखायी। 'असल में नमक जितना बारीक होना चाहिए, नहीं है,' उसने कहा, 'और कोई-कोई दाना इतना गर्म हो जाता है कि जिल्द को जला देता है। मैं तो पहले अपने हाथ पर छुला कर फिर आपके टकोर करता रहा हूँ। आप ज़रा ठीक हो जायें तो ज़ैम्बुक अथवा 'मोहन दग्धहरण मरहम' की एक डिबिया ले कर उसे ज़रा-सा लगा लीजिएगा। दर्द तो आपका आज रात ही काफ़ूर हो जायेगा और भगवान ने चाहा तो परसों आप हमारे साथ मज़े से सफ़र कर रहे होंगे।

और चेतन ने छुट्टी चाही।

वेदालंकारजी ने उसे धन्यवाद दिया, समय से स्टेशन पर पहुँचने की ताकीद की और चेतन उन्हें 'नमस्कार' कर चला आया।

०

घर आ कर उसने नोट-बुक में वेदालंकारजी की नस चढ़ने, उनके कराहने और उन्हें टकोर करने का पूरा ब्योरा नोट किया और अन्त में लिखा :

> 'यद्यपि मैं दिन भर अपने आपको अपनी उस सादियत के लिए कोसता रहा हूँ, लेकिन फिर जब शाम को उन्हें टकोर करने लगा तो फिर मैंने वही हरकत की।'

(यद्यपि उर्दू में सैडिज़्म के लिए सादियत प्रचलित था, पर चेतन को हिन्दी के लिए यह शब्द उपयुक्त नहीं लगा। उसने डिक्शनरी उठायी और चाहे सैडिज़्म के जो अर्थ शब्दकोश में लिखे थे, वे कठिन थे तो भी उसने सादियत को काट कर उसकी जगह पर-यन्त्रणा-प्रियता लिख दिया। यह परिवर्तन करके उसने नोट-बुक में लिखा :)

'मैं जो अपने आपको बहुत हस्सास और भाव प्रवण समझता हूँ, कैसे उस तरह परयन्त्रणा-प्रिय हो सका। क्या यन्त्रणा-प्रियता हमें आदिम युग की देन नहीं है ? क्या हम अब भी अपने अन्तर में वैसे ही पशु नहीं हैं ?. . .लेकिन मुझे कोई पशु कह दे तो मुझे कितना बुरा लगेगा ? हालाँकि मेरी वह हरकत इन्सान की हरकत नहीं, हैवान ही की हरकत थी। मुझे अपने अन्तर के इस हैवान से लगातार लड़ना होगा।'

चेतन ने नोट-बुक बन्द कर दी और वहीं ईज़ी चेयर पर बैठा बहुत देर तक अपने अन्तर के इस हैवान का पीछा करता रहा।

०

हालाँकि वेदालंकारजी की कमर में, जहाँ चवन्नी भर जिल्द जल गयी थी, उन्हें काफ़ी चुभन और तकलीफ़ थी, लेकिन तीसरे दिन वे नीरवजी, चातकजी, शुक्लाजी और चेतन के साथ फ़्रंटियर मेल में बैठ गये और उनको देख कर सपने में भी यह कल्पना नहीं की जा सकती थी कि केवल दो दिन पहले दर्द के मारे यह व्यक्ति हिल-डुल नहीं सकता था और उस स्थिति में अपनी बेबसी पर रोने लगा था। उनकी पुरानी शान-बान, ठस्सा और साहबियत लौट आयी थी और वे फिर वही पुराने पण्डित धर्मदेव वेदालंकार, डायरेक्टर 'विश्व-साहित्य प्रकाशन' बन गये थे।

चा
ली
स

तीन दिन बाद वेदालंकारजी तथा अन्य साथियों के साथ चेतन वापस आ गया। चातकजी पीछे रह गये थे। उनकी एक प्रशंसिका ने उन्हें दिल्ली में रोक लिया था। वे तो चाहते थे कि चेतन भी रुक जाय, पर वह दफ़्तर से छुट्टी ले कर न गया था, इसलिए रुक नहीं सका। घर पहुँच, नहा-धो. वह नोट-बुक ले कर बैठ गया और भूल न जाय, इसलिए दिल्ली के अपने इम्प्रेशन नोट करने लगा :

०

● 'भाई साहब जब एफ़० ए० में घर से दिल्ली भाग गये थे और बाद में दिल्ली से पाँच मील के फ़ासिले पर रायसीना गाँव के निकट बनने वाले नये सेक्रेटेरिएट और गवर्नर जनरल की कोठी का उन्होंने ज़िक्र किया था तो वहाँ एक बड़े गोल दायरे में बनने वाली एक भव्य मार्केट की भी बात उन्होंने की थी। इन आठ वर्षों में रायसीना का कहीं ढूँढे से भी निशान नहीं मिलता। रायसीना गाँव नयी दिल्ली बन गया है और गोल मार्केट एक नहीं, दो हैं। एक छोटी, दूसरी बड़ी। छोटी पंचकुइयाँ रोड से आगे

है और गोल मार्केट ही कहलाती है। बड़ी भी गोल है, लेकिन उसका नाम कनॉट-प्लेस है। उसके अन्दर और बाहर दुकानें हैं। दुकानों के आगे छते हुए गलियारे हैं। उनके बाद चौड़ी सड़क है और अन्दर के दायरे में घास का विशाल गोल लॉन है, जिसमें गुलमौर के छतनार पेड़ और रंग-बिरंगे फूलों के पौदे लगे हैं। मैंने इतनी बड़ी और भव्य मार्केट कभी नहीं देखी !. . .लेकिन मैंने अभी दुनिया में देखा ही क्या है ?

● लाल किला, जुमा मस्जिद, पुराना किला और कुतुबमीनार देखा। —जुमा मस्जिद की सीढ़ियाँ और विशाल प्रांगण, लाल किले का दीवाने-आम और दीवाने-खास और जमुना की ओर बेगमों के महल और उनके हमाम, जहाँ कभी गुलाब के इतर वाला पानी भरा रहता था।. . . पुराने किले की टूटती फ़सीलें और कंगूरे और आसमान को भेदता-सा कुतुबमीनार ! इनमें आराम से तो कुतुबमीनार ही देखा, बाक़ियों के तो बस दर्शन किये।. . .हलके-हलके बादल घिरे थे और बड़ी हलकी फुहार पड़ रही थी, जब दोपहर के बाद ताँगा ले कर हम वे सब देखने गये। हम से मतलब है—नीरवजी, चातकजी और मैं !. . .नन्हीं-नन्हीं बूदियाँ बरसती रहीं और ताँगा टिपर-टिपर चलता रहा। उस सैर में बड़ा लुत्फ़ आया। कुतुब तक पहुँचते-न-पहुँचते पानी थम गया। हम कुछ देर नीचे मख़मली घास के मैदान में लेटे रहे। गीली-गीली घास से कपड़े गीले हो गये, लेकिन उस उमस में बड़ा मज़ा आया। नीचे लेटे हुए निगाह ऊपर को उठायी तो कुतुब के शिखर पर खड़े लोग नन्हें-नन्हें खिलौनों-से लगे और जब कुछ देर सुस्ता कर हम कुतुब पर चढ़े तो ऊपर से देखने पर नीचे खड़े अथवा बैठे लोग चीटियों-से दिखायी देने लगे—जाने इसे किसी हिन्दू राजा ने इसलिए बनवाया था कि उस पर चढ़ कर उसकी माँ अथवा पत्नी हर प्रातः जमुना के दर्शन कर सके अथवा किसी मुसलमान राजा ने अपनी विजय की ख़ुशी में इसकी बुनियाद रखी थी या फिर इसकी ऊँचाई से मीलों परे से शत्रुओं की टोह लेने के लिए इसे बनवाया गया हो; लेकिन इस वक्त यह अकेला मीनार उस वीराने को

जिन्दा रखे हुए है और इसे देख कर सदियों पहले उस वीराने में बसी दिल्ली की कुछ कल्पना होती है, जिसके खण्डहर दूर-दूर तक फैले हुए हैं ! कहते हैं कि कुतुब पर चढ़ो तो पूरी दिल्ली ही नहीं, जमुना की धारा भी दिखायी देती है। आकाश पर छाये बादलों के कारण हमें कुछ भी दिखायी न दिया—सिवा चारों तरफ़ फैले वीराने, झाड़ियों और बेगिनती खण्डहरों के। कैसे-कैसे भव्य भवन न होंगे, जो मिट गये. . . और उन भवनों के वासी. . .

खाक में क्या सूरत होंगी जो पिन्हाँ हो गयीं[१]

कुतुब के बराबर ही खँडहरों में सदियों से खड़ी अशोक की लोहे की लाट भी देखी। न जाने किस धातु की बनी है कि सदियाँ गुज़र जाने पर भी उसे ज़ंग नहीं लगा। और वह गगनचुम्बी मेहराबदार दरवाज़ा —जो शायद इतना ऊँचा इसलिए है कि हाथी पर बैठा सम्राट सीधा उसके अन्दर आ जाय !

● दिल्ली में लाहौर की अपेक्षा कहीं ज़्यादा गर्मी थी। जिस दिन पहुँचे, धूप चमक रही थी और आँखें नहीं खुलती थीं। नयी दिल्ली की जिस कोठी में ठहरे, उसमें अव्वल तो नलों में पानी आता नहीं था। आता था तो इतना गर्म कि शरीर जल जाता था।

● वेदालंकारजी ने बताया कि उनकी कमर में दर्द नहीं, पर जिल्द जहाँ जल गयी है, वहाँ टीसती है। वे ज़ैम्बुक लगा रहे हैं। बरसात के दिन हैं, कहीं पस न पड़ जाये और उनकी सुहागरात का सारा मज़ा किरकिरा न हो जाय !

● सेहरा पढ़ना कितना बोर और ज़लील काम है, इसे मैं पहले भी जानता था, लेकिन वेदालंकारजी का सेहरा पढ़ते हुए मुझे फिर इस बात का एहसास हुआ। शायर जब अपने सुखन के मोती बिखेर रहा होता है, तब औरतें दूल्हे को देखने, उसे छेड़ने, उससे छन्द सुनने के

---

१. छिप गयीं।

पीछे पड़ी होती हैं और बराती खाने-पीने के, और बेचारा शायर चिल्ला-चिल्ला कर सेहरा पढ़ रहा होता है और शादी के उस नक्कारखाने में उस तूती की आवाज़ कोई नहीं सुनता । बहरहाल, किसी तरह मैंने अपना फ़र्ज़ पूरा किया और कसम खायी कि सेहरा लिखने से दिल्ली के नहीं, स्वर्ग के द्वार भी खुल जाने वाले हों तो मैं नरक में रहना स्वीकार कर लूंगा, पर सेहरा नहीं लिखूंगा ।

● दिल्ली में, जहाँ मैंने दर्शनीय स्थल देखे, दिल्ली के कई छोटे-बड़े साहित्यकारों से परिचय पाया, चातकजी की प्रशंसिका देखी, वहाँ मुनीन्द्रजी से भी मुफ़स्सल मुलाकात की । मैं इसे ही दिल्ली प्रवास की उपलब्धि मानता हूँ । मुनीन्द्रजी कश्मीरी गेट के एक बँगले की छोटी-सी अनेक्सी में दो-मंज़िले पर रहते हैं । दो कमरे हैं और एक छोटा-सा आँगन ! पत्नी है, सुन्दर बच्चे हैं और उनका एक भांजा है । उनकी पत्नी और भांजे ने मेरी बड़ी खातिर की ।

मुनीन्द्रजी से दिल्ली में पहली बार तो मैं वेदालंकारजी की बरात में, चातकजी और नीरवजी की मौजूदगी ही में मिला और उन्होंने संक्षेप में मेरा हाल-चाल पूछ लिया था, लेकिन कल तीसरे पहर चातकजी को उनकी प्रशंसिका के पास छोड़, मैं अकेले उनसे मिलने गया । बाहर के कमरे में दरवाज़े के समाने कोने में लगी एक मेज़-कुर्सी और शेष कमरे में फ़र्नीचर के नाम पर सीमेण्ट के फ़र्श पर बिछी केवल एक शीतलपाटी । उसी पर मुनीन्द्रजी खादी की बण्डी और नेकर ऐसा कच्छा पहने बैठे थे—मुझे उनमें कुछ अजीब-सी सरलता और उस सरलता के बावजूद कुछ अजीब-सी पेचीदगी लगी—बनावटहीनता और बनावट, विनम्रता और अहंकार, बेतकल्लुफ़ी और तकल्लुफ़ का कुछ अजीब-सी सम्मिश्रण मुझे उनके यहाँ दिखायी दिया ।. . .चटाई पर हम दोनों बैठे थे और मुनीन्द्रजी दोनों बाँहों में घुटने लिये, बिना किसी पोज़ के, मज़े से बात कर रहे थे कि सहसा उनका भांजा नीचे से हाँफता

हुआ आया और उसने कहा कि प्यारेलाल आ रहे हैं और पूछ रहे हैं श्यामाजी तो यहाँ नहीं आयीं।

'उनके आने की बात तो थी,' मुनीन्द्रजी ने कहा, 'पर आयीं नहीं। तुम प्यारेलालजी को लिवा आओ!'

भांजा जैसे आया था, वैसे चला गया। मुनीन्द्रजी ने घुटनों को बाँहों की कैद से आज़ाद किया, अर्द्ध-पद्मासन हो, वे सीधे तन कर बैठ गये। पास पड़ा तह किया साफ़ा उन्होंने कन्धे पर रख लिया और नाक ज़रा-सी नीची कर ली—एकदम उसी पोज़ में, जो 'मंजरी' की गोष्ठी में मैंने देखा था।

(पूछने पर मालूम हुआ कि प्यारेलाल उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध काँग्रेसी नेता हैं और एक-दो वर्ष में आने वाली काँग्रेस मिनिस्ट्री में मंत्री होंगे और श्यामाजी प्रसिद्ध नेत्री हैं।)

लेकिन प्यारेलालजी नहीं आये। यह जान कर कि श्यामाजी ऊपर नहीं हैं, वे उल्टे पाँव वापस चले गये। मुनीन्द्रजी के चेहरे पर निराशा का हलका-सा बादल आया, पर दूसरे क्षण वे सहज हो गये।

मैंने कहा कि अब आप आराम से बैठिए तो उन्होंने साफ़ा परे रख दिया और वे सचमुच उसी तरह घुटनों को बाँहों में ले कर निहायत बेतकल्लुफ़ी से बैठ गये। बिना पूछे मेरे मन की बात भाँप कर उन्होंने सफ़ाई दी कि ये राजनीतिज्ञ लेखक को कुछ महत्व ही नहीं देते और वे ऐसा बर्ताव लेखकों की प्रतिष्ठा के लिए ही करते हैं।...

यह लेखक मुझे बेहद दिलचस्प लगा है। दिलचस्प, पेचीदा और प्रतिभा-सम्पन्न। आज तक जितने हिन्दी लेखकों से मेरा परिचय हुआ है, उनमें यह सबसे अलग दिखायी देता है।

मुनीन्द्रजी ने मुझे दिल्ली आने और कुछ दिन अपने साथ गुज़ारने का निमन्त्रण दिया है। जाने कब यह सुयोग मिलता है। लेकिन जब भी मिला, मैं वहाँ जाऊँगा और कुछ दिन उनके यहाँ बिताऊँगा।

● वेदालंकारजी की शादी में सिवा सेहरा पढ़ने और एक बार

बरात के साथ खाना खाने के मैंने ज्यादा हिस्सा नहीं लिया। उनके पिता को देखा—सुथनी जैसा ढीला चूड़ीदार पायजामा, बन्द गले का लम्बा कोट और बड़ी-सी पगड़ी बाँधे, पतले-छरहरे, लेकिन उम्र के बोझ से कद्रे झुके सीधे-सादे परम देहाती साहूकार! उन्हें देख कर मालूम हो गया कि क्यों वेदालंकारजी ने कभी लाहौर के किसी मित्र को उनकी शक्ल नहीं देखने दी। उनके दादा के बच्चे होते थे, पर बचते नहीं थे, इसलिए पंजाबी प्रथा के अनुसार उन्होंने वेदालंकारजी के पिता का नाम चूहड़राम रख दिया। वेदालंकारजी का बस चलता तो जैसा कि उन्होंने अपना नाम बदल लिया (मुझे वहीं मालूम हुआ कि उनका असली नाम गुरदासराम है और उनके पिता उन्हें इसी नाम से पुकारते हैं) वे अपने पिता का नाम भी बदल देते, लेकिन उनके पिता को अपना यह हकीर नाम पसन्द है और उनका विश्वास है कि न केवल उस नाम के कारण (अथवा यों कहा जाय कि वह नाम जिस भीषण विनम्रता का प्रतीक है, उस कारण) उन्हें ज़िन्दगी मिली है, वरन उनका धन-वैभव भी पुरखों की अपेक्षा बढ़ा है. . .और मैं सोचता हूँ कि जो लेखक अपने पिता को नकारता है, वह यथार्थ में अपने आपको, अपनी मिट्टी को नकारता है, क्योंकि भले-बुरे हम जो भी हैं, अपने माता-पिता और उनके ही खून के कारण हैं।—अपनी मिट्टी और अपने खून को नकारने वाला लेखक क्या महान लेखक बनेगा। वह सच्चा नहीं, झूठा ही लेखक बन सकता है।. . .

● सब्जीमण्डी के एक दो-तल्ले पर चातकजी की प्रशंसिका के भी दर्शन हुए। हम पहुँचे तो बारह-तेरह वर्ष के लड़के ने दरवाज़ा खोला, चातकजी को देख कर सोत्साह 'नमस्कार' किया और हमें ले जा कर बैठक में बैठाया। चातकजी ने उसके गाल पर हलकी-सी चिकोटी काट कर उसका और उसकी दीदी का हाल-चाल पूछा और उससे कहा कि दीदी को उनके आने की खबर दे!. . .हम मुश्किल से दस-पन्द्रह मिनट बैठे होंगे कि घुँघरुओं की झंकार के साथ एक पतली-छरहरी, हलके-से

चेचक के दाग़ों और चुंधी-सी आँखों वाली साँवली लड़की नाचती हुई कमरे में दाखिल हुई और बेंत के कौच के सामने (जिस पर कि हम बैठे थे) खाली जगह में नाचती रही और फिर एक तोड़े के साथ वहीं फ़र्श पर बैठ गयी और उसकी मुस्कान, जो निरन्तर उसके चेहरे पर बनी रही थी, और भी फैल गयी।

चातकजी ने उसके नाच की खूब प्रशंसा की, कहा कि उसने पहले से बहुत महारत हासिल कर ली है। फिर उन्होंने मुझे उसका परिचय दिया—'निम्मा सूरी, मेरी सहोदरा—बी० ए० में पढ़ती है। कविता लिखती है और नृत्य का शौक रखती है।' इसके बाद उन्होंने उसे मेरा परिचय दिया। फिर कौच से उठ कर उसके पास जा बैठे। उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और बातों में मेरा तो क्या ज़िक्र, दुनिया-जहान से बेखबर हो गये। तब मैंने उनसे छुट्टी ली। मुझे मुनीन्द्रजी से मिलना था, इसलिए मैं चला आया। वहाँ मुनीन्द्रजी के भांजे से 'सहोदरा' का मतलब पूछा तो मालूम हुआ कि बहन को कहते हैं—लेकिन निम्मा तो उनकी बहन नहीं लगती। न रंग-रूप से, न सूरत-शक्ल से! शायद चातकजी उसके वैसे ही सहोदर होंगे, जैसे हमारे निम्न-मध्यवर्ग में धर्म-भाई।. . .सीधे प्रेमी को यह वर्ग बरदाश्त नहीं करता। भाई के पर्दे में चाहे प्रेमिका का हाथ अपने हाथ में लिये घण्टों बैठे रहो!

● चातकजी अपनी सहोदरा के साथ हमें गाड़ी पर छोड़ने आये। वहीं उन्होंने बताया कि उनकी उस सहोदरा ने ज़ोर दिया है कि दिल्ली आये हैं तो उसके यहाँ दो दिन रह कर जायें। उन्होंने यह भी बताया कि वे कोशिश करेंगे, उसको कुछ दिन के लिए लाहौर लेते आयें। ऊपरी तौर से उन्होंने मुझसे भी रुकने के लिए कहा। मैं तो खैर दफ़्तर के कारण रुक न सकता था।—कहीं मैं आज़ाद होता और रुक जाता तो कविवर का सारा रोमांस धरा रह जाता। पर मैं ही दाल-भात में मूसरचन्द क्यों बनता? हालाँकि ऐसी स्थिति का अपना मज़ा है—लेकिन है वह दूसरों की यन्त्रणा से सुख पाने-ऐसा ही।यह

अजीब बात है कि अनजाने-अनचाहे आदमी वह सुख भी कभी-कभी पाना चाहता है। लेकिन वह इंसान का नहीं, हैवान का सुख है।

स्टेशन पर धर्मजी की नयी पत्नी को देखा—गोरी-चिट्टी, बॉब्ड बालों वाली—आज़ाद ख़याल और मॉडर्न। दाँत उसके ज़रा बाहर को हैं। हँसती है तो पूरी बत्तीसी बाहर दिखायी देती है। लगता ही नहीं कि उसने किसी गान्धीवादी, स्वातन्त्र्य-संग्राम में सतत लगे, जेल की यातनाओं को सहने वाले परिवार में जन्म लिया है। सुर्ख़ी-पाउडर और ग़ाज़े का इतना इस्तेमाल तो उच्चवर्गीय युवतियाँ भी नहीं करतीं। उसे देख कर मेरी आँखों में धर्मजी की पहली पत्नी का सौम्य और सम्भ्रान्त चित्र घूम गया, जो उनके ड्राँइंग-रूम में अँगीठी के ऊपर लगा रहता है—साड़ी के आँचल से सिर और सीने को पूरी तरह ढँके, गोल-मटोल चेहरा, चश्मे के पीछे बड़ी-बड़ी गहरी, गम्भीर और नम्र आँखें—जाने अब वह चित्र वहाँ रहता भी है या नहीं! यदि उस पत्नी के सम्पर्क में धर्मजी साहित्यकार बन गये थे तो उनकी यह पत्नी उन्हें निश्चय ही साहित्य की ऊँचाइयों से नीचे ले आयेगी।—उसके फ़ैशन का पेट भरने में यदि वेदालंकारजी साहित्य-वाहित्य छोड़ कोरे व्यावसायिक बन जायें या किसी बड़ी कुर्सी पर जा बैठें तो मुझे हैरत नहीं होगी। और उन जैसे नौकरशाह तबियत के साहित्यकार की यही सज़ा है।'

०

चेतन ने इतना ही लिखा था, जब पण्डित रत्न का चपड़ासी उनकी चिट ले कर आया। चेतन ने चिट पढ़ी। लिखा था कि बहुत दिन से वह मिला नहीं। उससे एक ज़रूरी बात करनी है, वह आ कर मिल जाय।

इकतालीस

जब पण्डितजी शलवार-कमीज़ और उस पर वास्केट पहन, सिर पर मुसद्दी कुल्ला रख, और पैरों में चमचमाते पम्प शू पहन कर बाहर निकले और मुहल्ला पार कर शीशमहल रोड पर आ गये, तब उन्होंने उस सिलसिले में बात शुरू की, जिसके लिए चिट भेज कर उन्होंने चेतन को बुलवाया था।

'कहो कैसा चल रहा है 'वीर भारत' में तुम्हारा काम ?' उन्होंने पूछा।

'मज़े से चल रहा है।' चेतन ने उत्तर दिया, 'ज़ख्मी साहब बहुत अच्छे आदमी हैं। कोई ग़लती भी हो जाती है तो समझा देते हैं, कभी दफ़्तर पहुँचने में देर भी हो जाती है तो डाँट-डपट नहीं करते। बहुत ही भले आदमी हैं।'

'हाँ ज़ख्मी भला आदमी है !'

और इतना कह कर पण्डित रत्न चुपचाप चलने लगे। सड़क पर एक रोड़ा पड़ा था। सहसा जूते की नोक से उन्होंने उसे दूर फेंक दिया। फिर जब उसके पास पहुँचे

तो ज़ोर की एक ठोकर उसे और लगायी और वे तब तक उस कौतुक में उलझे रहे, जब तक कि अन्तिम ठोकर खा कर रोड़ा नाली में नहीं जा गिरा।

चेतन उनके पीछे-पीछे चलता हुआ लगातार यह सोचता रहा कि आखिर उन्होंने उसे क्यों बुलाया ?

०

वह शाम को उनके घर पहुँचा था तो वे कुछ देर पहले ही दफ़्तर से आये थे और नहा-धो कर आँगन में एक ओर अँगीठी रखे, गोश्त भून रहे थे। (उनकी पत्नी गोश्त नहीं छूती थीं और न रसोई में आने देती थीं, इसलिए पण्डितजी किचन से ज़रा हट कर आँगन में बैठ, स्वयं गोश्त पकाते थे।) चेतन जा कर उनके सामने पीढ़े पर बैठ गया था।

'सुनाओ भई, तुम्हारी तो शक्ल ही दिखायी नहीं देती,' पण्डितजी ने पतीले में बदस्तूर कलछी हिलाते हुए कहा था, 'एकदम ईद के चाँद हो गये हो। पहले कभी शनिश्चर-इतवार आते थे, अब उससे भी गये। बस किताब देने आये-सो-आये, फिर शक्ल नहीं दिखायी।'

इससे पहले कि चेतन कुछ जवाब देता, उनकी पत्नी ने बराबर ही रसोई-घर में बैठे, रोटियाँ सेंकते हुए कहा, 'हमने तो सोचा था, चन्दा आ गयी है, उसे ले कर आओगे, लेकिन तुम तो ख़ुद भी एक बार नहीं आये।'

उनकी शिकायत बजा थी। लेकिन चेतन यह भी जानता था कि इतना भर कहने को उन्होंने नहीं बुलाया। मन-ही-मन वह इस बुलाने के कारण का अनुमान लगा रहा था, लेकिन उसने स्वयं कुछ नहीं पूछा और वहीं बैठे-बैठे इतने दिन न आ सकने की सफ़ाई दी। अपनी भाभी की दुखद बीमारी से ले कर अपने ससुर के पागल होने और पत्नी को साथ ले कर पागलखाने जाने तक की सब घटना वह सविस्तार सुना गया। उसने पण्डितजी और बीबीजी को विश्वास दिलाया कि अपनी परेशानी के कारण, चाहने के बावजूद वह उनकी तरफ़ नहीं आ सका।

पण्डितजी इस बीच उसकी बातें सुनते हुए पूरे मनोयोग से गोश्त पकाते रहे थे। स्वयं उन्होंने सिवा हुँकारा भरने के एक बात भी नहीं की। जब गोश्त तैयार हो गया तो उन्होंने पत्नी को दो थालियाँ लगाने के लिए कहा। चेतन से उन्होंने पूछना ज़रूरी नहीं समझा। उसने एक बार भी इनकार नहीं किया। क्योंकि जब से वह पण्डित रत्न के घर आने-जाने लगा था, कभी ऐसा नहीं हुआ कि वह दोपहर या शाम को खाने के वक्त पहुँचा हो, पण्डितजी ने स्वयं रोग़न जोश, कीमा, कोफ़्ते, गोश्त या गोभी वाला पुलाव पकाया हो और उन्होंने चेतन को खिलाये बिना आने दिया हो।

खाना खाते समय भी उन्होंने चिट के सिलसिले में कुछ नहीं कहा और खाना खा कर बाहर चलने के लिए तैयार होने लगे थे।

०

उनके पीछे चलता हुआ चेतन अपने बुलाये जाने के सम्बन्ध में अनुमान लगाता रहा। उसे हलका-सा आभास था कि शायद उन्होंने उसे महाशय जीवनलाल कपूर के नये हफ़्तावार के सिलसिले में बुलाया है। लेकिन बहुत हलका-सा ही। यकीन के साथ वह नहीं कह सकता था, इसलिए वह इस बात की प्रतीक्षा कर रहा था कि वे स्वयं ही कुछ कहें।

जब रोड़े को ठोकरें मारते हुए पण्डितजी रावी रोड पार कर सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा के पास पहुँच गये और रोड़ा नाली में जा गिरा तो सहसा रुक कर उन्होंने कहा।

'रात की ड्यूटी करने में तुम्हें तकलीफ़ तो नहीं होती? तुम्हारी सेहत पर बुरा असर तो नहीं पड़ता?'

'इधर मैं कुछ परेशान हूँ,' चेतन ने उनके साथ-साथ चलते हुए कहा, 'दिन को बराबर सो नहीं पाता। इसीलिए मेरी सेहत भी कुछ बिगड़ गयी है। वरना दिन को सो लूँ तो मुझे ज़रा भी तकलीफ़ नहीं होती, बल्कि रात की नौकरी मुझे अदबी[1] काम में मदद ही देती है।'

---

१. साहित्यिक

पण्डितजी कुछ नहीं बोले। कुछ क्षरण वे चुपचाप उसके साथ चलते रहे।

०

अपनी सास को ले कर चेतन में और उसकी पत्नी में जो तनाव आ गया था, उसकी बात चेतन ने पण्डितजी को नहीं बतायी थी। यह भी नहीं बताया था कि उसकी सास लाहौर ही में किसी सेठ के यहाँ सात-आठ रुपये महीने पर रसोई और चौका-बर्तन करती है। लेकिन सच्ची बात यह है कि उसकी वह रात की नौकरी उस स्थिति में उसे बेहद सूट करती थी।

सवेरे वह देर से उठता। चन्दा तब तक उठ कर, दोपहर का खाना पका कर (स्वयं खा कर और पति के लिए सहेज कर) विद्यालय जाने के लिए तैयार हो जाती। चेतन नित्य-कर्म से निबट कर कसरत करता। सब्ज़ीमण्डी के चौक में हलवाई की दुकान से जा कर लस्सी का एक बड़ा गिलास पीता। फिर आ कर नहाता, पढ़ता-लिखता या घूमने निकल जाता। दोपहर को खाना खा कर सो जाता। पत्नी के वापस आते ही और कई बार उसके आने से पहले ही बाहर निकल जाता। कई बार खाना चातकजी के यहाँ खा लेता और वहीं से सीधा दफ़्तर चला जाता। और कई बार जब खाना खाने के लिए घर आता तो बिना उससे ज़्यादा बात किये, चार कौर जल्दी-जल्दी निगलता और दफ़्तर भाग जाता। रात को आता और चुपचाप अपने बिस्तर पर जा सोता। जहाँ तक उससे बनता, वह पत्नी से बात करना टाल जाता।

स्थिति जो भी हो और चाहे उसमें चन्दा का कोई दोष न भी हो, पर चेतन मन-ही-मन अपनी पत्नी से बेहद ग़ुस्से था—वह क्यों अपनी माँ को नहीं समझाती कि सेठ वीरभान के यहाँ नौकरी करके वह अपने दामाद को बेहद मानसिक कष्ट पहुँचा रही है। चेतन उसे बार-बार समझा चुका था कि उसकी माँ लाहौर रह कर उसके पिता की कोई सहायता नहीं कर सकती। वह अपनी माँ को क्यों नहीं समझाती कि

उसे वह नौकरी छोड़ कर वापस जालन्धर चले जाना चाहिए और इज़्ज़त से अपने घर रहना चाहिए—जेठ पराया नहीं, अपना ही सम्बन्धी है। किसी अपरिचित के यहाँ चौका-बर्तन करने से, चेतन के ख़याल में, अपने जेठ और उसके बच्चों की देख-भाल कहीं बेहतर थी। घर और परिवार की आबरू पर तो आँच नहीं आती।. . .और चूँकि चन्दा ने यह सब अपनी माँ से नहीं कहा था, कहा था तो उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ था, इसलिए चेतन घर से बेहद उखड़ा हुआ था। ऐसी मनः-स्थिति में रात की नौकरी करना और दिन का अधिकांश सो कर, दोस्तों-मित्रों के साथ घूम कर अथवा निरन्तर काम करते हुए बिता देना उसे बेहतर लगता था।

०

पण्डितजी कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे, फिर सहसा उन्होंने कहा, 'तुम रात के दो बजे तक ड्यूटी देते हो और तुम्हें तीस रुपया महीना मिलते हैं। अगर तुम्हें दिन की नौकरी मिल जाय और वह भी किसी हफ़्तावार की ऐडीटरी तो कैसा रहे ?'

चेतन का दिल धक् से हुआ। ज़रूर वे महाशय जीवनलाल वाली बात ही कहना चाहते हैं। लेकिन उसने अपने मन की बात नहीं कही और बोला :

'किस दफ़्तर की बात करते हैं आप ?'

'किसी पुराने की नहीं,' पण्डितजी ने कहा, 'पर तुम ऐडीटर बनना मंज़ूर करो, एक नया हफ़्तावार निकाला जा सकता है।'

चेतन मन-ही-मन मुस्कराया। ज़रूर ही पण्डितजी महाशय जीवन-लाल कपूर के नये हफ़्तावार की बात करने जा रहे हैं, क्योंकि उसके सिलसिले में एक प्रस्ताव ज़ख़्मी साहब के माध्यम से उसके पास आ चुका था। लेकिन हो सकता है, उसका अन्दाज़ ग़लत हो, और मन की बात न कह कर चेतन ने पूछा, नये हफ़्तावार को फ़नांस कौन करेगा ?'

चेतन का अन्दाज़ ठीक था। पण्डितजी ने कहा :

'दरअसल महाशय जीवनलाल कपूर अपने हफ़्तावार के लिए जितना मसाला इकट्ठा करते हैं, उसमें से काफ़ी बच जाता है। वो सोचते हैं कि एक और परचा निकाल दें।'

महाशयजी के अलावा पण्डितजी ने किसी दूसरे मालिक की बात की होती तो चेतन फ़ौरन मान जाता, क्योंकि रात के तीस रुपयों के मुकाबले में दिन के चालीस बहरहाल अच्छे थे। 'बन्दे मातरम' में वह दिन-रात खटता था, डबल ड्यूटी देता था और उसे सिर्फ़ चालीस रुपये मिलते थे। इसलिए यह प्रस्ताव बुरा नहीं था। ठीक है कि अब सिर्फ़ रात की ड्यूटी में पूरा दिन खाली होने के कारण वह काफ़ी काम कर लेता था, लेकिन उसमें कठिनाई भी कम नहीं थी। दफ़्तर समय पर पहुँचने के खयाल से शाम का घूमना-फिरना उसे छोड़ देना पड़ता था। मुद्दत से उसने एक भी पिक्चर नहीं देखी थी। केवल मैटिनी वह देख सकता था, लेकिन वही टाइम उसके सोने का होता था। दिन की नौकरी में हफ़्ते-पखवाड़े वह एकाध पिक्चर तो देख ही सकता था और दफ़्तर से आ कर घूम-फिर सकता था। रात को इत्मीनान से अपना लिख-पढ़ सकता था। उस सूरत में दोपहर को सोने की आदत उसे छोड़ देनी होगी, लेकिन यह इतनी दुनिया जो दफ़्तरों, दुकानों या कारखानों में काम करती है, कब दोपहर को सोने की सुविधा पाती है।. . .और यह सब सोचते हुए उसे दिन की नौकरी बुरी न लगती थी। लेकिन महाशय जीवनलाल के अखबार में नौकरी करने में उसे घबराहट थी। इसीलिए जब ज़ख्मी साहब के माध्यम से प्रस्ताव आया था तो उसने इनकार कर दिया था। पण्डितजी की बात के जवाब में उसने बेपरवाही से कहा :

'कुछ अदबी हफ़्तावार हो तो कोई चार्म भी है, वरना तरजुमा ही करना है तो 'वीर भारत' ही क्या बुरा है।'

'इसीलिए तो महाशयजी तुम्हें चाहते हैं।' पण्डितजी ने कहा, 'तुम्हारी कहानियों का मजमूआ उन्होंने पढ़ा है। उन्होंने तुमसे कई कहानियाँ अंग्रेज़ी से उर्दू में कराके भी देखी हैं और तुम्हारे काम से तो

मुतमइन[1] हैं। कल ही उन्होंने इस सिलसिले में मुझसे बात की है। मेरा तो खयाल है, कोई हर्ज नहीं।'

चेतन कुछ क्षण चुप रहा। फिर उसने कहा, 'जख्मी साहब ने इस सिलसिले में बात की थी। लेकिन मुझे तो वहाँ काम करना कुछ वैसा पसन्द नहीं!'

'क्यों?'

चेतन ने तत्काल उत्तर नहीं दिया लेकिन उसके सामने महाशय जीवनलाल को ले कर कई बातें और छोटी-छोटी घटनाएँ घूम गयीं, जिनके कारण उस व्यक्ति के लिए उसके मन में कुछ अजीब-सी वितृष्णा थी।

०

चेतन ने जब से 'वीर भारत' में काम करना शुरू किया था, लाला जीवनलाल कपूर शाम को दूसरे-चौथे कुछ क्षण के लिए उसके दफ़्तर आ जाते थे। कपूर साहब के साप्ताहिक में जिन सिनेमा-घरों के विज्ञापन छपते थे, उनमें चलने वाली फ़िल्मों के फ्री-पास उन्हें मिलते थे। उनके यहाँ छपने वाले विज्ञापनों में अधिकांश भाटी गेट और अन्दरून शहर के सिनेमा हॉलों के होते थे, क्योंकि उनका अखबार निम्न-मध्यवर्गीय अनपढ़ और अधपढ़ हिन्दुओं में ही लोकप्रिय था। चेतन ने कॉलेज के दिनों में बाज़ार पापड़ियाँ के देसराज सुनार की दुकान पर उसका समवेत वाचन होते हुए कई बार देखा था। देसराज साप्ताहिक खरीदता था और बाज़ार के शेष अनपढ़ दुकानदार इकट्ठे हो कर और चटखारे ले कर उसके लेख, कहानियाँ और आक्रामक साम्प्रदायिक नज़्में सुनते और उन पर टीका-टिप्पणी किया करते। चेतन को याद था—उन दिनों बीडन रोड के एक सेठ का कत्ल हो गया था और पुलिस की रिपोर्ट थी कि सेठ की बीवी लाजो, नौकर से लगी थी, सेठ ने उन्हें कुछ वैसी स्थिति में देख लिया

---

१. सन्तुष्ट

था और नौकर को बेइज़्ज़त करके घर से निकाल दिया था। नौकर पहाड़ी था। उसने सेना में मुलाज़िम अपने एक दोस्त से बन्दूक ली थी, सामने की मकान की सीढ़ी में छिप कर सीढ़ियों से उतरते हुए सेठ की हत्या कर दी थी और भाग गया था। महाशय जीवनलाल कपूर ने उस ललायिन के किस्से को ख़ूब नमक-मिर्च लगा कर उछाला था। वे अपने साप्ताहिक में हर हफ़्ते पुलिस की जाँच-पड़ताल के सिलसिले में उस किस्से का कोई-न-कोई नया ब्योरा छापते। लोगों को उस किस्से में कुछ ऐसा रस मिलता कि उनका अख़बार हाथों-हाथ बिक जाता। उन दिनों उनके अख़बार की ग्राहक संख्या बहुत बढ़ गयी थी। लाहौर आ कर चेतन ने सुना था कि सेठ की बीवी से पाँच सौ रुपये ले कर उन्होंने वह अभियान बन्द कर दिया था।. . .इसके अलावा वे देशी रियासतों की कलंक-कहानियों को अपने पत्र में उछालते थे और जिन सिनेमा के मालिकों से उन्हें विज्ञापन नहीं मिलते थे, उनमें चलने वाली फ़िल्मों की कटु आलोचना करते थे। शोर मचाते थे कि वे फ़िल्में अश्लील हैं अथवा धर्म पर प्रहार करती हैं अथवा देश के युवकों का चरित्र बिगाड़ती हैं। उन फ़िल्मों के ख़िलाफ़ वे बड़े सात्विक क्रोध-भरे लेख तथा पाठकों के पत्र छापते थे। फिर रजवाड़ों और फ़िल्मी डिस्ट्रीब्यूटरों से दान-दक्षिणा पा कर उनका पक्ष छाप देते थे और उनके विरोध में अभियान बन्द कर देते थे।

महाशय जीवनलाल सिद्धहस्त ब्लैक मेलर थे, लेकिन इसके बावजूद मैक्लोड रोड अथवा निस्बत रोड के सिनेमा-घरों से उन्हें विज्ञापन नहीं मिलते थे, क्योंकि अव्वल तो वहाँ ज़्यादातर अंग्रेज़ी फ़िल्में लगती थीं, फिर वहाँ फ़िल्म देखने जो लोग जाते थे, वे 'गुरु घण्टाल' नहीं पढ़ते थे। महाशयजी का कार्य-क्षेत्र भाटी के सिनेमा-घरों तक सीमित था। वहीं से उन्हें बाकायदा विज्ञापन और फ्री-पास मिलते थे।

जिन दिनों वे भाटी दरवाज़े में पिक्चर देखने जाते तो वापसी पर 'वीर भारत' के दफ़्तर भी आते। कई बार ऐसा भी होता कि दफ़्तर में मित्रों से बातचीत करते और ग़प्पें लगाते उन्हें देर हो जाती। तब घर

जा कर खाना-वाना खा कर वे नौ बजे के शो में सिनेमा देखने जाते और जाते समय वे कुछ क्षण को 'वीर भारत' की सीढ़ियाँ चढ़ आते। दो-चार मिनट को ज़ख्मी साहब की मेज़ के पास खड़े हो कर उनका हाल-चाल पूछते, दो-चार चुटकुले छोड़, ज़ख्मी साहब की पीठ पर बायें हाथ से थाप जमाते और ठहाके मारते हुए चले जाते।. . .चेतन ने यह मार्क किया था कि जाते-जाते वे एक चोर नज़र उस पर भी डालते हैं और उसे सदा लगता था कि उसकी पीठ पर भी ज़ोर का एक हाथ जमा कर वे कोई भद्दा मज़ाक करेंगे और सिर को पीछे फेंक कर छत-फाड़ ठहाका लगायेंगे। सीढ़ियों की ओर को जाते हुए जब वे उसके पास से गुज़रते तो चेतन एकदम तन कर बैठ जाता। लेकिन एक लिजलिजी-सी दृष्टि उस पर डालते हुए, दाँत चियारे वे गुज़र जाते और तब तक नीचे गली से उनका ठहाका न सुनायी देता (प्रकट ही वे अपने हाली-मवालियों को नीचे छोड़ आते) तब तक चेतन का तनाव कम न होता।. . .यह अजीब बात है कि पहले कभी चेतन को उनकी आँखों में मैल न दिखायी दी थी, लेकिन इधर जब से वे उसके दफ़्तर में आने लगे थे तो एकाध मज़ाक 'पण्डित रत्न के यार' को ले कर भी करने लगे थे और चेतन को उनकी आँखों में वह चीज़ दिखायी देने लगी थी, जो कभी उसने बलोची की आँखों में देखी थी।. . . चेतन ने कभी उनके किसी मज़ाक, आवाज़े या फब्ती की सनद नहीं दी थी। जब वे दफ़्तर में आते तो वह और भी तन्मयता से काम में जुट जाता और उनके वुजूद तक से ग़ाफ़िल हो जाता। ग़ाफ़िल हो जाता, यह कहना शायद ग़लत होगा। वह ग़ाफ़िल होने का अभिनय करता। प्रकट रूप से एकदम तना, वह काम में तल्लीन रहता, लेकिन परोक्ष में वह उनकी हर भाव-भंगिमा का जायज़ा लेता और इस बात का खयाल रखता कि वे उसके साथ ज़रा-सी आज़ादी भी न ले सकें।. . .वास्तव में जिस प्रकार शिमले के गेटी थियेटर में 'अनारकली' के खेले जाने की सूचना पा कर और यह जान कर कि चेतन भी उसमें अभिनय कर रहा है, वे महाशय धर्मचन्द के साथ थियेटर हॉल में घुस

आये थे और उन्होंने बाँदी के लिबास ही में उसे बुलवा भेजा था और बाद में जैसे उसी भेंट के कारण उसका अभिनय चौपट हो गया था, उसकी तल्ख़ याद अब भी उसके मन में कहीं गहरे में टीसती थी।... फिर जब उसने कविराज का काम छोड़ देने का तय किया था और पण्डित रत्न उसे कहीं काम दिलाने की फ़िराक में जगह-जगह घुमाते उनके यहाँ पहुँचे थे और उन्होंने शिमले की उस घटना का उल्लेख कर, छत-फाड़ ठहाके लगाते हुए उसका मज़ाक उड़ाया था, तब वह समझ गया था कि बन्द गले के लम्बे कोट-पतलून और गोल क़िस्टी टोपी के अपने सम्भ्रान्त महाशयी पहरावे और साफल्य-जनित शाश्वत मुस्कान और हँसमुखता के बावजूद वे अन्तर में कहीं नितान्त फूहड़ और संस्कार-हीन हैं।

जब महीना भर तक दूसरे-चौथे वे सिनेमा देखने जाते अथवा वहाँ से आते हुए उसके दफ़्तर भी हाज़िरी देते रहे और दो-चार बार पण्डित रत्न के साथ भी आये और उसने उनके आगमन की कोई सनद नहीं दी तो उन्होंने आना कम कर दिया। लेकिन लगता है, जैसे चेतन में अपनी दिलचस्पी उन्होंने कम नहीं की। उसे पागलखाने जाने और डॉक्टर से मिलने के लिए जब सूट सिलवाने की ज़रूरत महसूस हुई और उसने ज़ख्मी साहब से कहा कि यदि वे उसे कहीं से काम ले दें तो अच्छा हो, तब ज़ख्मी साहब ने महाशय जीवनलाल से उसे अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं के कुछ कटिंग ला दिये थे कि वह उन्हें 'गुरु घण्टाल' के लिए आसान उर्दू में लिख दे। ज़ख्मी साहब ने उसे यह भी समझाया था कि महाशयजी चाहते हैं, वह उनका तरजुमा करते हुए मक्खी-पर-मक्खी न मारे और उन्हें पढ़ कर अपनी ज़बान में कहानियाँ-सी बना दे—ऐसे कि लगे, वह सब 'गुरु घण्टाल' के लिए ही लिखा गया है। चेतन ने तीन-चार दिन के अन्दर-अन्दर वह सब काम निबटा दिया था और यद्यपि ज़ख्मी साहब ने कहा था कि वह स्वयं जा कर कहानियाँ उन्हें दे आये और पारिश्रमिक ले आये, पर चेतन ने रचनाएँ ज़ख्मी साहब को दे दी थीं और दूसरे ही

दिन उन्होंने चेतन को उनके पैसे ला दिये थे।. . .ज़ख्मी साहब ही ने चेतन को यह बताया था कि महाशयजी उसके काम से बड़े प्रसन्न हुए हैं और ये रचनाएँ छप जायें तो वे उसे और काम भी देंगे। पिछले महीने ही उन्होंने ज़ख्मी साहब के माध्यम से कुछ और कटिंग भेजे थे और चेतन ने बड़े परिश्रम से उन्हें उर्दू का जामा पहना दिया था। ज़ख्मी साहब ने फिर उसे अनुवाद स्वयं ले जा कर उन्हें दे आने का परामर्श दिया था, लेकिन चेतन फिर टाल गया था।. . .महाशयजी फिर कभी उसके दफ़्तर नहीं आये। सिर्फ़ दो-तीन दिन पहले वे चन्द मिनट के लिए ज़ख्मी साहब के पास आये थे और उनसे कुछ खुसुर-फुसुर कर के चले गये थे। उनके जाने के बाद ज़ख्मी ने सरसरी तौर पर उसे बताया था कि वे एक नया साप्ताहिक निकालने की सोच रहे हैं और उनसे कोई योग्य और मेहनती सम्पादक तजवीज़ करने के लिए कहते थे।

चेतन ने ज़ख्मी साहब की बात सुन ली थी और कोई उत्तर नहीं दिया था।

तब ज़ख्मी साहब ने कहा था, 'मैंने तुम्हारा नाम लिया था तो उन्होंने कहा था—उससे पूछना, वह नये हफ़्तावार का काम सँभाल सकता है ? और यह भी कि कितने रुपये महीना चाहेगा।'

'मैं तो आपके ज़ेरे-साया ही अच्छा हूँ।' चेतन ने उत्तर दिया था और नये साप्ताहिक की सम्पादकी के लिए ज़रा भी उत्सुकता प्रकट नहीं की थी।

०

पण्डित रत्न के साथ चुपचाप चलते और उनकी बात पर ग़ौर करते हुए चेतन भाटी गेट पार कर आया था। तब सहसा पण्डितजी ने पूछा, 'क्या सोच रहे हो ?'

'मैं तो कुछ सोच नहीं पा रहा,' चेतन ने विवशता से कहा था, 'वीर भारत की नौकरी में अगर दिन को दो घण्टे सो लूँ तो अपना लिखने-पढ़ने के लिए काफ़ी वक्त मिल जाता है।' क्षण भर वह चुप रहा।

फिर उसने कहा, 'आप क्या राय देते हैं ?'

'ज़ख्मी आदमी प्यारा है।' पण्डित रत्न बोले, 'उसके साथ काम करना ज़रा भी मुश्किल नहीं। लेकिन तीस रुपल्ली से क्या होता है ? फिर रात का बेहतर हिस्सा तो दफ़्तर की मेज़ पर ख़बरों का तरजुमा करने में गुज़र जाता है। आज नहीं तो कल, इन रतजगों का असर तुम्हारी सेहत पर पड़ेगा। सेहत के लिहाज़ से इन अख़बारों के सभी ऐडीटर अन्दर से एकदम खोखले हैं। इसके अलावा ट्रान्सलेटर की नौकरी से फ़ुल-फ़्लेजेड (Full Fledged) ऐडीटर की नौकरी बहरहाल अच्छी है। एक साल भी परचा कामयाबी से निकाल ले जाओगे तो कहीं बेहतर जगह ऐडीटर की नौकरी पा जाओगे। तरक्की करने के लिए रिस्क तो लेना ही पड़ता है ?'

चेतन कुछ क्षण सोचता हुआ चुपचाप उनके साथ चलता रहा। महाशयजी के ख़िलाफ़ चेतन के मन में जो था, उसे पण्डितजी के सामने रखना उसे स्वीकार नहीं हुआ। अचानक उसने मन-ही-मन तय किया कि वह नौकरी करने से इनकार नहीं करेगा, बल्कि ऐसी शर्तें रखेगा, जो कपूर साहब को स्वीकार ही न हों। और उसने पण्डितजी से पूछा, 'क्या कपूर साहब ऐडीटर के तौर पर मेरा नाम परचे पर देंगे ?'

'चलो, अभी चल कर पूछ लेते हैं।'

'अगर वो नया परचा 'गुरु घण्टाल' ही की तरह महज़ सनसनीख़ेज़ टैब्लॉयड (Tabloid) न बना दें और उसमें अदब के लिए भी कुछ गुंजाइश रखें और मेरा नाम ऐडीटर के तौर पर देना मंज़ूर करें तो मैं कर लूंगा। चाहता तो मैं यह भी हूँ कि कम-से-कम मुझे पचास रुपये तनख़्वाह दें।'

'देखो, पचास-वचास वो नहीं देंगे।' पण्डितजी ने कहा, 'रही बाकी शर्तें तो चलो अभी चल कर तय कर लेते हैं। न मानेंगे, न करना। ज़रा जल्दी कदम उठाओ। हमारे जाने से पहले वो दफ़्तर से चले न जायें।

पण्डितजी ने यह कहने के साथ कदम तेज़ कर दिये। चेतन लगभग

भागता हुआ-सा उनके साथ चल पड़ा।

०

वे अभी दफ़्तर 'गुरु घण्टाल' के नीचे ही पहुँचे थे कि ऊपर से बड़े ज़ोर-दार छत-फाड़ ठहाके की आवाज़ सुनायी दी।

'कपूर साहब अभी हैं!' पण्डित रत्न ने अस्फुट स्वर में कहा और सीढ़ियों की ओर लपके।

जब वे मैनेजर और क्लर्कों का कमरा पार कर कपूर साहब के दफ़्तर में दाखिल हुए तो महाशयजी दूसरी बार सिर पीछे फेंक कर ठहाका मारने जा रहे थे।

जब उस छत-फाड़ ठहाके का ज़ोर कुछ कम हुआ तो पण्डित रत्न ने पूछा, 'किस बात पर ठहाके लगाये जा रहे हैं कपूर साहब?'

'आप भी सुन लीजिए।' उन्होंने फिर सीधे हो, मेज़ पर बैठते हुए कहा। और बिना इस बात की चिन्ता किये कि पहले से उपस्थित सज्जनों ने उसे अभी-अभी सुना है, वे फिर वही लतीफ़ा सुनाने लगे :

'जुलाहों के एक गाँव में एक बड़ा पाकबाज़ और नेकनियत मुल्ला आ गया। उसने पहले दिन गाँव के सभी जुलाहों को इकट्ठा कर के सच्चाई, नेकनियती और पाकबाज़ी पर तकरीर की और कहा कि मुसल-मीन के नाते उन्हें दुरोग़,[1] शराबनोशी और ज़ना[2] से बचना चाहिए कि ज़ानी[3] की जगह दूसरी कोई नहीं, जहन्नुम है।

'जुलाहे मौलवी की तकरीर से बड़े मुतासिर[4] हुए और उन्होंने अपनी बीवियों के पास जाना छोड़ दिया और मौलवी के हवाले से उन्हें बताया कि ज़ानी जहन्नुम में जाते हैं। तब जुलाहियों ने मिल कर मुल्ला को जा पकड़ा। उसकी खूब मरम्मत की कि भड़वे, हमारे मर्द हमारे पास न आयेंगे तो क्या हम चकले में जा बैठें? और उन्होंने मुल्ला का हलवा-माण्डा बन्द करने और उसकी दाढ़ी नोच कर उसके हाथों में दे देने की

---

१. झूठ। २. सम्भोग। ३. कामी। ४. प्रभावित।

धमकी दी। मुल्ला बेतरह घबरा गया। उसने दूसरे दिन फिर जुलाहों को इकट्ठा किया; फिर एक तकरीर झाड़ी और उन्हें बताया कि उन्होंने उसके वाअज़[1] का ग़लत मतलब लगाया है। उसके उपदेश का तो यह मतलब था कि परायी औरत के साथ ज़ना करना गुनाह है, अपनी औरत से ज़ना करना तो एक काफ़िर मारने के बराबर है और ऐन सवाब[2] है।

'अब गाँव में एक जुलाही थी उदमाती और उसका मियाँ था ज़रा कमज़ोर। रात को खाना-वाना खा कर वह बिस्तर पर लेटी तो बोली, 'आओ मियाँ, ज़रा एक काफ़िर मार लें।' और मियाँ ने काफ़िर मारा और सो गया। बारह-एक बजे उस साली ने फिर जगा दिया कि आओ मियाँ एक काफ़िर और मार लें। मियाँ थका था, पर लग गया। उसके बाद दो घण्टे पर जब फिर एक काफ़िर मारा गया तो मियाँ का हाल पतला हो गया। लेकिन जुलाही की तसल्ली नहीं हुई। जब तड़के उसने फिर मियाँ को जगा दिया कि आओ ज़रा और सवाब कमा लें तो उस वक्त जब जुलाही लहँगा उठाये पड़ी थी, लगने की बजाय मियाँ ने दियासलाई जलायी, 'हय हय क्या कर रहे हो ?' जुलाही चिल्लायी तो मियाँ ने जल कर कहा, 'साले इन काफ़िरों की मण्डी ही जला देता हूँ।'

और बात खत्म करने के पहले महाशयजी सिर को पीछे फेंक, ठहाका मार कर हँसे।

पहले से बैठे मित्रों ने 'कन्दे मुकर्रर'[3] का मज़ा पाते हुए उनके ठहाके में योग दिया और साथ ही उठ खड़े हुए। पण्डितजी बारीक-सी तकल्लुफ़-भरी हँसी हँसे। चेतन मौन बैठा रहा। उसके होंटों पर मुस्कान भी नहीं आयी। जब वह पिछली बार नौकरी के सिलसिले में पण्डित रत्न के साथ महाशयजी से मिलने आया था तो उस दिन भी महाशयजी ने यही लतीफ़ा सुनाया था। किसी साप्ताहिक के मालिक-सम्पादक और आर्य समाजी महाशय का वैसा अश्लील और फूहड़ लतीफ़ा

---

१. उपदेश। २. एकदम पुण्य का काम। ३. दो-बारा मीठा खाने।

सुनाना उसे बेहद अखरा। लेकिन वह महाशयजी की आदत से वाकिफ़ था। वह पण्डितजी से कहना चाहता था कि वह उनके यहाँ नौकरी नहीं करेगा। लेकिन उसे बात करने का मौका नहीं मिला। अपने दोस्तों को महाशयजी दरवाज़े तक छोड़ने गये और पलट कर वे मेज़ के किनारे खड़े हो गये और बाछें खिलाते हुए उन्होंने कहा, 'कहिए पण्डितजी ?'

पण्डित रत्न ने अपने आने का मन्तव्य प्रकट किया और चेतन की शर्तें बतायीं।

महाशय जीवनलाल ने वहीं खड़े-खड़े क्षण भर को गहरी-तिरछी नज़र से नख-से-शिख तक चेतन को ऐसे देखा, जैसे वे सम्पादक नहीं गुलाम रखने जा रहे हों। चेतन निगाहें नीची किये चुपचाप बैठा रहा। महाशयजी फिर जा कर कुर्सी पर बैठ गये और उन्होंने कहा, 'ठीक है पण्डितजी, आपके यार की इतनी भी बात हम न मानें, यह कैसे मुम-किन है। इसका नाम हफ़्तावार पर ऐडीटर के तौर पर ज़रूर जायेगा और उसमें अदबी हिस्सा भी रहेगा। एकाध नज़्म या अफ़साना भी हर हफ़्ते यह उसमें दे सकता है। बस ज़रा मेहनत से बढ़िया परचा निकाले, फिर मैं जल्दी ही तनख्वाह भी बढ़ा दूँगा।'

और यह कहते हुए वे उठे। पण्डितजी भी उठे।

चेतन ने भी उनके साथ ही उठते हुए सोचने के लिए कुछ वक्त और पाने की ग़रज़ से कहा, 'मुझे ज़ख्मी साहब को पन्द्रह दिन-महीने का नोटिस देना पड़ेगा।'

'उसकी तुम फ़िक्र न करो,' दफ़्तर से साथ-साथ निकलते और उसके कन्धे को थपथपाते हुए उन्होंने कहा, 'मैं ज़ख्मी से बात कर लूँगा। तुम पहली से आना शुरू कर दो।'

'लेकिन पहली तो दो दिन बाद ही है।'

'मैं ज़ख्मी से बात कर लूँगा। वो मेरी बात रद्द नहीं कर सकता। दो-तीन हफ़्ते की तैयारी के बाद परचा शुरू हो जाना चाहिए। मैं इसी हफ़्ते के 'गुरु घण्टाल' में 'भूँचाल' (भूचाल) का एलान कर दूँगा।

बस ऐसा परचा निकालो कि अखबारी दुनिया में भूँचाल आ जाय !'

और उन्होंने ज़ोर से ठहाका लगाते हुए चेतन के कन्धे पर एक हाथ मार दिया।

कपूर साहब भाटी गेट के 'स्टार' में पिक्चर देखने जा रहे थे। उन्होंने पण्डितजी को साथ ले लिया। वे तो चाहते थे कि चेतन भी वहाँ तक साथ दे, पर चेतन ने उनसे छुट्टी ले ली और घर की तरफ़ पलटा।

०

दफ़्तर जाने से पहले, खाना पकने की प्रतीक्षा में चेतन ने नोट-बुक में लिखा :

'आज, न चाहते हुए भी, मैंने 'भूचाल' का सम्पादक होना मंजूर कर लिया। मामूली ट्रांसलेटर से मैं ऐडीटर होने जा रहा हूँ, लेकिन मेरे मन में खुशी का ज़रा भी एहसास नहीं। महाशय जीवन-लाल मुझे निहायत फूहड़ और अनपढ़ लगते हैं। हालाँकि वे बी० ए० हैं; एक कामयाब हफ़्तावार के मालिक और सम्पादक हैं; पोशाक भी हमेशा मुहज़्ज़ब लोगों की पहनते हैं और अपने आपको व्यक्ति नहीं, संस्था मानते हैं; पर उनके दिमाग़ का घेरा बहुत छोटा है और अन्दर से वे निहायत ग़ैर-मुहज़्ज़ब हैं। फिर मैं सोचता हूँ कि 'भूँचाल' का नाम 'गुरु घण्टाल' से कैसे बेहतर है और कैसे अदबी है ? सनसनीख़ेज़ है, लेकिन उसमें अदबी संजीदगी नहीं। और मैं तो किसी अदबी परचे का ऐडीटर होना चाहता था।... बहरहाल अब तो मैं 'हाँ' कर आया हूँ। इनकार नहीं करूँगा। तजरुबा कर देखूंगा। न चलेगा तो छोड़ दूँगा। जाने विधाता को इसी में मेरी क्या बेहतरी मंजूर हो '

छठा खण्ड

ब
या
ली
स

पागलख़ाने से आने के बाद, अपनी सास के हठ की वजह से चेतन अत्यन्त विक्षुब्ध था। सास को अपना घर दिखा देने और यह जान लेने के बाद कि उसकी मनःस्थिति उसकी सास की समझ में नहीं आती और उसकी हर बात उसकी सास के मस्तिष्क पर से पत्थर की बूँद-सरीखी फिसल जाती है, वह न फिर कभी स्वयं गोविन्द गली गया था और न उसने अपने पत्नी को वहाँ जाने दिया था। उसकी सास ही हफ़्ते में एकाध बार आती थी और अपनी बेटी से मिल जाती थी, लेकिन इस तमाम अर्से में वह एक बार भी उसके सामने नहीं पड़ा था। पत्नी से ज्यादा बात करने से वह कन्नी काटता रहा था और ख़ाली वक्त को उसने दूसरी सरगर्मियों से भर लिया था—इतना कि अपनी व्यक्तिगत समस्या उसके अन्तर की गहराई में कहीं बहुत नीचे चली गयी थी।

बहुत नीचे चली गयी थी, लेकिन एकदम ख़त्म हो गयी हो, ऐसी बात नहीं।. . .उसकी पत्नी चुप और उदास रहती थी तो चेतन को वह असुन्दर लगती थी। पहले की

तरह उसे हँसा देने और उसके चेहरे को खिला देने की मानसिक स्थिति में वह नहीं था। वह न उससे बात करता, न घुमाने ले जाता। चन्दा के स्वभाव में जो सफ़ाई और स्फूर्ति अपने पति के स्नेह के कारण आ गयी थी, वह न जाने कहाँ चली गयी। वह निर्जीव और निस्पन्द, यन्त्रवत सारे काम किये जाती। अपने पहनने-ओढ़ने की तरफ़ से वह नितान्त बेपरवाह हो गयी थी और उसे देख कर चेतन को वही मोटी-मुटल्ली, सुस्त लड़की याद आने लगी थी, जिसे स्कूल से आते देख कर, अपनी पत्नी के रूप में उसने नापास कर दिया था। वह इतनी उदास और इसीलिए असुन्दर, सुस्त और फूहड़ लगती थी कि चेतन को उसकी सूरत तक से वहशत होने लगी थी। वह उसके नैकट्य से भागता था और बदले में उसे उदास और कुरूप और निर्जीव बना जाता था। चूँकि इस तमाम अर्से में वह अपनी उस समस्या का कोई समाधान न पा सका था, इसलिए तमाम पलायन के बावजूद उसका तनाव बढ़ता गया था, वह चिड़चिड़ा और रूखा हो आया था।

यद्यपि महाशय जीवनलाल कपूर चाहते थे कि चेतन तत्काल 'भूँचाल' का सम्पादन सँभाल ले और वे अख़बार का डेक्लेरेशन दे दें। उन्होंने ज़ख्मी से कह भी दिया, लेकिन चेतन ने फ़ैसला करने में लगभग एक महीना लगा दिया। उसके मन में कोई चीज़ वहाँ नौकरी करने का सख्त विरोध करती थी, पर महाशयजी ने 'गुरु घण्टाल' में 'भूँचाल' का एलान कर दिया था। सम्पादक के रूप में उसके नाम का विज्ञापन भी दे दिया था। तब ज़ख्मी साहब ने ज़ोर दिया, पण्डित रत्न ने समझाया और आख़िर वह 'वीर भारत' छोड़ कर 'भूँचाल' में चला गया। लेकिन रात की नौकरी की बजाय दिन की नौकरी करने की दूसरी सुबह ही इतने दिन से चला आने वाला उसका मानसिक तनाव ज़्यादा कसे तार की तरह हलके-से स्पर्श से टूट गया।

अपनी पत्नी और सास के ख़िलाफ़ इतने दिन से रुका हुआ उसका क्रोध एक निहायत मामूली घटना के कारण—बेमालूम-सी चिनगारी से

बारूद के अम्बार की तरह—संयम, सीमा और शिष्टाचार की सीमाओं को लाँघता-हुआ फट पड़ा ।

०

लाहौर में गुलाबी जाड़ा उतर आया था । दिन भर गर्मी पड़ती, लेकिन शाम खुनक हो जाती और रात के तीसरे पहर कम्बल या रज़ाई लेने की ज़रूरत महसूस होती । चेतन और उसकी पत्नी रात को दो चारपाइयाँ बैठक में बिछा लेते । सुबह उठ कर एक चारपाई और बिस्तर उठा कर पिछले कमरे में रख देते, एक चारपाई पर बिस्तर सँवार कर पलँग-पोश बिछा देते और मेज़ (जो रात को घसीट कर खिड़की के पास कर दी जाती) अपनी जगह करके बैठक को टिप-टॉप कर देते । लेकिन जितने दिन तक चेतन 'वीर भारत' में रात की ड्यूटी पर जाता रहा, यह सब आठ-साढ़े आठ बजे, उसके जगने के बाद ही होता । चन्दा सुबह उठ कर दबे पैरों चलती हुई इस तरह चिटखनी खोलती कि ज़रा भी आवाज़ न हो । दरवाज़ा खोल कर बाहर चली जाती और अपने पीछे दरवाज़ा भिड़ा जाती कि आँगन अथवा ड्योढ़ी की किसी आवाज़ से चेतन की नींद न खुल जाय ! लेकिन दिन की नौकरी के कारण चेतन रात ग्यारह बजे ही सो गया था । वह रात की ड्यूटी देता था तो चन्दा शाम को खाना-वाना और चौका-बर्तन खत्म करने के बाद एक-डेढ़ घण्टा पढ़ कर दस बजते-न-बजते सो जाती थी । चेतन के साथ वह भी ग्यारह बजे तक जागती रही थी । चेतन तो सुबह साढ़े पाँच बजे ही उठ गया, लेकिन चन्दा गहरी नींद सोयी रही ।

चेतन की आदत थी कि वह छै घण्टे से ज़्यादा कभी न सोता । वह दो बजे रात को सोता तो सुबह आठ-साढ़े आठ बजे उठ जाता । ग्यारह बजे सोता तो पाँच बजे उठ जाता । इसके विपरीत चन्दा को नींद प्यारी थी । आम दिनों में चूँकि चेतन देर तक सोया रहता, इसलिए चन्दा उसे हमेशा जगी और काम-काज में लगी मिलती, पर उस दिन वह साढ़े पाँच बजे ही उठ गया था—सर्दियों के दिन, अभी बाहर अँधेरा था, इसलिए

उसे पत्नी सोयी मिली।. . .चेतन का जी हुआ, रज़ाई हटा कर उठे, ओवरकोट पहने और सुबह की ठण्डी स्वच्छ हवा में लॉरेंस तक सैर को जाय! सुबह को सैर किये उसे एक अर्सा हो गया था। लेकिन अभी अँधेरा था, सर्दी थी और वह यह जानता था कि चन्दा गहरी नींद सोती है और उसके लिए इतनी सुबह उठना मुश्किल है।

वह चुपचाप रज़ाई लिये लेटा रहा। लेकिन उसकी नींद पूरी तरह खुल गयी थी। बेकार लेटे रहना उसके स्वभाव के विपरीत था। लेटे-लेटे वह 'भूँचाल' के लिए कहानी सोचने लगा। काफ़ी देर सोचने और निरन्तर करवटें लेने के बावजूद पहले कोई थीम उसके दिमाग़ में नहीं आयी, लेकिन फिर उसने कहानी सोच ली।

चेतन तब नहीं जानता था कि कहानियाँ तो उसके गिर्द बिखरी पड़ी हैं, कि उसका अपना जीवन और संघर्ष दसियों कहानियों की सामग्री दे सकता है। वह देर तक शिमला की पहाड़ियों, केलू के छतनार पेड़ों और कलकल बहते झरनों में भटकता रहा और आखिर उसने शिमला के एक निकटवर्ती गाँव के एक निठल्ले प्रेमी की कहानी सोच निकाली, जो गाँव की एक युवती से प्यार करता है, पर जब वह उस निठल्ले के बदले एक कमाऊ युवक को चाहने लगती है तब अपने मार्ग से उस प्रतिद्वन्द्वी का काँटा दूर करने के लिए वह पहाड़ के शिखर पर जा चढ़ता है और जब उसका प्रतिद्वन्द्वी नीचे से गुज़र रहा होता है, वह ऊपर से चट्टान लुढ़का देता है।. . .लेकिन उसका प्रतिद्वन्द्वी बच जाता है और उसके हाथ असफलता ही आती है।

चेतन इस कहानी में सबसे ज़्यादा ज़ोर उस प्रेमी की कुण्ठा और उससे जनित क्रोध पर देना चाहता था—प्रातः के भिनसारे में कुण्ठित प्रेमी कई कोस की मंज़िल मार, पहाड़ की चोटी पर जा चढ़ता है, प्रतिद्वन्द्वी की बाट देखता है। जब उसका प्रतिद्वन्द्वी नीचे से गुज़रता है तो चट्टान को लुढ़का कर वह एक शैतानी कहकहा लगाता है। चेतन को कहानी में वह कहकहा बड़ा महत्वपूर्ण लग रहा था और उस वक्त उसके

कानों में उसकी गूँज तक आने लगी थी।

जब सारी-की-सारी कहानी चेतन ने सोच ली तो उसके लिए लेटे रहना कठिन हो गया। रोशनदान से सुबह का उजला प्रकाश आने लगा था। बाहर सड़क पर आवा-जाई शुरू हो गयी। डेवढ़ी से किसी के तेज़-तेज़ गुज़रने की आवाज़ आयी। चेतन ने रज़ाई हटा दी और उठ बैठा। चन्दा बराबर में अब भी गहरी नींद सोयी थी। रज़ाई से उसने मुँह-सिर ढँक रखे थे। चेतन ने उसे ठहोका दिया। जब वह नहीं उठी तो उसने रज़ाई झटके के साथ उसके चेहरे से हटा दी। वह अब भी विसुध सोयी थी। उसके बासी चेहरे को देख कर चेतन की वितृष्णा और झल्लाहट बढ़ गयी। उसने उसे फिर ठहोका दिया कि उठे, दिन चढ़ आया है।

चन्दा नहीं उठी। कुनमुना कर उसने करवट बदल ली और रज़ाई उसने फिर मुँह पर खींच ली। चेतन बिफर गया। चिल्लाने लगा और रज़ाई उसने फिर हटा दी।

चन्दा उठी। उसने निहायत मैली-चीकट धोती पहन रखी थी, रूखे बाल उसके माथे और गर्दन पर बिखरे थे, सुरमे के बिना बड़ी-बड़ी आँखें बुझी हुई दिखती थीं, होंट सूखे और श्रीहीन थे—आज कई महीने बाद सुबह उठते ही उसने अपनी पत्नी का बासी चेहरा देखा था। रोज़ तो जब वह उठता था, चन्दा नहा-धो कर काम में लगी होती थी।—अपने पति की गहरी नज़र को देख कर चन्दा मुस्करायी—एक दयनीय और उदास मुस्कान, जो उसके चेहरे के बासीपन और कुरूपता को और भी उभार गयी—काश! चेतन कोई मज़ाक कर सकता और चन्दा की बत्तीसी खिल जाती और उसके दाँतों के मोती उसके चेहरे को उद्भासित करते हुए उसकी कुरूपता हर लेते! लेकिन चेतन ने सिर्फ़ इतना कहा :

'जल्दी करो, यह चारपाई और बिस्तर उठायें, कमरा ठीक करें। मैंने अभी एक कहानी सोची है और मैं उसे रफ़ लिख लेना चाहता हूँ।'

और उठ कर उसने डेवढ़ी का दरवाज़ा और बाहर सड़क पर खुलने

वाली खिड़कियाँ खोल दीं। चन्दा ने बिस्तर गोल कर के कन्धे पर रखा और दूसरे हाथ से चेतन के साथ मिल कर चारपाई टेढ़ी खड़ी की। वे उसे बाहर निकालने जा रहे थे कि सहसा चेतन की नज़र चारपाई के दूसरी ओर खड़ी अपनी पत्नी की मैली-चीकट धोती पर गयी। वह बमका :

'यह बिस्तर और चारपाई छोड़ो, पहले जा कर यह मैली, गन्दी धोती बदलो। कोई आ ही जाता है।'

'चलिए इसे बाहर निकालिए !' चन्दा ने हाथ से चारपाई का पाया उठाते हुए कहा, 'झाड़ू-बुहारी करके बदलूँगी। इतनी सुबह कौन आता है !'

और जैसे उसकी बात को झुठलाने के लिए ही होनी की तरह बाहर से चातकजी की आवाज़ आयी, 'कहो भाई चेतन कैसे हो। निम्मोजी कल ही आयी हैं दिल्ली से। बड़ा प्यारा मौसम है। इन्हें लॉरेंस तक घुमाने जा रहा हूँ। इधर से निकला तो सोचा, तुम दोनों को भी ले लूँ।'

चेतन चौंक कर पलटा। डेवढ़ी में चातकजी और उनके पीछे वही चंचला खड़ी थी, जिसका नृत्य उसने सब्ज़ीमण्डी दिल्ली के फ़्लैट में देखा था। यद्यपि मुश्किल से सवा छै-साढ़े छै का समय था, पर चातकजी एकदम दूध-धुली खादी का धोती-कुर्ता पहने, उस पर सफ़ाई से तूश ओढ़े, बालों को सँवारे और उस सरकश लट को माथे पर बिखेरे थे और निम्मो अपनी चुँधी आँखों को नीले चश्मे में और चेचक के हलके दाग़ों को बड़े हलके पाउडर की तह में छिपाये, अपनी पतली-छरहरी देह पर जोगिया रंग की साड़ी और उसी रंग की कश्मीरी शाल ओढ़े थी और खासी खूबसूरत लग रही थी।

चेतन को देख कर उसने दोनों हाथ जोड़ कर बड़ी अदा से माथे पर रख दिये।

चेतन उसके 'नमस्कार' का उत्तर देना भूल गया। उन दोनों पर

एक नज़र डाल कर उसने कन्धे पर बिस्तर उठाये, टेढ़ी चारपाई का पाया पकड़े, मैली-चीकट धोती पहने अपनी पत्नी को देखा। उसका ख़ून खौल उठा। दाँत पीसते हुए दबे स्वर में उसने अपनी पत्नी के पास जा कर कहा, 'आ गया कि नहीं कोई सुबह-सुबह !' और कुर्सी पर पड़ी लोई उठाते और उसे कन्धों पर डालते हुए डेवढ़ी में निकल आया, 'इसको तैयार होने में बहुत देर लगेगी,' उसने पीछे को सिर का संकेत करते हुए कहा, 'चलिए मैं चलता हूँ।'

और वह उन दोनों से पहले बाहर निकल गया।

•

चेतन आध घण्टे बाद ही लौट आया—बेहद उखड़ा और झल्लाया हुआ ! चातकजी निम्मो की उपस्थिति को न केवल स्वयं महसूस कर रहे थे, वरन चेतन को भी उसका एहसास दिला रहे थे। वे बड़े मूड में थे। अपने काव्य की सविस्तार चर्चा करते हुए वे लगातार अपने प्रशंसकों के किस्से सुना रहे थे कि कैसे और कहाँ उनकी किस कविता की किसने प्रशंसा की। चेतन का ध्यान उनकी बातों में नहीं था। वह खादी की कमीज़ और लट्ठे की तहमद और पैरों में पेशावरी चप्पल पहने था और कन्धों पर उसने घर के बने मोटे ऊन की गहरे भूरे रंग की लोई ओढ़ रखी थी। बार-बार उसकी निगाह चातकजी की लकदक वेश-भूषा और उन पर निगाहें टिकाये और जैसे उनकी बातों को पीती हुई-सी उस युवती पर चली जाती थी और उनके साथ अपना अस्तित्व उसे ज़िन्दा शरीर के साथ लगे लुंज-पुंज अंग-ऐसा लगता। फिर बार-बार उसके सामने कन्धे पर बिस्तर उठाये, चारपाई का पाया पकड़े, मैली-चीकट धोती पहने, निहायत फूहड़ अन्दाज़ में खड़ी अपनी पत्नी की सूरत आ जाती और बार-बार उसे ख़याल आता कि चातकजी की वह 'सहोदरा' उनके बारे में क्या सोचती होगी। उसका ख़ून खौलने लगता और चातकजी क्या कह रहे हैं, उसे सुनायी न देता। जब उनके साथ और चलना उसके लिए दूभर हो गया तो उसने 'क्रिस्टल' के पास उनसे छुट्टी ले

ली और मन-ही-मन उबलता-खौलता, चप्पल फटफटाता तेज़-तेज़ घर लौट आया।

चन्दा रसोई-घर में वही मैली-चीकट धोती पहने बर्तन मल रही थी। चेतन आँगन में जा कर बमकने लगा कि वह इतनी गन्दी और मैली धोती क्यों पहने रहती है. . .कि उसका कौन मर गया है, जिसका वह सोग मना रही है. . .कि जब चेतन ने कहा था, पहले जा कर धोती बदल ले तो उसने क्यों फ़ौरन उसकी बात नहीं मानी. . .क्यों उसके मित्रों के सामने उसे बेइज़्ज़त किया ?. . .वह निम्मो दिल्ली के कॉलेज में पढ़ती है. काव्य और कला में रुचि लेती है, वह उनके बारे में क्या सोचती होगी ? यही न कि यह कवि और कथाकार बनने वाला व्यक्ति और उसकी पत्नी निहायत गन्दे, ग़लीज़ और फूहड़ हैं।. . .

चेतन बमक रहा था, जब भाई साहब क्लिनिक को जाने के लिए तैयार हो कर अपने कमरे से निकले और बिना एक भी शब्द कहे, चुप-चाप उसके पास से हो कर बाहर चले गये।

उनके जाते ही चेतन के क्रोध का पारा जैसे सातवें आसमान पर जा चढ़ा। वह दाँत किचकिचाता हुआ बोला, 'यह तुमने धोती पहन रखी है, लगता है, जैसे कीचड़ लपेट रखा हो ! तुम्हारी माँ ने क्या तुम्हें सफ़ाई-अफ़ाई का ज़रा भी ख़याल रखना नहीं सिखाया !. . .गूजरी ने तो तुम्हें दूध पिलाया है, पर क्या पाला भी गूजरी ने ही है ? कभी ब्लाउज़ के नीचे अँगिया नहीं पहनतीं, पेटीकोट के नीचे अण्डरवियर नहीं पहनतीं, पागलों और गँवारों की तरह डेवढ़ी में जा खड़ी होती हो।' (चेतन अपने क्रोध में यह भूल गया कि उसकी पत्नी ये दोनों चीज़ें पहनने लगी है और अब वह डेवढ़ी में उस तरह नहीं खड़ी होती, पर दुर्वार क्रोध के अधीन उसने उसके पिछले गुनाह भी नयों के साथ शामिल कर लिये।) 'तुम्हें इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं कि तुम बस्ती ग़ज़ाँ के किसी टुच्चे दुकानदार की बीवी नहीं हो, बल्कि एक मशहूर पत्रकार और

कथाकार की बीवी हो। तुम क्यों मेरी सारी इज़्ज़त धूल में मिलाने पर तुली हो. . .'

बिना इस बात की परवाह किये कि उसकी आवाज़ ऊपर तक जाती है. चेतन ग़ुस्से से पागल हो कर चिल्लाता रहा। जब उसकी पत्नी ने उत्तर में एक भी शब्द नहीं कहा तो वह और भी झल्ला गया। 'मैं इतनी देर से बक रहा हूँ और तुम मुँह में घुँघनियाँ डाले बैठी हो,' वह और भी ज़ोर से चिल्लाया, 'मैं क्या कुत्ता हूँ, जो भूँक रहा हूँ ? क्या तुमने मुझे भी अपने पिता की तरह पागल समझ लिया है ?. . .क्या मैं झूठ-मूठ चिल्ला रहा हूँ. . .ग़लत चिल्ला रहा हूँ ? तुम मुँह से कुछ तो फूटो !. . .'

लेकिन जब इस पर भी उसकी पत्नी ने कोई जवाब नहीं दिया और वह चुपचाप उसी मन्द गति से बर्तन मलती रही तो चेतन वहीं रसोई-घर की चौखट में बैठ गया। सहसा उसका ध्यान रसोई-घर की नाली की ओर गया, जिसके खुरे[१] पर बैठी वह बर्तन मल रही थी। जाने कितने दिनों से नाली और खुरा साफ़ नहीं किये गये थे। तह-दर-तह उनमें राख और कीचड़ जमा था। चेतन का क्रोध उधर मुड़ गया. . .'यह ब्राह्मणों की रसोई है ? मेहतरों की रसोई भी इससे साफ़ होगी !'. . .और उसने मँजी-धुली एक कटोरी और गिलास उठाया।. . .'ये तुमने बर्तन साफ़ किये हैं ? किसी पर ज़रा भी तो चमक नहीं. . .क्या तुम्हारी माँ ने तुम्हें बर्तन मलना या रसोई-घर साफ़ करना भी नहीं सिखाया !'

चेतन के सिर पर जैसे जुनून सवार हो गया। उसने अपनी पत्नी की बाँह पकड़ कर उसे उठाया और रसोई-घर के बाहर धकेल दिया—'हटो, मैं तुम्हें बर्तन मल कर दिखाता हूँ।'

और वह बाल्टी ले कर, उसे माँज-धो, ग़ुसलखाने के नल से ताज़ा

---

१. पंजाबी रसोई-घरों में नाली पर प्रायः नल के नीचे बना छोटा सा हौज़, जिसमें बर्तन मले जाते हैं।

पानी भर लाया। फिर उसने सारे बर्तन दोबारा मले। धोये। और जब वह उन्हें टोकरे में सजाने गया तो उसने देखा कि वहाँ जो बर्तन रखे हुए हैं, उन पर धूल की मोटी परत जम गयी है। तब जैसे दुगने जोश और क्रोध से बड़बड़ाता और अपनी पत्नी और उसकी फूहड़ माँ को कोसता हुआ (जिसने उसे घर-गिरस्ती का कुछ भी नहीं सिखाया) वह टोकरे के सारे बर्तन नाली पर ले आया। वे सारे बर्तन उसने बड़े मनोयोग से माँजे-धोये और पोंछे। फिर टोकरे को धोया-पोंछा और उसमें वे सारे-के-सारे बर्तन करीने से सजाये। इस काम से छुट्टी पा कर उसने बाल्टी के शेष पानी को खुरे में बहा दिया। जा कर फिर बाल्टी भर लाया और खुरा धोने लगा, लेकिन न जाने कितने दिनों की राख, मैल और कीचड़ वहाँ जमा था। एक बाल्टी भर पानी से वह क्या साफ़ होता! वह बाल्टी भर-भर लाता रहा और उसने सारी रसोई धो डाली। हाथ डाल कर खुरा और नाली साफ़ की और बाल्टियों पानी बहा कर आँगन और डेवढ़ी की नाली के रास्ते सारी गन्दगी बाहर गली की नाली में बहा दी। उसका बस चलता तो अपने जुनून में वह गली की नाली भी रेलवे रोड तक साफ़ कर आता, पर उसने किचन की गन्दगी को आँगन और डेवढ़ी से बहा देने और दो-चार बाल्टियाँ उसके पीछे गली की नाली में छोड़ देने पर ही बस की।

उसकी पत्नी इस बीच राख-सने हाथ लिये आँगन में मर्माहत-सी खड़ी रही। डेवढ़ी से वापस आ कर चेतन बमका, 'अब क्या सारी उम्र यहीं खड़ी रहोगी, जा कर कमरे साफ़ करो और अपनी यह बेशकीमती पोशाक बदलो।'

चन्दा ने कुछ नहीं कहा। उसने नल पर जा कर हाथ धोये और झाड़ू ले कर अन्दर कमरा साफ़ करने चली गयी।

चेतन ने बाल्टी को अच्छी तरह माँजा-धोया। कोहनियों तक अपने हाथ साबुन से साफ़ किये। फिर बाल्टी भर कर रसोई-घर की नाली पर रख आया और जा कर बैठक में बिस्तर पर ढह गया। उसका क्रोध,

जो इतना बकने-झकने के बावजूद शान्त नहीं हुआ था, ऐसी आँधी की तरह उसके दिमाग़ पर छा गया, जिसका वेग छत और छप्पर उड़ाने के बाद कम हो जाय, पर जो और भी ऊँची हो कर आकाश की गहराइयों में फैल जाय और उसे धुँधला दे !

तभी उसकी पत्नी अन्दर वाला कमरा साफ़ कर के आ गयी और बैठक में झाड़ू देने लगी। चेतन वैसे ही लेटा रहा। न उसकी पत्नी ने उसे उठने को कहा, न वह स्वयं उठा। चन्दा ने धीरे से बाँह बढ़ा कर चारपाई के नीचे से मिट्टी बुहार ली और चुपचाप, बिना धूल उड़ाये, धीरे-धीरे कमरे में झाड़ू देने लगी।

चेतन ने दीवार की ओर करवट बदल ली। सहसा उसकी दृष्टि कोनों में जमी धूल पर गयी, जहाँ चारपाई के नीचे चन्दा के हाथ का झाड़ू पहुँच नहीं सका था। उसने चारपाई के नीचे सिर झुका कर देखा। खिड़की से आने वाली रोशनी में फ़र्श पर दो-तीन जगह धूल के चकत्ते दिखायी दिये और जैसे उसका सारा क्रोध वापस आ गया। वह दुगने क्रोध से उछल कर उठा—'यह झाड़ू दे रही हो या बेगार टाल रही हो।' वह चिल्लाया, 'किसी ने तुम्हें कमरा बुहारना भी नहीं सिखाया ! यह कोनों-अँतरों को किस खैरात में बख्शा जा रहा है। बस्ती ग़ज़ाँ में क्या कोने-अँतरे नहीं झाड़े-बुहारे जाते ?'

और वही जुनून फिर उसके सिर पर सवार हो गया। उसने पागलों की तरह बिस्तर गोल किया। उसे जा कर पिछले कमरे में रख आया। फिर उससे चारपाई को एक पहलू खड़ा किया। अपनी पत्नी से झाड़ू छीन कर उसने एक-एक कोना-अँतरा अच्छी तरह बुहारा। चारपाई के नीचे वाली जगह दो-तीन बार बुहारी। फिर उसने चारपाई बिछा दी। उसे धकेल कर दीवार के साथ सटा दिया और वहीं एक ओर किं-कर्त्तव्य-विमूढ़-सी खड़ी अपनी पत्नी की ओर देख कर एक विषैली और व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ बिछी हुई चारपाई की ओर संकेत करते हुए कहा, 'अब यहाँ विराजिए !'. . .चन्दा निगाहें झुकाये निर्विकार वहीं

खड़ी रही तो उधर से पीठ मोड़ कर वह फिर कमरा बुहारने में जा लगा।

वह मेज़ के नीचे बैठ कर कन्धे के ज़ोर से उसका एक पाया उठा कर उसके नीचे से फ़र्श साफ़ कर रहा था, जब उसकी सास अपनी बेटी से मिलने आ गयी। अपने दामाद को कमरा बुहारते और बेटी को एक ओर चुपचाप खड़ी देख कर उसने ड्योढ़ी ही से कहा, 'तेरा मर्द कमरा साफ़ करे और तू चुपचाप खड़ी देखे, बेटी यह क्या अच्छी बात है!'

इससे पहले कि चन्दा कुछ कहती, चेतन ने व्यंग्य और विष से बुझी हँसी के साथ कहा, 'अच्छी तो नहीं है अम्मा, पर तुमने अपनी इस लाडली को अच्छा कुछ सिखाया भी है? झाड़ू-बुहारी यह नहीं कर सकती, बर्तन ठीक से यह नहीं मल सकती, खाना-पकाना और सीना-पिरोना इसे नहीं आता, और-तो-और ठीक से पहनने-ओढ़ने और कपड़ों की साज-सँभाल करने की भी इसे तमीज़ नहीं। बस यह खाना और सोना जानती है—चाहे इसे छत्तीस घण्टे सुला लो!'

चेतन वहीं मेज़ के नीचे से बमके जा रहा था कि चन्दा ने अपनी माँ से अन्दर आने और चारपाई पर बैठने को कहा। माँ ने अन्दर आ कर अपनी बेटी के दोनों कन्धों से थाम उसे चारपाई पर बैठा दिया और स्वयं नीचे साफ़ फ़र्श पर बैठ गयी।

तब चेतन मेज़ के नीचे से निकला, बाँह से पत्नी को पाँयते की ओर धकेल कर अपनी सास के सामने चारपाई की पट्टी पर आ बैठा और अपने क्रोध की मुहार[1] उसने अपनी सास की ओर (कि जो वास्तव में उसका कारण थी) मोड़ दी।

'कुत्ता भी बैठता है तो पूँछ हिला कर जगह साफ़ कर लेता है,' उसने तीखे व्यंग्य से कहा, 'लेकिन तुम्हारी लाडली साहबज़ादी धूल-भरे गन्दे फ़र्श पर रेशमी साड़ी पहने बैठने में नहीं हिचकती। जब यह दिनों-हफ़्तों अपनी और अपने कपड़ों की सफ़ाई नहीं करती तो यह कमरे और

---

१. लगाम।

रसोई क्या साफ़ करेगी । लड़की को दूसरे घर भेजना था तो कुछ सिखा कर तो भेजा होता कि न इसे तकलीफ़ होती, न उस कम्बख्त को, जिसके पल्ले इसे बाँध दिया है ।'

उसकी सास अपने झुर्रियों वाले चेहरे को उसकी ओर उठा कर नीम-अंधी आँखों से उसे देखती हुई दोनों हाथ जैसे फ़रियाद की सूरत में उठाये हुए बोली, 'हमने तो बेटा, अपनी तरफ़ से सब कुछ सिखाया है. . .'

चेतन ने उसे बात नहीं खत्म करने दी । उसने बायें हाथ से पत्नी की मैली-चीकट धोती का आँचल खींच कर अपनी सास की नीम-अंधी आँखों में झोंकते हुए कहा, 'यह देखो, यही सिखाया है तुमने इसे । ऐसी मैली-चीकट धोती तो मेहतरानियाँ भी नहीं पहनतीं !'

'बेटा, इसके पास धोतियाँ कम हैं । स्कूल जाती है, घर का काम करती है, बार-बार बदल नहीं पाती । बाप ने लाड़-प्यार में पाला है । रोज़-रोज़ कपड़े इसने कभी नहीं धोये. . .'

चेतन के सिर खून सवार हो गया । बात चूंकि सच्ची थी, उसके कलेजे जा लगी । तमक कर वह उठा और बोला, 'तो कोई गवर्नर ढूंढते अपनी इस लाडली के लिए, जिसके पास बँगला होता, रसोइए, बैरे और धोबी होते; दाइयाँ और नौकरानियाँ होतीं, जो तुम्हारी लाडली के मालिश करतीं, इसे नहलातीं, कपड़े पहनातीं और इसका साज-शृंगार करतीं । क्यों मुझ ग़रीब के पल्ले बाँध दिया इस बेचारी को !'

और वह कमरे में घूमता हुआ वाही-तबाही बकता और कहनी-अनकहनी बातें कहता रहा ।

उसकी सास कुछ नहीं बोली । वह घुटनों पर कोहनियाँ रखे और हाथों में सिर दिये अपने दामाद की मल्लाहियाँ सुनती रही ।

बोल-बोल कर चेतन थक गया, पर चुप होने से पहले क्रोध के उस तूफ़ान में उसने मन की बात सीधे कह डाली । अपनी सास के सिर पर खड़े हो कर हवा को तर्जनी के ठहोके देता हुआ वह बोला, 'जब तुम्हें

ही मेरी इज़्ज़त का खयाल नहीं और तुम उसी शहर में, जहाँ तुम्हारा दामाद अखबार का ऐडीटर और जाना-माना कहानी-लेखक है, एक सेठ का चौका-बर्तन करने लगी हो और उसके लाख इशारे करने पर भी नहीं समझीं तो तुम्हारी बेटी ही क्या समझेगी ! आदमी रात को मैला कपड़ा धो कर डाल देता है और सुबह साफ़-सुथरा पहन लेता है। घर में लोग चने चबाते हैं और बाहर कहते हैं कि हम बादाम खाते हैं। तुम लोग तो सब होते-सोते मेरी इज्ज़त लेने पर तुले हो। अब इसके कपड़े मैं धोऊँ, इस्त्री मैं करूँ, बर्तन मैं मलूँ, रसोई मैं साफ़ करूँ, कमरों में झाड़ू-बुहारी मैं दूँ और यह महारानी बनी बैठी रहे। इतना लाड इसे लडाया था तो मुझ-जैसे ग़रीब से इसकी शादी क्यों की ?'

बकते-झकते चेतन का गला सूख गया था, होंटों पर पपड़ियाँ जम गयी थीं। मुँह पर फिचकू आ गया था। जब वह एकदम थक गया और उसके कोसनों और उलाहनों का खज़ाना खाली हो गया और न उसकी पत्नी सनकी, न सास तो वह फिर झाड़ू ले कर मेज़ के नीचे जा बैठा और कन्धे से उसके पाये उठा कर धूल साफ़ करने लगा।

०

उसकी सास अपनी बेटी से न जाने क्या दुख-सुख की बातें करने आयी थी। लेकिन बात करना तो दूर, बैठना भी उसके लिए मुश्किल हो गया। घुटनों पर हाथ रख कर वह उठी।

तभी चन्दा ने भरे गले से कहा, 'माँ आज से तुम यहाँ फिर कभी न आना।'

उसकी आवाज़ में न जाने कैसी भर्राहट थी कि मेज़ का एक कोना कन्धे से उठाये-उठाये चेतन की निगाहें उधर उठ गयीं।

उसकी सास डेवढ़ी में निकल गयी थी। चन्दा निर्विकार वहीं बैठी थी और आँसू ख़ामोश उसके गालों पर बह रहे थे।

०००

तैं ता ली स

हफ़्ते बाद ही इतवार की शाम को चार-साढ़े-चार बजे के करीब चेतन अपनी पत्नी को ले कर अपनी सास से मिलने जा रहा था।

चेतन ने यह निर्णय अचानक नहीं लिया था, वरन उसके इस निर्णय के पीछे सात दिन का घोर आत्म-मन्थन, यन्त्रणा, भटकन और अपने अहं से पार पाने की वह तकलीफ़देह कोशिश थी, जिसने उसके दिन-रात बींध दिये थे। उसके निर्णय के पीछे उसकी पत्नी भी थी, जिसके अन्दर की खूबसूरती का कोई-न-कोई नया रूप अजाने ही उसकी आँखों के आगे खुल जाता और उसे चकित बना जाता।

गोविन्द गली को जाते-जाते, जब वह ज़रा आगे-आगे चला जा रहा था और उसकी पत्नी बदस्तूर पीछे चली आ रही थी, पिछले सप्ताह की तमाम घटनाएँ एक-एक कर उसके आगे आने लगीं।

०

. . .उस दिन अपनी पत्नी और सास पर नाराज़ होने के बाद वह घर नहीं रुका था। चन्दा की आँखों से मूक बहते

आँसुओं को देख कर, यद्यपि उसका क्रोध हवा हो गया था, लेकिन न तो उसने सान्त्वना का ही एक शब्द उससे कहा था, न अपने कृत्य की सफ़ाई दी थी। झाड़ू-बुहारी ख़त्म करके नहा-धो कपड़े बदल, वह घर से निकल गया था और कहता गया था कि वह दफ़्तर जा रहा है, खाना वहीं खा लेगा, चन्दा फ़िक्र न करें और ख़ुद भी खा ले। मन हो तो विद्यालय जाय, वरना छुट्टी कर ले।

लेकिन दफ़्तर में उसका मन न लगा था।

'गुरु घण्टाल' के दफ़्तर में दो बड़े और एक छोटा कमरा था। बड़े कमरे अंग्रेज़ी के अक्षर 'टी' की तरह बने थे। सीढ़ियाँ चढ़ कर लोग जिस कमरे में दाखिल होते थे, वह एक लम्बा आयताकार कमरा था। उसमें मैनेजर, एकाउण्टेण्ट, क्लर्क और डिस्पैचर की मेज़ें और सीढ़ियों के पास चपड़ासी का स्टूल था। इस कमरे के अन्त पर कपूर साहब का लम्बा दफ़्तर अंग्रेज़ी अक्षर 'टी' की ऊपर की लाइन की तरह लेटा था। इन दोनों की बायीं काँख में एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें 'गुरु घण्टाल' की पुरानी फ़ाइलें और बचे हुए अंकों के ढेर पड़े रहते थे। महाशयजी ने उसे चेतन के लिए ख़ाली करा दिया था और वहाँ उसकी मेज़-कुर्सी लगा दी थी।

चेतन तेज़-तेज़ चलता दफ़्तर पहुँच गया था। लेकिन वह समय से बहुत पहले चला था, इसलिए दफ़्तर की सीढ़ियों का दरवाज़ा उसे बन्द मिला। लगातार बोलने-बकने, बर्तन मलने और कमरे की सफ़ाई करने के कारण उसे भूख लग आयी थी और सब्ज़ीमण्डी के हलवाई की दुकान से मठे का गिलास (जो वह नाश्ते में लेता था) पीना वह भूल गया था। तब पहले उसने हरबिन्दर की दुकान पर जा कर लस्सी का बड़ा गिलास पिया था। फिर यूँ ही अनारकली का चक्कर लगाने निकल गया था।

बाज़ार अभी पूरी तरह खुला नहीं था। दुकानें खुल रही थीं। सफ़ाई हो रही थी। हलकी-सी धूल बाज़ार में जगह-जगह उड़ रही थी। शाम

को गुलज़ार लगने वाला बाज़ार बेरौनक और उदास था। आवा-जाई की कमी न थी। लेकिन वे लोग अधिकांशतः ख़रीद-फ़रोख़्त करने वाले नहीं, बाज़ार के आर-पार जाने वाले थे। चेतन को न खुलती दुकानों से ग़रज़ थी, न जहाँ-तहाँ उड़ती धूल से और न इधर-से-उधर जाने वालों से। घर से चलने के बाद लगातार उसकी आँखों के सामने उसकी पत्नी की झिलमिलाती आँखें और उसके गालों पर बहते आँसू आते रहे थे। अपना वह क्रोध उसे नितान्त पाशविक लगता रहा था और मन-ही-मन वह अपने से उलझता, बिना इधर-उधर देखे, घर से चला आया था। अपने आप से बराबर उलझते हुए उसने लस्सी का गिलास पिया था और उसी मनःस्थिति में वह अनारकली में चला जा रहा था।

वह जानता था कि उसे चन्दा पर ग़ुस्सा नहीं है। उसे अपनी सास पर ग़ुस्सा था। सच पूछा जाय तो उसे सास पर भी नहीं, उस सारी-की-सारी परिस्थिति पर ग़ुस्सा था। पागलख़ाने से आने के बाद वह पिंजरे में बन्द शेर की तरह छटपटाता रहा था। उसका दिमाग़ बेहद परेशान और तना रहा था और आख़िर उस तनाव को बरदाश्त न कर सकने के कारण वह अन्ततः फट पड़ा था। अपनी नसों पर से उसका अधिकार एकदम उठ गया था और वह क्रोध की बहिया में तिनके-सा बह गया था—नितान्त विवश और निरुपाय।

चन्दा की वे मूक, मर्माहत, उदास पनियारी आँखें चेतन के सीने में दूर तक उतर गयी थीं और उसका वह इतने दिनों से जमा हुआ और आख़िर फट पड़ने वाला दुर्वार क्रोध उन आँखों से निकल कर चुपचाप उसके गालों पर बहती हुई उन दो बूँदों से एकदम पानी-पानी हो गया था। उस क्रोध की जगह आ गयी थी, वही पुरानी करुणा—अपनी और चन्दा, दोनों की स्थिति पर. . .

तभी चेतन की सोच ने दूसरा मोड़ ले लिया।—यदि चन्दा का पिता पागल हो गया है; उसकी माँ अपने जेठ की रोटियों पर पड़े रहने बदले, स्वाभिमान से जीने और अपने पति की सेवा करने के लिए लाहौर

आ कर नौकरी करने लगी है तो इसमें बेचारी चन्दा का क्या कसूर है ?. . .आत्मग्लानि और पश्चाताप का मारा चेतन बार-बार यही सोचने लगा ।. . .वह तो कथाकार और कवि है । उसे तो अपनी सास के इस साहस और स्वाभिमान की प्रशंसा करनी चाहिए और वह अपने उस निम्न-मध्यवर्गीय, टुच्चे अहं का मारा, उन माँ-बेटी की ज़िन्दगी हराम किये जा रहा है । उसकी सास झूठ नहीं बोलती, धोखा-धड़ी, चोरी-चकारी नहीं करती, तन नहीं बेचती, अपने दो हाथों के श्रम से वह पति-सेवा के लिए पैसे जुटाती है और तीन मील की मंज़िल मार कर उसे देखने जाती है । जेठ अथवा उसके बेटे-बेटियों की दया-माया पर रहने के बदले अपने छोटे-से अहं को जिलाये रख कर, स्वाभिमान से जीने और (कितनी भी निष्फल क्यों न हो) अपने पति को स्वस्थ बनाने की वह उसकी कोशिश, क्या श्लाघ्य और स्तुत्य नहीं है ? क्या चेतन को इस कर्मठता की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए, इस पर गर्व नहीं करना चाहिए ! अपने दामाद के झूठे अहं और झूठी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए यदि अपने पति को उस बेबसी में अकेला और निराश्रित छोड़ कर वह वापस बस्ती ग़ज़ाँ चली जाय और जेठ-जेठीयों की ग़ुलामी करे तो क्या यह अच्छा होगा ! क्या चेतन को उसे उस स्थिति में पहुँचाने के कारण शर्म न आयेगी !

अपनी पत्नी के उस मूक विरोध ने, जो भर्राये हुए स्वर में कहे गये उस एक वाक्य में छिपा था, चेतन को अन्तर तक मथ दिया था । वह इतना बोला-बका, उसने चन्दा को इतनी कहनी-अनकहनी, भद्दी-फूहड़ बातें कहीं, लेकिन उत्तर में उसने विरोध का एक शब्द भी नहीं कहा । सब अभियोग, सब अपराध, मूक भाव से सह लिये, लेकिन जब चेतन ने उसकी माँ को उलाहने देने शुरू किये और अपने इतने दिनों के रुके आक्रोश को शब्दों की एक प्रबल बहिया में मुक्त कर दिया—क्रोध के उस प्रबल आवेग में दुखों और ग़मों की मारी अपनी सास के थके-हारे दुखी चेहरे की ओर भी नहीं देखा, यह भी नहीं पूछा कि वह इतनी

सुबह-सुबह कैसे आयी है और सारे अदब-आदाब भूल कर, वह धारा-प्रवाह मल्लाहियाँ सुनाता रहा—तब शायद चन्दा के संयम का बाँध टूट गया और भर्राये गले से वह फट पड़ी—'माँ, तुम यहाँ फिर कभी न आना !'

वह एक वाक्य चेतन को एक ज़बरदस्त तमाचे की तरह अपने मुँह पर लगा महसूस हुआ था—इस एक वाक्य से जाने-अनजाने चन्दा ने उसकी तमाम मल्लाहियों का जवाब दे कर उसे चुप करा दिया था ।

०

अनारकली का एक पूरा चक्कर लगा कर चेतन अपने दफ़्तर पहुँचा था । दफ़्तर खुल गया था । अभी सिर्फ़ मैनेजर और चपड़ासी आये थे । मैनेजर को 'नमस्कार' करता हुआ वह अपने कमरे में जा कर बैठ गया । काग़ज़ और तख्ती उसने अपने सामने रखी और सुबह की कष्टप्रद घटना को अपने दिमाग़ से एकदम निकाल कर वह तड़के सोची हुई कहानी लिखने लगा ।

उसने पूरा एक पैरा लिख लिया और आगे सोचने के लिए कुर्सी पर पीछे को झुक गया, लेकिन तभी शिमले के उस पहाड़ी गाँव की जगह चन्दा की वही पनियारी आँखें और उसके गालों पर खामोश बहते हुए आँसू उसके सामने आ गये और वह आत्मग्लानि और पश्चाताप से भर आया ।

उसकी कहानी कहीं पीछे छूट गयी थी और वह आत्म-मन्थन के उन्हीं भँवरों में डूबने-उतराने लगा था ।

जब—बार-बार ज़ोर लगा कर वह उबरा और फिर उन्हीं भँवरों में डूब गया, सिर को झटक कर उसने बार-बार कहानी को आगे बढ़ाने की कोशिश की और चार पंक्तियाँ भी नहीं लिखी गयीं और डेढ़-दो घण्टे वह बेकार बैठा झख मारता रहा, तो वह झल्ला कर उठा था । उसने मैनेजर से जा कर कहा था कि उसके सिर में सख्त दर्द है, वह कहानी लिखने जा रहा था, पर घर ही से लिख कर लायेगा, वे महाशय

जी को बता दें। और तख्ती साथ ही लिये हुए वह दफ़्तर से नीचे उतर आया था।

पहले उसने सोचा था कि घर चला जाय और अपनी पत्नी के साथ उसने सुबह-सुबह जो ज़्यादती की है, उसकी माफ़ी माँग ले—जैसे भी हो, उसे बता दे कि उसे अपनी ज़्यादती पर अफ़सोस है। उसे पूरा विश्वास था कि चन्दा उसे माफ़ कर देगी, लेकिन सोचने में यह बात जितनी सहल लगती थी, करने में उसे उतनी ही कठिन लगी और घर जाने के बदले वह चातकजी की ओर चला गया था।

०

उसका यह खयाल कि रात ही उनकी 'सहोदरा' आयी है और वे जल्दी दफ़्तर न गये होंगे, सच निकला था। जब वह पहुँचा तो वह चंचला जाजम पर गोल तकिये से सहारे कम्बल ओढ़ कर लेटी हुई थी और चातकजी उसके पास बैठे अपना खण्ड-काव्य सुना रहे थे।

चेतन जा कर चुपचाप, चातकजी के बराबर लेटी हुई उनकी सहोदरा के दूसरी ओर, ज़रा अन्तर पर, बैठ गया था।

चातकजी रुके नहीं थे, वे बराबर पढ़ते रहे। उस तन्वी की आँखों में देखते हुए उन्होंने कई बन्द सुनाये। चेतन ने देखा कि बीच-बीच में वे पृष्ठ छोड़ते जाते हैं और उन बन्दों को पढ़ रहे हैं, जिनमें 'मायाविनी' के उस जादू का वर्णन है, जिससे वह लोगों के दिल ले कर उन्हें खिलौने समझती है अथवा उस रूप का, जिसके जादू में संसार बँधा हुआ है। जब उन्होंने खण्ड-काव्य समाप्त किया तो निम्मो से बोले, 'इस काव्य में बहुत-से बन्द ऐसे हैं, जिन्हें लिखते हुए मेरे सामने तुम्हारी सूरत रही है।'

और यह कह कर चेतन की उपस्थिति की परवाह किये बग़ैर उन्होंने किताब एक ओर रख कर उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया था और उसे प्यार से सहलाने लगे।

तब जाने अपनी तमाम परेशानी के बावजूद चेतन के मन में क्या

शरारत आयी कि उसने कहा, 'आपने तो भूमिका में लिखा है कि इस काव्य को लिखने की प्रेरणा आपको अपनी दुधमुँही दिवंगता बच्ची से मिली है !'

'यही मैं निम्मो को बता रहा था।' चातकजी ने कहा, 'कवि को प्रेरणा एक पात्र अथवा घटना से मिलती है, पर जब उससे प्रेरित हो कर वह लिखता है तो उस पात्र अथवा घटना में अपने आप दूसरे कई पात्रों और घटनाओं का समावेश हो जाता है। काव्य लिखने का उद्रेक मुझे तभी हुआ, जब मैंने अपनी दुधमुँही बच्ची को गोद में लिया था, पर लिखने के क्रम में कई ऐसे खण्ड मैंने लिखे, जो इसी जादूगरनी को सम्बोधित हैं।'

और उन्होंने बड़े प्यार से जाजम पर लेटी हुई अपनी उस 'सहोदरा' की ठोडी को ठहोका दे दिया।

निम्मो ने चश्मा आँखों से उतार रखा था और उसके बिना उसकी चुँधी-सी आँखें श्रीहीन लग रही थीं। उसके चेहरे का पाउडर भी उस वक्त तक उतर गया था, हलके-से चेचक के दाग़ उसके साँवले चेहरे पर दिखायी दे रहे थे और कुल मिला कर कम्बल के नीचे लेटी हुई वह तरुणी बीमार-बीमार-सी लग रही थी और जादूगरनी ज़रा भी दिखायी न दे रही थी।

तब यूँ ही बात करने को चेतन ने पूछा था, 'क्या इनकी तबियत खराब है। ये ऐसे क्यों लेटी हैं ?'

उसके हाथ को और भी प्यार से सहलाते हुए चातकजी ने कहा था, 'निम्मो कुछ थक गयी है। हम सुबह बहुत दूर निकल गये। लॉरेंस तक जा कर लौटे। इसको इतना चलने की आदत नहीं। दिल्ली में घर के आगे ट्राम मिल जाती है। जब से आयी है, कम्बल ओढ़ कर लेटी है। सोचा था, इसकी नयी कविताएँ सुनेंगे, पर यह लेट गयी तो सोचा हमीं इसका मनोरंजन करें।'

'आपने अपनी नयी कविताएँ नहीं सुनायीं ?'

चेतन के स्वर में जो व्यंग्य था, उसकी ओर कवि ने ध्यान नहीं दिया। वे उत्साहित हो आये। तन्वी का हाथ छोड़, उन्होंने किताबों के नीचे पड़ी कविताओं की स्लिपें ढूँढ़ी और निम्मो से बोले, 'पहले की लिखी कुछ कविताएँ तो तुम्हें दिल्ली में सुनायी थीं, इधर कुछ और लिखी हैं, कहो तो सुनाऊँ; बोर तो नहीं हो गयी ?'

निम्मो लेटी-लेटी कुछ अजीब चांचल्य से मुस्करायी, 'हम तो बोर नहीं हुए, लेकिन लगता है भैया खासे बोर हो गये हैं।' और उसने चेतन की ओर इशारा किया।

'नहीं मैं बोर नहीं हुआ, मैं तो यह खण्ड-काव्य पहले भी सुन चुका हूँ।' चेतन ने कहा, 'मेरा मन सुबह से कुछ ठीक नहीं। दफ़्तर गया था, वहाँ भी काम में नहीं लगा सो इधर चला आया।'

'अच्छा किया जो चले आये।' चातकजी जाने क्यों हँसे और उन्होंने माथे की लट परे हटायी। 'सवेरे तुम निस्बत रोड से लौट आये तो निम्मो को शक था कि तुम उससे नाराज़ हो गये हो ? मैंने कहा था—नहीं, तुमसे भला कोई नाराज़ हो सकता है। वह आज ही आयेगा।' और वे निम्मो की ओर पलटे, 'देखो, तुम्हारी खातिर यह दफ़्तर छोड़ कर चला आया है।'

मन से दुखी होने पर भी चेतन के होंटों पर व्यंग्य-भरी मुस्कान खेल गयी। उसका मन हुआ, उठे और चल दे। अपनी उस मनःस्थिति में वह कैसे वहाँ वह सब बकवास सुन सकता है। वह उठा।

'मैं अब चलूँगा।' उसने कहा।

कवि ने उसे हाथ पकड़ कर बैठा लिया। 'बैठो, बैठो। खाना खा कर जाना।'

वे कविता सुनाने के लिए पर तोल रहे थे कि रसोई से उनकी पत्नी अपने लम्बे-तगड़े शरीर के साथ आ कर दरवाज़े में खड़ी हो गयीं और नकिया कर बोलीं, 'अँब उंठ कर खाँओ-पियोगे भी याँ अँपनीं इँन सँहो-दराँजों का पेंट इँस मुंई कँविता हीं सें भरोंगे।'

चातकजी का रंग पल भर को लाल हो आया। चेतन का ख़याल था कि इस बदतमीज़ी पर वे कस कर भाभी को डाँट देंगे, लेकिन दूसरे क्षण उन्होंने बड़े धैर्य से कहा कि वह जा कर तीन थालियाँ लगाये चेतन भी उनके साथ ही खायेगा, वे पाँच मिनट में नहा आते हैं।

और चेतन को पुनः खाना खा कर जाने और इस बीच निम्मो का मन बहलाने के लिए कह कर वे चले गये।

चेतन उनकी उस सहोदरा का कैसे मन बहलाये, उसकी समझ में नहीं आया। उसके चले आने के बाद चन्दा क्या करती होगी, वह मन-ही-मन यही सोचता रहा था। क्या चुपचाप लेटी रो रही होगी ? क्या विद्यालय चली गयी होगी ? उसने तो सुबह लस्सी भी पी ली है और अब यहाँ खाना भी खा लेगा, वह बेचारी भूखी ही बैठी कुढ़ती होगी. . .

तभी, जब वह इसी चिन्ता में ग्रस्त चुप बैठा था, सहसा वह चंचला कम्बल हटा कर उठ बैठी और उसने दोनों हाथों की उँगलियाँ एक-दूसरी में फँसा कर ज़ोर की हड्डी-तोड़ अँगड़ाई ली और हाथों को सिर के ऊपर ले जा कर और आँखें छत में गड़ा कर क्षण भर को उसी अवस्था में तनी बैठी रही—सिर के ऊपर हाथ ले जा कर उसने कलाइयों को कुछ ऐसे मरोड़ लिया कि चेतन को वह नृत्य की किसी भंगिमा में विसुध बैठी दिखायी दी। उसका ध्यान सहसा उसकी तनी हुई छाती के छोटे-छोटे उभारों पर चला गया, जो उस पोज़ में खासे नुकीले हो आये थे। कोई दूसरा वक्त होता तो शायद उस पोज़ से वह बेतरह उत्तेजित हो उठता, पर अपनी उस मनःस्थिति में वह मन-ही-मन हँसा—इस साली को अपने अलावा कुछ सूझता ही नहीं; दूसरा किस मनःस्थिति में बैठा है, इसकी इसे कोई फ़िक्र नहीं !

क्षण भर उसी तरह तने रह कर निम्मो ने बाँहें एकदम ढीली छोड़ दीं और वे धप्प से उसके सामने आ गिरीं, 'जिस्म बेतरह टूट रहा है।' उसने कहा और सहसा उसने अपनी कलाई चेतन की ओर बढ़ा दी, 'देखना भैया, मुझे बुखार तो नहीं।'

'मुझे नाड़ी नहीं देखनी आती।' चेतन ने निहायत ठण्डे स्वर में कहा। (मन-ही-मन उसने दाँत पीसते हुए सोचा—कमबख्त मुझे भी चातक ही समझती है) लेकिन साथ ही वह तत्परता से उठा—'मैं जा कर भाभी से थर्मामीटर लाता हूँ।'

और वह उठ कर किचन में चला गया था। और उसने भाभी से थर्मामीटर माँगा।

'थँर्मामींटर सें क्याँ होंगा,' भाभी ने कहा था 'उँस कें सिंर पँर काँम चढ़ाँ है। उँन सँहोंदरजी सें कहों कि अँपनीं इँस सँहोंदराँ काँ कहीं बियाँह कराँ दें तो इँसका बुँखार उँतरे।'

०

अपनी पत्नी के आगे-आगे चुपचाप गोविन्द गली को जाते हुए चेतन सहसा मन-ही-मन हँस उठा। क्षण भर को वह रुक गया। अपनी पत्नी के साथ आ मिलने की प्रतीक्षा करता रहा। फिर वह चल पड़ा। उसका मन फिर वहीं जा लगा। हाँ, मन की हँसी का बिम्ब उसके होंटों पर एक मुस्कान की सूरत में कितनी ही देर तक बना रहा।

०

कोई दूसरा वक्त होता तो वह भाभी के उस सटीक व्यंग्य पर ठहाका मार कर हँस पड़ता, पर उस वक्त उसे हँसी नहीं आयी। भाभी के लिए उसके मन में करुणा उमग आयी थी और अपनी स्थिति पर उसे कुछ अस्वस्ति-बोध हुआ था। वह यूँ ही किचन में इधर-उधर थर्मामीटर ढूंढता रहा था। कमरे में जाने का उसे साहस नहीं हुआ। लेकिन कुछ क्षण बाद ही वह चंचला, एकदम चाक-चौबन्द, आँखों पर चश्मा चढ़ाये, साड़ी का पल्लू बड़ी अच्छी तरह सिर पर लिये और कन्धों पर शाल ओढ़े किचन में आ गयी थी और, 'हमको तो बड़ी भूख लग आयी है भाभी,' कहते हुए धप् से एक आसन पर बैठ गयी थी और चेतन से उसने कहा था, 'आइए बैठिए, भैया अभी आते ही होंगे।'

और उसने हलके-से उसका हाथ खींचा था।

चेतन नहीं बैठा था, लेकिन दूसरे क्षण चातकजी ग्रा गये तो वह बैठ गया । तीनों ने मिल कर खाना खाया था । निम्मो लगातार चहकती रही थी । लेकिन चेतन का ध्यान उधर नहीं था । वह यही सोचता रहा था कि जाने चन्दा ने खाना खाया कि नहीं ग्रौर भाभी के लाख जोर देने पर भी वह पूरी तरह खा नहीं सका था । तब यद्यपि उसका मन हुग्रा था कि वह खाना खाते ही चातकजी से छुट्टी ले ले, पर वैसा करना उसे शिष्ट न लगा था । वह कुछ देर वहीं कमरे में ग्रा कर बैठ गया था ग्रौर निम्मो ।ग्रपनी कविताएँ सुनाने लगी थी । कविताएँ तो वास्तव में चातकजी ग्रपनी सुनाना चाहते थे, पर जब निम्मो जाजम पर बैठते ही, 'लो भैया तुम कहते थे, मैं ग्रपनी कुछ नयी कविताएँ सुनाती हूँ,' कहते हुए कापी खोल बैठी तो उनके लिए कोई चारा नहीं रहा । 'पहली कविता का शीर्षक है—उपालम्भ !' निम्मो ने एनाउंस किया ग्रौर कविता पढ़ने लगी थी :

'जब नदिया सूख गयी तन की
तब ग्रोस से प्यास बुझाने से क्या
जब प्राण पपीहे ने दे ही दिये
तब स्वाति-सुधा बरसाने से क्या

सर्वस्व लुटा दिया जब हम ने
तब दूर से यूँ भरमाने से क्या
जब नेह का नाता निबाहा नहीं
तब प्रीति की रागिनी गाने से क्या ।'

चेतन ने इतनी ही पंक्तियाँ सुनी थीं कि उसे लगा कि कुछ ऐसे भाव उसने 'हिन्दी पुस्तक भवन' में एक नयी कवयित्री, चकोरी के संग्रह 'किंजल्क' में पढ़े हैं ग्रौर यह याद ग्राते ही चातकजी की उस सहोदरा की कविताग्रों में (कि जिनमें छन्द भी ठीक न थे) चेतन की सारी दिलचस्पी चुक गयी—'प्रेम के प्रति यह लड़की कितनी सीरियस है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा था, 'यह तो मैं नहीं कह सकता, हालाँकि प्रेमिका

की अपेक्षा यह फ़्लर्ट अधिक है। संगीत हो, नृत्य हो या काव्य—उन सब में इसकी दिलचस्पी ऊपरी है। यह कम्बख्त अपनी इन्हीं अदाओं से चातकजी जैसे किसी चुग़द को फँसा लेगी, और गिरस्ती के चक्कर में सारी कविता और कला भूल जायेगी।'

दो-तीन कविताएँ तो चेतन ने किसी तरह सुनी थीं, फिर उसने चातकजी से क्षमा माँग ली थी कि उसकी पत्नी की तबियत ठीक नहीं, वे अभी उसे छुट्टी दें, वह फिर आयेगा।

और यह कह कर वह चला आया था।

०

जब ढाई-तीन के करीब वह घर पहुँचा तो उसने देखा कि उसकी पत्नी विद्यालय नहीं गयी। उसने इस बीच सारे कपड़े धो और सुखा लिये हैं और वह उन्हें इस्त्री करने का प्रयास कर रही है। चन्दा को इस्त्री करना नहीं आता था। चेतन की कमीज़ को वह पहले दामन की ओर से इस्त्री कर रही थी। चेतन ने जाते ही अपनी पत्नी के हाथ से इस्त्री ले ली थी और कन्धे से उसे ज़रा परे हटा दिया था—उसकी भंगिमा में किंचित त्वरा और रुखाई थी। लेकिन पत्नी के हाथ से इस्त्री लेते और उसे परे धकेलते हुए जब उसने कहा था, 'हटो मैं कर देता हूँ। तुम हाथ-वाथ जला लोगी।' तो उसके स्वर में जो चिन्ता और स्नेह था, वह उसकी पत्नी से छिपा नहीं रहा था।

'आप दफ़्तर से आज जल्दी आ गये ?' चन्दा ने पूछा था।

'मेरा मन नहीं लगा,' बिना उसकी ओर देखे, चेतन ने उत्तर दिया था। और वह कपड़ों पर इस्त्री करने में तल्लीन हो गया था।

कमीज़ पर कुछ सिलवट रह गये थे। चन्दा ने ठीक से छींटे नहीं दिये थे। तब चेतन ने इस्त्री ज़मीन पर खड़ी कर दी और पत्नी से एक कटोरे में पानी लाने को कहा। जब पानी आ गया तो एक-एक कपड़े पर पानी छिड़कते और उनके गोले-से बना कर और उन्हें दबा कर (कि वे अच्छी तरह नम हो जायें) उन्हें एक ओर एक-दूसरे के ऊपर

रखते हुए उसने सहज भाव से पूछा था :

'तुम ने खाना खा लिया ?'

'क्या आपने खा लिया ?'

'दफ़्तर में मेरा मन नहीं लगा। मैं चातकजी के चला गया था। वहाँ उनकी वही सुबह वाली मेहमान आयी हुई हैं। उन्होंने ज़बरदस्ती खिला दिया !'

'मैंने भी दो बासी रोटियाँ खा ली थीं।'

'क्या तुम्हारा बीमार पड़ने का इरादा है।'

उसने अतिरिक्त चिन्ता-भरे स्वर में कहा, 'मैं पहले ही बेहद परेशान हूँ। जाओ जा कर खाना खा लो। तीन बजने को हैं। मैं इस बीच इन सब को इस्त्री कर देता हूँ। फिर घूमने चलेंगे।'

और चेतन के होंटों पर क्षमा माँगती हुई-सी बड़ी हलकी सुलह-कुल[1] मुस्कान आ गयी थी।

उत्तर में चन्दा उदासी से मुस्करायी थी। लेकिन उसने कुछ कहा नहीं था। वह चुपचाप खाना खाने चली गयी थी।

तब चेतन ने जैसे पहली बार मार्क किया था कि उसने साड़ी-ब्लाउज़ घर में धो कर और इस्त्री करके पहन रखे हैं। बाल भी सँवारे हैं और शायद मुँह पर उबटन भी मला है। बस केवल किसी ऐसी बात की ज़रूरत थी, जो उन उदास होंटों में छिपे हुए मोती चमका दे और उनकी आभा उस चेहरे को ही नहीं, सारे घर को उद्भासित कर जाय।

लेकिन चेतन को कोई ऐसी बात न सूझी थी।

अपने पति की अशिष्टता और क्रूरता के प्रति कोई शिकायत नहीं, कोई उलाहना, कोई गिला-शिकवा नहीं—चेतन का हृदय अपनी पत्नी के इस स्वीकार, सहिष्णुता और सहनशीलता पर अनायास द्रवित हो आया और वह नम कपड़ों को बारी-बारी उठा कर, उन पर जल्दी-जल्दी इस्त्री करने लगा।

---

१. सन्धि की अपेक्षा रखने वाली।

इस्त्री करते-करते मन-ही-मन चेतन ने तय किया कि सुबह-जैसी घटना वह फिर नहीं होने देगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसे अपनी सास पर ग़ुस्सा था, लेकिन इसमें भी कोई शक नहीं कि उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद चन्दा सफ़ाई का उतना ख़याल न रखती थी और मैली-कुचैली बनी रहती थी। उसके हाथों और पैरों पर मैल की परत चढ़ी रहती थी। चेतन ने उससे कई बार कहा था कि ख़ूब गर्म पानी से हाथ-पैर धोये! थोड़ी देर में मैल उगल (फूल) जायगी। तब उन्हें रगड़-रगड़ कर मैल साफ़ करे और फिर वैज़लीन लगाये। वैज़लीन की शीशी भी उसने ला कर रखी थी, पर बिना इस्तेमाल के उस पर भी मैल की वैसी ही परत चढ़ गयी थी। रंग चन्दा का गेहुआँ था। साफ़-सुथरे कपड़े पहनती और हँसती-मुस्कराती तो सुन्दर लगती थी, लेकिन अपनी जन्म-जात सुस्ती और काहिली के कारण वह मैली-कुचैली बनी रहती। बस उसका दिल सोने का था। चेतन को विश्वास था कि उसका तन भी सोने का हो सकता है। वे ग़रीब हैं और पाउडर-क्रीम और शृंगार के दूसरे प्रसाधन उन्हें सुलभ नहीं, पर वह उबटन तो मल सकती है और उबटन में तो कोई ख़र्च नहीं आता। चेतन ने उसे बेसन में तेल डाल कर उसमें दो पत्ती केसर छोड़ कर, उसका उबटन बनाना, उसे चेहरे पर मल कर मैल की बट्टियाँ उतारना और जिल्द को मुलायम और सुन्दर बनाना सिखाया भी था। उसने अपनी माँ को दसियों बार उबटन मलते देखा था। बचपन में उनकी माँ उनके चेहरों को भी उबटन मल कर चमका देती थी। जिल्द साफ़ और मुलायम हो जाती थी। चेतन को ख़ुशी हुई कि चन्दा ने ख़ूब सफ़ाई की थी और चेहरे पर उबटन भी मला था।. . .तब कपड़ों पर इस्त्री करते हुए उसने तय किया कि वह अपनी पत्नी को संगीत विद्यालय में दाखिल करा देगा। वह कृपाल-देवी हिन्दी विद्यालय में तो पढ़ती थी, पर वहाँ अच्छे घरों की लड़कियों के साथ बेहद ग़रीब घरों की लड़कियाँ भी पढ़ती थीं। केवल विद्यालय में पढ़ने से चन्दा साफ़-सुथरा रहना नहीं सीख सकती थी। लेकिन

संगीत विद्यालय में मध्य और उच्च वर्ग की लड़कियाँ ही पढ़ने आती थीं और चेतन को विश्वास था कि उनमें रह कर चन्दा ज़रूर ही उनकी तरह साफ़-सुथरी रहना सीख जायेगी। न सीखेगी तो वह कमला और जमुना की मदद से उसे यह सब सिखा देगा। वह यह सब कैसे करेगा, उसे मालूम था।

चन्दा खाना खा कर और रसोई का काम निबटा कर आ गयी और चेतन इस्त्री कर चुका तो उसने चन्दा को तैयार होने के लिए कहा कि चलो ज़रा क्रिस्टल तक घूम आयें और वापसी पर कुछ क्षण कमला के हो आयें।

०

अपनी पत्नी के साथ गोविन्द गली को जाता और यही सब सोचता हुआ चेतन सब्ज़ीमण्डी का चौक पार गया था।

उसके सामने निस्बत रोड की वह शाम घूम गयी। सुबह की घटना का उसने शाम को ज़िक्र तक नहीं किया था, लेकिन उसने यह कोशिश ज़रूर की थी कि वह किसी तरह अपनी पत्नी की मौन उदासी तोड़ दे, उसे हँसा दे और उसने चातकजी की उन सहोदरा का किस्सा छेड़ दिया था। सब्ज़ीमण्डी दिल्ली के उस फ़्लैट में घुँघरुओं की झंकार के साथ उस चंचला ने जैसे ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया था, उसका साभिनय और सव्यंग्य वर्णन कर, चातकजी की उस सहोदरा से उनके लिजलिजे व्यवहार पर उसने टिप्पणी की थी।. . .चातकजी के जाते ही उसने अँगड़ाई में जिस तरह नृत्य की मुद्रा बनायी थी और कलाई उसके आगे कर दी थी और जैसे वह टेम्परेचर देखने के लिए थर्मामीटर लेने भागा था और भाभी ने व्यंग्य किया था—उस सबका ज़िक्र करते और नकियाते हुए उसने भाभी के स्वर की नकल भी उतारी थी। उसने उनका वाक्य कुछ ऐसे दोहराया कि उसे आशा थी कि चन्दा खिलखिला कर हँस पड़ेगी। लेकिन जब इतने पर भी एक करुण, उदास मुस्कान ही उसके होंटों पर उदय हुई तो चेतन के मन में आया—वह सुबह के अपने कृत्य

के लिए उससे क्षमा माँग ले और उसे सहज कर दे, लेकिन वह दुनिया-जहान की बातें करता रहा था, सिर्फ़ उसने सुबह की घटना ही का ज़िक्र नहीं किया था।

०

'क्रिस्टल' के सामने से वे लौट पड़े थे तो चेतन उसे कमला के यहाँ ले गया था। दरवाज़ा हमेशा की तरह जमुना ने ही खोला था और उन्हें देख कर उसके होंटों पर लज्जा और संकोच-भरी वही मुस्कान खेल गयी थी, जो चेतन को हमेशा अच्छी लगती थी। वे जा कर बैठे थे तो मौसी रामरक्खी ने उन्हें बरबस चाय पिलायी थी। तभी चेतन ने चन्दा को संगीत विद्यालय में दाखिल कराने की इच्छा प्रकट की थी। कमला इस पर बड़ी प्रसन्न हुई थी। वे उसी वक्त उठ कर बीच की चौड़ी गली में संगीत विद्यालय गये थे। वहाँ अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहने और रागियों जैसी लटकेदार बिजली रँगी पगड़ी बाँधे एक लम्बे-ऊँचे, श्याम वर्ण के दक्षिण भारतीय गुरु वेंकटरमण से मिले थे, जो विद्यालय चला रहा था। पाँच रुपये महीना फ़ीस थी। चेतन ने अपनी पत्नी को उसी वक्त भरती करा दिया।

जब चेतन मौसी रामरक्खी के सामने कुर्सी पर बैठा था तो क्षण भर के लिए उसके मन में ख़याल आया था कि क्यों न मौसी से अपने ससुर के पागल होने और निकट ही गोविन्द गली में अपनी सास के नौकरी करने की बात कह कर अपने मन के बोझ को हलका कर ले। उसने तब तक अपनी सास की उस नौकरी का ज़िक्र किसी से नहीं किया था और अन्दर-ही-अन्दर वह बेतरह घुट कर रह गया था। . . .लेकिन चाहने पर भी वह कह नहीं सका था। चेतन निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों के मनोविज्ञान से परिचित था। अव्वल तो इस स्थिति ही से उस परिवार की निगाहों में उसकी और उसकी बीवी की प्रतिष्ठा कम हो जाने की सम्भावना थी (हालाँकि उसे विश्वास था कि जमुना को उनके साथ हमदर्दी ही होगी) फिर मौसी इस बात पर भी

ताना दे सकती थी कि जिसका पिता पागलखाने में पड़ा है, उसे कैसे गाने-बजाने की सूझ सकती है।

जब वह चन्दा को संगीत विद्यालय में दाखिल कराके लौटा तो जैसे मन-ही-मन मौसी की उस सम्भावित आपत्ति का उत्तर देते हुए उसने अपनी पत्नी से कहा था, 'मैंने हारमोनियम बड़े शौक से तुम्हारे लिए खरीदा था। शिमले से मैं बड़ी मुश्किल से पैसे बचा कर सितार और दिल-रुबा लाया हूँ। सभी पर बेकार में धूल जम रही है। इधर तुम्हारे पिता की अस्वस्थता के कारण तुम्हारा मन भी अस्वस्थ रहता है। इसीलिए मैंने सोचा कि शाम को तुम एक-आध घण्टा टूँ-टाँ कर लोगी तो तुम्हारा मन बहला रहेगा। आवाज़ तुम्हारी सुरीली है। 'प्रभाकर' पास करने के साथ-साथ संगीत विशारद का भी डिप्लोमा ले लो तो क्या कहने हैं!'

और यूँ लाख चाहने पर भी चेतन मुख्य बात पर न आ सका था। सुबह की अपनी ज़्यादती का उसने ज़िक्र नहीं किया। हाँ, घर आ कर उसने हारमोनियम, सितार और दिलरुबा—तीनों साज़ निकाले, उन्हें झाड़ा-पोंछा और फिर अन्दर के कमरे में करीने से रख कर मेज़ पर आ बैठा था। चन्दा रसोई में जा लगी और वह सुबह की छोड़ी कहानी लिखने लगा और वह चल भी पड़ी थी।

०

तीन दिन बाद चन्दा का मन बहलाने को वह उसे मोहिनी के ले गया था। वे दोनों सहेलियाँ आपस में बातें करने लगी थीं तो मोहिनी के पति मिस्टर लेखराज उसे अपने कमरे में ले गये थे। उनका कमरा बहुत बड़ा नहीं था, इस पर उसमें सामान ज़रूरत से ज़्यादा था। वह कुछ क्षण उनके साथ चुपचाप बैठा रहा था। अपनी तात्कालिक मन:स्थिति में बीमा कम्पनी के उस इंस्पेक्टर से वह क्या बातें करे, उसकी समझ में न आ रहा था। सामने एक हारमोनियम रखा था, जिसके 'बेलो' पैरों से चलते थे। चूँकि उस पर एक रंगीन चादर पड़ी थी, जो फ़र्श को छू रही थी, इसलिए चेतन ने उसे सिंगर मशीन समझा और यों ही बात

चलाने के लिए पूछा, 'क्या यह सिंगर मशीन है ? मोहिनी के जहेज़ में आयी होगी।'

'मशीन नहीं,' लेखराज ने सोत्साह कहा था, 'यह बाजा है। आया तो मोहिनी के जहेज़ ही में है, पर मैंने अनारकली में मिल्खीराम बाजे वाले से इसके नीचे बेलो भी लगवा लिये हैं। अब न केवल मज़े से कुर्सी पर बैठ कर इसमें पैरों से हवा भरी जा सकती है, बल्कि एक हाथ के बदले दोनों हाथों से बजाया जा सकता है। एक संगीत मास्टर सिखाने आता है। पहले उससे मैं सीख लेता हूँ, फिर मोहिनी को सिखाता हूँ।'

०

लेखराज की बात याद आ जाने से बाज़ार में जाता-जाता चेतन हँस दिया। 'वह भी मेरा ही भाई है,' उसने मन-ही-मन कहा और दिमाग़ में उन दिनों की एक घटना घूम गयी, जब शुरू-शुरू में सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोप्राइटर) के मकान में वे उनके साथ ही के कमरे में रहते थे और उसने चन्दा को हारमोनियम सिखाने के लिए एक म्यूज़िक-टीचर रख दिया था। वह म्यूज़िक-टीचर, पण्डित रत्न के उन्हीं मित्र ज्ञानचन्द का मुँह-बोला बेटा था, जो सरक्युलर रोड के चौबारे में रहते थे। वह अपराह्न ही को आ सकता था, क्योंकि दूसरे तमाम वक्त के लिए उसके पास ट्यूशनें थीं। तभी एक दिन सरदार जगदीश सिंह ने उसे बुला कर कहा कि वे अपने दोस्तों को एक पार्टी दे रहे हैं और वे सोचते हैं कि यदि उसकी पत्नी पार्टी में दो-एक गीत सुना सके तो बहुत अच्छा हो।

चेतन उस मूर्ख सिखड़े की ओर देखता रह गया था। उसने उसकी पत्नी को क्या समझा है। उसके जी में आया कि उसे दो-चार मल्लाहियाँ सुनाये, पर वह नया-नया उस मकान में आया था, इसलिए अपने क्रोध पर बरबस संयम रख के उसने सिर्फ़ इतना ही कहा था, 'आपके मित्रों को न मैं जानता हूँ और न मेरी पत्नी, वह उनमें बैठ कर कैसे गा सकती है ?'

तब सरदार साहब ने कहा था, 'आप चाहें तो हम कुछ फ़ीस दे देंगे। मैं चाहता था कि पार्टी में कुछ रौनक आ जाय!'

क्रोध के मारे चेतन थर-थर काँपने लगा था और तीखे स्वर में उसने कहा था, 'आप कुछ सोच-समझ कर बात कीजिए। आपने हमें क्या समझ रखा है! हम आपके किरायेदार हैं, पर आपको हमारा इस तरह अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। बहुत रौनक करने और फ़ीस देने का आपको शौक है तो टिब्बी बाज़ार[1] से कोई रण्डी बुला लीजिए।'

सरदार जगदीश सिंह (लैण्डलॉर्ड एण्ड हाउस प्रोपाइटर) का मुँह घनी दाढ़ी के बावजूद उतर गया था। तब उनकी सरदारनी ने धीरे से कहा था, 'तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में वह पराये मर्द के सामने बैठी बाजा बजाती है. . .!'

बात पूरी करने का अवसर दिये बिना चेतन ने कहा था, 'वह पराया मर्द नहीं, मेरे मित्र का बेटा है और वह उसके सामने बाजा नहीं बजाती, उससे सीखती है। वह मशहूर म्यूज़िक-टीचर है।'

तब यद्यपि सरदार ने माफ़ी माँग ली थी और वह तिनकता हुआ वापस आ गया था, पर महीना ख़त्म होने के बाद उसने ट्यूशन छुड़वा दी थी और स्वयं सरक्युलर रोड के चौबारे पर संगीत सीखने जाने लगा था। जितना वह सीख कर आता, आ कर चन्दा को सिखा देता।

चेतन के सामने सारी घटना घूम गयी। सरदार जगदीश सिंह की बात याद आ जाने से इतना समय बीत जाने पर भी क्रोध का शोला-सा उसके मन में लपका, लेकिन उसका उत्तर सुन कर उनका मुँह जैसे लटक गया था, उसकी याद आ जाने से उसके होंटों पर मुस्कान भी आ गयी।

'लेखराज भी यही करता है,' उसने मन-ही-मन कहा।

०

चन्दा मोहिनी के साथ काफ़ी देर बैठी रही थी और वह लेखराज के

---

१. लाहौर में वेश्याओं का प्रसिद्ध बाज़ार।

साथ बैठा बोर होता रहा था। अपने उत्साह में लेखराज ने बाजे का कपड़ा उठा कर दोनों हाथों से हारमोनियम बजाते हुए उसे अपनी निहायत कनसुरी मोटी आवाज़ में वेवक्त के भजन सुनाये थे। कोई दूसरा वक्त होता तो वह वहीं बैठा-बैठा अपनी पत्नी को आवाज़ देता कि चले देर हो रही है। लेकिन चन्दा का मन बहल रहा था, इस खयाल से वह चुपचाप बैठा अपने कानों पर अत्याचार सहता और मिस्टर लेखराज को तानसेन की कब्र पर बेदर्दी से लात मारते देखता रहा था। आखिर मोहिनी और चन्दा वहीं आ गयीं। चन्दा अपनी सहेली के साथ हँसती-हँसाती रही हो तो वह नहीं जानता। चेतन के साथ जब वह लेखराज के घर से चली तो बदस्तूर चुप और गम्भीर थी।

दूसरे ही दिन अनारकली जा कर वह अपने हारमोनियम में पैरों से चलने वाले बेलो लगवा लाया और दो-तीन शाम न सिर्फ़ खुद, बल्कि चन्दा को भी दोनों हाथों से बाजा बजाने की प्रैक्टिस कराता रहा था।

०

लेकिन उसके इन सब सद्प्रयासों बावजूद वह संकोच, जो पति-पत्नी के बीच आ गया था, ज़रा भी दूर नहीं हुआ था। चन्दा को तकलीफ़ न हो और स्वयं उसे चिल्लाने का अवसर न मिले, इसलिए वह बैठक खुद साफ़ करता। किचन को धोने और बर्तन साफ़ करने में भी वह चन्दा की मदद करता। वह कपड़े धोती तो वह इस्त्री कर देता। शाम को प्रायः रोज़ वह उसे घुमाने ले जाता। लेकिन इस पर भी एक दीवार थी, जो दोनों के बीच आ गयी थी। शाम को थक-हार कर दोनों अपनी-अपनी चारपाई पर सोते तो चन्दा जल्द ही नींद में विसुध हो जाती और चेतन गयी रात तक करवटें बदलता रहता। कई बार उसका मन होता, वह हलके-से स्पर्श से उसे अपने पास बुलाये। लेकिन एक संकोच था, जो हमेशा उसका हाथ रोक लेता। चन्दा सो जाती और वह तब तक करवटें बदलता हुआ अपने से उलझता रहता, जब तक कि उसकी आँखें बरबस बन्द न हो जातीं।

चन्दा पूर्ववत चुपचाप अपना काम किये जाती। चेतन उसके व्यवहार से ज़रा भी न जान पाया कि उसके मन में आक्रोश है अथवा उसने उस घटना के लिए उसे दिल से क्षमा कर दिया है। चन्दा की माँ फिर उससे मिलने न आयी थी। चेतन चाहता था, उसकी पत्नी एक बार भी इच्छा प्रकट करे और वह उसे उसकी माँ से मिलाने ले जाय और अपने उस दिन के क्रोध की सफ़ाई दे दे। लेकिन वैसी इच्छा प्रकट करना तो दूर, चन्दा ने भूले से भी कभी उस दिन की घटना का ज़िक्र न किया था और ऊपर से समतल उनकी ज़िन्दगी में अन्दर-ही-अन्दर एक अदृश्य खाई खिंच गयी थी।

०

तभी एक ऐसी घटना हुई, जिससे चेतन का संकोच टूट गया और उसने अपनी पत्नी से क्षमा माँग ली और स्वयं उसे मजबूर करके उसकी माँ से मिलाने चल दिया।

०

हुआ यूँ कि जब उसने कृष्णा गली नम्बर-१ में ये कमरे किराये पर लिये थे तो उसमें और भाई साहब में यह तय हुआ था कि चेतन मकान का किराया देगा और क्योंकि भाई साहब के लिए किराये के इकट्ठे रुपये देना मुश्किल है, इसलिए वे रोज़-के-रोज़ सब्ज़ी-तरकारी और राशन की व्यवस्था कर दिया करेंगे और जब तक भाभी रहीं, यही प्रबन्ध रहा था। भाभी के जाने के बाद भी महीना भर यही व्यवस्था चली, लेकिन दो महीने पहले भाई साहब ने कहा कि चेतन तो तेरह रुपये एक बार दे कर महीने भर के लिए छुट्टी पा लेता है और वे थोड़ा-थोड़ा कर के ज़्यादा खर्च कर देते हैं। तब चेतन ने कहा था, 'ठीक है, मकान का किराया आप अपने ज़िम्मे ले लीजिए और घर का खर्च मैं करूँगा।'

और तीन महीने से वह घर खर्च चला रहा था। सामने सड़क पार के बनिये से उसने उधार ला कर महीने भर का राशन घर में डाल दिया और वेतन मिलने पर चुका दिया था। लेकिन भाई साहब ने

मालिक-मकान को सिर्फ़ एक महीना किराया दिया, फिर चुप लगा गये। जब दूसरे महीने भी यही हुआ तो मालिक-मकान ने चेतन को बुला कर कहा कि दो महीने का किराया उनके सिर चढ़ गया है। वे किराया जमा कर दें, वरना मकान छोड़ दें !

शाम को भाई साहब आये तो उसने मालिक-मकान के नोटिस की चर्चा की और किराये के रुपये देने को कहा। भाई साहब ने जेबें झाड़ दीं कि उनके पास कानी कौड़ी भी नहीं। तब चेतन ने कहा कि उन्होंने स्वयं यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली थी, क्यों उन्होंने दो महीने किराये नहीं दिया तो भाई साहब ने कहा कि कुछ बहुत ज़रूरी औज़ार और सामान चाहिए था। जो रुपये दुकान के किराये के बाद बचे, उनकी खरीद में लग गये। औज़ार और ज़रूरी सामान न हो तो वे एक दिन भी काम नहीं कर सकते।

'लेकिन सिर पर छत न होगी तो क्या सड़क पर सोयेंगे।' चेतन चिल्लाया, 'आपको किराया नहीं देना था तो आपने यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर क्यों ली थी ? आप ही को शिकायत थी, वरना मैं तो निहायत बाकायदगी से किराया दे रहा था। अब मेरे पास तो एक भी पैसा नहीं। बनिये का उधार सिर पर है और इसके अलावा मुझे पन्द्रह-बीस रुपये दूसरों के देने हैं। तीस मुझे आज कल में 'वीर भारत' से मिलेंगे, शेष की जुगाड़ के लिए अनुवाद करना पड़ेगा। किराये के खाते में तो मैं एक पैसा भी नहीं दे सकता। और अगर हम आज ही मालिक-मकान को किराया नहीं देते तो हमें यह मकान छोड़ देना पड़ेगा।'

चेतन चिल्लाये जा रहा था, लेकिन भाई साहब चुप बने हुए थे। एक बार अपनी बात कह कर फिर उन्होंने ज़बान भी नहीं खोली। जब चेतन का क्रोध बढ़ता गया और समस्या का कोई समाधान होता दिखायी न दिया तो सहसा चन्दा ने (अपने पति से नहीं, अपने जेठ से) कहा कि वे घबरायें नहीं, रुपये का वह प्रबन्ध कर देती है।

चेतन हठात चुप हो गया था। उसने अपनी पत्नी पर एक तेज़

निगाह डाली थी—यह कहाँ से रुपये दे देगी !—उसने मन-ही-मन सोचा । लेकिन चन्दा अन्दर के कमरे में गयी । दोनों भाई उसकी प्रतीक्षा में चुप खड़े रहे । कुछ क्षण बाद वह एक मैली-सी पोटली लायी और उसे खोल कर उसने भाई साहब के सामने चारपाई पर उलट दिया—अठन्नियाँ, चवन्नियाँ, दुवन्नियाँ, आने, अधन्ने, पैसे—'गिन लीजिए !' उसने कहा, 'मकान के किराये जितने तो होंगे ही ।'

और वह ज़रा पीछे हट कर खड़ी हो गयी ।

भाई साहब सोत्साह गिनने लगे—सवा सत्ताइस रुपये की रेज़गारी निकली, उन्होंने दोबारा गिना । सवा सत्ताइस रुपये । भाई साहब बड़े प्रसन्न हुए; उन्होंने सवा रुपया उठा कर चन्दा के हाथ पर रख दिया और शेष छब्बीस रुपये पोटली में डाल कर चेतन की ओर ऐसे बढ़ाये, जैसे वे अपने पास से दे रहे हों और बोले, 'जाओ, जा कर मालिक-मकान को दे आओ ।'

चेतन ने पोटली ले कर कहा, 'लेकिन ये रुपये तो हमारे हैं । मुझे अभी बनिये का बिल देना है, बाजे वाले को देना है,' और जैसे वह रेज़गारी उसी ने चन्दा को दी हो, उसने पत्नी से कद्रे तीखे स्वर में कहा, 'तुमसे किसने कहा था, यह रेज़गारी यहाँ ला कर उलट दो ।'

चन्दा ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया । अपने पति के कन्धे को स्नेह से छूते हुए उसने सिर्फ़ इतना ही कहा, 'जाइए मालिक-मकान को रुपये दे आइए ।'

'भई मैं रुपये चन्दा को वापस कर दूँगा,' भाई साहब ने बड़ी उदारता से कहा ।

'पहले भी तो आपने गहनों के सिलसिले में दस रुपया महीना देने की बात की थी ।'

भाई साहब ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया ।

'ठीक है, मैं रुपये मालिक-मकान को दे आता हूँ ।' चेतन ने झल्लाये हुए स्वर में कहा था, 'लेकिन कल से आप पहले ही की तरह घर के

ख़र्च का ज़िम्मा लीजिए ! किराया मैं ही दूँगा । घर का ख़र्च भी मैं करूँ और मकान का किराया भी मैं दूँ, यह नहीं हो सकता ।'

और परम उदारता से (प्रकट ही जान छुड़ाते हुए) भाई साहब ने तत्काल उसकी बात मान ली थी ।

चेतन ने अपनी पत्नी को एक साफ़ रूमाल लाने का आदेश दिया था, 'यह पोटली इतनी गन्दी है कि इसमें रुपये ले जाते मुझे शर्म आती है ।' उसने कहा था ।

चन्दा साफ़ रूमाल ले आयी थी । चेतन ने सारी रेज़गारी उसमें डाली थी और जा कर मालिक-मकान को किराया दे आया था ।

भाई साहब अपने कर्तव्य से छुट्टी पा कर कपड़े बदलने चले गये थे ।

रात चेतन जब बिस्तर पर लेटा तो उसे नींद न आयी थी । वह लगातार चन्दा के बारे में सोचने लगा—यह उसके बराबर चारपाई पर लेटी हुई उसकी पत्नी, जिसे वह सीधी-सादी, फूहड़ और गँवार समझता रहा है अन्दर से कितनी गहरी, सभ्य और सुसंस्कृत है ! वह प्रायः उसका बाहर का रूप देखता रहा है । जब-जब उसके अन्तर की झलक उसे मिली है, वह चकित रह गया है ।

उसने चन्दा की ओर देखा । रज़ाई लिये हुए वह चुपचाप आँखें बन्द किये पड़ी थी । सहसा चेतन ने उसे हलके से अपनी ओर खींचा ।

चुपचाप वह उसकी चारपाई पर आ गयी और बिना किसी भूमिका के, चेतन ने उस दिन की ज़्यादती के लिए उससे क्षमा माँग ली ।

'उस दिन बेकार ही मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया था,' उसने कहा, 'तुम रोज़-रोज़ साड़ियाँ कहाँ से बदल सकती हो । दो साल के अर्से में चार धोतियाँ भी तो मैं तुम्हें ला कर नहीं दे सका और जहेज़ की साड़ियाँ कब तक चल सकती हैं । फिर तुम सफ़ाई करो, खाना पकाओ, स्कूल जाओ, कपड़े धोओ—क्या-क्या कर सकती हो !'

'नहीं, आपका ग़ुस्सा ठीक था ।' चन्दा ने कहा, 'मुझे सफ़ाई की आदत ही नहीं । गूजरी ने पाला है, किसी सभ्य पढ़ी-लिखी माँ ने मुझे

भी पाला होता तो मैं सब कुछ सीख जाती।'

चेतन को शक हुआ, उसकी पत्नी उस पर व्यंग्य कर रही है और यूँ उसकी ज़्यादती का बदला चुका रही है। लेकिन नहीं, उसके चेहरे अथवा उसके स्वर में कहीं व्यंग्य का आभास तक न था।

'लेकिन आप घबराइए नहीं,' उसी सरलता से चन्दा ने कहा, 'मैं धीरे-धीरे सब सीख जाऊँगी। आप ठीक कहते हैं। कपड़े भले ही कम हों, पर दूसरे-तीसरे धो कर साफ़ तो रखे ही जा सकते हैं। उस दिन अचानक चातकजी और उस लड़की के आ जाने से आपको ज़रूर बुरा लगा होगा।'

चेतन ने अपनी पत्नी को बाँह में भर लिया। 'नहीं उस दिन मुझे पर बेकार ग़ुस्से का भूत सवार हो गया था। मुझे तुम्हारी मैली धोती पर ग़ुस्सा नहीं था, मैं कौन-सा साफ़ रहता हूँ। हफ़्ता-हफ़्ता वही कमीज़ और तहमद पहने रहता हूँ और मेरी नेकर लगातार पहनने से बे-क्रीज़ कच्छे-जैसी दिखायी देने लगती है। नंगे बदन रहता हूँ, इसलिए कपड़े उतने मैले नहीं होते, पर तुम तो मेरी तरह नंगे बदन नहीं रह सकतीं।' कुछ क्षण रुक कर उसने फिर कहा, 'यह सफ़ाई-अफ़ाई भी सब भरी जेब के चोंचले हैं। आज मेरे पास कहीं वाफ़र रुपया आ जाय तो कल दर्जन भर जोड़े सिल जायें। हफ़्ते-हफ़्ते धोबी आये और हम रोज़ धोबी-धुले साफ़ कपड़े पहनें। ग़ुस्सा असल में मुझे तुम्हारी माँ पर था कि वह क्यों महाराजिन की नौकरी कर रही है, क्यों यहाँ नहीं आ जाती?'

'माँ पुराने ख़याल की है,' चन्दा ने कहा, 'मैंने एक दिन उससे यही कहा था तो वह रोने लगी थी—धीए! मैं तेरा कुझ नहीं कीत्ता, ते की मैं हुण ऐन्नी गयी-गुज़री हो गयी आँ कि तेरे दर ते आके र'वाँ। मेरे हत्थ पैर चलदे ने। रब मेतों एह पाप न करावे![1]—अब आप ही कहिए,

---

१. बच्ची, मैंने तेरा कुछ नहीं किया (याने दिन-त्योहार पर तुझे कुछ दिया-लिया नहीं) और क्या मैं ऐसी गयी-गुज़री हो गयी हूँ कि तेरे दर पर आ कर रहूँ। भगवान मुझसे यह पाप न कराये।

इसके बाद मैं उस पर क्या ज़ोर देती।'

'उसे नहीं बदला जा सकता,' चेतन ने जैसे इतने दिन की अपनी उलझन को सुलझाते हुए वाणी दी, 'उसके लिए हमें ही बदलना होगा। मैं बेकार ही परेशान हूँ कि लोग क्या कहेंगे ? मैंने इतने दिन लगातार इस समस्या पर सोचा है और मैं तुम्हारी माँ के इस हठ का कायल ही नहीं हो गया, बल्कि उसके लिए मेरे मन में श्रद्धा हो आयी है। किसी की दया पर ज़िन्दा रहने से कहीं बेहतर है कि आदमी अपने दो हाथों से मेहनत करे और किसी की धौंस न सहे। हमारे यहाँ तो टट्टू भी शरीकों का नहीं करते, फिर नौकरी या ग़ुलामी की तो बात ही दूर रही।. . .यह हमारी ग़लती है कि हम सेठ वीरभान के यहाँ उससे मिलने नहीं जाते। (ग़लती तो सिर्फ़ चेतन ने की थी, चन्दा को वही रोके हुए था, पर चन्दा ने उसे नहीं टोका) तुम कल ही चलना। हम दोनों उससे मिल कर आयेंगे। मैं इस तथ्य को किसी से छिपाऊँगा भी नहीं। जो कोई इस बात पर नाक-भौं चढ़ायेगा कि मेरी सास कहीं मेहनत-मशक्कत करके दो कौर खाती है, मैं उस साले से कभी बात नहीं करूँगा।'

चन्दा अपने पति से लिपट गयी थी और उसकी आँखों में ख़ुशी के आँसू उमड़ आये थे। वह बेइख़्तयार रोने लगी थी। इतने दिनों का जमाव स्नेह के हलके-से स्पर्श से पिघल कर बह निकला था।

०

मन का बोझ एकदम हलका कर देने वाली पिछली रात की सुखद, करुण स्मृतियों में चेतन गुम था कि वे गोविन्द गली पहुँच गये। उसकी पत्नी ज़रा पीछे रह गयी थी। गली के मुहाने पर वह क्षण भर को रुक गया। लेकिन वह पहले की तरह वहीं रुका नहीं रहा। अपनी पत्नी के साथ-साथ वह आगे बढ़ा। सेठ वीरभान की हवेली के पास पहुँच कर वह कुछ आगे हो गया और डेवढ़ी की सीढ़ियाँ चढ़ कर उसने स्वयं दरवाज़े पर दस्तक दी।

०००

दरवाज़ा खुला तो चेतन का हृदय ज़ोर से धड़क उठा। क्षण भर वह चकित-सा वहीं खड़ा रह गया—डेवढ़ी के अँधेरे को जैसे अपने सौन्दर्य से प्रदीप्त करती हुई, मँझले कद की एक सुन्दर गोरी लड़की दोनों किवाड़ों पर हाथ रखे प्रश्नवाचक चंचल निगाहों से उसकी ओर देख रही थी।

चेतन क्षण भर कुछ भी नहीं कह सका। चुपचाप वह उस लड़की के गोरे मुख और चंचल आँखों की ओर देखता रहा। फिर जब उसकी तीखी नज़र की ताब न ला कर लड़की ने आँखें झुका लीं तो उसने अस्फुट स्वर में कहा कि वह सेठ वीरभानजी के यहाँ रसोई करने वाली महाराजिन से मिलना चाहता है।

लड़की ने अपनी चंचल आँखें उठा कर निमिष भर चेतन को, फिर उसके पीछे सीढ़ियों पर खड़ी चन्दा को देखा; दरवाज़े के किवाड़ पूरे खोल दिये और बिना कुछ पूछे अपने पीछे आने का संकेत करती हुई वह भाग गयी। चेतन ने डेवढ़ी ही में उसकी उत्तेजित आवाज़ सुनी. . .

'माँजी. . .माँजी. . .देखो कौन आये हैं!'

जैसे किसी चुम्बकीय शक्ति से खिंचता हुआ चेतन उस लड़की के पीछे डेवढ़ी पार कर आँगन की चौखट पर जा खड़ा हुआ।

वह उल्लास से, 'माँजी. . .माँजी. . .देखो कौन आये हैं!' चिल्लाती हुई एक-एक के बदले जैसे दो-दो सीढ़ियाँ चढ़ती भागी जा रही थी।

तभी चेतन ने देखा—नीचे बहुत बड़ा आँगन है, जिसकी फ़र्श पर पत्थर की चौकोर सिलें लगी हैं। डेवड़ी की तरफ़ वाली दीवार में बैठक को जाने वाले दो दरवाज़े हैं। आँगन की दायीं ओर भी एक कमरा है, उसके दोनों दरवाज़ों पर ज़हरमोहरे रंग का रोग़न है और आँगन में खुलने वाले वे चारों दरवाज़े बन्द हैं। बायीं ओर परे कोने की सीढ़ियाँ हैं, जहाँ वह लड़की ग़ायब हुई थी। उसका अनुसरण करती हुई चेतन की निगाह ऊपर गयी तो उसने देखा कि वहाँ चारों ओर लकड़ी की रेलिंग और लोहे की सलाखों वाला कमर तक ऊँचा जँगला है। दूसरे क्षण वह लड़की जँगले के कोने पर आ खड़ी हुई और चंचल निगाहों से उसकी ओर देखने लगी। उसके चेहरे पर उल्लास खिला पड़ता था। तभी चेतन की सास ने वहीं जँगले पर से अपनी नीम अन्धी आँखों से उनकी ओर देखा और चेतन ने वहीं से हाथ जोड़ कर उसे प्रणाम किया। उसी क्षण वह लड़की दायीं ओर जँगले से परे किसी को सम्बोधित करती हुई उल्लसित स्वर में बोली कि माँजी के दामाद आये हैं और उत्तर में कुछ संकेत पा कर उसने वहीं से चेतन और उसकी पत्नी से कहा कि वे ऊपर चले आयें। इतना कहने में ही उसका मुख लज्जा से लाल हो आया।

चेतन जैसे स्वप्न-चालित-सा सीढ़ियाँ चढ़ गया। चन्दा भी उसके पीछे गयी। जब वह ऊपर पहुँचा तो उसने देखा, सीढ़ियाँ जँगले के साथ चारों ओर बनी ढाई-तीन फ़ुट की पट्टी पर खुलती हैं, जिस पर लाल सीमेण्ट का फ़र्श है। सीढ़ियों की तरफ़ ही बायीं ओर आगे कोने में रसोई-घर है। वह लड़की रसोई-घर के आगे ही रेलिंग के कोने पर खड़ी है और

चन्दा की माँ भी रसोई-घर ही से उठ कर जँगले पर आ गयी है।

चन्दा वहीं रसोई-घर की चौखट में अपनी माँ के पास जा खड़ी हुई तो उस लड़की ने चेतन को अपने पीछे आने का इशारा किया।

उसके संकेत का अनुसरण करते हुए चेतन ने देखा कि नीचे आँगन की दायीं ओर जो बन्द कमरा था, उसके ऊपर भी एक बड़ा कमरा है। अन्तर यही है कि उसकी तीन दीवारें तो पूरी हैं, केवल आँगन की ओर कोई दीवार नहीं, वहाँ ऊपर छत के नीचे शहतीर पड़ा है और ओसारा-सा बन गया है। इस खुले कमरे का फ़र्श भी चम-चम करते लाल सीमेण्ट का है। उस पर दायीं ओर दीवार के साथ एक बड़ा-सा तख़्त बिछा है। शेष खुली जगह में सरकण्डे के गद्देदार आरामदेह मूढ़े और एक बहुत ख़ूबसूरत पुरानी तर्ज़ की गोल मेज़ रखी है। तख़्त पर ग़ालीचा बिछा है, गोल तकिया लगा है, जिसके सहारे एक लहीम-शहीम, गोरी औरत पसरी हुई है। चेतन को देखते ही वह उठ कर बैठ गयी।

चेतन को वहीं एक मूढ़े पर बैठने के लिए कह कर लड़की गलियारे में भाग गयी और वहीं जँगले के कोने पर जा कर रेलिंग पर कोहनियाँ टिकाये, जा खड़ी हुई और उसे चोर आँखों से देखने लगी।

उस लहीम-शहीम गोरी महिला पर नज़र पड़ते ही चेतन के दिमाग़ में अपने पिता की पुरानी किताबों में से निकले, उर्दू कोक-शास्त्र में छपा हुआ 'हस्तिनी जात की औरत' का चित्र घूम गया। लगभग छै फ़ुट लम्बी मोटी-तगड़ी—चेतन को लगा कि उसके स्कन्ध-मूल के नीचे उसकी बाँह की मोटाई उसकी अपनी जाँघ जितनी होगी—साड़ी के नीचे टख़नों के ऊपर दिखायी देती मोटी-मोटी पिण्डलियाँ, पहाड़-सा वक्ष, दो ठोड़ियाँ, भरे-भरे डबल रोटियों से गाल, मोटे होंट, बेडौल दाँत—गोरे रंग के बाव जूद वह औरत चेतन को ख़ासी कुरूप लगी। ज़रूर पन्द्रह-बीस वर्ष पहले, जब वह ब्याह कर आयी होगी, तो सुन्दर रही होगी, पर ख़ूब खा-खा कर और दिन-दिन भर लेट कर उसने मनों चरबी चढ़ा ली थी। तभी चेतन के दिमाग़ में अपनी सास की वह बात घूम गयी कि पहले बच्चे के मृत

पैदा होने के बाद उसने शरीर छोड़ दिया है।—छोड़ा नहीं—चेतन मन-ही-मन हँसा—उसे धकेल दिया कि वह हर तरफ़ मज़े से बेतरतीब बढ़ जाय।

चेतन ने समझ लिया कि यही सेठानी है। इसलिए ज्योंही वह तख़्त पर उठ कर बैठी, मूढ़े पर बैठने से पहले चेतन ने दोनों हाथ जोड़ कर उसे 'नमस्कार' किया।

'हम तो इतनी बार माँजी से कह-कह कर हार गये कि आपको बुलायें, पर आप आये नहीं।'

और चेतन को लगा कि देखने ही में वह मोटी, भद्दी हथिनी-सी लगती है, उसकी आवाज़ तो बड़ी मीठी है। उस पहले वाक्य की मिठास के साथ ही चेतन के दिमाग़ से कोक-शास्त्र की वह 'हस्तिनी जात की औरत' निकल गयी और उसके स्थान पर एक दयामयी, सम्वेदनशील कदाचित अपने बाँझपन से दुखी और विनम्र सेठानी आ बैठी। यह अजीब बात है कि उत्तर में वह कोई भी झूठी बात न कह सका।

'चन्दा ने तो कई बार कहा,' चेतन बोला, 'अम्मा ने भी ज़ोर दिया, लेकिन मुझे ही संकोच रहा।'

'संकोच काहे का बेटा!' सेठानी ने बड़े आदर और स्नेह-भरे स्वर में कहा, जैसे वह उसी घर का बेटा अथवा दामाद हो, 'तुम समझो यह तुम्हारा ही घर है।'

वहीं से उन्होंने उस लड़की को आवाज़ दी, 'कृष्णा बेटी, चेतनजी के लिए चाय और नाश्ता लाओ।'

'नहीं बीबीजी, चाय-वाय की मुझे आदत नहीं।' चेतन ने अभिभूत स्वर में कहा, 'आप कष्ट न कीजिए!'

'कष्ट काहे का बेटा,' सेठानी उसी मीठे स्वर में बोली, 'हम तो इतने दिन से तुम्हारी बाट देख रहे हैं। कृष्णा इतनी बार माँजी से कह चुकी है, पर माँजी ने कहा कि तुम्हें काम रहता है। रात की ड्यूटी देते हो।'

'हाँ रात की ड्यूटी तो थी,' चेतन को बहाना मिल गया। वह ज़रा हँसा, 'अब कुछ दिन से दिन की ड्यूटी हो गयी है। एक हफ़्तावार अखबार का ऐडीटर हो गया हूँ। तभी पहली फ़ुर्सत में आया हूँ।'

'यह तो बड़ी खुशी की बात है। रात की ड्यूटी में सेहत खराब हो जाती है।' सेठानी ने कहा। फिर क्षण भर रुक कर बोलीं, 'हमने सुना है, तुम कहानियाँ लिखते हो और तुम्हारी कोई किताब भी छपी है। कृष्णा तुम्हारी किताब देखना चाहती थी।'

चेतन यह सुन कर मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ, लेकिन उसने अपने चेहरे पर उस खुशी का कोई आभास नहीं आने दिया। वह हीन-भाव, जो इतने दिनों से उसे बेतरह परेशान हुए था, एकदम हवा हो गया और वहाँ मूढ़े पर बैठे-बैठे अपने कलाकार के सामने वह सेठानी और उसका धन-वैभव उसे नितान्त अकिंचन लगा। हिम-शिखर पर खड़े व्यक्ति को जैसे नीचे घाटी के मुहीब पेड़ भी नन्हें-नन्हें, नगण्य पौधे दिखायी देते हैं,उसी तरह अपने साहित्यकार की ऊँचाई से उसे वह धन और तन—दोनों से मोटी सेठानी बहुत छोटी दिखायी दी और अपना आकार उसकी अपेक्षा उसे कहीं बड़ा महसूस हुआ।

'अभी-अभी मेरी कहानियों का पहला संग्रह छपा है,' चेतन ने बड़ी ऊँचाई से कहा,'उर्दू-हिन्दी के उपन्यास सम्राट मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसकी भूमिका लिखी है। मैं उसकी एक प्रति आपके लिए लाऊँगा।' कुछ क्षण रुक कर उसने इतना और जोड़ा, 'लेकिन आप लोग पढ़ पायेंगे, इसमें मुझे सन्देह है। मैं अभी तक उर्दू में लिखता रहा हूँ। पिछले महीने से मैंने हिन्दी में लिखना शुरू किया है। लेकिन अभी मेरी कोई कहानी हिन्दी में नहीं छपी। छपेगी तो उसे मैं आपको पढ़ाऊँगा।'

'तुम उर्दू की पुस्तक ही दिखाना बेटा,' सेठानी ने कहा, 'कृष्णा उर्दू पढ़ लेती है। वह हमें भी पढ़ कर सुनायेगी।'

कृष्णा-ऐसी सुन्दर पाठिका को प्रशंसिका के रूप में पाने की सम्भावना मात्र से चेतन का हृदय एक अनिर्वचनीय सुख से भरपूर हो उठा और वह

हवेली, जिसमें पाँव तक रखने में चेतन को इतना संकोच हो रहा था, उसे एकदम अपनी-सी महसूस होने लगी । 'मैं अगली बार जाऊँगा तो अपनी पुस्तक की एक प्रति ज़रूर आपके लिए लाऊँगा ।' उसने सोत्साह कहा ।

तभी कृष्णा एक ट्रे में चाय, मठरियाँ और उरद की पिन्नियाँ (छोटे लड्डू) ले आयी और उसे गोल मेज़ पर रख कर और एक चंचल मुस्कराती निगाह चेतन पर डाल कर भाग गयी ।

'अरे चन्दा को भी इधर ही भेज देती ।' सेठानी ने कहा ।

'दीदी माँजी के पास ही चाय पी रही हैं !' कृष्णा ने बड़ी ही लुभावनी मटक के साथ मुड़ कर सेठानी से कहा और एक चंचल दृष्टि चेतन पर भी फेंक दी ।

यद्यपि चेतन को मालूम था तो भी पिन्नी का ज़रा सा टुकड़ा लेते हुए, बात चलाने की ग़रज़ से चेतन ने पूछा, 'कृष्णा आपकी बेटी है ?'

सेठानी ने एक गहरी लम्बी साँस छोड़ी । उत्तर देने में उन्हें क्षण भर की देर लगी । 'मेरी भांजी है, मेरी छोटी बहन की लड़की । पर अब तो यह मेरी ही बेटी है । हमने इसे बाकायदा गोद ले लिया है । सेकेण्ड ईयर में पढ़ती है । बड़ी प्यारी बच्ची है ।'

वे चुप हो गयीं और उदासी का एक सियाह बादल उनके चेहरे पर छा गया ।

अजाने ही चेतन का अपना चेहरा उतर गया । आगे क्या बात करे, वह समझ नहीं पाया, इसलिए चुपचाप एक मठरी खा कर चाय पीता रहा । एक-दो बार पहलू बदलने के बहाने उसने ज़रा-सी पीठ मोड़ कर गलियारे पर क्षणिक निगाह दौड़ायी । कृष्णा जँगले पर बदस्तूर कोहनियाँ टिकाये उधर ही देख रही थी । उससे निगाहें मिलते ही वह मुस्करा कर दूसरी ओर देखने लगती ।

तब सेठानी अपने आप बताने लगीं कि पन्द्रह वर्ष पहले उनके बच्चा हुआ था, लेकिन भगवान को यही स्वीकार था कि वह इस संसार में

एक साँस भी न ले। तब वे जितनी पतली-छरहरी थीं, आज उन्हें देख कर कोई इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता। लेकिन इसके बाद जाने क्या हुआ, शरीर एकदम फूलना शुरू हो गया और आज तो यह हालत है कि उठने-बैठने में भी कठिनाई होती है।

चेतन का हृदय सेठानी के कष्ट से द्रवित हो आया। उसने कहा, 'पर आपने कोई इलाज नहीं कराया ?'

'पूछो, कौन-सा इलाज है, जो नहीं कराया! लेकिन भगवान को शायद इस आँगन को सूना ही रखना था!' (सेठानी भूल गयीं कि उनका आँगन अब सूना नहीं, एक चिड़िया-सी चंचल बाला उसे क्षण-क्षण मुखरित किये है।) 'पन्द्रह वर्ष तक मैंने इलाज-उपचार, जन्त्र-मन्त्र, व्रत-उपवास—सब किये। जब इतनी बड़ी हवेली काटने लगी तो मैंने अपनी बहन से कहा—बहना, तेरा घर सन्तान से भरा-पूरा है, अपनी छोटी कृष्णा मुझे दे दे।—मेरी बहन के तीन लड़के और तीन लड़कियाँ हैं! कृष्णा सबसे छोटी है। सो उसने कृष्णा मुझे दे दी।'

'आपने बहुत अच्छा किया,' चेतन ने उनके उस सुकृत्य के लिए उनका समर्थन करते हुए कहा, 'लड़कियाँ अपने माता-पिता, सगे सम्बन्धियों और सरपरस्तों से जितना प्यार करती हैं, लड़के नहीं करते। कृष्णा बड़ी सीधी-सरल लगती है।'

'मैं तो डरती थी,' सेठानी ने कहा, 'इतनी बड़ी लड़की। मौसी के यहाँ कभी-कभार आना और बात है, हमेशा इतने बड़े घर में रहना दूसरी। लेकिन माँजी आ गयीं और इसका दिल लग गया। इतनी प्यारी बच्ची है, मुझे इतना प्यार देती है कि अपने बच्चे भी क्या देते होंगे।'

और सेठानी ने आँखें भर लीं। सहसा चेतन ने पूछा, 'सेठजी की कोई पत्री नहीं!'

'क्यों, तुम देख लेते हो क्या ?'

'नहीं, भाई साहब कुछ देखा करते हैं। पत्री भी, हाथ भी। और

कभी-कभी तो ऐसी पते की बात बता देते हैं कि आदमी दंग रह जाता है। मैं सोचता था, ज़रा सेठजी की कुण्डली उन्हें दिखाता।'

सेठानी उठीं और गलियारे से हो कर ऊपर वाली बैठक में चली गयीं।

चेतन के बड़े भाई कोई सिद्ध-ज्योतिषी नहीं थे। वे शौकिया ज्योतिष और पामिस्ट्री पढ़ने लगे थे। गर्मियों के दिनों में जब दोपहरें ख़ाली होतीं, वे अपने क्लिनिक में बैठे अपने मित्रों की कुण्डलियाँ देखा करते। . . .चेतन की सास ने एक दिन कहा था—वह भगवान से यही प्रार्थना किया करती है कि सेठानी की गोद भर जाय और उसकी सूनी हवेली बच्चे की किलकारियों से गूँज उठे। सेठानी को देख कर चेतन को नहीं लगता था कि वह अब फिर बच्चा पैदा कर सकती है। उसकी उम्र ज़्यादा नहीं थी। मुश्किल से बत्तीस-पैंतीस की होगी, लेकिन शरीर इतना मुटा गया था कि उसकी कोख में बच्चे के बढ़ने की जगह बची होगी, इसका विश्वास नहीं होता था। लेकिन एक तो बातचीत में अचानक रुकाव आ जाने से चेतन ने यह बात शुरू कर दी थी, दूसरे सेठानी शरीर से भले ही हिडिम्बा लगती हो, पर स्वभाव से वह उसे बड़ी सहृदय और मिलनसार लगी थी और चेतन चाहता था कि उससे आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित हो जाय।

सेठानी के जाते ही चेतन ने ज़रा-सा सिर घुमा कर देखा—कृष्णा उसकी पत्नी से हँस-हँस कर बातें कर रही थी। उसकी सास ने प्रकट ही इस खस्ता हालत में भी अपना महत्व जताने के लिए अपने दामाद की अतिरंजित प्रशंसा कर रखी है—चेतन ने सोचा—इसीलिए पहली बार आने पर ही इस घर में उसे इतना आत्मीय व्यवहार मिला है। प्रकट ही उसकी सास को लाहौर में इससे अच्छा आश्रय नहीं मिल सकता। यदि वह ज़रूरतमन्द है तो ये लोग भी ज़रूरतमन्द हैं।

सेठानी पत्री ले आयीं। चेतन ने उसे कोट की जेब में रख लिया

ग्रौर बोला कि वह भाई साहब को दिखा कर दो-चार दिन में उन्हें बता जायेगा ।

०

उन्हें ग्राये हुए काफ़ी देर हो गयी थी ग्रौर चेतन उठने की सोच ही रहा था कि तभी नीचे दस्तक हुई । कृष्णा इस बीच जा कर ज़रूर डेवढ़ी का दरवाज़ा बन्द कर ग्रायी थी । वह बिजली की गति से भाग गयी । कुछ क्षरण बाद उसके पीछे-पीछे एक गोरी, सुन्दर सम्भ्रान्त महिला ग्रायी । सेठानी ने चेतन को बताया कि वह उसकी छोटी बहन ग्रौर कृष्णा की माँ है ।

वह निकट ग्रायी तो चेतन ने उठ कर कृष्णा की माँ को 'नमस्कार' किया । सेठानी ने ग्रपनी बहन को चेतन का परिचय दिया । कृष्णा की माँ ने हँस कर कहा कि उसने कृष्णा से उसकी बड़ी तारीफ़ सुनी है । भगवान उसे खुश रखे, तरक्की दे ग्रौर उसके ससुर को जल्दी ग्राराम पहुँचाये ।

चेतन को कृष्णा की माँ हँसमुख ग्रौर मिलनसार लगी। वह पतली-छरहरी नहीं थी । दोहरे बदन की थी, पर उसके चेहरे का कट नुकीला ग्रौर सुन्दर था । वह मुस्कराती थी तो फूल खिलाती थी । वह तख्त पर ग्रपनी बहन के पास बैठ गयी ग्रौर वे दोनों बातें करने लगीं तो चेतन उठा । उसने हाथ जोड़ कर इजाज़त चाही ।

'ग्रब के गये महीनों न लगा देना ।' सेठानी ने हँस कर कहा, 'इसे ग्रपना ही घर समझना ग्रौर हफ़्ते में एकाध बार ज़रूर ग्राते रहना ।'

'जी मैं जल्दी ही ग्राऊँगा ।'

एक बार फिर 'नमस्कार' करके चेतन मुड़ा । उसकी पत्नी कृष्णा के साथ जँगले पर खड़ी थी । वहीं से उसने उसे चलने का इशारा किया ।

चन्दा ग्रपनी माँ से गले मिल कर ग्रलग हुई तो ग्रपनी सास को प्रणाम करके चेतन सीढ़ियों की तरफ़ बढ़ा । चन्दा ने वहीं से सेठानी को हाथ जोड़ कर 'नमस्कार' किया ग्रौर ग्रपने पति के पीछे चल दी ।

कोई दूसरा अवसर होता तो वह धड़धड़ाता हुआ सीढ़ियाँ उतर जाता और चन्दा घिसटती हुई उसके पीछे चली जाती, लेकिन कृष्णा की ओर एक दृष्टि डाल, उसने बड़े मुलायम स्वर में अपनी पत्नी को आगे चलने के लिए कहा। वह उसके पीछे-पीछे उतर रहा था तो उसने एक बार पीछे मुड़ कर देखा।

मुस्कराते हुए कृष्णा ने दोनों हाथ माथे पर रख दिये।

०

वापसी पर चेतन बड़ा उत्फुल्ल था। उसने चन्दा से कहा कि ये लोग बड़े भले हैं और उसकी माँ को इससे अच्छा आश्रय सारे लाहौर में कहीं नहीं मिल सकता। उसकी सास कहीं चौके-बर्तन की नौकरी करे, इससे चेतन को परेशानी तो होती है, पर यह नौकरी-जैसी नौकरी नहीं है। इस घर में लोग उसे घर के-से व्यक्ति जैसा आदर-सम्मान देते हैं। चेतन ने सेठानी की बड़ी प्रशंसा की कि उसने उससे नौकरानी के दामाद-का-सा उपेक्षापूर्ण व्यवहार नहीं किया, वरन बराबर का आदर-सम्मान दिया और उसने चन्दा से कहा कि वे हफ़्ते में एकाध बार स्वयं आ कर चन्दा की माँ से मिल जाया करेंगे और उसके पिता की तबियत का हाल-चाल भी पूछ जाया करेंगे।

घर को वापस आते हुए चन्दा ने कृष्णा की खूब तारीफ़ की थी कि बड़ी अच्छी लड़की है, बिल्कुल छोटी बहन का-सा व्यवहार उसने किया, ज़ोर दे कर नाश्ता कराया, चाय पिलायी और लगातार चेतन के बारे में पूछती रही। अपनी एक मुसलमान सहेली से उसने उर्दू पढ़नी भी सीख रखी है। अगली बार आयेंगे तो एक किताब उसके लिए ज़रूर लेते आयेंगे।

०

शाम को जब भाई साहब दुकान से आये तो चेतन ने कहा कि उसके एक ग़रीब दुखी मित्र ने उसे अपनी पत्री दी है, वे ज़रा देख दें।

भाई साहब ने पत्री खोल कर जन्म-कुण्डली देखी। दूसरे क्षण टेढ़ा-

सा मुँह बना कर विश्वास और व्यंग्य से बोले, 'यह किसी ग़रीब की कुण्डली नहीं है। यह किसी बड़े धनाढ्य की कुण्डली है।'

चेतन चुप रहा।

'पहले यह बताओ कि मैं ठीक कह रहा हूँ कि नहीं ?'

चेतन ने स्वीकार में सिर हिला दिया।

'यह व्यक्ति धातु का व्यापार करता है। लोहे का व्यापारी हो सकता है। सोने-चाँदी का व्यापारी हो सकता है। बर्तन-भाँडे की दुकान कर सकता है, पर मामूली व्यापारी नहीं, बड़ा व्यापारी है. . .'

चेतन ने फिर स्वीकार में सिर हिलाया, 'मशहूर सर्राफ़ है।'

'लेकिन यह दुखी ज़रूर हो सकता है। इसके भाग्य में सन्तान का सुख नहीं है। यह किसी को गोद लेगा तो वह भी जाता रहेगा।' और उन्होंने पत्री लौटा दी। 'बाकी बातें ग्रहों की चाल देख कर ही बतायी जा सकती हैं।'

लेकिन चेतन को और कुछ नहीं पूछना था। रात को वह सोया तो उसे नींद नहीं आयी। उसके कानों में भाई साहब के शब्द गूँज गये कि सेठ यदि किसी को गोद लेगा तो वह भी नहीं बचेगा। उसकी आँखों में फूल-सी सुकुमार और पड़कुलिया-सी चंचल उस बाला का चित्र घूम गया। यदि भाई साहब की बात सच हुई तो. . .! चेतन ने उस विचार को बरबस अपने दिमाग़ से झटक दिया। ये ज्योतिषी यों ही बे-पर की उड़ा देते हैं। चेतन की शादी से पहले माँ ने जालन्धर के ज्योतिषी को पत्री दिखायी थी तो उसने कहा था कि यह लड़की बहुत सौभाग्यवती है और चेतन के भाग्य में पत्नी से बड़े लाभ की सम्भावना है. . .चेतन ने व्यंग्य से सिर हिलाया—खूब लाभ हुआ उसे इस पत्नी से. . .लेकिन भाई साहब ने पत्री देखते ही तीन बातें कैसे ठीक बता दीं ? क्या ज्योतिष-विद्या सच है ? क्या ग्रहों का हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है ? यदि सब कुछ पहले से तय है तो 'आदमी कर्मों में स्वतंत्र है,' इस बात का क्या मतलब है ? चेतन का दिमाग़ परेशान हो गया—तभी उसके दिमाग़

में फलादेश के सम्बन्ध में कहीं पढ़ी एक कहानी घूम गयी. . .एक सेठ ने ज्योतिषी से बाकायदा मुहूर्त निकलवा कर एक भव्य भवन बनवाया। ज्योतिषी ने उसके बारे में भविष्यद्वाणी की कि वह भवन बच्चों की किलकारियों से गूँजेगा। सेठ के घर बच्चा नहीं होता था। उसने झट दूसरी शादी की। बच्चा नहीं हुआ। तीसरी शादी की। बच्चा नहीं हुआ। उसने पै-दर-पै सात शादियाँ कीं, पर सन्तान का सुख उसके भाग्य में नहीं था। (सम्भवत: उसके वीर्य में जीवाणु ही नहीं थे।) बहर-हाल, सेठ इसी ग़म में भगवान का प्यारा हो गया। उसकी जायदाद का प्रबन्ध करने वाले ट्रस्ट ने वहाँ एक बाल-भवन खोल दिया और वह सूना भवन बच्चों की किलकारियों से गूँज उठा. . .इस कहानी की याद आ जाने से चेतन मन-ही-मन हँसा। यदि इस कहानी के माध्यम से कोई ज्योतिष-विद्या की सच्चाई सिद्ध करना चाहे तो कर सकता है, पर ऐसी विद्या और उसके फलादेश की चिन्ता करना नितान्त मूर्खता है. . .और उस प्रसंग को दिमाग़ से हटा कर चेतन कृष्णा के बारे में सोचने लगा : जब वह उसकी कहानियाँ पढ़ेगी तो उसकी आँखों में महाराजिन का वह दामाद कितना ऊँचा उठ जायेगा. . .

उस सुखद कल्पना में रमे हुए कब उसे नींद आ गयी, चेतन को पता नहीं चला।

पैंतालीस

लेकिन चेतन का यह सुख-सन्तोष बहुत दिन नहीं रहा। खिली धूप में गिरने वाली बिजली सरीखी एक घटना जैसे उसका वह सुख-संसार नष्ट कर गयी।

०

उस पहली मुलाकात के बाद चेतन सप्ताह में कम-से-कम दो बार, कभी पत्नी के साथ और कभी अकेले, गोविन्द गली जाता रहा। शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि कृष्णा की आदर और श्रद्धा-भरी आँखें उससे चार न हुई हों। यह ठीक है कि इतनी बार वहाँ जाने के बावजूद कृष्णा जँगले के खम्भे से हट कर ज़रा भी उसके निकट नहीं आयी। वहीं से निगाहों की बिजलियाँ गिराती रही। लेकिन उतनी दूर से उसकी चंचल मादक दृष्टि का संस्पर्श चेतन को निहाल कर जाता रहा।

उसने अपना कहानी-संग्रह सेठ वीरभान की भेंट कर दिया था। बाद में जब वह उनके यहाँ गया था तो सेठानी ने कहा था कि उन सब ने मिल कर उसकी कहानियाँ पढ़ी हैं; उन्हें बहुत अच्छी लगी हैं और वह तो उनकी आशा से

कहीं ज्यादा अच्छी कहानियाँ लिखता है। चेतन यह सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ था और उस क्षण वह असुन्दर सेठानी उसे सुन्दर, सदय और सहृदय दिखायी दी थी। अपनी रचना की प्रशंसा सुनने पर किसी नये लेखक का सुख उस नयी माँ के सुख-सरीखा होता है, जो पात्र-कुपात्र से अपने शिशु की प्रशंसा सुनती है और अघाती नहीं। बाद की बात और है। प्रौढ़ लेखक सन्तति-बहुल प्रौढ़ा माँ-ऐसा ही अभ्यस्त और उदासीन हो जाता है। सेठानी की बात सुन कर चेतन प्रकट ही बेहद खुश हुआ।

उस घर में अपनी सास की स्थिति से चेतन ने समझौता कर लिया था। उसे पूरा विश्वास हो गया था कि उसकी सास को उस घर में जो सुख मिल सकता है, वह कहीं और मयस्सर नहीं हो सकता; वह अपने अहं का मारा, बेकार ही अपनी सास और अपनी पत्नी को परेशान कर रहा है। सोचने पर उसे लगा कि उसकी सास का हठ, साहस और निष्ठा तो उन पतिव्रता हिन्दू देवियों की-सी है, जो केवल किस्से-कहानियों में मिलती हैं. . .और वह उसे उस ऊँचाई से खींच कर नीचे खड्ड में गिराना चाहता है! चाहता है कि वह अपने जेठ की गुलामी करे और रोज़-रोज़ का अपमान सहे!

और उसकी सोच दूसरी डगर पर चल निकली थी। यदि उसके दोस्तों अथवा सगे-सम्बन्धियों को इस बात का पता चल जायेगा तो क्या होगा? क्या वे उसे दुत्कार देंगे? जो उसे इस कारण दुत्कारेगा या उससे घृणा करेगा, वह हरगिज़ मित्र अथवा सम्बन्धी कहाने का हकदार नहीं! वह उससे हमेशा के लिए तमाम सम्बन्ध काट लेगा।

और उसने तय किया, इससे पहले कि कोई यह बात जाने, वह स्वयं जा कर सब को इस स्थिति से आगाह कर देगा।

और महीने भर के अन्दर-अन्दर वह अपनी सास की दुख-गाथा अपने आप अपने मित्र-परिचितों को बता आया था।

. . .सबसे पहले उसने पण्डित रत्न की पत्नी को यह बात बतायी थी। वह एक शाम उनके यहाँ गया था। पण्डितजी उसके जाने से पहले

निकल गये थे। बीबीजी अभी खाना पका रही थीं। वह रसोई के सामने पीढ़े पर बैठ गया था। बात-बात में उसने फिर अपने ससुर के पागल होने की बात चलायी थी और कहा था कि उनको ले कर उसका दिमाग़ बेहद परेशान रहा है, क्योंकि उसकी सास लाहौर आ गयी है और एक सेठ के यहाँ रसोई का काम देखने लगी है।. . .चेतन ने सविस्तार बताया था, किस प्रकार उसकी सास अपनी दस उँगलियों की मेहनत से कुछ पैसे पैदा करके बादाम और दूध ले कर पागलख़ाने जाती है; नौकरी नहीं छोड़ती और उसके पास आ कर नहीं रहती।

'शाबाश ए ओस पति दी प्यारी नूँ !' बीबीजी ने कहा था, 'जेहड़ी घर-द्वार छड्ड के परदेस आ गयी ए ते हत्थाँ-पैराँ दी मेहनत करके पति दी सेवा करदी ए। हुए दे ज़माने नूँ ताँ अग्ग लग्गी होई ए। अज्ज कल ऐहो जेहियाँ देवियाँ दीवा लैके ढूंढेयाँ वी नहीं मिलदियाँ।'[1]

. . .कुछ दिन बाद उसने लाला जीवनलाल कपूर को यही बात बतायी थी। उसे दफ़्तर में आते हुए बारह-पन्द्रह दिन हो गये थे। 'भूँचाल' की रीति-नीति क्या होगी, उसमें क्या-क्या छपेगा, इस बारे में उन्होंने चेतन को कुछ भी नहीं बताया था। सिर्फ़ इतना कहा था कि पत्र का साइज़ बीस-तीस-आठ होगा और उसे पहला अंक तैयार करने के लिए छोड़ दिया था। पहला अंक निकल जाय, रजिस्ट्रेशन हो जाय, एल० नम्बर मिल जाय, फिर वे देखेंगे।. . .चेतन ने पत्र के लिए विशेष रूप से एक कविता मौलाना नईम बेग़ चग़ताई से लिखवायी। एक कहानी पत्र के पहले अंक के लिए उसने ख़ुद लिखी थी। वह उसे महाशयजी को सुनाने

---

१. उस पति से प्रेम करने वाली को शाबाश है, जो उसके लिए घर-द्वार छोड़ कर परदेस आ गयी है और हाथ-पैरों की मेहनत से कमा कर अपने पति की सेवा करती है। आज के ज़माने को तो आग लग गयी है। आज कल ऐसी देवियां चिराग़ ले कर ढूंढे भी नहीं मिलतीं।

गया था तो उन्होंने उसे पसन्द किया था और समझाया था कि दो-एक सामाजिक तथा ऐतिहासिक लेख भी दे और सम्भव हो तो किसी महान ऐतिहासिक व्यक्ति का कोई मनोरंजक जीवन-खण्ड भी शामिल कर ले। परचा बाकायदा शुरू हो जाय तो महीने में एक कहानी वह पण्डित रत्न से लिखवा लिया करे, 'अब वो तुम्हारे गुरू हैं।' उन्होंने हँस कर कहा 'परचा निकालने में तुम्हें उनसे लगातार मदद लेनी चाहिए !'. . .और यह परामर्श दे कर उन्होंने उससे कहा कि यदि वह चाहे तो आज उनके साथ भाटी गेट के 'स्टार' में पिक्चर देखने चले। इनकार कर सकने की शक्ति के अभाव में चेतन ने हामी भर दी थी। नयी-नयी नौकरी थी। वह कोई ऐसी बात न करना चाहता था, जिससे शुरू-शुरू ही में उसका इम्प्रेशन बिगड़ जाय अथवा वे नाराज़ हो जायें।

शाम को दफ़्तर के बाद वे अपना वही लम्बा कोट, पतलून और किस्टी टोपी पहने, छड़ी हाथ में लिये, ख़रामाँ-ख़रामाँ चल दिये थे—रास्ते में हरेक से 'नमस्कार' का आदान-प्रदान करते, फब्तियाँ और आवाज़े कसते और ठहाके लगाते—चेतन चुपचाप उनके साथ चलता रहा था।

के० पी० एस० के० हॉल के पास जब भीड़ ज़रा कुछ कम हुई तो वे चेतन की तरफ़ मुड़े और उन्होंने कहा कि दफ़्तर में तो उन्होंने उससे बात नहीं की, पर पिछले दिनों वह उन्हें कुछ परेशान-परेशान लगा है। दो दिन दफ़्तर आ कर चला गया है. . .क्या बात है, क्या काम में उसका मन नहीं लगता ?

तब चेतन को अपनी बात कहने का मौका मिला था। अवसर को उपयुक्त जान, उसने अपने ससुर के पागल होने, उधार ले कर सूट सिलाने, पागलखाने जाने और मना करने के बावजूद एक सेठ के घर अपनी सास के काम करने की बात सविस्तार कह सुनायी थी। 'आपके काम में मैंने हर्ज नहीं होने दिया,' उसने अन्त में कहा था, 'लेकिन यह भी ठीक है कि मेरा दिमाग़ बेहद परेशान रहा है।'

सुन कर महाशयजी ने (चेतन को यह जान कर हैरत भी हुई और

सन्तोष भी) न कोई फूहड़ मज़ाक किया था, न फब्ती कसी थी, बल्कि उसकी सास के हठ की प्रशंसा करते हुए, ससुर की बीमारी और चेतन की परेशानी के सिलसिले में उसे तसल्ली दी थी कि मर्दों के सामने ही ऐसे मुश्किल वक्त आते हैं और मर्द ही उनसे पार पाते हैं। और उन्होंने उससे कहा था कि यदि अब भी उसे किसी का कुछ देना हो तो कल उन्हें दफ़्तर में याद दिलाये, वे उसकी तनख्वाह से उसे कुछ पेशगी दिला देंगे।. . .

. . .दूसरे दिन शाम को चेतन चातकजी के यहाँ गया था। रात का खाना भी उसने वहीं खाया था। खाना खाते वक्त उसने अपने ससुर के पागलपन और अपनी सास के बलिदान की कहानी कही थी और उस दुखद प्रसंग में अपनी स्थिति की नज़ाकत का उल्लेख किया था।

चातकजी सुन कर इतने उत्साहित हो आये कि उन्होंने उसी वक्त घोषणा की थी कि वे इस थीम को ले कर एक महान नाटक का सृजन करेंगे। उन्होंने चेतन से कहा था कि अपने सास-ससुर के जीवन-सम्बन्धी कुछ और ब्योरे वह उन्हें लिखवा दे, ताकि नाटक की इमारत वे यथार्थ की पक्की बुनियादों पर उठा सकें। 'यह इतनी करुण, और इस पर भी सशक्त थीम है कि इस पर कोई भी महान रचना लिखी जा सकती है,' उन्होंने कहा था, 'तुम चाहो तो इस पर एक बहुत बढ़िया कहानी अथवा लघु-उपन्यास लिख सकते हो, पर यदि तुम न लिखो तो अपने सास-ससुर के बारे में कुछ विस्तृत ब्योरे मुझे देना। मैं ऐसा शानदार नाटक लिखूंगा कि लोग दंग रह जायेंगे।' और चेतन का ज्ञान बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, 'दुख और पीड़ा जिन्दगी के अनिवार्य अंग हैं। वे कई बार तन और मन को झँझोड़ और तोड़ जाते हैं। पर कलाकार उसी पीड़ा और दर्द की नींव पर महान रचना की इमारत उठाता है और अपने अथवा अपने सम्बन्धी के दर्द को इस तरह प्रामाणिक और सार्वजनीन बना कर पाठकों के सामने रख देता है कि उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर, वे स्वयं उस दर्द को महसूस करने लगते हैं।'

खाना खा कर वे दोनों कमरे में आ गये थे, लेकिन चातकजी के भाषण-प्रवाह में ज़रा भी रुकाव न आया था। 'अब मेरी दुधमुँही बच्ची मर गयी,' उन्होंने कहा था, 'जाने रोज़ उस-जैसी कितनी कलियाँ काल-कराल के हाथों नोच-खसोट कर फेंक दी जाती हैं, पर सब बच्चियों के पिता तो कलाकार नहीं होते। आम इन्सानों की पीड़ा, बेज़बान जानवर की पीड़ा होती है। अपने दर्द को अभिव्यक्ति देने की शक्ति उनके यहाँ नहीं होती। जबकि मैंने उस नन्हीं-सी दुधमुँही बच्ची में उस महान जादूगरनी की झलक देखी और ऐसा काव्य सृजा, जो वक्त आयेगा कि देश ही में नहीं, विदेश में भी सराहा जायगा। उसे पढ़ कर लोग हैरान होंगे कि उस माया, उस मायाविनी, उस जादूगरनी के अनेकानेक रूप दिखाने वाले उस काव्य को लिखने की प्रेरणा मुझे अपनी दुधमुँही बच्ची से मिली थी।'

चेतन कहना चाहता था कि आप तो निम्मो से कह रहे थे कि उसके कई खण्ड आपने उसे सामने रख कर लिखे हैं, पर वह चुप रहा। कवि धाराप्रवाह बोल रहे थे और चेतन के सामने एक नयी दुनिया खुल रही थी—अपने वैयक्तिक दुख को कहानी-कविता का विषय भी बनाया जा सकता है, यह उसने तब तक न जाना था। वह कल्पना की उड़ानें भर कर, अजाने रूमानी प्रदेशों में बसने वाले अनजाने प्रेमियों के किस्से लिखता था। जालन्धर अथवा लाहौर के परिवेश को ले कर भी यदि वह कोई कहानी लिखता था तो उसके पात्र जालन्धर के नहीं होते थे, वे उसकी कल्पना के संसार में जन्म लेते थे और वहीं से वह उन्हें काग़ज़ पर उतार देता था। चातकजी की बात सुन कर उसे लगा कि उसके पास तो अनुभवों का बेमिसाल खज़ाना है और यदि वह अभिव्यक्ति पर अधिकार पा ले तो अद्वितीय रचनाओं की सृष्टि कर सकता है। वह अपनी दौलत चातकजी को क्यों दे? जब उसके यहाँ ज़िन्दगी के यथार्थ को कला में उतार देने की सामर्थ्य पैदा होगी, वह इन स्रोतों से प्रेरणा और वस्तु प्राप्त करेगा। और यही सोच कर उसने चातकजी से कहा था:

'आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। मैं स्वयं इन अनुभवों को सँजो रहा हूँ। कभी इनको कलम की नोक पर उतारूँगा।'

(मन में उसने कहा—और मैं इस स्थिति पर दुखी था। यह अनुभव मुझे निहायत तकलीफ़देह लगता था, जबकि विधाता इसी के माध्यम से मुझे बड़ा लेखक बनाना चाहता है। और चेतन ने हितोपदेश के श्लोक की पंक्ति मन-ही-मन दोहरायी—यथा विधाता वर्धीयते तदैव शुभाय और उसे दोहराते हुए उसने 'मेरे लिए' उसमें जोड़ दिया—यथा विधाता वर्धीयते तदैव मह्यम शुभाय!)

. . .चेतन को उस स्थिति के सिलसिले में सबसे ज़्यादा भय मौसी रामरक्खी, कमला और जमुना की ओर से था। मौसी रामरक्खी उसकी माँ की सहेली और कहीं दूर के रिश्ते में बहन लगती थीं और लाहौर में उनका अस्तित्व चेतन के लिए सगे-सम्बन्धी जैसा था। चेतन के सामने जब-जब उसकी सास की स्थिति आती थी, वह इसी बात से डरता था कि जब मौसी को पता चलेगा तो वे उसके बारे में क्या सोचेंगी? या कमला की नज़रों में चन्दा की क्या वकअ़त रह जायेगी अथवा जमुना की निगाहों में क्या वह गिर न जायेगा? लेकिन दुनिया की परवाह न करने और मित्र-शत्रुओं को उस स्थिति की कसौटी पर कसने का जो फ़ैसला उसने किया था, उसके जोश में उसने तय किया कि मौसी रामरक्खी, उनकी लड़की कमला और उनकी भांजी जमुना को भी वह अपनी सास की विपद-कहानी स्वयं ही सुना देगा। उसने महाशय जीवनलाल से दो फ्री पास लिये और एक इतवार मौसी के घर की ओर चल पड़ा।

जब से चेतन 'भूँचाल' का सम्पादक नियुक्त हुआ था, वह सिर्फ़ एक बार ही महाशय जीवनलाल के साथ पिक्चर देखने गया था। उसका अनुभव सुखद नहीं था। बाहर ठण्डक के बावजूद अन्दर हॉल में बड़ी उमस और बू थी। महाशयजी यद्यपि गैलरी में बैठे थे, लेकिन पिक्चर देखने की ओर उनका ज़रा भी ध्यान नहीं था। दो-तीन बार सिनेमा

का मैनेजर आया था और न जाने किस बात पर उससे ज़ोर-ज़ोर की बहस होती रही थी। फिर एक टखियाई-सी दिखायी देने वाली औरत पाउडर और सुर्ख़ी से लिपी-पुती मैनेजर-समेत उनके साथ सोफ़े पर जा बैठी थी। चेतन दूसरे सोफ़े पर चला गया था और महाशयजी उसके साथ मज़ाक करते रहे थे। इतनी ही ग़नीमत थी कि चेतन से उन्होंने कोई मज़ाक नहीं किया था, लेकिन कुल मिला कर उसे बड़ी कोफ़्त हुई थी और उसने तय किया था कि वह फिर कभी उनके साथ पिक्चर देखने नहीं जायेगा।

लेकिन मौसी रामरक्खी के यहाँ जाने से पहले उसने नयी फ़िल्म के दो पास उनसे माँग लिये थे। बिना किसी बहाने वहाँ जाना उसे अजीब लगा था।

दरवाज़ा जमुना ही ने खोला, नीची निगाहें किये, उसने 'नमस्कार' किया और आगे-आगे चली गयी। आँगन में अभी धूप थी। शायद कमला और जमुना वहाँ बैठी थीं, क्योंकि जब चेतन पहुँचा तो केवल कमला बैठी हुई थी। उसने उठ कर चेतन को 'नमस्कार' किया और माँ को आवाज़ दी। चेतन बैठ गया तो मौसी आ गयीं। उन्होंने शिकायत की कि इतने दिन से उसने सूरत नहीं दिखायी और वे उसके बराबर की कुर्सी पर आ बैठीं।

चेतन ने बड़े उदास और चिन्ता-भरे स्वर में अपने ससुर के पागल होने का वृत्तान्त कह सुनाया था। उनके बड़े भाई की निर्ममता (यद्यपि चेतन को उसका विश्वास नहीं था) और अपनी सास की कर्मठता तथा त्याग का वर्णन उसने कुछ अतिरंजित स्वर में किया था, और यह देख कर वह चकित रह गया था कि उसकी बातें सुनते हुए मौसी रामरक्खी की आँखें भर आयी थीं। उसने यह भी देखा था कि उसकी बातें सुनते हुए जमुना की आँखों में कुछ ऐसा भाव आ गया है, जैसे इस दुखद प्रसंग का शिकार होने से चेतन औसत युवकों से कुछ अलग व्यक्ति हो गया है। उसकी आँखों में चेतन के प्रति जो सहानुभूति थी, उसमें कुछ

अजीब तरह का आदर-भाव आ गया था।

मौसी रामरक्खी ने आँखें पोंछ कर ज़माने के कठकरेजपन पर दुख प्रकट किया था, उसकी सास की तारीफ़ की थी और चेतन से कहा था कि उसे किसी तरह की ज़रूरत हो तो वह संकोच न करे और उस घर को अपना ही समझे।

कमला को केवल चन्दा का ख़याल आया था। 'कई दिन से मैं देख रही थी,' उसने कहा, 'कि भाभी चुप-चुप रहती हैं। कभी हँसती-हँसाती नहीं। मैं हैरान थी कि क्या बात है। अपने पिता की तकलीफ़ से उनका मन कितना दुखी होगा, पर एक बार भी उन्होंने अपने दुख का साझी-दार मुझे नहीं बनाया।'

चेतन ने कमला से अनुरोध किया था कि वह चन्दा से इस प्रसंग का ज़िक्र न करे और कहा था कि वह एक शाम उसे लायेगा ताकि उसका मन ज़रा बहल जाय और वह अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ती न रहे।

उठने से पहले उसने यह भी बताया था कि वह एक साप्ताहिक का सम्पादक हो गया है, उसे फ़िल्मों के पास मिलने लगे हैं और वह उनके लिए नयी फ़िल्म के दो पास लाया है। उसने दोनों पास कमला को दिये थे, फिर आने और चन्दा को साथ लाने का वादा करके वह उठ आया था।

०

इस तरह अपने तमाम मित्र-परिचितों को अपनी उस ट्रैजिडी से आगाह करके चेतन सहज हो गया था।

सेठ वीरभान की पत्री वह दूसरी बार ही वापस लेता गया था। सेठानी को पत्री लौटाते हुए उसने कहा था कि उन्हें कृष्णा को पा कर ही सन्तोष करना चाहिए और उसके स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि उनके सन्तान-सुख पर कुछ ग्रहों की टेढ़ी नज़र है।

सेठानी शायद कुछ और प्रश्न करतीं, पर उसने प्रसंग बदल दिया था और अपने उस संकोच का ज़िक्र किया था, जो उसे वहाँ आने में था।

लेकिन पहली बार वहाँ आने पर ही सेठानी के व्यवहार ने जैसे उसका वह संकोच दूर कर दिया, उसकी चेतन ने बड़ी प्रशंसा की। सेठानी खुश हो गयीं और उनका ध्यान बँट गया।

इसके बाद वह हफ़्ते में दो बार सपत्नीक अथवा अकेला वहाँ जाता रहा था; अपने सास-ससुर का हाल-चाल लेता रहा था; सेठानी के घर-द्वार की बातें करता रहा था; आदर और श्रद्धा-भरी कृष्णा की निगाहों का संस्पर्श पाता रहा था और यद्यपि वह उस स्थिति से पूर्णतः प्रसन्न नहीं था, पर उसने मन में उससे समझौता कर लिया था। क्योंकि उसका मानसिक तनाव खत्म हो गया था, काम में उसका मन लगने लगा था और वह सन्तुष्ट था।

०

लेकिन तभी वह घटना घटी और चेतन ने पाया कि वह उसी स्थिति में है, जहाँ से चला था, बल्कि उससे भी कहीं ज़्यादा कष्टकर स्थिति में है और उससे निकलने का वैसा कोई आसान रास्ता भी नहीं है।

०

उस शाम दफ़्तर से वह कुछ पहले ही आ गया था और अकेला ही अपनी सास से मिलने गया था। हवेली पर जा कर उसने दस्तक दी तो दरवाज़ा खुलने में कुछ देर हुई और जब दरवाज़ा खुला तो डेवढ़ी में कृष्णा नहीं, उसकी सास खड़ी थी। चूंकि उसे ज़्यादा दिखायी नहीं देता था और सीढ़ियाँ उतरने-चढ़ने में तकलीफ़ होती थी, इसलिए प्रायः कृष्णा ही दरवाज़ा खोलती थी। पर उस शाम कृष्णा कहीं भी दिखायी न दी—न आँगन में, न ऊपर जँगले पर और न किसी कमरे से ही उसकी आवाज़ चेतन को सुनायी दी।

'कृष्णा नहीं है?' सहसा डेवढ़ी में दाखिल होते हुए उसने सास से पूछा।

'उसकी सगाई हो गयी है,' उसकी सास ने कहा, 'ऊपर लड़का आया हुआ है। चलो तुम ऊपर। सेठानी को बधाई दे देना।'

चेतन का हृदय धक् से रह गया। उसने मन-ही-मन सेठानी को बधाई देने के सिलसिले में कुछ वाक्य तैयार कर लिये और भारी कदमों से ऊपर पहुँचा। जँगला पार कर उस ओसारे-नुमा कमरे में पैर रखते ही उसने देखा, सेठानी तख़्त के बदले सरकण्डे के मूढ़े पर दोनों हाथ गोद में लिये, बड़े विनम्र भाव से बैठी है और तख़्त पर उसकी जगह एक युवक पसरा हुआ है। चेतन को आते देख कर वह कोहनियों के बलो ज़रा-सा उठा. . .

अमीचन्द !. . .चेतन के अन्दर कोई ज़ोर से चीखा और एक तेज़ छुरा जैसे उसके दिल में दूर तक उतरता चला गया। क्षण भर के लिए उसका एक पैर जँगले पर और एक कमरे में रुका रह गया और उस एक क्षण में शिमला की वह घटना उसके दिमाग़ में कौंध गयी, जब अमीचन्द को स्कैण्डल पॉयण्ट की रेलिंग पर कोहनी टिकाये देख कर, उसने नीचे माल ही से पुकारा था—'अरे अमीचन्द तुम कहाँ !' और यह कहता हुआ वह सोल्लास उसकी ओर लपका था।

तब एक सुदूर मुस्कान के साथ अमीचन्द ने चेतन की ओर देखा था और जैसे उतनी ही दूर से बोला था, 'कहो तुम कहाँ ?' और फिर यह देख कर कि चेतन ने हाथ बढ़ा दिया है, उसने भी उदासीनता से हाथ बढ़ा दिया था।

उत्तर देने के बदले चेतन ने पूछा था, 'तुम यहाँ कैसे ? किताबों की सैर से मिल गयी तुम्हें शिमला देखने की फ़ुर्सत।'

उतनी ही दूर से अमीचन्द ने बताया था कि वह ज़रा डिप्टी कलेक्टरी के इम्तहान में बैठने आया है।

'साला डिप्टी कलेक्टरी का'—चेतन ने मन-ही-मन कहा था—'और कोई रह जो नहीं गया था डिप्टी कलेक्टर बनने के लिए'—लेकिन प्रकट उसने यही कहा था, 'तो भाई डिप्टी कलेक्टर हो कर हम ग़रीबों को न भूल जाना।'

तभी अमीचन्द के एक मित्र ने नीचे से पुकारा था और उसने न

चेतन की बात का उत्तर दिया था, न यों अचानक चल देने के लिए क्षमा माँगी थी। उसकी वह सुदूर मुस्कान कुछ और फैली थी और चेतन के हाथ को ज़रा-सा हिला कर वह चला गया था. . .

'तो अमीचन्द कृष्णा का होने वाला दूल्हा है,' चेतन ने मन-ही-मन कहा, 'अमीचन्द—जो डिप्टी कलेक्टर होते ही, न केवल खुद बौरा गया था, बल्कि जिसके घर वाले भी बौरा गये थे।'

और वहीं खड़े-खड़े युगों-ऐसे उस एक क्षण में चेतन के सामने कुछ ही महीने पहले की घटना घूम गयी थी, जब वह नीला के दुख से दुखी, बाहर जाने के लिए अपने मकान से उतरा था और उसे जगदीश नक्शा-नवीस मिल गया था, जो अमीचन्द को डिप्टी कलेक्टर होने के सिलसिले में बधाई देने जा रहा था। तभी भुवाड़े से सफ़ेद पैण्ट-कमीज़ में अमीचन्द आता दिखायी दिया था और दीसा (जगदीश) चेतन को छोड़ कर उसकी ओर लपका था और उसने बाछें खिलाते हुए कहा था, 'भराजी नमस्ते। बधाई हो।'

बिना उसकी ओर देखे, ज़रा-सा होंट हिला कर अमीचन्द ने दीसा की 'नमस्ते' का जवाब दिया था और बिना रुके उसके पास से निकल गया था।

उसी शाम अमीचन्द के भाई अमीरचन्द ने तेलू झमान के घर जा बैठने वाली खत्रानी भागवन्ती को पीट दिया था और मुहल्ले में कोहराम मच गया था. . . 'यह साला तो डिप्टी बनने से पहले ही डिप्टी हो गया था,' चेतन ने मन-ही-मन कहा. . .

वहीं जँगले के गलियारे में वह न जाने कितनी देर खड़ा अपने ध्यान में गुम रहता, पर दूसरे ही क्षण सेठानी ने उसे पुकारा, 'आओ बेटा आओ। इनसे कृष्णा की सगाई की है। तुम्हारे तो साथ ही पढ़ते रहे हैं। पहचानते हो न इनको ?'

खोखली-सी हँसी हँसता और उससे भी खोखले स्वर में, 'क्यों नहीं, क्यों नहीं !' कहता हुआ चेतन आगे बढ़ा। और उसने होने वाली सास

ग्रौर भावी दामाद दोनों को बधाई दी ।

ग्रमीचन्द ने वैसे ही पसरे हुए, महज़ बायीं कोहनी के बल हो कर, दायाँ हाथ ज़रा-सा उसकी ग्रोर बढ़ा दिया ।

चेतन उससे हाथ मिलाता हुग्रा बेतकल्लुफ़ी से तख़्त पर ही बैठ गया, जिसकी वजह से ग्रमीचन्द पसरे-पसरे ही ज़रा परे खिसक गया ।

'कब की तय की है शादी ?' चेतन ने बैठते ही सेठानी से पूछा।

'हम तो जल्दी चाहते हैं, पर ये मानते ही नहीं । ठाका[1] दे दिया है । ये चाहते हैं कि कृष्णा बी० ए० कर ले तब शादी करेंगे ।'

'पर इसमें तो दो-तीन साल लग जायेंगे।'

'मुझे एक डिपार्टमेण्टल इम्तहान देना है।' जवाब ग्रमीचन्द ने दिया था। 'तैयारी करनी होगी । पास हो जाऊँगा तो देर-सबेर डिप्टी कमिश्नर हो जाऊँगा, वरना सारी उमर डिप्टी कलेक्टरी करते ख़त्म हो जायेगी ।'

'वो तो है।' चेतन ने कहा । उसे हैरत थी कि ग्रमीचन्द ने इतनी बात भी कैसे कर ली । शायद हीन-भाव का जो एहसास उसे तुनक-मिज़ाज बनाये हुए था, ग्रौर जिसकी पूर्ति वह ग्रपने हमजोलियों ग्रौर मुहल्ला-वासियों पर रौब जमा कर किया करता था, ग्रब पद-प्रतिष्ठा पा कर कम हो गया था। ऊँचे ग्रोहदे पर पहुँच कर नीचे वालों के प्रति शायद वह सहृदय हो ग्राया था ।

'फिर कृष्णा की उमर भी कम है।' ग्रमीचन्द ने कहा था ।

'हाँ चौदह-पन्द्रह की होगी।' ग्रौर चेतन सेठानी की तरफ़ मुड़ा था 'क्यों बीबी जी ?'

'नहीं, सोलह की है।'

'लगती तो चौदह-पन्द्रह की है।' चेतन ने मत दिया था। 'दो-तीन वर्ष रुकने में कोई हर्ज नहीं । वह भी बी० ए० कर लेगी, ग्रमीचन्द भी

---

१. तिलक से पहले लड़का रोकने के लिए कुछ शगुन । वरेच्छा ।

इम्तहान दे लेगा। डिप्टी कमिश्नर की बीवी के लिए (अजाने चेतन ने उसे तभी डिप्टी कमिश्नर बना दिया) कम-से-कम बी० ए० तो होना ज़रूरी है। बराबर के अफ़सरों से मिलना-जुलना और पार्टियों में आना-जाना रहता है। बी० ए० तो उसे होना ही चाहिए।'

और वह उठा।

'बैठो बेटा अभी कुछ देर,' सेठानी ने कहा था, 'अभी आये और चल दिये।'

'बस आपके दर्शन करने और माँजी का हाल-चाल लेने आया था।' चेतन ने कहा, 'अब चलूँगा।' और वह अमीचन्द की ओर मुड़ा था।

'अच्छा भाई अमीचन्द चल दिये!' उसने हाथ बढ़ाया, 'फिर मेरी बधाई लो।'

अमीचन्द ने उससे हाथ मिलाया और उसके हाथ को हाथ में लिये हुए ही, उसके सहारे उठा।

'तुम बैठो, बैठो।' चेतन ने हाथ छुड़ाने का प्रयास करते हुए कहा।

'नहीं, नीचे तक चलते हैं।'

'इस साले को पता चल गया है कि मेरी सास यहाँ रसोई में काम करती है और इसे डर है कि हम भैंगी न मार दें।' चेतन ने सोचा, 'या हो सकता है, यह साला उदारता ही दिखा रहा हो।' लेकिन वह बोला कुछ नहीं। उसने बीबीजी को 'नमस्कार' किय। और अमीचन्द के साथ नीचे को चल दिया। उसकी सास किचन के दरवाज़े में खड़ी थी। उसने बिना रुके कहा, 'अच्छा माँजी प्रणाम, फिर आऊँगा।

और वह अमीचन्द के आगे-आगे सीढ़ियाँ उतर गया।

•

डेवढ़ी के बाहर दहलीज़ के बायीं ओर लाल सीमेण्ट के चबूतरे का सहारा लिये, अमीचन्द कुछ क्षण खड़ा रहा। उसने चेतन और उसकी पत्नी का, उसके माता-पिता और भाइयों का हाल-चाल जाना और फिर उसकी नौकरी और लिखने-पढ़ने के बारे में प्रश्न किया।

चेतन ने बताया कि वह साप्ताहिक 'भूँचाल' का सम्पादक हो गया है; उसकी कहानियों का पहला संग्रह छप गया है और हिन्दी-उर्दू के कथा-सम्राट मुन्शी चन्द्रशेखर ने उसकी भूमिका लिखी है और वह एक प्रति उसके लिए वहीं दे जायेगा। उसने यह भी बताया कि अब वह हिन्दी में लिखने लगा है और शीघ्र ही उसकी रचनाएँ सारे हिन्दुस्तान में छपने लगेंगी।

यह सब बताते हुए जैसे वह अमीचन्द से कद में कहीं ऊँचा उठ गया और जैसे उसी ऊँचाई से उसके हाथ को झटका दे कर और फिर कभी उससे वहीं मिलने की आशा करता हुआ, वह सीढ़ियाँ उतर गया और बिना एक बार भी पीछे को देखे, तेज़-तेज़ गली पार कर आया।

छियालीस

गली पार करते ही चेतन की चाल धीमी हो गयी। उसके पाँव जैसे मन-मन भर के हो गये। उसका कद, जो क्षण भर पहले आसमानों को छूने लगा था, पिद्दी-ऐसा हो आया और उसके दिमाग़ में रुका हुआ बवण्डर दिशा-ज्ञान खो कर भटकने लगा।

यह ठीक है कि अमीचन्द ने उससे प्रकट आत्मीयता से बात की थी; वह उसे नीचे तक छोड़ने भी चला आया था; और इस बात की आशा—उस अमीचन्द से, जिसे वह लड़कपन से जानता था—चेतन को हरगिज़ नहीं थी। लेकिन चेतन के मन में कहीं सन्देह था कि अमीचन्द ने उदारता दिखा कर उसे हेय बनाना चाहा है और गोविन्द गली पार करते ही यह बात उसके दिल में बेतरह टीसने लगी।. . .क्षण भर के लिए चेतन के मन में ख़याल आया था कि उसकी उदारता के पीछे यह डर न हो कि चेतन या उसकी सास इस मामले में भँगी मार देंगे। लेकिन सोचने पर उसे लगा कि यह बात नहीं। वह आज डिप्टी-कलेक्टर है और कल डिप्टी कमिश्नर हो सकता है। ऐसे

अफ़सर-युवकों से अपनी लड़कियों का रिश्ता करने वाले ग़रज़मन्द लोग पड़ोसियों या शरीकों की भैंगियों का ख़याल नहीं करते। वे उनके लिए तैयार होते हैं।. . .नहीं, अमीचन्द अपना बड़प्पन ही दिखाना चाहता था। तख्त पर चेतन के आ कर बैठने के बाद भी वह उठ कर न बैठा था, बदस्तूर पसरा रहा था और जब वह उसे नीचे तक भी छोड़ने आया था तो उससे बातें करते हुए वह इधर-उधर देखता रहा था और एक बार भी उसने आत्मीय की तरह उससे आँखें नहीं मिलायी थीं. . .

. . .और चेतन को अपने आप पर क्रोध आने लगा—क्यों वह तख्त पर बैठ कर लपर-लपर बतियाने लगा ? क्यों नहीं वह तत्काल उठ आया ? जिस तरह अमीचन्द ने पहले शिमले में और फिर कुछ ही महीने बाद जालन्धर में उसकी ओर देखना भी स्वीकार न किया था, क्या वह स्वयं भी उसी तरह निहायत रुखाई के साथ, बिना उससे हाथ मिलाये, बिना उसे बधाई दिये, गलियारे ही से लौट न आ सकता था ?

. . .और कल्पना-ही-कल्पना में चेतन ने देखा कि वह सेठ वीरभान की हवेली में जाता है; ऊपर ओसारे में अमीचन्द को पसरे हुए देखता है तो वह उसका कोई नोटिस नहीं लेता। सेठानी को 'नमस्कार' करता है और इससे पहले कि वे उसे बैठने के लिए कहें और कृष्णा की सगाई की सूचना दें, उल्टे पाँव लौट आता है। सेठानी बुलाती है तो गलियारे ही से यह कह कर कि वह माँजी से ज़रूरी बात पूछने आया था, उसे जल्दी है, फिर आयेगा, वह चला आता है।

. . .फिर उसने देखा कि वह फ़ौरन नहीं पलटता। तख्त पर नहीं, वहीं सेठानी के सामने दूसरी कुर्सी पर जा बैठता है। कृष्णा की सगाई के बारे में उनकी बातें सुनता है। उन्हें बधाई देता है। लेकिन न अमीचन्द की ओर देखता है, न हाथ मिलाता है, न बात करता है, बस उठ कर वापस आ जाता है।

. . .फिर उसने देखा कि अमीचन्द के पसरे होने की चिन्ता नहीं करता। उसके बढ़े हुए हाथ को दो उँगलियों से छूते हुए वह निहायत

दबंगई से उसे कोहनी से ज़रा परे ठेल तख्त पर जा बैठता है। जब वह सेठानी से बात करता है और अमीचन्द बीच में सफ़ाई देने लगता है तो वह बिना उसकी ओर देखे या उससे हाथ मिलाये अथवा उसे अपना बड़प्पन या उदारता दिखाने का अवसर दिये, उठ कर चला आता है. . .

लेकिन कल्पना में चाहे वह अब उस दृश्य को किसी तरह भी देखे, वह अपनी कमज़ोरी तो प्रकट कर ही आया था। घटना के बाद शहज़ोरी की कल्पना कमज़ोरी ही का दूसरा नाम है। सिवा अपना खून ज़लाने के ऐसी कल्पनाओं से कुछ नहीं बनता।

कल्पना के इस कष्ट-प्रद विलास से जब वह चौंका तो चेतन ग्वाल-मण्डी की सड़क पर पहुँच गया था। यद्यपि शाम हो गयी थी और बत्तियाँ जल गयी थीं, लेकिन घर जाने को उसका ज़रा भी जी नहीं हुआ। चेम्बरलेन रोड से हो कर वह निस्बत रोड की तरफ़ निकल गया।

दिन को यद्यपि धूप की तेज़ी के कारण उतनी सर्दी न थी, लेकिन शाम काफ़ी खुनक हो गयी थी। चेतन तहमद-कमीज़ के ऊपर लोई अथवा पुराना ओवरकोट पहनने के बदले, वही नया ठण्डा सूट पहने था, जो उसने पागलखाने के डॉक्टर से मुलाकात की ग़रज़ से सिलवाया था। तीखी ठण्डी हवा चलने लगी थी, लेकिन चेतन को सर्दी की परवाह नहीं थी। उसके दिमाग़ में जैसे लावा खौल रहा था। कालर ऊँचे किये, सीने को ठण्डी हवा से बचाये, दोनों हाथ जेबों में डाले, आगे को ज़रा झुका हुआ, वह ध्यान-मग्न चला जा रहा था।. . .वह क्या करे ?. . . कैसे इस नयी स्थिति से पार पाये ?. . .बार-बार यही प्रश्न उसके मन में उठ रहा था और उसका कोई हल उसे सूझ न पा रहा था. . . अमीचन्द की सगाई वहीं हुई है, जहाँ चेतन की सास महाराजिन का काम करती है। अमीचन्द की वह ठिगनी, नाटी, निहायत विद्वेष-भरी माँ वहाँ आयेगी, उसका बड़ा भाई अमीरचन्द आयेगा, उन्हें इस स्थिति

का पता चलेगा। वे लोग मुहल्ले में घर-घर यह बात बताते घूमेंगे। तब चेतन के माता-पिता को कैसा लगेगा ?. . .कृष्णा की शादी होगी। चेतन की सास उसमें महाराजिन के कर्तव्य निभायेगी। वह इस स्थिति को कैसे सहन कर पायेगा ?. . .चन्दा वहाँ किस हैसियत से जायेगी ?—महाराजिन की बेटी की हैसियत ही से ना ! सेठानी शादी की खुशी में उसे कोई सस्ती-सी साड़ी और रुपया-दो रुपया नेग देना चाहेगी—वह कैसे यह स्वीकार कर पायेगा ?. . .काश उसकी सास सेठानी के यहाँ काम छोड़ सकती। . .लेकिन चेतन इस एक महीने ही में देख चुका था कि वह उस घर में बड़ी प्रसन्न और सन्तुष्ट है। अपने अहं की तुष्टि के लिए अपनी सास को मुसीबत में डालना, उसे किसी दूसरे घर नौकरी करने के लिए मजबूर करना—फिर वही स्थायी तनाव की स्थिति पैदा करना—अब चेतन के लिए असम्भव था।. . .वह चन्दा का वहाँ जाना मना कर सकता था। वह चन्दा को आदेश दे सकता था कि जब कृष्णा की शादी हो, वह न जाय। लेकिन उससे चेतन की तकलीफ़ किसी तरह भी कम न हो सकती थी। कृष्णा की शादी उसके किसी साधारण मित्र अथवा परिचित से नहीं, उसके सहपाठी, मुहल्लावासी और प्रतिद्वन्द्वी से होने वाली थी, जिसकी स्नॉबरी के कारण वह उससे बेहद नफ़रत करता था।

. . .चेतन कृष्णा की आँखों में एक महत्वपूर्ण लेखक था—दुख-दर्द-भरी रूमानी कहानियों का सर्जक—लेकिन कृष्णा का विवाह तो एक डिप्टी कलेक्टर से होने जा रहा है, जो अव्वल दर्जे का रट्टू और मेहनती है; निश्चय ही वह सारी विभागीय परीक्षाएँ पास कर लेगा—कृष्णा का पति ज़िले का हाकिम होगा और चेतन—एक मामूली साप्ताहिक का महज़ चालीस रुपये महीने पाने वाला टुटपुंजिया सम्पादक !. . . चन्दा भले ही उस घर में अपनी माँ से मिलने जाती रहे, पर चेतन के लिए अब वहाँ पाँव भी रखना मुहाल था—वह कैसे पुराने विश्वास के साथ उसके यहाँ जा सकेगा ? कैसे उससे आँखें मिला सकेगा ?. . .

तभी सहसा चेतन के मन में साध उठी—काश वह डिप्टी कलेक्टरी के कम्पटीशन में बैठ सकता ! लेकिन उसकी उम्र ज़्यादा हो गयी थी। उम्र ज़्यादा न भी हो, वह गणित और विज्ञान में कमज़ोर था और नम्बर तो यही विषय ज़्यादा दिलाते थे। चेतन ने एक लम्बी साँस ली। काश उसकी उम्र ज़्यादा न होती ! काश उसका गणित कमज़ोर न होता ! तब वह निश्चय ही कम्पटीशन में बैठता !. . .लेकिन वह तो चौबीस साल का होने को आया है।. . .जिनके पिता अपने लड़कों को कम्पटीशनों में बैठाना चाहते हैं, वे शुरू ही से उनकी उम्र दो-एक वर्ष कम लिखवाते हैं। दो-दो पत्रियाँ बनवाते हैं। शुरू ही से उनके मन में कम्पटीशनों में सफल होने की आकांक्षा भरते हैं। सत्रह-अठारह साल में वे लड़के बी० ए० कर लेते हैं और चौबीस की उम्र तक पहुँचते-न-पहुँचते पी० सी० एस०, आई० सी० एस० हो जाते हैं। उनके पिता ने तो सिवा यह चाहने के कि उनके लड़के महान बनें और कुछ नहीं किया। उनकी शिक्षा-दीक्षा की कोई चिन्ता नहीं की। घाते में जब अवसर मिला, बेरहमी से मारा-पीटा। बस एक गुरु मन्त्र दिया कि जो एक माई के लाल ने किया है, दूसरी माँ का बेटा भी कर सकता है—आदमी कोई भी काम अपनाये, उसे कमाल तक पहुँचा दे तो अपने आप लोकप्रिय हो जाता है। और यह गुरु मन्त्र दे कर वे अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पा गये। लेकिन वह इस गुरु मन्त्र का क्या करे ! वह इसके बल पर डिप्टी कलेक्टर तो नहीं हो सकता। वह बी० ए० में अच्छा डिवीज़न नहीं ले सका, जो काम एक माई के लाल ने किया है, वह स्वयं उसे कैसे कर सकेगा ? उस उद्देश्य के सन्दर्भ में इस माई के लाल के पिता का भी तो कुछ कर्त्तव्य था, जो चेतन के पिता ने नहीं निभाया।

यदि वह कहीं पी० सी० एस० के कम्पटीशन में बैठ सकता और डिप्टी-कलेक्टर बन सकता तो उसे इस बात की ज़रा भी चिन्ता न होती कि उसकी सास अमीचन्द की ससुराल में चौका-बर्तन करती है। उसकी पत्नी की स्थिति ग्वालमण्डी में भी और कल्लोवानी में भी सुस्थिर और

सुरक्षित रहती।. . .यदि कृष्णा डिप्टी कलेक्टर की पत्नी होती तो चन्दा भी डिप्टी कलेक्टरानी होती। तब कृष्णा की शादी में शिरकत करने और चन्दा को वहाँ भेजने में चेतन को ज़रा भी आपत्ति न होती और तब न कृष्णा के सामने स्वयं उसकी आँखें झुकतीं और न कृष्णा की आँखों में चेतन की इज़्ज़त ही कम होती। क्योंकि जहाँ अमीचन्द महज़ डिप्टी कलेक्टर होता, वहाँ चेतन डिप्टी कलेक्टर होने के साथ ही एक उच्च कोटि का कवि और कथाकार भी कहाता!. . .चेतन के दिल से फिर एक बड़ी लम्बी साँस निकल गयी।. . .नहीं, चन्दा को वहाँ जाने से रोकने अथवा स्वयं कभी वहाँ न जाने का फ़ैसला करने से स्थिति की विकटता में किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ता। कृष्णा की शादी अमीचन्द के बदले किसी दूसरे डिप्टी से होती। डिप्टी कलेक्टर छोड़ डिप्टी-कमिश्नर से होती तो उसे शायद ज़रा भी दुख न होता। शायद खुशी ही होती। अमीचन्द से भी होती और अमीचन्द उसका सहपाठी और मुहल्लावासी और लाला मणिराम सब-पोस्ट मास्टर का लड़का न होता, तब भी ठीक था। यह सब भी होता तो वह उसका प्रतिद्वन्द्वी और नकचढ़ा न होता, उसके डिप्टी कलेक्टर होते ही उसके घर वालों का दिमाग़ आसमान पर न चढ़ जाता; वह मिलनसार और विनम्र होता, तब भी शायद वह स्थिति चेतन के लिए कष्टकर न होती। लेकिन अब अमीचन्द के उदार होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। अब उसके घर वाले सारे कल्लोवानी में यह बात फैला देंगे कि चेतन की सास अमीचन्द की ससुराल में चौका-बर्तन करती है।. . .चेतन के सामने कुछ ही महीने पहले जालन्धर के कल्लोवानी मुहल्ले की वह घटना घूम गयी, जब अमीचन्द के बड़े भाई अमीरचन्द ने उसके डिप्टी कलेक्टर होने की खबर सुनते ही भागवन्ती को पीट दिया था और चेतन के पिता ने उसे ढूंढने के लिए उसके मामा की बिसाती की दुकान पर धावा बोल दिया था और मुहल्ले के खत्री पण्डित शादीराम की उस दबंगई पर दम साध कर रह गये थे। अब उन्हें उस अपमान का भरपूर बदला चुकाने का मौका

मिलेगा। घर-घर वे चेतन की सास की ग़रीबी का ढिंढोरा मज़े ले-ले कर पीटेंगे। चेतन के पिता, जिनके सामने मुहल्ले का कोई व्यक्ति चूँ भी नहीं करता, इस स्थिति को जानेंगे तो कैसे बरदाश्त कर पायेंगे।. . . वह स्वयं सेठ के यहाँ जाना बन्द कर भी दे तो क्या होगा ! चन्दा शादी में भाग न ले तो भी क्या होगा ! मुहल्ले में उसके माता-पिता और स्वयं उसका सिर उठा कर चलना तो कठिन हो ही जायेगा। . . .हो सकता है, उसके उदार-हृदय पिता इस स्थिति को कोई महत्व न दें। अपनी सफ़ाई में मुहल्ले के खत्रियों को दस गालियाँ दे कर चेतन की सास को पतिव्रता देवी के आसन पर बिठा दें। लेकिन चेतन यह जानता था कि यह स्थिति उसकी माँ के लिए और स्वयं उसके लिए असह्य होगी।—काश उसकी सास सेठ वीरभान की नौकरी छोड़ सकती ! काश वह स्वयं ही लाहौर छोड़ कर कहीं दूर कलकत्ता-बम्बई जा सकता !! काश वह अपनी मिट्टी से कट सकता !!!. . .लेकिन वह लाहौर में 'भूँचाल' का सम्पादक है, उसकी पत्नी ग्वालमण्डी के विद्यालय में पढ़ती है, उसकी सास गोविन्द गली के सेठ के यहाँ चौका-बर्तन करती है और सेठ की लड़की के साथ उस अपस्टार्ट अमीचन्द की सगाई हो गयी है. . .इस स्थिति से वह कैसे पार पाये. . .कैसे पार पाये !

०

चेतन शुतर-बे-मुहार की तरह सड़कों पर मारा-मारा फिरता रहा—बार-बार वही बातें सोचता हुआ, घूम-फिर कर वही दृश्य देखता हुआ—उसका दिमाग़ एक दलदल बन गया था, जिसमें उसकी चेतना बराबर धँसती चली जाती थी। उस दलदल से अपनी चेतना को निकाल पाने का कोई रास्ता उसे सुझायी न दे रहा था।. . .अजीब बात है कि न उसे अपनी पत्नी पर क्रोध था, न सास पर, न कृष्णा पर और न अमीचन्द पर ! उसे रह-रह कर अपने भाग्य पर क्रोध आता था, जिसने उसे ऐसी दुस्सह स्थिति में डाल दिया था। हर तरह से बेबस, लाचार और मजबूर कर दिया था !. . .वरना क्या अमीचन्द डिप्टी कलेक्टर

हो कर एक अनपढ़ सर्राफ़ की लड़की ही से शादी करता ! चेतन ने तो सुना था कि उसे बड़े-बड़े कलेक्टरों और कमिश्नरों के यहाँ से रिश्ते आ रहे हैं। लेकिन उसके पिता आखिर एक छोटे शहर के, एक और भी छोटे मुहल्ले के, सब-पोस्ट मास्टर ही थे ना ! किसी बड़े अफ़सर की आधुनिक पढ़ी-लिखी लड़की से वे बेहद घबराते थे। फिर ये अफ़सर जितने ही बड़े होते हैं, उतना ही बड़ा उनका खर्च होता है। शान-शौकत और मान-प्रतिष्ठा वे जितनी चाहें, दामाद को दे दें, धन-सम्पत्ति कारोबारियों जितनी नहीं दे पाते ! और अमीचन्द के पिता को शायद नकद माल की ज़्यादा ज़रूरत थी। उन्होंने अपनी आधी पेंशन कम्यूट करके उसे पढ़ाया था। सेठ वीरभान ने एक हज़ार से कम क्या ठाके में दिया होगा। चेतन को याद था, एक दिन कृष्णा की शादी के सिलसिले में सेठानी ने चेतन को किसी उपयुक्त लड़के पर नज़र रखने के लिए कहा था और ठाके तथा शगुन[1] पर क्या देंगे, इसका उल्लेख किया था।... शादी दो वर्ष बाद होने वाली थी। इस अर्से में दिन-त्योहार पर अमीचन्द के माता-पिता, भाई-भाभी—सब लड़की को मिलने आयेंगे, सेठ-सेठानी उनकी झोलियाँ भरेंगे और शादी से पहले ही वे लोग कई हज़ार पा जायेंगे। चेतन निम्नमध्यवर्गीय खत्रियों की इस क्षुद्र मनोवृत्ति से अच्छी तरह वाकिफ़ था। उनमें एक भी उसके पिता-ऐसा उदार न था कि रास्ते में मिलने वालों से सवा रुपया शगुन का ले कर अपने लड़के की सगाई कर देता—शराब के नशे में भी नहीं ! लाला मणिराम और उनकी बीवी को, जिन्होंने न जाने कैसी तकलीफ़ें सह कर तीन लड़कों में से एक को डिप्टी कलेक्टर बना दिया था, प्रतिष्ठा नहीं, पैसा चाहिए था। इसीलिए उन्होंने किसी अफ़सर की लड़की न चुन कर, अनपढ़ सर्राफ़ की लड़की चुनी थी ! उनको किसी धनी-मानी की लड़की से अपने लड़के की शादी करनी थी, यह तय था, लेकिन वह धनी-मानी

---

१. तिलक।

वही हो, जिसके यहाँ चेतन की सास रसोई देखती हो, इसमें तो चेतन को विधाता ही का हाथ दिखायी देता था।. . .यथा विधाता वधीयते तदैव शुभाय ! . .अब इसमें क्या शुभ था ? स्थिति पहले भी कोई वैसी सुखकर नहीं थी, पर चेतन ने अपने मन में उससे समझौता कर लिया था। विधाता को शायद उसका उतना चैन भी पसन्द न था। तभी तो बैठे-बैठाये उसने स्थिति को ऐसा विकट बना दिया. . .वह विधाता के इस वार को कैसे बचाये !. . .कैसे इस स्थिति से पार पाये. . .

०

रात के दस बजने वाले थे, जब चेतन घर पहुँचा—निस्बत से मैक्लोड, मैक्लोड से हॉल रोड, माल रोड, `फर वापस पोस्ट ऑफ़िस, नीला गुम्बद और मेयो हस्पताल रोड से होता हुआ वह वापस घर आया था—सर्दी काफ़ी थी, पर न उसे ठण्ड का एहसास था, न थकन का, न भूख का।

उसके बड़े भाई खा-पी कर सो गये थे। चन्दा शायद उसकी प्रतीक्षा करते-करते ऊब कर सितार बजाने लगी थी। खिड़कियाँ-दरवाजे बन्द थे और सितार का मद्धम-सा स्वर बाहर गली में सुनायी दे रहा था। चन्दा को बहुत दिन सितार सीखते नहीं हुए थे। एक ही सरगम को वह बार-बार बजा रही थी। चेतन ने जा कर दरवाज़े पर दस्तक दी तो उसने एक हाथ में सितार लिये-लिये, दरवाज़ा खोल दिया।

वह साफ़ धुले कपड़े पहने थी और उसके चेहरे पर एक बड़ी ही प्यारी भोली मुस्कान खेल रही थी।

'बड़ी देर कर दी। क्या वहीं इतनी देर बैठे रहे ?'

लेकिन पति के चेहरे पर नज़र पड़ते ही उसकी वह मुस्कान विलुप्त हो गयी और उसका चेहरा उदास हो आया।

चेतन ने कोई उत्तर नहीं दिया। कमरे में जाते ही उसने कपड़े उतारे। खादी का कुर्ता और तहमद पहना और लोई का फेंटा मार कर बिस्तर पर बैठ गया।

'क्या बात है ?'

'तुम जल्दी खाना लाओ !'

उसकी पत्नी खाना गर्म करके लायी तो चेतन रज़ाई पैरों पर ले कर लेटा हुआ था और चुपचाप छत की ओर ताक रहा था ।

उसकी पत्नी ने कुर्सी पर बैठ कर अपनी गोद में थाली रख ली ।

'उठिए, खाना खा लीजिए !'

चेतन उठा । लपक कर बाथरूम में हाथ धो आया । थाली ले कर उसने अपनी गोद में रखी और चुपचाप खाना खाने लगा ।

'क्या कोई ऐसी-वैसी बात किसी से हो गयी ?' चन्दा ने पूछा ।

चेतन कुछ क्षण चुप रहा, फिर उसने कहा, 'कृष्णा की सगाई अमीचन्द से हो गयी है ।'

लेकिन उस भोली नारी ने इस सूचना की माहीयत को बिलकुल नहीं समझा ।

'यह तो बड़ा अच्छा है,' चन्दा ने कहा, 'अमीचन्द तो डिप्टी कलेक्टर है । खुश रहेगी कृष्णा ।'

'खुश क्या रहेगी !' चेतन के स्वर में प्रकट ही चिड़चिड़ाहट और कटुता थी । 'सेठ वीरभान के लाड़-चाव में पली लड़की उन चपड़कनातियों के घर जायेगी । तुम अमीचन्द की माँ को नहीं जानतीं । एक ही बिस की गाँठ है बीबड़ी !' (अमीचन्द अपनी माँ को बीबी कह कर बुलाता था । उसकी देखा-देखी लड़के भी उसे बीबी कह कर पुकारते थे और जब उससे नाराज़ होते थे तो उसे 'बीबड़ी' कहते थे ।) 'वह तो कृष्णा का जीना मुहाल कर देगी ।'

चेतन कुछ क्षण चुप रहा । फिर उसने सिर उठाया और पत्नी की आँखों में देखते हुए बोला :

'तुमने मेरी और अपनी पोज़ीशन का भी कभी ख़याल किया है !'

चन्दा चुप रही ।

'अमीचन्द हमारे मुहल्ले में खत्रियों का लड़का है ।' चेतन ने बात

जारी रखी, 'और हमारे मुहल्ले के खत्री-ब्राह्मणों में हमेशा से चलती आयी है। अमीचन्द की ससुराल में मेरी सास रसोई देखती है—यह खबर तो सारे मुहल्ले में आग की तरह फैल जायेगी। गोविन्द गली ही नहीं, मैं तो अपने मुहल्ले में भी कभी नहीं जा सकूँगा।'

अब चन्दा अपने पति के सुते हुए मुख का कारण समझी। पर वह इस सिलसिले में क्या उत्तर देती !

चेतन खाना खा चुका तो चन्दा बर्तन ले गयी। रसोई-घर में बैठ कर उसने खाना खाया। बर्तन वग़ैरह मल कर और रसोई बन्द करके जब वह आयी तो ग्यारह बज चुके थे। उसका ख़याल था कि उसका पति सो गया होगा, लेकिन चेतन चुपचाप लेटा छत की तरफ़ ताक रहा था।

'बत्ती बुझा दूँ ?'

चेतन ने सिर के इशारे से कहा कि बुझा दो।

दरवाज़े की चिटख़नी लगा कर और बत्ती बुझा कर चन्दा उसके बिस्तर में आ गयी। अपनी बाँह पति की गर्दन के नीचे करके उसने उसे अपने सीने से लगा लिया।

'अब सो जाइए !'

चेतन ने कोई उत्तर नहीं दिया। न प्रतिरोध ही किया। वह चुपचाप अपनी पत्नी के सीने से लगा, लेटा रहा। उसकी पत्नी सो गयी, लेकिन उसे नींद नहीं आयी।

०

दूर कहीं घड़ियाल ने एक का गजर बजाया, जब चेतन सहसा उठ बैठा।

चन्दा जग गयी, लेकिन उठी नहीं।

'चन्दा !' उसने ज़रा-सा उसे हिलाया।

वह उठ बैठी।

चेतन ने हाथ बढ़ा कर बत्ती जला दी, 'देखो,' उसने कद्रे उत्तेजित स्वर में कहा, 'मुझे इस स्थिति से निकलने का हल सूझ गया है।—इस

वर्ष तो देर हो गयी है, पर अगले वर्ष मैं लॉ-कॉलेज में दाखिल हो जाऊँगा ।'

चन्दा कुछ भी नहीं समझ पायी । वह मुटर-मुटर अपने पति की ओर देखती रही ।

'बात यह है,' चेतन ने उसे समझाते हुए कहा, 'मैं तुम्हारी माँ को परेशान नहीं करना चाहता । सेठ और सेठानी उसे इज़्ज़त से रखे हुए हैं और वह बड़ी खुश है । लेकिन मैं यह भी नहीं चाहता कि केवल इसी कारण मेरी-तुम्हारी स्थिति उस घर में ज़रा भी ऑकवर्ड हो जाय । मैं दो साल में लॉ कर लूँगा और लॉ करते ही सब-जजी के कम्पटीशन में बैठ जाऊँगा । मैं तुम्हें आज बता देता हूँ कि दुनिया की कोई ताकत मुझे सब-जज बनने से नहीं रोक सकती । मैं सब-जज बना तो फिर डिस्ट्रिक्ट और सेशन्ज़-जज बन कर दम लूँगा ।. . .लॉ कॉलेज का दाखिला जुटाने की मुश्किल है, तो जैसे पहले हम तीस रुपये महीने में काम चलाते रहे हैं, वैसे ही आठ-दस महीने और चलायेंगे और हर महीने दस रुपया बचायेंगे । बस दाखिले के पैसे हो जायें, किताबों और फ़ीस का मैं कर लूँगा । बी० ए० में चाहे मुझे थर्ड-डिवीज़न मिला हो, लेकिन एल० एल० बी० में न केवल मैं फ़र्स्ट डिवीज़न लूँगा, बल्कि डिस्टिंक्शन ले कर दिखा दूँगा ।. . .मैं तुम्हें बता देता हूँ, मुझे सब-जज बनने से कोई नहीं रोक सकता । अमीचन्द जब डिप्टी कमिश्नर की कुर्सी पर बैठेगा, तब मैं भी सेशन्ज़ जज की कुर्सी पर बैठा हूँगा ।. . .उस सूरत में तुम्हें कृष्णा की शादी में आँख नहीं झुकानी पड़ेगी और न मैं ही मुहल्ले के लोगों से मुँह चुराऊँगा ।'. . .उसने उत्साह में चन्दा के कन्धे को थपथपाया, 'कृष्णा का पति यदि डिप्टी कलेक्टर है तो तुम्हारा पति भी सब-जज होगा ।'

चन्दा ने श्रद्धा, प्रेम और विश्वास-भरी आँखों से अपने पति की ओर देखा । 'आप ज़रूर सब-जज हो जायेंगे,' उसने कहा, 'पर बड़ी देर हो गयी है । अब आप सो जाइए ।'

चेतन लेट गया। चन्दा ने चारपाई पर ज़रा-सा उठ कर बत्ती बुझा दी, बाँह बढ़ा कर अपने पति को फिर पहलू से सटा लिया और धीरे-धीरे उसके बाल सहलाने लगी।

दूसरे ही क्षण चेतन सो गया। चन्दा बड़ी देर तक जागती, अपने पति के बालों पर हाथ फेरती रही। अजाने उसकी आँखों में आँसू झलक आये। अपने दुपट्टे के छोर से उसने उन्हें पोंछा और फिर अपने सोये पति को ज़ोर से अपने सीने से भींच लिया।

सैंतालीस

पिछली रात चेतन तन और मन दोनों से थक गया था। वह बहुत देर से सोया था, इसलिए सुबह काफ़ी देर से उठा। अंग-अंग उसका दर्द कर रहा था और सिर बेहद भारी था। उसका बस चलता तो वह दफ़्तर न जाता। लेकिन 'भूँचाल' को डेक्लेरेशन मिल गया था। उसे बाकायदा एक तिथि पर निकालना था और एक सप्ताह ही का नहीं, दो-तीन सप्ताह का मैटर उसके हाथ में होना जरूरी था। चेतन जल्दी-जल्दी तैयार हुआ और खाने पर जा बैठा।

जब से उसने भूँचाल के दफ़्तर जाना शुरू किया था, वह खाना सुबह ही खा जाया करता था। चार कौर किसी-न-किसी तरह कण्ठ से नीचे उतार, वह दफ़्तर की ओर भागा।

लेकिन इस पर भी उसे कुछ देर हो गयी। क्योंकि जब वह सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, लालाजी के दफ़्तर से एक छत-फाड़ ठहाके की आवाज़ सुनायी दी। चेतन नहीं जानता था, पर मौलाना नईम बेग चग़ताई कपूर साहब से

उसी को ले कर मज़ाक कर रहे थे ।

०

चेतन भूँचाल का एक ही अंक निकाल पाया था । दूसरे अंक की भी तैयारी उसने कर रखी थी, पर लाला जीवनलाल कपूर ने उसे रोक दिया था कि रजिस्टर्ड एल० नम्बर मिल जाय तभी बैठ कर अगला अंक प्लान करेंगे । पहले अंक के लिए चेतन ने स्वयं तो एक कहानी लिख ही ली थी, पर एक नज़्म मौलाना नईम बेग चग़ताई से भी लिखवायी थी और उस सिलसिले में उसे खासी परेशानी हुई थी ।

भूँचाल का सम्पादक बनने के बाद पहला अंक स्वतन्त्र रूप से निकालने का आदेश मिलते ही चेतन यह सूचना देने मौलाना नईम बेग चग़ताई के तबेले पहुँचा था । यह खुशखबरी देने के साथ-साथ उसने साधिकार उनसे कहा था कि वे पहले अंक के लिए एक बढ़िया नज़्म लिख कर दें । अपने कहानी-संग्रह की एक प्रति भी उसने उन्हें दी थी और उस पर भी चन्द शब्द लिखने का अनुरोध किया था । मौलाना ने कहानी-संग्रह पर लिखने का वादा कर लिया था, लेकिन बिना पारिश्रमिक के, भूँचाल के लिए नज़्म लिखना अस्वीकार कर दिया था ।

चेतन ने दूसरे दिन महाशय जीवनलाल से बात की थी कि मौलाना से भूँचाल के पहले अंक के लिए एक ज़ोरदार नज़्म लिखने के लिए कहा है । मौलाना नज़्म तो लिखने को तैयार हैं, लेकिन पारिश्रमिक माँगते हैं । रोज़ी-रोटी का उनके पास दूसरा कोई सहारा नहीं । कुछ रुपये उन्हें दे दिये जायें ।

'उस मुसलमण्टे के अलावा दूसरा कोई शायर ही तुम्हें नहीं मिला !' सहसा कपूर साहब ने व्यंग्य से होंट बिचका दिये ।

अपने जोश में चेतन भूल ही गया था कि 'गुरु घण्टाल' का मालिक-एडीटर आर्य समाजी कट्टर हिन्दू है । उसे अफ़सोस हुआ कि उसने मौलाना से नज़्म लिखने के लिए क्यों कह दिया । लेकिन चंगड़ मुहल्ले के उस टाट से घिरे अहाते में मौलाना के साथ गुज़ारे गये कुछ पल

हमेशा के लिए उसकी याद के पर्दे पर नक्श हो गये थे। उनकी प्रतिभा और उनकी घोर ग़रीबी हमेशा चेतन के सामने घूम जाती थी और अब, जब वह मुकम्मल ऐडीटर हो गया था, वह उनकी कुछ मदद करना चाहता था। हमेशा दूसरों से मदद माँगने के बदले, किसी की मदद कर सकने के एहसास से उसके अहं को भी कुछ सन्तोष मिला था।. . . लेकिन यह कट्टर लाला, उसने उसके सारे उत्साह पर ही पानी फेर दिया था।

उनके प्रश्न के उत्तर में चेतन उनकी मेज़ पर चुपचाप हाथ रखे हुए खड़ा रह गया था। उसने कोई उत्तर न दिया था। तब कपूर साहब ने पूछा था कि मौलाना नज़्म के कितने पैसे माँगता है ?

चेतन ने बताया कि 'बन्दे मातरम' में उन्हें एक नज़्म के पाँच रुपये मिलते थे।

लाला जीवनलाल कपूर ने यह सुन कर एक छत-फाड़ ठहाका लगाया 'पाँच रुपये !' हँसी ख़त्म होने पर उन्होंने कहा था, 'तुम बड़ी मुश्किल से दिन भर में अंग्रेज़ी से एक कहानी या लेख उर्दू में तरजुमा करते हो और एक रुपया मुआविज़ा[1] पाते हो और उस मुसलमण्टे को पाँच मिनट में चन्द शेर हाज़िर करने के एवज़ पाँच रुपये दिलाना चाहते हो।'

'लेकिन 'बन्दे मातरम' में. . .'

'बन्दे मातरम' का क्या है, किसी साले की गिरह का पैसा तो उस में लगा नहीं। इसी तरह पैसा न उड़ाते तो आज यह नौबत न आती कि मुलाज़िमों की तनख्वाह तक के लाले पड़े हैं।'

'लेकिन नसर[2] और नज़्म में तो फ़र्क है,' चेतन ने पैंतरा बदल कर कहना चाहा. . .

'गुरु घण्टाल में इतनी नज़्में छपती हैं, कभी किसी का एक पैसा

---

१. पारिश्रमिक। २. गद्य।

नहीं दिया गया, जब कि मज़मून लिखवाने या तरजुमा कराने के पैसे देने पड़ते हैं।'

इस नितान्त स्वयं-सिद्ध और सर्वज्ञ किस्म के मूर्ख व्यक्ति से साहित्यिक बात करना चेतन को समय नष्ट करने के बराबर लगा। वह चुप हो गया और मन-ही-मन उनके यहाँ नौकरी स्वीकार करने के लिए अपने आप को कोसता हुआ अपने कमरे में आ बैठा।

कुछ देर बाद लालाजी ने फिर उसे बुलाया और पूछा, 'काहे पर नज़्म लिखवा रहे हो 'चहीम बेग नग़ताई' से ?'

'मैंने कोई टॉपिक तो नहीं दिया,' चेतन ने कहा, 'मौसम की नज़्म लिखने को कहा था। 'मौसमे-सरमा की बातें' उनवान कैसा रहेगा ?'

'मौसमे-सरमा की माँ की वो,' लालाजी चिल्लाये, 'तुम उससे कहो —भूँचाल की आमद-आमद[1] के सिलसिले में एक बढ़िया भूँचाली नज़्म लिखे, जिसमें 'गुरु घण्टाल' की 'शोहरत और हरदिल-अज़ीज़ी[2] का भी ज़िक्र हो और इस बात की उम्मीद की जाय कि भूँचाल उस रवायत[3] को जारी रखेगा।'

सुते हुए चेहरे से चेतन ने कहा था, 'बिना मेहनताने के मौलाना नज़्म नहीं लिखेंगे।'

'एक रुपया मैं उसके लिए दफ़्तर से दिलवा दूँगा।'

चेतन चुप रहा। उसके मन में हलकी-सी उम्मीद जगी। और कुछ नहीं तो वह मौलाना के सामने सुरखरू तो हो जायेगा। लेकिन मन की भावना का कोई भी आभास दिये बग़ैर, बदस्तूर सुते हुए चेहरे से उसने कहा, 'दो रुपये भी आप दिलवाने को तैयार हों तो मैं मौलाना के पास जाऊँ, वरना नहीं। मैंने मौलाना से एक रिव्यू लिखने के लिए भी कहा है। परचे को अदबी रंग देना है तो उसमें एक कॉलम रिव्यू भी रहना चाहिए।'

---

१. आगमन, आविर्भाव। २. लोकप्रियता। ३. परम्परा।

लाला जीवनलाल कपूर ने मुँह खोला। उनके चेहरे ने एक मरोड़ा लिया। वे कोई बहुत ही भद्दी बात कहने जा रहे थे कि सहसा उन्होंने बरबस अपने आप को रोक लिया। क्षण भर वे चुप बैठे सोचते रहे। चेतन ने वापस अपने कमरे को जाने के लिए पैर उठाया ही था कि उन्होंने हँस कर कहा, 'अच्छा, मैं तुम्हारी खातिर उस 'मुसलमरान की लुआद' को दो रुपये दे दूँगा !'

'मुसलमरान की लुआद'—याने मुसलमान की औलाद—उनका ताज़ा लतीफ़ा था। चेतन उसे सुन चुका था और उसकी याद मात्र से उसका खून खौल उठता था। लेकिन लाला जीवनलाल अपनी फूहड़ता में दूसरों की भावनाओं को देखना कुछ वैसा ज़रूरी नहीं समझते थे।

चेतन का खयाल था कि दो रुपये पर नज़्म लिखने के लिए मौलाना हरगिज़ तैयार न होंगे, लेकिन वे मान गये थे। वास्तव में चेतन ने कपूर साहब की दलीलें मौलाना के आगे दोहरा दी थीं कि 'बन्दे मातरम' को तो एक ट्रस्ट चलाता है, उसमें किसी एक व्यक्ति का पैसा नहीं लगता, जबकि 'गुरु घण्टाल' एक फ़र्दे-वाहिद[1] की मिलकियत है, कि स्वयं उसे लालाजी फ़ी अफ़साना महज़ एक रुपया देते हैं, नज़्में तो वे मुफ़्त छापते हैं, चूँकि वे नज़्म 'भूँचाल' के इफ़्तेताह[2] पर चाहते हैं, इसलिए दो रुपये तक देने को तैयार हो गये हैं। मौलाना मान गये थे और उन्होंने घोषणा की थी कि वे ऐसी भूँचाली नज़्म लिखेंगे, जो अदबी दुनिया में सचमुच ज़लज़ला[3] ला दे, लेकिन पैसे उन्हें नज़्म छपते ही मिल जायें।

चेतन को दो-तीन बार मौलाना के तबेले जाना पड़ा था, पर नज़्म उसने लिखवा ली थी और बड़ी शान से पहले अंक के पहले पृष्ठ पर छापी थी। मौलाना ने उसकी किताब का रिव्यू भी लिख दिया था और चेतन ने वह भी छाप दिया था। 'भूँचाल' के पहले अंक पर छपा अपना नाम और अपनी पुस्तक की समीक्षा, न जाने चेतन ने कितनी बार पढ़ी

---

१. एक व्यक्ति। २. समारम्भ। ३. भूचाल।

थी। लेकिन चूँकि माँगने पर भी लालाजी ने रुपये नहीं दिये थे, इसलिए यद्यपि अंक की एक प्रति तो वह छपते ही मौलाना को दे आया था, पैसे वह नहीं पहुँचा सका था और आख़िर मौलाना स्वयं रुपये लेने आये थे। कपूर साहब ने रुपये के लिए उन्हें चिट लिख दी थी; मौलाना प्रसन्न हो कर गप लगाने लगे थे और चेतन को ले कर उन्होंने मज़ाक किया था।

'लौण्डा-ए-ख़ुदरंग को आप 'वीर भारत' से अग़वा कर लाये!' मौलाना ने कहा था, 'पण्डित रत्न या ज़ख़्मी को बुरा तो नहीं लगा।'

महाशयजी ज़ोर से ठहाका लगा कर हँसे थे। 'उन्हीं की मदद से लाया हूँ।' उन्होंने कहा था, 'बड़ा तुनक-मिज़ाज लौण्डा है। पुट्ठे पर हाथ ही नहीं रखने देता।'

'सहज पके सो मीठा हो!' मौलाना ने आँख दबा कर कहा था और पूछा था, 'काम कैसा करता है लौण्डा?'

'लड़का ज़हीन है,' महाशयजी ने कहा था, 'लेकिन अव्वाम में हर-दिल-अज़ीज होने वाला अख़बार निकालने की अभी उसमें समझ नहीं। यह परचा उसने निकाला है।' और महाशयजी ने मेज़ पर से भूँचाल का अंक उठा कर मौलाना के सामने फेंक दिया, 'बेचने जायेंगे तो सौ कापियाँ भी इसकी नहीं बिकेंगी। अव्वाम में हर-दिल-अज़ीज़ होने वाले परचे में अदब-वदब से काम नहीं चलता। मुँह का ज़ायका बदलने के लिए एकाध अदबी कहानी या नज़्म दी जा सकती है। हज़ार में एक आदमी साला अदबी चीज़ समझ पाता है। आम लोगों को चाहिए सन-सनी, प्यार और सेक्स—फ़िल्म नायिकाओं, मशहूर तारीख़ी हस्तियों और डिक्टेटरों की ज़िन्दगी के किस्से! या फिर जान हथेली पर रख कर आस-मानों, समन्दरों और सहराओं की खोज करने वालों की कहानियाँ दीजिए; चोरों, डाकुओं और जासूसों के कारनामे दीजिए; शेरों, हाथियों, गैण्डों,

१. अपहरण। २. साहित्य-वाहित्य।

मगरमच्छों के शिकार का आँखों-देखा-हाल छापिए या फिर कुछ धार्मिक लेख—योगियों के, हठयोगियों के, संन्यासियों और उनके मोजज़ों[1] के—और लीजिए आपका अख़बार हाथों-हाथ बिकता है।'

'लौण्डा तो मेहनती है, ज़रा सँभाल कर रास्ते पर लगाइएगा तो लग जायगा।' मौलाना ने आँख दबा कर कहा और फिर पूछा, 'अगले ईशू के लिए कोई चीज़ चाहिए ?'

'कोई मज़ाहिया[2] नज़्म आज के हालात पर लिखिए। आज ज़रा इतमीनान से बैठ कर अगला प्रोग्राम बना लें। तब आपको तकलीफ़ दूँगा। अब आपके 'लौण्डा ए-ख़ुदरंग' ने आपकी पुरज़ोर सिफ़ारिश की है, नज़्म तो आप हर ईशू में लिखेंगे।'

महाशयजी ज़ोर से ठहाका मार कर हँसे और उन्होंने चेतन को आवाज़ दी।

चेतन दफ़्तर से गुज़र कर अपने कमरे में जा रहा था। उसके कानों में शब्द 'लौण्डा-ए ख़ुदरंग' की हलकी-सी भनक पड़ी। उसने जान लिया कि उसी को ले कर कोई मज़ाक चल रहा है। इसलिए वह निहायत तना हुआ लालाजी के कमरे में दाख़िल हुआ। उसकी ओर मौलाना की पीठ थी, लेकिन कमरे में उसके दाख़िल होते ही मौलाना ने पलट कर देखा। चेतन ने एक ही बार में माथे तक हाथ ले जा कर, ज़रा-सा सिर को घुमाते हुए दोनों महानुभावों को 'आदाब अर्ज़' किया।

'आप अपना सामान इस मेज़ पर ले आइए !' महाशयजी ने बायीं ओर इशारा करते हुए कहा।

चेतन ने देखा कि बाहर बाज़ार में खुलने वाली खिड़की के निकट, जहाँ महाशयजी ने अपने मित्रों के साथ बैठने के लिए चार कुर्सियाँ और एक छोटी-सी गोल मेज़ लगा रखी थी, एक लम्बी-सी मेज़ और कुर्सी लगी है। मेज़ महाशयजी की मेज़ की सीध में रखी है, एकदम खाली

---

१. चमत्कारों। २. हास्य रस की।

है और कुर्सी जैसे उसी की प्रतीक्षा कर रही है। प्रकट ही महाशयजी ने चारों कुर्सियाँ और गोल मेज़ घर भिजवा दी थी और वहाँ से यह मेज़ मँगा ली थी।

चेतन क्षण भर खड़ा, उस मेज़ को देखता रहा, फिर वह अपने कमरे में गया। उसने तख्ती, काग़ज़, कलम-दवात, ब्लॉटिंग-पैड और भूँचाल का पहला अंक तथा फ़ाइलें उठायीं और उस मेज़ पर जा बैठा।

मौलाना ने एक नज़र उस पर डाली और उठते हुए बोले, 'बच्चे ऐसा काम करके दिखाओ कपूर साहब को कि पण्डित रत्न को फ़ख्र[1] हो!'

चेतन ने न उनकी ओर देखा और न कोई उत्तर ही दिया।

उसने तख्ती सामने रखी और चुपचाप काम करने लगा।

तब मौलाना ने कपूर साहब की ओर देखा। 'अच्छा तो हुज़ूर, चल दिये। आज आपके लतीफ़े से हम महरूम[2] ही रहे।'

'लीजिए अभी आपको 'मुसलमरान दी लुआद' वाला लतीफ़ा सुनाते हैं। बैठिए, बैठिए! आपने सुना तो नहीं?'

'मुसलमरान दी लुआद—क्या मानी?' मौलाना ने हैरत से कहा।

'अनपढ़ पंजाबी औलाद को लुआद और मुसलमान को मुसलमरान कहते हैं। यानी—मुसलमान की औलाद!'

और महाशयजी ने सिर को पीछे फेंक कर छत-फाड़ ठहाका लगाया। मौलाना उठते-उठते बैठ गये और महाशयजी लतीफ़ा सुनाने लगे:

'एक मुसलमान अमीरज़ादा था,' लालाजी कोहनियों को मेज़ पर टेक, दोनों हाथों की मुट्ठियों पर ठोड़ी टिका कर, अत्यन्त उत्साहित भाव से बैठ गये। उनकी आँखों की चमक बढ़ कर उनके चेहरे पर फैल गयी। 'परले सिरे का हरामी और फक्कड़! वह एक बार अपने एक दोस्त के साथ उसके एक हिन्दू मित्र के घर गया। वे लोग डेवढ़ी में ही

---

१. गर्व। २. वंचित।

कुछ देर खड़े बात करने लगे। तभी हन्दा (अग्राशन) लेने वाली ब्राह्मणी आयी। अगरचे उसने पराये लोगों को देख कर ज़रा-सा घूँघट खींच लिया, लेकिन एक ही झलक में वह उसका दीवाना हो गया। दिन-रात वो इस बात की फ़िक्र करने लगा कि कैसे उसे बस में करे, लेकिन वह मुसलमान और वह अनपढ़ ब्राह्मणी! आखिर उसने चोटी रख ली, टीका लगा लिया, यज्ञोपवीत पहन लिया, नाम बदल लिया और पूरा पण्डित बन कर उसी मुहल्ले में एक बढ़िया मकान किराये पर ले कर रहने लगा और उसने उसी खूबसूरत ब्राह्मणी को हन्दा लेने पर लगा दिया। दान-दक्षिणा से उसकी खूब झोली भरी। आखिर एक दिन वह उसे अपने बिस्तर पर ले आया। जब वह अपनी मुराद पूरी कर चुका तो ब्राह्मणी ने देखा कि जिसे वह ब्राह्मण समझती थी, वह तो अहले-सुन्नत[1] है तो माथे पर हाथ मार कर बोली—हाय-हाय मुसलमरान दी लुआद! मेरा जनम भरिष्ट कर दित्ता।' और लालाजी ठहाका मार कर हँसे। फिर जब उनके ठहाके का ज़ोर खत्म हुआ तो बोले, 'किसी के नीचे पड़ने से उस साली का जन्म भ्रष्ट नहीं हुआ, मुसलमान की रोटियाँ लेने से हो गया। हरामज़ादी!' और वे फिर पीछे को सिर किये, ठठा कर हँस उठे।'

०

अपनी मेज़ पर बैठे-बैठे चेतन का खून खौल उठा। ये साले खत्री, ब्राह्मणों को बदनाम करने का कोई मौका नहीं छोड़ते। ब्राह्मणी की जगह अगर खत्रानी होती तो उसका जन्म भ्रष्ट नहीं होता! और ये लाला आर्य समाजी हैं और कट्टर हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, लेकिन ब्राह्मणों को बदनाम करने वाला लतीफ़ा गढ़ कर उसमें रस पाने से ये भी नहीं चूकते। चेतन के दिमाग़ में अपने बचपन से ले कर जवानी तक होने वाले मुहल्ले के खत्रियों-ब्राह्मणों के झगड़े घूम गये और खत्रियों के उस ज़ुल्म

---

१. खतने वाला मुसलमान।

पर, जो उन्होंने उसके पागल दादा पर तोड़े थे, उसका मन तीव्र घृणा से भर आया।. . .

०

मौलाना चले गये थे और लाला जीवनलाल मेज़ पर टाँगें पसारे, एक ओर रखी अंग्रेज़ी पत्रिकाओं को पढ़ने लगे थे। चेतन ने कोशिश की कि उस अश्लील लतीफ़े को दिमाग़ से निकाल कर, काम में मन लगाये। लेकिन वह रात का जगा था। उसके सिर में हलका-हलका दर्द था, आँखें करकरा रही थीं, फिर अपने कमरे में बैठने की बजाय वह लाला के कमरे में बैठा था। उसका ध्यान फिर उसी लतीफ़े की ओर चला गया। 'ये लालाजी कैसे कट्टर हिन्दू हैं कि किसी ब्राह्मणी के बारे में ऐसा गन्दा लतीफ़ा गढ़ कर सुना सकते हैं।' वह सोचने लगा। और वह मौलाना को पाँच रुपये नज़्म के देना चाहता था तो उन्होंने एतराज़ किया था। चेतन ने ज़रा गहराई से सोचा तो उसे लगा कि वे हों अथवा महाशय धर्मचन्द, उनकी सारी कट्टरता ऊपरी है। वे अपने पत्रों के द्वारा कट्टर हिन्दुओं की भावनाओं का लाभ उठाते थे, वरना उनके मित्रों में ऐसे मुसलमान लेखकों और शायरों की कमी न थी, जो छद्म नाम से रुपये-दो-रुपये के लिए उनके पत्रों में नज़्में लिखते थे। स्वयं मौलाना नईम् बेग 'बन्दे मातरम' ही में नहीं, 'देश' और 'समाज' तक में भी नज़्में लिखते थे। फ़र्क यही था कि उन पर नाम किसी हिन्दू का होता था। ये सारे-के-सारे लोग हिन्दू-मुसलमान जनता के भावों से खेलते थे—ये सारे पेशेवर लेखक, कवि और पत्रकार हिन्दू-मुसलमान जनता को उल्लू बनाते थे। चेतन ने मौलाना नईम वेग से नज़्म लिखवानी चाही थी तो लालाजी ने उसे डाँटा था और अब उन्हीं को एक भद्दे लतीफ़े से प्रसन्न करके शायद वे उनसे लगातार नज़्में लिखवाने वाले थे। प्रकट ही लालाजी ने वह लतीफ़ा अपने किसी मुसलमान मित्र से सुना था और वे उससे अपने मित्रों का मनोरंजन करते थे। उस लतीफ़े में जो सूक्ष्म सामाजिक व्यंग्य था, उसकी ओर चेतन का ध्यान नहीं गया। उसे बार-बार क्रोध आने

लगा कि उस खत्री लाला ने ब्राह्मणों का मज़ाक क्यों उड़ाया। यह लतीफ़ा अगर मौलाना ने सुनाया होता तो चेतन को क्रोध न आता, पर उसे 'गुरु घण्टाल' के सम्पादक लाला जीवनलाल कपूर ने सुनाया—इसी बात पर चेतन को ग़ुस्सा था।—वह कैसे फूहड़, बे-उसूल, बेतुके आदमी के यहाँ आ फँसा!—चेतन का मन हुआ उसी वक्त उठे और उन्हें और उनकी नौकरी को 'नमस्कार' करके चला जाय। वह उनके यहाँ रहेगा तो निरन्तर उसे इस फूहड़ता को बरदाश्त कर पड़ेगा। यही नहीं, उसे स्वयं उसका शिकार बनना पड़ेगा। जाने वह उसकी ग़ैर-हाज़िरी में उसके बारे में क्या-क्या बातें करते हैं! जब वह दफ़्तर के पास से हो कर अपने कमरे को जा रहा था तो उसके कानों में 'लौण्डा-ए-खुदरंग' शब्द पड़ा था। ज़रूर वे उसी को ले कर मज़ाक कर रहे होंगे।. . .नहीं, उसके लिए यहाँ काम करना कठिन होगा! वह कुछ फ़ैसला करने ही वाला था कि सहसा उसके कानों में आवाज़ पड़ी :

'चेतन!'

और वह आवाज़ कमरे के बाहर दफ़्तर में गूँजती चली गयी।

चेतन को उनका यूँ पुकारना अच्छा नहीं लगा। लेकिन वह चुपचाप उठा और उनकी मेज़ के पास बा-अदब जा खड़ा हुआ।

महाशयजी ने मेज़ से टाँगें उठा कर नीचे कीं। कैंची ले कर हाथ के पत्र का पृष्ठ काटा और उसे चेतन की ओर चढ़ाते हुए बोले, 'यह जंगे-अज़ीम की मशहूर जासूस, 'मादाम रिकी' पर एक निहायत दिलचस्प मज़मून है। इसे भूँचाल के लिए उर्दू में कर डालो।'

चेतन कटिंग ले कर अपनी मेज़ पर आ बैठा और अजाने ही लेख पढ़ने लगा। लेख बेहद दिलचस्प था। उसे पढ़ते-पढ़ते उसका ध्यान बँट गया। जब वह लेख पढ़ चुका तो उसने काग़ज़ों वाली तख्ती अपने आगे खिसकायी।

वह वास्तव में ज़रूरत से ज़्यादा हस्सास है—उसने सोचा—ज़रा-ज़रा-सी बात पर उसका दिमाग़ तन जाता है और चैन-आराम हराम हो

जाता है। इतनी भाव-प्रवणता से भला दुनिया में काम चल सकता है! उसने पिछली रात ही फ़ैसला किया है कि वह कानून पास करके सब-जजी के कम्पटीशन में बैठेगा। साल भर तक तो उसे किसी-न-किसी तरह नौकरी करके दाखिले का प्रबन्ध कर लेना है। वह बेकार ही इन लोगों की बातों को महत्व देता है। उसे क्या ज़िन्दगी भर इस वाहियात वातावरण में रहना है? एक बार वह इससे निकला तो पलट कर इधर झाँकेगा भी नहीं। वह सब-सज होगा, सेशन्ज़ जज होगा और कौन जाने कभी हाईकोर्ट का जज हो जाय. . .और वह चुपचाप लेख का अनुवाद करने लगा।

लेकिन अभी मुश्किल से उसने दो-तीन पंक्तियाँ ही लिखी थीं कि उसे फिर आवाज़ पड़ी:

'चेतन!'

वह कलम हाथ ही में लिये हुए उठा और जा कर चुपचाप मेज़ के पास खड़ा हो गया।

लालाजी ने उसे फिर एक कटिंग थमा दिया। 'यह हूणों के ज़ालिम फ़ातेह[1] अटीला पर लेख है, जिसने पूरब से पच्छिम तक अपनी फ़तह का डंका बजाया और जो आखिर सुन्दरी इलडिवो से अपनी शादी की रात ही मर गया! ज़बरदस्त लेख है। इसे भूँचाल के लिए कर डालो।'

चेतन कटिंग ले कर अपनी मेज़ पर आ बैठा और अटीला की विजय-यात्रा और भयंकर क्रूरता का वृत्तान्त पढ़ने लगा। पूरा लेख पढ़ कर उसने कटिंग एक ओर रख दिया और पहले लेख का अनुवाद करने लगा। उसने दो-चार पंक्तियाँ ही और जोड़ी थीं कि उसे फिर आवाज़ पड़ी। अब की वह उठ कर गया तो लालाजी ने उसे 'छुपे खज़ानों की खोज' पर एक लेख दिया और घोषणा की कि वह बेहद दिलचस्प है और वह उसे पढ़ कर भूँचाल के लिए उर्दू में करे।

---

१. विजेता।

चेतन चुपचाप अपनी मेज़ पर आ बैठा और अनुवाद वाली तख़्ती हटा कर, 'छुपे खज़ानों की खोज' में तल्लीन हो गया।

०

शाम के साढ़े चार बज गये थे और पाँच बजे दफ़्तर में छुट्टी हो जाती थी। लेकिन चेतन 'मादाम रिकी' वाले लेख का एक पैरा भी पूरा नहीं कर सका था। उसकी बायीं ओर पेपर-वेट के नीचे दस-बारह लेखों, संस्मरणों और सच्ची कथाओं के अंग्रेज़ी कटिंग थे, जो महाशयजी ने पूरे-के-पूरे पढ़ कर, हर बार उसे अपनी मेज़ पर बुला कर दिये थे। उनमें अधिकांश सेनसनीख़ेज़ घटनाओं, महान ऐतिहासिक, राजनीतिक अथव सांस्कृतिक हस्तियों के बारे में थे—उनके जीवन, उनके गुप्त प्रेम-प्रसंगों, उनकी दुःसाहसिकता आदि के बारे में—कुछ यूरोप की महान नर्तकियों, अभिनेत्रियों और सौन्दर्य-साम्राज्ञियों के जीवन की ट्रैजिडियाँ थीं। दो-एक लेखों में संसार के अजीबो-ग़रीब स्थलों की यात्राओं के विवरण थे।. . .चेतन उन सब को बड़े ध्यान से पढ़ता गया था, मुश्किल अंग्रेज़ी शब्दों पर निशान लगाता गया था कि अनुवाद करते समय शब्दकोश की सहायता से उनके उर्दू अर्थ जान सके।

जब महाशयजी के सामने पत्र-पत्रिकाओं का अम्बार ख़त्म हो गया और उन्होंने अपनी पसन्द और ज़रूरत के लेख काट और छाँट लिये तो चपड़ासी को बुला कर शेष कटे-फटे अख़बार और रिसाले उठा ले जाने का आदेश दिया। तब चेतन को लगा कि अब वे कटिंग नहीं देंगे। हाथ का अन्तिम तराशा पढ़ कर उसने बायीं ओर पेपर-वेट के सामने रखा और फिर तख़्ती आगे करके मादाम रिकी वाले लेख का अनुवाद करने लगा।

पूरी तल्लीनता से वह लेख का अनुवाद कर रहा था। उसने लग-भग एक फ़ुलस्केप पृष्ठ लिख लिया था कि महाशयजी अपनी मेज़ ठीक-ठाक करके, तमाम काग़ज़-पत्र सँभाल कर, अपनी कुर्सी से उठे और पतलून की जेब में हाथ डाले, (जिससे पीछे से कटी उनके लम्बे कोट की

टेल कुछ उठ गयी) टहलते हुए उसकी मेज़ तक आये और पेट को ज़रा-सा आगे किये, सिर को तनिक-सा खम दिये, खड़े हो गये।

चेतन ने हाथ रोक कर सिर उठाया।

'कहिए, कितना काम हुआ आज ?' महाशयजी ने पूछा।

'अभी मादाम रिकी वाले लेख का एक कॉलम किया है।'

'यह तो कोच्छ नहीं हुआ।' और लालाजी ने वैसे ही पेट आगे को किये, सिर को खम दिये, पतलून में हाथ डाले, मुँह बिचका दिया।

चेतन ने एक तेज़ निगाह उन पर डाली। तब जाने उसे क्या हुआ। वह अपनी जगह उठा। उसने बायीं तरफ़ पड़े हुए सारे कटिंग उठाये और उनके सामने पटक दिये।

'आप ये अपने कटिंग सँभालिए, मैं आपके यहाँ काम नहीं कर सकता।'

महाशयजी हतप्रभ उसकी ओर देखते रह गये। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया।

'मैं निहायत दयानतदार वर्कर हूँ।' चेतन ने तमतमाये चेहरे से कहा, 'जिससे पैसा लेता हूँ, उसे पूरा काम देता हूँ और आप मेरी दयानत पर शक करते हैं। सुबह से आप मुझे लेख-पर-लेख दे रहे हैं। यह इतना बड़ा थब्बा आपने लेखों का दिया है। दस बार मैं उठ कर आपकी मेज़ पर गया हूँ और दस बार आ कर बैठा हूँ। जितने वक्त में आपने इन्हें पढ़ा है, उतना वक्त ही मैंने इन्हें पढ़ने में लगाया है। आध घण्टा पहले आपने छुट्टी दी है, सो यह एक सफ़ा तरजुमा किया है। और मैं क्या करता। आप अपना काम सँभालिए और मुझे छुट्टी दीजिए।'

महाशयजी स्तब्ध और अवाक खड़े रह गये। उनका हमेशा खिला रहने वाला मुख कुछ अजीब तरह से अनाश्वस्त हो आया, 'यू हैव पुट मी इन ए फ़िक्स।' उन्होंने फीकी-सी मुस्कान से कहा, 'मैंने तुम्हारे ही लिए यह हफ़्तावार निकाला था।'

'आपका हर्ज मैं नहीं होने दूँगा।' चेतन ने कहा, 'जब तक आपको दूसरा आदमी नहीं मिलता, मैं पहले की तरह एक रुपया फ़ी मज़मून तरजुमा कर दूँगा। आपको यह सौदा सस्ता ही रहेगा। पर मैं काम अब आपके यहाँ नहीं कर सकता। यह मज़मून मैं लिये जाता हूँ। कल शाम आ कर दे जाऊँगा।'

और उसने तख्ती से काग़ज़ निकाले। मादाम रिकी वाला कटिंग उठाया। उन्हें 'आदाब अर्ज़' कह कर और उसी तरह किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ खड़े छोड़ कर, वह कमरे से निकल आया। बाहर दफ़्तर में मैनेजर और क्लर्क काम समेट कर घर जाने की तैयारी कर रहे थे। चेतन ने किसी से आँख नहीं मिलायी। खट्-खट् सीढ़ियाँ उतर गया।

नीचे सड़क पर पहुँच, उसने रिहाई की लम्बी साँस ली और तेज़-तेज़ घर की तरफ़ चल पड़ा।

अ ड़ ता लो स

चेतन दफ़्तर से तेज़-तेज़ चला था, लेकिन रत्नचन्द रोड का चौरस्ता पार कर, अपनी गली में दाखिल होने तक उसकी चाल चींटी की-सी हो गयी थी।—वह अपनी पत्नी से क्या कहेगा ? उससे क्या बहाना बनायेगा ? इस सूचना से उस पर कैसी प्रतिक्रिया होगी ?—वह बार-बार यही सोच रहा था और उसका मन घर जाने को न हो रहा था, लेकिन इस पर भी उसके पैर उसी तरफ़ बढ़े जा रहे थे।

०

वह दफ़्तर से नीचे उतरा था तो उसने रिहाई की साँस ली थी। वह तेज़-तेज़ चला भी था, लेकिन जब सामने हस्पताल रोड की ओर से ठण्डी हवा का तेज़ झोंका उसके चेहरे को छीलता चला गया तो उसके स्पर्श से उसके दिमाग़ का तनाव सहसा हलका पड़ गया था और उसकी आँखों के सामने उसकी पत्नी का हँसता हुआ चेहरा आ गया था।. . .रात जब उसने दस रुपया महीना बचा कर लॉ-कॉलेज में दाखिले के लिए रुपया जुटाने की बात कही थी तो वह कितनी उत्साहित हो उठी थी और अब वह

जा कर उसे सूचना देगा कि वह नौकरी छोड़ आया है तो उसका चेहरा कैसा उदास हो जायगा !. . .दुर्वार आवेग के उस क्षण में बिना कुछ भी आगा-पीछा सोचे, उसने नौकरी छोड़ दी थी ।. . .अपनी पत्नी के उदास और निराश मुख की कल्पना से उसका दिल बैठने लगा था और उसकी चाल आप-से-आप धीमी हो गयी थी ।

क्षण भर वहीं रुक कर उसने सोचा था—वह वापस चला जाय और अपने आवेग के लिए लालाजी से क्षमा माँग ले । उन्होंने उसी के लिए साप्ताहिक निकाला था । प्रकट ही उन्होंने पण्डित रत्न से उस सिलसिले में परामर्श किया होगा, भूँचाल की योजना बनाने में पण्डित रत्न ने लालाजी की मदद की होगी और उसने बिना सोचे-समझे, बिना पण्डितजी की राय लिये, काग़ज़-पत्र उठा कर लालाजी के सामने पटक दिये थे. . .

लेकिन दूसरे क्षण वह फिर तेज़-तेज़ चल पड़ा ।. . .नहीं, उससे माफ़ी नहीं माँगी जायेगी और दोबारा उनके यहाँ काम भी नहीं किया जायेगा । वह ज्यादा-से-ज्यादा उनके लिए हैक-वर्क ही कर सकता है; उनके अधीन नौकरी नहीं कर सकता । दिन भर उनके गन्दे लतीफ़े और फूहड़ मज़ाक नहीं सुन सकता । उनका वह सर्वज्ञता का पोज़ बरदाश्त नहीं कर सकता । उस ब्राह्मणी को ले कर सुनाये गये उस लतीफ़े की याद पुनः उसका तन-मन खौला गयी । उसे लगा जैसे उसी की किसी माँ-बहन को ले कर उन्होंने वह लतीफ़ा गढ़ा हो ।. . .किसी खत्रानी को ले कर उन्होंने वह लतीफ़ा क्यों नहीं सुनाया ? क्या उस स्थिति में ब्राह्मणी ही का जन्म भ्रष्ट होता ? खत्रानी का नहीं होता ? बार-बार यही बात उसके दिमाग़ को ठकोरने लगी । उस लतीफ़े की सूक्ष्मता चेतन के मन को छुए बिना निकल गयी । हँसी आना तो दूर, वह मन-ही-मन कपूर लाला को बे-नुत्क गालियाँ देने लगा. . .

लेकिन चेतन के क्रोध का असली कारण हल्दा लेने वाली ग़रीब ब्राह्मणी को ले कर सुनाया गया वह फूहड़ और अश्लील लतीफ़ा नहीं

था। क्योंकि बौद्धिक रूप से वह हिन्दू-मुसलमान और खत्री-ब्राह्मण में कोई अंतर न मानता था। उसे मुसलमानों से भी नफ़रत नहीं थी। वह कॉलेज के दिनों में हमीद के घर ही नहीं खा-पी लेता था, लाहौर आ कर पण्डितजी के साथ मलिक यूसूफ़ के यहाँ ईद की सवैयाँ भी एक ही कटोरे से उसने खायी थीं और मौलाना नईम बेग के सालन का भी स्वाद उसने चखा था।. . .जब वह शीशे में कभी अपनी सूरत और साँवला रंग देखता था तो उसका दिमाग़ सदियों पहले के उस ज़माने में चला जाता था, जब चारों वर्णों की व्यवस्था करने वाले गोरे-चिट्टे सुन्दर आर्य भारत में आये थे। फिर कब यहाँ के आदिम निवासियों का रक्त उनके रक्त में मिल गया, कब यहाँ के वासियों ने उनके वेद-पुराण अपना लिये, इसका कोई ठिकाना नहीं। चेतन जानता था कि उसकी नसों में आर्य ब्राह्मणों का शुद्ध रक्त नहीं और रक्त की शुद्धि की बात समाज को आगे नहीं बढ़ाती। खत्रियों के प्रति भी उसके मन में कोई विद्वेष नहीं था, लेकिन बचपन से उसने मुहल्ले के ग़रीब ब्राह्मणों पर खत्रियों के अत्याचारों के जो किस्से सुने थे, उनसे उसके मन में सहज भाव से उन लोगों के प्रति आक्रोश भर गया था, जो ब्राह्मणों का अपमान करते थे, उन्हें कुत्ते कहते थे, और अपने आदर योग्य पुरोहितों से हुक्के भरवाते थे। चेतन को इस बात का गर्व था कि उसके पिता ने घर से पुरोहिताई की भीख को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया था। चाणक्य का वह दुर्दम आक्रोश उसे सर्वथा स्तुत्य लगता था, जिसने नन्द से अपमानित हो कर चोटी की गाँठ खोल दी थी और प्रण किया था कि उसके रक्त ही से उसे फिर बाँधेगा। वह इन्सान ही क्या जो अपमान सहता हुआ जिये ? उसमें और पशु में क्या अंतर है ? वह महाशय जीवनलाल के यहाँ नौकरी करता तो उसे नित्य अपमानित होना पड़ता। हो सकता है, हमीद ने उसे यह लतीफ़ा सुनाया होता तो वह ठहाका मार कर हँस देता, पर उसका अपमान करने वाले उस लाला ने सुनाया, इसलिए उसका तन-मन खौल उठा।. . .इस लतीफ़े ने मन-ही-मन सुल-

गती उसके क्रोध की आग पर घी का काम किया था। क्रोध तो उसे उसी वक्त आया था, जब उसने दरवाज़े के पास से हो कर अपने कमरे में जाते हुए उनके मुँह से 'लौण्डा-ए-खुदरंग' शब्द सुना था और उसे लगा था कि लालाजी उसी को ले कर कोई मज़ाक मौलाना से कर रहे हैं।... यह अजीब बात है कि जब डेढ़-दो वर्ष पहले उसकी शादी के वक्त मौलाना नईम बेग चग़ताई ने 'लौण्डा-ए-खुदरंग की शादी-ए-खाना आबादी' का वह इश्तहार हाथ से लिख कर उसके दफ़्तर की दीवार पर चिपका दिया था तो चेतन ने बुरा नहीं माना था, बल्कि वह मौलाना की इस चुहलबाज़ी पर खुश हुआ था। लेकिन शायद मौलाना की आँख में मैल नहीं था और महाशय जीवनलाल की आँख में उसे खोट दिखायी दिया था।...इसीलिए जब वह कुर्सी पर जा कर बैठा था और उन्होंने वह लतीफ़ा सुनाया था तो उसके मन में उसी वक्त वह नौकरी छोड़ देने का विचार आया था...

चेतन तेज़-तेज चला जा रहा था और उसके मन में क्रोध का तूफ़ान उमड़ रहा था।—कैसे कपूर लाला दिन भर मेज़ पर पाँव फैलाये, कुर्सी पर पीछे को लेटे हुए बिग-बॉस बने उसे बार-बार बुलाते रहे—जैसे वह उनका सम्पादक न हो, ज़रखरीद ग़ुलाम हो। साले बिग-बॉस के! एक भारी और भद्दी गाली चेतन ने लाला के लिए हवा में फेंक दी।... उसके कानों में लाला का एक-एक वाक्य गूँज गया। अपनी सर्वज्ञता, दूर-अन्देशी, कार्य-पटुता, गुरु घण्टाल को उर्दू का प्रसिद्ध बहुसंख्यक और लोकप्रिय अखबार बनाने के सिलसिले में अपने श्रम, साधना और सूझ-बूझ का बखान करते हुए वे अपने मित्रों में गर्व से कहा करते थे, 'जीवनलाल इज़ नॉट ऐन ऑर्डिनरी ऐडीटर एण्ड प्रोप्राइटर ऑफ़ ए वीकली, जीवनलाल इज़ ऐन इन्स्टीट्यूशन[1]।'...'जीवनलाल इज़ ऐन

---

१. जीवनलाल किसी साप्ताहिक का मामूली सम्पादक और मालिक नहीं। जीवनलाल एक संस्था है।

इन्स्टीट्यूशन'—चेतन ने मन-ही-मन दोहराया—साले इन्स्टीट्यूशन के ! —एक फूहड़, ग़लीज़, सनसनीखेज़ साप्ताहिक निकाल कर, जनता की कुण्ठित वासनाओं और धार्मिक भावनाओं के साथ खेल कर, बड़े 'संस्था' बने फिरते हैं। कल कोई उनसे भी भद्दा और सनसनीखेज़ पत्र निकाल देगा और लाला का सारा संस्थापन पेट की नाकिस हवा की तरह निकल जायेगा।. . .बने फिरते हैं आर्य समाजी और कट्टर हिन्दू ! वाहियात सिनेमा देखते हैं, टखियाइयों के साथ मेल-मुलाकात रखते हैं, सारा दिन बैठे गन्दे और फूहड़ लतीफ़े सुनाते और छत-फाड़ ठहाके लगाते हैं, निम्न-मध्यवर्ग के अधपढ़े, निरीह पाठकों को एक्स्प्लॉयट करते हैं। देश का सचमुच भला चाहने वाली आज़ाद हुकूमत हो तो ऐसा साम्प्रदायिक और भोंडा अख़बार निकालने वालों को काले पानी की सज़ा दे दे !. . . जीवनलाल इज़ एन इन्स्टीट्यूशन. . .वह उनसे जा कर माफ़ी माँगेगा ! उनके यहाँ नौकरी करेगा ! इसकी अपेक्षा वह टोकरी ढोना बेहतर ख़याल करेगा !. . .जीवनलाल इज़ एन इन्स्टीट्यूशन. . .

लेकिन तभी उसे ख़याल आया कि उसके घर तो दो रुपये भी नहीं हैं। उसकी पत्नी ने पैसा-पैसा जोड़ कर इकट्ठे किये हुए रुपये भी भाई साहब को मकान के किराये के लिए दे दिये हैं। उसके पास छोटी-मोटी दैनिक ज़रूरतों के लिए भी एक पैसा नहीं है और उसने तो लॉ-कॉलेज में दाखिल होने का प्रण किया है. . .उसके सामने उसकी पत्नी का उदास चेहरा आ गया था और उसकी चाल फिर धीमी हो गयी थी।

यह अजीब बात है कि चन्दा से राय लेने की तो बात दूर रही, चेतन ने तो उस वक्त तक उस बेचारी की भावनाओं का भी कभी ख़याल न किया था। उसकी पत्नी को क्या भला-बुरा लगता है, इसकी कभी चिन्ता न की थी। लेकिन उसके अनजाने ही उसके दिल-दिमाग़ के बड़े हिस्से पर चन्दा ने अधिकार कर लिया था। चन्दा क्या कहेगी ? चन्दा क्या सोचेगी ? चन्दा की क्या प्रतिक्रिया होगी ? उसका हँसता चेहरा कैसे उदास हो जायेगा ? उसकी उस उदास मुखाकृति को देख कर उसे

स्वयं कितनी ग्लानि होगी ? वह निरन्तर यही सोच रहा था। अपनी आवेगशीलता पर उसे अफ़सोस हो रहा था और उसकी चाल मन्द से मन्दतर हो गयी थी. . .यह तो ठीक है कि वह उस जगह ज़्यादा दिन नौकरी नहीं कर सकता था, लेकिन क्या उसे तत्काल यह कदम उठाना चाहिए था ? विशेषकर जब वह जानता है कि उसके घर में पैसे की तंगी है। क्या अपने क्रोध पर संयम रख के वह लालाजी को अपनी बात न समझा सकता था ? लालाजी ने उससे काम कम होने की ही शिकायत की थी, काम छोड़ने को तो नहीं कहा था। उन्हें क्या मालूम था कि वह उन्हीं की तरह हर लेख बाकायदा पढ़ कर रखे जा रहा है। उनका शिकायत करना क्या स्वाभाविक नहीं था ?. . .तभी चेतन के सामने शिमला के रुल्दू भट्टे का वह क्षण घूम गया, जब उसे बाज़ार से खाना खा कर आने में कुछ देर हो गयी थी, कविराज रामदास खाना खा कर आराम करने के बाद औषधालय को जाते हुए उसे रुल्दू भट्टे की ढलान पर मिले थे और उन्होंने हँस कर कहा था, 'घोड़िया, तूं अज कल कम्म कुझ ज़्यादा नहीं कर रिहा !' और उसने दूसरी सुबह उनसे छुट्टी माँग ली थी।. . .उस स्थिति और इस स्थिति में कोई अंतर नहीं था। लेकिन शिमला में चन्दा उसके साथ नहीं थी कि जिसकी भावनाओं की उसे चिन्ता होती। फिर कविराज लाला जैसे फूहड़ नहीं थे। लाख चाहने के बावजूद उन्होंने उसे नौकरी नहीं छोड़ने दी थी। वे उसे जाकू की सैर को ले गये थे, उन्होंने उसे दूध में अण्डे मिला कर खिलाये थे, वे उसे चैडविक प्रपात दिखाने ले गये थे और आखिर उन्होंने उसे मना कर ही दम लिया था।. . .हो सकता है कि वह नौकरी छोड़ने की धमकी देता और उनके व्यवहार की शिकायत करता तो लाला जीवनलाल भी उसे समझाते। जब उसने काम छोड़ देने की बात कही थी तो उनका चेहरा कैसा हतप्रभ हो कर लटक आया था।—'यू हैव पुट भी इन ए फ़िक्स !' निराशा-भरे उनके शब्द चेतन के कानों में गूंज गये।. . . लेकिन कैसी शान के साथ, हाथ पतलून की जेब में डाले वे उससे पूरे

दिन के काम की कैफ़ियत तलब करने आये थे और कितनी ऊँचाई से उन्होंने उससे वह कैफ़ियत माँगी थी। वह साप्ताहिक का सम्पादक था या दिहाड़ी[1] पर काम करने वाला कोई मज़दूर!—सारे दिन बार-बार उनकी मेज़ पर जा कर कटिंग लेने की बेइज़्ज़ती सहने के बाद, उनके उस पोज़ को देख कर वह कैसे संयम रख पाता! वह इतनी देर बैठा रहा और शान्त भाव से कटिंग पढ़ता रहा, यही बड़ी बात थी। वरना दूसरी बार, जब उन्होंने महज़ कटिंग देने के लिए उसे मेज़ पर बुलाया था, उसका जी हुआ था कि उन्हें 'आदाब अर्ज़' कहे और चल दे! कविराज की बात में उलाहना था, जबकि महाशयजी की बात में शिकायत-भरी डाँट। उसने उसी क्षण तय कर लिया था कि वह ऐसे टुच्चे व्यक्ति की ग़ुलामी नहीं करेगा, इसलिए उसने छुट्टी नहीं चाही थी—कटिंग उनके सामने पटक कर चला आया था. . .यदि वह छुट्टी चाहता और वे नर्म पड़ जाते तो भी क्या फ़र्क पड़ता? अदबी अखबार तो वे निकालते नहीं। उसे बरबस उस कूड़े पर सम्पादक के रूप में अपना नाम देना पड़ता। वे दो दिन चुप रहते, तीसरे दिन फिर उसका मज़ाक उड़ाते या अपमान करते। वह चुप रहता तो जितने दिन वह नया काम न खोज पाता, उसे यन्त्रणा सहनी पड़ती। उसने ठीक किया कि वह नौकरी छोड़ आया।

वह फिर तेज़-तेज़ चलने लगा था। लेकिन कृष्णा गली में दाखिल होते ही उसकी चाल फिर धीमी पड़ गयी थी। वह अपनी पत्नी से क्या कहेगा? कैसे यह खबर उसे सुनायेगा?—विशेषकर रात की उत्साह-भरी प्रतिज्ञा के बाद! चेतन को कुछ भी सूझ न रहा था। अपने घर के बाहर वह कुछ क्षण के लिए रुक गया। पहले उसने तय किया, वह अपनी पत्नी से सीधे कह देगा, उससे यह ज़लील नौकरी नहीं होती। वह जालन्धर चली जाय, जब वह नयी नौकरी ढूँढ लेगा, उसे बुला

---

१. रोज़ाना पर।

लेगा।. . .फिर उसने सोचा—नहीं, उसे जालन्धर भेजने की ज़रूरत नहीं, उसकी पढ़ाई का हर्ज होगा। वह सात-दस दिन में कोई-न-कोई दूसरा काम खोज लेगा, जिससे महीने में पच्चीस-तीस रुपये मिल जायें।. . .फिर उसने तय किया वह कुछ भी नहीं कहेगा। वह ऐसे व्यवहार करेगा, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। रोज़ दफ़्तर के समय घर से निकल जाया करेगा और शाम को वापस आ जाया करेगा। कपूर साहब चाहेंगे तो कुछ दिन उन्हीं के लिए अनुवाद कर देगा। उन्हीं के यहाँ बैठ कर, कर देगा—लेकिन नौकर की हैसियत से नहीं, स्वतंत्र और फ्रीलान्सर लेखक की हैसियत से! चन्दा को वह कुछ भी पता न चलने देगा। जब दूसरा काम मिल जायेगा तो सरसरी तौर पर इसका ज़िक्र कर देगा। न चन्दा को पता चलेगा, न उसकी नौकरी छूटने पर वह उदास होगी।. . .

और यह सब तय करके, दुविधा छोड़, उसने बढ़ कर डेवढ़ी में कदम रखा।

०

चन्दा बैठक ही में बैठी विद्यालय का काम कर रही थी। पति को देखते ही उसकी बत्तीसी खिल गयी, किताबें उसने एक ओर रख दीं और उठ खड़ी हुई।

चेतन चुपचाप ईज़ी चेयर में धँस गया।

'क्या बात है,' सहसा चन्दा ने पूछा, 'आपका चेहरा क्यों उतरा हुआ है?'

और चेतन क्षण भर पहले के सारे फ़ैसले भूल गया। झूठ बोलना उसके लिए असम्भव हो गया, 'मैंने नौकरी छोड़ दी है।' उसने उदासी से कहा।

चन्दा की मुस्कान और फैल गयी, 'फिर क्या हुआ!' जैसे अपनी आँखों और वाणी से ही वह उसे दुलारती हुई बोली, 'और दस नौकरियाँ मिल जायेंगी।'

चेतन चुपचाप अपनी पत्नी की ओर देखता रह गया।

'आप कुछ देर ईज़ी चेयर पर लेटिए। मैं इतने में कुछ नाश्ता और गर्म-गर्म चाय बना लाती हूँ। फिर हम बाहर सैर को चलेंगे। आप चाहेंगे तो जमुना की तरफ़ हो आयेंगे। आपका मन बहल जायेगा।'

'नहीं, हम जमुना की तरफ़ नहीं जायेंगे।' चेतन ने क़द्रे तल्ख़ी से कहा, 'तुम चाय बना लाओ, फिर ज़रा अनारकली घूमने चलेंगे।'

उसकी पत्नी चली गयी। चेतन के दिल का सारा बोझ हलका हो गया। यद्यपि दफ़्तर से आते ही वह आराम-कुर्सी में धँस गया था, लेकिन अब वहाँ बैठे रहना उसके लिए कठिन हो गया। कमरा उसे बहुत छोटा और घुटन-भरा लगा। वह उछल कर उठा। उसने दफ़्तर के कपड़े उतार कर खूँटी पर टाँगे, तहमद और कुर्ता पहना और गर्म लोई ओढ़ता हुआ बाहर निकला। पहले उसने सोचा, वह बाहर गली में घूमे, फिर ऊपर जाने वाली सीढ़ियों की ओर बढ़ा। 'मैं ज़रा ऊपर छत पर जा रहा हूँ। चाय बन जाय तो मुझे आवाज़ दे देना,' उसने पत्नी से कहा और वह खट-खट सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ ऊपर तिमंज़िले की छत पर चला गया और गली की ओर को बनी छोटी-सी शहनशीन पर जा बैठा।

शाम के झुटपुटे में, उस ठण्डी शहनशीन पर बैठे चेतन ने फिर राहत और रिहाई की लम्बी साँस ली। घर आते समय वह चन्दा की प्रतिक्रिया से कितना डर रहा था, पर उसने तो नौकरी छोड़ने का ज़रा भी बुरा नहीं माना। वह तो ऐसे ख़ुश है, जैसे उसकी नौकरी छूटी नहीं, लगी हो। अगर उसने मुँह फुला लिया होता तो...! चेतन को कितनी ग्लानि होती! ओह! शी इज़ अ ट्रेयर! शी इज़ अ प्राइसलेस ट्रेयर![1] उसने मन-ही-मन वह वाक्य दोहराया, जो उसने भाई साहब की कुर्सी के लिए उससे गहने लाने के बाद नोट-बुक में लिखा था।...

---

१. अमूल्य निधि।

वह ऐसी पत्नी के लिए क्या नहीं कर सकता ! नौकरी हासिल करना बहुत मामूली बात है, वह आसमान के तारे तक उसके लिए तोड़ कर ला सकता है !. . .वह कल ही से काम की तलाश करेगा । उसे काम नहीं मिलेगा तो वह अनारकली के थोक-फ़रोशों से दो-तीन दर्जन रूमाल खरीद लायेगा और अनारकली के चौरस्ते में आवाज़ लगा कर बेच देगा । रुपया-डेढ़ रुपया कमा लेना कौन मुश्किल बात है ! 'अपने पाँव धोती हुई कोई बाँदी नहीं कहाती'—माँ के शब्द उसके कानों में गूंज गये । 'दुनिया की परवाह मूर्ख करते हैं । तुम अपना भला करते हो, दुनिया गले लगाती है, तुम अपना नुकसान करते हो, दुनिया दुत्कारती है,' उसकी माँ समझाया करती थी । वह सफल हो जायेगा तो कोई नहीं कहेगा कि उसने बाज़ार में रूमाल बेच कर घर का खर्च चलाया था । उसे किसी की फ़िक्र नहीं । ज़रूरत पड़े तो वह टोकरी तक ढो सकता है. . . अ मैन कैन डू व्हॉट अ मैन हैज़ डन. . .अपने पिता का उपदेश उसके दिमाग़ में घूम गया । वह लॉ-कॉलेज में ज़रूर दाखिल होगा । वह डिस्टिंक्शन से लॉ पास करेगा । सब-जजी के कम्पटीशन में बैठेगा और कामयाब हो कर दम लेगा । अपनी पत्नी की और अपनी पोज़ीशन को ज़रा भी आँच नहीं आने देगा । उसे सब-जज बनने से कोई नहीं रोक सकता. . .कोई नहीं रोक सकता ।

०

शाम के छै बजने वाले थे, लेकिन अँधेरा अभी से छा गया था और नीचे बाज़ारों और सड़कों की बत्तियाँ जल उठी थीं । सर्दी के कारण नीचे से उठा हुआ धुआँ जैसे मकानों के ऊपर लटक आया था । दूर तक शहर कोहरे और धुएँ में इस तरह लिपटा था कि ऊँची-नीची, बड़ी-छोटी इमारतें शाम के धुँधलके में कुछ अजीब तरह से एक दूसरी में गड-मड हो गयी थीं और उन्हें अलग से पहचानना मुश्किल था । चेतन ने दूर तक आपस में गड-मड होते हुए मकानों के उन खाकों पर नज़र डाली । उसकी निगाह उन अस्पष्ट खाकों के ऊपर से छिछलती हुई परे,

दूर पश्चिम के क्षितिज में लाली की गहरी रेखा और उसके ऊपर फैले हलके-से उजेले पर चली गयी। चेतन को लगा उसका निकट भविष्य भी सर्दियों की शाम के इसी लाहौर-सा अस्पष्ट और धुँधला है, उसके क्षितिज पर भी लाली की वैसी ही क्षीण रेखा झिलमिला रही है। तभी उसे महसूस हुआ कि लाली की वह रेखा वहाँ से उठ कर उसके अंतर में चली आयी है और चन्दा की उस मुस्कान, प्रोत्साहन और स्नेह के सहारे क्षण-क्षण फैल रही है। फैल रही है और उसके भविष्य के आकाश को उजला बना रही है। उसे विश्वास हो गया कि वह उसकी रोशनी में तमाम धुंध-लकों और अस्पष्टताओं से निकल कर अपने उद्देश्य को पा लेगा। उसमें इस्पाती इच्छा-शक्ति है।. . .उसे कोई नहीं रोक सकता . . .कोई नहीं रोक सकता।

वह सामने क्षितिज के रंगीन प्रकाश पर आँखें जमाये एक टक देख रहा था, जब चन्दा ने नीचे सीढ़ियों से आवाज़ दी कि चाय तैयार है।

वह उठा। उसने ढीली होती लोई को एक बार खोल कर फिर से उसका फेंटा मारा और सीढ़ियाँ उतरने लगा।

४-१-१९६५

२०-८-'६९

५-११-'६९
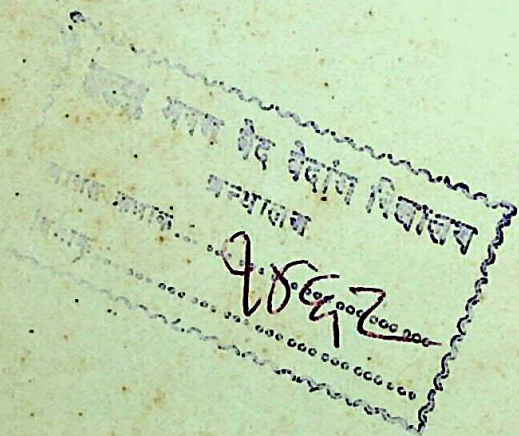
उपेन्द्रनाथ अश्क

का जन्म : १४ दिसम्बर, १९१० को जालन्धर, पंजाब के एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार में हुआ। प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा और १९३६ में बी० ए० एल० एल० बी० करने तक अश्क कई तरह की नौकरियाँ कर चुके थे। लॉ करने के साथ ही अश्क की पहली पत्नी का देहान्त हो गया, जिससे उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे अदालतों के चक्कर छोड़, पूर्णतः साहित्य-सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। १९३६ से १९४८ तक अश्क ने अनेकानेक क्षेत्रों में काम किया, जिनमें पत्रकारिता, रेडियो, रंगमंच तथा फ़िल्म महत्व-पूर्ण हैं।

१९२६ में उर्दू में कहानी-लेखन आरम्भ करके १९३५ से अश्क हिन्दी में लिखने लगे और प्रेमचन्द से ले कर अब तक के कथा-साहित्य में जितने महत्वपूर्ण मोड़ आये हैं, अश्क उनसे निकटतम स्तर पर जुड़े रहे हैं। निम्नमध्यवर्ग का अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण अश्क ने अपनी कृतियों में किया है और हिन्दी कथा-साहित्य में यथार्थवादी सामाजिक स्वर, मनोवैज्ञानिक व्यापकता और गहराई लाने में पूर्णतः सफल हुए हैं। अब तक सभी विधाओं में महत्वपूर्ण कृतियाँ दे चुके हैं, जिनमें 'गिरती दीवारें,' 'गर्म राख,' 'शहर में घूमता आईना,' 'पत्थर अल पत्थर,' और 'बड़ी बड़ी आँखें,' अश्क के अत्यन्त लोकप्रिय और प्रख्यात उपन्यास हैं।